Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

प्रभात वेला
कुमारसम्भव
उमड़ती घटाएँ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार गुरुदत्त
प्रतिनिधि रचनाएँ

खण्ड-9

109082

प्रभात वेला
कुमारसम्भव
उमड़ती घटाएँ

सम्पादक

अशोक कौशिक

R74,KAU-S
109082

भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली-१

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© भारती साहित्य सदन

संस्करण : प्रस्तुत रूप में प्रथम बार—जुलाई, १९९१

मूल्य : दो सौ अस्सी रुपये

Sahityakaar Gurudutt—Pratinidhi Rachnaayen, Vol. IX

प्रकाशक : भारती साहित्य सदन,
३०/९०, कनॉट सरकस, नई दिल्ली-११०००१

आवरण : पाल बंधु, दिल्ली

मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासकार का परिचय

उपन्यासकार श्री गुरुदत्त जी का जीवन ६५ वर्षों में सतत साधनारत रहने के फलस्वरूप तपकर ऐसा कुन्दन बन गया है कि जिसकी तुलना अब किसी अन्य से नहीं अपितु उनसे ही की जा सकती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सागर और आकाश की तुलना किसी अन्य से नहीं अपितु सागर और आकाश से ही की जा सकती है। वर्षों पूर्व श्री गुरुदत्त जी के किसी अभिनन्दन समारोह में दिल्ली विश्व-विद्यालय के हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने उनके प्रति अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए कहा था—"कोई भी उनको बैठे उनके दैदीप्य-मान मुखाकृति को देखे तो यही अनुभव करेगा मानो मार्ग-निर्देश करता हुआ-सा कोई तपस्वी बैठा है।"

भर्तृहरि का कथन है :

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

अर्थात्—इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता और कौन नहीं जन्म लेता। किन्तु उसका ही जन्म लेना सार्थक है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति होती हो।

श्री गुरुदत्त उसी श्रेणी में आते हैं। उनके जन्म से न केवल उनका वंश समुन्नत हुआ है, न केवल हिन्दी साहित्य समुन्नत हुआ है, न केवल हिन्दी भाषा समृद्ध हुई है अपितु उनके साहित्य से समस्त राष्ट्र समुन्नत हुआ है, मानवता समुन्नत हुई है।

आज से ६४ वर्ष पूर्व लाहौर (अब पाकिस्तान) के निम्न-मध्यवर्गीय पंजाबी अरोड़ा परिवार में उनका जन्म हुआ था। पिता निर्वाह-भर के लिए अपनी दुकान से अर्जित कर सन्तुष्ट थे। वे स्वभाव से धर्मभीरु और ईश्वर-भक्त थे। यद्यपि वे आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित थे तदपि पौराणिकता से पूर्णतया पल्ला भी नहीं छुड़ा पाए थे। आर्यसमाज के उपदेशकों के मुख से मूर्ति-पूजा का खण्डन सुनते हुए भी किसी देवालय के सम्मुख से जाते हुए वे अपना मस्तक अवश्य नवाते थे। वे मूर्ति-स्वरूप परमात्मा की वन्दना करते थे। यही संस्कार गुरुदत्त को विरासत में प्राप्त हुए थे। जीवन-द्वन्द्व के इन्हीं संस्कारों से पलित गुरुदत्त का बाल्यकाल और किशोरावस्था सर्वसामान्य की भाँति ही व्यतीत हुए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक जीवन

बाल्यकाल से ही गुरुदत्त को लिखने-पढ़ने का चाव रहा। यही कारण है कि साधनहीन होने पर भी वे एम० एस-सी० की स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कर सके। तदुपरान्त उनकी विद्यालयीन शिक्षा का भले ही अन्त हो गया हो किन्तु विद्यार्थी जीवन तो ९५ वर्ष की आयु में भी निरन्तर उसी प्रकार चल रहा था। वे सतत अध्ययनरत रहते थे। विश्वविद्यालयीन शिक्षा पूर्ण कर अपने बाद के जीवन में उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का गहन अध्ययन और विश्लेषण किया था। उन्होंने इतिहास का मन्थन किया, विश्व-भर के लेखकों की रचनाओं और जीवनियों को पढ़कर उनका विवेचन किया, भारत की विभिन्न भाषाओं के कथा-साहित्य का परिचय प्राप्त किया। साहित्य ही नहीं, वे राजनीति के भी विद्यार्थी रहे। विश्व की राजनीति पर वे जो विश्लेषणात्मक विचार प्रस्तुत करते थे, उनको भले ही केवल हम जैसे ही कुछ लोग आज श्रेष्ठ विचार मानते हों, किन्तु वह समय दूर नहीं जब भारत का हिन्दू एक स्वर से कहेगा कि गुरुदत्त ने जो कहा, गुरुदत्त ने जो मार्ग-निर्देश किया, उस पर हम चले होते तो देश और देशवासियों की यह दशा नहीं होती।

गुरुदत्त जी की प्रारम्भिक शिक्षा डी० ए० वी० स्कूल में हुई। उन दिनों डी० ए० वी० में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी भारतीयता और भारतीय स्वातन्त्र्य के लिए अधिक संघर्षरत रहा। आज के सन्दर्भ में यद्यपि डी० ए० वी० में सबकुछ इसके विपरीत हो रहा है। प्रख्यात क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह भी डी० ए० वी० का छात्र रहा था।

जिन दिनों गुरुदत्त कॉलेज के छात्र थे उन दिनों प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार अजीतसिंह के नेतृत्व में सन् १९०७ में लाहौर में 'भारत माता सोसायटी' की स्थापना हुई। गुरुदत्त जी प्रायः इसकी बैठकों में भाग लेते थे। यह सोसायटी भारतीय युवकों में राष्ट्रीय भावना भरने का कार्य कर रही थी। उसी युग में लायलपुर में कृषक आन्दोलन भड़का। उस आन्दोलन में लाला लाजपत राय और सरदार अजीतसिंह ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था। इन सबका गुरुदत्त जी के मस्तिष्क पर गहन प्रभाव पड़ा था।

जीवन-संघर्ष

एम० एस-सी० उत्तीर्ण करने के उपरान्त वे गवर्नमेण्ट कॉलेज, लाहौर के विज्ञान विभाग में डिमांस्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हुए। तदुपरान्त विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया था कि तभी स्वदेशी आन्दोलन और अंग्रेजी सरकार के प्रति असहयोग की भावना ने उनके जीवन को ऐसा प्रभावित किया कि उन्हें सरकारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकरी का त्याग करना पड़ा। कुछ दिनों बाद लाहौर के नेशनल स्कूल में मुख्याध्यापद पद पर कार्य करने लगे। नेशनल स्कूल में रहते हुए उन्होंने अपने छात्रों में राष्ट्रीय वृत्ति के प्रचार-प्रसार का पुनीत कार्य किया। किन्तु ब्रिटिश राज्य में वह स्कूल भी सरकार की आँधी में ढह गया। जीविका का प्रश्न फिर सम्मुख आ गया। तभी अमेठी राज्य के राजा साहब के वे निजी सचिव नियुक्त हो गए। इस प्रकार उन्हें राजे-रजवाड़ों की रीति-नीति और राजनीति का अध्ययन करने का भी अवसर सुलभ हुआ।

दुर्दैव ने फिर भी पीछा नहीं छोड़ा। अमेठी रियासत कोर्ट ऑफ वार्ड्स में चली गई तो उनकी नौकरी भी उसके साथ ही गई। किसी प्रकार लखनऊ आकर जीवन चलाते हुए आयुर्वेद का अध्ययन किया और वहीं चिकित्सा भी करने लगे। किन्तु वैद्यकी इतनी नहीं चली कि अपने साथ-साथ परिवार का भी पेट पाल पाते। अतः १९३३ में पुनः लाहौर आकर वैद्यक का कार्य किया। वहाँ भी निर्वाह नहीं हो पाया तो १९३७ में दिल्ली आ गए। दिल्ली में कार्य जमने में दो वर्ष लगे। तदपि १९३९ तक वे अपने परिवार के सामान्य पालन-पोषण में समर्थ हो गए।

उपन्यासकार के रूप में

वैद्यक करते हुए अध्ययन का समय मिला तो उन्होंने खूब अध्ययन किया और पढ़ते-पढ़ते लिखने की रुचि हुई तो लिखना आरम्भ कर दिया। पहले कुछ कहानियाँ लिखीं, जो माधुरी आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं। फिर उपन्यास लिखना आरम्भ किया। १९४२ में पहला उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' प्रकाशित हुआ। उस प्रथम उपन्यास ने ही उनको प्रौढ़ उपन्यासकार की श्रेणी में खड़ा कर दिया। इससे प्रोत्साहित होकर उन्होंने उपन्यास-लेखन पर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया और समय बीतते-बीतते १९५२ से अर्थात् दस वर्ष के उपरान्त एक या दो-तीन उपन्यास प्रति वर्ष प्रकाशित होते रहे। कालान्तर में यह क्रम वर्ष में २० तक तीव्र हो गया और ४७ वर्ष के लेखन-क्रम में २५० से अधिक कृतियाँ प्रकाश में आ गयीं, जिनमें उपन्यासों के अतिरिक्त चिन्तनपरक रचनाएँ—ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद् एवं दर्शनशास्त्रों की व्याख्या एवं समीक्षाएँ भी सम्मिलित हैं। उन्होंने दो पुस्तकें अंग्रेजी में भी लिखी हैं।

राष्ट्रवादी राजनीतिज्ञ

उपन्यास-लेखक के साथ-साथ राजनीति का खेल भी कुछ वर्ष तक उन्होंने खेला। भारतीय जनसंघ के संस्थापकों में वे प्रमुख रहे। जनसंघ की स्थापना के उपरान्त उन्होंने उसके विभिन्न पदों पर रहकर भारतीय राजनीति में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया। कालान्तर में जनसंघ को न केवल कांग्रेस के पद-चिह्नों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर चलते देखा अपितु उसे कांग्रेस की कार्बन कापी बनते देखा तो राजनीति से एक प्रकार से संन्यास ले लिया क्योंकि उनके विचारों के समानान्तर कोई अन्य राजनीतिक दल था ही नहीं।

अंग्रेजों के साथ-साथ भारत में अंग्रेजियत ने जो जोर पकड़ा तो उसमें न केवल वेशभूषा और भाषा को अपमानित होना पड़ा अपितु हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद की भी अवमानना हुई। आयुर्वेदिक चिकित्सक होने के नाते गुरुदत्त जी आयुर्वेद के महत्त्व और उपयोगिता को भली-भाँति जानते थे। अतः आयुर्वेद के प्रचलन और उत्थान के लिए भी उन्होंने इस दिशा में कार्यरत आयुर्वेद महासम्मेलन जैसी अनेक संस्थाओं से स्वयं को जोड़ा और उसके लिए परिश्रम किया। गुरुदत्त जी सदृश अनेक लोगों के अनथक प्रयास का ही यह परिणाम है कि आज के विपरीत वातावरण में भी आयुर्वेद का नाम न केवल इस देश में शेष रह पाया है, अपितु उसकी महत्ता और उपयोगिता को अब देश-विदेश में समझा और सराहा जाने लगा है।

आर्यसमाज से प्रभावित

घर पर आर्यसमाजी वातावरण होने के कारण गुरुदत्त जी पर आर्यसमाज की गहन छाप पड़ी। जब वे सातवीं-आठवीं कक्षा में थे तब वे रुचिपूर्वक आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित होते थे। उन दिनों उनको लाला लाजपतराय, डॉ० गोकुलचन्द नारंग, भाई परमानन्द और महात्मा हंसराज आदि अनेक आर्यसमाजी विद्वानों के प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कालान्तर में वे आर्यसमाज के क्षेत्र में भी सक्रिय हो गए। किन्तु अन्यान्य संस्थाओं की भाँति ही आर्यसमाज से भी उनका व्यामोह टूट गया। वहाँ उन्होंने देखा कि ऋषि दयानन्द के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की अपेक्षा आर्यसमाज राजनीतिक नेताओं का अखाड़ा बना हुआ है और अपने निर्धारित पथ से सर्वथा विमुख हो गया है तो उनको उससे भी विरक्ति हो गई। तदपि समय-समय पर वे आर्यसमाज के कार्यक्रम से सम्बद्ध रहा करते थे तथा जितना उस कार्य में सहयोग किया जा सकता था वह भी करते रहते थे।

इतिहास-पुरुष

असुविधाओं की आँच में सीद्यमान साहित्यकार भी अपने तपोबल से इतिहास बन सकता है। श्री गुरुदत्त इसके साक्षात्प्रमाण और उदाहरण हैं। उन्होंने कष्टों और असुविधाओं को झेलते हुए अपनी प्रारम्भिक जीवनी तैयार की है। सतत साधना और अनवरत प्रयास से उन्होंने उच्चता अर्जित की है। उनका लक्ष्य जीवन के समस्त अंगों एवं सामर्थ्य से भारत माता, भारतीयता अथवा इन सबका पर्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवता की सेवा करना था। इसके लिए उन्होंने साहित्य के क्षेत्र को सर्वश्रेष्ठ और परमोपयोगी माना है। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे राजनीति के क्षेत्र में क्रियाशील रहे। चिकित्सा-क्षेत्र में भी उन्होंने अपने इसी उद्देश्य को सम्मुख रखा। मानव की ऐसी कोई समस्या नहीं जिसको उन्होंने अपनी रचनाओं में न उठाया हो और उसका समाधान न प्रस्तुत किया हो।

९४ वर्ष की आयु में, रुग्णावस्था में भी वे अपने उद्देश्य और ध्येय के प्रति निष्ठा से कार्यरत थे। वे अधिकाधिकरूपेण अपने इस जीवन में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्साहवान थे किन्तु सहसा हृदयाघात से ८-४-८६ को उनका देहान्त हो गया।

—अशोक कौशिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

साहित्यकार गुरुदत्त: प्रतिनिधि रचनाएँ-क्रम में पौराणिक उपन्यासों के संकलन में यह द्वितीय है जबकि प्रकाशन-क्रम में यह नौवाँ खण्ड है। इससे पूर्व इस ग्रन्थमाला के पंचम खण्ड में उनकी तीन रचनाएँ—'अवतरण', 'सम्भवामि युगे-युगे' और 'विनाशाय च दुष्कृताम्' 'परित्राणाय साधूनाम्' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी हैं। यद्यपि कालक्रमेण उन उपन्यासों का काल अर्थात् महाभारत काल प्रस्तुत संग्रह के तीन उपन्यासों से सहस्रों वर्ष बाद का है। क्योंकि पंचम खण्ड के उपन्यासों का कथानक महाभारत की घटनाओं का औपन्यासिक चित्रण है।

प्रस्तुत संग्रह के उपन्यासों का कथानक सृष्टि से आरम्भ कर देवलोक पर गान्धारराज नहुष के अधिकार और उसके पतन तक के काल पर आधारित है। यद्यपि महाभारत में भी इन कथानकों का प्रसंगेतर रूप से उल्लेख हुआ है तदपि उपन्यासकार ने इनका आधार तत्तद्विषयक पुराणों से ही लिया है। अन्तिम उपन्यास 'उमड़ती घटाएँ' में उन्होंने आधुनिक युग की अन्यतम रचना राज-तरंगिणी से भी सहायता प्राप्त की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के तीनों उपन्यासों में आर्य संस्कृति के आधार आस्तिकवाद, पुनर्जन्म तथा कर्मफल और वर्णाश्रम धर्म पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि इनका काल उपन्यासों के काल से बहुत बाद का है। तदपि उपन्यासकार का मत है कि आधार का मूल तो कहीं-न-कहीं से आरम्भ होना ही चाहिए। अत: उन्होंने अपने प्रारम्भिक सृष्टि काल के उपन्यास 'प्रभातवेला' में भी आर्ष और अनार्ष दो संस्कृतियों के परस्पर विरोध का समावेश कर दिया है। यद्यपि दोनों संस्कृतियों के पोषकों के पूर्वज ऋषि ही हैं। 'प्रभातवेला' की अण्डे से उत्पन्न सृष्टि को कालान्तर में उन्होंने आर्ष और अनार्ष संस्कृति में पलते-बढ़ते दिखाया है। उसमें जहाँ एक ओर आश्रम में आर्ष जीवन प्रणाली का समावेश किया है वहाँ दूसरी ओर अनार्ष विचार के वृहस्पति तथा उसकी जननी अदिति के रूप में चित्रण किया है। यहीं से दैवी और आसुरी विचारों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सृष्टि के आरम्भ से ही दैवी और आसुरी संस्कृतियों का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था।

वर्तमान में वेदों और पुराणों तथा अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थों में हम जिन वसु, रुद्र, आदित्य, मित्र, वरुण, अग्नि आदि का उल्लेख पाते हैं, वे सब वैदिक कालीन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता हैं। इस बात को उपन्यासकार ने अपने उपन्यास 'प्रभातवेला' में अनेकशः सिद्ध करने का यत्न किया है। ये सब विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ तथा विद्याएँ थीं, यह भी उन्होंने अपने इसी उपन्यास में स्पष्ट किया है।

श्री गुरुदत्त के पौराणिक उपन्यासों के पठन से यह स्पष्ट होता है कि देवपूजा का वह रूप जो आज प्रचलित है, कभी नहीं रहा है। पूजा से अभिप्राय किसी विशिष्ट गुण अथवा शक्ति को प्राप्त करना, प्रसन्न करना अथवा आत्मसात् करना रहा है। न कि वर्तमान में प्रचलित प्रथा मिष्ठान्न, मोदक, धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, पुष्प, फल इत्यादि समर्पित कर स्वार्थ सिद्धि के लिए देवता की आराधना करना। आराधना का अभिप्राय उस शक्ति को स्वयं में समाहित करने के लिए प्रयत्न करना है। उसमें निपट स्वार्थ नहीं अपितु परमार्थ का पुट होना परमावश्यक है।

गुरुदत्त जी ने चाहे किसी विषय पर उपन्यास क्यों न लिखा हो, उसका आधार भले ही पौराणिक अथवा ऐतिहासिक क्यों न रहा हो, किन्तु उन सबमें उनकी जो प्रमुख दृष्टि रही है वह है उनकी वैदिक जीवन दृष्टि। वैदिक जीवन दर्शन(जो अब हिन्दू जीवन दर्शन के रूप में प्रचलित है) का उनकी कृतियों में पदे-पदे आभास मिलता है। यही उनका मुख्य उद्देश्य भी रहा है। जिसके कारण वर्तमान तथा-कथित प्रगतिवादी लेखकों और विचारधारा के प्रणेताओं ने उनको एकांगी अथवा साम्प्रदायिक कहकर उन्हें अस्वीकारने का जघन्य अपराध किया है। उन्होंने अनेक स्थानों पर यही कहने का यत्न किया है कि इस संसार में मनुष्य अपने कर्मफल से बँधा हुआ विचरण करता है। सब कुछ उसकी इच्छा के अनुकूल ही हो, यह सम्भव नहीं हो सकता। यही कारण है कि पौराणिक उपन्यासों में भी, विशेषतया 'प्रभात-वेला', 'कुमारसम्भव' और 'उमड़ती घटाएँ' के सभी पात्र उस काल के हैं जिसे सतयुग, त्रेता और द्वापर काल कहा जा सकता है। महाभारत तक का काल इन तीनों युगों में समाविष्ट है। इन उपन्यासों के पात्र उस काल के होने पर भी सब कुछ तो उनकी इच्छा के अनुकूल तो घटित नहीं हुआ है। उनको भी पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ी हैं, अपमान सहना पड़ा है। उनकी स्त्रियों का भी अपहरण हुआ है, उनके काल में भी अराजकता रही है। स्वयं 'प्रभातवेला' में जो कि सृष्टि का आदिकाल है, उसमें वृहस्पति तथा उसके अनुयायियों ने अनेकशः अराजकता का प्रदर्शन किया है। यही स्थिति 'कुमारसम्भव' के काल की भी रही है। उसमें तो प्रत्यक्ष रूप में कुमार को राक्षसों से युद्ध करना पड़ा है।

हम पहले ही लिख आए हैं कि स्व० श्री गुरुदत्त के सभी उपन्यासों में, चाहे वे किसी विधा और विधि-विधान के क्यों न हों, शुद्ध वैदिक दर्शन समाया हुआ है। उसमें आत्मा, परमात्मा तथा दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर सर्वाधिक चर्चा हुई है। उनका मानना है कि आत्मा परमात्मा का एक रूपमात्र है। आत्मा और परमात्मा में इतना ही अन्तर है कि परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी, सर्वशक्तिमान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और आत्मा उसका एक अंशमात्र होने से आंशिक ज्ञान और शक्ति का स्वामी होता है। अवतार भी उस शक्तिमान् सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा का एक अंशमात्र ही होता है। हाँ, उस मनुष्य में साधारण मनुष्यों की अपेक्षा परमात्मा का अंश कहीं अधिक होता है। किन्तु परमात्मा के समान पूर्णता उसमें नहीं होती। बस इतना ही कि वह सामान्य मनुष्यों से श्रेष्ठ, गुणसम्पन्न और सफल होता है।

इस तथ्य को यदि हम इन तीनों उपन्यासों के परिपेक्ष्य में देखेंगे तो हम इसे अक्षरशः चरितार्थ होता पाएँगे। चाहे वे 'प्रभात वेला' के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हों, अथवा 'कुमार सम्भव' के कुमार, शिव और उमा हों या फिर 'उमड़ती घटाएँ' के इन्द्र, शची, ब्रह्मा, नारद और शिव-पार्वती के शापित रूप विक्रम और देवयानी हों। मानव स्वभाव की दुर्बलता सबमें समान रूप से पाई जाती है।

अपने विषय के अनुसार वातावरण का निर्माण करना गुरुदत्त जी की अन्यतम विशेषता रही है। अपने उपन्यासों में उन्होंने बाह्य परिस्थितियों के विवरण, घटनाओं और घटनास्थलों के शब्द-चित्रण, परिस्थितियों के भँवर में पड़े पात्रों की ऊब के साथ-साथ उन्होंने पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व, विशेष विचारों द्वारा प्रभावित हो मानसिक परिवर्तन और कष्ट सहकर भी अपने आदर्शों का पालन करते हुए पात्रों को मिलने वाले आत्मतोष का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत संग्रह के तीनों उपन्यासों के पात्रों में, घटनास्थलों के विषय में अथवा परिस्थितियों के विषय में इस तथ्य को हम स्पष्टतया देख पाते हैं।

हम इस तथ्य को अनेक बार दोहरा चुके हैं कि स्व० श्री गुरुदत्त मात्र कथाकार ही नहीं थे अपितु वे विचारक, विश्लेषक, चिन्तक, धर्म के मर्म के ज्ञाता, उसे जानने-समझने-परखने वाले, शास्त्रों के प्रति पूर्ण आस्थावान् तथा नीतिज्ञ थे। उनका प्रत्येक उपन्यास स्वयं में कोई-न-कोई समस्या, व्यंग्य, विचारोत्तेजक सुझाव, विशेष दृष्टिकोण या मूल्यांकन सँजोए हुए होता है। 'प्रभात वेला' में उन्होंने सृष्टि-क्रम और तात्कालिक असामाजिकता का चित्रण कर पाठक को सावधान किया है कि यद्यपि यह विकृति आरम्भ से रही है किन्तु यह ग्राह्य नहीं है। यही बात 'कुमार सम्भव' में है और 'उमड़ती घटाएँ' में तो उन्होंने प्रत्येक पात्र को इसके लिए मानो तैयार किया हो। उनके उपन्यासों का प्रत्येक पात्र स्वयं में सम्पूर्ण होकर अपना सन्देश प्रसारित करता है, भले ही उसका सन्देश विकृत विचारों से परिपूर्ण ही क्यों न हो। किन्तु अपने स्थान पर वह उसकी उपयुक्तता का प्रतिपादन करता ही है। तभी तो उसका निराकरण किसी अन्य पात्र के लिए अथवा स्वयं नायक के लिए सम्भव हो पाता है और वह पाठकों को उसके समाधान की ओर लेता चलता है।

पुराणों की कथाओं पर वर्तमान युग में अनेक प्रश्नचिह्न लग गए हैं और लगाए जा रहे हैं। उन पर शंकाएँ की जा रही हैं। बिना पढ़े-समझे उन पर आक्षेप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए जा रहे हैं। स्व० श्री गुरुदत्त जी ने अपने पौराणिक उपन्यासों में उन सबका बुद्धि और तर्क से प्रत्याख्यान दिया है। अतः वे उपन्यास न केवल उपन्यास के रूप में अपितु प्रमाण ग्रन्थ के रूप में भी पाठकों के लिए स्मरणीय और संग्रहणीय बन पड़े हैं। यही कारण है कि उनका पाठक सदा ही उनके निष्कर्षों से अपनी सहमति व्यक्त करता हुआ उनके आगामी उपन्यास की प्रतीक्षा करता रहा है।

—अशोक कौशिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

पौराणिक उपन्यास शृंखला के इस खण्ड में तीन उपन्यास समाहित हैं। 'प्रभात वेला', 'कुमारसम्भव' और 'उमड़ती घटाएँ'। 'प्रभात वेला' सृष्टि के आदि काल पर आधारित है तो 'कुमारसम्भव' उसके कई सहस्र बाद के भारत के पौराणिक वातावरण पर आधारित उपन्यास है। और 'उमड़ती घटाएँ' तो उसके लाखों वर्ष बाद के आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त आदि के पौराणिक वातावरण और स्थिति पर आधारित है। यहाँ संक्षेप में उनके कथानक पर प्रकाश डाला जा रहा है।

प्रभात वेला

यह उपन्यास मानव जीवन की प्रभात वेला अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति वेला का है। आज से कई लाख वर्ष पूर्व की यह गाथा है। उस समय तक पृथिवी पर वनस्पतियाँ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हो चुकी थीं और इतर जीव-जन्तु भी अत्यधिक संख्या में उत्पन्न हो चुके थे। उस अवसर पर सोम और रोहिणी ने मिलकर सूर्य की रश्मियों से कलोल करना आरम्भ किया तो इस भूतल पर अनेक स्थानों पर पंचमहाभूतों में मन्थन आरम्भ हो गया। आदित्य ने रोहिणी से संयोग किया और सोम ने इस संयोग में सहायता की तो पृथिवी पर अण्डों के रूप में गर्भ स्थित हो गया।

ऐसे ही एक अण्डे से इस उपन्यास की नायिका, जिसे कालान्तर में महर्षि मरीचि ने प्रसूति नाम से अभिहित किया, उत्पन्न हुई थी। उस समय उस स्थान पर दिन का उषाकाल था। शनैः-शनैः अण्डा परिपक्व होता गया और यथासमय यह फूटा तो उसमें से हमारी नायिकारूपी प्राणी उत्पन्न हुआ। यह प्रथम नारी पूर्ण युवती के रूप में उत्पन्न हुई थी। उत्पन्न होने के उपरान्त वह कुछ देर तक तो भूमि पर पड़ी रही किन्तु जब उसको स्वच्छ वायु और प्रकाश का स्पर्श मिला तो कुछ ही क्षणों में वह श्वास लेने लगी और ऊष्णता के संयोग से उसमें स्फूर्ति का संचार होने लगा। कुछ ही क्षणों में वह भूमि पर से उठकर बैठ गई और फिर खड़ी हो गई। उसने अपने चारों ओर की हरी-भरी सृष्टि को निहारा और असमंजस में पड़ी निहारती रही। धीरे-धीरे उसने वनस्पतियों तथा अन्यान्य जीव-जन्तुओं से सम्पर्क स्थापित किया और उस वातावरण में वह सहज होने लगी।

तभी सहसा एक दिन उसको नदी में स्नान करते समय अपने ही जैसा दो पैर, दो हाथ, दो आँख, दो कान, नाक आदि-आदि वाला एक अन्य प्राणी नदी तट पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ा दिखाई दिया। यह दक्ष प्रजापति था। दोनों को एक-दूसरे को देखकर प्रसन्नता हुई। सांकेतिक भाषा में परिचय हुआ और फिर दक्ष उसको अपने साथ अपने स्थान अर्थात् पितामह के आश्रम में ले गया।

पृथिवी के अन्यत्र भागों पर भी इसी प्रकार की सृष्टि हो चुकी थी और वहाँ कुटुम्ब बन गए थे। एक बार ऐसे ही एक वनचर कुटुम्ब ने पितामह के आश्रम की सुखसम्पन्नता को देखकर उस पर आक्रमण कर दिया तो पितामह ने अपनी दिव्य अथवा यौगिक विद्या के प्रभाव से उनके आक्रमण को निरस्त कर दिया। किन्तु उनमें से कुछ वनचर पितामह की आज्ञा से आश्रम के बाहर अपने लिए स्थान बना कर रहने लगे और कुछ अपने स्थान को लौट गए। यहाँ से मानव का मानव से परस्पर संघर्ष आरम्भ हुआ।

कालान्तर में दक्ष और प्रसूति का विवाह हो गया। दक्ष ने तो जब प्रथम अवसर पर प्रसूति को देखा था तभी विचार कर लिया था कि वह उससे सन्तानोत्पत्ति करेगा, किन्तु इसके लिए पितामह की आज्ञा अनिवार्य थी। प्रसूति ने भी पति के रूप में दक्ष को ही चुना, इस प्रकार उनका परस्पर विवाह हो गया।

सृष्टि बढ़ती गई, मानव-मानव के सोच-विचार और आचरण की विभिन्नता भी प्रकट होने लगी। इसके साथ ही निर्वाह के लिए उत्पादन, व्यवस्था के लिए वर्णाश्रम का गठन, अनुशासन और प्रशासन का प्रबन्ध आदि किए गए। मानव स्वभावानुसार कुछ को यह व्यवस्था रुचिकर थी तो अन्य कुछ को यह अरुचिकर भी लगी। विचारों में विभिन्नता इसका मुख्य कारण था। वृहस्पति इस मतभिन्नता के जनक और प्रोत्साहक बने। वे वनचर बन गए और पितामह का स्थान तथा पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन्होंने आश्रम पर पुनः वनचरों की सहायता से आक्रमण भी किया, जो इस बार भी निष्फल सिद्ध हुआ।

सृष्टि का विस्तार होता गया, अनंग और आदित्यों का जन्म हुआ। कालान्तर में राज्य व्यवस्था लागू करने की बात आई तो वेन को राजा बनाया गया। वेन ने शासन तो अच्छा किया किन्तु इससे वह उच्छृंखल हो गया, उसका वध करके पृथु को राजा बनाया गया।

कथानक प्रगति करता गया और हिरण्यकशिपु और उसके पुत्र प्रह्लाद का काल आया। प्रह्लाद ने अपने पिता की आसुरी वृत्ति का विरोध किया और कालान्तर में विद्रोह भी कर दिया। उस समय नरसिंह को अवतार धारण कर हिरण्यकशिपु का वध करना पड़ा। प्रह्लाद के राज्याभिषेक पर उपन्यास की परिसमाप्ति होती है।

कुमारसम्भव

इस श्रृंखला के प्रथम उपन्यास 'प्रभात वेला' के उपरान्त की यह कहानी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक देवलोक, इन्द्रलोक और असुरलोक की स्थापना हो चुकी थी। तीनों लोकों में परस्पर सम्बन्ध भी थे। किसी में मधुर तो किसी में तिक्त। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि ब्रह्मलोक का राजा ब्रह्मा, कैलासलोक का शिव और इन्द्रलोक का राजा इन्द्र संज्ञा से ही विभूषित होता था।

कालिदास रचित काव्य 'कुमारसम्भव' की उत्पत्ति कथामात्र से ही इस उपन्यास की कथा और नाम का साम्य है अन्यथा इसका कथानक उससे आगे बढ़कर उसे कुमार स्कन्द के नाम से प्रतिष्ठापित कर उसके माध्यम से असुरों का संहार कर मानवी सृष्टि में शान्ति की स्थापना करने के लिए आगे बढ़ती जाती है।

उपन्यासकार ने हिमवान् की दो कन्याओं का उल्लेख किया है—गंगा और उमा का। गंगा शिव को प्राप्त कर उनसे सन्तानोत्पत्ति के लिए लालायित है। किन्तु उचित दिशा और उचित प्रकार का ज्ञान न होने के कारण यौवन के उन्माद में वह मार्ग से भटक जाती है। वह शिव को प्राप्त करने का यत्न तो करती है किन्तु प्राप्त न कर पाने के कारण अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए इन्द्रलोक में चली जाती है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि इन्द्रलोक में स्वच्छन्द यौनाचार होने पर भी सन्तानोत्पत्ति पर एक प्रकार से प्रतिबन्ध-सा था। उधर गंगा को पुत्र तो चाहिए था, किन्तु मात्र शिव से, किसी अन्य देवता से नहीं। अतः उसकी कामना इन्द्रलोक में पूर्ण नहीं हुई, तदपि क्योंकि वह अपने माता-पिता की अनुमति के बिना आई थी, अतः वापस पिता के पास जाने में संकोच करती थी, इस कारण वह इन्द्रलोक में ही रहती रही। हिमवान् स्वयं भी उसे वापस बुलाना नहीं चाहता था।

हिमवान् की कन्याओं में गंगा जितनी चंचल प्रकृति की थी उनकी कनिष्ठ कन्या उमा उतनी ही शान्त प्रकृति की थी। किन्तु ब्रह्मा को कुछ और ही स्वीकार था। वे उमा को योगिनी नहीं अपितु कैलासपति शिव की पत्नी और उनके पुत्र की माता के रूप में देखना चाहते थे। दोनों के सम्मिलन और परस्पर विवाह के लिए ब्रह्मा ने नारद को उपकरण बनाया। इससे नारद की प्रेरणा से उमा जहाँ शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगी वहाँ उन्होंने शिव को भी प्रेरित किया कि वे उमा का पाणिग्रहण कर अपने राज्य की सुव्यवस्था में सहायक बनें। इसके लिए उन्हें हिमवान् को भी पक्ष में करना पड़ा, क्योंकि इससे पूर्व कैलासलोक और हिमालय लोक में किसी कारण परस्पर एक प्रकार की शत्रुता थी।

नारद की प्रेरणा सफल सिद्ध हुई और ब्रह्मा की महत्त्वाकांक्षा भी फलीभूत हो गई। कैलासलोक और हिमालयलोक की पुरानी शत्रुता जब स्थायी मित्रता में परिणत हो गई और उमा तथा शिव का परस्पर विवाह हो गया।

किन्तु इससे ब्रह्मा की लालसा पूर्ण नहीं हुई। क्योंकि बहुत समय तक दोनों के कोई सन्तान नहीं हुई। इसका मुख्य कारण शिव की अनिच्छा थी। शिव सन्तानो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्पत्ति के लिए इच्छुक नहीं थे। उमा को सन्तान की चाह थी। बिना गर्भ धारण किए सहसा उनको एक पुत्र की प्राप्ति हो गई। उमा और शिव वृषभ वाहन पर भ्रमण कर रहे थे कि उन्हें धरती पर एक शिशु एकाकी पड़ा दिखाई दिया। उन्होंने वाहन उतारा और शिशु का कोई परिचारक अथवा अभिभावक न देख उसे अपने साथ कैलास ले आए। उसका नाम सुकेश रखा गया।

कालान्तर में गंगा के परिताप से प्रसन्न होकर शिवजी ने उसको ग्रहण कर लिया और उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह कुमार कहलाया तथा कालान्तर में वही स्कन्द नाम से विख्यात हुआ।

यों कथा आगे बढ़ती है। सगर के पुत्रों की कथा के साथ-साथ भगीरथ की तपस्या का प्रसंग भी सम्मिलित है। असुर सभ्यता के विकास की पूर्ण कहानी इस उपन्यास में चित्रित की गई है। न केवल इतना अपितु देवासुर संग्राम का भी इसमें विस्तार से वर्णन किया गया है। देवासुर-सभ्यता और संस्कृति का उल्लेख भी किया गया है। कुमार के पराक्रम से असुरों की पराजय होती है।

असुरों के गुरु शुक्राचार्य, बह्मा के कहने पर देवलोक में ही रह जाते हैं। ब्रह्मा उनसे नीति ग्रन्थ की रचना करवाते हैं। विश्व संचालन की क्या व्यवस्था हो, इसके लिए वाराणसी में वृहत् सभा का आयोजन किया गया था। वहीं पर शुक्रनीति के परिचलन की बात हुई। वहीं से इस प्रकार की सार्वभौम सभाएँ करने की प्रथा का भी परिचलन हुआ।

कालान्तर में सुकेश को उसके माता-पिता अपने पास लंका में ले जाते हैं। वहाँ उसकी सन्तान खूब फलती-फूलती है। सुकेश के परलोक सिधारने के उपरान्त उसकी सन्तति, जो असुर सभ्यता और संस्कृति की उपासक थी, विश्व में तहलका मचाने लगती है। प्रजा त्राहि-त्राहि करती हुई शिव की शरण में जाती है किन्तु तब तक शिव समाधिस्थ हो चुके होते हैं।

त्रस्त प्रजा कुमार की शरण में जाती है। कुमार ने लंका पर आक्रमण किया और वहाँ की असुर संस्कृति को पराजित कर वहाँ पर शासन-व्यवस्था स्थापित की।

उमड़ती घटाएँ

'उमड़ती घटाएँ' में कश्मीर पर उमड़ने वाली उन घटाओं का चित्रण किया गया है जो समय-समय पर इसकी संस्कृति और सभ्यता को आत्मसात् करने की अपेक्षा नष्ट करती रही हैं। इसकी कथा का आधार उपन्यासकार की भूमिका के आधार पर पद्मपुराण, महाभारत और राजतरंगिणी हैं।

उपन्यास की नायिका देवयानी है। किन्तु यह वह देवयानी नहीं जिसकी कथा 'कच और देवयानी' के रूप में पुराण-प्रसिद्ध है। वह देवयानी शुक्राचार्य की कन्या थी। यह देवयानी कश्मीर के राजा देवनाम की कन्या है। उपन्यास के अन्त में ब्रह्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जो रहस्योद्घाटन किया है उसमें उन्होंने बताया है कि इस उपन्यास के नायक-नायिका विक्रम और देवयानी स्वयं शापित शिव और पार्वती हैं। अस्तु।

किन्तु मुख्य कथा नहुष पर केन्द्रित होने से वह इस उपन्यास का खलनायक है। कश्मीर के राजा देवनाम की राजधानी चक्रधरपुर है। देवनाम की केवल देवयानी ही एक संतति है। इसका कथाकाल अन्तिम महाप्लावन के सहस्रों वर्षों के बाद का है। उस समय चन्द्रवंशियों ने कामभोज, ब्रह्मावर्त आदि पर अधिकार कर लिया था। कश्मीर का राजा देवनाम आर्य था। देवनाम की कन्या देवयानी जब युवा हुई तो उसके विवाह की चिन्ता होने लगी। देवयानी स्वप्न में शिव को अपने पति के रूप में देखती थी। उसका स्वप्न में शिव के प्रति लगाव हो गया था। नारद के प्रयत्न से उसने यह तो स्वीकार कर लिया कि शिव अब जीवित नहीं है तो वह अपने किसी मनपसन्द युवक से विवाह कर लेगी। इसके लिए स्वयंवर की रचना की गई।

स्वयंवर में नारद की योजनानुसार देवयानी ने विक्रम का वरण कर लिया।

उधर नहुष तो येन-केन-प्रकारेण राज्यसुख चाहता था। जब उसको विदित हुआ कि देवलोक के निवासी आलसी, प्रमादी और कामी हैं तो उसको देवलोक पर अधिकार करना सरल प्रतीत हुआ। नहुष देवलोक में प्रविष्ट हुआ, वहाँ का वातावरण देखा, अपने सैनिकों को देवलोक बुलाकर उन्हें देवांगनाओं का लालच दिखाया, स्वयं इन्द्र को प्रसन्न कर उसका सेवक बन गया और एक दिन अवसर पाकर उसने इन्द्र और शची को बन्दी बनाकर देवलोक पर अधिकार कर लिया।

नहुष के देवलोक पर अधिकार कर लेने के उपरान्त नारद की चिन्ता बढ़ गई। अतः वे इन्द्र सहित इन्द्रलोक को नहुष से मुक्त कराने के लिए प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार अनेक उपकथाओं और प्रसंगों की सृष्टि उपन्यास में हुई। मुख्य कथा देवयानी और विक्रम द्वारा इन्द्रलोक को मुक्त करने पर केन्द्रित रही। उधर जब नहुष को पता चला कि इन्द्रलोक की सारी व्यवस्था केवल इन्द्र के हाथ में ही थी और वहाँ पर स्थित जितने भी उपकरण हैं, जिनके माध्यम से इन्द्रलोक रमणीय, सुख-सुविधा-सम्पन्न और धन-धान्ययुक्त है तो उसको चिन्ता सताने लगी। नहुष को बताया गया कि इस व्यवस्था को या तो इन्द्र तथा उसकी पत्नी शची जानती है या फिर ब्रह्मा। नहुष ने ब्रह्मा को वश में करने का यत्न किया, किन्तु असफल रहा तब उसको शची का स्मरण हुआ। उसने शची को सन्देश भेजा कि वह तो महारानी बनने के योग्य है, अतः वह नहुष की महारानी बनकर इन्द्र-लोक पर राज करे। शची ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया।

नारद और देवयानी के प्रयत्नों से देवलोक में देवताओं में चेतना आने लगी और वे विद्रोह करने लगे। इसमें कश्मीर से लाकर वहाँ बसाए गए व्यापारी के रूप में छद्म सैनिकों की सहायता का बहुत बड़ा योगदान था। अन्यथा देवता तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविधाभोगी होने के कारण अपनी प्रेयसियों और पत्नियों तक को खो बैठे थे।

यदि नहुष चारों ओर से निराश हो गया तो देवता गण भी यद्यपि विद्रोह करने लगे थे तदपि मनोबल उनका भी टूट गया था। वर्षों की दासता से उनका न केवल नैतिक पतन हुआ था अपितु उनकी शक्ति क्षीण हो गई थी। इस अवसर पर नहुष के महामात्य ने उसको समन्वय का सुझाव दिया और नहुष की बुद्धि में वह बैठ गया तो उसने घोषणा कर दी कि भविष्य में देवगणों को दास नहीं समझा जाएगा और शासन में उनको अधिकार दिया जाएगा। इसका परिणाम नहुष के मनोनुकूल हुआ। तभी उसने कुछ ऋषियों को अपने पक्ष में कर लिया।

इस प्रसंग में उपन्यास में ऋषियों का अध:पतन चित्रित किया गया है। यहाँ तक कि वे नहुष की मनोकामना पूर्ण करने के लिए उसके कथनानुसार ब्रह्मा को देवलोक में वापस लाने के लिए गए, किन्तु ब्रह्मा नहीं आए। तब नहुष ने उनसे पराविद्या सीखने के लिए कहा तो नारद को इसका ज्ञान हो गया। ऋषियों के ब्रह्मा के पास पहुँचने से पूर्व उसने पहुँचकर ब्रह्मा को सावधान कर दिया। किन्तु ब्रह्मा के मुख से उपन्यासकार ने कहलवाया है कि वह क्यों न नहुष को इस विद्या का ज्ञान कराए? आखिर इस विद्या का उसके साथ ही लोप तो नहीं हो जाना चाहिए?

नारद की योजना निरन्तर चालू है। अन्त में उसने नहुष को किसी प्रकार यह विश्वास दिला दिया कि शची अर्थात् इन्द्राणी उससे विवाह करने के लिए उद्यत है। जबकि शची को नारद की इस योजना का क-ख-ग भी विदित नहीं है। नारद की योजनानुसार शची की शर्त है कि नहुष शची को लेने के लिए एक ऐसे अनुपम और अनूठे रथ पर आरूढ़ होकर आए जैसा आज तक न किसी ने देखा और न सुना।

नहुष के बुद्धिविहीन परामर्शदाताओं ने नारद की योजनानुसार उसको परामर्श दिया कि नहुष ऐसे विचित्र रथ पर आरूढ़ होकर जाय कि जिसको हाथी, घोड़े आदि भारवाही पशु नहीं अपितु ऋषिगण खींचकर ले जाएँ। नहुष के लिए ऋषियों की कोई महत्ता नहीं थी, और ऋषि भी उसकी दासता में रहना स्वीकार कर अपने महत्त्व को खो चुके थे। उन्हें नहुष की आज्ञा को शिरोधार्य करना पड़ा।

किन्तु नारद के मन में तो कुछ और ही था। उसने दो ऋषियों को विद्रोह के लिए तैयार कर लिया। जिस स्थान और समय पर विद्रोह होना निर्धारित किया गया, उस समय और स्थान पर तथा समस्त देवलोक में नारद ने विद्रोह और गान्धार दमन की योजना पूर्ण कर ली। देवलोक में गान्धारों की संख्या कम करने और उन्हें निरुत्साहित करने का कार्य नारद की योजनानुसार इससे पहले ही पूर्ण हो गया था, अत: जब नहुष ऋषियों द्वारा चालित रथ पर आरूढ़ होकर चला और उनका रथ मुख्य चौक पर पहुँचा कि ऋषि जनक ने विद्रोह कर दिया और संचालक का उस पर चाबुक पड़ना था कि देवगण उस पर टूट पड़े। उनका मुख्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्य तो नहुष था। इस मारकाट में नहुष के मांस के टुकड़े तक का पता नहीं चला।

इस प्रकार आतताई का अन्त हो गया।

अब इन्द्र और शची को देवलोक में पुनः स्थापित करना था। दोनों भिन्न स्थानों पर बन्दी थे। तब तक देवयानी इन्द्रलोक की शासिका बन गई और उसके प्रयत्न से नारद की योजनानुसार इन्द्र को छुड़ाने का यत्न किया गया। उससे पूर्व किसी प्रकार पितामह ब्रह्मा को देवलोक में आकर रहने के लिए राजी कर लिया गया और वे भी तभी देवलोक में आए जब उनको यह विश्वास हो गया कि देवयानी पूर्वजन्म की पार्वती और विक्रम पूर्व जन्म का शिव है।

—अशोक कौशिक

169882

७४
२२८·६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभात वेला

□

यह प्रगति का युग है। हमने प्रगति तो की है किन्तु केवल भौतिक क्षेत्र में। नैतिकता और आध्यात्मिकता में हमारा ह्रास हुआ है। उचितानुचित, कर्तव्याकर्तव्य की पहचान को हम खो बैठे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'प्रभात वेला' का कथानक 'हम क्या थे' से सम्बन्धित है। आदि प्राणि-सृष्टि का यह औपन्यासिक वर्णन है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

हमारा वैदिक तथा पौराणिक साहित्य हमें अपने अतीत से परिचित कराता है। किन्तु ज्यों-ज्यों हम दासता की जंजीर में जकड़ते गए, अपने अतीत से कटते गए। और अब जब हम स्वतन्त्र हैं तब कदाचित् इस सबकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती कि हम यह जानें कि हम क्या थे। क्योंकि यह प्रगति का युग है। हमने प्रगति तो की है, किन्तु केवल भौतिक क्षेत्र में। नैतिकता और आध्यात्मिकता में हमारा ह्रास हुआ है। उचितानुचित, कर्तव्याकर्तव्य की पहचान को हम खो बैठे हैं। यह ह्रास भारतीयों का ही हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। ह्रास तो मानवता का हुआ है। किसी कवि की यह चिन्ता समीचीन ही है—

हम क्या थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी ?

प्रस्तुत उपन्यास 'प्रभात वेला' का कथानक 'हम क्या थे' से सम्बन्धित है। आदि प्राणि-सृष्टि का यह औपन्यासिक वर्णन है। ज्ञान और विज्ञान हमें बताता है कि आरम्भ में यह पृथिवी कैसी थी और इसमें कौन निवास करता था। हमारे ग्रन्थ हमें बताते हैं कि मानव से पूर्व वन्य पशु और पक्षियों की रचना हुई। कालान्तर में मानव की सृष्टि हो जाने के उपरान्त अधिकांश वन्य प्राणियों का लोप होता गया, किन्तु सर्वथा लोप होना तो प्रलय में ही सम्भव है।

हमारा साहित्य बताता है कि आरम्भिक सृष्टि अमैथुनीय थी। इसका कारण और प्रमाण भी हमारे साहित्य में विस्तार से प्राप्त है। उसके आधार पर कहा जाता है कि आदि मनुष्य अण्डज था। उस अण्डे का निर्माण किस प्रकार हुआ और फिर उसमें किस प्रकार मनुष्य प्राणी का बीजारोपण हुआ तथा आरम्भिक मनुष्य किस आकार-प्रकार का उत्पन्न हुआ, यह भी सप्रमाण हमारे शास्त्रों में वर्णित है।

पौराणिक साहित्य वेदों का ही विस्तृत और सहज ग्राह्य रूप है। किन्तु वेद क्या हैं ? उनकी रचना किस प्रकार हुई ? उनके रचयिता कौन थे ? वे किस भाषा और लिपि में रचे गए ? क्या वैदिक भाषा जनसामान्य की भाषा रही थी ? भाषा और लिपि का आविष्कार कब, कैसे और कहाँ हुआ तथा किसने यह आविष्कार किया ? यह सब इन पुराणों में पृथक् से उल्लिखित नहीं है तदपि इसके संकेत उनमें प्राप्त हैं।

ये और इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रश्न हैं जो चिन्तनपरक तथा अध्ययनशील मनुष्य के मस्तिष्क को कुरेदते रहते हैं। ऐसे जिज्ञासु पाठकों को पुराणों का गहन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन करना चाहिए, वेदों का भी कर सकें तो अधिक उत्तम होगा।

आत्मा और परमात्मा क्या हैं ? उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है ? वे सजीव हैं अथवा निर्जीव ? उनका निवास कहाँ है ? यह भी उसी प्रकार के प्रश्न हैं जिनका समाधान आज का मनीषि चाहता है।

हमारे विद्वानों ने इन विषयों पर गम्भीरता से विचार किया, मन्थन किया, मनन किया, शोध किया, प्रयोग किए, तब कहीं जाकर उन्होंने कुछ सिद्धान्त सुनिश्चित किए और फिर उस ज्ञान को सर्वत्र प्रकाशित करने का सुकार्य किया। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने वेद संहिताओं की रचना की। कालान्तर में व्यास पीठ के अधीक्षक व्यासों ने उनके आधार पर पुराणों को रचा। व्यास पीठ की यह परम्परा महाभारत, जो उस समय 'जय काव्य' माना जाता था, तक ही प्रचलित मिलती है।

प्रभात वेला यद्यपि उपन्यास है; किन्तु इसमें निहित ज्ञान, उपन्यास से कहीं अधिक अतुलनीय है। यों समझना चाहिए कि उपन्यास के माध्यस से विद्वान् लेखक ने सृष्टि के आरम्भ की सारी प्रक्रिया इस उपन्यास में वर्णन कर दी है।

उपन्यासकार स्व० श्री गुरुदत्त, मात्र उपन्यासकार नहीं थे। वे चिन्तक, शोधकर्ता, अध्ययनशील अध्यापक एवं मनीषि थे। उन जैसा शुद्ध-बुद्ध पण्डित ही ऐसे जटिल और दुरूह विषय को औपन्यासिक रूप में प्रस्तुत कर सकता था, कोई अन्य नहीं। हिन्दी के पाठकों का यह सौभाग्य है कि स्व० गुरुदत्त की लेखनी का चमत्कार उनके लिए पुस्तक रूप में सुलभ है।

—अशोक कौशिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

बीहड़ वन में एक विशाल वट वृक्ष की छाया में एक पर्ण कुटी बनी थी। लकड़ी के खम्भों के साथ वृक्षों की सूखी डालें बाँधकर उन पर किसी वृक्ष के बड़े-बड़े पत्तों को रखकर यह कुटी बनाई गई थी।

कुटी के तीन ओर वृक्ष की शाखाओं से बनी दीवारें थीं और एक ओर द्वार। चार मोटे-मोटे वृक्षों के तने खम्भों के रूप में चार कोनों पर गढ़े थे। हरी लताओं से वृक्षों की सूखी डालियाँ इनके साथ बँधी हुई थीं। इसी प्रकार छत बनी थी। चारों खम्भे चार शाखाओं से बँधे थे और उनपर छोटी-छोटी शाखाओं का जाल था। इस जाल पर पत्ते रखे हुए थे। पत्तों पर भी लताओं से बँधी वृक्षों की शाखाएँ रखी थीं।

कुटिया का द्वार शाखाओं की जाली का-सा बना था। दीवारों के समान ही यह द्वार भी बनाया गया था। दीवारों और द्वार की ओर से हवा भीतर आती-जाती थी। छत पर पत्तों के कारण और ऊपर घने वृक्ष की छाँह होने के कारण धूप तथा वर्षा का जल भीतर नहीं जा पाता था।

कुटी की पीठ वृक्ष के मोटे तने के साथ लगती थी और द्वार वृक्ष के नीचे एक साफ सपाट स्थान की ओर था। द्वार की जाली उठाकर एक ओर की जा सकती थी और खम्भों के साथ टिका देने से द्वार बन्द हो जाता था।

कुटिया वन्य जन्तुओं को भीतर आने से रोकने के लिए बनी थी। उस स्थान का जलवायु ऐसा प्रतीत होता था कि वहाँ न तो शीत और न ही गर्मी असह्य होती थी। अतः कुटिया में रहने वाले को कुटिया में खुली हवा के आने-जाने से कष्ट नहीं होता था।

वृक्ष, जिसके नीचे यह कुटिया बनी थी, बहुत बड़ा था। उसके नीचे की भूमि समतल थी। इस समतल भूमि पर दस-बारह अन्य ऐसी ही कुटिया बन सकती थीं।

प्रातःकाल का समय था। वृक्ष पर बने घोंसलों में रहने वाले सैंकड़ों पक्षी उषा काल का प्रकाश देख पर फड़फड़ाने तथा चीं-चीं करने लगे थे।

कुटी के भीतर भी सूखे पत्तों की सरसराहट एवं चड़चड़ाहट का शब्द होने लगा था। पौ फटने ही वाली थी कि कुटी के द्वार को भीतर से कोई धकेलकर एक ओर करने लगा। द्वार की जाली एक ओर हुई तो भीतर से एक सर्वथा नग्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन करना चाहिए, वेदों का भी कर सकें तो अधिक उत्तम होगा।

आत्मा और परमात्मा क्या हैं ? उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है ? वे सजीव हैं अथवा निर्जीव ? उनका निवास कहाँ है ? यह भी उसी प्रकार के प्रश्न हैं जिनका समाधान आज का मनीषि चाहता है।

हमारे विद्वानों ने इन विषयों पर गम्भीरता से विचार किया, मन्थन किया, मनन किया, शोध किया, प्रयोग किए, तब कहीं जाकर उन्होंने कुछ सिद्धान्त सुनिश्चित किए और फिर उस ज्ञान को सर्वत्र प्रकाशित करने का सुकार्य किया। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने वेद संहिताओं की रचना की। कालान्तर में व्यास पीठ के अधीक्षक व्यासों ने उनके आधार पर पुराणों को रचा। व्यास पीठ की यह परम्परा महाभारत, जो उस समय 'जय काव्य' माना जाता था, तक ही प्रचलित मिलती है।

प्रभात वेला यद्यपि उपन्यास है; किन्तु इसमें निहित ज्ञान, उपन्यास से कहीं अधिक अतुलनीय है। यों समझना चाहिए कि उपन्यास के माध्यस से विद्वान् लेखक ने सृष्टि के आरम्भ की सारी प्रक्रिया इस उपन्यास में वर्णन कर दी है।

उपन्यासकार स्व० श्री गुरुदत्त, मात्र उपन्यासकार नहीं थे। वे चिन्तक, शोधकर्ता, अध्ययनशील अध्यापक एवं मनीषि थे। उन जैसा शुद्ध-बुद्ध पण्डित ही ऐसे जटिल और दुरूह विषय को औपन्यासिक रूप में प्रस्तुत कर सकता था, कोई अन्य नहीं। हिन्दी के पाठकों का यह सौभाग्य है कि स्व० गुरुदत्त की लेखनी का चमत्कार उनके लिए पुस्तक रूप में सुलभ है।

—अशोक कौशिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

बीहड़ वन में एक विशाल वट वृक्ष की छाया में एक पर्ण कुटी बनी थी। लकड़ी के खम्भों के साथ वृक्षों की सूखी डालें बाँधकर उन पर किसी वृक्ष के बड़े-बड़े पत्तों को रखकर यह कुटी बनाई गई थी।

कुटी के तीन ओर वृक्ष की शाखाओं से बनी दीवारें थीं और एक ओर द्वार। चार मोटे-मोटे वृक्षों के तने खम्भों के रूप में चार कोनों पर गढ़े थे। हरी लताओं से वृक्षों की सूखी डालियाँ इनके साथ बँधी हुई थीं। इसी प्रकार छत बनी थी। चारों खम्भे चार शाखाओं से बँधे थे और उनपर छोटी-छोटी शाखाओं का जाल था। इस जाल पर पत्ते रखे हुए थे। पत्तों पर भी लताओं से बँधी वृक्षों की शाखाएँ रखी थीं।

कुटिया का द्वार शाखाओं की जाली का-सा बना था। दीवारों के समान ही यह द्वार भी बनाया गया था। दीवारों और द्वार की ओर से हवा भीतर आती-जाती थी। छत पर पत्तों के कारण और ऊपर घने वृक्ष की छाँह होने के कारण धूप तथा वर्षा का जल भीतर नहीं जा पाता था।

कुटी की पीठ वृक्ष के मोटे तने के साथ लगती थी और द्वार वृक्ष के नीचे एक साफ सपाट स्थान की ओर था। द्वार की जाली उठाकर एक ओर की जा सकती थी और खम्भों के साथ टिका देने से द्वार बन्द हो जाता था।

कुटिया वन्य जन्तुओं को भीतर आने से रोकने के लिए बनी थी। उस स्थान का जलवायु ऐसा प्रतीत होता था कि वहाँ न तो शीत और न ही गर्मी असह्य होती थी। अतः कुटिया में रहने वाले को कुटिया में खुली हवा के आने-जाने से कष्ट नहीं होता था।

वृक्ष, जिसके नीचे यह कुटिया बनी थी, बहुत बड़ा था। उसके नीचे की भूमि समतल थी। इस समतल भूमि पर दस-बारह अन्य ऐसी ही कुटिया बन सकती थीं।

प्रातःकाल का समय था। वृक्ष पर बने घोंसलों में रहने वाले सैंकड़ों पक्षी उषा काल का प्रकाश देख पर फड़फड़ाने तथा चीं-चीं करने लगे थे।

कुटी के भीतर भी सूखे पत्तों की सरसराहट एवं चड़चड़ाहट का शब्द होने लगा था। पौ फटने ही वाली थी कि कुटी के द्वार को भीतर से कोई धकेलकर एक ओर करने लगा। द्वार की ज़ाली एक ओर हुई तो भीतर से एक सर्वथा नग्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवती निकल आई और कुटी के बाहर खुले स्थान पर खड़ी हो सुस्ती मिटाने के लिए अंगड़ाइयाँ लेने लगी। शरीर से सर्वथा नग्न, सिर के बाल जटाओं में कंधों तक लटकते हुए। वह अभी वृक्ष के नीचे ही खड़ी थी कि उसका ध्यान घोंसलों में चहचहाते पक्षियों के कोलाहल की ओर चला गया। इधर ध्यान जाते ही उसकी आँखों में चमक दौड़ गई और उसने मुख गोल कर सीटी बजानी आरम्भ कर दी।

घोंसलों में से पहले एक, फिर कई पक्षी गर्दन निकाल इस सीटी बजाने वाली की ओर देखने लगे; तदनन्तर एक-एक कर कई पक्षी उसकी ओर लपके और कंधों और हाथों पर आ बैठे और लगे चीं-चीं कर अपने मन का आह्लाद प्रकट करने।

ऐसा प्रतीत होता था कि इस युवती का इन पक्षियों से चिरकाल का परिचय है। वह आने वाले पक्षियों को देख-देखकर हँसती थी और उसकी हँसी की आवाज सुन पक्षी चीं-चीं करते हुए उसके चारों ओर उड़ने लगे थे। जो उसके सिर, कंधों पर बैठे थे, वे प्रसन्नता से नाचते प्रतीत होते थे और अन्य उसके सिर पर तथा उसके चारों ओर मँडराते फिरते थे।

वह जब भली-भाँति सचेत हो गई तो जंगल के बाहर की ओर चल पड़ी। वट वृक्ष के नीचे की खुली भूमि पार कर छोटे-मोटे वृक्षों के बीच से निकलती हुई वह चली जा रही थी। भूमि ढलान पर आ गई थी। वृक्ष समाप्त हो गए थे और सामने एक स्वच्छ जल वाली नदी कल-कल शब्द करती हुई बह रही थी।

युवती नदी के तट पर आ खड़ी हुई। हाथ हिला उसने सिर पर मँडराते पक्षियों को उड़ा दिया। पक्षी कुछ देर तक उसके सिर पर हवा में मँडराते रहे और फिर एक-एक दो-दो कर उड़ गए।

इस प्रकार अपने सखा-सखियों से अवकाश पाकर वह युवती नदी तट पर बैठ गई। कुछ देर तक बहते जल पर उठने वाली तरंगों को देखती रही; तदनन्तर उसने पाँव पसार नदी के जल में डाल दिए। शीतल जल के पाँव को लगने से उसके पूर्ण शरीर में कँपकँपी हुई और उसकी हँसी निकली तो मुक्ता समान श्वेत दाँत दिखाई देने लगे।

इस समय नदी के पार प्रकाश बढ़ने लगा था। पूर्व दिशा का आकाश रक्त वर्ण हो गया था। नदी के पार दूर तक रेतीला मैदान था और क्षितिज स्पष्ट दिखाई दे रहा था। क्षितिज पर आकाश में लालिमा फैलती दिखाई दी तो वह प्रसन्नता से हाथ उठाकर जोर से 'ह' का शब्द कर उठी। वह खड़ी हो गई और बढ़ रही लाली की ओर देखने लगी। उसकी आँखों में उत्सुकता थी। मुख पर आश्चर्य के लक्षण थे और विस्मय में खुले अधर कुछ बोलने को उद्यत प्रतीत होते थे।

क्षितिज पर प्रकाश पुंज गोलाकार भास्कर उगता दिखाई देने लगा। प्रथम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रकाश बिन्दु प्रकट हुआ और क्षण-क्षण में वह बढ़ने लगा। भूमि के पीछे से एक थाली समान प्रकाश पुंज आकाश में उठने लगा।

जब भास्कर पूर्ण निकल आया तो नदी के तट पर खड़ी युवती ने एक आह्लाद से भरा घोष किया। वह 'ओ-ओं' करती हुई नदी में कूद पड़ी। एक डुबकी ली और जल में से सिर निकालकर तैरने लगी।

कुछ देर तक तैरने के उपरान्त वह जल में खड़ी हो गई और शरीर के प्रत्येक अंग को मल-मलकर साफ करने लगी। दिन-भर घूमने और रात पत्तों पर सोने से शरीर पर चढ़ी मैल धो-धोकर उतारने लगी। वह शरीर के अंग-अंग को मल-मलकर जल से धोती थी और उसको उजला एवं सुन्दर देख प्रसन्नता अनुभव करती प्रतीत होती थी। उसे अपना शरीर वृक्ष के साथी पक्षियों से अधिक भला लग रहा था।

जल से शरीर धुल गया और वह अम्बर की भाँति निर्मल, प्रभात की भाँति उज्ज्वल और कमल की भाँति प्रफुल्लित दिखाई देने लगी। शरीर को रुचिपूर्वक साफ कर वह मुख धोने लगी। मुख धोती हुई वह इसका प्रतिबिम्ब जल में देखती जाती थी और इसे आकाश में उठ रहे भगवान् सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में देख-देख प्रसन्नता अनुभव करती थी। यह प्रसन्नता उसकी आँखों में बढ़ रही चमक और मुख पर बन रही रेखाओं से प्रकट हो रही थी।

अब सिर के बालों की बारी आई। वे जल में डुबकी लगाते समय भीग गए थे। सिर की लटों से जल टपक रहा था। उसने हाथ से दबा-दबाकर लटों में समाया जल निचोड़ दिया; तदनन्तर जटाओं को मुख पर से हटा पीठ की ओर कर सीधी हो एक क्षण तक सूर्य की ओर देखकर घूमी। इस सब समय में उसका मुख नदी के उस तट की ओर था जिधर से सूर्य निकल रहा था और उसकी पीठ उस ओर थी जिधर जंगल था और जिधर से वह नदी पर आई थी।

ज्यों ही वह नदी से बाहर निकलने के लिए घूमी, उसकी दृष्टि उसी तट पर खड़े एक प्राणी पर चली गई। वह उसे देख डर गई थी। उस प्राणी के सिर पर, मुख पर और होंठों से ऊपर घने बाल उग रहे थे। डरकर उसने जल में डुबकी लगा दी और जलमग्न हो गई। जब उसने सिर पुनः जल से बाहर किया और तट की ओर देखा तो उसे वह प्राणी अभी भी खड़ा दिखाई दिया।

वह एक लम्बी दाढ़ी, मूँछों और जटाओं वाला पुरुष था। उसकी कमर पर मृग चर्म लपेटा हुआ था और हाथ में वृक्ष की डाल का दंड था। ऐसा जीव उसने अभी तक नहीं देखा था। वह वन पशु तो नहीं था। सब वन पशु हाथ-पाँव के बल खड़े होते और चलते थे। वे पाँवों पर खड़े नहीं हो सकते थे। साथ ही प्रायः सब जन्तु उससे डरकर भाग जाया करते थे। यह तो मुग्ध हो उसकी ओर देखकर मुस्करा रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवती निकल आई और कुटी के बाहर खुले स्थान पर खड़ी हो सुस्ती मिटाने के लिए अंगड़ाइयाँ लेने लगी। शरीर से सर्वथा नग्न, सिर के बाल जटाओं में कंधों तक लटकते हुए। वह अभी वृक्ष के नीचे ही खड़ी थी कि उसका ध्यान घोंसलों में चहचहाते पक्षियों के कोलाहल की ओर चला गया। इधर ध्यान जाते ही उसकी आँखों में चमक दौड़ गई और उसने मुख गोल कर सीटी बजानी आरम्भ कर दी।

घोंसलों में से पहले एक, फिर कई पक्षी गर्दन निकाल इस सीटी बजाने वाली की ओर देखने लगे; तदनन्तर एक-एक कर कई पक्षी उसकी ओर लपके और कंधों और हाथों पर आ बैठे और लगे चीं-चीं कर अपने मन का आह्लाद प्रकट करने।

ऐसा प्रतीत होता था कि इस युवती का इन पक्षियों से चिरकाल का परिचय है। वह आने वाले पक्षियों को देख-देखकर हँसती थी और उसकी हँसी की आवाज सुन पक्षी चीं-चीं करते हुए उसके चारों ओर उड़ने लगे थे। जो उसके सिर, कंधों पर बैठे थे, वे प्रसन्नता से नाचते प्रतीत होते थे और अन्य उसके सिर पर तथा उसके चारों ओर मँडराते फिरते थे।

वह जब भली-भाँति सचेत हो गई तो जंगल के बाहर की ओर चल पड़ी। वट वृक्ष के नीचे की खुली भूमि पार कर छोटे-मोटे वृक्षों के बीच से निकलती हुई वह चली जा रही थी। भूमि ढलान पर आ गई थी। वृक्ष समाप्त हो गए थे और सामने एक स्वच्छ जल वाली नदी कल-कल शब्द करती हुई बह रही थी।

युवती नदी के तट पर आ खड़ी हुई। हाथ हिला उसने सिर पर मँडराते पक्षियों को उड़ा दिया। पक्षी कुछ देर तक उसके सिर पर हवा में मँडराते रहे और फिर एक-एक दो-दो कर उड़ गए।

इस प्रकार अपने सखा-सखियों से अवकाश पाकर वह युवती नदी तट पर बैठ गई। कुछ देर तक बहते जल पर उठने वाली तरंगों को देखती रही; तदनन्तर उसने पाँव पसार नदी के जल में डाल दिए। शीतल जल के पाँव को लगने से उसके पूर्ण शरीर में कँपकँपी हुई और उसकी हँसी निकली तो मुक्ता समान श्वेत दाँत दिखाई देने लगे।

इस समय नदी के पार प्रकाश बढ़ने लगा था। पूर्व दिशा का आकाश रक्त वर्ण हो गया था। नदी के पार दूर तक रेतीला मैदान था और क्षितिज स्पष्ट दिखाई दे रहा था। क्षितिज पर आकाश में लालिमा फैलती दिखाई दी तो वह प्रसन्नता से हाथ उठाकर जोर से 'ह' का शब्द कर उठी। वह खड़ी हो गई और बढ़ रही लाली की ओर देखने लगी। उसकी आँखों में उत्सुकता थी। मुख पर आश्चर्य के लक्षण थे और विस्मय में खुले अधर कुछ बोलने को उद्यत प्रतीत होते थे।

क्षितिज पर प्रकाश पुंज गोलाकार भास्कर उगता दिखाई देने लगा। प्रथम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रकाश बिन्दु प्रकट हुआ और क्षण-क्षण में वह बढ़ने लगा। भूमि के पीछे से एक थाली समान प्रकाश पुंज आकाश में उठने लगा।

जब भास्कर पूर्ण निकल आया तो नदी के तट पर खड़ी युवती ने एक आह्लाद से भरा घोष किया। वह 'ओ-ओ' करती हुई नदी में कूद पड़ी। एक डुबकी ली और जल में से सिर निकालकर तैरने लगी।

कुछ देर तक तैरने के उपरान्त वह जल में खड़ी हो गई और शरीर के प्रत्येक अंग को मल-मलकर साफ करने लगी। दिन-भर घूमने और रात पत्तों पर सोने से शरीर पर चढ़ी मैल धो-धोकर उतारने लगी। वह शरीर के अंग-अंग को मल-मलकर जल से धोती थी और उसको उजला एवं सुन्दर देख प्रसन्नता अनुभव करती प्रतीत होती थी। उसे अपना शरीर वृक्ष के साथी पक्षियों से अधिक भला लग रहा था।

जल से शरीर धुल गया और वह अम्बर की भाँति निर्मल, प्रभात की भाँति उज्ज्वल और कमल की भाँति प्रफुल्लित दिखाई देने लगी। शरीर को रुचिपूर्वक साफ कर वह मुख धोने लगी। मुख धोती हुई वह इसका प्रतिबिम्ब जल में देखती जाती थी और इसे आकाश में उठ रहे भगवान् सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में देख-देख प्रसन्नता अनुभव करती थी। यह प्रसन्नता उसकी आँखों में बढ़ रही चमक और मुख पर बन रही रेखाओं से प्रकट हो रही थी।

अब सिर के बालों की बारी आई। वे जल में डुबकी लगाते समय भीग गए थे। सिर की लटों से जल टपक रहा था। उसने हाथ से दबा-दबाकर लटों में समाया जल निचोड़ दिया; तदनन्तर जटाओं को मुख पर से हटा पीठ की ओर कर सीधी हो एक क्षण तक सूर्य की ओर देखकर घूमी। इस सब समय में उसका मुख नदी के उस तट की ओर था जिधर से सूर्य निकल रहा था और उसकी पीठ उस ओर थी जिधर जंगल था और जिधर से वह नदी पर आई थी।

ज्यों ही वह नदी से बाहर निकलने के लिए घूमी, उसकी दृष्टि उसी तट पर खड़े एक प्राणी पर चली गई। वह उसे देख डर गई थी। उस प्राणी के सिर पर, मुख पर और होंठों से ऊपर घने बाल उग रहे थे। डरकर उसने जल में डुबकी लगा दी और जलमग्न हो गई। जब उसने सिर पुनः जल से बाहर किया और तट की ओर देखा तो उसे वह प्राणी अभी भी खड़ा दिखाई दिया।

वह एक लम्बी दाढ़ी, मूँछों और जटाओं वाला पुरुष था। उसकी कमर पर मृग चर्म लपेटा हुआ था और हाथ में वृक्ष की डाल का दंड था। ऐसा जीव उसने अभी तक नहीं देखा था। वह वन पशु तो नहीं था। सब वन पशु हाथ-पाँव के बल खड़े होते और चलते थे। वे पाँवों पर खड़े नहीं हो सकते थे। साथ ही प्रायः सब जन्तु उससे डरकर भाग जाया करते थे। यह तो मुग्ध हो उसकी ओर देखकर मुस्करा रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पुनः डुबकी लगा, उसे अपनी आँखों से ओझल करने वाली थी कि तट पर खड़ा पुरुष खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह डुबकी लगाती-लगाती ठहर गई। तट पर खड़े पुरुष ने हाथ खड़ा कर आश्वासन के भाव में कहा, "हे ! हे !! निर्भय हो ! निर्भय हो !!"

पुरुष को उसी की भाँति कुछ बोलते तथा हँसते सुन वह समझी कि व्यक्ति उसी की भाँति का है। पुरुष ने पुनः हाथ से संकेत किया और कहा, "भय मत करो। आओ, बाहर निकल आओ।"

युवती ने उसकी ओर ध्यान से देखा तो आश्वस्त अनुभव करने लगी। अब वह एक-एक पग कर जल से निकलने लगी। जल से निकल वह पुरुष के सामने आ खड़ी हुई। पुरुष की बाँहों, टाँगों, पेट और पीठ पर बाल नहीं थे। शरीर के इन स्थानों पर उसका गौर वर्ण बहुत स्पष्ट दिखाई देता था। अब पुरुष ने पुनः पूछा, "तुम कौन हो?"

युवती ने आ-आ, ओ-ओ के शब्द उच्चारण किए और हाथ से अपनी कुटिया की ओर संकेत किया। तदनन्तर उसने कुटिया की ओर चलने का हाथ से संकेत भी कर दिया।

इस समय तक युवती समझ गई थी कि सामने खड़ा व्यक्ति उससे विलक्षण है। फिर भी नाक, मुख, कान, टाँगों, बाँहों और खड़े होने के ढंग से वह उस जैसा ही दिखाई देता है।

पुरुष ने भी स्त्री को पहली बार ही देखा था। यह स्त्री उससे दुबली-पतली थी, कोमल और सर्वथा लोमरहित थी। सिर पर बाल थे परन्तु बारीक और जटाओं में लटकते हुए। उसके सिर, दाढ़ी और मूँछों के बाल मोटे-मोटे और घने थे। फिर भी वे उलझे हुए नहीं थे। वह उसके सिर और मुख पर फैले हुए थे।

वह देख रहा था कि सामने खड़े अपने से कद में छोटे जीव की कमर पतली है और नितम्ब बड़े-बड़े हैं। एक अन्य विशेषता वक्षस्थल पर दिखाई दी। उसकी छाती दो गोल पिण्डों में उभरी हुई थी। पुरुष ने अपनी मांसल, परन्तु तनी छाती की ओर देखा और फिर उसकी ओर। वह विचार ही कर रहा था कि यह क्या है? क्या कुछ विकृति है? एकाएक उसके मुख से निकल गया, "सु उन्द्, सु उन्द्। श्रेष्ठ, अति श्रेष्ठ।"

युवती कुछ नहीं समझी। फिर भी उसके मुख पर हर्ष और उल्लास देख उसने अनुमान लगाया कि वह उसे पसन्द कर रहा है।

इस समय उसे एक बिलार की बात स्मरण आ गई। वह बिलार अपने सामने पड़े त्रसित तथा चीं-चीं करते एक पक्षी को देख सन्तोष और प्रसन्नता प्रकट कर रही थी। युवती विचार करने लगी कि कहीं इस सामने खड़े व्यक्ति की प्रसन्नता भी वैसी ही न हो। परन्तु उसके मुख पर भिन्न भाव था और वह शान्ति अनुभव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगी थी।

सामने खड़ा व्यक्ति देख रहा था कि उसके कथन से अधिक उसके मुस्कराने और हाथ के थपथपाने ने अधिक विश्वास दिलाया है। वह समझ गया कि वह स्त्री वन पशुओं की भाँति उसकी वाणी को नहीं समझती। अतः उसने अब संकेतों से समझाने का यत्न किया कि वह हिंसक जन्तु नहीं।

उसने पुनः मुग्ध आँखों से उसकी ओर देखते हुए कहा, "सु उन्द्। श्रेष्ठ, अति श्रेष्ठ।"

युवती ने उसके कथन की नकल उतारते हुए कहा, "श्रेष्ठ।"

पुरुष ने कहा, "हाँ!" यह प्रथम बात दोनों में हुई। इससे दोनों में विश्वास बढ़ा और दोनों हँस पड़े।

अब युवती ने पूछा, "ई-ए-क?"

पुरुष ने समझा कि वह उसके निवास के विषय में पूछ रही है। अतः अब उसने वाणी के साथ-साथ हाथ उठा संकेत से बताने का यत्न किया कि वन से पार दूर से वह आया है।

युवती विस्मय में उसकी ओर देखती रह गई। वह उसके संकेतों और शब्दों का अर्थ लगाने का यत्न करने लगी थी। पुरुष इस नवीन सुन्दर प्राणी को अपने निवास स्थान पर ले जाने की कल्पना करने लगा था। इसके विपरीत युवती एक लगभग अपने जैसे प्राणी को सामने खड़ा देख विचार करने लगी थी कि कैसे इसे अपने पास रख ले?

युवती ने अपने मन की बात को कार्य में लाने का यत्न पहले किया। उसने पुरुष की बाँह पकड़ अपनी कुटिया की ओर ले चलने का यत्न किया। पुरुष उसके आशय को समझकर चल पड़ा।

युवती को अपनी कुटी पर गर्व था। उसने कई दिन तक कई पक्षियों के घोंसलों को देख कुटी की योजना बनाई थी और फिर कई मास के विचार और प्रयत्न के उपरान्त उसे बनाया था। बन जाने के उपरान्त उसे उसमें सुख अनुभव हुआ था। वह उस नवीन साथी को लेकर अपनी कुटी के सामने जा खड़ी हुई।

एक क्षण तक कुटी के सामने खड़े हो प्रसन्नता और विजय के भाव में साथी पुरुष के मुख पर देख वह उसे भीतर ले गई। वहाँ उसे पत्तों के बिछौने पर बैठा और उसे बैठे रहने का संकेत कर कुटी से निकलकर भागती हुई एक वृक्ष की ओर गई। वह वृक्ष फलों से लदा था। वह उनमें से वे फल, जो अभी किसी पक्षी ने चोंच मार गन्दे नहीं किए थे, तोड़ने लगी। उसने इतने तोड़ लिए जितने कि वह अपनी दोनों भुजाओं और छाती के बीच उठा सकती थी।

पुरुष कुटी के बाहर निकल आया। वह उस फलों के वृक्ष के पास जा फल बीनते देखकर समझ गया कि वह उसका आतिथ्य करना चाहती है। इससे उसकी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ में आया कि वह बुद्धि और भावना रखती है।

जब युवती फलों से लदी-फदी लौटी तो वह पुनः कुटी में आ गया। दोनों पत्तों पर बैठ गए। युवती ने फल बीच में रख उसे खाने का संकेत किया।

अब पुरुष ने संकेत से बताया कि वह नदी पर जाकर स्नान करेगा। जब वह समझाने में सफल हो गया तो उसे वहीं छोड़ वह नदी तट पर चला गया। युवती अब आश्वस्त हो चुकी थी। उसे वह पुरुष अब भयकारी प्रतीत नहीं हो रहा था।

पुरुष स्नान करके लौटा। मृग चर्म अभी भी सूखा था। युवती समझ गई कि वह उसके शरीर का अंग नहीं है। स्नान करते समय अवश्य उसने उतार दिया होगा।

अब दोनों आमने-सामने बैठकर फल खाने लगे। पेट भर खा चुके तो छिलके और गुठलियाँ उठा युवती ने कुटिया के बाहर फेंक दिए।

एकाएक पुरुष को अपनी कल्पना स्मरण आई कि वह उसे अपने आश्रम में ले चले। अतः उसने संकेतों से उसे बताने का यत्न किया कि उसकी भी एक कुटी है। वह इससे, जिसमें वे बैठे हैं, अधिक स्वच्छ और सुन्दर है।

युवती कुछ-कुछ ही समझ पाई। अनायास ही उसके मुख से निकल गया, "के?"

पुरुष ने पुनः हाथों के संकेत और शब्दों से और प्रेम-भरी दृष्टि से उसे समझाने का यत्न किया कि उसे उसके साथ चलना चाहिए। युवती समझी तो उसने सिर हिला इंकार कर दिया। पुरुष ने उसके कपोलों पर प्रेम से दोनों हाथ रखकर उसे समझाया।

इस समय तक वह समझ गया था कि जैसे पशुओं में नर और नारी होते हैं, वैसे ही वह मनुष्य नारी है। वह उसे अपने स्थान पर ले जाकर सन्तानोत्पत्ति करेगा, परन्तु युवती को इन्कार करते देख वह परेशानी अनुभव करने लगा। वह सन्तानोत्पत्ति के लिए कभी-कभी नर पशुओं को बल प्रयोग करते भी देख चुका था। कभी एक नारी के लिए एक से अधिक नरों को परस्पर युद्ध करते भी देख चुका था। अतएव उसके मन में आया कि वह भी बल प्रयोग करे, परन्तु उसकी कोमलता, मृदुलता और दुर्बलता देख वह ऐसा करने के लिए मन को तैयार नहीं कर सका। फिर भी वह उसकी बाँह पकड़ उसे हाथ के संकेत से अपने साथ चलने के लिए उत्साहित करने लगा।

युवती समझी कि वह बलवान व्यक्ति उसे बलपूर्वक साथ ले चलने का यत्न करने वाला है। अतः उसने ऊँचे और क्रुद्ध स्वर में कहा, "न—न।" और वह लेट गई। वह समझती थी कि लेते हुए उसे उठाकर ले जाने में उस पुरुष को कठिनाई होगी।

इस पर पुरुष ने उसकी बाँह को छोड़ दिया। स्वयं उठकर उसने यह संकेत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया कि वह जा रहा है और फिर आएगा। तदनन्तर एक क्षण तक उसके मुख पर दयनीय दृष्टि से देख वह कुटिया से निकल घने जंगल की ओर चल दिया।

युवती ने उसे जाते हुए लालसा भरी दृष्टि से देखा और उसे पुकारा, "ए-ए-आ-आ।" परन्तु वह पुरुष केवल एक दृष्टि पीछे को डाल, पुनः अपने मार्ग पर चलता गया।

युवती उसे कुछ दूर तक जाते देखती रही। अब वह उठकर बैठ कुटिया के द्वार पर आकर खड़ी हुई थी। एकाएक उसके मन में कुछ आया और वह उसकी ओर हाथ उठा ऊँची-ऊँची आवाज देते हुए भाग खड़ी हुई। वह हाथ उठा कह रही थी, "ए-ए! ए-ए!!"

: २ :

यह घटना मानव जीवन की प्रभात वेला का है। आज से कई लाख वर्ष पूर्व की बात है। पृथिवी पर वनस्पतियाँ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हो चुकी थीं। इतर जीव-जन्तु भी भारी संख्या में बन चुके थे। ऐसे अवसर पर सोम और रोहिणी दोनों ने मिलकर सूर्य की रश्मियों से कलोल करनी आरम्भ की और भू पर कई स्थानों पर पंच महाभूतों में मन्थन आरम्भ कर दिया।

सोम तो अन्तरिक्ष में भ्रमण करता रहता था। रोहिणी नक्षत्र अन्तरिक्ष का भ्रमण करता हुआ पृथिवी के समीप आया था। आदित्य ने रोहिणी से संयोग किया। सोम ने संयोग में सहायता की और पृथिवी पर अण्डों के रूप में गर्भ स्थित हो गया।

ऐसे ही एक अण्डे में से वह युवती निकली थी। उस समय उस स्थान पर दिन का उषा काल था। तब तक प्रकाश भी बहुत ही धीमा हुआ था और वृक्षों के झुरमुट में जहाँ अण्डा बना और बड़ा हो रहा था, प्रकाश और भी कम था। अण्डा भीतर के प्राणी की हलचल से फूट पड़ा और वह अठारह-उन्नीस वर्ष की-सी युवती अण्डे में से बाहर लुढ़क पड़ी।

कुछ देर तो वह भूमि पर पड़ी रही, परन्तु जब वह स्वच्छ वायु में श्वास लेने लगी तो उसके शरीर में उष्णता एवं स्फूर्ति प्रकट होने लगी। वह भूमि पर से उठी और लुढ़कती-फुदकती इधर-उधर टटोल-टटोलकर चलने लगी। धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ने लगा और वह उस वन को देख-देखकर अपने पर एवं अपने चारों ओर की वस्तुओं पर विचार करने लगी।

एक संवत्सर से अधिक काल व्यतीत हो जाने पर युवती ने पेड़-पौधों, पक्षियों और वन पशुओं को देख-देखकर बहुत कुछ सीख लिया था। भूख की निवृत्ति, सोने के लिए स्थान, दूसरों से भय से बचाव और जल से शरीर को साफ करना, यह सब वह करने लगी थी। समीप ही एक स्वच्छ जल वाली नदी थी। उसमें वन के पशु जल पीते एवं जल विहार करते थे। वह भी उन्हें देखकर स्नान तथा तैरने लगी थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षियों के घोंसलों को देख-देख उसने अपने लिए कुटी बना ली थी और उसमें पत्ते बिछाकर कोमल बिछौना बना लिया था। इस प्रकार जीवन की मूल आव-श्यकताएँ भोजन, निवास और सर्दी-गर्मी से बचने का उपाय, आवश्यकता पड़ने पर वह विचारकर प्राप्त करने लगी थी।

स्वच्छन्द घूमती, खेलती-कूदती, खाती-पीती वह दिन व्यतीत करती चली जा रही थी। वह प्रायः घोंसलों में दो-दो पक्षियों को रहते देखती थी और अपनी कुटी में भी वह अपने किसी साथी की लालसा करती थी, परन्तु अपने समान किसी को न पाकर वह विवश थी।

इस समय एकाएक उसे दो टाँगों पर खड़ा होकर चलने वाला तथा अपने ही समान आँखें, नाक, कान तथा मुख वाला प्राणी दिखाई दिया और उसके मन में अपनी कुटिया में साथी के साथ रहने की आशा बन गई। परन्तु जब वह प्राणी उसकी महीनों के घोर परिश्रम से बनी कुटिया को छोड़कर चल पड़ा तो वह अदृश्य आकर्षण से खिंची हुई उसकी ओर कूकती हुई भाग खड़ी हुई। पुरुष ने आवाज सुनी तो खड़ा हो घूमकर पीछे की ओर देखने लगा। युवती आकर उसके सामने खड़ी हुई। पुरुष समझ रहा था कि वह पुनः उसे वहीं रह जाने का आग्रह करने आई है। अतः वह प्रश्न-भरी दृष्टि में उसकी ओर देखने लगा।

युवती ने अपनी बाँह उसकी बाँह में डालते हुए उसके साथ चलने का संकेत किया तो पुरुष प्रसन्नता से हँसने लगा। दोनों चल पड़े। कुछ पग ही गए थे कि युवती उसे एक ओर को घसीटकर ले जाने का यत्न करने लगी। इसका कारण जानने के लिए वह उस ओर चल पड़ा।

कुछ ही पग चलने पर वे एक बृहत् अण्डे के समीप जा पहुँचे। वह अण्डे का छिलका मात्र था। छिलका एक ओर से टूटा हुआ था और भीतर से खाली था। वह इतना बड़ा था कि एक युवा मनुष्य टाँगें समेटकर उसमें बैठ सकता था। युवती उसे समझाने के लिए कि वह उसमें से निकली है, अण्डे के छिलके में घुस गई और उसमें टाँगें समेट बैठ गई और फिर हँसती हुई बाहर निकल गर्व भरी दृष्टि में उसकी ओर देखने लगी।

पुरुष सब समझ रहा था। उसके लिए यह कोई नवीन बात नहीं थी। अतः वह मुस्काते हुए पुनः उसकी बाँह को अपनी बाँह में डाल अपने मार्ग पर चल पड़ा। मार्ग चलते हुए उसने अपने भी वैसे ही उत्पन्न होने की बात संकेतों से बताने का यत्न किया।

ज्यों-ज्यों वे पश्चिम की ओर चलते गए, वन अधिक और अधिक घना आता गया। वृक्ष अति समीप-समीप और कई स्थानों पर तो गिरे हुए भी थे। पुरुष कुछ पेड़ों पर चिह्न देखता हुआ मार्ग पा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि वे चिह्न उसने किसी पत्थर इत्यादि कड़ी वस्तु से पेड़ों पर इस ओर आते हुए बनाए थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई स्थानों पर गिरे वृक्षों से मार्ग अवरुद्ध होता था, तब वह उस युवती को अपनी भुजाओं में उठाकर पेड़ के तने पर बैठा देता और स्वयं कूदकर पार कर उसे भुजाओं में पकड़ नीचे उतार लेता। ऐसा करने में युवती गिरने के भय से भय-भीत उसकी पुष्ट गर्दन में बाँह डाल उससे चिपट जाती थी। पुरुष को उसका कोमल स्पर्श बहुत भला लगता था। इस प्रकार के स्पर्श को युवती भी नापसन्द नहीं करती थी और जब पुरुष उसको अपनी छाती से लगाए रखने का यत्न करता तो वह इससे सुख अनुभव करती हुई विस्मय में उसकी आँखों में देखने लगती थी।

इस प्रकार वे पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। लगभग आधा दिन चलने पर वे घने वन से बाहर निकल आए। कुछ दूर उनको वृक्षों के एक झुरमुट में से धुआँ उठता दिखाई दिया। युवती इसे देख ठिठककर खड़ी रह गई। पुरुष ने उसे बताने का यत्न किया कि वह वहाँ रहता है। अतः कुछ समझाता एवं उत्साहित करता हुआ और बाँह से खींचता हुआ वह युवती को वृक्षों के झुरमुट की ओर लिए जा रहा था।

झुरमुट के चारों ओर वृक्षों की सूखी डालियों को पेड़ों से बाँध-बाँधकर बाड़ बनाई हुई थी। भीतर जाने का केवल एक द्वार था। वह झुरमुट के उत्तर की ओर था। अतः इनको घूमकर उधर जाना पड़ा। द्वार पुष्पित लताओं से बना था। इस द्वार से वे बाड़ से घिरे स्थान में जा पहुँचे। घेरे के बीचों-बीच एक ऊँचा मिट्टी का चबूतरा बना था। उस पर एक गड्ढे में से धुआँ उठ रहा था। युवती ने देखा कि उस स्थान पर कितने ही अन्य व्यक्ति हैं। प्रायः सबके सब उस जैसे ही थे जैसे उसका साथी; जो उसे अपने साथ वहाँ लाया था।

उस स्थान पर कई कुटियाँ बनी थीं। ये कुटियाँ उसकी कुटी से अधिक सुन्दर, साफ और चारों ओर से किसी प्रकार के चौड़े-चौड़े पत्तों से ढँपी थीं। प्रत्येक कुटिया का द्वार था। उस समय कुछ कुटियों का द्वार खुला था और कुछ का बन्द था। जिनके द्वार बन्द थे, वे बन्द होने पर कुटी की दीवार के से ही दिखाई देते थे। प्रत्येक कुटी में द्वार के अतिरिक्त एक-न-एक खिड़की भी थी। यह भूमि से एक पुरुष की ऊँचाई के बराबर ऊँची थी।

युवती ने देखा कि जितने भी लोग वहाँ दिखाई दिए हैं, सब कमर पर मृग चर्म लपेटे हुए हैं। उनके शेष शरीर नग्न थे।

युवती को वह पुरुष अपने साथ लेकर एक कुटीर के सामने आ खड़ा हुआ। कुटीर का द्वार बन्द था। पुरुष ने द्वार के समीप खड़े हो धीरे से आवाज दी, "भगवन्! मैं दक्ष हूँ।"

भीतर से उत्तर मिला, "आ जाओ।"

उसी पुरुष ने कहा, "साथ एक अतिथि है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ले आओ।"

दक्ष ने द्वार खोला और दोनों भीतर जा पहुँचे। दक्ष ने झुककर चरण स्पर्श किए तो सामने बैठे एक बड़ी आयु के व्यक्ति ने हाथ के संकेत से बैठने को कहा।

बैठने से पूर्व दक्ष ने कहा, "पितामह ! यहाँ से दो प्रहर भ्रमण के अन्तर पर यह मिली है। मैं इसे प्रेरणा देकर यहाँ ले आया हूँ।"

उस बड़ी आयु के व्यक्ति ने स्त्री की ओर देखकर कहा, "यह मानव कन्या है। यह सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ होगी।"

कुछ क्षण विचारकर उसने पुनः कहा, "यह भगवान् वैवस्वत मनु की सन्तान प्रसूति है। इसकी माँ प्रकृति भगवती स्वयं हैं। वह शतरूपा है।"

"पितामह ! यह यहाँ रहेगी।"

"इसे मरीचि के पास ले जाओ। वह इसके गुरु होंगे।"

दक्ष ने पुनः पितामह के चरण स्पर्श किए और युवती को उस कुटी से बाहर चलने के लिए कहने लगा। वह युवती वहाँ खड़ी उस कुटी को भीतर से देख रही थी। कुटी पर्याप्त खुली और ऊँची थी। उसकी अपनी कुटी में तो उसका साथी पुरुष सीधा खड़ा नहीं हो सकता था। वह स्वयं भी कुछ झुककर ही खड़ी हो सकती थी। इस कुटिया में छत इतनी ऊँची थी कि सीधा खड़े होने पर भी हाथ उठाकर छत को छुआ नहीं जा सकता था। कुटी की दीवारों के साथ कई प्रकार के वन पशुओं के चर्म लगे हुए थे। स्थान-स्थान पर पक्षियों के सुन्दर पंख लटके हुए थे। एक ओर एक पशु का चर्म लटका हुआ था जिससे खिड़की का प्रकाश एवं हवा रोकी जा सकती थी।

जब दक्ष ने समीप खड़ी प्रसूति को चलने का संकेत किया तो वह प्रश्न-भरी दृष्टि में उसकी ओर देखने लगी। दक्ष ने कहा, "गुरुजी के पास।"

युवती समझी नहीं। तब दक्ष ने हाथ के संकेत से कहा, "आओ।" वह उसके साथ चल पड़ी। दोनों एक अन्य कुटी के द्वार पर जा खड़े हुए। द्वार खुला था और कुटी में द्वार से एक ओर हटकर एक मृग चर्म पर एक पुरुष बैठा था। मरीचि दक्ष का भी गुरु था। अतः कुटी में पहुँच दक्ष ने चरण स्पर्श किए और पितामह का आदेश सुना दिया। उसने कहा, "पितामह ने इसे आपके पास शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त भेजा है।"

"यह कौन है?"

"पितामह ने इसका नाम प्रसूति बताया है। यह यहाँ से आधा दिवस यात्रा के अन्तर पर अकेली रहती हुई मिली है।"

"तो यह तुमको मिली है? यह कन्या है। अब सृष्टि चलेगी।"

"तो क्या आप इससे सन्तान उत्पन्न करेंगे?"

"पितामह की यह इच्छा नहीं है। इसी कारण उन्होंने इसे मेरे पास शिष्या के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में भेजा है। यह मेरी पुत्री के समान होगी। साथ ही मेरी पत्नी का चयन तो हो चुका है।"

"सत्य ? आपने बताया नहीं। कौन है वह और कहाँ मिली वह आपको ?"

"उसे अंगिरा लाए थे। यह नारद के जन्म स्थान के समीप ही मिली थी। आजकल अंगिरा ही उसे शिक्षा दे रहे हैं।"

"तो मैं जाऊँ ?" दक्ष ने मन में आश्वस्त होकर कहा। वह मन में प्रसूति को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा करने लगा था।

मरीचि ने कहा, "इसे नदी दिखा दो। यह स्नान करेगी; तदनन्तर इसे भण्डारी से दो चर्म ले दो। एक वक्षों को ढाँपने के लिए और दूसरा कमर पर लपेटने के लिए। तब ही मैं इसको शिक्षा दूँगा।"

"महर्षि ! वक्ष को ढाँपने की आवश्यकता है ?"

"ऐसा ही वेद का आदेश है। घुटनों से कटि तक का भाग और गर्दन से वक्ष तक का भाग कामनाओं को उभारने वाला होता है। इनका स्पर्श तो कामनामय है ही; साथ ही इनका दर्शन भी कामनाओं को उत्पन्न करने वाला होता है। जाओ, भण्डारी से ऐसा कह दो।"

दक्ष युवती को लिए हुए चला गया। एक घड़ी में युवती लौटी, परन्तु तब तक उसका कायाकल्प हो चुका था।

नदी तट पर अंगिरा की शिष्या रोहिणी बैठी पाठ स्मरण कर रही थी। वह ऊँचे एवं मीठे स्वर में मन्त्रोच्चारण कर रही थी।

"ओं रूपंरूपं मधवा बोभवीति मायाः कृष्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद् दिवः परि मुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा।"

रोहिणी ओं गाती-गाती रुक गई और विस्मय में इस नए प्राणी की ओर देखने लगी। दक्ष ने रोहिणी को प्रथम बार ही देखा था। वह यह देख कि यदि यह मरीचि के लिए निर्वाचित पत्नी है तो उसकी निर्वाचित प्रसूति इससे अधिक श्रेष्ठ है।

दक्ष ने हाथ जोड़ नमस्कार कर कहा, "देवी ! मैं दक्ष हूँ। आपको मैंने पहले कभी नहीं देखा।"

"भगवन् !" उस स्त्री ने कहा, "मुझे इस आश्रम में आए एक पखवाड़ा व्यतीत हो चुका है। मैं अभी वाणी सीख रही हूँ।"

"आप महर्षि अंगिरा से शिक्षा प्राप्त कर रही हैं ?"

"हाँ, वह मेरे गुरुवर हैं। उनकी आज्ञा थी कि जब तक मेरा उच्चारण शुद्ध नहीं हो जाता, तब तक मुझे वेदी पर नहीं बैठना चाहिए। अतः मैं आपके दर्शन नहीं कर सकी।"

दक्ष ने अपने वहाँ आने का प्रयोजन बता दिया। उसने कहा, "देवी ! यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसूति है। पितामह ने इनको महर्षि मरीचि के पास शिक्षा के लिए भेजा है और महर्षि ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं इसे स्नान करा एवं उत्तरीय पहनाकर उनके पास ले जाऊँ।"

"आप जाइए। मैं इसे स्नानादि कराकर महर्षि के पास ले जाऊँगी।"

"परन्तु यह 'वाक्' से सर्वथा अनभिज्ञ है।"

"वह तो मैं भी थी और अब मन की बात कहने लगी हूँ। इसकी बात मैं समझ सकूँगी और इसे समझा सकूँगी।"

दक्ष प्रसूति को रोहिणी के पास छोड़ अपने काम पर चल दिया। उसके लिए आश्रम में गो-संरक्षण का कार्य था। वह आश्रम से जब भी कहीं भ्रमण के लिए एक से अधिक दिन के लिए जाता था तो एक अन्य आश्रमवासी को अपना कार्य सौंप जाया करता था। अतः उस साथी की कुटी की ओर चला गया।

रोहिणी ने प्रसूति को अपने समीप बैठा उससे पूछने का यत्न किया कि वह कहाँ से आई है? प्रसूति ने अपनी अ-ए-ओ के उच्चारणों तथा हाथ के संकेतों से अपने दूर से यहाँ आने का वृत्तान्त बताया। रोहिणी उसकी बात को कुछ-कुछ ही समझ सकी। जो कुछ वह समझी, वह यही था कि वह भी उसकी ही भाँति एक अण्डे में से निकली है और नदी के तट पर कुटी बनाकर रहती थी, जहाँ से दक्ष उसे यहाँ ले आया है।

रोहिणी ने उसे जल में नदी के तट के समीप ही स्नान करने के लिए कहा। उसने बताया कि बीच में नदी बहुत गहरी है और वेग से बह रही है।

प्रसूति ने जब रोहिणी की बात समझी तो हँस पड़ी। फिर उसके कुछ कहे बिना नदी में छलाँग लगा वह तैरने लगी।

रोहिणी ने उसके उलझे हुए बालों और जटाओं को सुलझाने का यत्न किया। वह कुछ-कुछ ही सुलझा सकी।

इसके उपरान्त रोहिणी उसे लेकर भण्डारी के पास जा पहुँची और वहाँ से उसे कमर ढाँपने तथा वक्षोज को समेटने के लिए उत्तरीय ले दिया। तदनन्तर उनको पहनने का ढंग सिखा दिया।

प्रसूति को उत्तरीय में बहुत गर्मी लगी, परन्तु रोहिणी ने बताया कि उत्तरीय तो यहाँ पहनना ही पड़ेगा। इस प्रकार प्रसूति को तैयार कर वह महर्षि मरीचि के पास ले गई। मरीचि उन्हें देख पूछने लगा—"ओह! तुम इसे कहाँ से ले आई हो और इसका संरक्षक दक्ष कहाँ गया?"

"मैं समझी थी कि इसके संरक्षक आप हैं।"

"नहीं। मैं इसका गुरु हूँ।"

"दोनों में क्या अन्तर है?"

"गुरु का सम्बन्ध मन और बुद्धि से होता है और संरक्षक का सम्बन्ध शरीर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से होता है।"

"मन एवं बुद्धि का क्या अन्तर है शरीर से? उस दिन पितामह बता रहे थे कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सब जड़ प्रकृति का अंश हैं। आप दोनों में भेद बता रहे हैं।"

"हाँ रोहिणी! दोनों प्रकृति का ही अंश होते हुए भी भिन्न-भिन्न हैं। इन्द्रियाँ सूक्ष्म एवं बलवान हैं। ये शरीर से परा कही जाती हैं। इन्द्रियों से मन सूक्ष्म और बलवान है। मन से बुद्धि प्रबल है और बुद्धि से भी प्रबल तथा विलक्षण जीवात्मा है।

"मन, बुद्धि का सीधा सम्पर्क आत्मा से होता है। इसके विपरीत इन्द्रियों का आत्मा से सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध मन के द्वारा ही होता है। इस कारण दोनों में अन्तर है।

"गुरु मन और बुद्धि का पथ-प्रदर्शन करता है। संरक्षक केवल शरीर का संरक्षण ही करता है।"

"और संरक्षिता को क्या कहते हैं?"

"उसे पत्नी कहते हैं। पति की पत्नी होती है और गुरु की शिष्या अथवा शिष्य।"

"तो दक्ष इसका संरक्षक है?"

"ऐसा पितामह का आदेश है। अभी यह वाक् सीखेगी। जब यह अपने मन की बात शब्दों में व्यक्त करने योग्य हो जाएगी तब इसे किसी का संरक्षण प्राप्त होगा। पितामह का कहना है कि दक्ष इसका संरक्षक होगा।"

"मेरा संरक्षक कौन होगा?"

"यह पितामह से पता करना।"

"आप तो शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। आपकी संरक्षिता कौन है?"

"अभी यह निश्चय नहीं हुआ है। जिसका मैं संरक्षक हूँगा, वही मेरी संरक्षिता होगी।"

"तो अभी आप संरक्षिता रहित हैं?"

"हाँ। जब मैं किसी का संरक्षक नियुक्त हूँगा तब वह स्वतः मेरी संरक्षिता नियुक्त हो जाएगी। यह परस्पर निर्भरता का प्रबन्ध है।"

"मैं पितामह से पता करूँगी कि मेरा संरक्षक कौन होगा?"

"अभी इसकी इतनी शीघ्रता क्यों है? सब कुछ यथासमय हो जाएगा।"

"मैं भी किसी की संरक्षिता बनना चाहती हूँ।"

"सत्य? भला किसकी?"

"यह अब पितामह को ही बताऊँगी।"

मरीचि ने उसी समय से प्रसूति को वाणी का दान देना आरम्भ कर दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

प्रसूति का पूर्ण ज्ञान पक्षियों को देख-देखकर प्राप्त हुआ था। वह अपने उद्‌गम अण्डे से निकलकर जब हिलने-डुलने में सफल हुई तो टाँगों पर खड़ी हो अपने चारों ओर के पदार्थों का अवलोकन करने लगी। अपनी इस देखभाल में वह उस बड़ के वृक्ष के पास जा पहुँची। इतना कुछ करने में उसे आधे प्रहर से कम ही समय लगा।

बड़ वृक्ष पर घोंसलों में सैकड़ों ही पक्षी रहते थे। वह उनको उड़-उड़कर अपने-अपने घोंसलों से कहीं बाहर जाते और फिर चोंच पर कुछ कहीं से लाते देखने लगी।

उसने यह जानने का यत्न किया कि वे कहाँ जाते हैं और वहाँ से अपनी चोंचों में भरकर क्या लाते हैं? वह पक्षियों का पीछा करते हुए फलों के वृक्ष पर पहुँच गई। उसने अपने भोजन के लिए भी फल चखे, पसन्द किए और फिर वह उन्हें खाने लगी।

इसी प्रकार पक्षियों को स्नान करते देख उसने स्नान करना सीख लिया। पक्षियों को पंख फैलाकर जल पर तैरते देखा और फिर स्वयं तैरना सीख लिया। अभिप्राय यह कि उसने पक्षियों को ही देखकर अपना व्यवहार बनाया था, परन्तु पक्षी बहुत कम जानते थे। इस कारण वह बहुत कम सीख सकी। अब पितामह के आश्रम में उसको सबसे पहले वाक् अर्थात् बोलने की विधि सिखाई जाने लगी।

इसमें काम चलाने योग्य ज्ञान प्राप्त करने में उसे कई मास लग गए। जब तक मन्त्र के उच्चारण योग्य उसका उच्चारण नहीं हुआ, उसे यज्ञ वेदी पर बैठने नहीं दिया गया।

इस सारी अवधि में उसे एक पृथक् कुटी में रहने की स्वीकृति मिली थी। वह ज्यों-ज्यों वाणी में अपने मन के भावों को व्यक्त करने की योग्यता प्राप्त करती गई; त्यों-त्यों उसका परिचय आश्रमवासियों से बढ़ता गया।

उसके यज्ञ वेदी पर बैठ मन्त्रोच्चारण योग्यता प्राप्त करने से पूर्व रोहिणी को यज्ञ वेदी पर बैठ मन्त्र गान की स्वीकृति मिल चुकी थी और एक दिन पितामह ने उसका मरीचि से विवाह कर दिया। विवाह के दिन से रोहिणी अब मरीचि की कुटी में ही निवास करने लगी।

प्रसूति की समझ में आ गया कि पक्षियों की भाँति उसके गुरु और रोहिणी एक साथ ही एक घोंसले में रहेंगे। इस प्रकार रहते देख उसे यह भी स्मरण आ गया कि पक्षियों के बच्चे होते हैं। अतः वह आशा करने लगी कि गुरुजी और रोहिणी भी बच्चों का निर्माण करेंगे? वह मन में कल्पना करने लगी कि यह कैसे होगा।

एक दिन उसने महर्षि से पूछ लिया, "रोहिणी अब अपनी कुटिया में सोने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जाती ?"

"नहीं। अब यह मेरी पत्नी बन गई है।"

"पहले क्या थी ?"

"एक आश्रम में रहने वाली। पितामह ने मुझे इसका पति बनाना स्वीकार किया है और मैंने इसे अपनी पत्नी बना लिया है।"

प्रसूति अपने विषय में कल्पना करने लगी थी। रोहिणी ने उसे बताया कि शीघ्रातिशीघ्र उसे भी वेदी पर बैठकर सबके साथ मन्त्र-गान और हवन में आहुति डालने का अधिकार प्राप्त होगा।

जब वह दिन आया तो उसे आश्रम के अन्य कार्यों में भी सक्रिय भाग लेने का अवसर मिला। जो वन पशु मर जाते थे, आश्रमवासी उसका चर्म निकाल लेते थे। उसे सुखा एवं पहनने योग्य नर्म बनाने का काम उसे दिया गया। वह आश्रम के भण्डारी के साथ काम करने लगी। वन में पक्षियों के पंख पड़े मिल जाते थे; उनको एकत्रित करना उसका काम था।

आश्रम का प्रत्येक वासी अपने शरीर की देखभाल के अतिरिक्त आश्रम का भी कुछ-न-कुछ कार्य करता था। इस प्रकार आश्रम के कार्य चलते रहते थे।

सूर्योदय से पूर्व आश्रमवासी जग जाते थे। शौचस्नानादि से निवृत्त हो सब यज्ञ वेदी पर एकत्रित हो जाते थे। वहाँ कुंड में अग्नि प्रदीप्त की जाती थी और उसमें कुछ सुगन्धित द्रव्य और घी की आहुतियाँ दी जाती थीं।

तदनन्तर पितामह उपदेश दिया करते थे। उपदेश के उपरान्त आश्रमवासी अपने-अपने काम पर लग जाते थे। आश्रमवासियों की संख्या इक्यावन हो चुकी थी। इनमें छः महर्षि थे। वे आश्रम का कुछ काम नहीं करते थे। वे चिन्तन करते थे और तदनन्तर अपने चिन्तन का परिणाम पितामह को मध्याह्न भोजन के उपरान्त बताते थे। पितामह उनसे प्रश्न पूछता था और वे अपने चिन्तन की व्याख्या करके प्रश्नों का उत्तर देते थे।

प्रति सायंकाल पितामह का प्रवचन होता था और उस समय आश्रमवासी उनसे प्रश्न पूछते थे।

एक दिन पितामह बता रहे थे, "अन्तरिक्ष में अनेक नक्षत्र एवं ग्रह घूम रहे हैं। नक्षत्र उसे कहते हैं जो स्वतः प्रकाशमान् है। ग्रह उनको कहते हैं जो नक्षत्रों के प्रकाश से आलोकित होते हैं।

"इस अन्तरिक्ष में एक ग्रह पृथिवी है। इस पर हम बसे हुए हैं। यह बहुत बड़ी है और इसपर जनसंख्या बहुत कम है। इसी कारण यह वन पशुओं से भरी पड़ी है। जब मनुष्य की संख्या बढ़ेगी तो वन पशुओं और इतर जीवों की संख्या कम होगी।

"यह नियम है कि जगत्, जिसमें हमारी पृथिवी और अन्य अनेक ग्रह बने हैं,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं नहीं बन गए। इनके बनाने वाला कोई है। वह कोई महान् ज्ञानवान और अपार शक्ति का स्वामी होना चाहिए। अतः उसे हम परमात्मा कहते हैं। आत्मा चेतन का नाम है। वैसे तो एक आत्मा प्राणियों में भी है, परन्तु वह महान् नहीं। वह अल्प ज्ञान और अल्प शक्ति वाली है। उसे जीवात्मा कहा जाता है।

"इन दो चेतनों के अतिरिक्त एक अन्य है। वह चेतन नहीं। उसे प्रकृति कहते हैं। यह जगत्, जिसे हम देखते हैं, उसमें ये तीनों मिले-जुले रहते हैं। इसी कारण जगत् में तीनों के गुण माने जाते हैं।"

प्रसूति को यज्ञशाला के मन्त्र-गान में और मध्याह्नोत्तर पितामह के प्रवचनों में सम्मिलित होते हुए बहुत कम दिन हुए थे। जब से वह पितामह के प्रवचन सुनने और समझने लगी थी, कई प्रकार के संशय उसके मन में उठने लगे थे। परन्तु वह संकोचवश पूछती नहीं थी।

आज उससे नहीं रहा गया। वह अन्य आश्रमवासियों द्वारा प्रश्न पूछे जाते सुनती थी, परन्तु इसके मन में प्रश्न उनसे भिन्न प्रकार के होते थे। आज उसने पूछ लिया, "भगवन्! यह कैसे विदित हो कि इस जगत् के रचने वाला कोई है? यह सदा से है और सदा रहेगा।"

"हमारी गौशाला में इस वर्ष पाँच बछड़े बने हैं और दो बूढ़ी गौएँ मृत्यु को प्राप्त हुई हैं। जब बनना और बिगड़ना होता है तो फिर बनाने और बिगाड़ने वाला भी कोई है, यह मानना पड़ेगा।"

"गऊएँ तो हमारी गौशाला में बनी हैं। हमने उन्हें किसी को बनाते नहीं देखा।"

पितामह ने प्रश्न पूछ लिया, "यदि किसी वस्तु के बनाने वाला दिखाई न दे तो क्या नहीं बनी मानना चाहिए? यदि बनी है तो किसने बनाई है?"

यह प्रसूति की बुद्धि की सीमा थी। रोहिणी ने पूछ लिया, "सृष्टि पति-पत्नी मिलकर बनाते हैं। इसमें परमात्मा कहाँ से आ गया?"

"आदि पति-पत्नी किसने बनाए थे? अभी तो इस आश्रम में सबके सब मानव ऐसे हैं जो बिना माता-पिता के बने हैं।

"इनके साथ ही माता-पिता में भी तो निर्माण शक्ति ईश्वर की ही है। वे सदा और सर्वत्र निर्माण नहीं कर सकते।"

"परन्तु मेरे पति महर्षि मरीचि कहते थे कि वे चाहें तो सन्तान नहीं भी उत्पन्न कर सकते। ईश्वर की शक्ति होती तो हम विवश हो जाते सन्तान उत्पन्न करने में।"

"यह विवशता भी होती है। फिर भी मरीचि जी का कथन सत्य ही है। ईश्वर की शक्ति पति-पत्नी में रहती है और वे उसका प्रयोग कर भी सकते हैं, नहीं भी कर सकते तथा प्रयोग करने का समय एवं स्थान भी हम निश्चय करते हैं। यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण कि हममें भी एक चेतन आत्मा है। इसी कारण शक्ति के प्रयोग का फलाफल हमें मिलता है।"

परन्तु प्रसूति के प्रश्न समाप्त नहीं हुए। उसने पूछ लिया, "आपको यह बात किसने बताई है ?"

"परमात्मा ने।"

"मुझे क्यों नहीं बताई ?"

"इस कारण कि तुमने मेरे जैसी योग्यता प्राप्त नहीं की। वह योग्यता योगाभ्यास से प्राप्त होती है। अभी हमारे आश्रम के छः व्यक्तियों को वह योग्यता मिली है। वे हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलहः और क्रतु। ये सब परमात्मा की बात को सुन और समझ सकते हैं। इसी कारण इनको महर्षि की उपाधि प्राप्त है।

"ये कब और किस प्रकार परमात्मा की बातें सुनते हैं ?"

"जब इनके मन में कोई संशय अथवा प्रश्न उपस्थित होता है तो ये समाधि अवस्था में चले जाते हैं और इनका वह संशय निवारण हो जाता है। इनको अपने प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है।"

"बहुत विचित्र है !"

"हाँ। ये जो कुछ परमात्मा की वाणी में सुनते हैं, वह स्मरण रखते हैं और मन्त्रों में उच्चारण कर देते हैं और वे मन्त्र ही पूर्ण ज्ञान का स्रोत होते हैं। इन मन्त्रों को हम वेद इसी कारण कहते हैं, क्योंकि ये ज्ञान हैं। वेद शब्द ज्ञान का पर्यायवाचक है।"

"परमात्मा अपनी बात को बनाने का कष्ट क्यों करता है ?"

"परमात्मा का ज्ञान तो सबके लिए सदैव प्रसारित हो रहा है। परमात्मा देवों के द्वारा वेद उद्घोषित कर रहे हैं। ये महर्षि उस ज्ञान को सुनने और समझने की सामर्थ्य प्राप्त किए हुए हैं। अतएव सुनते हैं और परमात्मा के आदेश से ही सबको सुनाते हैं।"

"यदि इनके पास यह सामर्थ्य न होती अथवा परमात्मा वेद ज्ञान न देते तो फिर क्या होता ? मैं समझती हूँ कि तब भी हम सब कुछ जान जाते। मैंने अपने स्थान पर रहते हुए भी कई बातें सीख ली थीं।"

"हाँ, परन्तु वही बातें जो वन पशु जान गए थे। कदाचित् उनको इन बातों के जानने में उतना कष्ट भी नहीं करना पड़ा जितना कि तुम्हें करना पड़ा होगा। ये बातें प्रकृति के गुण हैं। इनके जानने और समझने में कुछ भी यत्न करना नहीं पड़ता। ये प्रकृति के धर्म हैं।

"सुनो प्रसूति ! आहार, अर्थात् भूख लगने पर खाना; भय, किसी अनदेखी वस्तु अथवा घटना को देखने से डरना; निद्रा, थक जाने पर सो जाना और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तानोत्पत्ति करना; ये चार कार्य प्रकृति की देन हैं। यह बिना परमात्मा के बताए भी सीखे जा सकते हैं। ये कार्य तो पशु भी, जो परमात्मा की वाणी को न तो सुन सकते हैं और न ही समझ सकते हैं, जान जाते हैं।

"परन्तु इनके अतिरिक्त जो कुछ हमने सीखा है; वह परमात्मा की कृपा से अर्थात् उसके बताने से ही सीखा है। उदाहरण के रूप में वाणी हमने वेदों से सीखी है। अग्नि प्रदीप्त करना हमने परमात्मा से सीखा है। अपनी कामनाओं पर संयम रखना परमात्मा ने बताया है।

"यदि हम किसी मनुष्य को ये बातें न बताएँ तो वह इनको कभी सीख नहीं सकेगा। वह पशुवत् ही बना रह जाएगा। वेद मनुष्य मात्र को मिला है। यह कल्याणमयी वाणी समस्त प्राणियों के लिए है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अपने और परायों के लिए। हम उनकी वाणी को सुन और समझ सकते हैं। अतः यह हमारा कर्तव्य है कि हम इसे यहाँ इस लोक में सबका प्रिय करने के लिए सबको सुनाएँ, जिससे सब लोक हमारे अनुकूल हों तथा अधीन हों।"[१]

प्रसूति को अभी भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने पूछ लिया, "अधीन से आपका क्या अभिप्राय है?"

"वेद के जानने वालों, अर्थात् ज्ञानवानों के अधीन सब होने चाहिएँ। जो ज्ञानी नहीं उनको ज्ञानवान् ज्ञान देते हैं।"

पितामह को भी पता चल गया कि यह स्त्री अपनी बुद्धि का प्रयोग करने लगी है, अतः वे उससे ज्ञानवान् सृष्टि की आशा करने लगे थे।

: ४ :

प्रसूति रोहिणी से विलक्षण स्वभाव की थी। वह रोहिणी के पति महर्षि मरीचि की शिष्या थी, इसलिए उनकी कुटी में नित्य शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए जाती थी।

प्रायः प्रातः के यज्ञ के उपरान्त वह पति-पत्नी, दोनों के साथ उनकी कुटी में चली जाती और प्रातः का अल्पाहार फल उसी स्थान पर ग्रहण करती।

आश्रम में कोई सेवक नहीं था, अतः अपनी सेवाएँ सब स्वयं ही करते थे। आश्रम के घेरे के भीतर फल उद्यान था। सब आश्रम निवासी यज्ञ वेदी से उतरकर फल उद्यान में चले जाते थे और वहाँ से रुचि और आवश्यकतानुसार फल उतारकर अपनी कुटिया में ले जाते थे और खाते थे। जब से मरीचि का विवाह

---

१. यथेमां वाच कल्याणीमावदान जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याँ्ं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः
समृध्ययामुप मादो नमतु॥ यजु० २६-२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

98
228

हुआ था रोहिणी अपने पति के लिए भी फल तोड़ लाती थी। प्रसूति रोहिणी के साथ जाती थी और वह भी अपने तथा गुरुजी के लिए फल ले आती थी।

रोहिणी ने उद्यान को जाते हुए मार्ग में पिछली सायं पितामह के प्रवचन की चर्चा कर दी। उसने कहा, "प्रसूति बहन! कल तुमने बहुत प्रश्न पूछे थे। मैं समझती हूँ कि पितामह तुम्हारे प्रश्नों से रुष्ट हो रहे थे।"

"सत्य ? तुमको यह किसने बताया ?"

"मुझे स्वयं समझ में आया है। ज्यों-ज्यों तुम प्रश्न पर प्रश्न करती जाती थीं, वह उत्तर देते हुए उत्तेजित हो रहे प्रतीत होते थे।"

"मैं तो इसका अर्थ यह समझती हूँ कि वह मेरे प्रश्नों पर प्रसन्नता अनुभव करते थे।"

109082

"प्रसन्नता ? भला क्यों ?"

"इसलिए कि आश्रम में अन्य कोई भी तो इतना कुछ जानने की इच्छा नहीं करता। मेरे मन में ये सब बातें तब भी रहती थीं जब मैं अपने जन्म-स्थान पर भ्रमण किया करती थी। मेरे मन में यह प्रश्न सदा उठता रहता है कि मैं क्या हूँ, क्यों हूँ और किसलिए हूँ ?

"मुझे स्मरण था कि एक श्वेत रंग की कुटीर थी। मैं उसमें से निकली थी। वह कुटीर मेरे लिए किसने बनाई थी और फिर मैं उसके भीतर, न जाने कितने काल तक, सोयी रही थी। उस सब समय मुझे कौन खिलाता-पिलाता रहा था ? उस कुटीर को आप लोग अण्डा कहते हैं। मैं उससे निकल जब जागी तो मैं उठकर खड़ी होने लगी, परन्तु गिर पड़ी। मैं पुन: उठी। समीप के एक वृक्ष का आश्रय लेकर उठ खड़ी हुई और वृक्षों को पकड़-पकड़कर अपने चारों ओर वन पशु, पक्षी इत्यादि देखने लगी। मैंने एक जन्तु को देखा तो डर गई कि वह क्या है ? इस सब समय भी मैं यह मन में विचार करती थी कि वह क्या है ? परन्तु किससे पूछती ? न तो मैं अपने मन की बात किसी को बता सकती थी और न ही वहाँ कोई था जो मेरी बात को समझ सकता।"

तब तक वे वृक्षों से फल तोड़ने लगी थीं। अन्य आश्रमवासी भी वहाँ, अपनी-अपनी रुचि अनुसार खाने योग्य फल, कन्द-मूल चुन रहे थे। प्रसूति और रोहिणी अपने तीनों के खाने के लिए भोजन एकत्रित कर चुकी थीं। उस समय दक्ष उनके पास आ गया और रोहिणी से पूछने लगा, "मरीचि जी नहीं आए ?"

"मैं जो आई हूँ।"

"तो तुम उनका काम कर देती हो ?"

"उनकी अर्धांगिनी जो हूँ। शरीर का एक अंग दूसरे अंग का काम करता ही है।"

"और प्रसूति किसलिए साथ है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रसूति ने ही दिया, "मैं अपने लिए भोजन एकत्रित करने आई हूँ।"

"मैं समझा था कि तुम भी किसी के लिए ले जा रही हो। मेरा विचार है कि तुम्हारे पास भी एक व्यक्ति की आवश्यकता से अधिक है।"

"हाँ, वह मैं अपने सायंकाल के प्रयोग के लिए ले जा रही हूँ। पुनः सायंकाल आना नहीं पड़ेगा।"

"तो सायंकाल उद्यान में आने से कुछ हानि होती है?"

"हाँ, एक काम के लिए दुगुना समय व्यय करना बुद्धिमत्ता नहीं।"

"परन्तु कुटिया में बिलार भी तो झपटकर ले जा सकती है?"

प्रसूति मुस्कराई और कहने लगी, "मेरे साथ एक दिन ऐसा हो चुका है। मैं अपनी कुटिया के एक कोने में फल रखकर गुरुजी से कुछ जानने चली गई थी। जब वहाँ से लौटी तो फल वहाँ नहीं थे। मैं विचार कर रही थी कि कहाँ गए होंगे कि मेरी दृष्टि समीप ही पड़े छिलकों पर चली गई। कदली के छिलके पड़े थे।

"मैं समझ गई कि कोई खा गया है। अवश्य कोई वन पशु होगा; अतः मैंने विचारकर एक लटकन निर्माण किया है। उसे कुटी की छत से कुटी के बीचों-बीच लटका रखा है। अब बचे फल उसपर रख देती हूँ। वहाँ से वन पशु नहीं उतार सकते।"

दक्ष प्रसूति का मुख देखता रह गया। इस समय तक वे उद्यान से निकल गुरु जी की कुटिया की ओर चल पड़े थे। दक्ष ने अपने मन की बात कह दी। उसने कहा, "रोहिणी देवी! आप प्रसूति को कहें कि मुझसे विवाह कर ले।"

"क्या आवश्यकता है?"

"तो क्या आप अब भी नहीं समझतीं? आपका तो विवाह हो चुका है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि विवाह करने से एक प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है।"

रोहिणी का मुख आनन्द की बात सुन रक्तवर्ण हो गया, परन्तु तुरन्त ही अपने को नियन्त्रण में कर उसने कहा, "मैं समझी थी कि यह आनन्द केवल स्त्रियों को ही अनुभव होता है। आप कैसे जानते हैं कि यह पुरुषों को भी प्राप्त होता है?"

दक्ष हँस पड़ा और बोला, "यह आपको अपने महर्षि जी से पता करना चाहिए।"

"पता करूँगी। उन्होंने कभी ऐसी बात बताई नहीं। उनका किसी प्रकार का आग्रह भी नहीं रहता। इसी से ऐसा अनुभव होता है कि वह सन्तानोत्पत्ति को मात्र एक कर्तव्य समझ इसमें संलग्न हैं। इस कारण मैं यही समझ रही हूँ कि वह मुझ पर अत्यन्त कृपा कर रहे हैं।"

दक्ष पुनः हँसा। इस समय तीनों महर्षि की कुटिया के द्वार पर आ पहुँचे थे। दक्ष भी रोहिणी और प्रसूति के साथ महर्षि की कुटिया में चला आया। महर्षि के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरण स्पर्श कर बोला, "गुरुजी ! मैं रोहिणी देवी से कह रहा था कि यह प्रसूति को मेरी अर्धांगिनी बनने के लिए प्रेरित करें।"

"परन्तु यह बात तो तुम्हें पितामह से कहनी चाहिए। बिना उनकी स्वीकृति के विवाह नहीं होगा। देखो, मैं उनके जीवन की एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ। कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यहाँ एक प्रकार की सृष्टि हुई थी। आरम्भ में हमारे समान ही वह अमैथुनीय थी, परन्तु वह रूप से विकृत और शरीर से ओजविहीन तथा बुद्धि से मन्द थी। पितामह ने उनको देखा तो सबको विनष्ट कर दिया। पितामह का विचार था कि उस सृष्टि के यहाँ रहने से पृथिवी पर भार ही बढ़ेगा।

"अतः यदि तुमने उनकी स्वीकृति के बिना कहीं सन्तान उत्पन्न की तो वह तुम्हारी सन्तान सहित तुमको भी नष्ट कर देंगे।"

"तो वह हमारे अधिपति बन रहे हैं।"

"हाँ, हम उन्हें उनके ज्ञान के कारण अपना अधिपति स्वीकार करते हैं। विद्वानों का आधिपत्य सुखकर होता है।"

दक्ष भी महर्षि मरीचि से ही वाणी और अन्य ज्ञान की बातें सीखा था। वह उनको अपना गुरु एवं अपने से अधिक ज्ञानवान् मानता था। इस कारण चुप रहा और पुनः चरण स्पर्श कर वहाँ से चला आया।

जब दक्ष चला गया तो मरीचि ने दोनों स्त्रियों को बैठने को कहा। जब वे बैठ गईं तो उसने प्रसूति से पूछा, "क्या तुम इस महापुरुष से विवाह करना चाहोगी ?"

"जब अपने जन्मस्थान से मैं इसके साथ यहाँ आई थी तो मैं इसके साथ एक ही नीड़ में रहने की इच्छा करने लगी थी, परन्तु जब मैंने आपको देखा और आपकी विद्वत्ता का पता चला तो मैं आपसे विवाह की इच्छा करने लगी। परन्तु आपने कह दिया कि शिष्या पुत्री के समान होती है और पिता का पुत्री से विवाह नहीं होता। इस कारण मैंने अब अपना ध्यान पुनः दक्ष की ओर केन्द्रित कर रखा है।"

"तो मैं पितामह से बात करूँ ?"

"पर मैं आपसे एक बात जानना चाहती हूँ। रोहिणी देवी कह रही हैं कि कल मेरे प्रश्न पूछने पर पितामह मुझसे रुष्ट हो गए प्रतीत होते हैं।"

"रोहिणी का यह भ्रम है। सायंकाल मैं पितामह के पास बैठा था। महर्षि पुलहः और ऋतु भी वहाँ थे। हम सबके समक्ष पितामह ने कहा था कि वह प्रसूति के प्रश्नों से बहुत प्रभावित हुए हैं। यह बहुत ही बुद्धिशील जीव है।"

प्रसूति ने मुस्कराते हुए रोहिणी के मुख पर देखा तो वह अपनी बात स्पष्ट करने लगी। उसने कहा, "मेरा अनुमान था कि वह इस प्रकार पूछे जाने पर अप्रसन्न हैं। प्रसूति के प्रश्नों से यह प्रकट होता था कि इसे पितामह के कथन पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास नहीं है।"

"नहीं रोहिणी ! वह बुद्धियुक्त प्रश्न किए जाने पर प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने मुझे कहा था कि प्रसूति को शीघ्रातिशीघ्र वेदों के ज्ञान से अवगत कर देना चाहिए। यह शीघ्र ही विवाह कर आश्रम से चली जाएगी।"

"चली जाएगी ?" रोहिणी ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा।

"हाँ। दो कन्याओं का पहले भी विवाह हो चुका है। तुम तीसरी हो। पहली दोनों आश्रम छोड़ अपने-अपने पति को साथ लेकर चली गई हैं। उन्होंने अपने नए आश्रम बनाए हैं। पितामह का विचार है कि प्रसूति भी अपना नया आश्रम बना कर अपना कुल चलाएगी।"

"पर मैं तो आश्रम छोड़कर नहीं जा रही।"

तीनों पत्तों पर फल रख खाने लगे थे। रोहिणी के इस कथन पर महर्षि मरीचि ने कहा, "पितामह का विचार है कि तुम आश्रम को नहीं छोड़ोगी और मुझे तुम यहाँ से किसी अन्य स्थान पर नहीं ले जा सकोगी।"

"आर्य ! मैं आपको ले जाना चाहूँगी ही नहीं। मुझे यहाँ बहुत भला प्रतीत हो रहा है।"

"यह भले-बुरे का प्रश्न नहीं है। यह महत्त्वाकांक्षा का प्रश्न है। तुम अपनी वर्तमान अवस्था पर सन्तुष्ट हो, प्रसूति इतने में ही सन्तुष्ट नहीं है।"

"यह क्या चाहती है ?"

"पितामह कह रहे थे कि यह इतने बड़े परिवार की माता होने की इच्छा रखती है जो पूर्ण नहीं तो आधे भूमण्डल पर छा जाए। इसकी सन्तान इस पृथिवी पर मान-सम्मान का पद ग्रहण करेगी।"

"उससे इसको क्या मिलेगा ?" रोहिणी ने पूछ लिया।

"यह इसके स्वभाव में है और जब किसी की स्वाभाविक बात सिद्ध होती है तो उसके मन में एक प्रकार के नैसर्गिक आनन्द की अनुभूति होती है।

"पितामह का कहना है कि तुम्हारा स्वभाव ब्राह्मण जैसा है और प्रसूति का क्षत्रिय-सा।"

"वह क्या होता है ?"

ये शब्द रोहिणी और प्रसूति दोनों के लिए नवीन थे। इनका उच्चारण कभी पितामह ने भी अपने प्रवचनों में नहीं किया था।

महर्षि मरीचि ने बताया, "कुछ दिन से मेरे मन में एक बात बार-बार प्रस्फुटित हो रही थी। उसे कल सायंकाल ही मैंने पितामह से कहा। एक मन्त्र है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रोऽअजायत ॥[1]

"तो यह कोमलांगी प्रसूति भावी समाज में बाँहों का काम करेगी ?"

"नहीं; अभिप्राय यह नहीं है। यह ऐसी सन्तान की सृष्टि करेगी जो मानव समाज की रक्षा का भार अपने पर लेगी।"

रोहिणी ने विस्मय में प्रसूति की ओर देखा। वह इन वाक्यों से गौरवान्वित अनुभव करने लगी थी। वह प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होती थी।

मरीचि ने भी प्रसूति की ओर देखा और कहा, "मैं समझता हूँ कि शीघ्र ही प्रसूति का विवाह रचा जाएगा।"

: ५ :

इसके कुछ दिन उपरान्त एक सायंकाल पितामह अपने प्रवचन में बता रहे थे कि परमात्मा की इच्छा से इस पृथिवी पर सृष्टि रची गई। पितामह ने यह बताया, "आज से चार संवत्सर पूर्व की बात है कि अपने आश्रम निवासी दक्ष ने मुझसे पूछा, 'मैं कहाँ से आया हूँ ?'

"इस प्रश्न पर मैंने कहा, 'तुम क्या हो ? पहले यह जानो।'

"दक्ष कहने लगा, 'मैं नहीं जानता।'

"मैंने उसे कहा, 'कल मध्याह्न के समय मेरे साथ चलना। यहाँ से कुछ दूर चलना होगा। वहाँ तुम्हें कुछ दिखाऊँगा।'

"अगले दिन मैं उसे यहाँ से एक प्रहर की यात्रा के अन्तर पर ले गया। वहाँ एक अश्वत्थ के वृक्ष के नीचे एक गड्ढे में बहुत तीव्र किरणें वृक्ष के पत्तों पर से छनकर भूमि पर पड़ रही थीं। उन किरणों से गड्ढे में उथल-पुथल मच रही थी, मानो किसी बर्तन में मट्ठा मथनी से मथा जा रहा हो। वहाँ की भूमि उस मथन से बुलबुले छोड़ रही थी। दक्ष विस्मय में देखता रह गया। मैंने उससे पूछा, 'ये तीव्र किरणें कहाँ से आ रही हैं?'

"उसने वृक्ष की ओर देखा। वृक्ष अति मनोहर दिखाई दे रहा था। उसके पत्ते सुनहरी आभा लिए हुए थे और पूर्ण वृक्ष विशेष ओज से प्रज्वलित था। दक्ष ने पूछा, 'किरणें इस वृक्ष के पत्तों में से छनकर आ रही हैं, परन्तु यह वृक्ष को क्या हो रहा है ? यह वृक्ष हँस रहा प्रतीत होता है।'

" 'हाँ।' मैंने कहा, 'वृक्ष पर सोम छाया हुआ है। उस सोम से इसकी शोभा

---

१. यह जो मानव समाज बनने वाला है, उसमें जो शिर का काम करेंगे, वे ब्राह्मण कहलाएँगे; जो बाँहों का कार्य करेंगे, वे क्षत्रिय कहे जाएँगे; जो पेट का कार्य करेंगे, वे वैश्य कहे जाएँगे और पाँव का काम करने वालों को शूद्र कहा जाएगा।—यजु० ३१-११

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई सौ गुणा बढ़ रही है, परन्तु यह चिरकाल तक नहीं रहेगी। इस वृक्ष की शोभा देख रोहिणी ने अपनी किरणें यहाँ डालकर भूमि पर विक्षोभ उत्पन्न कर रखा है।'

" 'इससे क्या होगा ?' दक्ष का प्रश्न था।'

"मेरा उत्तर था, 'देखते जाओ।'

"आधी घड़ी भर वह विक्षोभ चलता रहा। उसके उपरान्त भूमि का उबाल बन्द हो गया और उस गड्ढे में कुछ बन गया। मैंने दक्ष को बताया, 'यह कलल है।'

" 'इससे क्या होगा ?'

"मैंने कहा, 'यह कल आकर देखेंगे।'

"अगले दिन हम दोनों पुनः उसी स्थान पर गए। वह कलल सिकुड़कर एक पिण्डवत् हो गया था। उसके ऊपर एक श्वेत रंग की फफूंद की भाँति की वस्तु जम रही थी।

"इसके उपरान्त उसे हम नित्य देखने जाते रहे। लगभग दस मास के उपरान्त हम वहाँ गए तो वह अण्डा, जो तब तक एक सुदृढ़ श्वेत छिलके का बन चुका था और जिसका आकार एक मटके के बराबर हो चुका था, तिड़क गया था। हमारे देखते-देखते वह फूट गया और उसमें से एक मानव बाहर निकल आया। हमने उसे आश्रय दे उठाया और धीरे-धीरे चलाया। कुछ ही देर उपरान्त वह स्वयमेव चलने लगा। तब हम उसे नदी के किनारे ले गए। वहाँ हमने उसे स्नान कराया और फिर उसे साथ लेकर इस आश्रम में आ गए। वह नारद था।

"इसी प्रकार हम सब बने हैं। नारद के उपरान्त ऐसी सृष्टि हमारे आश्रम के समीप नहीं हुई। महर्षि अत्रि ने बताया है कि रोहिणी नक्षत्र अब पृथिवी से दूर किसी अन्य लोक में चला गया है। अतः अब इस प्रकार से सृष्टि होनी सम्भव नहीं रही। इस पृथिवी पर अब भगवान् वैवस्वत मनु कन्याओं की सृष्टि कर रहे हैं। उन्होंने मेरे ज्ञान में अभी चार कन्याएँ रची हैं। उन चारों का पालन और शिक्षा-दीक्षा हमारे आश्रम में हुई है। भगवान् वैवस्वत का यह आदेश है कि इन कन्याओं से मैथुनीय सृष्टि करें। उसी प्रकार जैसे वन पशु करते हैं।

"मैंने सनक, सनन्दन से कहा कि वे सृष्टि करें। उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया कि यह पशु कर्म है। मैंने अपने आश्रम के छः ऋषियों से कहा है कि वे इन कन्याओं से सृष्टि करें। उनमें से केवल महर्षि मरीचि ने यह कार्य स्वीकार किया है, परन्तु उसके अभी तक कोई सन्तान नहीं हुई। दो कन्याएँ हमने पहले विवाह दी हैं। एक प्रजापति रुचि से और दूसरी प्रजापति कर्दम से। वे दोनों कन्याएँ कुछ अधिक सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ रही हैं। प्रजापति रुचि और देवहूति ने एक ही प्रसव किया है। उससे एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ है। प्रजापति कर्दम के अभी तक कोई सन्तान नहीं हुई। रुचि के विवाह को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबीस-पच्चीस संवत्सर व्यतीत हो चुके हैं।

"अब आश्रम में प्रसूति आई है। यह सब प्रकार से इस योग्य है कि सृष्टि उत्पन्न करे। मैं इसके लिए कोई योग्य वर ढूँढ़ रहा हूँ।"

"पितामह।" अंगिरा ने कहा, "इस बार आप स्वयं यत्न करें। प्रसूति आपके सर्वथा योग्य है।"

"वह मेरी पुत्री समान है। साथ ही मैं इस समय दो मन्वन्तर की वयस का हो चुका हूँ। मैं वृद्ध हो रहा हूँ। कोई अन्य योग्य वर मिलते ही इसका विवाह कर दूँगा।"

पितामह से यह सब सुनकर प्रसूति ने आज पुनः प्रश्न पूछने आरम्भ कर दिए। उसने पूछा, "भगवान् वृद्ध क्या होता है?"

"प्रत्येक मनुष्य, जो इस स्थान पर उत्पन्न हुआ है; एक न एक दिन मृत्यु को प्राप्त होगा। आप सबने देखा कि एक दिन बैल गौशाला में लेट गया था और उसने श्वास लेना बन्द कर दिया था। तब हमने उसकी खाल उतरवा ली थी और उसे नदी में बहा दिया था। यह मृत्यु है।"

"पर ऐसा क्यों होता है?"

"शरीर कार्य करता-करता क्षीण हो जाता है और फिर काम करने योग्य नहीं रहता। तब इसमें उपस्थित चेतन पुरुष इसे छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाता है और शरीर प्राणरहित हो जाता है। उसको शीघ्रातिशीघ्र विनष्ट करने के लिए हमने उसे नदी में बहा दिया था। उस शरीर को जल-जन्तु खा गए थे और वह दुर्गन्ध फैलाने से बच गया।

"देखो प्रसूति! जब प्राणी उत्पन्न होता है और जब उसकी मृत्यु होती है, इन दोनों के बीच के काल को आयु कहते हैं।

"इस आयु के चार भाग किए गए हैं। प्रथम काल निर्माण का होता है। दूसरा काल यौवन का होता है। तीसरा मनन का और चौथा लोक-कल्याण करने का। आयु के दूसरे काल में सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए। मैं इस काल को व्यतीत कर चुका हूँ।"

"आपको भूतल पर आए कितने संवत्सर हुए हैं?"

"इस मन्वन्तर का नाम वैवस्वत मन्वन्तर है। इससे पहला मन्वन्तर चाक्षुष था। मैं उसके आरम्भ में इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ था। उस समय यह पृथ्वी जलमग्न थी। वराह ने जल का हरण किया तो भूमि जल से बाहर निकली। वह भूमि कमल समान जल से निकली थी।

"ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय भी रोहिणी नक्षत्र पृथ्वी के समीप था और इस पर अपनी किरणें भेज रहा था। उस पृथ्वी रूपी कमल की नाभि में विक्षोभ उत्पन्न हुआ और एक अण्डा बन गया, जिसमें से समय पाकर मैं उत्पन्न हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा जन्म भी आप सबकी भाँति ही हुआ है। उस समय कमल पर सोम की छाया थी और रोहिणी ने कमल नाभ को मथ डाला और मेरा यह शरीर बन गया।

"जब मेरा शरीर बना और मैं अपने इधर-उधर देखने लगा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उस कमल के चारों ओर भूमि पर वनस्पतियाँ बन रही थीं।

"मैं कमल से निकल भूमि पर विचरने लगा और वनस्पतियों एवं फलों को खाता हुआ जीवन चलाने लगा। तब मैंने तपस्या की और उस तपस्या में मैं समाधिस्थ हो गया। उस समाधि की अवस्था में एक मन्वन्तर निकल गया और वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर आ गया। जब मैं समाधि से उठा तो पृथ्वी पर घने वन बन चुके थे। उन वनों में जीव-जन्तु विचरने लगे थे। तब मैंने अपनी जैसी मानव-सृष्टि की इच्छा की।

"तब पुनः रोहिणी नक्षत्र द्युलोक में भ्रमण करता हुआ इस पृथ्वी के समीप आया और फिर यहाँ मानव-सृष्टि होने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आकार-विस्तार के, परन्तु भिन्न स्वभाव वाले लोग भी उत्पन्न हुए। वे वन पशुओं को मार-मारकर खाते थे। जब इस आश्रम में भी कुछ श्रेष्ठ मानव बन गए तो वे तुम्हें खाने के लिए आए। मैंने उनसे इस आश्रम की रक्षा की।

"ऐसा विदित हुआ है कि वे लोग परस्पर लड़-लड़कर मर चुके हैं। वे रूद्र थे।"

इस प्रवचन के अगले दिन दक्ष गौशाला का प्रबन्ध देखने के उपरान्त अपनी कुटिया को जा रहा था कि प्रसूति नदी तट की ओर से आती हुई मिल गई। प्रसूति प्रायः रोहिणी के साथ रहती थी। आज रोहिणी साथ नहीं थी, वह अकेली थी। दक्ष ने साथ-साथ चलते हुए पूछ लिया, "तुम्हारी सखी कहाँ है ?"

"कौन सखी ?"

"रोहिणी, महर्षि मरीचि की भार्या।"

"वह रुग्ण हैं। आज स्नानार्थ नदी तट पर नहीं गई।"

"क्या कष्ट है ?"

"कष्ट का मुझे ज्ञान नहीं। महर्षि गुरुवर रोहिणी देवी को लेकर पितामह के पास गए हैं। उनको जाते मैंने देखा था और पूछा था कि किस कारण वहाँ जा रही हैं ? गुरुजी ने बताया है कि वह रुग्ण है और पितामह से इसका उपचार पूछने जा रहे हैं।"

"कल पितामह ने तुम्हारे विषय में कुछ कहा है।"

"हाँ, मैंने भी सुना और समझा है।"

"तो तुम सन्तानोत्पत्ति करोगी ?"

"करूँगी तो सही, परन्तु कैसे करूँगी ? यह मैं जानती नहीं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं जानता हूँ। कल पितामह ने कहा था कि सनक-सनन्दन ने इसे पशु-कर्म बताया था और इसी कारण उन्होंने यह नहीं किया। इस पर मुझे पशुओं के एक कर्म का स्मरण हो आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस कर्म से सन्तानोत्पत्ति होती है। बछड़े-बछड़ियाँ उत्पन्न होती हैं।"

"परन्तु एक गाय को तो व्याते मैंने भी देखा है। वह बहुत कष्ट में प्रतीत हुई थी।"

"यह आवश्यक नहीं। कुछ बिना कष्ट के भी व्याती हैं।"

"ऐसा किस प्रकार हो सकता है?"

"पितामह ही बता सकेंगे।"

"मुझे विस्मय होता है कि वह इस विषय में कैसे जानते हैं?"

"वह बहुत कुछ जानते हैं। उनको तपस्या, साधना और समाधि द्वारा बहुत बातों का पता चल जाता है।"

"तो मैं उनसे पूछूँगी।"

"हाँ।"

उस दिन प्रातः के यज्ञ के उपरान्त प्रसूति ने रोहिणी से पूछा, "क्या कष्ट था बहन?"

"कष्ट? कष्ट कुछ नहीं था। न अब है। मैं अपने भीतर किसी प्रकार की सदा से भिन्न अवस्था अनुभव कर रही थी। इसका वर्णन मैंने महर्षि जी से किया तो वह बोले कि पितामह से बात करनी चाहिए। अतः हम दोनों वहाँ पहुँच गए। वह अपनी समाधि से उठे ही थे। जब मैंने नमस्कार किया तो उन्होंने बिना मेरे किसी प्रकार की बात किए स्वयं प्रसन्नता प्रकट करते हुए कह दिया कि मेरे सन्तान होगी।"

"कब?" मैंने आश्चर्य में पड़कर पूछा। वे बोले—'दस मास उपरान्त।'

"तो अभी बहुत दूर है?"

"पितामह ने मुझे महर्षि अत्रि से सम्मति करने के लिए कहा है।"

"वह क्या बताएँगे?" प्रसूति ने पूछा।

"यह मैं क्या जानूँ? आज किसी समय उनसे बात करूँगी।"

प्रसूति के मन में अस्पष्ट-सी उत्सुकता, आशा और भय उत्पन्न हो रहा था। वह इस सबको समझ नहीं रही थी। आज वह फल उद्यान से फल लेकर अपनी कुटिया में चली गई। उसने अपने पूर्व स्थान पर वृक्ष पर घोसलों में दो-दो पक्षियों को इकट्ठे रहते देखा था और उसे स्मरण कर वह अपनी कुटिया में भी किसी साथी की इच्छा करने लगी थी। उसे गुरु मरीचि और रोहिणी को एक ही कुटी में इकट्ठे रहते देख यह अनुभव होता था कि वे बहुत प्रसन्न हैं और अब रोहिणी कह रही थी कि उसके सन्तान होगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने विषय में भी विचार करती थी कि क्या उसकी भी कुटिया में कोई साथी आकर रहेगा। इस पर उसे दक्ष की बात स्मरण हो गई थी। पहले ही दिन उसने जब देखा तो वह उसे रुचिकर प्रतीत हुआ था। इस आश्रम को आते हुए कई बार उसे दक्ष के शरीर का स्पर्श हुआ था और उस स्पर्श से उसको कुछ अत्यन्त रोचक अनुभव हुआ था। इससे वह विचार करती थी कि किसी साथी के एक ही कुटी में रहने से वह रस प्राप्त होगा क्या? और उससे कुछ लाभ होगा अथवा हानि होगी?

आज वह सायं की उपासना और प्रवचन सुनने गई तो वह मन में चिन्तन कर रही थी कि वह क्यों और क्या है? वह इस विषय में पितामह से जानना चाहती थी।

: ६ :

उस दिन यज्ञशाला पर एक विलक्षण हलचल थी। ज्यों ही प्रसूति ने यज्ञ-शाला में प्रवेश किया तो सामने दक्ष खड़ा दिखाई दिया। प्रसूति ने पूछा, "आज यहाँ क्या है? सब लोग किसलिए खड़े हैं? ये बैठ क्यों नहीं रहे?"

"तो तुम कहाँ थीं? यहाँ तो अभी-अभी एक भयंकर घटना घटी है।"

"क्या हुआ?"

"कुछ मनुष्य बाहर कहीं से आकर आश्रम में घुस गए। वे हमारी फुलवारी और पशुशाला को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। महर्षि अत्रि भागे-भागे पितामह के पास आए और उन्होंने सब बात बताई तो पितामह अपनी कुटिया से बाहर आ गए और अपने हाथ के संकेत से उन्हें विनाशकारी कार्य करने से मना करने लगे।

"वे नहीं माने तो पितामह ने केवल संकेत मात्र से उनको धकेल-धकेलकर आश्रम से बाहर निकाल दिया।"

"केवल संकेत से?"

"हाँ! वे ऐसे पीछे हटते हुए आश्रम से बाहर हो गए जैसे कि धकेले जा रहे हों।"

"तब?"

"अब वे आश्रम के बाहर एकत्रित हो अपनी स्थिति पर विचार कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस आश्रम में पशुओं और फलों की बगिया को देख गए हैं; साथ ही हमारी कुटियाओं को देख चुके हैं। वे हम सबको मारकर ऐसे ही खा जाने का विचार कर रहे हैं जैसे वे वन पशुओं को खा जाते हैं।

"उनमें पुरुष-स्त्री तथा बालक भी हैं। वे सब आश्रम से बाहर धकेले जाने पर विस्मित हैं और पुनः आक्रमण की योजना बना रहे प्रतीत होते हैं।"

"वे सब कितने हैं?"

"कई सौ हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय पितामह कुटिया से निकलकर यज्ञशाला में आ गए। पितामह की आज्ञा से सब बैठ गए और हवन आरम्भ हुआ।

अग्नि में हवि डाली जाने लगी तो अग्नि प्रदीप्त हो उठी और ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगीं। साथ ही सब आश्रमवासियों के मन्त्रोच्चारण की ध्वनि उठने लगी।

इस समय आश्रम के बाहर खड़े व्यक्तियों में से एक व्यक्ति आश्रम का द्वार लाँघकर भीतर आ गया। वह अकेला था और हृष्ट-पुष्ट एवं बलशाली प्रतीत होता था।

उसे अकेला आते देख यज्ञशाला में बैठे लोग कुछ-कुछ बेचैनी अनुभव करने लगे थे, परन्तु पितामह को मन्त्रोच्चारण करते देख सब स्वर सहित गान करते रहे।

ओं तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।
समानमु प्र शंसिषम् ॥
ओं असृग्रामेन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
सजोषा वृषभं पतिम् ॥

वह बलिष्ट पुरुष यज्ञ वेदी के समीप आकर खड़ा हो गया। उसने दोनों हाथ उठाए हुए थे। आश्रमवासी इसका अर्थ नहीं समझ रहे थे।

पितामह ने भी उसे देखा और अपने हाथ के संकेत से उसे भीतर चले आने का संकेत किया। वह आया तो पितामह ने उसे बैठे-बैठे ही अपने समीप आने का संकेत किया। वह भयभीत प्रतीत होता था। पग-पग कर वह आगे बढ़ने लगा। बैठे हुओं के पीछे से होता हुआ वह पितामह के समीप आ खड़ा हुआ।

मन्त्रोच्चारण अब भी चल रहा था और घी एवं अन्य द्रव्यों की आहुतियाँ दी जा रही थीं। सब लोग एक स्वर से मन्त्र गान कर रहे थे—

ओं सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा।
मित्रास्पान्त्य द्रुहः॥

इस प्रकार मन्त्र पर मन्त्र बोले जा रहे थे। आक्रमणकारियों का दूत, सर्वथा अवस्त्र, पितामह के पीछे खड़ा हुआ था। हवन समाप्त हुआ और पितामह ने अँगुली के संकेत से उस दूत को अपने समक्ष आने को कहा। वह व्यक्ति सामने आकर हवन-कुण्ड के समीप खड़ा हो गया। पितामह ने उसे बैठने का संकेत कर कहा, "निषीद।"

वह बैठ गया। पितामह ने अग्नि की ओर संकेत कर और स्वयं हाथ जोड़ कहा, "प्रणाम करो।" दूत ने प्रणाम कर दिया। अब पितामह ने संकेत से पूछा, "क्या चाहते हो?"

इस पर उस दूत ने कुछ शब्दों का उच्चारण किया जिसे कोई नहीं समझ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका, परन्तु पितामह समझ गए। वे मुस्कराकर यज्ञ वेदी पर बैठे आश्रम निवासियों से बोले, "यह कह रहा है कि इसके लोग हमसे युद्ध करने आए हैं। अतः एक से एक का युद्ध हो जाए और जो विजयी हो, उसके पक्ष के लोग दूसरे के अधीन हो जाएँ।

"यह यह भी कहता है कि अपने अधीन व्यक्तियों को ये मारकर खा जाते हैं।"

आश्रमवासी समझ नहीं सके कि पितामह उस व्यक्ति के कुछ ही शब्दों से इतनी बड़ी बात कैसे समझ सके हैं? सब विस्मय में पितामह का मुख देखते रह गए। जब कोई नहीं बोला तो दक्ष उठकर पितामह से पूछने लगा, "भगवन्! आप कैसे कहते हैं कि यह युद्ध का आह्वान कर रहा है?"

"यह एक अति सरल-सी बात है। इसके साथी वन-वन में घूमते हुए पशु-पक्षियों को मार-मार उनका मांस खा-खाकर जीवन चलाते हैं। कुछ वन पशु बहुत बलशाली होते हैं। इनमें से एक उसको परास्त कर उसकी हत्या नहीं कर सकता। अतः ये सब एक ही परिवार के लोग हैं और ये इकट्ठे होकर पशु को मार खाते हैं। अपने भोजन की खोज में ये यहाँ आए हैं और हमको भी वन पशु समझ हम पर आक्रमण कर बैठे हैं। यहाँ जब तक इनके फल खाने तक बात थी, मैंने सहन की; परन्तु ज्यों ही ये आश्रम के पशुओं पर लपके तो मैंने इनको धकेलकर आश्रम से बाहर कर दिया।

"इन्होंने आश्रम के बाहर विचार किया है और इन्होंने एक का एक से युद्ध का आह्वान किया है। यही यह कह रहा है।"

अब दक्ष ने हाथ खड़ा कर कहा, "मैं इनमें से किसी के साथ भी लड़ने के लिए उद्यत हूँ।"

"ठीक है। तुम इस योग्य भी हो। इस पर भी देख लो; ये तुम्हारी हत्या भी कर सकते हैं।"

"वह क्या होती है?"

"कभी तुमने दो वन-पशुओं को लड़ते देखा है अथवा नहीं?"

"देखा है भगवन्।"

"कहाँ?"

"एक दिन मैं भ्रमण करता हुआ आश्रम से दूर चला गया था और वहाँ दो मृगों को एक मृगी का भोग करने के प्रयास में लड़ते देखा था।"

"फिर क्या हुआ था?"

"एक मृग ने लड़ते हुए दूसरे के पेट में अपने सींग चुभोकर उसे फाड़ डाला था। जब घायल मृग भूमि पर तड़पड़ा रहा था, विजयी मृग मृगी का भोग करने लगा था।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, वैसा ही ये करना चाहते हैं। एक बात यह और चाहता है कि तुममें से एक के पराजित होने अथवा विजयी होने से हमारा पूर्ण आश्रम अपने को पराजित अथवा विजयी समझे। पराजित होने पर पूर्ण आश्रम इनके अधीन हो जाएगा और हम सब इनके दास बन जाएँगे। इसी प्रकार यदि ये पराजित हुए तो ये हमारे दास बन जाएँगे।"

"मैं अपने लिए लड़ने को उद्यत हूँ। पूर्ण आश्रम की बात आप जानें।"

पितामह ने उस दूत को समझाने का यत्न किया, "एक से एक लड़ सकता है। वह एक ही पराजित अथवा विजयी होगा। पूर्ण परिवार अथवा आश्रम नहीं।"

इस पर उसने कुछ संकेत किया जिसका अर्थ यह समझा गया कि वह अपने साथियों से सम्मति करके ही बताएगा।

पितामह ने उसे जाने दिया। वनचरों के दूत के चले जाने पर पितामह ने आश्रमवासियों को अपना सायंकाल का प्रवचन देना आरम्भ कर दिया। पितामह ने कहा, "वर्तमान जैसे संकट की तो मैं सदा आशंका करता रहा हूँ। किसी वन पशुओं के यूथ का आक्रमण मुझपर अथवा आश्रम पर सदा सम्भव रहा है। ये लोग वन पशुओं से कुछ सीमा तक ही श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार का प्रस्ताव जो यह लेकर आए हैं, वह वन पशुओं से नहीं हो सकता। यह बुद्धि से विचारित बात है। फिर भी यह ठीक बात नहीं। यह सर्वथा पशुपन तो नहीं; हाँ पशुओं की-सी बात तो है ही। यह युद्ध से बात निश्चय करने आया था; परन्तु यह अभी तक यह नहीं समझा कि जिसने इन सबको धकेलकर बाहर किया है, वह अब भी और कभी भी इनको विनष्ट भी कर सकता है। अतः ये लोग अति सीमित बुद्धि रखते हैं।

"यदि दक्ष इनमें से किसी से भी युद्ध करेगा तो निश्चय ही विजयी होगा। दक्ष में बल भी है और बुद्धि भी है। बल तथा बुद्धि दोनों के संयोग से दुस्तर से दुस्तर कठिनाई को पार किया जा सकता है।

"फिर भी मैं एक बात कहता हूँ कि यदि ये प्रभात होने तक यहाँ से चले नहीं गए तो प्रातः ये सब आश्रम में बन्दी बना लिए जाएँगे और फिर बन्दी जीवन में इनको सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का यत्न करूँगा।"

परन्तु इनको कुछ अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वही बलिष्ठ वनचरों का दूत आया और यज्ञशाला के समीप खड़े होकर हाथ उठा-उठाकर युद्ध घोष करता दिखाई देने लगा।

पितामह उठकर यज्ञशाला के नीचे खुले क्षेत्र में आ खड़े हुए। उनके साथ दक्ष और अन्य आश्रमवासी खड़े थे। रोहिणी और प्रसूति भी खड़ी थीं। पितामह ने आगे आकर उस व्यक्ति को शान्त कर संकेत से कहा कि वह अपने साथियों को भी बुला ले और वे भी युद्ध देख लें।

वनचरों के दूत ने इसे एक श्रेष्ठ योजना समझी और वह आश्रम के बाहर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर अपने कुछ साथियों को, जिनमें कुछ स्त्रियाँ और बालक भी थे, साथ ले भीतर आ गया। अन्य लोग बाहर ही खड़े थे। वनचर आश्रमवासियों के सामने युद्धक्षेत्र के एक ओर खड़ा हो गया और आश्रमवासी यज्ञशाला की ओर पीठ किए खड़े थे। वनचरों का योद्धा दोनों दलों के बीच में खड़ा था।

दक्ष मैदान में निकल आया और उसने ऊँचे स्वर में कहा, "आओ।"

वनचरों का योद्धा शिर आगे कर, मानो वह अपने शिर से प्रहार करेगा, दक्ष की ओर लपका। उसके शिर का निशाना दक्ष का पेट था।

दक्ष उसके टक्कर मारने से आधा क्षण पहले दो पग एक ओर हट गया। आक्रमण करने वाला, अपने ही वेग में, निशाना मार्ग से हट जाने पर, लुढ़कता हुआ चार-पाँच पग आगे जाकर भूमि पर गिर पड़ा। दक्ष एक बार एक जंगली वराह के आक्रमण से इसी प्रकार बचा था। इसके आक्रमण से भी वह बच गया। इस बार उसने एक बात और की। ज्यों ही वह वन योद्धा भूमि पर लुढ़का कि दक्ष ने पीछे से भागकर उसके उठने से पूर्व उसके चूतड़ों पर एक लात जमाई। वह उठता-उठता फिर गिरा। दक्ष ने एक लात और लगाई। वह फिर गिर पड़ा। इस बार वह पराजित हो भूमि पर पीठ के बल लेट गया और टाँगें और हाथ पसारकर आँखें मूँदें लेटा रहा।

यह देख पितामह ने आगे बढ़कर हाथ उठा युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी। अब वनचरों ने मिलकर आश्रमवासियों पर आक्रमण करना चाहा परन्तु पुनः पितामह ने अपने योगबल से उनको ऐसे रोक दिया जैसे कि सामने दीवार खड़ी कर दी गई हो।

पितामह ने भूमि पर चित्त लेटे व्यक्ति के समीप आ उसे उठने के लिए कहा। भूमि पर लेटे व्यक्ति ने आँखें खोल हाथों के संकेत से कहा कि वह मर गया है। मुख से भी उसने कुछ कहा। दक्ष कुछ अन्तर पर खड़ा था और भयभीत वनचर सामने एक पंक्ति में खड़े थे। वे आगे बढ़ना चाहते थे, परन्तु बढ़ नहीं सकते थे।

पितामह ने हाथ के संकेत से भूमि पर चित्त पड़े व्यक्ति को कहा, "उठो।"

वह वनचर पहले उठकर भूमि पर बैठ गया; तदनन्तर भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करने लगा।

प्रणाम कर वह उठा और हाथ जोड़ सामने खड़ा हो गया। इस समय वनचरों में से एक स्त्री अपने साथ दो बच्चे लिए हुए उस योद्धा के समीप आ खड़ी हुई। योद्धा ने संकेत से कहा कि वह पराजित हो गया है, अतः वह इनका दास हो गया है। उसने साथ ही खड़ी स्त्री और बच्चों के ऊपर हाथ रखकर कहा कि ये उसके अपने हैं और वे भी दास हो गए हैं।

पितामह ने कहा, "तुम निर्भय हो जाना चाहो तो जा सकते हो और तुम्हारे साथी भी जा सकते हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योद्धा ने अपने साथ खड़ी स्त्री की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि में देखा। स्त्री ने कुछ अपनी ही बोली में कहा और योद्धा ने हाथ के संकेत से पितामह के चरणों में रहने की बात कह दी।

पितामह ने एक क्षण तक विचार किया और कहा, "तथास्तु।"

इस पर वनचरों का अधिकांश स्त्री वर्ग वनचरों को छोड़ पितामह के सामने खड़ा हो गया। तब वे सब भूमि पर लेट साष्टांग प्रणाम करने लगीं। पितामह ने उनको उठने का संकेत किया और वे सब खड़ी हो गईं और वैसा ही संकेत करने लगीं जैसे दास बनने का वनचर योद्धा कर रहा था।

पितामह ने उनके पुरुषों की ओर संकेत कर कहा कि वे उनके पास चली जाएँ।

एक युवती जो सम्भवतः अभी अविवाहित थी, अपने लोगों की ओर देखकर थूकने लगी।

पितामह ने समीप खड़े वनचर योद्धा को समझाने का यत्न किया कि वह उन स्त्रियों को अपने पुरुषों के पास जाने के लिए कह दे।

पुरुष ने उसी युवती की ओर देखकर कहा। उस युवती ने भी कुछ बात कही। तब योद्धा ने सिर हिलाते हुए पितामह को समझाने का यत्न किया कि ये स्त्रियाँ नहीं जाएँगी। ये सब आप लोगों के पास रहना चाहेंगी।

पितामह ने कुछ देर मौन रहकर विचार किया और तदनन्तर तथास्तु कह दिया।

: ७ :

आक्रमण करनेवाले वनचरों की संख्या दो सौ से अधिक थी। उनमें से कुछ ही लोग आश्रम के भीतर आए थे। भीतर आई स्त्रियों की संख्या बीस के लगभग थी। उनके साथ दस के लगभग बच्चे थे जो माताओं की गोदी में थे अथवा अल्पायु थे और माताओं के साथ खड़े हुए थे। सब बीस की बीस स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न वयस की थीं। इन सबमें से वे जो पितामह के आश्रम में रहने के लिए पितामह के सामने भूमि पर लेट और बैठ गए थे, ग्यारह स्त्रियाँ थीं और उनकी गोद में पाँच बच्चे थे। कुछ कुमारी लड़कियाँ थीं; उनकी गोद में कोई बच्चा नहीं था। केवल एक कुमार था। शेष पुरुष और बच्चे तथा आठ-नौ प्रौढ़ावस्था की स्त्रियाँ दूसरी ओर खड़ी थीं।

जब पितामह ने दूसरी ओर खड़े वनचरों को कहा कि आश्रम से निकल जाएँ तो वे लालसा भरी दृष्टि से अपनी स्त्रियों की ओर देखते रहे। उनमें से एक पुरुष ने कुछ कहा और सब पुरुष तथा कुमार लपककर अपनी स्त्रियों की ओर बढ़े और उनको बाँहों से पकड़कर आश्रम के द्वार की ओर घसीटने लगे। वे स्त्रियाँ चीखें मारने लगीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोर आर्तनाद मच गया। पहले तो आश्रमवासी और पितामह चुपचाप यह खींचातानी देखते रहे। एकाएक पितामह ने ऊँचे स्वर में कहा, "ठहरो।"

साथ ही उसने अपना दाहिना हाथ ऊँचा कर उनको खींचा-खाँची करने से रोकने का संकेत किया।

परन्तु स्त्रियों की चीख-पुकार में और क्रोधावेश में वनचरों ने न तो पितामह के स्वर को सुना, न समझा और उन्होंने स्त्रियों को घसीटना जारी रखा।

दक्ष उन स्त्रियों को बचाने के लिए आगे को बढ़ा, परन्तु पितामह ने उसे कहा, "रुको।"

दक्ष बीच में ही ठहर गया। इस पर पितामह ने हाथ को हिलाते हुए वनचरों को निकल जाने का संकेत करना आरम्भ किया। प्रत्येक हाथ के संकेत से एक पुरुष उस द्वारा पकड़ी स्त्री से पृथक् हो जाता था और फिर आश्रम से बाहर ऐसे फेंक दिया जाता था जैसे कि हवा के झोंके में कोई सूखा पत्ता उड़ जाए।

इस प्रकार सबके सब वनचर जो स्त्रियों पर बल प्रयोग कर उनको घसीटते हुए लिए जा रहे थे, आश्रम से बाहर फेंक दिए गए। पितामह उनके पीछे-पीछे आश्रम के द्वार पर पहुँचे। पितामह को देख सब वनचर और उनके साथ स्त्रियाँ तथा कुमार सिर पर पाँव रख भिन्न-भिन्न दिशाओं को भाग गए।

रोहिणी और प्रसूति को पितामह ने कहा, "इन स्त्रियों को नदी तट पर ले जाओ। स्नान कराओ और भण्डार से लेकर उनको उत्तरीय पहना दो।" गोद के बच्चों को साथ लेकर स्त्रियाँ नदी को चल दीं।

उनमें कुछ कुमार थे। उनको महर्षि अत्रि के साथ स्नानादि के लिए भेज दिया गया। दक्ष को कहा गया कि इनको पेट भरने के लिए दूध, नवनीत, फल और कन्द-मूल इत्यादि तैयार कर दिए जाएँ।

आश्रमवासियों में सबसे अधिक चिन्तित महर्षि मरीचि थे। जब सब आश्रम-वासी अपने-अपने कार्य में लग गए तो वह पितामह की कुटिया में आए और अपने मन का संशय वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा, "भगवन्! यह आपने क्या किया है?"

"काल की गति देख यही उचित प्रतीत हुआ है। हम आश्रमवासी इक्यावन हैं। इन इक्यावन आश्रमवासियों में केवल दो स्त्रियाँ हैं। मैं देख रहा था कि इन वनचरों में कम-से-कम पाँच छः स्त्रियाँ ऐसी हैं जो पत्नी बनने के योग्य हैं। उनसे आप लोग सन्तान उत्पन्न करेंगे।"

"परन्तु पितामह! हमारे लोग यह कार्य पसन्द नहीं करते। वे इसे पशु-कर्म ही समझते हैं।"

पितामह ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "और तुम इसे क्या समझते हो?"

"मैं तो इसे स्वर्गीय आनन्द मानता हूँ। रोहिणी भी यही कहती है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु मरीचि ! यह आनन्द भारी उत्तरदायित्व का सूचक भी है। जो नए जीव इस लोक में आएँगे, वे तुम सबकी भाँति एक-दो दिन में ही अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना नहीं सीख सकेंगे। उनको इस योग्य होने में कई संवत्सर लगेंगे। तब तक सन्तान के माता-पिता को उनकी देख-रेख करनी होगी।"

मरीचि मुख देखता रह गया। फिर कुछ विचारकर बोला, "परन्तु मेरा प्रश्न तो बना ही है। कौन पुरुष इन स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न करेंगे? वे सब इस कर्म में अरुचि रखते हैं।"

"उनमें यह रुचि ये स्त्रियाँ उत्पन्न कर देंगी। ये जलती अग्नि हैं। कीट, पतंग की भाँति लोग इस अग्नि में भस्म होने चले आएँगे।"

मरीचि चकित रह गया। उसे मौन देख पितामह ने कहा, "एक ऋचा है—

अश्विना पुरुदंससा नरा शचीरया धिया।

धिष्ण्या वनतं गिरः ॥[1]

"बताओ, इस वेद वाणी को कैसे असत्य सिद्ध कर सकोगे? देखो मरीचि, यह होना ही है। अन्यथा श्रेष्ठ लोग इस संसार में दास बना लिए जाएँगे अथवा मार डाले जाएँगे।

"देखा है न, वे जो आए थे; हमसे अधिक संख्या में थे? हमने अपनी बुद्धि तथा ज्ञान बल से उनको पराजित कर लौटा दिया है, परन्तु यह बुद्धि और ज्ञान भी बहुसंख्या के सम्मुख ठहर नहीं सकेगा। इस कारण संख्या में वृद्धि भी एक धर्म है।

"अन्यथा दुष्ट संख्या में बढ़ जाएँगे। वे सांसारिक ज्ञान भी प्राप्त कर लेंगे। तब वे विद्वानों और देवताओं को वन पशुओं की भाँति मार-मारकर खा जाएँगे अथवा गौशाला के पशुओं की भाँति अपनी शालाओं में बाँध उनका दूध दोह-दोह कर पान करेंगे।"

मरीचि निरुत्तर हो गया। फिर भी उसने एक आशंका प्रस्तुत कर दी। उसने कहा, "इससे वर्ण संकर और भ्रंश वाणी की सृष्टि होगी।"

"हाँ, परन्तु यह तभी होगा जब हमारे शिक्षक प्रमाद एवं आलस्य के कारण अपना कर्तव्य पालन करना छोड़ देंगे। यह तो हुई विद्या की बात; परन्तु वर्ण संकर की बात मैं नहीं समझा।"

"हम सर्वथा श्वेत वर्ण के हैं। ये लोग कुछ मैले वर्ण के हैं। इनसे हमारी सन्तान

---

१. हे स्त्री-पुरुषो ! आप महान् कर्म करने में कुशल हैं। आप प्रजाओं (सन्तान) के नायक हो। तुम ज्ञानयुक्त बुद्धि से मुक्त होवो। तुम शत्रुओं को दमन करने योग्य हो। (ऋ० १-३-२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इन्हीं के वर्ण की होगी।"

"हाँ शरीर से। परन्तु जीवात्मा तो वर्णरहित है; उसका कोई वर्ण नहीं। बुद्धि और मन मानस पिताओं की करनी से बिगड़ेंगे अथवा बनेंगे। उसमें इनकी चमड़ी का रंग हस्तक्षेप नहीं करेगा।"

मरीचि का समाधान हो गया और वह नमस्कार कर कुटिया से बाहर निकल आया। जब वह अपनी कुटिया में पहुँचा तो रोहिणी और प्रसूति वहाँ पहुँच चुकी थीं। रोहिणी ने छूटते ही कहा, "ये स्त्रियाँ हमसे विलक्षण हैं।"

"क्या विलक्षणता देखी है तुमने इनमें ?" महर्षि का प्रश्न था।

"ये स्त्रियाँ स्नान करती हुई भी परस्पर ऐसे कलोल करने लगी थीं जैसे कि वे परस्पर स्त्री-पुरुष हैं।"

महर्षि मुस्कराया और चुप रहा। वह प्रसूति के सम्मुख इस विषय पर बात करना नहीं चाहता था। इस समय प्रसूति ने कहा, "गुरुवर ! मैं कई दिन से दक्ष से विवाह की इच्छा कर रही हूँ। अब इन नई आई स्त्रियों को देख मैं समझती हूँ कि मुझे अभी पितामह से जाकर अपने मन की बात कहनी चाहिए।"

"परन्तु तुम्हारी बात से इन स्त्रियों का क्या सम्बन्ध है ?"

"मेरा मन कहता है कि ये दक्ष को झपट ले जाएँगी और मैं मुख देखती रह जाऊँगी।"

"तुम क्यों मुख देखती रह जाओगी ?"

"मैं बता नहीं सकती। मेरे मन में कुछ है जिसको मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। मेरा मन कहता है कि दक्ष से विवाह करूँ और उनको कहीं दूर ले जाऊँ जहाँ इन स्त्रियों के दर्शन भी न हो सकें।"

"इसे अपनी भाषा में ईर्ष्या कहते हैं। किसी दूसरे को वह प्राप्त करते देख जो हम प्राप्त नहीं कर सकते; उस दूसरे के प्रति घृणा-भाव ईर्ष्या कहलाती है। परन्तु दक्ष के विषय में तुम्हारी धारणा मिथ्या है।"

"फिर भी मैं शीघ्र विवाह चाहती हूँ।"

"अभी तुम जाओ और अपने इस ईर्ष्या की भावना को चित्त से निकाल उसे शुद्ध करने का यत्न करो। मैं अभी दक्ष को बुलाकर बात करता हूँ।"

मरीचि स्वयं उठा और दक्ष को ढूंढ़ने चल पड़ा। वह गौशाला में आश्रम में आए प्राणियों को फल, कन्द-मूल और दुग्ध वितरण कर रहा था।

मरीचि वहाँ गया तो दक्ष अपना कार्य लगभग समाप्त कर चुका था। एक-दो बालक और थे। उनको फल इत्यादि दिए जा रहे थे। सब खाने की सामग्री ले-लेकर गौशाला से बाहर जा रहे थे। वे स्त्रियाँ, बालक तथा युवतियाँ आश्रम के प्रांगण में एक बड़ के वृक्ष के नीचे बैठे खा रहे थे और वहीं सोने का विचार कर रहे थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु एक स्त्री दक्ष के पास ही बैठी थी। यह वही थी जिसने वनचर योद्धा के कहने पर कि वे अपने पुरुषों के साथ जाएँ, अपने पुरुषों की ओर देखकर थूका था।

जब दक्ष अपने काम से अवकाश पा गया तो वह मरीचि के उस समय वहाँ आने का कारण जानने के लिए उसके मुख पर देखने लगा।

मरीचि ने उस स्त्री की ओर संकेत कर, जो दक्ष के सम्मुख बैठी थी; पूछ लिया, "यह किसलिए बैठी है ?"

"मैं नहीं जानता। यह जाती ही नहीं। कुछ कहती है जो मैं समझ नहीं सका।"

मरीचि ने प्रश्न-भरी दृष्टि में उस स्त्री की ओर देखा तो वह स्त्री महर्षि का आशय समझ सोने का संकेत कर दक्ष की ओर देखने लगी। महर्षि समझ गए कि वह स्त्री दक्ष के साथ सोना चाहती है अथवा वह उसकी कुटिया में जाकर रहना चाहती है। इस पर उसे प्रसूति के कथन में सत्यता दिखाई दी। साथ ही उसे प्रसूति में इस स्त्री के प्रति ईर्ष्या पर विस्मय भी हुआ।

महर्षि ने दक्ष को कहा, "तुम मेरे साथ जाओ। हम पितामह के पास चलेंगे।"

"क्या कार्य है ?"

"चलो, वहीं चलकर बात करेंगे।"

"पहले मैं इसे अपनी कुटिया में छोड़ आऊँ। यह मेरी कुटिया में सोना चाहती है।"

"यह तुम्हें पितामह की सम्मति के बिना नहीं करना चाहिए।"

"क्या नहीं करना चाहिए ?"

"अपनी कुटिया में किसी को स्थान देना।"

"मुझे यह स्त्री बहुत भली प्रतीत हो रही है। इसमें एक विशेष आकर्षण है।"

"प्रसूति से भी अधिक ?"

प्रसूति का नाम सुनकर दक्ष गम्भीर विचार में निमग्न हो गया। एकाएक वह उठा और मरीचि से बोला, "महर्षि ! चलिए, मैं आज ही प्रसूति से विवाह करूँगा।"

"और इस स्त्री से नहीं ?"

"नहीं ! इससे विवाह नहीं करूँगा।"

इस समय दोनों पितामह की कुटिया की ओर चल पड़े। वह युवती भी इनके साथ-साथ चल पड़ी। जब दक्ष ने उसे साथ-साथ आते देखा तो हाथ के संकेत से एक वृक्ष के समीप ठहरने के लिए कहा और स्वयं लौटकर वहाँ आने की बात समझा दी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह स्त्री वहीं ठहर गई। ये दोनों पितामह की कुटिया में जा पहुँचे। पितामह अभी भी अपने आसन पर बैठे चिन्तन कर रहे थे। कुटिया में अँधेरा हो रहा था। धीमा-सा प्रकाश रह गया था। उस प्रकाश में ही पितामह ने इनको पहचाना तो पूछ लिया, "महर्षि ! अब किस कारण से आए हो ?"

"पितामह ! दक्ष कहता है कि वह प्रसूति से इसी समय विवाह करना चाहता है।"

"और वह क्या चाहती है ?"

"वह भी इससे विवाह करना चाहती है।"

"इसी समय ?"

"यह तो दक्ष चाहता है।"

"हाँ, हो सकता है। प्रसूति को बुला लाओ।"

दक्ष को वहीं छोड़ मरीचि प्रसूति को ढूँढ़ने चला गया। दक्ष ने पितामह से पूछा, "क्या बिना विवाह के कोई पुरुष किसी स्त्री से सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता ?"

"कर सकता है। परन्तु वह कार्य पशु जीवन की ओर दूसरा पग होगा। प्रथम पग है पुरुष-स्त्री में सन्तान उत्पन्न करना। यह उससे अधिक पशुपन होगा। यह सन्तानोत्पत्ति में मिलने वाले रस के कारण ही है। यह घोर पशुपन है।"

"और निपट पशुपन क्या है ?" दक्ष ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

"वह है स्त्री संसर्ग तो करना, परन्तु सन्तान उत्पन्न न करना।"

"पर पशु तो ऐसा नहीं करते।"

"वैसा अभी तुम भी नहीं कर सकोगे। कारण यह है कि न पशु और न तुम सन्तान उत्पन्न करने के उपाय जानते हो। पशु भी यह संसर्ग सन्तान का चिन्तन करते हुए नहीं करते। वे इस कर्म के रस से प्रेरित होकर ही यह कार्य करते हैं। यही बात तुम कह रहे हो।"

"पर मैं तो जानता नहीं कि इसमें कोई रस है अथवा नहीं।"

"फिर भी इस रस की ओर तुम्हारा शरीर तुम्हें प्रेरित कर रहा है।"

"मैं ऐसा नहीं मानता।"

"फिर भी प्रेरणा अर्थात् आकर्षण तो है।"

"मैं विवाह अभी करना चाहूँगा।"

"यदि प्रसूति चाहेगी तो हो जाएगा।"

प्रसूति आई तो उसी समय आश्रम के छहों ऋषियों को बुलाकर उनके सम्मुख विवाह की रीति पूर्ण कर दी गई।

विवाह के उपरान्त दक्ष प्रसूति को अपनी कुटिया में ले गया।

प्रातःकाल दक्ष और प्रसूति साथ-साथ जागे और प्रातः की शीतल समीर का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द लेने नदी की ओर चल पड़े। मार्ग में वह वृक्ष पड़ता था जिसके नीचे दक्ष उस वनचर स्त्री को बैठने के लिए कह गया था। वह अभी भी उसी वृक्ष के नीचे सो रही थी। दक्ष उसे सोई देख वहाँ खड़ा हो गया।

प्रसूति ने पूछा, "क्या देख रहे हैं?"

"यह स्त्री अति सुन्दर प्रतीत हो रही है। कल रात यह मुझसे सहवास की इच्छा कर रही थी। मैं इसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए इसे अपनी कुटिया में ले जाने वाला था कि महर्षि गुरुवर आ गए और पितामह के पास ले गए। जाते समय मैंने इसे इस वृक्ष के नीचे प्रतीक्षा करने को कहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मेरी प्रतीक्षा करती-करती यहीं सो गई है।"

प्रसूति को उस पर दया अनुभव हुई। उसने उसे हाथ से हिलाकर जगाया। वह स्त्री जाग पड़ी। दोनों को इस प्रकार खड़े देख वह कुछ बोली जो ये नहीं समझे। वह क्रोध से विक्षुब्ध, मस्तक पर त्यौरी चढ़ा दक्ष की ओर देखती रह गई।

प्रसूति ने उसकी बाँह में बाँह डाल अपने साथ चलने का संकेत किया। वह इसका अर्थ नहीं समझ सकी। प्रसूति ने उसकी ओर अति प्रेम भरी दृष्टि से देखा और कहा, "आओ। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।"

"देवी?" दक्ष ने विस्मय में प्रसूति की ओर देखकर पूछ लिया, "यह क्या कह रही हो?"

"मैं आपसे प्राप्त हुआ सुख बाँटने लगी हूँ।"

"परन्तु बिना मुझसे पूछे?"

"आप तो इसको, वह देने का वचन पहले ही दे चुके हैं।"

"पितामह इसे अनुचित मानेंगे।"

"क्यों?"

"उनकी व्यवस्था के विपरीत होगा।"

"उनकी व्यवस्था मेरे और आप तक है। और यह बात इसके और मेरे भीतर है। उसमें पितामह की व्यवस्था प्रभावी नहीं। यह मैं अपने भाग की वस्तु बाँट रही हूँ।"

इस पर तीनों नदी तट पर जा पहुँचे। तदनन्तर शौच, स्नानादि से तीनों निवृत्त हुए और तत्पश्चात् यज्ञ में सम्मिलित होने यज्ञशाला में जा पहुँचे।

: ८ :

वनचर स्त्रियों और बच्चों की देख-भाल और उनको आश्रम की गतिविधियाँ सिखाने के लिए विश्वपति नियुक्त हुआ था। प्रातः के हवन के समय विश्वपति उन्हें भी यज्ञशाला में ले आया। इस प्रकार हवन में सम्मिलित होने के लिए अब इक्यावन व्यक्तियों के स्थान सत्तर से ऊपर व्यक्ति हो गए थे।

नित्य की भाँति हवन हुआ; तदनन्तर पितामह ने प्रार्थना की। पितामह ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन ऋषियों और रोहिणी को आश्रम में नए आए प्राणियों के लिए शिक्षक नियुक्त किया और व्यवस्था दी कि इन्हें वाणी प्रदान की जाए, जिससे ये आश्रम का अंग बन सकें। साथ ही उनको आश्रम में कुछ कार्य सौंपा जाए। कार्य के लिए विश्वपति ही नियुक्त रहा।

विश्वपति ने उन स्त्रियों को सबसे पहले अपने लिए कुटिया निर्माण करने के काम पर लगा दिया। उसी दिन वन से लकड़ियाँ एवं हरी कोमल लताएँ ला-लाकर कुटियों का काम आरम्भ हो गया।

प्रात: के हवन एवं प्रार्थना के उपरान्त मरीचि इत्यादि महर्षिगण नए-नए मन्त्रों को पितामह को सुनाते थे और उनके अर्थों के विषय में विचार करते थे। ये मन्त्र प्राय: प्रात:काल के चिन्तन के समय उनके मन में प्रस्फुटित हुआ करते थे।

आज छहों महर्षि वहाँ पहुँचे तो दक्ष, प्रसूति और उनके साथ वनचर युवती वहाँ पहुँच गए। पितामह ने पूछ लिया, "दक्ष ! यह किसको ले आए हो ?"

उत्तर प्रसूति ने दिया, "हम एक पृथक् आश्रम बनाना चाहते हैं।"

"कहाँ !"

"यहाँ से कहीं दूर।"

"क्यों ?"

"यहाँ आपके तेज और आपकी प्रतिष्ठा के कारण हम बन्धन में अनुभव करते हैं। हम अपना जीवन स्वतन्त्रतापूर्वक चलाना चाहते हैं।"

"तो तुम भी प्रजापति, रुचि और कर्दम की भाँति एकाकी जीवन व्यतीत करना चाहते हो ?"

"हाँ पितामह ! हम इसमें अपना कल्याण समझते हैं। जैसे बरगद के वृक्ष के नीचे घास नहीं जमता, वैसे ही आपकी छत्र-छाया में हम पनप नहीं सकेंगे।"

पितामह ने एक क्षण के लिए आँखें मूँदकर विचार किया और कह दिया, "ठीक है। फिर भी अपने आश्रम की रक्षा के लिए सतर्क और सजग रहना और इस आश्रम से सम्पर्क बनाए रखना। हम वेदवाणी को स्थाई और चल रूप दे रहे हैं। यदि समय-समय पर इस आश्रम में आते रहोगे तो यहाँ महर्षियों से प्राप्त ईश्वर वाणी का लाभ उठा सकोगे।"

प्रसूति ने आगे कहा, "हम इस युवती को अपने साथ ले जाना चाहते हैं।"

"किसलिए ?"

"मैं इसे अपनी सहचरी के रूप में रखना चाहती हूँ।"

"क्यों दक्ष ? तुम क्या कहते हो ?"

"भगवन् ! मैं तो एक ही रात में जान गया हूँ कि प्रसूति मुझसे अधिक सूझ-बूझ रखती है। इसने भावी आश्रम का ऐसा चित्र खींचा है कि मैं उसके मोह में फँस गया हूँ। यह देवी मेरी हृदयेश्वरी बन गई है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ओह ! कब जा रहे हो ?"

"भगवन् अभी ! सूर्यास्त होने से पूर्व हम अपने स्थान पर रात के बसेरे के लिए स्थान बना लेंगे।"

"तो तुमने स्थान का निर्वाचन कर लिया है ?"

"हाँ भगवन् ! यह वही स्थान है जहाँ प्रसूति का जन्म हुआ था। वह स्थान यहाँ से अधिक सुरक्षित प्रतीत हुआ है। साथ ही वहाँ प्रसूति की कुटीर है। एक संवत्सर से उसकी देख-भाल न होने के कारण उसको ठीक भी करना होगा।"

"अच्छी बात है। हम भी यहाँ से किसी को भेज तुम्हारी टोह लेते रहेंगे।"

"भगवन् ! इस वनचर युवती का नामकरण कर दीजिए।"

"मंगला।" पितामह ने बिना विचार किए कह दिया।

इसके उपरान्त तीनों ने पितामह के चरण स्पर्श किए और कुटिया से निकल आए।

जब दक्ष चला गया तो मरीचि ने कहा, "पितामह ! दक्ष इस वनचरी को अपनी दूसरी पत्नी बनाने का विचार रखता है।"

"कैसे कहते हो ?"

"कल सायं जब मैं इसे आपके पास लाने के लिए गोशाला में गया तो यह इस वनचरी को अपनी कुटिया में ले जा रहा था। इसने कहा था कि यह वनचरी इसके साथ रहने की इच्छा कर रही है। अब इसने प्रसूति को इसे अपनी सहचरी बनाने के लिए उद्यत कर लिया है।"

"यह स्वाभाविक ही है। यहाँ स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक हो रही है। इनके बच्चों में भी कुछ कन्याएँ हैं। समय पाकर वे भी किसी की भार्या बनना चाहेंगी। यदि इनका विवाह नहीं किया जाएगा तो ये पशुओं की भाँति अनियमित सन्तान उत्पन्न करती फिरेंगी और ये हमारे आश्रम में रहनेवालों के लिए भी प्रलोभन बन जाएँगी। अतः मेरी व्यवस्था है कि पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता है।"

"परन्तु पितामह ! क्या यह भी व्यवस्था हो सकती है कि एक महिला एक से अधिक पति रख ले ?"

"हाँ, यदि पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक हो जाएगी तो यह व्यवस्था भी दी जा सकती है। परन्तु मैं समझता हूँ कि यह स्थिति उत्पन्न नहीं होगी।"

"पितामह ! इससे तो बहुत झगड़े और हत्याएँ हो जाएँगी ?"

"जब ऐसी स्थिति होगी कि पुरुष अधिक हों और स्त्रियाँ कम, तब पुरुष अपने को इस प्रथा के अनुकूल कर लेंगे।

"फिर भी मैं समझता हूँ कि अब सृष्टि का विस्तार होने लगा है। इससे पुरुषों में भूमि, सम्पत्ति एवं स्त्री वर्ग के लिए युद्ध होंगे जिनमें पुरुष स्वर्गारोहण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते रहेंगे। परिणाम यह होगा कि स्त्रियाँ सदा संख्या में पुरुषों से अधिक रहेंगी।

"इस कारण मेरी व्यवस्था ठीक ही है।"

मरीचि इसका उत्तर नहीं दे सका। वह देख रहा था कि बीस स्त्रियाँ आकाश से टपक पड़ी हैं और आश्रम में बीस पुरुष इनसे विवाह करने वाले नहीं हैं। इस कारण यह ठीक ही है कि एक पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करे।

पितामह ने वेद विषय पर विचार आरम्भ कर दिया। वह कहने लगे, "ऋचाओं की संख्या बढ़ती जाती है। अतः इनको स्थायी रूप देने के लिए इनको चित्रित करने का उपाय ढूँढ़ना होगा।

"मैंने इसके लिए एक ढंग विचार किया है। हम जो कुछ बोलते हैं, वह यदि यहाँ चित्रित कर दें तो कोई दूसरा कभी भी उसको देखकर वैसा ही बोल सकेगा। यह मैंने विचार किया है।

"देखो महर्षि गण! हमारी वाणी में वाक्य होते हैं। वाक्यों में शब्द होते हैं और शब्दों में अक्षर होते हैं। अक्षर के उच्चारण अर्थात् स्वर होते हैं। मैं उदाहरण देता हूँ। एक पद है—

त्वं ही विश्वतो मुखः विश्वता भूरसि—

इस पद में शब्द हैं, त्वं-ही-विश्वतो, इत्यादि। इनमें अक्षर हैं त्+व्+अ तथा ह्+ई।

"मैंने कई दिन के विचार के उपरान्त इन अक्षरों और स्वरों की गणना की है। अनन्त शब्दों में कुछ थोड़े से ही स्वर तथा अक्षर हैं जिनके संयोग से हम उन शब्दों का उच्चारण करते हैं।

"मैंने उच्चारणों की संख्या गिनी है। ये बावन हैं। इनमें से सुगम उच्चारण बयालीस हैं। मैंने इन उच्चारणों के दो भेद किए हैं। एक को स्वर कहता हूँ। जैसे अ-इ-उ-ए-ओ-अं-अः ऋ-लृ; ये दस हैं। फिर दूसरी प्रकार के उच्चारण भी हैं जिनसे इन स्वरों को रूप मिलता है। जैसे क्-ख्-ग्-घ्-ङ; च्-छ्-ज्-झ् इत्यादि। ये कुल छब्बीस हैं।

"अब हमारे पास बयालीस उच्चारण हो गए हैं। इनके हम चिह्न नियत करते हैं और उन चिह्नों से हम अपनी वाणी को स्थिर, चिरायु और सर्वग्राही बना सकेंगे।

"महर्षि ऋतुः ने लेखन-सामग्री का आविष्कार किया है। इन्होंने एक प्रकार की मसी और तूलिका निर्माण की है और भुज वृक्ष की छाल पर चित्र बनाने का आयोजन किया है।

"मैंने उन सबका लाभ उठाया है और उच्चारण लिखने का विचार कर लिया है। इस लिखने की पद्धति को मैंने लिपि का नाम दिया है। अतः आज मैं आपको

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस लिपि का ज्ञान देता हूँ। आप सीखें और फिर अपने चिन्तन द्वारा प्राप्त वेद वाणी को लिपि-बद्ध कर सकेंगे।"

इतना कह पितामह ने एक भुज पत्र लिया और ऋतु अपनी कुटिया से बनाई मसी और तूलिका ले आया। पितामह ने भोजपत्र पर स्वर और व्यंजन लिख दिए।

छहों ऋषियों ने उस लिपि की प्रतिलिपि बनाई और फिर पितामह को दिखा स्वीकार करवा अपनी-अपनी कुटी को जाने के लिए तैयार हो गए। वे अपने-अपने स्थान पर एकान्त में बैठ लिपि का अभ्यास करना और तदनन्तर उस लिपि में वेद-ज्ञान को लिखना चाहते थे।

महर्षि ऋतु ने बहुत-सी तूलिका बना रखी थीं और मसी पात्रों में डाल एक-एक तूलिका सबको देकर लिखने का ढंग बता दिया।

ये ऋषि गण पितामह के इस आविष्कार पर अभ्यास करने के लिए उत्सुक थे, परन्तु वे जाने के लिए उठे ही थे कि विश्वपति कुटी के द्वार पर आ खड़ा हुआ और कहने लगा, "पितामह! प्रजापति रुचि के पुत्र यज्ञरूप दर्शनार्थ आए हैं।"

"आने दो।"

एक अति तेजस्वी और सुन्दर सन्तुलित शरीर वाला युवक भीतर आया और पितामह के चरण स्पर्श कर हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

पितामह ने देखा कि यह युवक अति तेजस्वी और बुद्धिशील है। उसे पितामह ने सामने आसन पर बैठने को कहा और उसके पिता का समाचार पूछा।

उस युवक ने पूछा, "किन पिताजी का समाचार पूछ रहे हैं? मेरे जन्मदाता तो प्रजापति रुचि हैं, परन्तु मेरे पालन-कर्ता भगवान वैवस्वत हैं।"

"मैं वैवस्वत जी के विषय में ही पूछ रहा हूँ।"

"जब मैं बालक ही था कि एक दिन वे आए और पिताजी से कुछ निश्चय कर मुझे अपने आश्रम में ले गए। वहाँ उन्होंने मुझे वेद-वाणी दी; उसका फल भी भोग कराया। मेरा अभिप्राय है कि उन्होंने वेद-वाणी का वास्तविक अर्थ और आशय बताया।

"इस प्रकार मैं उनके पास बीस संवत्सर तक रहा। इस समय मेरी रुचि अपने जन्मदाता पिता के दर्शन करने की हुई। मैं भगवान वैवस्वत से स्वीकृति ले प्रजापति जी के आश्रम पर पहुँच गया। वे वहाँ नहीं थे। वहाँ एक अति सुन्दर युवती ने मेरा आतिथ्य किया और बताया कि प्रजापति वन पशुओं को मानवता का पाठ पढ़ाने जाया करते हैं। वह कहते हैं कि उनकी प्रजा वही है और वह अपनी प्रजा को मानवों का-सा बना देंगे।

"पहले वह उनको वेद वाणी सिखाते रहे। कई संवत्सर के प्रयास के उपरान्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी वे वन पशु वेद वाणी नहीं सीख सके। वे अपनी ही चीं-चीं करते रहे। तब पिता ने उन पशुओं की वाणी सीखने का यत्न किया।

"इस समय उनको विदित हुआ कि भिन्न-भिन्न जाति के जन्तुओं की भिन्न-भिन्न वाणी है। अतः उन्होंने लंगूरों की वाणी सीखने का यत्न किया। वह कुछ-कुछ सीख गए हैं और अब लंगूरों की एक कक्षा को वेद वाणी उनकी अपनी वाणी द्वारा सिखाने लगे हैं।

"भगवन् ! मैं उनकी इस योजना को सुनकर मुस्कराता रहा।"

"इसमें हँसी की क्या बात थी ?" पितामह ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

"मैंने वैवस्वत जी से यह सीखा था कि पशुओं की बुद्धि और उसका स्मृति-क्षेत्र बहुत दुर्बल होता है और उनके इन दोनों यन्त्रों में विकास नहीं हो सकता। वह युवती और मैं प्रजापति के लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। वह बहुत मधुर भाषी और बुद्धि की प्रखर थी। उसने अग्नि पर अन्न भूनकर मुझे खिलाए। एक वृक्ष के फल का रस पिलाया और स्वयं भी पिया।

"जब तक प्रजापति लौटे, मैं और वह पति-पत्नी बनकर इकट्ठे रहने की योजना बना चुके थे। प्रस्ताव युवती की ओर से ही था। उसने मुझसे पूछा, 'आप कहाँ से आए हैं ?'

"मैंने बताया, 'वैवस्वत लोक से।'

" 'वहाँ कितने प्राणी रहते हैं ?' उसने पूछा। मैंने कहा, 'मैं था और मेरे माता-पिता थे।'

" 'परन्तु यहाँ का वन तो प्राणियों से भरा पड़ा है।'

"मैं हँस पड़ा। हँसकर मैंने बताया कि ये सजातीय नहीं हैं। वन पशु तो वहाँ भी बहुत थे। हमारी संख्या बढ़ नहीं रही और ये वन पशु तीव्र गति से बढ़ रहे हैं।'

"मैंने उसे समझाया कि पशुओं में नर और नारी के संयोग से वृद्धि होती है। यह हमारी जाति में भी हो सकती है। मैं किसी नारी की खोज में हूँ। मिल जाने पर मैं भी सन्तान उत्पन्न कर सकूँगा।

" 'वह आपको कहाँ मिल सकेगी ?'

" 'तुम मिल गई हो, परन्तु तुम्हारे माता-पिता से पूछना होगा।'

" 'तो क्या मैं सन्तान उत्पन्न कर सकूँगी ?'

" 'हाँ।'

" 'सत्य ? तो मैं आपसे सन्तान उत्पन्न करूँगी।'

" 'पिताजी आ लें। उनसे पूछ लूँ।'

" 'वे स्वीकार कर लेंगे।'

"प्रजापति आए। माताजी भी उनके साथ थीं। मैंने उनको बताया कि मैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैवस्वत लोक से आया हूँ। भगवान् वैवस्वत ने मुझे बताया है कि मेरे जन्मदाता यहाँ रहते हैं, अतः मैं आपके दर्शन करने चला आया हूँ।

" 'तुम यज्ञरूप हो?'

" 'हाँ भगवन्!'

" 'तो तुम कुछ दिन यहाँ रहो। यह तुम्हारी माता आहुति हैं।'

"मैंने समीप बैठी लड़की की ओर संकेत कर पूछा, 'यह कौन है?'

" 'तो तुमने इसे पहचाना नहीं?"

" 'जी नहीं। वैसे यह अति सुन्दर एवं प्रिय प्रतीत होती हैं।'

" 'यह तुम्हारी बहन है।'

" 'बहन? पर मैं तो इसके साथ रहने और सृष्टि-निर्माण का विचार कर रहा था।'

"इस पर प्रजापति बोले, 'यह कैसे हो सकता है? भाई और बहन सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते।'

" 'क्यों?'

" 'ऐसा विधान है।'

" 'किसने बनाया है विधान?'

"वह बता नहीं सके। कुछ विचारकर बोले, 'यह बात मैं और इसकी माता पसन्द नहीं करेंगी।'

"इस पर लड़की ने आग्रहपूर्वक कहा, 'मैं इनके साथ जाऊँगी।'

"दक्षिणा मेरा अभिप्राय है उस युवती से, उसकी माता ने कह दिया, 'इस विषय में पितामह से व्यवस्था ले सकते हैं। हमारे कोई सन्तान नहीं है। इनके द्वारा ही हमारा परिवार चलेगा।'

"मैं उनके पास एक पक्ष भर रहा हूँ। दक्षिणा अपनी माँ से आग्रह करती रही है। विवश पिताजी तथा माताजी ने मुझे आपके पास भेजा है कि आपसे इस विषय में व्यवस्था लूँ।

"पिताजी कहते थे कि पाँच संवत्सर पूर्व वह माताजी के साथ, यहाँ आए थे और आप स्वस्थ तथा सबल थे और वे समझते हैं कि आप अभी भी वैसे ही स्वस्थ तथा सबल होंगे।"

: ६ :

पितामह के सम्मुख यह एक नई समस्या थी। उसने यज्ञरूप को कहा, "तुम अभी यहाँ रहो। मैं तुम्हारी समस्या पर विचार करके ही निर्णय दे सकता हूँ। इसमें कुछ दिन लग सकते हैं।"

यज्ञरूप का उत्तरीय पितामह के आश्रम वालों के उत्तरीय से भिन्न प्रकार का था। वह किसी जन्तु का चर्म नहीं था, वरन् किसी वृक्ष की छाल से बना था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उत्तरीय दोनों ओर से खुले एक थैले की भाँति था और सिर की ओर से पहना जाता था और जब बाँहों के नीचे बगलों तक आ जाता तो बाँध दिया जाता था। एक उसी पदार्थ की डोरी थी, जिसका वह उत्तरीय बना था। वह उत्तरीय के ऊपर के भाग से किसी वस्तु से जुड़ी हुई थी। नीचे वह थैला घुटनों तक आ जाता था।

जब पितामह से बात समाप्त हो गई तो पितामह ने विश्वपति को कहा, "यज्ञरूप को दक्ष जी की कुटी में ठहरा दो।" विश्वपति यज्ञरूप को अपने साथ लेकर बाहर निकल गया। उनके जाने के उपरान्त ऋषिगण पितामह का मुख देखने लगे। वे भी समस्या को समझ रहे थे।

सबसे पहले अंगिरा ने कहा, "बहन-भाई के सम्बन्ध से सन्तति की वुद्धि विकृत होगी। शरीर दुर्बल होगा और मानव जाति ह्रास को प्राप्त होगी।"

"यह तो होगा ही। तुम बताओ मरीचि! तुम इस संयोग को कैसा समझते हो?"

"मैं विवाह को और इसके व्यवहार को मुख्य धर्मों में नहीं मानता।"

"क्या अभिप्राय है? तनिक विस्तार से कहो।"

"धर्म करणीय कर्म को कहते हैं। मुख्य धर्म वे हैं जो प्रत्येक अवस्था में तथा सबसे पालन करने के योग्य हों। कुछ करणीय कर्म ऐसे भी हैं जिनका पालन करना अनिवार्य नहीं। यदि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हों तो उनका पालन छोड़ा भी जा सकता है। वहाँ रुचि के आश्रम में अन्य कोई युवक न होने की अवस्था में बहन-भाई का विवाह वर्जित नहीं होना चाहिए।"

महर्षि अत्रि बोले, "इस युक्ति में दोष है। पितामह यह व्यवस्था दे चुके हैं कि एक पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता है, अत: हमारे आश्रम में कई पुरुष अविवाहित हैं। उनमें से किसी के साथ दक्षिणा का विवाह हो सकता है अथवा दक्ष प्रजापति के साथ उसका विवाह किया जा सकता है। मैं समझता हूँ कि वह मान जाएगा।

"इसी प्रकार यज्ञरूप के लिए अब इन वनचरों में से कोई पत्नी दी जा सकती है। महर्षि मरीचि की धर्म के विषय में युक्ति मान भी ली जाए, तब भी विवाह धर्म के उल्लंघन की आवश्यकता नहीं है।

"जहाँ तक समाज निर्माण का सम्बन्ध है, केवल जनसृष्टि आवश्यक नहीं, वरन् स्वस्थ, सबल, धी-युक्त और दीर्घायु जन उत्पन्न करना अधिक आवश्यक है।"

पितामह ने व्यवस्था देते हुए कहा, "बहन-भाई का विवाह उचित नहीं। यह समाज के लिए हितकर भी नहीं। केवल एक ही अवस्था में यह क्षम्य है; जबकि जीवन साथी बहन-भाई के अतिरिक्त मिलता न हो। परिवार की परम्परा चलाने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए इसकी अनिवार्यता हो सकती है, परन्तु अन्य किसी कारण से नहीं।"

महर्षि पुलहः ने इस व्यवस्था के विषय में ही प्रश्न कर दिया। उसने पूछा, "अन्य किसी कारण से क्या अभिप्राय है? इसकी व्याख्या होनी चाहिए।"

"महर्षि!" पितामह ने कह दिया, "अन्य किसी में कोई एक-आध बात हो तो उसका वर्णन हो सकता है। मेरा अभिप्राय है कि संसार में वर्तमान तथा भविष्य में कोई भी कारण हो सकता है। केवल मात्र परिवार की परम्परा चलाने के लिए ही इस नियम को भंग किया जा सकता है।

"अन्य कारणों में एक अति प्रबल कारण जो इस नई परिस्थिति में बन रहा प्रतीत होता है; वह है वासना और शारीरिक आकर्षण। यह वही बात है जो दक्ष और मंगला के सम्बन्ध में हुई है। मंगला वासनाभिभूत अथवा शारीरिक सौन्दर्य के आकर्षण से प्रभावित अपने संगी-साथियों को छोड़कर दक्ष के साथ चल दी है।

"मैं कल ही बात समझ गया था जब दक्ष ने चतुराई से वनचर योद्धा को पराजित किया था और मंगला ने अपने साथियों की ओर देखकर थूका था। मैं समझ गया था कि दक्ष की चतुराई ने इस लड़की के मस्तिष्क में दक्ष के लिए आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।

"यह भी बहन-भाई के परस्पर विवाह का कारण नहीं हो सकता। मैं समझता हूँ कि वर्तमान परिस्थिति में इस समय कई अविवाहित कन्याएँ यहाँ हैं जो यज्ञरूप के लिए उपयुक्त पत्नी हो सकती हैं। इसी प्रकार दक्षिणा, यदि इस आश्रम में आ जाए तो उसका भी विवाह किया जा सकता है। प्रजापति रुचि का परिवार दोनों पक्ष में चल सकेगा।"

विश्वपति ने अगले दिन यज्ञरूप को वनचरों की कई लड़कियाँ दिखाईं, परन्तु उसे कोई पसन्द नहीं आई। सबसे बड़ी बात थी वनचरों की वाणी से अनभिज्ञता और स्मृति एवं बुद्धि में निम्न स्तर का होना। उसे कोई भी वनचर कन्या दक्षिणा की तुलना में जँची नहीं। न तो रूप-रंग में और न ही मानसिक विकास में।

कई दिन के आश्रम में आतिथ्य के उपरान्त पितामह ने यज्ञरूप को बैठाकर अपनी व्यवस्था बता दी।

यज्ञरूप ऐसी आशा नहीं करता था। उसने इतिहास से सम्बन्धित युक्ति दे दी। उसने कहा, "पितामह! सब अमैथुनीय प्राणी क्या बहन-भाई नहीं हैं?

"आपने आदित्य के तेज द्वारा शतरूपा प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न युवक-युवतियों का विवाह किया है। एक ही माता-पिता से उत्पन्न मेरे माता-पिता भी हैं। अभी-अभी आपके आश्रम में दक्ष और प्रसूति का विवाह हुआ है। मेरे विषय में ही यह बाधा क्यों है?"

पितामह ने कहा, "अमैथुनीय सृष्टि में माता प्रकृति शतरूपा है। वह एक होते हुए भी अनेक रूपों में कार्य करती है, परन्तु मैथुनीय सृष्टि में तो पत्नी की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना प्रकृति से नहीं की जा सकती। स्त्री एक प्रयोजन के लिए निर्माण की गई है और यह उस कार्य को केवल एक की पत्नी बनकर ही पूर्ण कर सकती है।

"रही बात दक्ष की। उसका मंगला के साथ संयोग से पहले प्रसूति का विवाह हो चुका था। मंगला विपरीत यौन आकर्षण में दक्ष के साथ चली गई है और हमने उसको मना नहीं किया। कारण यह कि वे बहन-भाई नहीं।

"साथ ही वर्तमान परिस्थिति में अधिक ज्ञानवान, बुद्धिमान और बलवान सन्तान उत्पन्न करने के लिए बहुपत्नीक विवाहों की स्वीकृति देनी पड़ी है। अन्यथा संसार निर्बुद्धियों और हीन प्राणियों से भर जाएगा। ये हीन प्राणी केवल संख्या के बल पर श्रेष्ठ विद्वान् और उन्नत मनुष्यों को अपना दास बना लेंगे।"

"पितामह! मेरा भावी सन्तान और उसमें होने वाले संघर्ष से सम्बन्ध नहीं। मैं अपने को संसार के कल्याण के लिए नियुक्त किया प्राणी नहीं मानता। मेरा तो केवल मात्र यह आग्रह है कि मैं दक्षिणा से विवाह करना चाहता हूँ। मैंने उसे विवाह करने का वचन दिया है। इसको मैं पर्याप्त कारण मानता हूँ।"

"तो तुम उसे अपनी भार्या बना सकते हो, परन्तु मैं इसकी अनुमति देकर समाज में अव्यवस्था का बीजारोपण नहीं कर सकता।

"देखो यज्ञरूप! मैं आने वाले मनुष्य समाज में कठिनाई का स्पष्ट दर्शन कर रहा हूँ। दो प्रकार की सृष्टि का बीजारोपण हो रहा है। एक दैवी स्वभाव युक्त और दूसरी आसुरी स्वभाव युक्त। दैवी स्वभाव के लोग समाज के हित को अपनी शारीरिक सुख-सुविधा से ऊपर समझेंगे। वे यज्ञमय होंगे। दूसरी सृष्टि होगी जिसको अपने शारीरिक सुख और भोगों से परे कुछ दिखाई ही नहीं देगा। ये आसुरी स्वभाव वाले माने जाएँगे।

"ये लोग अपनी अपार सृष्टि करेंगे और अपनी जनसंख्या के बल पर परिश्रमी, मितव्ययी और शान्तिप्रिय मानवों को दासता में बाँध अपना स्वार्थ सिद्ध करेंगे।

"मैं ऐसी व्यवस्था देना चाहता हूँ जिससे मनुष्य समाज में दैवी स्वभाव वालों का शिर ऊँचा रह सके। अतः जहाँ यह आवश्यक है कि भले लोगों की सन्तान संख्या में कम न हो, वहाँ यह भी आवश्यक है कि उनमें दीन-हीन बालक उत्पन्न न हों।

"इन सब बातों का विचार कर मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि बहन-भाई में सम्बन्ध वर्जित कर दूँ।

"यद्यपि शारीरिक सुखों की प्रेरणा प्रबल होगी और यज्ञमय होने में किसी प्रकार का रस दिखाई नहीं देगा, परन्तु अन्तिम एवं स्थायी कल्याण यज्ञमय जीवन व्यतीत करने से ही होगा।"

"पितामह! मैंने बहुत वन पशु उत्पन्न होते देखे हैं। शरीर से ही शरीर बनता है। मृग से मृग उत्पन्न होते हैं। शश से शश, लूमड़ से लूमड़ और बिलार से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलार। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शरीर ही मुख्य है और इसी की चिन्ता करनी युक्तियुक्त है ? शरीर अपना-अपना है, अतः स्वार्थ इस संसार का केन्द्र-बिन्दु है। इस स्वार्थ की सिद्धि के अर्थ ही यदि किसी दूसरे का कल्याण हो जाए तो ठीक है। यह फिर भी मनुष्य के लिए लक्ष्य स्वहित ही होगा और होना भी चाहिए।"

"तुम पूर्ण जगत् को सिर के बल खड़े होकर देख रहे हो। यही कारण है कि जिसको मैं एक ढंग से देखता हूँ, तुम उसे सर्वथा विपरीत दशा में देखते हो।

"मैं यह देखता हूँ कि मनुष्य का लक्ष्य पर-हित होना चाहिए और इस परहित में यदि कुछ अपना भी कल्याण हो जाए तो ठीक है, परन्तु किसी दूसरे के अधिकार को छीनने से तुम अपने को इतर जीव-जन्तुओं के समान बना लोगे। तब उनकी ही भाँति तुम बंधनों में बँधकर दुःख और क्लेश के भागी बन जाओगे।"

"परन्तु पितामह ! ये वन पशु क्या दुःख और क्लेश का जीवन व्यतीत कर रहे हैं ? मैं समझता हूँ कि वे हमसे अधिक सुखी हैं।"

"यज्ञरूप ! क्या तुम यह पसन्द करोगे कि श्वान की भाँति जब सर्दी लगे तो अपने को सर्दी से बचाने का उपाय भी न ढूँढ़ सको ? अपनी रक्षा का उपाय भी न जान सको ? क्या तुम उस कबूतर की भाँति बनना चाहोगे जो भय सम्मुख आने पर आँखें मूँद यह समझ लेता है कि बिलार है ही नहीं।"

"यह इतर जीव-जन्तुओं की असमर्थता है। मनुष्य की सृष्टि हुए इस पृथिवी पर चालीस-पचास वर्ष से अधिक नहीं हुए और इन वन पशुओं को यहाँ प्रकट हुए आधे मन्वन्तर से अधिक काल व्यतीत हो चुका है। इस लम्बे काल में भी ये वन पशु यह नहीं सीख सके कि सर्दी, गर्मी तथा धूप-छाँह से बचने के लिए आवास कैसे बनाएँ ?

"प्रलय काल तक भी पशु पशु ही रहेंगे और मनुष्य मनुष्य।"

यज्ञरूप हँस पड़ा, बोला, "दक्षिणा के पिता प्रजापति रुचि पिछले दस वर्ष से वन पशुओं को मनुष्य बनाने का यत्न कर रहे हैं। मैं तो एक बात समझा हूँ कि पशु तो मनुष्य बनेंगे नहीं, परन्तु पिताजी एक सीमा तक पशु बन गए हैं।"

"इसी कारण मैं कहता हूँ कि परमात्मा ने हमें मनुष्य बनाया है और हमें अपना मनुष्यत्व स्थिर रखने के लिए अपनी बुद्धि को उन्नत रखना चाहिए। यह ही विशेष वस्तु है जो मनुष्य को पशुओं से अधिक मिली है।"

"परन्तु पितामह ! मैं बुद्धि से ही विचार करके यह कह रहा हूँ कि मैं दक्षिणा से विवाह करूँगा। दक्षिणा की माताजी ने कहा है कि वह वेद को इतना जान नहीं सकीं जितना कि आप जानते हैं। इस कारण उन्होंने मुझे आपसे व्यवस्था लेने के लिए भेजा है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यदि संसार में अन्य लड़कियाँ उपस्थित न होतीं तो मैं इस विवाह के पक्ष में व्यवस्था दे देता। इसी प्रकार यदि दक्षिणा से विवाह करने के लिए कोई अन्य पुरुष न होता तो मैं तुम दोनों को सृष्टि रचने की भी स्वीकृति दे देता।"

: १० :

आहुति और प्रजापति रुचि में भी विवाद चल रहा था। जब से आहुति ने यज्ञरूप को पितामह के पास भेजा था तब से ही यह मतभेद प्रकट हुआ था कि उनके दोनों बच्चे परस्पर विवाह करें अथवा न करें? प्रजापति इस विवाह के पक्ष में था। वह जीवन से उचाट हो चुका था। उसने अपनी पूर्ण सूझबूझ और योग्यता वन में रहने वाले पशुओं को मानवी आचार-विचार सिखाने में लगा दी थी।

पिछले ग्यारह वर्ष से वह इसी कार्य में लगा हुआ था और इतने लम्बे प्रयास के उपरान्त भी वह सर्वथा असफल हुआ था। इससे वह जीवन से ही निराश हो गया था। इस कारण दक्षिणा का विवाह कर और उसकी माता आहुति को उसके पास छोड़ भगवत्-भजन में लग जाना चाहता था। वह समझने लगा था कि संसार को ज्ञान देना निरर्थक कार्य है। जो जितनी बुद्धि लेकर संसार में आता है, वह मरण-पर्यन्त उतनी ही बुद्धि का स्वामी रहता है। उसकी बुद्धि में वृद्धि नहीं हो सकती। यह अनुमान प्रजापति का पशुओं को मनुष्य बनाने के प्रयत्न से बना था।

आहुति बहन-भाई के विवाह को पसन्द नहीं करती थी। इसी कारण उसने यज्ञरूप को सम्मति के निमित्त पितामह के पास भेज दिया था। वह समझती थी कि पितामह इस समस्या पर किसी प्रकार का सुझाव उपस्थित कर सकेंगे। जहाँ तक दक्षिणा के विवाह का सम्बन्ध था, उस विषय में भी वह पितामह से सहायता लेना चाहती थी। उसको स्मरण था कि वह मानव-सृष्टि में वृद्धि के लिए बहुत उत्सुक थे। उसके विवाह के समय भी पितामह ने प्रजापति रुचि को ढूँढ़ निकाला था।

यज्ञरूप के पितामह के आश्रम को प्रस्थान करने के उपरान्त प्रजापति अपने कार्य से वन को जाने लगा तो नित्य की भाँति आहुति भी उसके साथ चल पड़ी। पिछले एक वर्ष से वह अपने पति के साथ जा रही थी।

वन में एक स्थान पर पहुँच प्रजापति ने अपने वहाँ पहुँचने का घोष किया। वह उच्च स्वर में 'ओ···हा···।' ऐसा घोष तीन बार किया करता था। वह एक प्रकार की विद्यालय खुलने की घण्टी थी। इस घोष को सुन वन के चालीस-पचास लंगूर पेड़ों से लटकते, उन पर छलाँगें लगाते हुए आए और उनके चारों ओर एकत्रित हो गए।

प्रजापति उनके एकत्रित हो जाने पर एक वृक्ष की नीचे को झुकी डाल पर बैठ गया। उसके उपरान्त लंगूर एक-एक कर प्रजापति के पास आते और उसके चरण स्पर्श करते तो प्रजापति अपने झोले में से एक-एक फल, जो अमरूद की प्रकार का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, निकाल उनको खाने को देता था।

इस प्रकार सबके चरण स्पर्श कर प्रसाद पा जाने के उपरान्त सब भूमि पर बैठ जाते और प्रजापति गान करने लगे। गान केवल तीन स्वर और एक व्यंजन का होता था।

उस दिन भी प्रजापति ने उच्चारण करना आरम्भ किया, "आ···।' सब लंगूर उसके उपरान्त बोले, 'आ···।' अब उसने दूसरा स्वर उच्चारण किया। यह भी सबने एक स्वर से गाया। तत्पश्चात् इन दोनों स्वरों का संयोग गाया—'ओ-ओ···।'

यह उच्चारण भी लंगूरों ने गाया। प्रजापति का स्वर अति मधुर और प्रभावी था। उसके विपरीत पचास लंगूरों का स्वर उसके अकेले से धीमा और रसविहीन था, परन्तु ज्योंही प्रजापति ने व्यंजन 'म्···म्···' का उच्चारण किया तो सब मुख देखते रह गए और उच्चारण नहीं कर सके।

'म्' का उच्चारण वह पिछले एक वर्ष से उनको सिखा रहा था, परन्तु वे बेचारे इसका उच्चारण कर नहीं सकते थे।

अब कई बार कहलाने का यत्न कर एक-एक को बुला-बुलाकर अपने पास खड़ाकर उसने पुनः म् का उच्चारण सिखाने का यत्न किया।

पचास में से दो ही यह उच्चारण कर सके। उनको प्रजापति ने पुनः फल खाने को दिया और उनकी पीठ पर प्यार दिया।

तत्पश्चात् वह उनको खेल-कूद कराने लगा। एक घण्टा भर खेल-कूद कराकर पुनः वाणी का पाठ पढ़ाया और फिर एक बार फल बाँटकर वह अपने आश्रम को लौट पड़ा।

आहुति ने कहा, "अब आप इस खेल को बन्द करिए। एक वर्ष के लगभग मुझे आपके साथ आते हो चुका है। एक भी जन्तु कुछ भी नई बात नहीं सीख सका। हाँ, अपनी बगिया के स्वादिष्ट फल खाने के लोभ में ये आते हैं और कुछ खेलकूद कर चले जाते हैं। यह खेलना-कूदना उनके स्वभाव में है।"

प्रजापति चुप रहा। आहुति ने पुनः कहा, "आर्य ! एक बात और है। इन सीखने वालों की सन्तान में भी कई एक वर्ष के हो गए हैं, परन्तु वे अपने सुशिक्षित माँ के पेट से कुछ भी अधिक सीखकर नहीं आए।"

प्रजापति बोला, "यह तो मैं भी देख रहा हूँ। जब तुम्हारी सन्तान पैदा हुई थी तब वह इनके बच्चों से भी कम जानती थी। यज्ञरूप और दक्षिणा को चलने-फिरने के लिए भी परिश्रम से सिखाना पड़ा था, परन्तु एक वर्ष के हो जाने पर दोनों बच्चे द्रुत गति से उन्नति करने लगे थे। यज्ञरूप अपने नाना के घर जाने से पूर्व वेदमन्त्र कण्ठस्थ कर स्वर सहित उच्चारण करता था। और दक्षिणा अब मुझसे और तुमसे भी विचारयुक्त बातें करती है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं यही तो कह रही हूँ कि ये वनचर कुछ नहीं सीखेंगे।"

"मेरा पिछले दस वर्ष का प्रयास विफल जा रहा है, परन्तु देवी ! मैं दिन-भर क्या किया करूँ, यही समझ में नहीं आ रहा। मैंने समझा था कि जैसे मेरी सन्तान वन पशुओं से हीन होने पर भी बहुत कुछ सीख गई है; इसी प्रकार ये भी सीख जाएँगे।"

"परन्तु नहीं सीखे न ?"

"परन्तु तुमने कोई अन्य सन्तान भी तो उत्पन्न नहीं की ?"

"मैं कई बार कह चुकी हूँ कि पितामह के आश्रम को लौट चलें।"

"पाँच संवत्सर पूर्व हम गए थे, परन्तु वहाँ के एकरस जीवन को देख मैं ऊब गया था और यहाँ चला आया था।"

"और यहाँ क्या रस आ रहा है जीवन में ?"

"उस समय तो मैं आशा से भरा हुआ था और इस कार्य में रस भी अनुभव कर रहा था।"

"और वह आशा विफल गई है और रसयुक्त होने की अपेक्षा अब यह व्यर्थ का बोझा प्रतीत होने लगा है। मैं इसे पहले से ही जानती थी, परन्तु आप मानते नहीं थे।"

"यदि तुमने कुछ सन्तान और उत्पन्न की होती तो मेरा चित्त लगा रहता।"

"वह तो हुई नहीं। यत्न तो आपने बहुत किया है। वह भी सब विफल गया है।"

"इसी कारण मैं कहता हूँ कि दक्षिणा और यज्ञरूप का विवाह कर दें तो हमारे लिए भी काम बन जाएगा।"

"परन्तु पितामह की व्यवस्था है कि बहन-भाई का विवाह नहीं हो सकता।"

"मैं समझता हूँ कि वह यज्ञरूप का विवाह दक्षिणा से स्वीकार कर लेगा। तुम्हारे विवाह के पूर्व उसने मुझसे पूछा था कि क्या मैं तुमसे सन्तान उत्पन्न करूँगा ?

"मेरे पूछने पर उन्होंने मुझे गौशाला में पशुओं को सन्तान उत्पन्न करते देखने के लिए कहा था। मेरी इसमें इच्छा हो गई तो मेरा तुमसे विवाह कर दिया गया।

"पितामह ने मुझे सृष्टि रचने की महिमा का ज्ञान करा दिया और कहा कि मानव-सृष्टि रचना पुण्य कर्म है। फिर भी वह स्वयं तुमसे सन्तान उत्पन्न नहीं कर सका।"

"उनका मेरे प्रति पुत्री का-सा भाव था जैसे आपका दक्षिणा में है।"

"यह भाव सब व्यर्थ है।"

आहुति मौन हो गई। वह समझ रही थी कि उसके पति का स्वभाव अपने जीवन-कार्य में असफलता के कारण चिड़चिड़ा हो गया है। उसे चुप देख प्रजापति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कहा, "तुमने व्यर्थ में यज्ञरूप को इतनी दूर वनों में भटकने के लिए भेज दिया है।"

"मैं आशा कर रही हूँ कि यज्ञरूप वहाँ से किसी सुन्दर, सुशिक्षित लड़की से विवाह करके लौटेगा।"

इस प्रकार पति-पत्नी में विवाद चलता रहता था। दक्षिणा भी माँ से रुष्ट थी। वह समझती थी कि उसको एक साथी मिला था परन्तु माँ ने उसे व्यर्थ में दूर भेज दिया है। भला जब वह यज्ञरूप के साथ रहना चाहती है तो उसे क्यों पसन्द नहीं? वे दोनों यहीं इस कुटी में रह सकते थे।

एक दिन आहुति और प्रजापति वन भ्रमण से लौटे तो दक्षिणा कुटी में नहीं थी। दोनों कुछ चिन्तित हुए। आहुति दक्षिणा को ढूँढ़ने चल पड़ी। उसने देखा कि वह नदी तट के समीप एक सपाट पत्थर पर बैठी रो रही है। वह वहाँ उसके समीप जा खड़ी हुई तो दक्षिणा ने मुख दूसरी ओर मोड़ नदी से जल लेकर धोना आरम्भ कर दिया।

"यह क्या कर रही हो?" माँ ने पूछा।

"पीड़ा हो रही है।"

"कहाँ?"

दक्षिणा ने बिना बोले सिर को हाथ लगा दिया।

"चलो कुटी में। मैं तुम्हारा सिर दबा दूँगी।"

"यह पीड़ा इससे नहीं मिटेगी।"

"तो कैसे मिटेगी?"

"यज्ञरूप से विवाह करके।"

आहुति मुख देखती रह गई। फिर कुछ विचारकर बोली, "पितामह उसका विवाह तुमसे पसन्द नहीं करेंगे।"

"तो न करें। मैं उनसे पूछे बिना विवाह कर लूँगी। मैं तो तुमसे भी पूछने की आवश्यकता नहीं समझती, परन्तु यज्ञरूप माने नहीं और बोले, 'हमें अपने बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए'।"

"उसको अच्छी शिक्षा मिली है। मैं उससे प्रसन्न हूँ।"

"तो आप हमें विवाह करने पर आशीर्वाद देंगी?"

माँ ने लड़की को रोते देखा तो उसके मन में उसके प्रति दया उमड़ पड़ी। दोनों उठ अपनी कुटी की ओर चल पड़े। माँ ने लड़की के कन्धे पर हाथ रखा तो लड़की ने दयनीय दृष्टि में माँ की ओर देखा। माँ ने खड़े हो उसकी अभी भी डबडबाई आँखों में देखते हुए और उसकी गालों को थपथपाते हुए कहा, "दक्षिणा, तुम्हारी पीड़ा अब मिट जाएगी। उसे लौटने दो।"

लड़की हर्षोल्लसित हो माँ के गले में दोनों बाँहें डाल, उससे लिपट गई। माँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने उसे पीठ पर प्यार देते हुए कहा, "अब मत रो। अब उसके लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

फिर भी माँ मन ही मन यह इच्छा कर रही थी कि यज्ञरूप किसी लड़की को विवाह कर साथ लेकर ही लौटे।

इस प्रकार प्रतीक्षा होने लगी। अगले दिन प्रजापति लंगूरों को शिक्षा देने नहीं गया। उसे यह देख विस्मय हुआ कि कोई भी उसे ढूँढ़ता हुआ उसकी कुटी पर नहीं आया।

दिन पर दिन व्यतीत होने लगे और उसके वन-शिष्य उसे ऐसे भूल गए, मानो उनका उससे कोई सम्बन्ध था ही नहीं।

लगभग एक मास व्यतीत हो चुका था और यज्ञरूप लौटा नहीं था। तीनों प्राणियों को चिन्ता लगने लगी थी। कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो; यही तीनों के मन में था।

एक दिन प्रजापति ने अपनी पत्नी से कहा, "मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे शिष्य कैसे हैं और उनको मेरा पढ़ाया पाठ स्मरण है अथवा नहीं।"

"क्या लाभ होगा?"

"तनिक देखना चाहता हूँ।"

आहुति समझी कि उसके पति को उन जन्तुओं से कुछ मोह हो गया है। वह बोली, "चलिए, मैं भी साथ चलती हूँ।"

उन्होंने अपनी बगिया में से फल तोड़ अपने झोले में डाले और उसी स्थान को चल पड़े जहाँ उसकी लंगूरों की पाठशाला लगा करती थी।

आज वहाँ पहुँच प्रजापति ने अपने वहाँ पहुँचने का घोष पूर्ववत् किया। उसने "ओ···हा···।" का घोष कई बार किया, परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब वहाँ कोई नहीं आया। वहाँ लंगूर तो थे। वे वृक्षों पर कूद-फाँद भी रहे थे, परन्तु वे उसके शब्द को सर्वथा विस्मरण कर चुके प्रतीत होते थे। एक लंगूर प्रजापति को बार-बार घोष करते सुन एक वृक्ष की डाल से लटकता हुआ इनकी ओर विस्मय में देखने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी बहुत दूर अथवा देर की घटी बात को स्मरण कर रहा है। वह डाली से कूद भूमि पर आ गया और धीरे-धीरे भयभीत-सा प्रजापति की ओर जाने लगा। प्रजापति ने पुनः "ओ··· हा···" का घोष किया तो वह प्रजापति के सामने आकर बैठ गया और विस्मय में इन दोनों की ओर देखने लगा।

इस पर प्रजापति ने अपने झोले में से एक फल निकाल उसको दिखाया। वह कुछ और आगे बढ़ा। जब वह दो पग के अन्तर पर रह गया तो एकाएक लपका और फल को प्रजापति के हाथ से छीनकर भाग गया और पुनः लपककर वृक्ष पर जा बैठा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह फल को खाता रहा और इन पति-पत्नी की ओर देखता रहा। प्रजापति विचार करने लगा था कि फल खाने से उसे कुछ स्मरण हो आएगा। एक बार उसकी आँखों में एक चमक-सी दिखाई दी। प्रजापति ने समझा कि उसे स्मरण आ रहा है, परन्तु अगले ही क्षण वह लपककर दूसरी और तीसरी डाल से होता हुआ दूर चला गया।

प्रजापति अपने पूर्ण प्रयत्न को विफल हो गया देख शोकग्रस्त अपनी कुटिया की ओर लौट पड़ा। आहुति उसके साथ-साथ थी।

: ११ :

"अब क्या करिएगा ?" आहुति ने पूछ लिया।

"कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"मेरा कहा मानिए। हम आज ही पितामह के आश्रम को चल दें।"

"परन्तु यज्ञरूप तो वहाँ से लौटा नहीं।"

"वह वहाँ किसी लड़की से विवाह कर रह गया है। हम उसे वहाँ मिल लेंगे।"

"अच्छा सुन्दर ओजस्वी युवक है।"

"मेरी बात मानिए। कल प्रातःकाल यहाँ से चल दें और दो दिन में हम वहाँ पहुँच जाएँगे।"

"और यदि यज्ञरूप वहाँ से इधर को चल पड़ा तो ?"

"तो वह मार्ग में मिल जाएगा। हम उसी मार्ग से चलेंगे जो मार्ग हमने उसको बताया था।"

"परन्तु यहाँ कुटीर में हमने कई सुख-सुविधा के साधन बना लिए हैं। यहाँ वस्त्र बनाने का भी तो प्रबन्ध किया है।"

"हाँ, परन्तु क्या जाने पितामह के आश्रम में इससे कहीं अधिक वस्तुओं का आविष्कार हो चुका हो। न भी हुआ हो तो हम उनको इन सब वस्तुओं के बनाने का ढंग बताएँगे। मैं समझती हूँ कि वहाँ के वासी इन वन जन्तुओं से अधिक सरलता से सीख सकेंगे।"

निराश और उदासीन प्रजापति पत्नी की बात को मान गया। उसने कहा, "अच्छा, कल चल देंगे।"

इस प्रकार की योजनाएँ बनाते हुए वे अपनी कुटिया में पहुँचे। कुटिया का द्वार खुला था। यह सदैव के विपरीत था। आहुति ने कुटिया में झाँककर देखा तो वहाँ का सामान अस्त-व्यस्त हो रहा था। एक श्वान भीतर खड़ा खाने के पदार्थों को चाट रहा था।

आहुति ने श्वान को भगाया और विचार करने लगी कि दक्षिणा इसे खुला क्यों छोड़ गई है ? कुटिया के दो भाग थे। दोनों भागों के बीच पर्दा बना था। आहुति ने उस भाग में झाँककर देखा। वह भी खाली था। एक बात उसे और पता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चली। दक्षिणा ने अपने पहनने के लिए एक नवीन उत्तरीय बनाया था। वह कुटिया की दीवार पर एक खूँटी से लटका रहता था। वह वहाँ नहीं था।

चिन्ताग्रस्त आहुति भागी हुई नदी तट पर गई। दक्षिणा अपना बहुत-सा रिक्त समय वहाँ व्यतीत किया करती थी। आज वह वहाँ भी नहीं मिली।

आहुति ने लौटकर पति को बताया, "वह नहीं मिली।"

"मैं समझता हूँ कि यज्ञरूप आया है और उसको अपने साथ अपने पालक के आश्रम में ले गया है।"

"कैसे कहते हैं यह ?"

"देखो !" उसने भूमि की ओर संकेत कर दिया। आहुति ने ध्यान से भूमि की ओर देखा। उसे किसी स्त्री के पद-चिह्नों के साथ-साथ बड़े-बड़े पुरुष के पद-चिह्न दिखाई दिए।

"हाँ। कोई पुरुष यहाँ आया प्रतीत होता है, कहीं ये आपके पद-चिह्न तो नहीं ?"

पति ने पुनः उन चिह्नों की ओर देखा। उसने अपने पाँवों को भी देखा। तदनन्तर कहा, "मेरे पद-चिह्नों से ये बड़े प्रतीत होते हैं।"

वह उठा और उन पद-चिह्नों के समीप भूमि पर अपने पाँव का चिह्न बना, पत्नी को बताने लगा, "ये पद-चिह्न मेरे पद-चिह्नों से बड़े हैं।"

"यह तो स्पष्ट है कि कोई पुरुष यहाँ आया है। सम्भव है यज्ञरूप ही हो, परन्तु वे चले किधर गए हैं? मैंने तो उसका उससे विवाह कर देने की बात स्वीकार कर ली थी।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि उसे तुम्हारे कथन का विश्वास नहीं हुआ और वह यज्ञरूप के साथ भाग गई है।"

इस सम्भावना को सुनकर भी आहुति की चिन्ता नहीं मिटी। वह पति के सम्मुख भूमि पर ही बैठ गई। प्रजापति ने कुछ विचारकर कहा, "इसने भी वही कुछ किया है जो मेरे शिष्य वन जन्तुओं ने किया है।"

"दोनों में क्या समानता देखी है आपने ?"

"यही कि अवसर मिलते ही इतने वर्ष के संयोग को विस्मरण कर नई बात के पीछे चल दी है।"

आहुति को यह तुलना ठीक प्रतीत नहीं हुई। उसने कहा, "वह हमको विस्मृत कर गई है अथवा उसे अभी भी हम स्मरण हैं, हम कह नहीं सकते। वन जन्तुओं का आपको, आपके शब्द को और आपके फलों के स्वाद को भी विस्मरण कर देना तो सिद्ध हो ही चुका है।"

"उसे हमें बताकर तो जाना चाहिए था।"

आहुति समझ रही थी कि उसका पति युक्तियुक्त बात नहीं कर रहा। इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण उसने बात बदलकर कहा, "अब क्या करिएगा ?"

"समझ में नहीं आ रहा।"

"हमें पितामह के आश्रम को लौट चलना चाहिए।"

"मेरा चित्त वहाँ जाने को नहीं करता। वहाँ का जीवन सर्वथा नीरस है।"

"अभी तो वहीं चलना चाहिए। यदि वहाँ की नीरसता अखरने लगेगी तो वहाँ से चल देंगे। आखिर वहाँ किसी को बन्दी बनाकर रखा नहीं जाता।"

"तो कल चलेंगे।"

उस दिन जब दक्षिणा के माता-पिता पुनः वन जन्तुओं से मिलने गए तो दक्षिणा के मन में विचार आया कि पिता के मन में पुनः शिक्षक होने का मोह जाग पड़ा है; इससे वह अपने को पुनः अकेला-अकेला अनुभव करने लगी थी।

वह भी उठ अपने मनोरंजन के स्थान नदी तट जा पहुँची। वहाँ वह वन जन्तुओं को जल-पान करने आते देख चित्त को बहलाया करती थी।

उसे वहाँ बैठे अभी एक घड़ी भी नहीं हुई थी कि किसी ने पीछे से आकर अपने हाथों से उसकी आँखें बन्द कर दीं।

"कौन हो तुम ?" दक्षिणा ने उसका हाथ पकड़ आँखों से हटाने का यत्न किया, परन्तु एक बलिष्ठ पुरुष के हाथों को वह हटा नहीं सकी। एकाएक उसको विचार आया कि इस वन में उसके माता-पिता के अतिरिक्त अन्य कोई मानव नहीं रहता और उसके पिता उससे इस प्रकार का कलोल करते नहीं। तब यह अवश्य यज्ञरूप होगा। इतना विचार कर उसने कहा, "आप यज्ञ हैं ?"

आँखों पर से हाथ हट गया और यज्ञरूप ने उसके समीप बैठकर कहा, "मैं लौट आया हूँ।"

"क्या कहा है पितामह ने ?"

"उन्होंने मुझे वहाँ कई कुमारियाँ दिखाई हैं और उनसे विवाह करने को कहा है।"

"और मुझसे ?"

"तुम्हारे लिए यह व्यवस्था है कि तुम वहाँ चली जाओ और तुम्हारे लिए वर वहाँ मिल जाएगा।"

"तो तुम्हारा मुझसे विवाह नहीं हो सकता ?"

"हो सकता है।"

"कैसे ?"

"यहाँ से अपने माता-पिता को बताए बिना मेरे साथ चल दो। समीप ही एक अन्य आश्रम है। वहाँ का प्रजापति दो पत्नियों के साथ रहता है। एक घटनावश वह मुझे मार्ग में मिल गया। मैं नदी के किनारे-किनारे इस आश्रम को लौट रहा था कि मुझे नदी में एक पुरुष दो स्त्रियों के साथ जल विहार करता दिखाई दिया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे भाँति-भाँति के परस्पर कलोल कर रहे थे। मुझे उनका विहार बहुत ही मनोरंजक और लुभायमान प्रतीत हुआ। मैं तट पर खड़ा उनको खेलते-हँसते देखता रह गया। जब उन्होंने मुझे देखा तो दोनों स्त्रियाँ कमर तक जल में पैठ गईं और पुरुष नदी से निकलकर मेरी ओर आने लगा।

"मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मुझसे लड़ने के लिए आ रहा है। स्त्रियाँ भी सर्वथा नग्न थीं और पुरुष भी। मैं अपना उत्तरीय पहने था। वह जल से निकल मेरे सम्मुख आ खड़ा हुआ। मैं सतर्क और लड़ने को तैयार खड़ा हो गया। मेरे दोनों हाथों की मुट्ठी बँध गई।'

"उसने पूछा, 'यहाँ क्यों खड़े हो ?'

"मैंने कहा, 'आपको खेलते देख मेरे चित्त में भी खेलने की इच्छा उत्पन्न हो उठी है।'

" 'तो तुम भी अपनी पत्नी को यहाँ ले आओ, तब तुम भी हमारी भाँति मनोरंजन कर सकते हो।'

" 'परन्तु मेरी पत्नी नहीं है।'

"उसने हाथ के संकेत से पितामह के आश्रम का मार्ग बताकर कहा, 'इधर एक आश्रम है। वहाँ कई अविवाहित स्त्रियाँ हैं। एक से अथवा दो-तीन से विवाह करके आ जाओ और तुम भी हमारे खेल में सम्मिलित हो सकते हो।'

"मैं हँस पड़ा। हँसकर मैंने कहा, 'मैं वहीं से आ रहा हूँ। पितामह ने कहा है कि मैं उन युवतियों में से एक से विवाह कर लूँ। परन्तु मुझे उनमें से कोई पसन्द नहीं आई।'

" 'कुछ तो उनमें बहुत सुन्दर हैं।'

" 'परन्तु मैं उन सबसे अधिक एक सुन्दरी को जानता हूँ। मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। पितामह ने व्यवस्था दे दी है कि मैं उस लड़की से विवाह नहीं कर सकता। यह इसलिए कि उसकी माँ कहती है कि वह मेरी बहन है।'

" 'वह तो हम सब हैं। इन दो में से एक मेरी बहन है।"

" 'सत्य ? कौन ?'

"उसने गौर वर्ण स्त्री की ओर संकेत कर कहा, 'हम दोनों के पिता वैवस्वत हैं और हम एक माता-पिता की सन्तान हैं।'

" 'परन्तु मैं पहली पारी में उत्पन्न नहीं हूँ।'

" 'तब क्या हुआ ? सब माँ प्रकृति की सन्तान हैं। सब बहन-भाई हैं। हाँ, कभी-कभी पिता भिन्न-भिन्न होते हैं। किन्हीं के पिता मन्वन्तर के मनु भगवान् हैं, परन्तु माँ सबकी पंच भौतिक प्रकृति है।'

" 'परन्तु लड़की की माँ पसन्द नहीं करेंगी। वह पितामह के आश्रम में पली है।'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'तुम किसके पुत्र हो ?'

" 'माता आहुति के। मेरे पिता प्रजापति रुचि कहे जाते हैं, परन्तु मैं बाल्यकाल से पिता वैवस्वत के आश्रम में रहा हूँ। कुछ दिन हुए मैं अपने जन्मदाता माता-पिता से मिलने आया तो यह लड़की, जिसका नाम दक्षिणा है, मिल गई। मैं उससे प्रेम करने लगा हूँ।'

"अब हँसने की बारी उस पुरुष की थी। उसने कहा, 'मैं दक्ष हूँ और तुम्हारी कथा जानता हूँ। तुम लड़की को माता-पिता के घर से भगा लाओ और यहाँ आ जाओ।'

" 'मैं एक ही बात वर्जित मानता हूँ। वह है किसी दूसरे की विवाहिता को अपनी पत्नी बनाना। किसी भी अविवाहिता से विवाह करने में हानि नहीं।'

" 'तो मैं यहाँ अपनी पत्नी को ले आऊँ?'

" 'हाँ। और हमारे समान कुटी बनाकर रहो।'

"दक्षिणा ! मैं यहाँ आ गया हूँ। चलो चलें।"

दक्षिणा ने कहा, "अब मेरी माताजी भी कहती थीं कि मेरा विवाह आपसे कर देंगी, परन्तु जब वे सुनेंगी कि पितामह की व्यवस्था हमारे विवाह के विपरीत है तो वह बदल भी सकती हैं।"

"तो बिना कुटिया को गए भाग चलें।"

"वह वहाँ नहीं हैं। वह पिताजी के साथ वन जन्तुओं को पढ़ाने गई हैं।"

यज्ञरूप हँस पड़ा। हँसते हुए उसने कहा, "इन जड़ बुद्धि जन्तुओं को पढ़ाते-पढ़ाते उनकी बुद्धि भी जड़ हो गई है। इस कारण मैं समझता हूँ कि उनसे हमें विवाह करने की स्वीकृति नहीं मिलेगी।"

"तो ?" दक्षिणा ने उत्सुकता से पूछा।

"उनके लौटने से पूर्व चल दो। शीघ्रता करो; यदि वे लौट आए तो कठिन हो जाएगा।"

दक्षिणा उठी और बोली, "मैं कुटी से अपनी एक-दो वस्तुएँ लेना चाहती हूँ।"

"तो शीघ्र ले लो।"

वे दोनों कुटी में पहुँचे। वहाँ दक्षिणा ने अपना नवीन उत्तरीय ले लिया और एक लम्बी-सी बनी वस्तु उठा ली और बोली, "चलिए।"

"यह क्या है ?"

दक्षिणा मुस्कराई और गर्वपूर्वक उसे मुख से लगा, उसमें फूँक मारने लगी। इस पर उसमें से स्वर निकला, "पीं।"

"ओह !" विस्मय में यज्ञरूप ने कहा, "यह तो बोलता है।"

"हाँ।" दक्षिणा ने अब उसके एक छिद्र पर अंगुली रख दी। स्वर बदल गया। उसने दूसरे छिद्र पर दूसरी अंगुली रखी तो अब दूसरा स्वर हो गया। अब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणा ने तीसरे छिद्र पर तीसरी अँगुली रखी तो स्वर और ऊँचा हो गया। अब दक्षिणा अँगुलियाँ बदल-बदलकर भिन्न-भिन्न स्वरों के संयोग पैदा करने लगी।

यज्ञरूप को बहुत भला प्रतीत हुआ। उसने पूछ लिया, "यह कैसे बनाया है?"

"अब चलो। यह नए आश्रम में चलकर बताऊँगी।"

वे दोनों चल दिए। जाते समय वे इतनी जल्दी में थे कि द्वार बन्द करना भूल गए।

कुटिया को तो द्वार खुला होने के कारण एक कुत्ते ने अस्त-व्यस्त किया था। कुटिया में कुछ कन्द मूल अग्नि पर पकाने का प्रबन्ध था। उन पके हुए कन्द की सुगन्धि से आकर्षित वह श्वान वहाँ आया और मन भरकर खाकर और वस्तुओं को उथल-पुथल करता रहा था।

जब प्रजापति रुचि और आहुति अपनी कुटिया में आए, उन्होंने कुटी की अवस्था देख अनुमान लगाया कि यज्ञरूप दक्षिणा को लेकर अपने पालन करने वाले पिता के पास चला गया है। इससे वे बहुत ही खिन्न थे। उस रात वे कुटी में रहे और प्रातः अपनी एक-दो प्रिय वस्तुओं को लेकर पितामह के आश्रम को चल दिए।

वहाँ जाने के दो मार्ग थे। एक वन में से होता हुआ। वह मार्ग दुस्तर, परन्तु समीप का था। दूसरा मार्ग नदी के तट के साथ-साथ होते हुए था। नदी का बहाव टेढ़ा-मेढ़ा था। इस कारण यह मार्ग लम्बा था; यद्यपि सुगम था। वे शीघ्रातिशीघ्र पितामह के आश्रम में पहुँचना चाहते थे। इस कारण वे वन के मार्ग से ही गए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

उक्त घटना के पच्चीस वर्ष उपरान्त की बात है। पितामह का आश्रम एक नगर में परिवर्तित हो चुका था। आश्रम के चारों ओर का वन काटकर नगर के लिए स्थान बनाया गया था। नगर की जनसंख्या कई सहस्र हो चुकी थी। इसमें अधिकांश युवक-युवतियाँ और बाल-बच्चे ही थे। प्रौढ़ावस्था के लोग अँगुलियों पर गिने जा सकते। पितामह की कुटिया के स्थान पर एक पक्का भवन बना था। भवन की ड्यौढ़ी पर सेवक खड़ा रहता था। अब बिना सूचना के भवन के भीतर कोई नहीं जा सकता था।

भवन के बाहर चालीस-पचास पग के अन्तर पर एक विशाल चबूतरा था; उस पर यज्ञशाला थी, यज्ञशाला पर छत बनी थी, वैसे वह चारों ओर से खुली थी। छत सुदृढ़ ईंटों के स्तम्भों पर टिकी थी।

यज्ञशाला के चारों ओर एक विस्तृत खुला मैदान था, जिस पर कोमल घास लगी थी। इस मैदान के उस ओर जिधर पितामह का आवास-गृह था, महर्षियों के लिए भवन बने हुए थे। अब इन महर्षियों के साथ बीस के लगभग ऋषि पदवी के व्यक्ति भी थे और उनके भवन आश्रम के बाहर बसे नगर में थे।

यह वृद्धि और विकास दो कारणों से हुआ। महर्षि अंगिरा ने अग्नि की सहायता से नए-नए पदार्थ निर्माण करने आरम्भ कर दिए थे। महर्षि जी अग्नि का प्रभाव भिन्न-भिन्न पदार्थों पर देखते थे। इन परीक्षणों में उन्नति का एक दूसरा साधन मिल गया। एक ऐसा पत्थर मिला था जो तीव्र अग्नि में तपाने पर पिघल कर अति कठोर, परन्तु धातवर्ध्य पदार्थ में परिवर्तित हो जाता था। यह लौह धातु थी। इस पर और अधिक परीक्षण किए गए तो यह देखा गया कि इसको और कठोर किया जा सकता है। इसके लिए अग्नि के तीव्र ताप की आवश्यकता पड़ी तो अग्नि को हवा देने का प्रबन्ध किया गया और इस प्रकार लोहा गलाने और इसे सुधारकर इसे अति कठोर बनाने का ढंग पता चल गया।

इन दो आविष्कारों ने आश्रम की काया पलट दी और आश्रम के चारों ओर नगर बस गया।

जिस दिन आश्रम पर प्रथम मानव आक्रमण हुआ था, पितामह ने ऋषियों की अपनी कुटिया में एक गोष्ठी बुलाई थी और उनको दो बातें कही थीं। एक थी वेदज्ञान को लिपिबद्ध करने की और दूसरी थी वन पशुओं और वन में रहने वाले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असभ्य प्राणियों से आश्रम की रक्षा का प्रबन्ध करना। इन दो प्रकार के चिन्तन की दिशा से प्रगति चल पड़ी थी।

इसमें वे स्त्रियाँ सहायक हो गईं जो वनचरों के गोल को छोड़कर आश्रम में रहने की लालसा करने लगी थीं। उनमें प्रायः युवतियाँ थीं और वे आश्रमवासियों की भार्या बन गईं।

आश्रम में महर्षियों के अतिरिक्त कुछ लोग भी थे जो वाणी तो सीख गए, परन्तु बुद्धि के प्रयोग से अधिक हाथों का प्रयोग करने में प्रसन्नता अनुभव करते थे। वे लोग आश्रम की सेवाओं में संलग्न रहते थे और जब आश्रम में स्त्रियों का बाहुल्य हुआ तो इन्हीं लोगों ने सर्वप्रथम गृहस्थ जीवन चलाने का यत्न किया।

उन स्त्रियों को आश्रम में आए कुछ दिन ही हुए थे कि विश्वपति, जो उनकी देख-रेख के लिए नियुक्त हुआ था, पितामह के पास एक युवती को लेकर आया और उससे विवाह की स्वीकृति माँगने लगा। वह युवती पहले भी एक बच्चे की माँ थी और अपने बच्चे के पिता को छोड़ आश्रम में रहने लगी थी। पितामह ने उस स्त्री से पूछा। वह स्त्री कुछ-कुछ वाणी के शब्द सीख गई थी। स्त्री ने पितामह के प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दिया तो विवाह हो गया और फिर अन्य स्त्रियाँ भी धीरे-धीरे अपने पति पा गईं।

इसके साथ ही वनचर, जिन्होंने आश्रम पर आक्रमण किया था और आश्रम पक्ष की विजय के उपरान्त पितामह द्वारा आश्रम के बाहर फेंक दिए गए थे, उस समय तो भयभीत हो चारों ओर वन में भाग गए थे, परन्तु कुछ दिन उपरान्त वे पुनः एकत्रित हो रात के समय आश्रम की बाड़ फाँद भीतर उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ उनका स्त्री वर्ग सोया करता था।

जब वे अपनी स्त्रियों को पकड़-पकड़कर भगाने लगे तो स्त्रियों ने चीख-पुकार करनी आरम्भ कर दी। इस पर पितामह और आश्रम के अन्य प्राणी जाग पड़े। अग्नि प्रदीप्त कर दी गई और उन वनचरों के हाथ से स्त्रियों को छुड़ाया गया। वनचरों को बन्दी बना लिया गया।

अगले दिन प्रातः के यज्ञ के उपरान्त उन बन्दियों को पितामह के सम्मुख उपस्थित किया गया।

वे पुरुष संकेतों से बताते थे कि वे अपनी स्त्रियों को लेने आए हैं। पितामह का प्रश्न था कि वे स्त्रियाँ उनकी किस अधिकार से हैं?

वनचर पितामह की वाणी और युक्ति को समझ नहीं सके तो एक स्त्री को जो वेद वाणी अपनी साथिनों से अधिक समझने लगी थी, बुलाया गया और उसको पितामह ने अपनी बात बताने का यत्न किया। जब स्त्री समझ गई तो उसने बन्दियों में से एक को पितामह की बात समझाई।

वनचरों का उत्तर था कि वे स्त्रियाँ उनके पास थीं। कुछ उनकी लड़कियाँ हैं,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वे उनके स्वामी हैं। वे उनको मिल जानी चाहिए।

पितामह ने उस द्विभाषिया स्त्री से कहा कि वह इनको समझाए कि एक पत्थर के टुकड़े और एक स्त्री में अन्तर है। एक में इच्छा नहीं और दूसरे में इच्छा है। अतः वे स्त्रियाँ जब तक उनके साथ रहने की इच्छा नहीं करतीं, वे उनकी नहीं हो सकतीं।

जब वनचरों के नेता ने कहा, "हमारे सामने उन स्त्रियों से पूछा जाए कि वे उनके पास रहना चाहती हैं अथवा नहीं ?"

अतः सब स्त्रियाँ और बच्चे बुलाए गए। उनसे पूछा गया कि वे इन लोगों के साथ रहना चाहते हैं अथवा आश्रम में ? उन्होंने आश्रम में रहने की इच्छा व्यक्त की। पितामह ने द्विभाषिया स्त्री से ही पूछा, "ये सबकी सब इनके साथ जाना क्यों नहीं चाहतीं ? बच्चे भी तो अपने कबीले में जाना नहीं चाहते।"

उस स्त्री ने बताया, "ये लोग अति क्रूर हैं। ये भोजन का अभाव होने पर अपने ही गोल के दुर्बल घटकों को मारकर खा जाते हैं। वैसे स्त्रियाँ कबीले की साँझी सम्पत्ति हैं और सब उनका प्रयोग करते हैं। जब स्त्री के पेट में बच्चा होता है तब ही उसे पुरुषोपयोगी सेवा से मुक्ति मिलती है।"

पितामह ने व्यवस्था दे दी कि जो स्त्री स्वेच्छा से उनके साथ जाना चाहे, जा सकती है अथवा जो स्त्रियाँ अपने पुरुष को अपने पास रखना चाहें, यहाँ आश्रम में रख सकती हैं, परन्तु यहाँ रहने वाले को आश्रम की व्यवस्था का मान करना पड़ेगा।

स्त्री तो कोई भी उनके साथ जाने को तैयार नहीं हुई। हाँ, दो पुरुष अपनी स्त्रियों के पास रहने के लिए तैयार हुए और उनकी पत्नियों ने उनको अपने साथ आश्रम में रखना स्वीकार कर लिया।

इनके उपरान्त भी समय-समय पर वनचर आश्रम पर छापे डालते रहे। एक बार एक स्त्री का अपहरण भी किया गया और दो दिन उपरान्त उसका आधा खाया मृत शव वन में पड़ा मिला।

इस बात से आश्रमवासियों को अपनी रक्षा के लिए साधन निर्माण करने का विचार बनाना पड़ा। इन साधनों के निर्माण में लाठियों, तदनन्तर भालों और अन्य अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार हुआ।

पितामह के भवन के बाहर यज्ञशाला में नित्यप्रति दो बार यज्ञ होता था और नित्य सायंकाल के समय यज्ञ के उपरान्त प्रवचन होता था। इन प्रवचनों को श्रवण करने वालों की संख्या बढ़ने लगी थी।

कभी-कभी कोई मनुष्य कहीं बाहर से भी आ जाता था। इससे यह अनुमान लगाया जा रहा था कि कुछ अन्य भू-भागों पर भी अमैथुनीय मानवी-सृष्टि हुई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भी मनुष्य यहाँ आता था, वह वाणी सीखकर यहीं रहने लगता था। इस प्रकार जनसंख्या बढ़ रही थी और धीरे-धीरे आश्रम नगर का रूप हो गया था।

इस बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए खाने-पीने का प्रबन्ध भी होने लगा था। बहुत से फलों के उद्यान बना लिए गए थे। साथ ही अन्न भी उत्पन्न होने लगा था।

यह ठीक था कि नगर में सुविधाएँ उपलब्ध थीं और वन के हिंसक पशुओं से तथा वनचर मानवों से रक्षा भी सुगम थी। पितामह के प्रवचनों से लोग परस्पर सहयोग और सहकारिता का आचरण स्वीकार कर रहे थे। फिर भी दिन-प्रति-दिन जीवन संघर्ष कठोर होता जाता था। दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक परिश्रम करना पड़ रहा था।

यह स्थिति थी जब का यह वृत्तान्त लिखा जा रहा है। महर्षि मरीचि के साथ छः अन्य ऋषि कार्य कर रहे थे जो नगर के रहने वालों की व्यवस्था चलाते थे। ये सबके सब मरीचि के शिष्य भी थे। इनमें से एक था जो वाणी की शिक्षा नगर के बालक-बालिकाओं को देता था। अब वाणी शिक्षा के अन्तर्गत ही लिपि की शिक्षा भी दी जाती थी और सब वाणी जानने वाले वाणी लिखते भी थे।

एक ऋषि भोजन की व्यवस्था पर विचार करता था। वह नए फलोद्यान लगवाता था और अधिक तथा स्वादिष्ट फलों की उपज करने का प्रबन्ध कर रहा था। अन्न की उपज भी की जा रही थी और अन्न को अग्नि में भूनकर नागरिकों को उपलब्ध कराया जा रहा था।

महर्षि मरीचि के अधीन एक ऋषि वस्त्रों का प्रबन्ध कर रहा था। अब खालों के स्थान पर वृक्षों की छालों से तन्तु निर्माण होने लगे थे और उन तन्तुओं को बुनने का ढंग आविष्कृत हो गया था।

एक दिन महर्षि मरीचि एक नागरिक को लेकर पितामह के पास उपस्थित हुए। पितामह के उसे वहाँ लाने का कारण पूछने पर महर्षि ने बताया, "इस व्यक्ति के घर में तीन प्राणी हैं। यह है, इसकी पत्नी और इसका एक बच्चा है। वह सात-आठ साल का प्रतीत होता है, परन्तु इसके घर में कन्द-मूल सुखा-सुखाकर ढेरों के ढेर लगे पड़े हैं। इसका क्या किया जाए?"

पितामह ने उस व्यक्ति से पूछा, "क्या नाम है?"

"उपदेव।"

"जितना महर्षि बता रहे हैं इतना तुम्हारे घर में है?"

"भगवन्! है।"

"कहाँ से आया है?"

"मैं और मेरी पत्नी नियम से नित्य उद्यान में जाते हैं और वहाँ से कन्द-मूल जितने हम उठा सकते हैं, ले जाते हैं। हम सब खा नहीं सकते। कन्द-मूल को सुखा कर सुरक्षित करने का ढंग मैंने सीख लिया है। यह महर्षि अंगिरा ने मुझे सिखाया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मैंने सुखाने का चूल्हा घर पर तैयार किया है। उसमें अग्नि जला दी जाती है और उसके चारों ओर भट्टी की गुहा बनी है। उसमें हम सुखाने वाली वस्तु रख देते हैं। वह सामान्य उष्मा होने के कारण जलती नहीं, परन्तु वह सूख जाती है। जब वह सर्वथा सूख जाती है तो उसको ऐसे स्थान पर रखता हूँ जहाँ नित्य धूप आती है।

"हम नित्य ऐसा करते हैं। हमारे खाने से यह बहुत अधिक होती है। वह हम एकत्र कर रहे हैं।"

"किसलिए एकत्र कर रहे हो?"

"वर्षा ऋतु में कन्द-मूल नीरस हो जाते हैं और हम उस समय इसका प्रयोग करेंगे।"

महर्षि मरीचि ने कहा, "परन्तु तुम्हारे पास इतना है कि तुम्हारा पूर्ण परिवार वर्ष भर में उसे समाप्त नहीं कर सकेगा।"

पितामह ने पूछा, "बताओ, उसका क्या करोगे?"

पितामह मुस्करा रहे थे। इससे उत्साहित हो उपदेव ने कहा, "भगवन्! जिस किसी को भी आवश्यकता होगी, उसे दे दूँगा।"

"बिना प्रतिकार में कुछ लिए?"

"नहीं भगवन्! मैं और मेरी पत्नी ने परिश्रम किया है; इस कारण इस परिश्रम का प्रतिकार ले लूँगा।"[१]

"क्या लोगे?"

"इस समय नहीं बता सकता। उस समय अपने सुख के लिए कुछ भी ले सकता हूँ। उदाहरण के रूप में महर्षि के सुपुत्र कश्यप हैं। वे भुने हुए कन्द खाने में बहुत रुचि रखते हैं। जब वह खाने के लिए माँगेंगे तो मैं उनसे अपने पुत्र के लिए सुन्दर अक्षरों में मन्त्रों की प्रतिलिपि माँगूँगा। इस प्रकार महर्षि पुलहः को यदि वे रसमय कन्द खाने होंगे तो मेरी पत्नी के लिए सुन्दर उत्तरीय देंगे।"

पितामह उपदेव की बात सुनकर गम्भीर विचार में मग्न हो गए। कुछ विचारकर वह खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले, "महर्षि मरीचि! अब बताओ,

---

१. त्रिवर्ग शास्त्र में अर्थवृद्धि के लिए भी लिखा है—

प्रमादस्य च वर्जनम्।

अलब्धलाभो लब्धस्य तथैव च विवर्धनम्।

प्रदानं च विवृद्धस्य पात्रेभ्यो विधिवत्ततः॥

(महा भा० शा०—५९-५६, ५७)

प्रमाद छोड़कर जो प्राप्त नहीं उसे प्राप्त करो और प्राप्त किए में वृद्धि करो। जब बढ़ जाए तो शास्त्र-विधि के अनुसार पात्र को दान करो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम क्या चाहते हो? इसने कौन-सा पाप किया है जो इसे बन्दी बनाकर लाए हो?"

"पितामह!" मरीचि ने समझाने का यत्न किया, "ये फल सबकी साँझी सम्पत्ति हैं। इसने उनको अपने अधिकार में लेकर चोरी की है।"

"ऐसे ही," पितामह ने समझाया, "जैसे नदी का जल अथवा भूमि सबकी साँझी सम्पत्ति है। जब तक किसी दूसरे को जल भरने अथवा भूमि का प्रयोग करने में कोई बाधा नहीं डालता तब तक यह अपने परिश्रम से जितना भी ले ले, यह चोरी किस प्रकार हो गई?"

मरीचि इस युक्ति को समझने के लिए पितामह का मुख देखता रह गया। पितामह ने देखा कि महर्षि समझे नहीं। इस कारण बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने कहा, "मान लो कि नदी सूख जाए और उसमें जल इतना कम रह जाए कि सबके पीने योग्य न रहे तब जल भरने को नियन्त्रण में करना पड़ेगा, परन्तु जब तक जल का प्रवाह अथाह है तब तक नियन्त्रण व्यर्थ होगा और अनधिकार भी।

"यहाँ की भूमि उर्वरा है। एक वृक्ष से बीस-बीस परिवारों का भोजन उत्पन्न है। जब तक यह आवश्यकता से अधिक उपज रहा है तब तक नियन्त्रण व्यर्थ है और इसका वहाँ से उठा लाना चोरी नहीं।

"इसने और इसकी पत्नी ने परिश्रम किया है और फलों को तथा कन्द-मूलों को बीनकर और उठाकर घर लाए हैं। वहाँ इन्होंने और अधिक परिश्रम किया। इन्होंने उनको भूनकर सुरक्षित किया है। यदि अब ये किसी से उस परिश्रम का प्रतिकार चाहते हैं तो यह कौन-सा अपराध है?"

मरीचि समझ गए कि यह उपदेव फलों का मूल्य नहीं ले रहा, वरन् अपने परिश्रम का प्रतिकार लेना चाहता है।

महर्षि ने समस्या का एक अन्य पक्ष बताया, "इसके भुने कन्द अति स्वादिष्ट होते हैं और लोग इसको कुछ भी मूल्य देने को तत्पर हैं।"

"यदि इसके भुने कन्द अति स्वादिष्ट हैं तो क्या यह इसका दोष है? और कोई अन्य भी तो महर्षि अंगिरा से सीखकर वैसे ही कन्द एकत्र कर सकता है।"

मरीचि निरुत्तर हो गए थे। इस कारण अब उसने व्यवस्था की बात की। उसने कहा, "भगवन्! इससे नगर में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। इस वर्षा ऋतु में यह अपने कन्द-मूल लोगों को किसी उपयोगी वस्तु के विनिमय में देगा। अगले वर्ष पूर्ण नगर ही यह व्यवसाय करने लगेगा और तब बहुत से फल व्यर्थ जाएँगे।"

"जब बहुत-से लोग यह कार्य करने लगेंगे तो इसके कन्द-मूल की माँग कम हो जाएगी और तब अगले वर्ष यह कम संचय करेगा; अन्यथा इसका परिश्रम व्यर्थ जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो महर्षि ! समस्या यह नहीं जो तुम प्रकट रहे हो। समस्या यह है कि वह भुने कन्द खाने में हानिकर तो नहीं ?

"मैं समझता हूँ कि अत्रि जी से कहो कि इसके कन्द-मूल की परीक्षा की जाए और यह निश्चय किया जाए कि वे स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर तो नहीं।

"उपदेव ! तुम महर्षि अत्रि के पास चले जाओ और अपने इन भुने पदार्थों की परीक्षा कराओ। यदि वे स्वास्थ्य के लिए हानिकर न हुए तो तुम यह व्यवसाय करने में स्वतन्त्र हो।"

उपदेव ने पितामह को प्रणाम किया और अत्रि जी के द्वार पर जा पहुँचा।

: २ :

जब उपदेव चला गया तो मरीचि ने पितामह से कहा, "आपकी व्यवस्था को मैं हानिकर सिद्ध नहीं कर सका, परन्तु मुझे इस व्यवहार के गर्भ में लोभ, मोह इत्यादि दुर्गुण छिपे हुए दिखाई देते हैं।"

"महर्षि ! तुम्हें लोभ, मोह, काम और क्रोध इस व्यवहार के कारण नहीं दिखाई देते वरन् आलस्य, प्रमाद और निष्क्रियता में छिपे प्रतीत होते हैं। परिश्रम करके उसका प्रतिकार पाना पाप नहीं, परन्तु पाप यह होगा कि कुछ लोग बिना प्रतिकार दिए इसके परिश्रम का फल भोगने की इच्छा करेंगे।

"वे इन स्वादिष्ट पदार्थों को खाने की कामना करेंगे। उस कामना की पूर्ति में उनको कुछ प्रतिकार में देना होगा। सबके पास प्रतिकार में देने को होगा नहीं। वे लोग कामना से पीड़ित इसका परिश्रम इससे लूट लेना चाहेंगे।

"इसको परिश्रम करने से मना करने की आवश्यकता तब होगी जब महर्षि अत्रि इनका खाना हानिकर बताएँगे। अन्यथा इसे परिश्रम करने से रोकना पाप हो जाएगा। रोकने की आवश्यकता उनको होगी जो इसके परिश्रम का मूल्य तो दे नहीं सकेंगे; फिर भी इसके परिश्रम के फल को प्राप्त करना चाहेंगे।

"अतः मैं समझता हूँ कि समस्या यह है कि कामाभिभूति को धर्म पर आरूढ़ रखा जाए।"

"भगवन् ! मैं इस लोभ को ही रोकने की आवश्यकता समझता हूँ।"

"यह लोभ नहीं है। यह जनोपकारी परिश्रम करने की प्रवृत्ति है। इसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए।"

महर्षि को उपदेव की सूचना उनके एकमात्र पुत्र महर्षि कश्यप ने दी थी। उसे इसके भुने हुए कन्द अति स्वादिष्ट लगे थे, परन्तु जब उसने कुछ अधिक माँगे तो उपदेव ने कह दिया कि वेद मन्त्रों के प्रति लिखित पृष्ठ के लिए वह एक मुट्ठी-भर कन्द देगा।

कश्यप समझता था कि जैसे कच्चे कन्द-मूल बिना कुछ लिए-दिए मिल जाते हैं वैसे ही ये भी मिल जाने चाहिए। अतः उसने अपने पिता महर्षि मरीचि से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेव की बात बता दी ।

कश्यप आशा कर रहा था कि उपदेव के सब संचित कन्द छीनकर लोगों में बाँट दिए जाएँगे और वह पिता के पितामह के पास से लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था ।

मरीचि उपदेव को महर्षि अत्रि के पास भेज, स्वयं अपने आवास पर पहुँचा तो कश्यप ने उत्सुकता से पूछा, "उपदेव का क्या हुआ है ?"

"यह व्यवस्था हुई है कि महर्षि अत्रि यह बताएँ कि उसके भुने कन्द-मूल स्वास्थ्य के विचार से कैसे हैं ? यदि वे स्वास्थ्य के लिए हानिकर हुए तो वे सबके सब नदी में बहा दिए जाएँ, अन्यथा उसके कार्य में किसी प्रकार का दोष नहीं है ।"

कश्यप अवाक् रह गया । अनायास उसके मुख से निकल गया, "पिताजी ! आपने पितामह को भली-भाँति समझाया नहीं ?"

"जो तुमने मुझे बताया था वह सब मैंने पितामह से कहा और स्वयं भी एक-आध युक्ति की; परन्तु मेरा समाधान हो गया है कि उसने कोई अपराध नहीं किया । पितामह ने कहा है कि किसी को जनोपयोगी परिश्रम करने से रोका नहीं जा सकता । यदि महर्षि अत्रि ने यह व्यवस्था दी कि वे भुने कन्द-मूल हानिकर नहीं और भोजन का स्थानापन्न हो सकते हैं तब उपदेव को यह कार्य करने से रोकना पाप होगा । साथ ही जो परिश्रम करता है, वह उसका प्रतिकार पाने का अधिकारी है ।"

"परन्तु पिताजी ! अर्थव्यवस्था में यह एक दूषित कार्य होगा । इसका परिणाम यह होगा कि उसके स्वादिष्ट कन्द-मूल की माँग नगर में बढ़ेगी । लोग इनको प्राप्त करने के लिए उपदेव को उसकी माँग के अनुसार प्रतिकार देंगे । एतदर्थ उसके पास अमूल्य वस्तुओं का विस्तृत भण्डार हो जाएगा । तब वह उन वस्तुओं के प्रतिकार में अन्य मूल्यवान वस्तुएँ माँगेगा । उसमें उत्तरोत्तर लोभ बढ़ेगा और लोगों में हीन भावना आएगी तथा नगर की शान्ति भी भंग हो सकती है ।"

"देखो कश्यप ! तुम्हारी युक्ति में एक बहुत बड़ा छिद्र है । पितामह ने कहा है कि उसे परिश्रम करने से मना नहीं किया जा सकता ।[१] उसे अपने लिए परिश्रम का प्रतिकार पाने से मना नहीं किया जा सकता । रही बात उसके समृद्ध हो जाने की और लोगों के उस द्वारा निर्मित कन्द-मूल की माँग बढ़ जाने की । इसका उपाय यह नहीं है कि उस पर प्रतिबन्ध लगाए जाएँ, वरन् लोगों में 'काम' को शान्त किया जाए । कुछ अन्य लोग उसको फलता-फूलता देख स्वयं वैसा व्यवसाय करने

---

१. धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चात्रानुवर्णिताः ।

(महा भा० शा०—५६-७२)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों प्राप्तव्य हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगेंगे। यह भी सम्भव है कि घर-घर में उस जैसे पकाने वाले चूल्हे बन जाएँगे और लोग घर पर ही वैसे कन्द-मूल तैयार करने लगेंगे। तब उसकी समृद्धि पर स्वाभाविक सीमा लग जाएगी।"

"परन्तु पिताजी! इससे जनसाधारण के स्वभाव में परिवर्तन होगा और इस प्राप्ति की इच्छा में वृद्धि होगी। इससे कामनाएँ बढ़ेंगी और लोग पाप का मार्ग ग्रहण करने लगेंगे।"

"पुत्र! यह सब कुछ सम्भव है, परन्तु क्योंकि जनसाधारण में ऐसे मूर्ख हैं जो अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण नहीं रख सकते; इस कारण किसी को आविष्कार करने तथा आविष्कृत पदार्थ के निर्माण करने से मना नहीं किया जा सकता। हाँ, यदि उस द्वारा निर्मित पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकर सिद्ध हुआ तो उसे रोक दिया जाएगा।"

"पिताजी! यह तो ऐसे होगा जैसे किसी स्त्री को अपने गुह्य अंगों का तथा शरीर पर लोभायमान स्थलों के सार्वजनिक स्थानों पर प्रदर्शन करने से मना किया जाए। यह इस कारण कि उसके पास वे सुन्दर मनोहर अंग हैं और उनका प्रदर्शन करने से मना करना उसकी स्वतन्त्रता पर बाधा होगी।

"मुझे स्मरण है, कुछ वर्ष हुए एक स्त्री अपने वक्षोज नग्न रख नगर में घूमा करती थी और पितामह ने उसको मना कर दिया था। मैं समझता हूँ कि उपदेव भी अपने भुने कन्द-मूलों के स्वाद का प्रदर्शन कर जनसाधारण की मनोवृत्ति को बिगाड़ रहा है।"

"मैं समझता हूँ कि तुम्हारे इस उदाहरण में और उपदेव की बात में अन्तर है। तुम बताओ कि उसके भुने कन्द-मूल खाने से शरीर में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हुआ है?"

इस पर कश्यप ने मुस्कराते हुए कहा, "स्वास्थ्य के विचार से ये भुने कन्द कच्चे कन्दों से अधिक सुखकर एवं हितकर प्रतीत हुए हैं। मैं कई दिन से उससे ले लेकर खाता रहा हूँ। ये अधिक पुष्टिकारक हैं। सुगमता से पचनीय और शौचादि को नियमित करते हैं।

"कल इसने मुझे कहा कि भविष्य में यह मुझे कन्द तब देगा जब मैं उसे नित्य एक पृष्ठ वेद मन्त्र सुलेख में लिखकर दिया करूँ।"

"तो तुम इसमें दोष समझते हो?"

"मैं वेद मन्त्र के एक पृष्ठ का मूल्य उसके एक-आध कन्द से अधिक मानता हूँ।"

"तो तुम्हें चाहिए था कि उससे एक पृष्ठ के लिए दो दिन के लिए कन्द की माँग करते।"

कश्यप मुख देखता रह गया। मरीचि ने कहा, "देखो पुत्र! मैं तो उसकी यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा जान कहता कि वह नित्य सायंकाल मेरे निवास स्थान पर आकर वेद मन्त्र निःशुल्क ले जाया करो। परिणाम यह होता कि मैं अपना कर्तव्य पालन करता। इसके प्रतिकार में उसके कन्द नहीं माँगता।

"इसका प्रतिकार यदि वह कुछ समझता है तो स्वयं देता। कन्द खिलाता अथवा कुछ अन्य प्रकार से मेरी सेवा करता।"

कश्यप मौन हो गया। पिता ने कहा, "तुम अभी और स्वाध्याय करो। पितामह के प्रवचनों को सुना करो। तुम्हारा ज्ञान अधूरा प्रतीत होता है।"

इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ अन्य उद्यमशील लोग अंगिरा से फल भूनने की भट्टी बनाने का ढंग और उसके प्रयोग का ढंग सीखने जा पहुँचे और वर्षा ऋतु के उपरान्त नगर में पाँच-छः अन्य कन्दों का व्यवसाय करने वाले इस क्षेत्र में आ गए। सामान्य लोगों में कच्चे कन्द-मूल खाने के स्थान भुने कन्द खाने का स्वभाव पड़ने लगा।

इसके साथ कश्यप ने यह देखा कि पितामह ने मुद्रा का आविष्कार किया है। इस समय तक स्वर्ण और रजत धातु शुद्ध अवस्था में प्राप्त की जा चुकी थी। लोहा तो इनके उपरान्त खनिज पदार्थों से निकाला गया था।

व्यवस्थानुसार स्वर्ण अथवा रजत के एक ही भार स्वरूप टुकड़े बना उनपर महर्षि अंगिरा का मुद्रांकन किया जाने लगा। ये स्वर्ण और रजत मुद्रा के नाम से प्रचलित हुई और पदार्थों के प्रतिकार में पदार्थ देने के स्थान पर इन मुद्राओं का चलन किया गया। लोग स्वर्ण और रजत के भूषण बनवाने लगे थे। अब उन भूषणों को ढलवाकर उनको मुद्राओं में परिवर्तित करवाने लगे जिससे पदार्थों का विनिमय सुगमता से हो सके।

कश्यप की पितामह से इस विषय पर भी बातचीत हुई। एक दिन सायंकाल के प्रवचन के उपरान्त कश्यप ने पितामह से पूछा, "पितामह! आपने स्वर्ण और रजत मुद्राओं के चलन की व्यवस्था की है। इससे जनसाधारण में लोभ और मोह बढ़ने लगा है।"

पितामह ने उत्तर देने के स्थान पर प्रश्न पूछ लिया, "इन मुद्राओं ने लोभ बढ़ाया है अथवा लोभ और मोह इससे पृथक् विषय है?"

"कोई कन्द-मूल एवं अन्न का संचय नहीं कर सकता। यदि कच्चे फल इत्यादि संचय किए जाएँ तो वे दो-तीन दिन में सड़ने लगते है, परन्तु उनके प्रतिकार में भुने कन्द-मूल एक-दो वर्ष तक रखे जा सकते हैं और अब स्वर्ण, रजत मुद्राएँ मनुष्य के जीवन-भर रखे जा सकेंगे। ये लोभ और मोह का कारण हो जाएँगे।"

"कश्यप! काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार मन के विकार हैं। ये मुद्रा के विकार नहीं। अतः इनका सम्बन्ध दूषित मन से है; न कि अन्न तथा कन्द-मूल इत्यादि से। मुद्रा भी स्वयं इसमें कारण नहीं हो सकती। मैं लोभ उसे मानता हूँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब किसी दूसरे के अर्जित धन को हथियाने की इच्छा हो। इसमें भी परिश्रम का अनुदान करके मुद्रा उपार्जन करना लोभ नहीं, यह परिश्रम है।

"मैं परिश्रम पर भी प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। अतएव उस परिश्रम का प्रतिकार प्राप्त करने पर भी प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। मुद्रा उस परिश्रम को संचित रखने का उपाय है। जब परिश्रम करना पाप नहीं, परिश्रम का फल प्राप्त करना पाप नहीं, तो उस फल को संचित रखना भी किसी प्रकार से अपराध नहीं हो सकता।"

"तो दोषयुक्त बात क्या है?" कश्यप का प्रश्न था।

"कामनाएँ स्वाभाविक हैं। स्वाभाविक वस्तु का भोग भी स्वाभाविक ही होगा, परन्तु इस भोग को प्राप्त करने का उपाय उचित अथवा अनुचित हो सकता है।

"भोग-प्राप्ति का उपाय जब अनुचित होता है तब दोष उत्पन्न होता है। साथ ही भोग-प्राप्ति का उपाय जब अन्य के उचित भोग-प्राप्ति के उपाय में बाधक हो तब भी दोष उत्पन्न हो जाता है।

"इन उपायों का कामनाओं के निर्माण से कोई सम्बन्ध नहीं। कामनाओं की वृद्धि अथवा इनका उचित-अनुचित होना एक पृथक् बात है। इस प्रकार कामनाओं की पूर्ति का साधन एक पृथक् विषय है। उपाय साधनों के निर्माण का नाम ही है।

"उचित साधनों पर प्रतिबन्ध नहीं लग सकता। इसी प्रकार उचित कामनाओं पर प्रतिबन्ध नहीं लग सकता।"

"उचित कामनाएँ क्या हैं?"

"जिनसे व्यक्ति के जीवन लक्ष्य में हानि न हो और जिनसे दूसरों की उचित कामनाओं की पूर्ति में उचित उपायों के मार्ग में बाधा न हो।"

"यह सब इतना झंझट है कि समाज में व्यवस्था रखना कठिन अवश्य हो जाएगा।"

"हाँ, जनवृद्धि के साथ यह व्यवस्था रखना कठिन हो रहा है, परन्तु किसी कार्य की कठिनाई को देखकर उस कार्य के करने पर प्रतिबन्ध नहीं लग सकता।"

"परन्तु ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जिससे किसी की उचित कामनाओं की पूर्ति में और कामनाओं की पूर्ति के उचित उपायों में बाधा न पड़े।"

"इस व्यवस्था के लिए एक व्यवस्था शास्त्र बनाना पड़ेगा। यह मैं बना रहा हूँ। इसमें तीन खण्ड होंगे। एक धर्म, दूसरा अर्थ और तीसरा काम।

"काम का अभिप्राय है···कामनाएँ। इनकी व्यवस्था होनी चाहिए। 'अर्थ' है उन कामनाओं की पूर्ति में साधन। इस विषय में भी उचित-अनुचित की व्यवस्था होनी चाहिए। इन दोनों कामनाओं और उनकी पूर्ति के साधनों पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियन्त्रण के लिए नियम-उपनियमों का नाम है धर्म। यह त्रिवर्ग शास्त्र अब बनाना आवश्यक हो गया है।"

: ३ :

कश्यप के वक्तव्य में सत्यता थी कि यदि स्वर्ण और रजत मुद्रा का विस्तार हुआ तो व्यवस्था रखने में कठिनाई होगी। पितामह भी इस कठिनाई को अनुभव कर रहा था, परन्तु कठिनाई से पार पाने के लिए दोनों के उपाय भिन्न ही नहीं थे, वरंच परस्पर विरोधी भी थे।

कश्यप चाहता था कि पितामह के जनपद में निजी संचय और उस संचित का विनिमय करने के लिए अवसर ही न रहने दिया जाए। पितामह इसके विपरीत व्यवस्था दे रहे थे। वह यह कि परिश्रम करने की सबको स्वतन्त्रता दी जाए। केवल वह स्वतन्त्रता धर्मयुक्त हो। उस परिश्रम की किसी दूसरे के परिश्रम से विनिमय की स्वतन्त्रता हो। यह विनिमय भी धर्मयुक्त हो। विनिमय से प्राप्त फल के भोग की भी स्वतन्त्रता हो। उसमें भी नियन्त्रण धर्म का ही हो।

कश्यप समझता था कि इससे ऐसी छीना-झपटी उत्पन्न होगी कि सब वन पशुओं की भाँति लड़ पड़ेंगे। उपदेव की कन्द-मूल भूनने की कुशलता अन्य किसी में नहीं थी। यद्यपि उसका व्यवसाय अन्य भी कई लोग करने लगे थे, परन्तु वे उसकी कुशलता को प्राप्त नहीं कर सके थे। अतः नगर के वे सब लोग, जिनके पास रजत एवं स्वर्ण मुद्रा होती थी, वे उपदेव से अपनी भोजन सामग्री उपलब्ध करते थे। परिणाम यह हुआ था कि एक-दो वर्षों में ही उपदेव स्वयं और उसकी पत्नी अपने अकेले परिश्रम से जनपद की माँग को पूर्ण नहीं कर सकते थे। उसने कई लोगों को अपने कार्य में सहायतार्थ रख लिया था। वह उनको रजत मुद्रा के रूप में वेतन देता था। नगर-भर में उसकी भट्टी से भुने कन्द सब धनियों के घरों में जाते थे और वहाँ से वह इच्छानुसार दाम प्राप्त करता था।

धनी लोग वे थे जो स्वर्ण अथवा रजत एकत्रित करते थे। एक दिन महर्षि पुलहः ने नदी के बालू में स्वर्ण कणों को मिला देखा तो उसने अंगिरा की सहायता से उनको गलाकर छरे बनवा लीं। पहले तो उसने इस धातु के भूषण बनवा अपनी पत्नी को पहना दिए और बाद में जब पितामह ने मुद्रा चलाने की व्यवस्था दी तो स्वर्ण की माँग बढ़ गई। जनपद के बहुत से लोग स्वर्ण निकालने का कार्य करने लगे। इस समय के लगभग रजत का पता लगा। लोहा तो पहले ही खनिज पदार्थ से निकाला जा चुका था। लोहे से खोदने, लकड़ी-पत्थर काटने, छीलने तथा चीरने के उपकरण बनने लगे थे।

ये सब व्यवसाय जनपद के लोग करते थे। वे अपने परिश्रम का फल उनके पास बेचते थे जिनके पास स्वर्ण तथा रजत मुद्रा होती थी। सबसे बड़ा व्यवसायी उपदेव था। उसके पास स्वर्ण तथा रजत मुद्रा बहुत अधिक मात्रा में एकत्रित होने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी थी।

जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ने लगी थी और कच्चा माल, धातु वर्ग, वस्त्रों के लिए तन्तु निकालने की वृक्षों की छाल तथा फलों में कमी होने लगी थी और इनको उपलब्ध करने में अधिकाधिक परिश्रम करना पड़ रहा था।

जिन लोगों को उपदेव के व्यवसाय के प्रारम्भिक दिनों का स्मरण था, वे वर्तमान की कठिनाइयों का अनुभव देख मन में असन्तोष अनुभव करते थे। कश्यप मुनि ने इस स्थिति को एक विस्फोट की स्थिति समझा था।

एक अन्य ऋषि उत्पन्न हो गए थे। वह अंगिरा के पुत्र बृहस्पति थे। अंगिरा की पत्नी उन वनचरों में से थी जो एक बार पितामह के आश्रम में घुस आए थे और जिनके योद्धा के साथ दक्ष का युद्ध हुआ था। युद्ध के उपरान्त बहुत-सी स्त्रियाँ पितामह के आश्रम की सम्पन्नता तथा सभ्यता देख, वहीं रह गई थीं। उनमें से एक लड़की के साथ अंगिरा का विवाह हो गया था और उसकी सन्तान बृहस्पति हुआ।

सन्तान होने के उपरान्त वह स्त्री अपने वन के साथियों के पास चली गई थी और अपने पुत्र को भी साथ ले गई थी। जहाँ बृहस्पति की माता ने वनचरों को सभ्यता का पाठ पढ़ाया, वहाँ उनको सुसंगठित हो अपने अस्तित्व को स्थिर रखने का ढंग भी सिखाया। यह वह पितामह के आश्रम में रहती हुई सीख गई थी।

बृहस्पति की माता ने वनचरों को आश्रम बना एक स्थान पर रहने तथा अपने फलों के उद्यान एवं अन्न के क्षेत्र बनाने का ढंग सिखाया। साथ ही उनको वाणी का भी लाभ समझाया। परन्तु वनचरों में रहने से वे स्वयं कुछ उनके व्यवहार को भी सीख गए थे। वनवासियों का जीवन ही आधार था और वह इसके लिए ही जीवन के सब प्रयासों को उपादेय मानते थे।

बृहस्पति की माता सुनीति जब अपने पति महर्षि अंगिरा के आश्रम में लौटी तो बृहस्पति दस वर्ष का हो चुका था। महर्षि अंगिरा उसे रखने को तैयार नहीं हो रहे थे, परन्तु बृहस्पति ओजस्वी और मेधावी बालक प्रतीत होता था। उसे देख तथा पितामह के अनुरोध पर वह मान गया।

बृहस्पति बड़ा हो वेद का ज्ञाता युवक हो गया। वह और कश्यप लगभग समवयस्क होने से साथी थे और दोनों जनपद में अव्यवस्था के बीज बोए जाते देख रहे थे।

वास्तव में दोनों इस पक्ष में थे कि इस अव्यवस्था को बढ़ने से रोकने के लिए मुद्रा संचय पर नियन्त्रण करना चाहिए। वे जनपद के सैकड़ों लोगों को दिन-रात स्वर्ण कणों की खोज में नदी की रेत में उथल-पुथल मचाते देखते थे तो चिन्तित हो उठते थे। वे देख रहे थे कि कोई खोज करने वाला तो दिन-भर की खोज में खाली हाथ घर लौटता है और कोई एक डुबकी में सौ-दो सौ रजत मूल्य का स्वर्ण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पा जाता है। वे यह भी देख रहे थे कि जिसको स्वर्ण नहीं मिलता, वह निराश हो निर्धनता का जीवन व्यतीत करता था। कभी वह किसी धनी-मानी के घर सेवा-कार्य करने पर विवश हो जाता है।

धन के एक-दो हाथ में एकत्रित होने से वे दूर वनों में बहुत-सी भूमि पर अधिकार कर, कर्मचारी रख, अन्न की उपज करने लगे थे।

उन दिनों व्यवस्थापक पितामह ही थे। बृहस्पति अपने मन के भावों को लेकर पितामह से मिलने उनके निवास स्थान पर जाया करता था। एक दिन वह गया तो पितामह के सम्मुख उपदेव उपस्थित था और अपने साथ हुई एक दुर्घटना का वर्णन कर रहा था। उसने बताया था, "पितामह ! रात मैं आपके जनपद में सर्वोत्कृष्ट धनी-मानी व्यक्ति था। आज प्रातः मैं जनपद में सबसे निर्धन और दुःखी हूँ।

"मैं रात अपनी दोनों पत्नियों से बातें करते-करते सो गया। मध्य रात्रि के उपरान्त किसी ने मेरे शयनागार का द्वार खोला। पाँच-सात व्यक्ति भीतर घुस आए। उनमें से एक ने प्रकाश-शलाखा जला रखी थी, अन्य ने मुझे तथा मेरी पत्नियों को मार-पीटकर हमारे मुखों में कपड़ा ठूँस, हमें बाँध दिया। मैं और मेरी पहली पत्नी चुपचाप पड़े रहे और अपने हाथ-पाँव तथा मुख बँध जाने दिए, परन्तु मेरी दूसरी पत्नी ने विरोध करना आरम्भ कर दिया। वह छटपटाने लगी और ऊँचे-ऊँचे स्वर में चीखने लगी। इस पर एक ने उसका गला दबाकर उसकी हत्या कर दी; तदनन्तर वे मेरे घर में रखा सब स्वर्ण, रजत एवं वस्त्रादि उठा बैलगाड़ियों पर लाद ले गए। उन्होंने घर में एक दाना भी नहीं छोड़ा। मेरे व्यवसाय को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए कन्द-मूल भूनने की भट्टियाँ तोड़ डालीं। कपड़ा बुनने के यन्त्रों को एकत्रित कर अग्नि की भेंट कर दिया। मेरे तथा मेरी पत्नी के पास इतना कुछ भी नहीं रहा कि हम दूसरी पत्नी के शव का दाह कर सकें।

"मुझे आज यह भी विदित हुआ है कि जनपद के अधिकांश लोग मेरी दुःखद कथा सुनते हैं और मन में सन्तोष अनुभव करते हुए चले जाते हैं। कोई यह भी नहीं पूछता कि मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता है अथवा नहीं ?

"भगवन् ! मैं अति दयनीय अवस्था में हूँ और आपसे सहायता की आशा लेकर आया हूँ।"

पितामह ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "कितनी हानि हुई होगी ?"

उपदेव ने कुछ विचारकर बताया, "कम से कम दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा की।"

"प्रति वर्ष कितनी आय हो जाती थी तुम्हें ?"

"भगवन् ! यह सब चार वर्ष में एकत्रित हुआ था। इस समय घर में एक पत्नी का शव पड़ा है, दूसरी पत्नी भयभीत अपने आवास में छिपकर बैठी है। मेरे पाँच बच्चे उसके पास भूख से व्याकुल पड़े हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वर्ष में कितना दान करते थे?"

"जितने भी दान के लिए आते थे, सब धूर्त प्रतीत हुए। उनको कुछ भी देने को चित्त नहीं करता।"

"मैं भी ऐसा हूँ क्या?"

इस प्रश्न पर उपदेव भौंचक्का रह गया, परन्तु शीघ्र ही अपने को सचेत कर बोला, "परन्तु भगवन्! क्या आप भी किसी से दान की आशा करते हैं?"

"उपदेव! यह मेरे आशा करने की बात नहीं। यह तुम्हारे देने की बात है। तुमने किसी को एक कौड़ी भी दान के रूप में नहीं दिया। यह तुमने घोर पाप किया है। धनोपार्जन किया है और उससे यज्ञ नहीं किया।

"तुम्हारी पत्नी के शव के दाह का प्रबन्ध इस आश्रम की ओर से किया जाएगा। तुम्हारे एक मास भर के लिए खाने-पहनने का व्यय आश्रम से दिया जाएगा। एक मास में तुम अपनी जीविका का प्रबन्ध कर लेना।

"हाँ, मैं महर्षि ऋतु को कहता हूँ कि चोरी करने वालों का पता करें।"

"भगवन्! उनमें से एक को मैं पहचान गया था। वह मेरे वस्त्रों के कार्य का व्यवस्थापक था। उसका नाम है वर्चस।"

जब उपदेव अपनी करुण कथा कह रहा था तो बृहस्पति और कश्यप भी वहाँ उपस्थित थे। वे पूर्ण कथा सुन चिन्ता अनुभव कर रहे थे।

जब उपदेव सामयिक सहायता का आश्वासन लेकर चला गया तब बृहस्पति ने बात आरम्भ की। उसने कहा, "पितामह! मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि आपका अर्थ-विधान ठीक नहीं है।"

"हाँ। मैंने तुम्हारी सम्मति को धर्मयुक्त नहीं समझा; इस कारण मैं अपने मुख से उसके अनुकूल व्यवस्था नहीं दे सका।"

"और इसका परिणाम आपने सुन लिया है?"

"कुछ सुना है, परन्तु यह मेरी व्यवस्था का परिणाम नहीं है। यह उसके विपरीत आचरण करने वालों का परिणाम है। उस आचरण में एक विचारधारा कार्य कर रही है और उस विचारधारा के प्रचारक तुम हो।"

"तो फिर मुझे दण्ड दिया जा सकता है।"

"बृहस्पति! मेरी व्यवस्था दण्ड देने की नहीं। मैं तो प्रेरणा से कार्य करवाता हूँ; परन्तु जब तुम दण्ड की बात करते हो तो मैं बताता हूँ कि उसके लिए मैंने एक त्रिवर्ग नाम का व्यवस्था ग्रन्थ लिखा है और उसको मैं आप सबके विचार के लिए शीघ्र ही उपस्थित करने वाला हूँ।

"उसमें धर्म की व्याख्या भी होगी और धर्म का उल्लंघन करने वाले के लिए दण्ड भी। मैं उसमें यह भी व्यवस्था दे रहा हूँ कि अधर्म को धर्म कहने वालों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु धर्म क्या है? यह किस प्रकार निश्चय होगा और इसका निश्चय कौन करेगा?"

"यह भी उस ग्रन्थ में लिखा है। इस समय संकेत मात्र ही मैं बता सकता हूँ। सनातन धर्म विख्यात है और उनका निश्चय इस बात से होता है कि जो एक व्यक्ति अपने साथ किया जाना पसन्द नहीं करता, वह किसी दूसरे के साथ करने लगे तो वह अधर्म है।

"उदाहरण के रूप में, किसी ने उपदेव के घर चोरी की है। मैं पूछूँगा कि क्या चोरी करने वाला अथवा क्या उस चोरी को न्यायोचित बताने वाला स्वयं धनवान् होने पर ऐसी चोरी अपने घर पर की जानी पसन्द करेगा? यदि नहीं, तो वह उपदेव के घर चोरी को कैसे न्यायोचित समझता है?"

"पितामह! मैं तो यह कहता हूँ कि इतना धन एकत्रित करना ही न्यायोचित नहीं।"

"उसने धन एकत्रित करने में किसी सनातन धर्म का उल्लंघन किया है तो बताओ? तब उसके लिए भी दण्ड का विधान होगा।"

"सनातन धर्मों के विषय में मैं नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूँ कि इतना धन एक व्यक्ति के पास एकत्रित हो जाने से ही पाप-कार्य होगा।"

"बृहस्पति! तुम क्या कार्य करते हो?"

"आप कार्य का अर्थ समझाएँ तो मैं बता सकता हूँ।"

"जब किसी का कोई प्रिय कार्य किया जाए तो उसमें व्यय किए परिश्रम को मैं कार्य कहता हूँ।"

"यदि अपना प्रिय किया जाए तब क्या वह कार्य नहीं होता?"

"वह कार्य तो होता है, परन्तु उसका प्रतिकार कोई दूसरा नहीं देता। जब तुम प्रातः उठ स्नानादि से शरीर शुद्धि करते हो अथवा सन्ध्योपासना से आत्मा की शुद्धि करते हो तो तुम कर्म तो करते हो, परन्तु वह कर्म तुम्हारे अपने लिए ही होने से कोई दूसरा उसके लिए कुछ प्रतिकार नहीं देगा।"

"और जब मैं लोगों को कोई ऐसा उपदेश दूँ जिस पर आचरण करने से उनको लाभ हो तो फिर भी वे प्रतिकार नहीं देंगे।"

"देंगे वे लोग जिनका लाभ होगा। यदि तुम एक का छीनकर किसी दूसरे को देने की बात कहोगे तो जिसका छीना गया है, वह तुमको किस बात का प्रतिकार देगा?

"और मैं समझता हूँ कि जो छीनकर ले गया है, वह भी कुछ नहीं देगा। कारण यह कि वह समझेगा कि उसके पास एकत्रित होने पर तुम उसका भी छीन लेने की बात कहने लगोगे।

"जब कोई परिश्रम करेगा, वह परिश्रम उद्यान में हो, स्वर्ण निकालने में हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा किसी अन्य क्षेत्र में हो, उस परिश्रम का जो भी फल होगा, उसका व्यय से बचा शेष एकत्रित करता है तो वह पापी नहीं हो सकता। वह फल एकत्रित होकर सम्पत्ति बन जाएगी तब भी पाप नहीं होगा।"

"इससे दूसरों को हानि पहुँचती है।"

"कैसे ?"

"यदि वह अपनी सम्पत्ति से वस्तुएँ क्रय करेगा तो वस्तुओं के दाम बढ़ेंगे और कोई अन्य वस्तु बनाने वाला भूखा मरने लगेगा।"

"परन्तु वह ऐसी वस्तु बनाए ही क्यों जिसे कोई क्रय नहीं करना चाहता ?"

"तो वह क्या करे ?"

"वह वही करे जिससे उपदेव के पास धन एकत्रित हो गया था।"

"यह वह करना नहीं जानता।"

"तब तो उसे जो कुछ दूसरों से मिले, उस पर सन्तोष करना चाहिए।"

बृहस्पति निरुत्तर हो गया। तदनन्तर वह उठकर चला गया।

: ४ :

कश्यप भी आया तो बृहस्पति के साथ था, परन्तु वह उसके साथ गया नहीं। वह पितामह के सम्मुख बैठा रहा। जब बृहस्पति गया तो पितामह ने कहा, "मैं समझा था कि अंगिरा का पुत्र उसके समान ही प्रतिभाशाली होगा। वेदों का ज्ञाता होगा और लोक-कल्याण कार्य में लगेगा, परन्तु यह अपनी माँ की प्रवृत्ति को स्वीकार कर रहा है।

"कश्यप ! तुम तो इसके साथ आए थे। इसके साथ गए क्यों नहीं ?"

"पितामह ! मैं इसके साथ नहीं आया था। साथ तो साथी ही आते हैं और मैं इसका साथी नहीं। मैं अपने मार्ग का राही हूँ।

"मैं अपने कार्य से आपकी सेवा में उपस्थित होने आ रहा था कि यह मार्ग में मिल गया और पूछने लगा कि मैं किधर जा रहा हूँ ? जब मैंने यहाँ आने की बात बताई तो यह बोला, 'आओ, तुम्हें वहाँ एक नई बात पता चलेगी।' इस प्रकार हम दोनों साथ-साथ आए थे।"

"इसका अभिप्राय यह हुआ कि इसे ज्ञात था कि उपदेव मेरे पास याचना लेकर आ रहा है और यह जानना चाहता था कि वह किस-किसके विपरीत याचिका करता है ?"

"हो सकता है।"

"परन्तु उपदेव ने अपने एक सेवक के अतिरिक्त अन्य किसी का नाम नहीं बताया। हाँ, मैं अनुमान से यह जान गया हूँ कि बृहस्पति उनका नेता है जिन्होंने यह काण्ड किया है।"

"पितामह ! विश्वास नहीं आता। कारण यह कि महर्षि अंगिरा सब प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्पन्न हैं और वह ऐसी विद्या के जानने वाले हैं जिससे सहस्रों उपदेव क्रय किए जा सकते हैं।"

"यह मैं जानता हूँ। फिर भी मैं तुम्हें एक तत्त्व की बात बताता हूँ। पापी पाप की प्रवृत्ति रखता है, परन्तु वह पाप-कर्म करने का साहस तब ही कर पाता है जब कोई बुद्धिमान अदूरदर्शी उसको पाप का मार्ग दिखाने वाला नेतृत्व के लिए आ जाए।

"मनुष्य में एक नैसर्गिक भय की भावना रहती है। वह जब किसी दूसरे की बुराई करने लगता है तो उसका वह नैसर्गिक स्वभाव उसे रोकता है, परन्तु जब कोई अपने कुतर्क से उसके पाप को पुण्य सिद्ध करने लगे, तब वह निःशंक हो पाप करता है। बृहस्पति यही कर रहा है। यह बुद्धिमान तो है, परन्तु ज्ञानवान नहीं। बुद्धि के कार्य का आधार ज्ञान होता है। जितना ज्ञान अधिक होता है उतना ही बुद्धि सन्मार्ग दिखाती है। अतः बुद्धिमान अज्ञानी अपनी बुद्धि से कुतर्क करने लगता है और सदा मिथ्या मार्ग दिखाने लगता है।"

कश्यप अपने ही मन की बात में उलझा हुआ था। इस कारण वह प्रतीक्षा कर रहा था कि कब पितामह अपनी बात समाप्त करते हैं तो वह अपनी समस्या उनके सम्मुख रखे। अतः प्रथम अवसर मिलते ही उसने कहा, "भगवन्! मैं आपसे एक स्वीकृति लेने आया हूँ। वह विवाह के विषय में है।"

"हाँ बताओ?"

"मैं कुछ दिन हुए दक्ष की नगरी में गया था। कुछ दिन वहाँ दक्ष जी के आवास में रहा था। महाराज, उनकी पचास कन्याएँ हैं। वैसे उनके कई पुत्र भी हुए थे, परन्तु सबके सब समय-पूर्व ही शरीर छोड़ते चले गए।

"उन्होंने अपनी दस कन्याओं का विवाह धर्म से कर दिया है। सत्ताईस कन्याएँ उन्होंने चन्द्रमा को दी हैं और तेरह कन्याएँ अभी और हैं। यदि आप व्यवस्था दें तो मैं शेष सबके साथ विवाह कर लूँ?"

"एक साथ तेरह से?"

"महाराज! चन्द्र ने सत्ताइस से एक साथ विवाह किया है।"

"देख लो। बहुत अधिक हैं। इससे जीवन दूभर हो जाएगा।"

"पितामह! बात इस प्रकार हुई है कि दक्ष के गृह पर प्रवास में मैंने उनकी किसी एक लड़की से विवाह की इच्छा प्रकट की तो वह मुझे लड़कियों के सम्मुख ले गए और पूछने लगे कि मैं किससे विवाह करना चाहता हूँ।

"इससे पूर्व मैं सब लड़कियों से मिल चुका था और जब भी किसी से मिलता था तो उसी से विवाह की इच्छा करने लगता था। एक से एक अधिक सुन्दर, सभ्य, सुशील, सुशिक्षित और सुसंस्कृत है। अतः मैं किसी एक का अपने लिए निर्वाचन नहीं कर सका। जब दक्ष ने पूछा तो मैंने कह दिया, 'ये सब परम सुन्दरियाँ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे भी सबकी सब गृहिणी बनाने के योग्य हैं।" प्रजापति कहने लगे, "ये तेरह हैं। सबकी सब आपके साथ कर सकता हूँ।"

"परन्तु ये क्या चाहेंगी ?

"मैंने इनसे पूछा है। सबकी सब आपको एक समान पसन्द करती प्रतीत होती हैं।"

"इस अवस्था में पितामह जी से स्वीकृति लेनी पड़ेगी। यह कहकर मैं आपसे इस विषय में सम्मति लेने चला आया हूँ।"

"देखो कश्यप ! मैं विवाह के विषय में किसी प्रकार का कठोर नियम नहीं बना सका। यह पुरुष के स्वास्थ्य, सामर्थ्य और सम्पन्नता पर निर्भर करता है कि वह कितने विवाह करे।"

कश्यप ने कुछ चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "क्या यही व्यवस्था लड़कियों के विषय में भी है ?"

"नहीं। पुरुष में बीजों की सृष्टि स्त्रियों में भूमि के अनुपात से बहुत अधिक होती है। इस कारण एक पुरुष कई स्त्रियों में बीजारोपण कर सकता है, परन्तु स्त्री के पास एक पुरुष के अनेक बीजों के लिए भी स्थान नहीं होता। अनेक पुरुषों के लिए कहाँ स्थान होगा ? अतः एक स्त्री का एक से अधिक पुरुषों से विवाह युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता।

"कश्यप ! सन्तानोत्पत्ति और वासना-तृप्ति दो पृथक्-पृथक् बातें हैं। जहाँ तक सन्तानोत्पत्ति का प्रश्न है, एक पुरुष अनेक स्त्रियों में बीजारोपण कर सकता है और वासना-तृप्ति के लिए तो एक स्त्री एक पुरुष के लिए पर्याप्त है। यह तब ही हो सकता है जबकि स्त्री का प्रयोग सन्तानोत्पत्ति के लिए न हो। वह केवल स्वाद की वस्तु मान ली जाए, तब एक पुरुष और एक स्त्री का सम्पर्क हो सकता है। जब मनुष्य का एक ही प्रकार का भोजन करते-करते चित्त ऊब जाता है तो वह किसी दूसरी प्रकार के भोजन के लिए इच्छा करने लगता है। यह सन्तान के लिए अधिक पत्नियाँ करने से कहीं अधिक दूषित बात है।

"अतः मेरी यह व्यवस्था है कि तुम दक्ष की तेरह कन्याओं से विवाह कर सकते हो और उन सबसे सन्तान उत्पन्न कर सकते हो, परन्तु तुम स्वयं अपनी सामर्थ्य और समृद्धता का विचार कर लो। तेरह पत्नियों से वर्ष में तेरह बालक हो सकते हैं। उनका पालन-पोषण कर सकोगे तो विवाह करो।

"जहाँ तक शरीर के सामर्थ्य का सम्बन्ध है, तुम महर्षि अत्रिजी से सम्मति ले लो।"

इस प्रकार पितामह की स्वीकृति लेकर कश्यप अपने पिता मरीचि के पास चला गया।

इसके उपरान्त वह दक्ष के नगर में जाकर प्रजापति की तेरह कन्याओं से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह कर एक विशाल भवन बना, पुर में रहने लगा। बृहस्पति उन दिनों पुर में नहीं था और महर्षि अंगिरा से पता करने पर कश्यप को ज्ञात हुआ कि वह पितामह के कोप से भयभीत कहीं घने वनों में जाकर रहने लगा है।

कश्यप को यह समाचार सुन विस्मय हुआ और उसने महर्षि अंगिरा से पूछा, "क्या अपराध किया था बृहस्पति ने ?"

"अपराध तो उसने बहुत बड़ा किया था। उसने नगर के कुछ अकिंचनों को यह प्रेरणा दी थी कि वे उपदेव के गृह में संचित सम्पत्ति लूट सकते हैं। यह पुण्य-कार्य होगा।"

"सत्य ? महर्षि ! आप जैसे विद्वान् अपने पुत्र को समझा नहीं सके कि वह अपनी वाक् शक्ति का दुरुपयोग न करे ?"

"वह और उसकी माँ मेरे कहे में नहीं हैं। अब भी उसकी माँ उसके साथ है।"

"तब वह अवश्य उसे अपने लोगों में ले गई होगी।"

"वहाँ जाकर पता किया गया है। वे माँ-पुत्र वहाँ नहीं हैं।"

"मैं समझता हूँ कि उसको पितामह से क्षमा दिलवाकर उसे वापस ले आना चाहिए; अन्यथा ज्ञान के स्रोत से असम्बद्ध होने पर वह असुर सन्तान उत्पन्न करने लगेगा।"

"तो तुम उसे ढूँढ़ निकालो। जहाँ तक पितामह का सम्बन्ध है, वह उससे क्रुद्ध नहीं हैं। फिर भी वह मिथ्या बात करता था और उसकी बात का पितामह अपने प्रवचनों में नित्य खण्डन करने लगे तो जिन्होंने उपदेव के घर चोरी की थी, वे पितामह के पास जाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

"उन्होंने ही बताया है कि बृहस्पति इस पुर में एक विप्लव उत्पन्न करनेवाला है। वह स्वीकारोक्ति सार्वजनिक रूप से कराई गई और उनसे क्षमा-याचना की गई। तब पितामह ने उन्हें क्षमा कर दिया। बृहस्पति ने क्षमा माँगनी उचित नहीं समझी और उसे भय लग गया कि पितामह के प्रवचनों से उद्विग्न हो पुर के लोग ही कहीं उसकी हत्या न कर दें। वह वन में जाकर छिप गया है।"

कश्यप ने एक दिन पितामह से भी बृहस्पति के विषय में बात चला दी थी। इस समय तक कश्यप की तीन पत्नियाँ गर्भवती हो चुकी थीं। कश्यप अपनी पत्नियों के साथ पुर के बाहर के विशाल भवन में रहता था। उस भवन की देख-भाल के लिए कुछ सेवक नियुक्त थे। भवन के साथ एक विशाल उद्यान और अन्न-क्षेत्र था। एक पशुशाला भी थी। कश्यप अपना व्यवहार मुद्राओं के द्वारा नहीं चलाता था। वह लेन-देन पदार्थों के विनिमय से करता था। सेवकों को उनकी सेवा का प्रतिकार भी अन्न, फल, कन्द-मूल और दूध, घृतादि के रूप में देता था।

उस दिन वह पितामह के सम्मुख उपस्थित हुआ तो पितामह ने मुस्कराते हुए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछ लिया, "कश्यप ! गृह-कार्य कैसा चल रहा है ?"

"बहुत रसमय चल रहा है भगवन् !"

"सब बहनें मिलकर जीवन नीरस तो नहीं कर रहीं ?"

"मैं समझता हूँ कि वे सब मिलकर मेरे जीवन को अधिक रसमय बनाने का यत्न कर रही हैं। उदाहरण के रूप में, पहले ही दिन मैंने सबको बुलाकर पूछा, 'सबसे पहले माँ कौन बनना चाहती है ?'

"भगवन् ! मेरे विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब तेरह में से कोई भी तैयार नहीं हुई। मैंने कह दिया, 'तब तो मुझे तुममें से अपने पुत्र निर्माण के लिए एक का निर्वाचन करना पड़ेगा।'

"सब भयभीत हो मेरा मुख देखने लगीं। वह सब समझती थीं कि मैं उनमें से उसी का निर्वाचन करूँगा। यह भय सत्य था। कारण यह कि मैं सबको एक से एक अधिक सुन्दर समझता हूँ, परन्तु जब मैंने उनको ही परस्पर निर्णय करने का एक ढंग बताया तो सब यह आशा करने लगीं कि इस काम के लिए वह निर्वाचित नहीं होगी।

"मैंने एक बर्तन लिया और उसमें तेरह गुठलियाँ डाल दीं। एक गुठली पर मसी से चिह्न बना दिया था और उनको कह दिया, 'तुम सब एक-एक गुठली इसमें से आँखें मूँदकर निकालो। जो मसी से अंकित गुठली निकालेगी, वह सबसे पहले पुत्रवती होगी।'

"महाराज ! इससे सब अपने-अपने भाग्य पर विश्वास करती हुई गुठलियाँ निकालने लगीं और अंकित गुठली मेरी पत्नी अदिति के हाथ में आई और वह मेरे प्रथम पुत्र को जन्म देगी।"

"विश्वास से जानते हो कि वह पुत्र होगा ?"

"हाँ महाराज ! महर्षि अत्रि ने मुझे बताया है कि किस प्रकार पुत्र को जन्म दिया जा सकता है और मैं समझता हूँ कि अदिति मेरे प्रथम पुत्र की माँ होगी।"

"यदि यह विद्या तुम अपने श्वसुर को बता देते तो उसका कल्याण हो जाता। वह अपने दोहित्रों को पुत्र बनाने की इच्छा अनुभव न करता।"

"मैंने महर्षि अत्रि से कहा है कि वह यह कृपा मेरे श्वसुर पर कर दें। वह कहते थे, दक्ष को हमारी विद्या पर विश्वास नहीं। और जो विद्या पर विश्वास नहीं करता, विद्या उसे छोड़ जाती है। वह यह भी कहते थे कि बृहस्पति भी वेद विद्या पर विश्वास नहीं रखता और उसका परिणाम भी ठीक नहीं हो सकता।"

"एक परिणाम तो हो रहा है कि उसे वनों में रहना पड़ रहा है।"

: ५ :

पितामह के बृहस्पति के वनों में रहने की बात पर कश्यप को उसके विषय में बात करने का अवसर मिल गया। उसने पूछ लिया, "पितामह ! आप उसे किसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार का भारी दण्ड देने वाले हैं ?"

"नहीं। मैं कौन हूँ दण्ड देने वाला ? मैं तो प्रेरणा ही देता हूँ। यह तो उसके अपने मन का भय ही है जो वह इस पुर में आने से भयभीत है।

"इसमें सन्देह नहीं कि उसने समाज धर्म का उल्लंघन किया है और वह समाज से ही भयभीत होकर यहाँ से भागा है। जब तुम विवाह के लिए दक्ष नगरी में गए थे, तब मैंने नित्य अपने प्रवचनों में उसके विचार में दोष प्रकट करने आरम्भ किए। इसका एक परिणाम यह हुआ कि उसके शिष्य एक-एक कर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगे। उन्होंने यह भी बताया कि बृहस्पति ने उनको यह समझा दिया था कि वह किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं कर रहे। उपदेव पापी है और पापी को दण्ड देना समाज के क्षत्रिय वर्ग का काम है। मुनि उन्हें क्षत्रिय वर्ग में मानते थे और इस प्रकार उनके मानने पर विश्वास कर वे उपदेव को दण्ड देने चल पड़े थे।

"मैंने सबके मन पर यह अंकित कर दिया कि वाक् प्रगल्भता भी मनुष्य की सम्पत्ति है और जैसे एक मनुष्य धन के बल पर दुराचार और अत्याचार कर सकता है; इस प्रकार वाक् सम्पत्ति के बल पर तो इससे भी अधिक पाप किए तथा कराए जा सकते हैं। यदि एक धनी धन के बल पर दुराचार कर सकता है अथवा करवा सकता है, वैसे ही एक वाणी का धनी भी ऐसा कुछ कर सकता है। दोनों पापी हैं।

"मैंने यह भी श्रोतागणों को समझाया कि उपदेव ने अपनी सम्पत्ति को अपने भण्डारों में संचय कर रखा था। यह पाप तो नहीं था, फिर भी यह श्रेयस्कर कार्य भी नहीं है, परन्तु वाणी के बल पर सरलचित्त लोगों को पथ-भ्रष्ट करना और उनसे हत्या, डाका, चोरी इत्यादि कर्म कराने की प्रेरणा देना पाप है और इसका फल मिलता है।

"मेरी इस प्रेरणा का फल यह हुआ कि उसके दल में फूट पड़ गई और जो लोग उसके कहने पर उपदेव की हत्या करने अथवा उसे लूटने के लिए उद्यत हो गए थे; वही उसकी हत्या तथा उसको तथा उसके पिता को लूटने के लिए उद्यत हो गए।

"बृहस्पति के पिता स्वर्ण और रजत मुद्रा को नाप-तोलकर मोहर से अंकित करने का पारिश्रमिक लेते हैं और मैं समझता हूँ कि उनके पास भी गणना योग्य धनराशि एकत्रित हो गई है। लोग उसको भी लूटने के लिए तैयार हो गए। परिणाम यह हुआ कि महर्षि अंगिरा ने पुत्र को मेरे सम्मुख उपस्थित हो पश्चात्ताप करने के लिए कहा तो वह तथा उसकी माता घर छोड़ कहीं चले गए हैं।"

"पितामह ! यदि मुझे स्वीकृति दें तो उसे ढूँढ़कर ले आऊँ ?"

"मेरी स्वीकृति की आवश्यकता क्यों है ? मैंने इस नगर में आकर शान्ति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक रहने से किसी को मना नहीं किया। वह भी आ जाए और समाज के नियमानुसार रहे। वह यहाँ सुखपूर्वक रह सकता है।

"कश्यप! तुम भी यह समझ लो कि धर्मात्मा व्यक्ति के लिए यहाँ के सभ्य समाज में रहने में कोई बाधा नहीं है।"

"परन्तु पितामह! सबकी बुद्धि में आ सकने योग्य धर्म-कर्म की व्याख्या भी तो होनी चाहिए। जनसाधारण भूल भी कर सकते हैं।"

"हाँ। इस बात का विचार किए छः मास से अधिक हो चुके हैं। मैंने एक स्मृति का निर्माण किया है। उसमें तीन अध्याय हैं—धर्म, अर्थ और काम। इन अध्यायों में इन तीनों का पृथक्-पृथक् और फिर उपसंहार में तीनों के समन्वय का वर्णन किया है।

"उस ग्रन्थ को महर्षि मण्डल ने स्वीकार कर लिया है। इसमें विलम्ब इस कारण हुआ कि इस ग्रन्थ का आकार कुछ बड़ा हो गया था। इसमें एक लक्ष पद हैं। तदनन्तर इसकी छः प्रतिलिपियाँ लिखाई गईं और एक-एक पद पर विचार किया गया है। अब वह ग्रन्थ जनसाधारण का मार्गदर्शन करेगा।"

"यह तो ठीक; परन्तु भगवन्! यह एक लक्ष पदों का ग्रन्थ सब कैसे पढ़, समझ और स्मरण कर सकेंगे?"

"ग्रन्थ तो ब्राह्मण वर्ग के ज्ञान के लिए लिखा गया है और वे लोगों को उसका भावार्थ बताते रहा करेंगे। लोग भी जब किसी विषय पर जानकारी चाहेंगे, तो वे अपने किसी समीप के ब्राह्मण के पास जाकर जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।"

"और ब्राह्मण कौन होगा?"

"जो पढ़ा-लिखा विद्वान् होगा और शम, दम, तप, शौच, क्षमाभाव और आस्तिक बुद्धि रखता होगा। साथ ही स्वभाव से विद्यादान का काम करता हो।"

"और इनको इस विद्यादान का प्रतिकार क्या मिलेगा? भगवन्! आपकी अर्थव्यवस्था में तो बिना मूल्य के कोई किसी को कुछ नहीं देता।"

"हाँ, उसको क्या मिलेगा; इसकी व्यवस्था भी उस ग्रन्थ में की है।"

"तो इस ग्रन्थ की व्यवस्था कब से लागू होगी?"

"आगामी श्रावणी से होगी। मैं इस ग्रन्थ की घोषणा करूँगा और तुम्हारे पिता महर्षि मरीचि इस ग्रन्थ का परायण आरम्भ करेंगे। उस दिन आरम्भ होने वाले चतुर्मास में उस ग्रन्थ का परायण समाप्त होगा और तदनन्तर वह लागू हो जाएगा।"

"और यदि मैं बृहस्पति को इस पुर में ले आऊँ तो वह किस प्रकार रह सकेगा?"

"उसके पिता धनवान् हैं। वह वहाँ रहकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और एक नागरिक के रूप में रहता हुआ नागरिक के अधिकारों का सेवन करे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्यप को कुछ वनवासियों से यह पता चला था कि पश्चिम की ओर एक घने जंगल में एक माँ-पुत्र, दो प्राणी कुटिया बना रहते हैं। पुत्र अति ओजस्वी, शौर्यवान् और बुद्धिमान प्राणी है और वह वन में रहने वालों का एक संगठन तैयार कर रहा है। इस प्रकार शक्ति संचय कर वह ब्रह्मपुरी को लूट लेगा। क्योंकि ब्रह्मपुरी में बहुत स्वर्ण एकत्रित हो रहा है।

इस सूचना पर ही कश्यप को चिन्ता लग रही थी। यह तो ब्रह्मपुरी के सब लोग जानते थे कि अकेले पितामह के बल पर वे लक्ष-लक्ष शत्रुओं का दमन कर सकते हैं। कश्यप को उसके पिता ने भी एक युद्ध की कथा सुनाई थी जिसमें दक्ष ने किंचित् बुद्धि के प्रयोग से अपने प्रतिद्वन्द्वी को पराजित किया था और पितामह ने अपने योगबल से शत्रुओं को आश्रम से ऐसे निकाल बाहर किया था जैसे कि आँगन में से कूड़ा-कर्कट बुहारकर बाहर कर दिया जाता है।

कश्यप यह समझ रहा था कि बृहस्पति वनवासियों के बल पर तो पितामह को पराजित नहीं कर सकता। पितामह ने तो एक बार गंगा के बहाव को ऐसे रोक दिया था जैसे कि किसी ने उसमें बहुत दृढ़ और ऊँचा बाँध लगा दिया हो। उस वर्ष वर्षा न होने से खेत एवं उद्यान सूख रहे थे। गंगा के बहाव को रोक देने से बाढ़ आ गई थी और किनारों के सब खेतों की सिंचाई हो गई थी। इस सब बात को सम्भव समझते हुए वह बृहस्पति का कल्याण इसी बात में मानता था कि बृहस्पति को पुनः पुर में लाया जाए और पितामह के सहयोग से वनवासियों की दशा सुधारने का यत्न किया जाए।

अब पितामह की स्वीकृति से एक दिन वह बृहस्पति की खोज में चल पड़ा।

: ६ :

कई वर्ष तक वन मंथन करने के उपरान्त वे बृहस्पति के आश्रम को पा गए। इस काल में बृहस्पति ने कई सहस्र वनवासी एकत्रित कर लिए थे। ये सब लोग अपने परिवारों सहित कुटिया बना, एक वन-नगर सा बनाने में लीन थे।

कश्यप बृहस्पति को मिलने गया तो वहाँ पहुँच उसने एक बात देखी। प्रत्येक सज्ञान व्यक्ति ने हाथ में एक प्रकार का अस्त्र पकड़ा था। एक बाँस के फल को ले उसे छील-मूछ साफ किया गया था और उस फल के दोनों किनारे एक डोर से कसकर बँधे हुए थे। यह सबके पास एक ही प्रकार का था, परन्तु छोटे-बड़े आकार के देख कश्यप समझ गया था कि यह किसी प्रकार का अस्त्र है।

कश्यप अपने एक वनवासी साथी के साथ जब वहाँ पहुँचा तो उसके साथी ने बताया था कि अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँच गए हैं, परन्तु वनवासी ने अभी यह सूचना दी ही थी कि बीस के लगभग अर्धनग्न पुरुष-स्त्रियों ने उनको घेर लिया और सब अपने कन्धों से अस्त्र उतार, उनमें एक प्रकार की छड़ी, जिसके अगले किनारे पर एक लड़की का तीव्र कोणदार शिर लगा था, तानकर खड़े हो गए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्यप के साथी ने उनको समझाया कि उनके मुखिया के हम मित्र हैं। इस पर दोनों को पकड़कर वे बृहस्पति के सम्मुख ले गए।

बृहस्पति कश्यप को वहाँ देख प्रसन्न नहीं हुआ। वह समझ रहा था कि वह पितामह का गुप्तचर वहाँ आ गया है। अतः उसने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछ लिया, "तुम यहाँ किसलिए आए हो ?"

"तुम्हारे कल्याण का चिन्तन करता-करता यहाँ आ पहुँचा हूँ।"

"परन्तु तुम यहाँ का पता कैसे पा गए ?"

"मित्र की गंध को सूँवता-सूँघता यहाँ आ पहुँचा हूँ।" कश्यप ने मुस्कराकर कहा।

"मैं तो यह समझा हूँ कि बूढ़े पितामह ने तुम्हें यहाँ का भेद जानने के लिए भेजा है।"

"पितामह ने नहीं भेजा। हाँ, मैं उनकी स्वीकृति से अवश्य आया हूँ। मैं मित्र से मिलकर पितामह से उसकी मित्रता कराना चाहता था। इसी विचार से आया हूँ।"

"परन्तु यहाँ का नियम यह है कि बिना मेरी स्वीकृति के यहाँ आने वाला मार डाला जाता है।"

"तो अपने नियम का पालन करो। नियम भंग नहीं होना चाहिए।"

"परन्तु यदि तुम सत्य-सत्य बात बता दो तो तुमको जीवन-दान मिल सकता है।"

"सत्य से तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?"

"तुम अपने भेदिए के कार्य को स्वीकार करो और उसके लिए क्षमा माँगो तो तुमको दण्ड-मुक्त किया जा सकेगा। फिर भी तुम्हें इस वन को छोड़कर तुरन्त चला जाने के लिए कह दिया जाएगा।"

"तुम्हारा अभिप्राय है कि मैं तुम्हारी असत्य बात को सत्य मान लूँ और फिर शपथ लूँ कि यहाँ की बात किसी को बताऊँगा नहीं ? साथ ही जो कार्य मैं यहाँ करने आया हूँ, वह न करूँ ?

"बृहस्पति ! मैंने सत्य बताया है कि मैं अपनी इच्छा से अपने मित्र से मिलने आया हूँ। मेरे आने का प्रयोजन तुममें और पितामह में मित्रता कराना है। यदि इस पर विश्वास नहीं तो तुम अपने नगर के नियम का पालन करो।"

"अर्थात् तुम्हें मृत्युदण्ड दे दूँ ?"

"मैं मरता नहीं हूँ। मैं अनादि, अनन्त, अजर-अमर हूँ। तुम उसकी हत्या नहीं कर सकते।"

"परन्तु तुम्हारी तेरह पत्नियों को तुम्हारे शरीर का भोग भी तो प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पत्नियों की बात पत्नियाँ जानें। वहाँ नगरी में कई नर नित्य मरकर पर-लोक को चले जाते हैं। वे समझेंगी कि मैं भी पाँव फिसल जाने से गंगाजी की लपेट में आ गया हूँ।"

"यही तो कठिन बात है कि आप लोग एक भ्रम में फँसे हुए किसी से डरते नहीं।"

"परन्तु बृहस्पति ! मैं तो तुम्हारे भय की बात बताने आया हूँ। मुझे विश्वास है कि वास्तविक कश्यप मरेगा नहीं, परन्तु तुम तो मानते हो कि मरने के उपरान्त तुम्हारा कुछ नहीं रहेगा। इस कारण मरने का भय तुमको करना चाहिए।

"देखो, यह जो तुमने यहाँ निर्माण किया है। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं। भूखण्ड बहुत लम्बा-चौड़ा है और प्रायः सबका सब निर्जन पड़ा है। तुम कहाँ रहते हो और वहाँ क्या करते हो; इसकी कोई दूसरा चिन्ता नहीं करता।

"साथ ही यह जो तुमने इन वनवासियों को यहाँ एकत्रित कर रखा है और इनको दूसरों की हत्या करने में निपुणता प्राप्त करा रहे हो; इसका ज्ञान पितामह को नहीं है।

"मैं समझता हूँ कि इसकी भी वह चिन्ता नहीं करेंगे। इसका प्रतिकार भी वह उसी ढंग से करेंगे जिससे वह तुम्हारी चिन्ता करते थे। जैसे तुम वहाँ से भाग आए हो वैसे ही ये यहाँ से भाग जाएँगे। जैसे तुम जीवन के अन्त से सब भोग सुविधाओं का अन्त मानते हो वैसे ही ये बेचारे मानते हैं और जब ये मारे जाने लगेंगे तो भाग खड़े होंगे। इनके विचार से इनका जीवन धन यह शरीर इनसे छिनने लगेगा।

"तब तुम्हारे लिए भय का अवसर उत्पन्न हो जाएगा।"

"मैं भयभीत नहीं। न तब था जब मैं ब्रह्मपुरी छोड़कर यहाँ चला आया था और न अब हूँ। मैं समझा हूँ कि तुम लोग लोगों में एक मिथ्या भावना उत्पन्न कर रहे हो और मुझे उससे जनमानस को बचाना चाहिए।"

"तो यह वहाँ रहते हुए ही क्यों नहीं किया ? यहाँ अशिक्षित और सरल चित्त वनवासियों को बरगलाने क्यों चले आए हो ?"

"मैं शक्ति संचय करना चाहता था।"

"परन्तु वहाँ तो शक्ति का काम नहीं। जब उपदेव के घर डर डाका पड़ा तो किसी को पकड़ा नहीं गया। कोई पकड़ने के लिए नियुक्त भी नहीं थे, परन्तु उपदेव का आधे से अधिक धन उसे दिया गया है। उसकी मृत पत्नी तो उसे मिली नहीं। हाँ, एक नवीन पत्नी मिल गई है। वह अब पुनः अपना वही व्यवसाय करने लगा है जो पहले करता था।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ कि पितामह की बात करने में चतुराई की तुलना मैं नहीं कर सका।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और वहाँ से पलायन कर आए। यह भय के ही लक्षण हैं। बृहस्पति ! मैं तुमको निर्भय करने आया हूँ।"

"कैसे ?"

"तुम्हारे मन में यह विश्वास बैठाकर कि वहाँ तुम्हारे लिए भय का कोई कारण नहीं। जो कुछ तुम यहाँ कर रहे हो; यदि यह किसी मानव के विपरीत नहीं है तो तुम्हें इसके लिए भी भय करने की आवश्यकता नहीं। वहाँ विचार से बात की जाती है। तुम भी विचारयुक्त बात कर सकते हो। अपने विचार को स्वीकार कराने के लिए वहाँ का कोई भी व्यक्ति बल प्रयोग नहीं करेगा और तुमको भी आश्वासन देना होगा कि तुम भी अपने विचारों का प्रचार बल से नहीं करोगे।"

"और यदि करूँ तो क्या होगा ?"

"तो दूसरे भी बल प्रयोग करेंगे।"

"किस प्रकार करेंगे ? वे तो धनुष-बाण बना नहीं सकते। उन लोगों ने पृथ्वी को प्राप्त कर भोग-विलास का जीवन चलाना आरम्भ कर दिया है। तुम अपनी ही बात देख लो। तेरह-तेरह पत्नियाँ क्या विलासिता का लक्षण नहीं ?"

"तुम्हारे पास कितनी हैं ? तुम्हारी माँ ने तो तुम्हारा अभी विवाह नहीं किया और तुम स्त्रियों से निर्लिप्त तो हो नहीं।"

"मेरा विवाह यहाँ की विधि से हुआ है। परन्तु तुम्हारी भाँति नहीं कि एक ही रात में तेरह-तेरह उपस्थित हों।"

"यहाँ विवाह की क्या विधि है ?"

"यहाँ विवाह तथा पत्नी नाम की कोई वस्तु नहीं। युवती और युवक परस्पर मिलते हैं और जब किसी के गर्भ ठहर जाता है तो उसको युवकों से मिलने नहीं दिया जाता। सन्तान होने के उपरान्त वह पुनः स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी इच्छानुसार युवकों से मिलती है।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि यह बात तुमने वन पशुओं से सीखी है, परन्तु हमारा ढंग उनसे उन्नत है। इस अवस्था में कौन किस पिता की सन्तान है, पता नहीं चलता। साथ ही यह विधि अव्यवस्था उत्पन्न कर देगी।"

"यहाँ पूर्ण समाज ही सब बच्चों के माता-पिता हैं। बच्चे किसी की निजी सम्पत्ति नहीं होते।"

"अर्थात्," कश्यप ने हँसते हुए कहा, "एक क्षेत्र में उत्पन्न अन्न की भाँति क्षेत्र के स्वामी की सम्पत्ति होते हैं ? यह पशुओं से भी निकृष्ट स्थिति है।"

"हम इसे सर्वश्रेष्ठ पद्धति मानते हैं। हम बच्चों का कोई स्वामी स्वीकार नहीं करते।"

"और तुम क्या हो ?"

"मैं स्वामी नहीं हूँ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर मुझे इनको समझाने दो कि तुम एक अच्छी सम्मति नहीं दे रहे।"

"कैसे समझाओगे?"

"मैं इनके सामने यह सिद्ध कर दूँगा कि तुम इन सबको मरने के लिए तैयार कर रहे हो। अतः यदि तुम किसी पर अनावश्यक आक्रमण करने के लिए कहोगे तो वे तुम्हारा साथ छोड़ देंगे।"

"पर मैं आक्रमण करूँगा ही क्यों?"

"तो फिर तुम्हारा यह लुकाव-छुपाव तथा इन प्रक्षेपणास्त्रों का निर्माण किस प्रयोजन से है?"

"यह तो वन पशुओं से अपनी रक्षा के लिए है।"

"किसी मानव समुदाय से युद्ध करने के लिए नहीं?"

"ऐसा कोई विचार नहीं।"

"तो ठीक है। कल मैं ब्रह्मपुरी को लौट जाऊँगा। तुम भी मेरे साथ वहाँ चलो। तुम्हारा दक्ष कर्दम इत्यादि से अधिक मान होगा।"

"किसलिए?"

"तुमने अपने में एक कुशलता जो प्रकट की है। तुम एक योग्य संगठनकर्ता हो। तुम यदि वहाँ चलो तो तुम्हारी इस योग्यता के लिए तुम पुरस्कृत किए जाओगे।"

इस प्रस्ताव पर बृहस्पति मुख देखता रह गया। उसने गम्भीर भाव में विचार कर कहा, "विश्वास नहीं होता। इस पर भी विचार करके बताऊँगा।"

: ७ :

अविश्वास की बात पितामह के सम्बन्ध में नहीं थी। यह बृहस्पति के अपने साथियों के विषय में थी। उसने अपनी माता के माता-पिता के कबीले वालों से पितामह की इतनी निन्दा की थी कि वे अत्यन्त भड़के हुए थे और उनको शान्त रख सकना सम्भव प्रतीत नहीं होता था।

बृहस्पति ने योजना बनाकर अपने साथियों को बता रखी थी कि ब्रह्मपुरी पर आक्रमण कर न केवल अपने पुरखाओं की हानि का बदला लेंगे, वरन वहाँ के अपार स्वर्ण भण्डार को भी लूट लेंगे।

एक सहस्र से अधिक धनुष-बाण से सुसज्जित योद्धा इस वन में एकत्रित थे। वे सब उत्तेजित अवस्था में थे। इस विषय में परम उत्तेजना का स्रोत बृहस्पति की माता सुनीति थी। माँ पुत्र को भी भड़काती रहती थी।

सुनीति का तथा उसके माता-पिता का भड़काना प्रभावहीन ही रहता यदि बृहस्पति वेदवाणी पर श्रद्धा रख सकता। उसे जो कुछ इन्द्रियों से अनुभव होता था, उसके अतिरिक्त वह किसी भी बात को मानने के लिए तैयार नहीं था।

अतः पितामह की जीवन-मीमांसा उसे अशुद्ध प्रतीत होती थी और वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने लगा था कि उस जीवन-मीमांसा से मानव अन्त में पशु बनने वाला है। इसी कारण वह उस जीवन मीमांसा का विरोध करना मानव कार्य मानता था। इस उद्देश्य की पूर्ति में उसे अपनी माँ के पिता के परिवार के लोग सहायक मिल गए।

सुनीति के माता-पिता के कबीले वाले जीवन-मीमांसा के विषय में कुछ नहीं जानते थे। उनको इसमें किसी प्रकार का विरोध अनुभव नहीं होता था। उनको तो बीस वर्ष पूर्व अपने कबीले वालों की पराजय की स्मृति कष्ट दे रही थी। इस कष्ट का प्रतिकार लेने में बृहस्पति उनका सहायक था। जब बृहस्पति ने अपनी योजना बनाई और उनको ब्रह्मपुरी का धन-वैभव लूटने की आशा दिलाई तो सब तैयार हो गए। धनुष-वाण बृहस्पति का आविष्कार था और इससे पशु हत्या में सुगमता देख सब प्रसन्न थे और ब्रह्मपुरी पर आक्रमण की तैयारी होने लगी थी।

एक बात बृहस्पति की चिन्ता का विषय थी। वह थी पितामह की योग-विद्या। यद्यपि उसने इसका चमत्कार देखा नहीं था, परन्तु वह उसके विषय में किंवदन्तियाँ सुन चुका था।

यह अज्ञात भय था और इसका पार पाने के लिए उसकी योजना यह थी कि पितामह को किसी प्रकार बन्दी बना ले और तदनन्तर पुरी पर आक्रमण करे।

कश्यप आया तो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि पितामह सम्पत्ति का सबमें सामान्य रूप में वितरण मान लें तो उसके ननिहाल के लोग अनायास ही धन-सम्पदा से युक्त हो जाएँगे और यदि वह यह न मानेंगे तो वह अपने साथियों को लेकर पुरी में रहना आरम्भ कर देगा। जब अपने लोग पुरी में रहते हुए परिश्रम करने लगेंगे तो वहाँ पुरी के भीतर ही विप्लव उत्पन्न करना सुगम होगा।

इसी कारण उसने कश्यप को कहा था कि वह विचार करके बताएगा।

कश्यप को उसके साथी सहित कुटिया में ठहरा दिया गया और वह अपनी माता से विचार करने जा पहुँचा।

उसने माता को बताया कि मरीचि का पुत्र कश्यप उसे ढूँढ़ता हुआ यहाँ आ पहुँचा है और वह वहाँ के योद्धाओं को धनुष-बाण लिए हुए युद्ध के लिए तैयार देख चुका है।

"माँ ! अब क्या किया किया जाए ?" बृहस्पति ने पूछा।

"तुमने क्या विचार किया है ?"

"वह कहता है कि वह पितामह से हमारी सन्धि करा देगा।"

"सन्धि कैसे होगी ?"

"मैं उस पुरी में चलकर रह सकता हूँ। वहाँ हममें से कोई अथवा सब चल सकते हैं और वहां रह सकते हैं। वहाँ परती भूमि पर अधिकार कर फल-फूल,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्द-मूल तथा अन्न उत्पन्न कर सकते हैं। वहाँ के धनी-मानी नागरिकों के घरों, उद्यानों अथवा क्षेत्रों में सेवा-कार्य भी प्राप्त कर सकेंगे।"

"मुझे इसमें किसी प्रकार की धोखा-धड़ी प्रतीत होती है।"

"पितामह अति बुद्धिमान हैं। इस कारण उनसे सब कुछ की आशा की जा सकती है। अतः उसकी बुद्धि का सामना बुद्धि से ही किया जा सकता है।"

"बेटा ! तुम पराजित हो जाओगे।"

"माँ ! तुम ही तो कहा करती हो कि वह योगशक्ति से गंगा नदी का बहना बन्द कर सकता है। तो युद्ध में वह क्या करेगा, यह भी तो विचारणीय है।"

"मैं समझती हूँ कि अब वह वृद्ध हो गया है और उसमें वह शक्ति नहीं रही होगी जिससे गंगा का बहाव रोक सके; फिर भी यह शक्ति तो है। उसका सामना करने के लिए भी तो कुछ करना होगा। तुम क्या विचार कर रहे हो ?"

"यही कि उससे सन्धि कर लूँ। सन्धि में यह स्वीकार करवा लूँ कि हमारे लोग भी वहाँ रहते हुए जीवन निर्वाह कर सकें।

"जब हम सहस्रों की संख्या में वहाँ रहने लगें और साथ ही अपना संगठन रख सकें तो फिर एक दिन अवसर मिलते ही मैं पितामह के स्थान पर जाकर रहूँगा और पितामह सहित सबको दासता की श्रृंखलाओं में बाँध लूँगा।"

"देख लो। इसमें भय भी है।"

"भय की चिन्ता न करो माँ ! मैं कश्यप के साथ जाऊँगा और अपने साथ एक सौ के लगभग यहाँ के लोग ले चलूँगा। जब मैं वहाँ रहने लगूँ तो तुम दो-दो चार-चार कर यहाँ के वनवासियों को वहाँ भेज देना।

"इस बार मैं पिताजी के घर पर नहीं रहूँगा। मैं अपना पृथक् आवास बनाऊँगा और हमारे लोग मेरे आवास के चारों ओर अपने निवास स्थान बनाकर रहेंगे। इस प्रकार मैं वहाँ अपना एक पृथक् नगर बनाकर रहूँगा। तब एक दिन अवसर पाते ही···।"

सुनीति समझ गई और बोली, "ठीक है। यदि किसी प्रकार की छलना हुई तो समाचार भेज देना और मैं अपने योद्धाओं के साथ तुम्हारी सहायता के लिए पहुँच जाऊँगी।"

इस प्रकार अगले दिन कश्यप, उसका साथी वनवासी तथा बृहस्पति और उसके साथ एक सौ से कुछ अधिक स्त्री-पुरुष चल पड़े। सबने अपने कन्धों पर धनुष-बाण लटकाए हुए थे।

ये लोग वनस्थली से चले तो पाँच दिन की यात्रा कर ब्रह्मपुरी में जा पहुँचे।

बृहस्पति ने अपने साथी पुरी के एक खुले स्थान पर बैठा दिए और कश्यप बृहस्पति को लेकर पितामह के निवास गृह पर जा पहुँचा। पितामह की स्वीकृति से वे उनके सामने उपस्थित हुए तो कश्यप ने पितामह के चरण स्पर्श किए और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक पितामह ने बैठने को नहीं कहा, बैठा नहीं। वह सम्मुख खड़ा रहा। बृहस्पति ने केवल नमस्कार की और पितामह के सम्मुख बैठ गया। पितामह ने मुस्कराते हुए कहा, "बैठो कश्यप ! कहाँ रहे इतने दिन ?"

"भगवन् ! दक्षिण के वन में बृहस्पति के रहने का पता चला था। अतः वहाँ इसको ढूँढ़ता रहा। कई मास की खोज के उपरान्त इसे पा सका और इसे यह आश्वासन देकर यहाँ ले आया हूँ कि आप इसके पूर्व के अनियमित व्यवहार के कारण इसे दण्ड नहीं देंगे।"

कश्यप देख रहा था कि बृहस्पति ने अपना व्यवहार ऐसा बना रखा है कि मानो वह पितामह के समान है। इस कारण पितामह के रुष्ट होने को रोकने के लिए उसने अपने इस आश्वासन की बात सुना दी।

पितामह ने कहा, "इसके जितने साथी थे, उनको हमने कष्ट नहीं दिया। न ही उन्हें किसी प्रकार का दण्ड देने का कभी विचार किया था।

"बृहस्पति ! तुमने हमारा किसी भी प्रकार से अपकार नहीं किया था। इस कारण हमारे मन में तुम्हारे विरुद्ध किसी प्रकार का भी विचार नहीं था। इस कारण हम तुमको दण्ड नहीं दे सकते थे।

"फिर भी तुम्हें एक बात समझ लेनी चाहिए कि जब तुम किसी का अपकार करोगे तो निस्सदेह वह उस अपकार का प्रतिकार लेगा।

"तुमने समाज का अपमान किया था। क्योंकि तुमने समाज में रहने के ढंग को अस्वीकार कर दिया था। यदि अब भी तुमने समाज का किसी प्रकार से अनिष्ट किया तो समाज तुम पर रुष्ट होकर प्रतिकार लेगा।"

"परन्तु पितामह ! जब समाज के नियम-अनियम हो जाएँ तो उनका भंग करना क्यों अपकार होगा ? अनियमित व्यवहार भूल है। और भूल का विरोध पुण्य होना चाहिए।"

"बृहस्पति ! तुम ठीक कहते हो, परन्तु इस बात का निर्णय कौन करेगा कि समाज का नियम हानिकर है अथवा अन्याय-युक्त है ?

"यह समाज ही निर्णय कर सकता है। समाज को चेतावनी दी जानी चाहिए।"

"पितामह ! एक अत्यन्त हानिकर नियम आपने प्रतिपादित किया। मैंने उसके सम्बन्ध में जिनको हानि हो रही थी, उनको चेतावनी दे दी। उन्होंने उपदेव को लूटा। बताओ, इसमें क्या पाप हुआ ?"

"यह बात तुम मुझसे किसलिए पूछते हो ? जिस समाज को तुमने चेतावनी दी थी उसी से जाकर पता करो कि उन्होंने तुम्हारा कहा माना क्यों नहीं ?"

"आपने पुनः उनको पथभ्रष्ट कर दिया है।"

"यह भी तुम उनसे ही पूछो कि मैंने उनको क्या कहा है और यदि वे बहकाए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए हैं तो क्यों ?"

"भगवन् ! अब आया हूँ तो उनसे पूछूँगा ही और उनको पुनः सीधे मार्ग पर लाने का यत्न करूँगा।"

"ठीक है। मैंने इससे मना नहीं किया, परन्तु एक बात तुम्हें समझ लेनी चाहिए कि तुम्हारी और कश्यप की अनुपस्थिति में एक यह नियम स्थापित हो चुका है कि यदि कोई बलपूर्वक मनमानी चलाए तो उसको बल से रोका भी जा सकता है। परिणाम यह हुआ कि उपदेव ने अपनी रक्षा के लिए कुछ संरक्षक नियुक्त कर रखे हैं और वे शस्त्रास्त्र-सज्जित हैं।"

"कैसे शस्त्रों से सुसज्जित हैं ?"

"यह उसको विदित हो जाएगा जो अब उसके घर पर डाका डालने जाएगा।"

अभी बातचीत चल रही थी कि पितामह के सेवक ने भीतर आकर कहा, "पितामह !"

पितामह ने मुख उठाकर पूछा, "हाँ, क्या कहते हो ?"

"महाराज ! पुरी पर कुछ वनवासियों ने आक्रमण कर दिया है।"

"तो फिर ? हमने तो यह नियम बना रखा है कि जो किसी पर अत्याचार करेगा वह आततायी है, और प्रताड़ित व्यक्ति आततायी को दण्ड देने का अधिकार रखता है।" ब्रह्म ने सूचना लाने वाले को कहा।

"पर भगवन् ! वे बहुत अधिक संख्या में हैं।" समाचार लाने वाले ने कहा।

"नगरवासियों की संख्या से भी अधिक ?"

"यह तो नहीं। परन्तु वे एक प्रकार के अस्त्रों से सुसज्जित हैं। उन अस्त्रों से वे पुरी वासियों की हत्या कर रहे हैं।"

"अच्छा जाओ और देखो कि वे भाग गए हैं अथवा नहीं। जो अपने शस्त्र छोड़कर अधीनता स्वीकार करें, उन्हें यहाँ आश्रम में बन्दी बनाकर ले आओ।"

सेवक तो यह देखकर आया था कि ब्रह्मपुरी के नागरिक वनवासियों के बाणों से घायल हो, भाग-भागकर घरों में छिप रहे थे। यहाँ पितामह कह रहे थे कि वनवासी भाग रहे हैं। फिर भी पितामह के आदेश के अनुसार वह भागा हुआ आश्रम से वनवासियों के आक्रमण स्थान की ओर चला गया।

: ८ :

जब सेवक चला गया तो पितामह ने बृहस्पति से पूछ लिया, "ये वनवासी तुम्हारे साथ आए प्रतीत होते हैं ?"

"हाँ, एक सौ से ऊपर आए हैं।"

"तो उनको यहाँ क्यों नहीं ले आए ?"

"मैं आपसे जानना चाहता था कि उनको कहाँ ठहराऊँ ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुछ अन्य कबीलों के लोग भी नगर की सुविधाओं से लाभ उठाने के लिए यहाँ आ रहे हैं और वे बिना मुझसे पूछे, नगर के बाहर अपनी इच्छानुसार अपनी कुटिया बनाकर रहते हैं। केवल मुख्य मार्गों के अतिरिक्त कहीं भी स्थान लेने की स्वीकृति है।"

"परन्तु मैंने उनसे कहा था कि वे शान्ति से रहें। मैं उन्हें वृक्षों के एक झुर-मुट के नीचे बैठाकर आया था।"

यह सूचना दे बृहस्पति उठते हुए बोला, "मैं उनकी अवस्था देखने जा रहा हूँ।"

"वे प्रायः सभी यहाँ लाए जा रहे हैं। तुम्हें जाने का कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।"

बृहस्पति अभी विचार ही कर रहा था कि जाए अथवा वहीं ठहरे कि बाहर बहुत से लोगों का हल्ला सुनाई देने लगा।

पितामह आश्रम की यज्ञशाला में आकर खड़े हो गए। यज्ञशाला के सम्मुख मैदान में सत्तर-अस्सी के लगभग वनवासी स्त्री-पुरुष ब्रह्मपुरी के नागरिकों से घिरे हुए वहाँ खड़े थे।

बृहस्पति और कश्यप दोनों पितामह के कुछ पीछे हटकर खड़े थे। नगर का एक मुखिया पितामह को देख आगे बढ़ा और हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला, "भगवन्! ये लोग सोमनाथ के उद्यान में एकत्रित हो गए थे। नागरिक उनको देखने वहाँ जा पहुँचे थे। नागरिक इनसे कुछ अन्तर पर खड़े थे। एकाएक किसी के आदेश पर इन लोगों ने अपने कन्धों पर रखे अस्त्र उतारे और उनमें तीव्र नोकदार शर रख नागरिकों पर छोड़ने लगे। नागरिक घायल हो भागने लगे तो इन्होंने पीछा करते हुए नगर में घुसकर लूट मचा दी।

"कुछ ही काल में नागरिकों ने अपने को संगठित कर लाठियों से इन पर आक्रमण किया तो ये अपने अस्त्र उतारकर क्षमा माँगने लगे।

"भगवन्! इनके शरों से चालीस के लगभग नागरिक घायल हुए हैं और नागरिकों की लाठियों से दस वनवासी तो मारे गए हैं और बीस के लगभग घायल महर्षि अत्रि के निवास स्थान पर भेज दिए गए हैं।"

पितामह ने मुखिया के कथन पर किसी प्रकार की अपने मन की प्रतिक्रिया बताए बिना बृहस्पति से पूछा, "बताओ, तुम क्या कहते हो?"

"मैं अपने व्यक्तियों से पूछना चाहता हूँ कि यह दुर्घटना कैसे हुई है?

"यद्यपि मुझे विश्वास है कि मुखिया अनृत भाषण नहीं करता; फिर भी मैं जानना चाहता हूँ कि ये लोग क्या कहते हैं।"

बृहस्पति ने आगे बढ़कर एक वनवासी को अपने सामने बुला, पूछ लिया कि यह घटना किस प्रकार हुई है?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनवासी ने अपनी भाषा में कुछ बताया तो बृहस्पति पितामह की ओर घूम कर बताने लगा कि वनवासी क्या कह रहा है। परन्तु पूर्व इसके कि बृहस्पति पितामह को वनवासी की बात बताए, वनवासियों में से एक स्त्री लपककर यज्ञवेदी के समीप, परन्तु नीचे, आकर खड़ी हो गई और बृहस्पति से कुछ कहने लगी। बृहस्पति उससे वाद-विवाद करने लगा।

पितामह उस स्त्री के मुख पर क्रोध का भाव देख रहा था। साथ ही वह प्रवक्ता वनवासी के मुख पर भय और लज्जा के लक्षण देख रहा था।

पितामह उनके मुख पर अंकित भावों से एवं अपने अनुमान से सब समझ गया। उसने बृहस्पति को डाँट के भाव में कहा, "बृहस्पति ! मैं समझ गया हूँ कि यह स्त्री क्या कह रही है। और तुम उसे सत्य कहने से मनाकर रहे हो।

"छोड़ो इस विवाद को। बताओ कि ये पुरुष और स्त्री क्या कहते हैं ? हम स्वयं अनुमान लगाएँगे कि कौन सत्य कहता है।"

"पर पितामह !" बृहस्पति ने कुछ चिढ़कर कहा, "यदि आप समझ गए हैं तो फिर मेरे बताने की आवश्यकता नहीं। आप बताइए कि अब ये क्या करें ?"

"बृहस्पति ! पुरुष ने दोष नागरिकों का बताया है। उसने इनकी ओर से किसी बात के पहल किए जाने की बात कही है, परन्तु उस स्त्री ने इसे मिथ्या कहा है।

"यद्यपि इस पुरुष का नागरिकों के विपरीत आरोप मैं समझ नहीं सका, परन्तु यह निर्विवाद है कि उसने झूठ बोला है। इस स्त्री ने ही उसके झूठ बोलने की बात कही है।

"यह सब होने पर भी मैं यह कहता हूँ कि यदि तुम्हारे लोग वन को लौट जाना चाहें तो मैं इनको स्वीकृति दे सकता हूँ। ये जाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

"यदि ये नगर में रहना चाहें तो रह सकते हैं। इनके लिए स्थान की व्यवस्था नगर का मुखिया कर देगा, परन्तु ये यहाँ पर धनुष-बाणों के बिना रहेंगे। साथ ही इनको किसी के फलोद्यान में से बिना मूल्य दिए फल तोड़ने की स्वीकृति नहीं। मूल्य परिश्रम करने से इनको मिल जाएगा। परिश्रम महर्षि अंगिरा जी बताएँगे।

"पारिश्रमिक रजतों में मिलेगा और उससे ही अपनी आवश्यकताओं को क्रय कर सकेंगे।

"इसके अतिरिक्त वन के फल, कन्द-मूल ये स्वेच्छा से प्रयोग कर सकते हैं। नगर में रहने के लिए सभ्यों के से वस्त्र पहनने होंगे। प्रथम बार के लिए हम नगर के मुखिया को आज्ञा देते हैं कि स्त्री वर्ग को उचित वस्त्र ले दें।"

"और जो इनके पुरुष मर गए हैं ?" बृहस्पति ने पूछा।

"वे युद्ध में मरने के कारण स्वर्ग प्राप्त करेंगे।"

"और जो नागरिक मारे गए हैं ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुखिया की सूचना है कि कोई मरा नहीं। घायल हुए हैं। उनके घावों पर ओषधि लगा दी गई होगी।"

बृहस्पति इतने से सन्तुष्ट था। इसका अर्थ वह यह समझा था कि पितामह उन वनवासियों को लूट-मार करने के लिए दण्ड नहीं दे रहे और न ही उसको इन उच्छृंखल वनवासियों को साथ लाने के कारण अपराधी मानते हैं। इसी प्रसन्नता में उसने पूछा, "मुझे क्या आज्ञा है?"

"आज्ञा कुछ नहीं। यहाँ सब स्वतन्त्रतापूर्वक धर्म का पालन करते हैं। तुमको भी करना चाहिए।"

"भगवन्! जो बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई, वह यह धर्म ही है। बिना जाने इसका पालन कैसे कर सकूँगा?"

"यह मैं बता दूंगा।"

बृहस्पति ने उसी वनवासी को, जो झगड़े का वृत्तान्त बता रहा था, कह दिया कि वह अपने सब साथियों के साथ नगर के मुखिया द्वारा बताए स्थान पर रहें। उसने यह भी कहा, "मैं पितामह से अन्य बातें जानकर वहीं आता हूँ जहाँ आपको ठहराया जाएगा।"

इतना कह वह पितामह के साथ आवास के भीतर चला आया। इस समय कश्यप ने पितामह से कहा, "पितामह! मुझे अपनी पत्नियों को छोड़े तीन मास के लगभग होने जा रहे हैं। मुझे स्वीकृति दी जाए तो मैं उनसे मिलने के लिए जाऊँ?"

बृहस्पति हँस पड़ा। हँसकर उसने कहा, "पितामह! इसे स्वीकृति दी जाए कि यह देखे कि इसके क्षेत्र में कोई अन्य तो नहीं प्रविष्ट हो गया।"

कश्यप गया तो पितामह ने पूछा, "बृहस्पति! मैं जानता हूँ कि कश्यप की पत्नियाँ प्रसन्न और सुरक्षित हैं। यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति नहीं रह सकता जो चोर हो, अनृत भाषी हो अथवा कामनाओं से पीड़ित हो।"

"तो इसकी तेरह पत्नियाँ इतने काल तक काम से उत्पीड़ित नहीं रहीं?"

"नहीं; काम कामनाओं का बड़ा पुत्र है। जब कामनाएँ ही नहीं तो पुत्र कहाँ से आ गया? कामनाओं की शान्ति सत्संग से होती है, कामनाओं के भोग से नहीं। भोग प्रज्वलित कामनाओं पर घी का कार्य करता है। इनकी शान्ति का उपाय विवेक और संयम है।

"कश्यप की पत्नियाँ नित्य सायं यहाँ वेद का प्रवचन सुनने आती हैं और उनकी कामनाएँ शान्त रहती हैं। मैं जानता हूँ।"

"पितामह! इन तेरह जलती हुई लकड़ियों से; मेरा अभिप्राय है कि सुन्दर युवतियों को एक कीले से बाँधकर रखना क्या पाप नहीं है?"

"मैंने इनको किसी भी कीले से नहीं बाँधा। इनमें से प्रत्येक स्वतन्त्र है कि वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ चाहे जा सकती है। हम यहाँ सायं प्रवचनों में उनकी कामनाओं को शान्त करने का यत्न करते रहते हैं।"

पितामह ने बात बदल दी। वह बृहस्पति से पूछने लगे, "तुमने विवाह किया है अथवा नहीं ?"

"उस ढंग से नहीं जिस ढंग से यहाँ विवाह होते हैं। वह स्त्री जो अपने कबीले के एक पुरुष के वक्तव्य को गलत बताने के लिए यज्ञशाला के समीप आ खड़ी हुई थी, आज तक मेरी पत्नी के रूप में मेरे साथ रहती है।"

"तो पहले किसी अन्य के पास रहती थी ?"

"इसका वृत्तान्त ज्ञात नहीं। यह मुझे अति सुन्दर प्रतीत हुई थी; इस कारण जिस पुरुष के साथ थी, उसको मारकर मैंने इसे वर लिया है। अब यह दिन-भर वन में घूमती है और रात को मेरे शयनागार में सोती है।"

पितामह ने विचार करके पूछा, "इसके अतिरिक्त भी तुम्हारे शयनागार का भोग कोई करती है ?"

"बहुत रह चुकी हैं। मुझे उनकी गणना स्मरण नहीं, परन्तु जब से यह आई है तब से किसी अन्य का साहस नहीं हुआ कि इसको वहाँ आने से रोके और स्वयं आवे।"

पितामह हँस पड़े और बोले, "तब तो कश्यप तुमसे अच्छी स्थिति में है। उसकी कोई भी पत्नी किसी दूसरे को न तो कश्यप के शयनागार में जाने से रोकती है और न ही एक के वहाँ होते दूसरी वहाँ घुसने की इच्छा करती है। अधिकार कश्यप का है कि वह किसको अपने शयनागार में स्वीकार करता है। यह एक पृथक् बात है कि वह अपनी पत्नियों की इच्छाओं का मान करता है।"

"यह बात मुझे कश्यप ने बताई है, परन्तु मुझे इस पर विश्वास नहीं आया। शरीर की माँग की पूर्ति करनी ही पड़ती है।"

"वास्तविक बात यह है कि विषयों का चिन्तन करने से कामनाएँ उभरती हैं। कामनाओं की पूर्ति के अभाव में क्रोध उत्पन्न होता है। तब विवाद होते हैं और विनाश होता है।

"अतः इस दूषित शृंखला के उद्गम स्थान अर्थात् विषयों के चिन्तन को ही रोकना चाहिए। बीच में यह शृंखला नहीं टूट सकती। और विषयों का चिन्तन, चिन्तन से ही रोका जा सकता है। उसके लिए सत्संग है। साधु, महात्माओं की संगति से यह सम्भव है।"

बृहस्पति की रुचि इस विषय में नहीं थी। वह समझता था कि अर्थव्यवस्था में सुधार हो। ब्रह्मपुरी की अर्थव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव और परिश्रम से सम्बन्धित थी। बृहस्पति चाहता था कि अर्थ जिस-किस प्रकार से भी उपलब्ध क्यों न हो, मानव समाज की साँझी सम्पत्ति है और कोई ऐसा ढाँचा होना चाहिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे अर्थ का वितरण सामान्य भाव में हो सके।

बृहस्पति ने कह दिया, "मैं आपकी अर्थव्यवस्था को पसन्द नहीं करता। इससे धन एक स्थान पर एकत्रित हो जाता है और हो रहा है।"

पितामह ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "धन क्या है ?"

"यह परिश्रम का एक रूप है।"

"ठीक। परन्तु एक व्यक्ति फलों की ऋतु में अधिक परिश्रम कर फल संचय कर लेता है और जब फल उपलब्ध नहीं होते तो वह उनको निकालकर प्रयोग करता है। इसमें क्या हानि है ?"

"यह तो सब करते हैं।"

"कुछ लोग यह करते हैं कि फलों का संचय नहीं करते। वे फल को रजतों के विनिमय में दूसरों को दे देते हैं और फिर उन रजतों से अपनी अन्य वस्तुएँ, जब उनकी आवश्यकता होती है, क्रय कर लेते हैं। तो तुम इस बात का विरोध करते हो ?"

"नहीं। यह स्वाभाविक ही है।"

"तो तुम क्या इस बात का विरोध करते हो कि एक व्यक्ति अपनी युवावस्था में जब वह अधिक परिश्रम कर सकता है, करता है और भोग के उपरान्त शेष परिश्रम के विनिमय में रजत बटोर रखता है और अपनी वृद्धावस्था में प्रयोग करता है ?"

"नहीं। यह भी नहीं।"

"तो क्या तुम इस बात का विरोध करते हो कि एक पिता विशेष बुद्धि रखने के कारण अधिक परिश्रम से धन को संचित कर अपनी सन्तान को दे देता है ?"

"हाँ, यह घोर अन्याय होगा। इससे धन के बल से धन उपार्जन में सहायता मिलती है।"

"तो तुम यह चाहते हो कि किसी पिता के देहावसान के समय वह अपने पुत्र को कुछ न दे ? अपना परिश्रम तो वह दे नहीं सकता। इस कारण वह परिश्रम का प्रतिरूप धन ही देता है। भला क्यों न दे ?"

"इस कारण कि जिसने परिश्रम नहीं किया, उसको किसी अन्य के परिश्रम का फल मिल जाता है।"

"तो उस धन का क्या किया जाए ? क्या वह गंगा नदी में बहा दिया जाए ?"

"नहीं। उसका समाज में वितरण कर दिया जाए।"

"अर्थात् वह धन उनको मिल जाए जिन्होंने उसके अर्जन के लिए परिश्रम नहीं किया। तब तुमने मना क्या किया है ? तुम कहते हो कि उसके पुत्र को न मिले, क्योंकि उसने परिश्रम नहीं किया और दूसरों को दे दिया जाए। परिश्रम तो उन्होंने भी नहीं किया ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरी मुख्य आपत्ति धन का एक स्थान पर एकत्रित होना है।"

"तो इस अतिरिक्त धन का वितरण होना चाहिए। यही कह रहे हो न? उसका एक उपाय मैंने विचार किया है। वह दान है। इसका गुण यह है कि परिश्रम करने वाला ही स्वेच्छा से अपने अतिरिक्त परिश्रम के फल का वितरण करता है और वहाँ करता है जहाँ वह पसन्द करता है।"[1]

"मैं चाहता हूँ कि उस वितरण में दूसरे भी सम्मति दे सकें।"

"परन्तु मैं बल प्रयोग से ऐसा करना ठीक नहीं मानता। जिसने धनोपार्जन किया है उसी को प्रेरणा देकर लोक-कल्याण के कार्यों के लिए दान दिलवाना ही ठीक मानता हूँ।

"मैं प्रेरणा देकर उसे अपने ढंग से वितरण करवाना चाहता हूँ।"

"ठीक है। बिना बल प्रयोग के करो। तुम्हारे वनवासी जो करने लगे थे, उसकी स्वीकृति नहीं दी जा सकती।

"बृहस्पति! तुम एक बात नहीं मानते। इसी से तुम मेरी बात को समझ नहीं सकते। वह है मनुष्यों में एक आत्म तत्त्व की विद्यमानता। आत्म तत्त्व का लक्षण चेतना है। चेतना का अर्थ है किसी कार्य को आरम्भ करने, उसे चालू रखने और उसका अन्त करने की इच्छा। कोई काम कब, कैसे और किस दिशा में आरम्भ किया जाए, चालू रखा जाए अथवा समाप्त किया जाए; यह मनुष्य में आत्मा करता है।

"यदि उसके इस उपक्रमण को तुम छीन लोगे तो निश्चय जानो कि तुम उसकी चेतना को छीन रहे हो। अर्थात् तुम उसकी हत्या कर रहे हो। यदि किसी की विशेष प्रतिभा, सामर्थ्य और परिश्रम से उपलब्धि को तुम किसी पात्र-कुपात्र में वितरण कराना चाहते हो तो प्रेरणा से कराओ।

"इसी का नाम मैंने दान रखा है।"

बृहस्पति कुछ ऐसा समझने लगा था कि वे एक वृत्ताकार में घूमते हुए किसी परिणाम पर नहीं पहुँच रहे। अतः वह पितामह से अवकाश लेकर चल दिया। पितामह यह समझ रहा था कि वह निरुत्तर होकर जा रहा है। यथार्थ बात यह थी कि वह आत्मा-परमात्मा के विषय में विचार ही नहीं कर सकता था।

: ६ :

बृहस्पति के वनवासी साथियों के लिए नगर से बाहर एक वन में रहने का प्रबन्ध कर दिया गया। वह एक दिन अपने पिता महर्षि अंगिरा से मिलने गया। यह उसके लौटने के पन्द्रह दिन उपरान्त की बात थी। महर्षि अंगिरा को अपने

---

१. अलब्धलाभो लब्धस्य तथैव च विवर्धनम्।
प्रदानं च विवृद्धस्य पात्रेभ्यो विधिवत्ततः॥ (महाभा० शां० ५९-५७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र के साथ आए वनवासियों के दुष्कर्म का ज्ञान हो चुका था। वह पुत्र से मिलकर उसे समझाने का यत्न करना चाहता था, परन्तु इस आशा में कि वह स्वयमेव अपने पिता से मिलने आएगा, अपने निवास स्थान पर ही उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

महर्षि अंगिरा अग्नि का उपासक था। वह अग्नि के गुणों को जान उससे भाँति-भाँति के लाभ उठाने का यत्न कर रहा था। अपने निवास स्थान के समीप ही उसने अग्नि सम्बन्धी परीक्षणों के लिए अपनी प्रयोगशाला बनाई हुई थी। वह अपना सम्पूर्ण समय उसमें व्यय करता था और अपना लाभकारी ज्ञान दूसरों को सिखाता था। सीखने वाले शिष्य उसके प्रतिकार में धन देते थे।

इससे अंगिरा सब महर्षियों से अधिक धनवान हो रहा था। उसने अपने भव्य निवास स्थान को प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा से युक्त बना रखा था। इससे उसे कभी विस्मय भी होता था कि उसकी पत्नी सुनीति क्यों इस सुख-सुविधा से सम्पन्न घर को छोड़कर वनों में जाकर रहती है? अब पुत्र को भी उसके समान ही बुद्धि वाला देख वह पुत्र से इसका कारण जानने के लिए उत्सुक था।

बृहस्पति पिता के घर पर आने के स्थान वनवासियों के साथ एक कुटी बना-कर रहता था। उसके इस त्याग और तपस्या का प्रभाव तो नगरवासियों पर भी हो रहा था और वह उसकी बात सुनने भी जाने लगे थे।

इस प्रकार बृहस्पति को ब्रह्मपुरी में आए हुए एक पखवाड़ा व्यतीत हो चुका था। एक दिन उसकी समझ में आया कि अब वह स्थिर हो गया है, अतः उसे अपने पिता से मिलने जाना चाहिए। वह उस दिन प्रातः सूर्योदय के समय पिता के घर पर जा पहुँचा।

महर्षि अंगिरा यज्ञ-वेदी पर बैठा हुआ हवन कर रहा था। उसके दक्षिण अंग की ओर महात्मा शौणिक बैठे थे और वाम कक्ष में बृहस्पति की विमाता सावित्री। महर्षि अंगिरा मन्त्रोच्चारण कर रहे थे और सावित्री यज्ञकुण्ड में आहुति डाल रही थी। शौणिक मुनि मन्त्रोच्चारण की मधुर ध्वनि पर मुग्ध महर्षि और उनकी पत्नी को देख-देख तृप्त हो रहे थे। महर्षि के सामने यज्ञकुण्ड के दूसरी ओर कुछ शिष्य गण थे। वे भी यज्ञ में मन्त्रोच्चारण से सहयोग दे रहे थे।

इस समय बृहस्पति यज्ञशाला में आ उपस्थित हुआ। महर्षि अंगिरा ने हाथ के संकेत से उसे शिष्यगण में बैठ जाने को कहा और मंत्र-पाठ में संलग्न रहा।

वह उच्चारण कर रहा था—

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्रधमाति यज्ञात्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग्जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥[1]

इस प्रकार मन्त्र के उपरान्त मन्त्र उच्चारण करते हुए यज्ञ चल रहा था। बृहस्पति समझ नहीं सका कि इस प्रकार इन भावों वाले मन्त्रों का उच्चारण करने से ये लोग क्या सिद्ध करना चाहते हैं और इनका प्रभाव समाज पर क्या होगा? इतना तो वह समझ रहा था कि ये मन्त्र दूर से आए परिश्रम न करनेवाले लोगों के विषय में हैं; अर्थात् उसके साथियों के विपरीत अग्नि को आह्वान है। परन्तु अग्नि उनको किस प्रकार सन्तप्त करेगी? वे तो इस अग्नि की पहुँच से दूर हैं।

अतः मन्त्रार्थों को समझता हुआ वह गम्भीर विचार में पड़ा हुआ बैठा था। यज्ञ समाप्त हुआ और पूर्णाहुति के उपरान्त महर्षि अंगिरा ने आसन से उठते हुए बृहस्पति को सम्बोधन कर पूछा, "बृहस्पति! यहाँ आने का अवकाश मिल गया है?"

"हाँ, पिताजी! मेरा भी एक परिवार बन गया है और उसका प्रबन्ध करने में इतने दिन लग गए हैं।"

"और तुम्हारी माता कहाँ है?"

"वह वनस्थली में है। शेष परिवार के लोग वहाँ हैं और वह उनका प्रबन्ध करती है।"

"वहाँ कितने लोग हैं? यहाँ तुम्हारे साथ एक सौ लोग आए थे, जिनमें से दस पहले ही दिन मारे गए थे और दो उसके बाद मरे हैं। यह बताया गया है कि उनमें से, कम से कम एक को तो तुमने ही मरवाया है। दूसरे के विषय में कहा जाता है कि उसके किसी साथी ने अपने निजी वैर के कारण मार डाला है।"

बृहस्पति सबके सामने कुछ भी कहना नहीं चाहता था। इस कारण मौन था। फिर भी उसे विस्मय हो रहा था कि जहाँ पितामह घर बैठे सब सूचनाएँ रखते हैं, वहाँ उसका पिता भी उसके विषय में सूचना रख रहा है।

उसे मौन देख पिता ने अपनी पत्नी सावित्री को कहा, "बृहस्पति भी प्रातः का आहार यहीं करेगा।"

---

१. दुष्ट लोग ज्ञानवानों को ही अपना अगुआ बनाकर बन्धुओं का-सा रूप धारण कर पितरों के बीच में प्रविष्ट होकर बिना दिए अन्न को भोग करते हैं। दूर स्थान के रहनेवाले तथा बिना घर के अपने को बिना परिश्रम के पालते हैं। अग्नि उनको संतप्त कर हमारे यज्ञ रूप जीवन से बाहर निकाल दें।

हमारे पितर (पूज्य वृद्धजन) हमारे कल्याण का कार्य करते हुए और अपने जीवन को लम्बा करते हुए इस लोक में रहें। हम उनकी अन्न से सेवा करते हुए चिरकाल तक शक्तिमान बने रहें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पति ने मना नहीं किया। वह विस्मय कर रहा था कि उसके पिता को यह ज्ञान है कि उसने अपनी पत्नी कमला को इस कारण मरवा डाला है कि उसने वनवासियों के विपरीत पितामह के सम्मुख हल्ला किया था। उसे विस्मय इस बात का था कि पिता यह जानता हुआ भी उसे अपने भोजनालय में भोजन देने की बात कह रहा है।

वह अभी भी मौन था। कारण यह कि कुछ बाहरी लोग वहाँ उपस्थित थे। ग्यारह शिष्य थे और शौणिक मुनि थे।

अंगिरा ने शौणिक का परिचय दिया और कहा, "यह एक दूर आश्रम से अथर्व विद्या सीखने यहाँ आए हैं। वैसे यह बहुत सम्पन्न ऋषि हैं। इनका आश्रम यहाँ से अधिक समृद्ध है।"

शिष्य गण प्रयोगशाला में चले गए थे और महर्षि, अतिथि शौणिक और पुत्र बृहस्पति के साथ भीतर आए तथा कुछ काल तक बैठकघर में बैठ, भोजन तैयार होने के समाचार की प्रतीक्षा करने लगे।

शौणिक ने बात आरम्भ कर दी। उसने कहा, "आचार्यवर! मैं अशुद्ध धातु को शुद्ध करने में अग्नि का प्रयोग सीखने आया हूँ।"

महर्षि अंगिरा ने कहा, "ऋषिवर! केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि शुद्ध धातु निकाली जाए, वरन् यह भी जानना चाहिए कि उस धातु को संस्कारित करने की भी आवश्यकता रहती है। बिना उसका संस्कार किए वह उतनी लाभदायक नहीं होती जितनी कि होनी चाहिए।

"हमने यहाँ प्रयोगशाला में शुद्ध लोहे को संस्कारित करने के लिए परीक्षण किए हैं। संस्कारित लोहा भुरभुरा नहीं रह जाता। इसे गरम कर बारीक तारों में खींचा जा सकता है। इससे तीखे शस्त्रास्त्र बनाए जा सकते हैं। मैंने ऐसे खड्ग बनाए हैं जिनकी सहायता से एक ही बार में किसी का भी शिर काटकर रखा जा सकता है।"

यह सुनकर कि लौह से अति तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र बन सकते हैं, बृहस्पति पिता की बातों में रुचि लेने लगा था। वह दत्त-चित्त होकर सुनने लगा।

अंगिरा ने आगे कहा, "मेरे इस सुपुत्र बृहस्पति में भी पिता की प्रतिभा तो है, परन्तु विनय और शिष्टाचार नहीं। इसने वनों में रहते हुए एक ऐसा अस्त्र तैयार किया है जिससे सौ पग दूर खड़े शत्रु को घायल किया जा सकता है। हमने उस अस्त्र का नाम धनुष-बाण रखा है, परन्तु हमने एक ऐसे धनुष का आविष्कार किया है जो आकाश में उड़ते पक्षी का पीछा कर उसको मारकर भूमि पर ले आता है। इनका बाण तो धनुष के डोरे के बल से दूर फेंका जा सकता है, परन्तु हमने अपने बाण को फेंकने के लिए अग्नि की शक्ति का प्रयोग किया है।"

बृहस्पति से अब मौन नहीं रहा गया। उसने आंशिक रूप में उत्सुकता और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंशिक रूप में व्यंग्य के भाव में कहा, "परन्तु पिताजी ! आपके इस अस्त्र को हमने वनवासियों पर प्रयुक्त होते नहीं देखा।"

इस प्रश्न का आशय समझने के लिए पिता पुत्र का मुख देखने लगे। पिता को मौन देख पुत्र ने एक बात और कह दी, "हमारे धनुष-बाण तो एक व्यक्ति एक दिन में बीस तक बना सकता है। वनवासियों के सब धनुष नागरिकों ने पहले ही दिन तोड़ दिए थे। हमारे लोगों ने एक ही दिन में उससे दुगुने धनुष-बाण निर्माण कर लिए हैं।"

अंगिरा ने मुस्कराते हुए कहा, "हम नहीं चाहते थे कि व्यर्थ में नर-हत्या की जाए। यदि वैसे अस्त्र जनता के हाथ में होते तो तुम्हारे परिवार का अब तक एक भी व्यक्ति तुम्हारी सेवा के लिए उपस्थित न होता।"

"पिताजी ! यह तो आपकी बहुत कृपा हुई है। एक कृपा और कर दीजिए। हमको भी उन आग्नेय अस्त्रों का निर्माण बता दीजिए। तब आपकी कृपा के आश्रय हम नहीं रहेंगे। हम स्वयं उनसे निपट लेंगे जो हमें मारने के लिए उद्यत होंगे।"

"ठीक है, मैं सिखा सकता हूँ, परन्तु उसको सीखने के लिए विवेक, बुद्धि की आवश्यकता रहती है। हम अपनी खोज के परिणाम केवल विवेकवानों को ही देते हैं।"

"पिताजी ! हममें विवेक है। हम सांसारिक वैभव को मिथ्या और व्यर्थ का झंझट मानकर छोड़ चुके हैं। इससे बढ़कर त्याग और तपस्या और क्या हो सकती है कि हम सर्वथा सरल और व्यावहारिकता से शान्तिपूर्वक यहाँ रहते हैं ?"

"हम देख रहे हैं कि तुम लोग इस नगर के अन्य रहने वालों को देखकर अपना व्यवहार युक्तियुक्त तथा अनुकूल बना रहे हो। जब हम देखेंगे कि आप लोग सर्वथा शान्तिमय हो गए हैं तब हम तुम्हारे परिवार के लोगों को अपने समाज में सम्मिलित कर उनको भी उन्नति के पथ पर डाल देंगे।"

इस समय सूचना मिली कि भोजन तैयार है। तीनों पुरुष भीतर भोजनालय में जा पहुँचे। वहाँ आसन लगे थे और तीनों आसनों के सम्मुख पत्तलें बिछी थीं। उन पर मिट्टी के कुल्हड़ों में जल रखा था। तीनों हाथ धोकर आसन पर बैठ गए। महर्षि की पत्नी सावित्री भी उनके सामने एक आसन पर बैठ गई। वहाँ पत्तल नहीं लगी थी। सावित्री ने अपने आसन पर बैठने पर पुकारा, "कमला !"

कमला एक लकड़ी के कुठारे में दूध में उबला हुआ एक प्रकार का अन्न ले आई। एक लकड़ी की कलछी से वह अन्न को पत्तलों पर डालने लगी।

बृहस्पति अवाक् उस लकड़ी को देखता रह गया। यह वही कमला थी, जिसे उसने वनवासियों के विचारों का आदर करते हुए मृत्युदण्ड देकर मरवा डाला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। मर जाने के उपरान्त कमला का शव जंगल में फिंकवा दिया गया था।

जब वह लड़की उसके सामने बिछी पत्तल पर अन्न डाल रही थी तो उसने पूछ लिया, "तुम कमला हो ?"

कमला ने बृहस्पति की ओर देखा और मुस्कराकर शेष बचा अन्न लिए हुए भीतर रसोईघर में चली गई। शौणिक मुनि तो बृहस्पति के उस प्रश्न का अर्थ समझा नहीं। अंगिरा समझ रहा था। फिर भी वह मौन था। पिता को चुप देख बृहस्पति ने पूछा, "यह कौन थी ?"

"जो क्षीर परस रही थी ?"

"जी।"

"यह तुम्हारी प्रेमिका है, जिसे तुमने मरवाकर वन में फिंकवा दिया था। हमारे एक नागरिक ने इसको जीवित, परन्तु अचेत पड़े देखा तो उठाकर महर्षि अत्रि के पास ले गया। उन्होंने इसे ओषधि देकर ठीक किया तो इसने इस घर में सेवा-कार्य करने की इच्छा प्रकट की। महर्षि अत्रि ने इसे यहाँ भेज दिया। इसने बताया है कि यह तुमसे प्रेम करती थी, परन्तु तुमने उसके पितामह के सम्मुख सत्य बात कहने पर अपने सेवक से उसका गला घोंट मरवाने का यत्न किया था। वह बच गई है और अपने प्रेमी के माता-पिता के घर में रहने की इच्छा करती है।"

बृहस्पति विस्मय में पिता का मुख देखता रह गया। पिता ने खाना आरम्भ करते हुए कहा, "इसे हम क्षीर कहते हैं। धान की गुठली निकाल, उसे भूसे से साफ कर दूध में उबालकर बनती है। इसे और भी स्वादिष्ट करने के लिए इसमें दूध डाल दिया जाता है।"

बृहस्पति इस क्षीर बनाने के ढंग को नहीं सुन रहा था। उसका ध्यान कमला की बात विचारने में लगा हुआ था। उसने कहा, "कमला मुझे भी प्रिय थी, परन्तु हमारे परिवार में सब कार्य सबकी सम्मति से होते हैं। इसके जाति-भाइयों ने इसके पितामह के सम्मुख कथन को परिवार के साथ द्रोह मान इसे दण्ड दिया था। मैं विवश था और यह हत्या हो गई।"

"तो हत्या नहीं हुई न ? देखो ईश्वरेच्छा से तथा कर्मफल के अधीन जीवन-मरण होता है। परमात्मा तुम्हारी इस बात को पसन्द नहीं करते थे। इसी कारण यह मरी नहीं।"

"मैं इससे बात करना चाहूँगा।"

अंगिरा ने क्षीर खाते हुए कहा, "यह उसकी इच्छा के अधीन ही है। सावित्री उसे बता देगी।"

तीनों भोजन कर रहे थे। क्षीर के उपरान्त पूरी, साग, भाजी आई। बृहस्पति ने अब मौन रहना ही ठीक समझा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: १० :

भोजनोपरान्त अंगिरा शौणिक ऋषि को लेकर अपनी प्रयोगशाला में चला गया। बृहस्पति भी वहाँ जाकर देखना चाहता था, परन्तु पिता ने कह दिया, "मैंने तुम्हारी माता से कह दिया है कि तुम कमला से बात करना चाहते हो। कमला से कहा गया है और वह तुम्हारी माता के सम्मुख तुमसे बात करेगी।"

"मैं उससे पृथक् में मिलना चाहता हूँ।"

"यह भी उसकी इच्छा पर है। तुम स्वयं उससे पूछ लेना।"

इस कारण बृहस्पति अपने पिता के साथ प्रयोगशाला में नहीं जा सका। यों तो उसने प्रयोगशाला पहले देखी थी, परन्तु उस समय वह प्रयोगशाला को मात्र मन बहलावे की बात समझता था। अब पिता के मुख से सुना कि अग्नि की शक्ति से बाण चलाए जाते हैं तो उसकी रुचि हो गई कि प्रयोगशाला में जाकर इन अस्त्रों को देखे।

अब कमला आकर्षण का केन्द्र थी। इस कारण वह घर में ही रह गया। महर्षि के जाने के उपरान्त सावित्री कमला के साथ बैठकघर में आ गई। बृहस्पति चटाई पर बैठा था। दोनों स्त्रियाँ बृहस्पति के सामने आकर खड़ी हो गईं। बात कमला ने आरम्भ की। वह अभी बहुत ही कम वेद वाणी सीख सकी थी; इस कारण टूटी-फूटी वेद वाणी में तथा कुछ अपनी वन भाषा में बोली, "बताइए, आप क्या कहते हैं?"

"मैं तुमसे क्षमायाचना करना चाहता हूँ। मुझे परिवार के लोगों ने विवश कर दिया था।"

"क्षमा की आवश्यकता नहीं। मैं तो आपसे सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से आई थी और फँस गई आपके मोह में। वह मोह अभी भी छूटा नहीं। इसी कारण स्वस्थ होने पर जब महर्षि अत्रिजी ने पूछा कि मैं कहाँ जाऊँगी तो मैंने आपके पिता का घर बता दिया। जब मैंने अपने मन की भावना इनको बताई तो इन्होंने घर पर रख लिया है। मैं इनकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।"

"अच्छी बात, तुम यहाँ रहो। मैं कभी-कभी यहाँ सोने के लिए आया करूँगा।"

"अब व्यर्थ है।"

"क्यों? अब मेरी संगति व्यर्थ किसलिए प्रतीत हुई है?"

"पिछले दस दिन में मैंने जो कुछ देखा है उससे मुझे यहाँ का रहन-सहन पसन्द आया है और मैं माताजी की सेवा में रहना चाहती हूँ। इनका कहना है कि स्त्री को सन्तानोत्पति के अतिरिक्त पति से सहवास नहीं करना चाहिए और यह आपसे हो नहीं सका।"

"क्या हो नहीं सका?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सन्तानोत्पत्ति। यदि अब कहीं हो भी गई तो वह आपके समान भीरु, बुद्धि-विहीन और अस्थिर मन होगी। मैं आपके पिता समान शुद्ध आचरण वाली सन्तान चाहती हूँ।"

"यह तो हो सकती है, परन्तु इससे तुमको क्या लाभ होगा?"

"आपकी इन माताजी ने बताया है कि श्रेष्ठ सन्तान से मन प्रसन्न होता है। इनके पाँच बच्चे हैं। एक लड़की है चन्द्रकला और वे सबके सब जब यहाँ होते हैं तो बहुत ही प्रिय प्रतीत होते हैं।"

"और वे इस समय कहाँ हैं।"

"नगर के उत्तर कक्ष में गुरुकुल है और पाँचों वहाँ शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।"

बृहस्पति ने अपनी विमाता से पूछा, "उनको घर पर शिक्षा क्यों नहीं दी जाती?"

"वहाँ के आचार्य मुझसे अधिक योग्य हैं। साथ ही वहाँ अन्य विद्यार्थी भी हैं। वे वहाँ खेल-कूद में प्रसन्न रहते हैं। मास में दो बार पूर्णिमा और अमावस के दिन आते हैं। रात को वे आचार्य कुल में वापस चले जाते हैं।"

"और माँ! आज क्या तिथि है?"

"आज एकादशी है। आज से चार दिन उपरान्त अमावस को आएँगे।"

"माताजी! मैं उस दिन आऊँगा और कमला के पास रहूँगा।"

"क्यों कमला! क्या कहती हो?" सावित्री ने पूछ लिया।

"माताजी! चित्त नहीं करता।"

"तुम क्या चाहती हो?" सावित्री का प्रश्न था।

"मैं चाहती हूँ कि यह उन वनवासियों के साथ रहना छोड़ दें, अन्यथा यह अब भी उनको प्रसन्न करने के लिए मेरी हत्या कर देंगे। मुझे अपनी जाति वालों की बुद्धि पर विश्वास नहीं रहा।"

"बृहस्पति! यह ठीक कहती है। वे लोग अशिक्षित और हीन संस्कारयुक्त हैं। उनमें रहते हुए तुम भी हीन संस्कार और हीन बुद्धि रखने वाले बन गए हो।"

"माताजी! यह बहुत कठिन है। मैंने कई वर्ष के कठोर परिश्रम से वहाँ की सृष्टि का निर्माण किया है। मैं आपके पितामह के समान प्रतिष्ठित और सम्मानित बनना चाहता हूँ।

"मैं समझता हूँ कि मैं वह स्थिति प्राप्त कर रहा हूँ। जब मैं भी सायंकाल अपने शिविर में प्रवचन देता हूँ, अपने वनवासी तो उसे सुनने आते ही हैं, परन्तु अब तो नगर के कुछ लोग भी आने लगे हैं। मेरी जीवन-मीमांसा और समाज की कल्पना उनको भी स्वीकार हो रही है।"

"क्या जीवन-मीमांसा है तुम्हारी?"

"यह जीवन एक घटनावश निर्माण हो गया है। इसका प्रयोग कुछ नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी यह अति रसमय है। इस कारण प्रकृति की इस सनक का लाभ यही है कि अधिक से अधिक रस प्राप्त किया जाए।

"मैं उनको प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूँ। यहाँ आपके समाज में आकर वह सब सुख-भोग प्राप्त नहीं हो सकेगा। हमने एक अन्य वस्तु का निर्माण किया है। उसे हम मद्य कहते हैं। मधु को जल में मिलाकर मिट्टी के घड़ों में रख दिया जाता है। कुछ दिन उपरान्त उसमें एक विशेष प्रकार की गंध आने लगती है। जब हम उसका पान करते हैं तो संसार के रस द्विगुण हो जाते हैं।

"यहाँ, लोग उसे बनाना नहीं जानते। माताजी, मैं समाज की कल्पना भी इसी आधार पर बनाता हूँ। जिस समाज में अबाध सुख-भोग की स्वीकृति हो, वह समाज मेरा है। अभी देवता लोग इस जीवन-मीमांसा को समझे नहीं।"

"तब ठीक है। तुम वहाँ का सुख-भोग करो, हम यहाँ के ढंग पर सुख भोगना चाहते हैं। कमला यदि वहाँ जाना चाहती है तो जा सकती है। यहाँ भी यदि इसकी इच्छा हो तो इसको तुम्हारे संग रहते देख हमें हर्ष-शोक कुछ नहीं होगा।"

"अब बताओ, कमला?" बृहस्पति ने पूछ लिया।

"मैं कुछ निश्चय नहीं कर सकी! मैं कुछ दिन विचार करने के लिए चाहती हूँ।"

"बृहस्पति! तुम इसको तैयार कर लो। हमने इसे एक पृथक् आगार रहने के लिए दे रखा है। यह चाहे तो तुमको वहाँ आमन्त्रित कर सकती है।"

इस आश्वासन पर बृहस्पति ने प्रेम-भरी दृष्टि से कमला की ओर देखा परन्तु कमला ने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं, आज नहीं। अभी आपके शरीर से वनवासी लड़कियों की गंध आती है। पहले इस गंध से स्वच्छ होकर आइए।"

यह कहकर कमला उठी और अपने आगार की ओर भाग गई। भीतर जाकर उसने आगार का द्वार भीतर से बन्द कर लिया। सावित्री ने निराशा भाव दिखाते हुए बृहस्पति से कहा, "देखो बृहस्पति! अन्य वनवासी लड़कियों से यह भिन्न प्रतीत होती है। भगवान् जाने क्यों इसके मस्तिष्क में यह बात बैठ गई है कि पुरुष से सहवास का प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। शेष व्यर्थ है। इस कारण यह तुमसे सन्धि तो करना चाहती है, परन्तु तुम्हारी उन लड़कियों से संगति जो इसके विपरीत विचार रखती हैं, यह सहन नहीं कर सकती। यह इसके पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण ही प्रतीत होता है।"

बृहस्पति पूर्ण घटना से भौंचक्का वनवासियों के शिविर में लौट गया। वह कमला के आकर्षण को अनुभव कर रहा था, परन्तु ज्यों-ज्यों वह वनवासियों के शिविर की ओर जा रहा था, उसके मस्तिष्क से कमला के आकर्षण का प्रभाव कम होता जा रहा था। उसके मन की महत्त्वाकांक्षा कि वह पितामह के समान मान-प्रतिष्ठा और समाज पर प्रभाव निर्माण करे, उग्र होने लगी थी। जब वह शिविर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पहुँचा और शिविर के लोगों की अनेकानेक समस्याएँ सुनीं तो वह कमला को भूल, शिविर की समस्याओं में लीन हो गया।

शिविर की सबसे प्रमुख समस्या भोजन की थी। अभी तक वनवासी वन में स्वतः उपजने वाले कन्द-मूल खाकर निर्वाह कर रहे थे, परन्तु नगर के लोगों को भाँति-भाँति के खाद्य-पदार्थ बनाते एवं बेचते देख, वे लालसा करने लगे थे कि उनको वैसे ही पदार्थ मिलें। स्वादिष्ट भोजन के अतिरिक्त वे नगर में रहने वालों को भिन्न-भिन्न रंग-रूप के वस्त्र पहने देख वैसे ही वस्त्रों की लालसा करने लगे थे। वनवासी स्त्रियाँ ऐसी लालसा करने वालों में अधिक संख्या में थीं। आवास की तीसरी समस्या थी। नगर में बहुत कम लोग थे जिनको झोंपड़ों में रहना पड़ता था। प्रायः नागरिक मिट्टी, चूना तथा ईंटों के भवनों में रहते थे। नगर में भवन बनाने वाले लोग थे, परन्तु वे पितामह की मोहर लगी मुद्राओं में अपने परिश्रम का प्रतिकार चाहते थे।

वस्त्र बनाने वाले भी मुद्राओं में मूल्य माँगते थे और भोजन सामग्री भी मुद्राओं पर ही प्राप्त हो सकती थी। वनवासियों में सबसे अधिक असन्तुष्ट स्त्रियाँ थीं। वे नागरिकों की स्त्रियों को भाँति-भाँति के श्रृंगार किए और रंग-बिरंगे वस्त्र पहने, घूमते हुए देखती थीं और वैसी सामग्री की लालसा करती थीं।

बृहस्पति समझ गया कि वास्तविक समस्या रजत एवं स्वर्ण मुद्राओं की है। मुद्राओं को प्राप्त करने के लिए जनोपकारी परिश्रम की आवश्यकता थी। यह वनवासी जानते नहीं थे।

इस समस्या का एक सुझाव यह था कि इन वनवासियों को पूर्ण छूट दे दी जाए कि वे अपने परिश्रम को मुद्राएँ प्राप्त करने में लगा दें। परिश्रम से मुद्राएँ प्राप्त करने का ढंग वे जानते नहीं थे, अतः लूट, चोरी और डाका डालने से वे मुद्राएँ प्राप्त कर सकते थे। परन्तु प्रथम झड़प में वनवासियों की बहुत हानि हुई थी। इससे वह पुनः झड़प लेने में लाभ नहीं समझता था।

मुद्रा प्राप्त करने का एक दूसरा उपाय था। वह यह कि कुछ बालक-बालिकाओं को नगर के गुरुकुल में शिक्षा दी जाए। वे बालक-बालिकाएँ शिक्षित होकर अपने समुदाय के लिए मुद्रा अर्जन करने का ढंग सीख जाएँगे, परन्तु इसमें समय लगेगा और असन्तोष तो निरन्तर बढ़ रहा था।

साथ ही वनस्थली से समाचार आया था कि एक सौ अन्य वनवासी स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ आ रही हैं। माता सुनीति उनको भेज रही थी।

बृहस्पति इन समस्याओं का सुझाव विचार करने में लीन बैठा था कि एक वनवासी आया और बृहस्पति के सामने उपस्थित हो बोला, "भगवन्! मुझे बचाइए।"

"क्या हुआ है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नदी के किनारे कुछ धीवर झोंपड़ी में रहते हैं। उनका धन्धा मछली पकड़ कर नगर में बेचना है। उनकी स्त्रियों के पास भी रजत और स्वर्ण के भूषण हैं।

"एक धीवर लड़की के गले में स्वर्ण माला थी। मेरे मन में विचार आया कि वह माला मेरी लड़की के गले में हो तो वह बहुत सुन्दर लगने लगेगी। इस विचार के आते ही मैंने उस लड़की के गले से माला निकालने में उसका गला घोंट दिया। वह या तो मर गई है अथवा अचेत हो गई है।

"माला मैं ले आया हूँ, परन्तु कुछ धीवर लाठियाँ लिए मेरा पीछा करते हुए यहाँ अपने शिविर में आ गए हैं।

"वे मुझे माँग रहे हैं। निस्सन्देह वे मेरी हत्या कर देंगे।"

बृहस्पति ने पूछ लिया, "वे कितने हैं?"

"सात-आठ होंगे।"

"और तुम कितने हो?"

इस प्रश्न पर सम्मुख खड़ा वनवासी मुख देखता रह गया। कुछ देर तक विचारकर वह बोला, "हमारे शिविर के प्रहरियों ने उसे रोक रखा है, परन्तु वे कह रहे हैं कि या तो मैं उनके अधिकार में कर दिया जाऊँ, अन्यथा वे पूर्ण शिविर को अग्नि के पेट में झोंक देंगे।"

एक बार तो बृहस्पति के मन में आया था कि कह दे कि इन धीवरों को मार-पीटकर भगा दो, परन्तु पूर्ण शिविर को अग्नि की भेंट किए जाने की बात सुनकर वह गम्भीर विचार में पड़ गया।

उसने कुछ विचार कर अपने सेवक को बुलाया और शिविर के प्रहरियों को यह कहलवा दिया कि धीवरों को भीतर मेरे सम्मुख आने दो और उनको कहो कि वे अपनी बात मुझे बताएँ।

सेवक गया तो बृहस्पति ने सामने खड़े वनवासी को कहा, "जाओ, कहीं छिप जाओ। मैं सब वनवासियों को उन धीवरों के सम्मुख उपस्थित करूँगा और कहूँगा कि वे पहचानें कि किसने लड़की का गला दबाया है? तुम सबके साथ इस देखा-देखी में मत आना।"

वह वनवासी शिविर के पिछवाड़े से जंगल में घुस गया।

: ११ :

धीवरों के सम्मुख स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब वनवासी एकत्रित कर दिए गए और उनसे कहा गया, "हत्यारे वनवासी को पहचानें। हम उसको उचित दण्ड के लिए तुम्हारे साथ कर देंगे।"

धीवरों ने कई बार वनवासियों को देखा और हत्यारे को वहाँ न देख, कह दिया, "हत्यारा इनमें नहीं है।"

"ऐसा प्रतीत होता है।" बृहस्पति ने कहा, "वह भागकर वनस्थली में चला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। हम पता करेंगे और हम उसे यहाँ पकड़कर मँगवाएँगे।"

धीवरों को इससे सन्तोष तो नहीं हुआ था, परन्तु वे यह नहीं कह सके कि एक के अपराध का दण्ड किसी दूसरों को दिया जाए। अतः वे निराश लौट गए।

हत्यारे को वापस वनस्थली में भेज दिया गया। उसके बाल-परिवार को भी उसके साथ लौटा दिया गया, परन्तु यह समस्या का सुझाव नहीं था। वह पितामह के पास गया और अपने शिविर के कुछ बालक-बालिकाओं को गुरुकुल में प्रवेश की स्वीकृति ले आया। उसी दिन सायंकाल अपने प्रवचन में उसने कहा, "हमें भी धनोपार्जन के ढंग सीखने चाहिए। इस कारण मैंने यह निश्चय किया है कि हमारे शिविर के दस बालक-बालिकाएँ नगर में स्थित गुरुकुल में पढ़ने जाएँगे। जब वे वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर यहाँ आएँगे तो वे नगर में से मुद्रा अर्जन करेंगे। इससे हमारा शिविर भी धन-धान्य से सम्पन्न हो जाएगा।"

अगले दिन दस बालक-बालिकाओं को गुरुकुल में आचार्य जी के पास भेज दिया गया। परन्तु वनवासियों में असन्तोष बढ़ता ही गया। और यह दो दिशाओं में कार्य करने लगा। एक तो वनवासी चोरी का धन्धा करने लगे और दूसरे कुछ नागरिकों के यहाँ सेवा-कार्य करने लगे।

एक दिन पितामह के प्रवचन के उपरान्त एक नागरिक ने कहा, "पितामह ! मेरी पत्नी के भूषण चोरी हो गए हैं।"

"कौन ले गया है ?"

"ले जाते किसी ने देखा नहीं। फिर भी सन्देह है कि हमारे पड़ोसी विश्वा ने चोरी की है।"

"वह क्या कार्य करता है ?"

"वस्त्र बुनता था, परन्तु कुछ दिन से उसने वह कार्य बन्द कर रखा है।"

"क्यों ?"

"भगवन् ! यह तो वही बता सकता है, परन्तु आजकल वस्त्र बुनने के उसके कल चलते नहीं ?"

पितामह ने पूछ लिया, "उस पर सन्देह करने का कुछ आधार है।"

"एक आधार तो यह है कि उसके कल निश्चल पड़े हैं, परन्तु उसके घर में नित्य उत्सव होते हैं। वह वनवासियों से मद्य क्रय कर स्वयं भी पीता है और अपने बच्चों को भी पिलाता है।"

"क्या उत्सव करता है वह अपने घर में ?"

"वनवासी स्त्रियों का उसके घर में आना-जाना होता है और नगर के लोग भी वहाँ जाते हैं।"

"तुमने नगर के मुखिया को इस सबकी सूचना दी है अथवा नहीं ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपने घर की चोरी की सूचना तो दी है, परन्तु विश्रवा के घर की बात मैंने नहीं बताई।"

"क्यों ?"

"यह उसकी अपने जीवन से सम्बन्ध रखती है और भगवन् ! आपकी आज्ञा है कि सब अपने निजी कामों में स्वतन्त्र हैं।"

"चोरी के सम्बन्ध में मुखिया ने क्या कहा है ?"

"चोरी की गई वस्तुओं की खोज करने के उसके पास न तो साधन हैं और न ही उसकी सामर्थ्य है कि किसी चोर को दण्ड दे सके। उसका कहना है कि अभी तक इस समाज में अधर्माचरण करने वालों को प्रेरणा से ही पश्चात्ताप करने के लिए कहा जाता है। इसी कारण उसने आपकी सभा में उपस्थित हो सब वात बताने के लिए कहा है।"

"ठीक है। हम यत्न करेंगे कि चोरी किया माल मिल जाए।"

पितामह ने यह कह तो दिया, परन्तु वह यह भी समझ गया कि अब केवल प्रेरणा से काम नहीं चलेगा। प्रेरणा के लिए दो माध्यम होते हैं। वे हैं समाज अथवा परिवार के प्रमुख के प्रति मान-प्रतिष्ठा तथा न्यायबुद्धि।

जब जीवन का आधार आस्तिकवाद हो अथवा कर्मफल की अनिवार्यता स्वीकार हो, वहाँ प्रेरणा सफल होती है, परन्तु जब किसी जगत् नियंता के अस्तित्व पर विश्वास न हो और कर्मफल की अनिवार्यता मान्य न हो, वहाँ स्वतः धर्म का पालन असम्भव है।

ऐसे समाज में जहाँ दोनों प्रकार के लोग रहते हों; प्रेरणा से धर्माचरण करने वाले और पशु की भाँति लाठी से सीधे मार्ग पर हाँके जाने वाले, वहाँ धर्म की व्यवस्था होनी चाहिए और अधर्माचरण करने वालों के लिए दण्ड का विधान होना चाहिए।

अतः पितामह ने अपनी त्रिवर्ग स्मृति को चालना देने के लिए शीघ्रता करने का निर्णय कर लिया, नित्य दो-दो प्रहर तक महर्षियों की विचार गोष्ठियाँ चलने लगीं।

अभी यह गोष्ठियाँ चल ही रही थीं कि एक अन्य घटना उपस्थित हो गई। वनवासियों के शिविर में जनसंख्या बढ़ने लगी। वनस्थली के बहुत से वनवासी ब्रह्मपुरी के समीप के शिविर में आ गए। उनके साथ बृहस्पति की माता सुनीति भी थी। यह शिविर वनों को काट-काटकर विस्तार पाने लगा। प्रायः वनवासी वन में आखेट कर जीवन चलाते थे। वन पशुओं के चर्म से शरीर ढाँपते थे। शिविर में तो प्रायः नग्न रहते थे। नगर में जाते समय उत्तरीय पहनते थे।

अधिकांश वनवासी नगर के रहने वालों के लाभ का कोई काम कर नहीं सकते थे। ये कुछ सीखने में रुचि भी नहीं रखते थे, अतः वन पशुओं के चर्म, सींग अथवा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षियों के पंख बेच व नगर की वस्तुएँ क्रय कर सकते थे।

सुनीति जब ब्रह्मपुरी में आई तो वह बृहस्पति के पिता से मिलने जा पहुँची। कमला तब भी वहीं रहती थी।

कमला और बृहस्पति में सम्बन्ध नहीं हो सका। कमला एकाकी जीवन से प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होती थी। बृहस्पति के अनेक बार यत्न करने पर भी वह उससे सम्बन्ध बनाने के लिए उद्यत नहीं हुई। वह एक ही बात चाहती थी कि वह वनवासियों की संगति का त्याग कर अपने पिता के घर में आकर रहे और बृहस्पति यह कर नहीं सका।

सुनीति आई तो अपनी सह-पत्नी सावित्री, सावित्री के बच्चों और कमला से मिली। महर्षि अंगिरा ने पत्नी को कहा, "यदि वन में रहते-रहते पेट भर गया हो तो तुम इस सुन्दर, स्वच्छ और सुखद निवास-स्थान पर आकर रह सकती हो।"

"इतने दिन खुले वायुमण्डल और स्वच्छन्द संसार में रहते हुए ऐसा स्वभाव वन गया है कि इस घर के आगारों में रहते हुए दम घुटता अनुभव होगा।"

"तब ठीक है, परन्तु तुम लोगों के स्वच्छन्द जीवन की सीमा निश्चय हो गई है और उस जीवन को अब तुम सीमा के बाहर नहीं चला सकोगे। बृहस्पति को यहाँ आए चिरकाल हो गया है। यदि वह आ जाता तो उसको भी सचेत कर देता।"

"वह कहता है कि कमला के प्रति उसके मन में प्रवल मोह है और वह इसे देख अपने पर नियन्त्रण रखने में कठिनाई अनुभव करता है। यह उसकी पत्नी के रूप में रहना पसन्द नहीं करती। अतः वह यहाँ आकर दुःख अनुभव करता है।"

"परन्तु मैं दूसरी बात कह रहा हूँ। वह अब अपने को राजा के रूप में प्रकट कर रहा है। इसलिए उसकी प्रजा द्वारा किए गए कुकर्मों का फल उसे भोगना पड़ेगा। यही चेतावनी मैं देना चाहता था।

"तुम वहाँ राजमाता के रूप में रहती हो। इस कारण तुम भी अपने राज्य की प्रजा के कर्मफलों से मुक्त नहीं समझी जाओगी।"

"क्या दण्ड होगा हमारे लिए?"

"यहाँ एक मानव स्मृति का निर्माण हो गया है। उस स्मृति को चालू करने के लिए एक राजा की आवश्यकता अनुभव हुई है। राजा के कार्य के लिए महर्षि विरजा को आमन्त्रित किया गया था। विरजा ने राज्य करने से इन्कार कर दिया है। तब विरजा के पुत्र कीर्तिमान को यह पद स्वीकार करने का आग्रह किया गया। उसने भी इसे स्वीकार नहीं किया। कीर्तिमान के पुत्र कर्दम ने भी राजा बनना स्वीकार नहीं किया। अब कर्दम के पुत्र अनंग से प्रार्थना की जा रही है कि वह राज्य-भार वहन करे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनीति हँस पड़ी। हँसते हुए बोली, "हमारी मीमांसा और आपकी मीमांसा में यही अन्तर है। पितामह से कह दीजिए कि इतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता है? घर में ही एक राजा है। बृहस्पति को राज्य-पद दे दें। वह सब प्रबन्ध सुविधा-पूर्वक कर देगा।"

अब हँसने की बारी अंगिरा की थी। उसने हँसते हुए कहा, "यह पितामह को ज्ञात है कि बृहस्पति में संगठन करने की शक्ति उच्च कोटि की है, परन्तु संगठन करना एक कर्म है। यह किसी शुभ उद्देश्य से भी हो सकता है और किसी अशुभ उद्देश्य के लिए भी। कर्म का फल उस उद्देश्य के अनुसार ही मिलता है।

"देखो सुनीति! कर्म और उसमें सफलता बहुत बड़ी बात होते हुए भी जब निकृष्ट उद्देश्यों के लिए होती है तो घोर पतन का कारण बन जाती है।"

"परन्तु महर्षि! यह अपनी-अपनी बुद्धि ही तो है जो किसी कर्म को श्रेष्ठ उद्देश्य वाला मानती है अथवा निकृष्ट उद्देश्यों वाला। हम समझते हैं कि फल तो कामना के आधार पर मिलते हैं। जिस कामना से जो कार्य किया जाए, भले ही काम कैसा हो, उसी प्रकार का फल होना चाहिए।"

"कामना सें ही उद्देश्य का पता चलता है। कभी कामना के मूल्यांकन में भूल हो सकती है, परन्तु उस कामना से किए गए कर्म का फल उस भूल को सुधारने में समर्थ होना चाहिए। जो मनुष्य अशुद्ध परिणामों को देखकर भी अपनी कामना के अशुद्ध होने को स्वीकार नहीं करता, वह या तो निपट मूर्ख माना जाना चाहिए अथवा धूर्त्त।

"पितामह और मुझे भी बृहस्पति के उद्देश्य पर सन्देह नहीं। उसकी इच्छा यह है कि वह अपनी संगठन शक्ति का प्रयोग करे। अपने विचार से उसने लोककल्याण के विचार से संगठन आरम्भ किया है, परन्तु उसके जो परिणाम निकल रहे हैं उनको देखते हुए उसका संगठन कल्याण के स्थान पर अकल्याणकारी सिद्ध हो रहा है। वह स्वयं भी परिणामों को देख रहा है, परन्तु अपनी संगठन शक्ति का दूषित प्रयोग वह छोड़ नहीं रहा। अतः उसको या तो मूर्ख मानना पड़ेगा अथवा धूर्त्त।

"पितामह तो बृहस्पति को मूर्ख मानते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में वह महाधूर्त्त है। पितामह कहते हैं कि उसकी धूर्त्तता में कारण हैं। वह यह नहीं जानता कि उसकी व्यवस्था से जो अनाचार और अत्याचार व्याप्त हो रहा है, वह उसको भी भारी कष्ट देने वाला है।

"मेरा कहना यह है कि वह सब कुछ जानता है, परन्तु वह अपने विषयों से तथा महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर, अपनी कार्य-विधि पर आरूढ़ है।

"मैं समझता हूँ कि उसे अपनी सुख-सुविधा को लोककल्याण नहीं मानना चाहिए। वह समझता तो है, परन्तु स्वसुख के लोभ में मिथ्या मार्ग का राही बना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। इसका भयंकर फल उसको मिलने वाला है।"

"महर्षि !" सुनीति ने गम्भीर भाव में कहा, "आपको यह विचार करना चाहिए कि वह आपका पुत्र है। आपके शरीर का अंग है। अतः आपको उस पर सन्देह नहीं करना चाहिए।"

"अर्थात् अपने पुत्र के विषय में विचार करते हुए मैं धर्म-व्यवस्था को भूल जाऊँ ? अपने ज्ञान और बुद्धि का त्याग कर दूँ ? यह नहीं होगा सुनीति ! यदि उसके कर्मों का परिणाम उसके अपने तक सीमित रहता तो मैं मौन रह सकता था, परन्तु उसके कर्मों का परिणाम उसके अतिरिक्त पूर्ण मानव समाज के लिए दुःख और कष्ट का साधन बनता जाता है; इस कारण अब यह पुत्र और पिता के सम्वन्ध की बात नहीं रही। यह एक आचार्य और शिष्य की बात हो गई है।

"जाओ देवी ! उसे कह दो कि अविलम्ब पितामह के चरणों की शरण ले और अपने भूत कर्मों के लिए क्षमायाचना कर भविष्य में ठीक रहने तथा पितामह के आदेशानुसार आचरण करने का आश्वासन दे। इसी में उसका कल्याण है।"

: १२ :

चिन्ताग्रस्त सुनीति वनवासी शिविर को लौट गई। शिविर में पहुँच, उसने बृहस्पति को अपनी कुटी में बुलवाया। बृहस्पति को विदित था कि उसकी माता अपने पति से मिलने गई हुई है। अतः माता का सन्देश आया तो वह किसी प्रकार की विशेष बात की जानकारी होने की बात समझ तुरन्त माता के सामने जा पहुँचा।

सुनीति ने उसे अपने सम्मुख बैठाया और अपनी दासियों को बाहर निकाल-कर उसने वह पूर्ण वार्तालाप सुना दी जो उसके पिता के साथ हुई थी। जब सुनीति सब बात कह चुकी तो बृहस्पति ने कह दिया, "माँ ! तुम वृद्ध हो रही प्रतीत होती हो। तुम्हें मैंने वहाँ पर दो कार्य करने के लिए कहा था और वे कार्य तुम एक रात वहाँ रहकर ही कर सकती थीं। तुम गईं और लौट भी आईं और कुछ भी कार्य कर नहीं आईं।"

पुत्र के लांच्छन सुन, सुनीति मुस्कराई और कहने लगी, "बेटा ! मैं वहाँ गई तो इसी प्रयोजन से थी कि महर्षि जी की सेवा में कुछ दिन रहूँगी। आखिर मैं भी हाड़-चाम की बनी हूँ। मुझमें भी कामनाओं और वासनाओं का ज्वार आता है, परन्तु मैं एक स्त्री से कुछ अधिक हूँ। मैं माता भी हूँ। तुम मेरे अकेले पुत्र हो और मुझे यही ठीक समझ में आया था कि अपने पुत्र के कल्याण के लिए तुरन्त लौट आना चाहिए।"

"माँ ! तुम मेरी व्यर्थ में चिन्ता करती हो। पितामह अब वृद्ध हो गए हैं। मानव समाज ने बहुत उन्नति कर ली है और पितामह अभी भी यह समझ रहे हैं कि अमैथुनीय मूर्ख सृष्टि चल रही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने मानव समाज की इच्छाओं और अभिलाषाओं को जान, उनकी पूर्ति के सुगम उपाय विचार किए हैं। इस कारण कुछ ही वर्षों में मैं वह कार्य कर सका हूँ जो पितामह सहस्रों वर्षों में भी नहीं कर सके हैं। शीघ्र ही उसके नगर से बड़ा शिविर हमारा हो जाएगा। तब केवल संख्या के बल पर हम इन मूर्खों को या तो इनके अपने कल्पित स्वर्ग में भेज देंगे, अन्यथा जल भरने तथा सेवा के लिए रख लेंगे।"

"देखो बेटा ! मैंने पितामह की शक्ति को देखा है। उस अकेले ने एक बार सौ से अधिक वनवासियों को आश्रम से ऐसे बाहर कर दिया था जैसे कि कोई बुहारी से कूड़ा-कर्कट बुहारकर आँगन से बाहर कर दे। मैंने सुना है कि यह तो उसकी शक्ति का अति सामान्य प्रदर्शन था। उसकी शक्ति का विशिष्ट प्रदर्शन बहुत अधिक है।

"इसके अतिरिक्त सुना है कि अनंग वहाँ का राजा बनने वाला है और वह बहुत ही दृढ़ संकल्प व्यक्ति है। उसका न्याय क्रूरता की सीमा को छू जाता है।"

"तो अनंग ने स्वीकार कर लिया है ?"

"अभी उसको आमन्त्रित किया गया है। मैं समझती हूँ कि वह मान जाएगा। तब कठिनाई उपस्थित हो जाएगी। पितामह में एक गुण है। वह प्रेरणा में विश्वास रखते हैं और अनंग बल के प्रयोग को अवैध नहीं मानता।

"मुझे स्मरण है कि जब वह पितामह के आश्रम में महर्षि मरीचि से शिक्षा ग्रहण किया करता था तब भी वह दृढ़निष्ठ और स्थिर बुद्धि रखता था। ऐसे व्यक्ति को जब तुम्हारे पिता अंगिरा का सहयोग प्राप्त हुआ तो वह भूमण्डल को अपने अधीन कर लेगा।"

"माँ ! चिन्ता मत करो। कुछ नहीं होगा। अनंग को हमारे साथ संधि करनी पड़ेगी। वह अपने राज्य का विस्तार उत्तर की ओर करेगा और हम दक्षिण की ओर करेंगे। वह पूर्व की ओर विस्तार कर सकता है और हम पश्चिम की ओर उन्नति करेंगे। इस प्रकार हम दोनों एक-दूसरे का मार्ग काटे बिना उन्नति कर सकेंगे।"

"ठीक है, विचार कर लो। मैं वहाँ सावित्री से एक अन्य सूचना लाई हूँ।"

"क्या ?"

"तुम्हारा मित्र कश्यप इस समय दस पुत्रों का पिता हो चुका है। उसके बड़ी पत्नी अदिति से चार बच्चे हैं और वह पाँचवीं बार गर्भ धारण कर चुकी है।

"एक विशेष बात यह है कि उसकी कुछ पत्नियाँ हैं जो सन्तान की इच्छुक नहीं। उनमें से एक दिति है। सुना है कि कश्यप उसे कई बार सन्तानोत्पत्ति के लिए आह्वान कर चुका है, परन्तु वह अपनी खेल-कूद में ही रुचि रखती है।"

"ठीक है। उस बैल बुद्धि से और कुछ आशा भी तो नहीं की जा सकती थी।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु सुना है कि पितामह के त्रिवर्ग स्मृति शास्त्र में उसका बहुत भारी योगदान है। पितामह उसकी विद्वत्ता को बहुत मानते हैं।"

बृहस्पति हँस पड़ा। बोला, "प्रत्यक्ष में तो उसकी विद्वत्ता बच्चे पैदा करने में दिखाई दी है। यह तो महा नील जैसे अनपढ़ मूर्ख भी उत्पन्न कर रहे हैं।"

सुनीति को पुत्र की बातों से सन्तोष नहीं हुआ, परन्तु यह उसकी अपनी ही शिक्षा थी जो फलीभूत हो रही थी। उसने अपने लड़के को अपने माता-पिता तथा कबीले वालों की सहायता के लिए अपने पिता और पितामह के विरुद्ध किया था। अब वह उसे उनके अनुकूल करना चाहती थी। उसे अब इसमें ही उसका कल्याण दिखाई देने लगा था, परन्तु वह जिस पथ पर चल पड़ा था, उससे लौटने की उसमें सामर्थ्य नहीं थी। उसके पूर्वग्रह उसे ग्रसित कर रहे थे।

इस वार्तालाप के उपरान्त सुनीति को यही ठीक प्रतीत हुआ कि वह स्वयं पितामह के आश्रम वालों से बनाकर रखे। वह दोनों में सेतु का काम करना चाहती थी। किसी कठिनाई के समय वह पुत्र अथवा अपने पति के लिए नौका का काम करना चाहती थी।

अगले ही दिन वह पुनः अपने पति के निवास-स्थान पर जा पहुँची। बच्चे गुरुकुल गए हुए थे। महर्षि अपनी प्रयोगशाला में थे। घर पर सावित्री और कमला ही थीं।

सावित्री ने सुनीति को पुनः देखा तो उसका स्वागत किया। सुनीति ने कहा, "मैं कल एक प्रयोजन विशेष से आई थी, परन्तु महर्षि की बातें सुन पुत्र की चिन्ता में भूल गई थी कि किस कार्य से यहाँ आई थी? पुत्र को अपनी चिन्ता का कारण बता जब चित्त स्थिर हुआ तो पुनः अपना प्रयोजन स्मरण हो आया और यहाँ आ गई हूँ।"

"क्या प्रयोजन है तुम्हारा यहाँ पर?"

"मुझे घर से गए छः वर्ष से अधिक हो गए हैं और इतने दिन से पति की संगति से वंचित हो अपने में कुछ अभाव अनुभव करती हूँ। इसलिए मैं पति की संगति की इच्छा रखती हुई यहाँ कुछ दिन रहने के विचार से आई थी। अब उस विचार को पूर्ण करने आई हूँ।"

सावित्री ने आँखें मूँद सुनीति की बात पर विचार किया और तब कहा, "इस बात का मुझसे सम्बन्ध नहीं। महर्षि सायंकाल के समय आएँगे तब उनसे पूछ लेना।"

"मैं अब यहीं रहूँगी और जब वह घर लौटेंगे तो उनसे पूछ लूँगी। देखो सावित्री! मैं उनकी पत्नी हूँ। यदि वह मेरी इच्छा पूर्ण नहीं करेंगे तब भी मैं यहाँ रहने का अधिकार रखती हूँ।"

"मैं यह जानती हूँ। परन्तु यहाँ रहने का एक नियम है। उसका पालन तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना ही होगा।"

"वैसे तो इस घर की दिनचर्या से मैं परिचित हूँ और उसका पालन करूँगी। हाँ, कोई नई बात चल रही है तो वह बता दो।"

"नहीं। कुछ नई बात नहीं। घर पर तो वही स्थिति है, परन्तु आपने अब अपनी एक नई स्थिति बना ली है। आपको कुछ लोग असुरों की राजमाता के रूप में मानते हैं। इससे राजमाता कैसे एक महर्षि के घर में पत्नी के रूप में रह सकेगी? यह विचारणीय है।"

"सावित्री! तुम चिन्ता मत करो। मैं राजमाता का पद बाहर वनवासी शिविर में ही रख आई हूँ। यहाँ एक महर्षि की पत्नी के रूप में ही रहने का विचार रखती हूँ।"

"ठीक है, उनको आने दो। जैसा वह चाहेंगे, वैसा ही करना चाहिए।"

"सुनाओ कमला!" सुनीति ने अब लड़की की ओर ध्यान दिया, "कल तो तुमसे भी बात नहीं हो सकी। यहाँ प्रसन्न हो?"

"माताजी! यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। यदि यह कहूँ कि शिविर से यहाँ अधिक सुख, सन्तोष और सुरक्षा अनुभव होती है तो अधिक ठीक होगा।"

"बृहस्पति से मिलने को इच्छा नहीं करती?"

"करती है, परन्तु जिस कारण से करती है, वह उससे उपलब्ध नहीं।"

"किस कारण से पति से मिलना चाहती हो?"

"उस दिन अदिति अपने पाँच बच्चों के साथ यहाँ आई थी और उन बच्चों को देख, मेरे मन में भी वैसे ही एक-दो बच्चों के लिए उत्कट इच्छा उत्पन्न हो रही है। वैसे बच्चे वहाँ रहते हुए वह दे नहीं सकेंगे और न ही उनके पालन-पोषण का प्रबन्ध वहाँ हो सकेगा जैसा यहाँ हो सकता है।"

"यह कैसे कहती हो कि ऐसा वहाँ नहीं हो सकेगा?"

"मैंने दोनों स्थानों को देखा है, इसलिए यही समझ रही हूँ।"

"उसके लिए अपनी प्रजा को छोड़ यहाँ आकर रहना सम्भव नहीं।"

"तो वह वहीं पर ऐसा वातावरण निर्माण कर सकते हैं जैसा यहाँ है। इसके लिए यहाँ के ऋषियों-महर्षियों के सहयोग की आवश्यकता होगी। परन्तु यहाँ का सहयोग न तो वह चाहते हैं और न ही वहाँ के लोग इसके अधिकारी हैं। इतना समीप रहते हुए भी वह बहुत कम पितामह से मिलने आते हैं। कभी आते भी हैं तो प्रायः झगड़ा ही करते रहते हैं।

"एक बात और है। बिना योग्यता प्राप्त किए वह पितामह की प्रतिस्पर्धा करना चाहते हैं। पितामह जी स्वयं बता रहे थे कि उन्होंने दो मन्वन्तर भर घोर तपस्या की है। वह योग में सिद्ध हैं। अब भी वह जब चाहते हैं तो बाहर से अन्तर्ध्यान हो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परमात्मा से योगस्थ हो जाते हैं। उस समय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ की जटिल समस्या को सुलझाने का मार्ग पा जाते हैं।

"इस योग्यता के अतिरिक्त वह आयु और अनुभव में हम सबसे बड़े हैं। हमें उनका मान करना चाहिए। परन्तु आपके पुत्र उनको मूर्ख और मिथ्या पथगामी मानकर उनकी अवहेलना करते हैं।"

सुनीति इस सब बात को जानती थी और वह अब अनुभव कर रही थी कि अपने पुत्र में ये सब गुण उसने ही उत्पन्न किए हुए हैं। वह उस दिन की घटना को भूल नहीं सकती थी जिस दिन उसके वनवासी पुरुषों को पितामह ने अपनी किसी अज्ञात शक्ति से पराजित किया था। इस बात को तीस वर्ष के लगभग व्यतीत हो चुके थे जब उसे अपने घर बालों की दुर्दशा देख अति दुःख हुआ था। वह योद्धा जो दक्ष से पराजित हुआ था, उसका बड़ा भाई था।

वह पितामह के शिविर में तो अपनी माँ के कारण आकर रहने लगी थी। उसकी माँ दक्ष की चतुराई से और पितामह की सामर्थ्य से अति प्रभावित हुई थी और अपनी लड़की तथा एक लड़के के साथ अपने कबीले को छोड़ पितामह के आश्रम में रहने के लिए तैयार हो गई थी।

इस घटना से पूर्व सुनीति की माँ यह भी देख चुकी थी कि जब दो कबीलों में युद्ध होता था तो विजयी कबीले वाले पराजित कबीले के स्त्री वर्ग को अपने कबीले में सम्मिलित कर लेते थे। बूढ़ी स्त्रियों को मार डाला जाता था और युवा स्त्रियों का पत्नी के रूप में प्रयोग किया जाता था। अतः सुनीति की माँ और कबीले की अन्य स्त्रियाँ यही आशा करती थीं। इसी कारण वे दया की भिक्षा माँगती हुई इस आश्रम में आ गई थीं।

यहाँ इस आश्रम में किसी की हत्या नहीं हुई। हाँ, स्त्रियों को अपने कबीले में लौट जाने की स्वीकृति दे दी गई। जब स्त्रियाँ यहाँ की सुख-सुविधाओं को देख यहीं रहने को तैयार हो गईं तब भी उनमें से विवाह के योग्य का उनकी इच्छा से ही विवाह किया गया। सुनीति को स्मरण था कि कैसे अंगिरा ने उससे आग्रह किया था कि वह उसकी पत्नी बनना स्वीकार करे।

इन सब सुविधाओं के होते हुए भी उसको अपने पिता और भाई की दुर्दशा स्मरण थी, इसलिए वह अपना पूर्ण रोष और असन्तोष अपने पुत्र को पितामह के विरुद्ध करके निकालने लगी थी।

अब वह अनुभव करती थी कि उसने अपने पुत्र के मन में सीमा से अधिक पितामह के प्रति विष भर रखा है और अब वह उसे मिटा नहीं सकती थी।

जब उसे अनंग के ब्रह्मपुरी में राजा बनने का समाचार मिला तो वह भयभीत हो गई और अपने पुत्र के पास गई। अनंग कठोर प्रवृत्ति का व्यक्ति था और उसके राजा बनने की बात सुनकर वह बहुत ही कठोर समय की आशा कर रही थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: १३ :

अदिति के पाँचवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ और उसके नामकरण संस्कार पर ब्रह्म-पुरी के प्रायः सब प्रतिष्ठित विद्वानों को आमन्त्रित किया गया, जिससे वे बालक को आशीर्वाद दे सकें। पितामह भी आमन्त्रित थे। पितामह अपने साथ एक अन्य व्यक्ति को भी लेते आए थे।

इस नवीन व्यक्ति को ब्रह्माश्रम के कुछ प्राचीन निवासी ही जानते थे। नवीन सन्तति इस ओजस्वी और बलशाली व्यक्ति के विषय में अनभिज्ञ थी। अतः जब पितामह पधारे और उनके साथ यह व्यक्ति आए तो प्राचीन महर्षियों ने उठकर जहाँ पितामह का सत्कार किया वहाँ इस नवीन व्यक्ति को भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया। अन्य जन तो पितामह के सम्मान में उठे थे। फिर भी वे इस नवीन व्यक्ति के मुख की दृढ़ मुद्रा देख उत्सुकता से उसकी ओर देख रहे थे, परन्तु उन अनभिज्ञ व्यक्तियों में से किसी का साहस नहीं हुआ कि वह इसके विषय में कुछ पूछें।

ऐसी आशा की जा रही थी कि पितामह स्वयं इसका परिचय कराएँगे। पितामह ने बाद में ऐसा ही किया। जब यज्ञ, हवन, नामकरण हो चुका तो पितामह ने आशीर्वाद रूप दिए प्रवचन में जहाँ बालक के विषय में दो शब्द कहे, वहाँ इस नवीन व्यक्ति का भी परिचय दिया।

पितामह ने कहा, "हम देखते हैं कि मानव-सृष्टि का प्रभात काल आ पहुँचा है। अन्य ऋषियों ने भी इसको लाने के लिए यत्न किया है, परन्तु कश्यप द्वारा ऐसी सृष्टि की जा रही है जो इस भूलोक के अन्त तक अपना सन्तान-सूत्र आगे ले जाएगी। ये अदिति के आदित्य और दिति के दैत्य ही इस जग में संघर्ष को जीवित रखेंगे जिससे मानव उत्तरोत्तर उन्नति करेगा।

"यह बालक जिसको महर्षि मरीचि ने इन्द्र के नाम से सम्बोधित किया है, आदित्यों की सन्तान का रखवाला होगा। जैसे द्यूलोक में इन्द्र राज्य करता है और अन्तरिक्ष की विभिन्न शक्तियों का संचालन करता है वैसे ही उसी का नामधारी यह बालक इस भूमण्डल पर राज्य करेगा। यह आदित्यों का राजा बनेगा और अपने यौवन काल में आदित्यों के यश और कीर्ति का पालक बनेगा।"

सब बैठे हुओं ने 'एवमस्तु-एवमस्तु' के वाक्य से पितामह के वचन का समर्थन किया।

इसके उपरान्त पितामह ने अपने समीप बैठी भव्य मूर्ति का परिचय दिया। पितामह ने कहा, "इस बात को जानकर सबको हर्ष होना चाहिए कि इस जनपद को अब एक शासक मिल गया है। महात्मा अनंग ने इस जनपद का शासन चलाने की स्वीकृति दे दी है। वे सबके साथ न्याययुक्त व्यवहार चलाकर इस स्थान पर और भूमण्डल में शान्ति व्यवस्था स्थापित करेंगे।

"महात्मा अनंग कीर्तिमान के युत्र और कर्दम के पौत्र हैं। कर्दम अमैथुनीय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि के जीव थे और विरक्त स्वभावी थे। अनंग ने हमारे त्रिवर्ग स्मृति शास्त्र का अध्ययन किया है और उसके अनुसार ही वह राज्य-कार्य चलाएँगे। शीघ्र ही अनंग का राज्याभिषेक किया जाएगा और वह इस जनपद के शासक होंगे।"

इस आशीर्वाद के उपरान्त कश्यप ने एक वृहत् भोज दिया। पितामह भी उसमें सम्मिलित थे। महर्षि पितामह अनंग और उनके साथ कुछ कश्यप के मित्र एक पृथक् कक्ष में बैठे भोजन कर रहे थे। उस समय भिन्न-भिन्न विषयों पर चर्चा का आरम्भ कश्यप ने ही किया। कश्यप ने पितामह से पूछा, "पितामह! आपने कहा है कि मेरी पत्नी दिति की सन्तान दैत्य इस भूमण्डल को मानव सृष्टि से भरने में अदिति की सन्तान आदित्यों को सहयोग देगी, परन्तु भगवन्! वह तो सन्तान से घृणा करती है और मेरे अनेक बार प्रयास करने पर भी वह इन्कार कर चुकी है।"

"हाँ।" पितामह ने मुस्कान भरकर कहा, "यह हम देख रहे हैं कि जहाँ अन्य दक्ष कन्याएँ सृष्टि-रचना में संलग्न हो रही हैं, वहाँ दिति अभी बाल्यकाल में ही विचर रही है, परन्तु इस भविष्यवाणी में भी सार है। यह अन्यथा नहीं होगी।"

जब वार्त्तालाप चलने लगा तो बृहस्पति जो कश्यप के मित्र के नाते आमन्त्रित था, बोल उठा, "पितामह! महात्मा अनंग का जनपद कितना बड़ा होगा?"

"जितने पर नियन्त्रण रखने की इसकी सामर्थ्य होगी।"

"अनंग की अपनी सामर्थ्य तो हमारे एक सुभट्ट सुन्द से भी कम है। सुन्द जैसे हमारे शिविर में बीसियों हैं।"

"देखो बृहस्पति! तुम सदा अपनी विलक्षणता का ही परिचय देते हो। साथ ही तुम्हारी विलक्षणता सदा विघटन की ओर ही जाती है। संघठन तुमको सुहाता नहीं।

"देखो, समाज एक मानव शरीर के समान है। शरीर में सामर्थ्य की सूचक बाँहें हैं, परन्तु शरीर बाँहें मात्र नहीं। इसके दूसरे अंग भी हैं। इनमें सबसे मुख्य अंग शिर अर्थात् मस्तिष्क पूर्ण शरीर का संचालन करता है। बाँहें भी मस्तिष्क से अपनी सामर्थ्य का प्रश्रय पाती हैं।[1]

"इसी प्रकार समाज रूपी शरीर में अनंग अपनी सैन्य-शक्ति के साथ बाँहों का काम करेगा, परन्तु समाज का मस्तिष्क महर्षि और अन्य विद्वान् अनंग की सहायता

---

१. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायने॥ (यजु०—३१-११)
इस (मानव समाज) का ब्राह्मण शिर है, क्षत्रिय बाँहें हैं, पेट वैश्य हैं और शूद्र पाँव की भाँति इसका आश्रय हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेंगे। इस कारण तुम्हारे सुन्द इत्यादि सुभटों की शक्ति अनंग की शक्ति से हेय सिद्ध होगी। तुमको भी अपने समाज में ब्राह्मणों का निर्माण करना पड़ेगा, अन्यथा अनंग का ही प्रभाव रहेगा। अन्य किसी का नहीं।"

"अपने समाज का मस्तिष्क मैं हूँ।"

"और यदि दोनों समाजों के मस्तिष्क न्याय एवं शान्ति के पक्ष पर न चल सके तो संघर्ष होगा और विजय उसकी होगी जिस ममाज में मस्तिष्क और बाँहों तथा शरीर के अन्य अंगों में समन्वय और सहचारिता होगी।"

कश्यप ने इस समय एक नवीन आयोजन किया। उसकी एक पत्नी मुनि थी। यह भी दक्ष कन्या थी। भोजन हो रहा था कि सबके समक्ष मुनि की दो कन्याएँ एक उच्च मंच पर आकर खड़ी हुईं। ये कन्याएँ पाँच वर्ष की वयस की थीं। ये अति सुन्दर दैवी भूषण और वस्त्रों को पहने थीं और शृंगारयुक्त थीं।

जब वे आईं तो कश्यप ने पितामह का ध्यान उस ओर आकर्षित कर कहा, "भगवन्! ये कन्याएँ मेरी पत्नी मुनि की जुड़वाँ सन्तान हैं। ये जन्म से नृत्य और कला का प्रदर्शन करती रही हैं। ये अपने नृत्य और संगीत का आपके सम्मुख प्रदर्शन करना चाहती हैं। इनमें से एक त्वष्टा है और दूसरी स्वष्टा है।"

पितामह ने मुस्कराकर इसकी अनुमति दी तो वे गाने लगीं। सर्वप्रथम 'ओंकार इत्येक्षरमुपासीत्' का उद्‌गीथ गान हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने अनेकानेक भक्ति-भाव की मुद्राएँ नृत्य में सम्पन्न कीं।

पितामह ने प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद दिया, "इनकी सन्तान गन्धर्व नाम से विख्यात होगी और मानव को मोक्ष का मार्ग दिखाने में सहायक होगी।"

इस उत्सव और भोज में महर्षि अंगिरा की प्रथम पत्नी बृहस्पति की माता भी उपस्थित थी। उसने भी वहाँ बृहस्पति और पितामह में हुए वार्तालाप को सुना था।

उत्सव से लौटते समय सुनीति बृहस्पति को अपने पिता महर्षि अंगिरा के निवास-स्थान पर ले आई। वहाँ पुत्र को उसके पिता के सामने बैठाकर बोली, "बृहस्पति! अब अनंग राजा बनेगा। इस कारण अपनी स्थिति पर विचार कर लो।"

"पर माँ!" बृहस्पति ने कहा, "अनंग को कौन राजा मानेगा? किसी ने भी उसे राजा बनने के लिए नहीं बुलाया और न ही उसे राजा बनने के लिए कहा है।"

महर्षि अंगिरा ने कहा, "यहाँ के सब ऋषि-महर्षियों की अनुमति से अनंग को राजा निर्वाचित किया गया है। अनंग की राज्य करने में योग्यता की परीक्षा कर ली गई है। मैं समझता हूँ कि यह ठीक व्यक्ति है।"

"परन्तु!" बृहस्पति ने पूछा, "उन ऋषियों एवं महर्षियों की संख्या कितनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी जिन्होंने अनंग की परीक्षा कर इसे राजा निर्वाचित किया है ?"

"ग्यारह थी। इनमें छहों महर्षि थे और पाँच अन्य ऋषि थे।"

"परन्तु पिताजी ! मैं तो उनमें था ही नहीं। न ही सहस्रों अन्य लोग थे जो इस जनपद में रहते हैं। इस कारण हमें उसे अपना राजा मानने पर बाध्य नहीं किया जा सकता।"

"बाध्य करने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। वास्तविक स्थिति यह है कि अधिकांश लोग इसके अधीन रहने के लिए स्वतः तैयार हो जाएँगे। कुछ लोग तो विद्वन्मण्डल की इसके लिए मंगल कामना की बात जानकर; और अन्य इसकी कार्यपटुता को देखकर तथा इसके राज्य-दण्ड को देखकर।"

"अर्थात् वह दण्ड से राज्य करेगा ?"

"क्यों नहीं ? जब आवश्यक होगा तो राज्य-दण्ड भी प्रयोग में लाया जाएगा।"

बृहस्पति मौन हो गया। सुनीति ने कहा, "बृहस्पति ! क्या तुम अपराधियों को दण्ड नहीं देते ? तुम तो निरपराधियों को भी दण्ड दे देते हो।"

"नहीं माँ ! मैंने ऐसा नहीं किया।"

"तो कमला का गला किसलिए घोंटा गया था ?"

"इसने अपने कबीले वालों को रुष्ट कर दिया था।

"मैं समझता हूँ कि वह अकारण नहीं हुआ था। सामूहिक बुद्ध ही सत्य और न्याय हैं।"

अंगिरा ने पुत्र को समझाने का यत्न किया, "बृहस्पति ! तुम भूल कर रहे हो। सत्य और न्याय का निर्णय जनमत से नहीं, वरंच ईश्वरीय विधान से होता है।"

"उसको कहाँ ढूँढ़ा जाए ?"

"वेद और वेदों के ज्ञाता तथा सदाचारी यम-नियमों का पालन करने वालों के कथन ही धर्म का निर्णय करने में समर्थ हैं।"

"परन्तु ! इसका निर्णय कौन करेगा कि ज्ञानवान, सदाचारी और यम-नियमों का पालन करने वाला कौन है ?"

"ये लोग अपनी विद्वत्ता से अपने अधिकारी होने को सिद्ध कर देंगे।"

"तो क्या अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण तथा उनका प्रयोग विद्वत्ता के लक्षण नहीं ?"

"ये विद्वत्ता को सिद्ध करने का एक साधन हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भी साधन हैं। साधन-समूह ही निर्णय करते हैं कि कौन सत्य और न्याय का पक्ष ले रहा है।"

"पिताजी ! क्या इसका यह अर्थ नहीं कि जो विजयी होगा वही सत्य का पक्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले रहा है ?"

अंगिरा हँस पड़ा। उसने कहा, "हाँ, परन्तु यह स्मरण रखो कि मिथ्या और अन्याययुक्त पक्ष लेने वाले सदा पराजित होंगे। यद्यपि उनको पराजित करने के लिए न्यायप्रियों को भी त्याग, तपस्या और बलिदान करना पड़ेगा।

"अर्थात् इस मानव-सृष्टि में संघर्ष सदा रहेगा। इस संघर्ष में दोनों पक्षों की हानि हुआ करेगी। साथ ही विजय सत्य पक्ष की ही होगी।"

बृहस्पति अपने मन में विचार करता था कि विजय शक्ति की होगी, इस कारण शक्ति संचय ही धर्म है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा परिच्छेद

महाराज अनंग ने राज्य को बहुत विस्तार दिया। उस राज्य के पालन-पोषण में महर्षि अंगिरा, महर्षि अत्रि और महर्षि पुलह का बहुत सहयोग मिला। इन महर्षियों ने अपने-अपने कार्य को विस्तार देने के लिए शिष्य-परम्परा चला रखी थी। उन शिष्यों में भी अनेक ऋषि-पद प्राप्त कर चुके थे।

अस्त्र-शस्त्र तथा कृषि-कार्य के लिए यन्त्रादिक सब अंगिरा के कार्यालय में आयोजित तथा निर्माण किए जाते थे। राज्य के विस्तार से कार्य इतना अधिक बढ़ गया कि महर्षि को अपनी पत्नियों की सुध लेने का अवकाश ही नहीं मिलता था।

सावित्री दो पुत्रों और तीन कन्याओं की माँ बन चुकी थी। कन्याएँ तो ऋषियों की पत्नियाँ बन, सृष्टि-रचना में लग गई थीं और पुत्र थे उतथ्य तथा संवर्त। वे भी पिता के समान प्रकृति के जटिल रहस्यों को जानने में लीन थे। वे ऋषि-पद प्राप्त कर चुके थे।

महर्षि अंगिरा की सुनीति से एक लड़की भी हो चुकी थी। वह इस समय पन्द्रह वर्ष की युवती थी और अति मृदुल स्वर से वेद गान करती थी। इस कारण उसे ब्रह्मवादिनी की उपाधि प्राप्त थी।

सुनीति पुत्र बृहस्पति के मिथ्या मार्ग का अवलम्बन करने पर बहुत निराश हुई थी। अतः महर्षि अंगिरा ने उसे सान्त्वना देने के लिए एक और सन्तान धारण करने का सुझाव दिया। इस पर सुनीति महर्षि अत्रि से परामर्श करने जा पहुँची। महर्षि ने पूछा, "क्या चाहती हो ? पुत्र अथवा पुत्री ?"

"जो मेरी आज्ञा का पालन करे।" अनायास ही सुनीति के मुख से निकल गया।

महर्षि ने एक ओषधि सेवन के लिए देकर कहा, "इसे गोदुग्ध से पान करो और पति की सेवा में चली जाओ। दस मास उपरान्त एक अति सुन्दर मेधावी पुत्री को जन्म दोगी। वह तुम्हारी आज्ञाकारिणी होगी।"

ब्रह्मवादिनी गर्भ में ही थी कि बृहस्पति और अनंग में विवाद उत्पन्न हो गया। बृहस्पति के शिविर को अनंग ने अपने राज्य में सम्मिलित कर बृहस्पति को कहा कि उसे त्रिवर्ग स्मृति का पालन करना होगा। बृहस्पति का कहना था कि उनकी अपनी एक स्मृति है और वे उसका ही पालन करेंगे।

अनंग ने घोषणा कर दी कि यदि बृहस्पति और उसकी प्रजा त्रिवर्ग स्मृति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पालन नहीं कर सकते तो वे ब्रह्मपुरी से दो सौ योजन की दूरी पर चले जाएँ। अन्यथा उन्हें बलपूर्वक यहाँ से हटाया जाएगा।

बृहस्पति ने यह चुनौती स्वीकार कर ली और दोनों ओर से युद्ध की तैयारी होने लगी।

ब्रह्मवादिनी एक वर्ष की नहीं हुई थी कि ब्रह्मपुरी के बाहर घोर युद्ध हुआ। बृहस्पति युद्ध में बन्दी बना लिया गया। भारी नरहत्या के उपरान्त वनवासी शिविर टूट गया और बचे-खुचे वनवासियों में से अधिकांश भाग गए और कुछ अनंग की नगरी में श्रमिक जीवन व्यतीत करने के लिए उद्यत हो गए। इनमें स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या थी। बहुत ऐसी थीं जिनके पति युद्ध में मारे गए थे और कुछ अविवाहित युवतियाँ भी थीं।

इस विजय के उपरान्त पितामह ने अपने को राजनीति से तटस्थ रखने के लिए अपना आश्रम उत्तर की ओर लगभग दो सौ योजन दूर बना लिया। प्राय: सब महर्षि अनंग की नगरी ब्रह्मपुरी में ही रह गए। ब्रह्मपुरी वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता का केन्द्र बन गया।

बृहस्पति को मृत्युदण्ड दिया गया था, परन्तु सुनीति और अंगिरा की याचना पर पितामह ने उसे इस शर्त पर जीवन-दान देने का वचन दिया कि वह नगरी से दूर कहीं अपना आश्रम बनाकर रहे।

जब बृहस्पति इन शर्तों के साथ मुक्त हुआ और अपना नवीन आश्रम बनाने के लिए ब्रह्मपुरी से उत्तर-पूर्व की ओर जाने लगा तो कमला उसके साथ जाने के लिए तैयार हो गई।

इस घटना को पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो चुके थे और अब कमला के भी एक पुत्र का जन्म हो चुका था। वह इस समय तेरह वर्ष का कुमार था। उसका नाम था कच।

कश्यप के घर बहुत सन्तान हो चुकी थीं। अदिति के बारह पुत्र हो चुके थे और ये सब आदित्य कहलाते थे। बारहवाँ पुत्र अब दो वर्ष का था। उसका नाम विष्णु था। बाल्यकाल में ही यह बालक सब आदित्यों से अधिक बलवान, ओजस्वी और प्रतिभावान दिखाई दिया था।

दक्ष कन्या दिति के भी दो पुत्र थे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। ये दोनों अति उपद्रवी जीव थे। पहले तो दिति ने सन्तान धारण करने से इन्कार कर दिया परन्तु फिर एकाएक वह एक सायंकाल अपने पति कश्यप के पास पहुँची और सन्तान की याचना करने लगी। उस समय कश्यप अपने यज्ञ, पूजा-पाठ, उपासना में बैठने के लिए वस्त्र बदलने शयनागार में जा रहा था। दिति उसके साथ वहाँ जा पहुँची और सहवास के लिए आग्रह करने लगी। प्रजापति ने कहा, "देवी! अभी सन्ध्या समय है। इस समय मैं पूजा-पाठ इत्यादि के लिए यज्ञशाला में जा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा हूँ। आज रात तुम आना तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।"

"भगवन्! नहीं, मैं तो अब इस कार्य में एक क्षण की देर भी सहन नहीं कर सकती।"

कश्यप ने गम्भीर हो दिति के मुख पर देखा तो वह वासना से आच्छादित था। प्रजापति को चिन्ता लग गई कि देर करने पर यह कहीं अन्यत्र सन्तान लेने न चल दे, अतः वह तैयार हो गए।

दस मास उपरान्त दिति के दो पुत्र हुए, हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष।

जब अदिति के बारहवें पुत्र विष्णु का जन्म हुआ तो हिरण्यकशिपु दस वर्ष का था और अपने सब भाइयों को मारने-पीटने के लिए विख्यात था। उसके इस व्यवहार पर हिरण्यकशिपु के पिता बालक से और उसकी माता से नाराज़ रहते थे।

विष्णु एक वर्ष का था कि किसी कारण हिरण्यकशिपु रुष्ट हो विष्णु का गला घोंट हत्या कर देने को उद्यत हो गया। घटनावश अदिति वहाँ आ गई और उसने हिरण्यकशिपु को वहाँ से भगा दिया। जब प्रजापति कश्यप से कहा गया तो उसने हिरण्यकशिपु और उसकी माँ को बुलवाया। जब वे आए तो कश्यप ने दिति के सामने आरोप का वर्णन कर दिया। उसने कहा, "अदिति कह रही है कि हिरण्य विष्णु का गला घोंट रहा था।"

"हाँ पिताजी!" हिरण्य ने बताया, "मैं समझ रहा था कि इतने सुन्दर बालक के होते हुए आप अपनी अन्य सब सन्तानों की अवहेलना कर अपना सब प्रेम और विद्या इसी को दे देंगे। इससे मेरे मन में कई दिन से ईर्ष्या उत्पन्न हो रही थी। आज मेरे मन में आया कि इसकी हत्या कर दूँ।"

"हिरण्य! जानते हो यह पाप है?"

"पिताजी! इससे अच्छा पुण्य क्या हो सकता था कि एक को क्षेत्र से बाहर कर बीसियों को प्रसन्न किया जाए। मैंने यही करने का यत्न किया था।"

कश्यप हिरण्यकशिपु की मनोवृत्ति देख उसकी माँ से बोला, "देखो देवी! यह असुर इस घर में नहीं रह सकता। या तो यह राज्य की ओर से मृत्युदण्ड पा जाएगा, अन्यथा मुझसे शापित हो यहाँ से निकाल दिया जाएगा।"

"भगवन्! औरों के तो बारह-बारह सन्तान हैं। उनकी एक चली भी गई तो हानि नहीं होगी परन्तु मेरे तो दो ही हैं। मैं उनको रुष्ट नहीं कर सकती।"

कश्यप ने कह दिया, "तो ऐसा करो कि इसे लेकर कहीं अन्यत्र आश्रम बना लो।"

"मेरे निर्वाह के लिए क्या देंगे?"

कश्यप ने पूछ लिया, "माँगो, क्या चाहती हो?"

"ब्रह्मपुरी वाला गृह उद्यान अन्न क्षेत्र और सब भूमि।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है। यह सब तुमको मिल जाएगा।"

इस प्रकार कश्यप ने अपना पृथक् आश्रम बना लिया। यह आश्रम ब्रह्मपुरी से पूर्व की ओर एक सौ योजन के अन्तर पर था। पहाड़ी क्षेत्र से नीचे था। ब्रह्मपुरी पहाड़ी क्षेत्र में थी। ब्रह्मा का आश्रम हिमाच्छादित पहाड़ों को पार कर उत्तर की ओर था। महाराज अनंग भी पहाड़ों में रहते हुए अपने राज्य का विस्तार नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने ब्रह्मसर से निकलने वाली सरस्वती के तट पर अपनी राजधानी ऐसे स्थान पर बनाई जहाँ सरस्वती पहाड़ों को छोड़ समतल भूमि में प्रवेश करती थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि हिरण्यकशिपु ब्रह्मपुरी में निरंकुश हो वृद्धि पाने लगा।

आदि काल में पृथिवी कमल रूपी जल से बाहर हिमालय के शिखर पर ही दिखाई दी थी। वहीं पितामह ने तपस्या की थी और उसी स्थान से सृष्टि की रचना का आरम्भ हुआ है। उस समय जब मानव-सृष्टि हो रही थी, भूमि का एक विस्तृत खण्ड जल से बाहर निकल चुका था। जल का शोषण वराह रूपी बादलों ने किया था और सागर का जल घट रहा था। जल से बाहर नए-नए भूखण्ड बसने योग्य हो चुके थे।

मानव-सृष्टि का विस्तार हिमालय के पठारों से चलकर उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण को हो रहा था। अतः कश्यप ने अपना नवीन निवास-स्थान हिमालय के एक ओर, ब्रह्मपुरी के पूर्व की ओर बनाया था। ब्रह्मा का नवीन निवास-स्थान ब्रह्मसर से उत्तर की ओर था।

: २ :

ब्रह्मसर के समीप ब्रह्मपुरी में निरंकुश रहते हुए हिरण्यकशिपु ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इस राज्य के स्थापित हो जाने पर दिति को चिन्ता लगने लगी कि राज्य तो बन गया, परन्तु अनंग से मित्रता न रखी गई तो उसके पुत्र का भी वही परिणाम होगा जो सुनीति के पुत्र बृहस्पति का हुआ है। अतः उसने एक दिन पुत्र को बुलाकर कहा, "बेटा! क्या तुमने अपने को राजा घोषित कर दिया है?"

"हाँ माँ! यह स्थान तब से राजा-विहीन पड़ा था जब से अनंग ने अपनी राजधानी सरस्वती के तट के एक समतल स्थान पर बनाई है। मैंने यह विचार किया है, जब कोई राजा नहीं तो मैं ही राजा क्यों न बन जाऊँ? वह विचार कर मैंने अपने को यहाँ का राजा घोषित किया है।"

"देखो बेटा! किसी निवासगृह का रिक्त होना इस बात का सूचक नहीं होता कि जो कोई चाहे उसमें आकर रहने लग जाए। उस पर अधिकार तब ही हो सकता है जब उसके पहले स्वामी से इसकी स्वीकृति ले ली जाए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो ! तुम महाराज अनंग के पास यह सूचना भेज दो कि तुमने यहाँ अव्य-वस्था देख यहाँ व्यवस्था स्थापित करनी आरम्भ कर दी है।"

हिरण्यकशिपु का छोटा भाई हिरण्याक्ष यह सूचना भेजना नहीं चाहता था। वह समझ रहा था कि सूचना भेजने से तो व्यर्थ में उसे सचेत करना होगा और तब वह इसे पसन्द करेगा अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। वह चुपचाप राज्य का भोग करते हुए यहाँ शक्ति-संचय करना चाहता था।

जब माता ने बृहस्पति के विद्रोह का परिणाम बताया तो वह विचार करने लगा। उसने इसका एक उपाय विचार कर लिया। अनंग से अनुमति लेने के स्थान वह पितामह के निवास-स्थान को चल पड़ा।

पितामह दुर्गम हिमालय पार कर बीहड़ मरुस्थल को भी पार कर उत्तर में अति शीतल स्थान पर अपना आश्रम बसाए हुए था। हिरण्याक्ष उसी स्थान को चला, परन्तु वह अपने लक्ष्य स्थान तक नहीं पहुँच सका। दुर्गम मार्ग पर आकाश मेघों से घिर गया और मूसलाधार वर्षा होने लगी। नदी, नाले जल से भर गए और आगे जाना दुस्तर हो गया। हिरण्याक्ष एक स्थान पर जल से घिर गया और वह न आगे बढ़ सका और न ही लौट सका। कई दिन तक उसने मार्ग खुलने की प्रतीक्षा की, परन्तु वह नहीं खुला। एक रात वह एक गुफा में सो रहा था कि वह गुफा भी जल से भर गई और वह जल में बह गया।

हिरण्याक्ष को ब्रह्मपुरी से गए दो मास से अधिक हो चुके थे कि गंगा नदी में मछली पकड़ने वाले उसका गला-सड़ा शव जल में बहता हुआ पकड़ लाए। उसे पहने हुए भूषणों से पहचाना गया तो उसे राज्य गृह में पहुँचा दिया गया।

उसके शव को देख हिरण्यकशिपु, उसकी माता दिति तथा सारा परिवार बहुत शोकग्रस्त हो गया। राज्य गृह में हाहाकार मच गया और इस मृत्यु का कारण जानने का यत्न होने लगा।

दिति ने अपने पति को सूचना भेज दी कि उसके दो पुत्रों में से एक मृत्यु को प्राप्त हो गया है। प्रजापति कश्यप समाचार पाते ही आए और हिरण्याक्ष के पितामह से राज्य प्राप्ति की बातचीत करने जाने की बात सुन बोल उठे, "यह पितामह को भयभीत कर कुछ प्राप्त करने की लालसा से जाता हुआ परमात्मा के कोप का भाजन बन गया प्रतीत होता है।

"इसको विदित नहीं था कि पितामह इस प्रकार से प्रसन्न नहीं होते। वह सेवा और उपासना से प्रसन्न होते हैं। राज्य तो एक साधारण-सी बात है। वह तो उससे बहुत कुछ अधिक भी दे सकते हैं।"

"क्या दे सकते हैं ?" हिरण्यकशिपु ने पूछ लिया।

"जिससे चाहो अभयदान पा सकते हो। परन्तु वह प्रसन्न होते हैं शुद्ध भाव से सेवा करने से ही।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सुझाव पर हिरण्यकशिपु अति प्रसन्न हुआ। वह मन में अपने विषय में विचार करता हुआ अपने पिता का मुख देखता रह गया। उसे इस प्रकार मुख देखते हुए पा कश्यप ने कहा, "देखो बेटा! छल-कपट को छोड़ शुद्ध मन से परमात्मा में विश्वास रखते हुए तपस्या करोगे तो उनके अधीन अथवा उनके भक्त जितने भी हैं, सब तुम्हारे मित्र और भक्त हो जाएँगे। तब तुम्हें निष्कण्टक राज्य करने का अवसर मिल जाएगा।

"तुम्हारे भाई ने विचार किया था कि पितामह को अपने आश्रम में अकेले घेरकर उनसे अपने लिए ब्रह्मपुरी का राज्य प्राप्त कर लेगा। इस विचार की सूचना उनको मिल गई होगी। उन्होंने ईश्वर से अपनी रक्षा की याचना की और ईश्वर ने किंचित् मात्र उपाय से हिरण्याक्ष को पहले तो जाने से रोका होगा और जब वह नहीं रुका तो उस पर वज्रपात किया प्रतीत होता है।"

"परन्तु भगवन्! वह सूचना कैसे पा गए होंगे? यह तो केवल मैं ही जानता था कि हिरण्याक्ष का विचार क्या था? भला यहाँ से दो-तीन सौ योजन के अन्तर पर बैठे पितामह कैसे उनके मन की बात जान गए होंगे?"

"अवश्य तुमने बताई होगी?"

"नहीं पिताजी! मैं इतना नीच नहीं हूँ कि अपने भाई की ही हत्या का कारण बनूँ।"

कश्यप हँस पड़ा। कहने लगा, "मन का मन साक्षी होता है। देखो, मैंने भी तो तुम्हारे मन की बात जान ली है। तुम्हारा मन बिना तुमको बताए मुझे बता रहा था हिरण्याक्ष पितामह को भयभीत कर इस नगरी का राज्य लेने गया था। मुझे विश्वास नहीं आ रहा था कि तुम्हारा भाई इतना दुष्ट हो सकता है और अब तुमने अपने मुख से भी उस सूचना का समर्थन कर दिया है।

"पितामह मुझसे भी अधिक योगस्थ व्यक्ति हैं। जिस बात का मुझे सन्देह ही हुआ था, वह निश्चय से जान गए होंगे।"

हिरण्यकशिपु के मन में एक बात अंकुरित हो रही थी, परन्तु वह उसे अपने पिता को बताना नहीं चाहता था। अतः उसने बात बदल दी। उसने कहा, "पिता जी! आदिसृष्टि के एक जीव कर्दम मुनि हैं। उनका विवाह वैवस्वत मनु की कन्या देवहूति से हुआ है। उन्होंने घोर तपस्या के उपरान्त एक पुत्र को जन्म दिया था। उनका वह पुत्र उस दिन नानाजी के घर पर आया था और माँ को बहुत बातें बता गया है। वह अपना नाम कपिल बताता था।"

"सत्य! वह तो योगेश्वर कहलाता है। क्या कहता था देवी?" दिति सामने बैठी पिता-पुत्र के वार्त्तालाप को सुन रही थी।

दिति ने कहा, "कर्दम और प्रजापति रुचि की पत्नियाँ परस्पर बहनें थीं। दोनों ने अपने माता-पिता की अनुमति के बिना विवाह किया था और उनके घर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भागकर पिताजी के आश्रम में आकर रहने लगे थे। दोनों के कई सन्तानें हुईं। एक बार प्रजापति कर्दम अपनी पत्नी देवहूति के साथ पिताजी के आश्रम में यज्ञरूप और उसकी पत्नी दक्षिणा को मिलने आए। उनके पुत्र कपिल भी उनके साथ थे। कपिल मुझे बहन समान समझते थे। हम समवयस्क थे।

"पिछले वर्ष कपिल अपने भाई के पुत्र अनंग के राज्य में भ्रमण करते हुए इधर आए तो हिरण्याक्ष उसे घर पर ले आया। यहाँ आ मुझे वह पहचान गया। मेरे कहने पर वह हमारे घर पर कई दिन रहा था और उससे बहुत बातें हुई थीं। अब वह सांख्य विद्या के पारंगत विद्वान् हो गए प्रतीत होते थे। उसी की बात हिरण्यकशिपु कह रहा है।

"क्या कहता था वह ?"

हिरण्यकशिपु ने बताया, "वह कहता था कि यह चराचर जगत् प्रकृति की देन है। एक अनादि पदार्थ है जिसे प्रकृति कहते हैं और जगत् की असंख्य वस्तुएँ उससे ही बनी हैं। प्रकृति का ज्ञान प्राप्त हो जाए तो फिर कुछ भी जानने को नहीं रहता और मनुष्य को परमसुख की प्राप्ति हो सकती है।"

"हाँ, यह तो है ही।" कश्यप ने बता दिया।

"पिताजी ! मैंने परमात्मा के विषय में पूछा था। वह कहने लगे कि उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। प्रकृति के नियमों का पालन करते जाएँ तो परमात्मा प्रसन्न रहते हैं।

"मैंने मुनिजी से प्रकृति के विषय में बहुत बातें पूछी थीं और उन्होंने बहुत ही अद्भुत बातें बताई थीं। सूर्य, चन्द्र, तारागण और फिर ये वृक्ष वनस्पतियों की सृष्टि तथा पशु, पक्षी और मनुष्य में अन्तर की बातें बताई थीं।

"मैं कपिल मुनि के कथन से एक बात समझी हूँ कि प्रकृति के नियमों का पालन करने पर हमें किसी के भय की आवश्यकता नहीं। मैं समझी हूँ कि भैया ने प्रकृति के नियमों का पालन नहीं किया, इसी कारण वह जल प्लावन में डूब गए हैं।"

कश्यप को स्मरण हो आया, दिति में प्रकृति के आवेग ने ही इन बालकों को जन्म दिया था और उस आवेग में बहते हुए इसका बड़ा भाई यमलोक सिधार गया है और यह भी उसी प्रकृति के आवेग में इस योनि से उद्धार पाएगा।

इस कारण वह चुप रहा।

कश्यप मुनि के वार्तालाप का फल यह हुआ कि हिरण्यकशिपु पितामह से अभयदान प्राप्त करने की योजनाएँ बनाने लगा।

कश्यप तो दिति को सान्त्वना देकर चला गया और हिरण्यकशिपु पितामह से अभयदान प्राप्त करने का यत्न करने लगा।

उस समय तक अनंग का देहान्त हो गया था और उसका पुत्र अतिबल राजा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन गया था। अनंग के देहान्त पर जब अतिबल का राज्याभिषेक हुआ तो हिरण्यकशिपु भी उत्सव देखने अनंगपुर गया था।

अनंगपुर सरस्वती के तट पर समतल भूमि में बसा नगर था और उस नगर की शोभा देखकर हिरण्यकशिपु मोहित हो गया। उसके साथ ही उसकी पत्नी भी थी।

इस उत्सव में आकर्षण का केन्द्र ऋषि नारद थे। वह सामवेद का अति मधुर स्वर में गान करते थे। उन्होंने एक यन्त्र बनाया हुआ था जिसे वीणा कहते थे और उस यन्त्र पर ऐसी मधुर ध्वनि निकालते थे कि सुनने वाले मोहित होकर नाचने लगते थे।

नारद परमात्मा के भक्त थे और स्वयं भी जब परमात्मा की महिमा के गीत गाते तो मस्त हो नाचने लगते थे।

हिरण्यकशिपु तो अनंग के पुत्र अतिबल की मैत्री प्राप्त करने में लीन था और उसकी पत्नी जो उस समय गर्भवती थी, नारद मुनि के कीर्तनों और प्रवचनों को सुनने में लगी हुई थी। वह उसके संगीत, नृत्य और प्रेम-भक्ति के गीतों में रस पा रही थी।

तीन सप्ताह तक उत्सव चलता रहा। पितामह भी इस उत्सव पर उपस्थित थे। हिरण्यकशिपु अतिबल एवं पितामह को प्रसन्न करने में लगा रहा और उसकी पत्नी नारदजी के शिविर में रहती रही।

जब उत्सव समाप्त हुआ तो हिरण्यकशिपु ने अपनी पत्नी से कहा, "देवी! मैं ब्रह्मलोक में पितामह के साथ जा रहा हूँ। सुना है कि वहाँ जाने का मार्ग अति दुर्गम है। तुम जा नहीं सकोगी, इस कारण तुम माताजी के पास ब्रह्मपुरी को लौट जाओ। मैं वहाँ से वरदान पाने के उपरान्त ही आऊँगा।"

हिरण्यकशिपु की पत्नी नारद जी के मनमोहक गीतों पर इतनी आसक्त हुई थी कि वह अपने प्रसव काल में नारदजी के आश्रम में ही रहना चाहती थी। अतः उसने कह दिया, "मैं अपने इस प्रसव काल में नारद मुनिजी के आश्रम में रहना चाहती हूँ।"

"वहाँ क्या है?"

"नारदजी का मधुर संगीत, उनका वीणा-वादन तथा उनका सामवेद गान।"

"नारदजी का आश्रम कहाँ है?"

"इसी सरस्वती के तट पर, परन्तु पर्वतों में है।"

"तो ठीक है। अपने दास-दासियों को साथ ले जाओ।"

इस प्रकार एक महान् नास्तिक की पत्नी उधर चल पड़ी जहाँ भावी संघर्ष का बीजारोपण हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

कश्यप अपनी पत्नियों सहित ब्रह्मसर से निकलने वाली तीसरी महान् ब्रह्म नदी के तट पर एक विशाल नगरी अमरावती निर्माण करके रहता था। वहाँ इन्द्र ने राज्य स्थापित कर लिया था और दैव लोक के जनपद को संगठित कर लिया था।

देवलोक नाम का जनपद अनंग के पुत्र अतिबल के जनपद से अधिक सुन्दर, सुखप्रद और सात्त्विक वातावरण से परिपूर्ण था। यहाँ सब लोग सुखपूर्वक इस सृष्टि के उत्पादक परमात्मा का चिन्तन करते हुए पितामह के त्रिवर्ग शास्त्र का पालन करते थे। स्थान फल, कन्द-मूल एवं अन्न से भरपूर था।

इन्द्र अपने आदित्य भाइयों सहित एक सहस्र झरोखों वाले प्रासाद में रहता हुआ, अपनी प्रजा का हित-चिन्तन किया करता था। इस चिन्तन में कश्यप मुनि अपने पुत्रों की सहायता करते थे।

अनंग की मृत्यु के उपरान्त अतिबल के राज्याभिषेकोत्सव पर उपस्थित होने का निमन्त्रण इन्द्रादि आदित्यों को भी मिला था। इस पर भी वे उत्सव पर नहीं गए। उन्होंने अपने पिता के द्वारा अतिबल के प्रति सद्भावना और सहचारिता का सन्देश भेज दिया था। पितामह के पूछने पर कि इन्द्र इत्यादि नहीं आए, कश्यप ने कहा, "उन्होंने अपनी शुभ कामना का सन्देश भेजा है।"

"उनको स्वयं आना चाहिए था।"

"मैं भी ऐसा ही समझता था, परन्तु इन्द्र का कहना है कि शीघ्र ही अतिबल को राज्यच्युत होना पड़ेगा। इस कारण उन्होंने अपने चित्त की अतिबल से उपरति प्रकट की है।"

पितामह के मुख से निकल गया, "बात ठीक है, परन्तु कर्म के पहले ही उसके फल की कल्पना तो ठीक नहीं।"

कश्यप ने अति विनीत भाव में कहा, "भगवन्! बुद्धिमान लक्षण देखकर वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करते हैं और उसका प्रतिकार भी विचार कर लेते हैं।"

"अभिप्राय यह कि कश्यप मुनि इन्द्र को मुझसे अधिक बुद्धिमान मानते हैं। देखो मुनिवर! मेरा सिद्धान्त यह है कि कर्म करने की स्वतन्त्रता सबको देता हूँ। शुभ शिक्षा भी सबको देता हूँ, परन्तु किसी को कर्म करने से पूर्व फल का भागी नहीं मानता।

"मेरा अनंग का निर्वाचन ठीक था और उसने पच्चीस वर्ष से अधिक काल तक धर्मयुक्त राज्य चलाया है। अनंग के पुत्र अतिबल को भी मैं ऐसा ही मानता हूँ। वह कुछ उच्छृंखल अवश्य है, परन्तु क्षत्रिय स्वभाव वाले सब लोग ऐसे ही होते हैं। मेरा विचार है कि जब उसके कन्धों पर उत्तरदायित्व पड़ेगा तब वह अपना व्यवहार शास्त्रानुसार कर लेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्द्र और उसके भाई उसके विपरीत मानते हैं। वे विष बीज को ही जला कर भस्म कर देने में विश्वास रखते हैं। न विष बीज होगा, न विष वृक्ष बनेगा और फिर विष फल भी नहीं उत्पन्न होंगे।"

"इससे आत्मा की स्वतन्त्रता का हनन होता है।"

"भगवन् ! स्वतन्त्रता सबको प्राप्त है, परन्तु किसी अनधिकारी को अधिकार तो नहीं दिए जा सकते। स्वतन्त्रता मानवीय कार्यों में है, परन्तु राज्य-कार्य एक विशाल शक्ति है। शक्ति देने वाले को पात्र-कुपात्र का विचार करना ही पड़ता है।"

"पर हम क्या कर सकते हैं ? परमात्मा की कृपा से वह अनंग का ज्येष्ठ पुत्र है और नियम से उसे पिता की परम्परा का पालन करना चाहिए। उसे अवसर तो मिलना ही चाहिए।"

कश्यप पितामह से सहमत नहीं था, फिर भी वह चुप रहा। परन्तु पितामह के एक अनिच्छित व्यवहार की सम्भावना का संकेत मिला तो उसने अपने विचार से इसका उपाय कर दिया। उसने अतिबल को यह सम्मति दी कि वह अपने राज्य-कार्य में ऋषियों से सहायता ले। पितामह ने अतिबल के साथ राज्य परिषद् के नाम की एक समिति बना दी जिसमें सात ऋषि नियुक्त कर दिए। कश्यप उनमें से एक था। कश्यप का देवलोक के अनुभव का लाभ उठाया गया।

राज्याभिषेक के उपरान्त कश्यप अमरावती लौट गया। इस पर भी वह अतिबल को वचन दे आया कि वह अपनी पत्नियों सहित आकर उसके राज्य में रहेगा।

अमरावती में पहुँच जब उसने राज्य परिषद् में कार्य करने के लिए अनंगपुरी में आना चाहा तो अदिति ने पति के साथ जाने से इनकार कर दिया। उसका कहना था कि वह अपनी सृष्टि का सुख भोगने के लिए अमरावती में ही रहेगी।

अतः कश्यप मनु इत्यादि तीन अन्य पत्नियों को लेकर अनंगपुर में आकर रहने लगा। उसने राज्य में पहुँचते ही उसकी वृद्धि के उपाय करने आरम्भ कर दिए। राज्य-कार्य सब ऋषियों ने अपने में बाँट लिया और राजा अतिबल को एक विशाल सेना का निर्माण करने तथा उससे जनपद की रक्षा के लिए लगा दिया।

अतिबल का राज्य दस वर्ष तक चला। उसने एक सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था। राज्य-कार्य में तो ऋषियों की सम्मति चलती थी और अधिक निजी कार्यों में वह स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करता था।

यद्यपि अतिबल अति सुखी जीव था, फिर भी वह राज्य-कार्य में ऋषियों को स्वतन्त्रता से कार्य करने की स्वीकृति देने से उनके सुप्रबन्ध का यश प्राप्त करता था। परन्तु अति व्यसनी और विषय-वासना में सीमा से अधिक रत रहने के कारण वह रुग्ण रहने लगा और अल्पायु में ही रुग्ण हो, मृत्यु का ग्रास बन गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा रुग्ण था और ऋषिगण यह समझ रहे थे कि वह किसी भी समय देह छोड़ देगा, अतः परिषद् भवन में बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे कि मृत्यु का समाचार आते ही वे नवीन राजा के विषय में घोषणा करें। वे अतिबल के कनिष्ठ पुत्र तथा वेन के छोटे भाई सुवेन को उपयुक्त राज्याधिकारी मानते थे।

जब राज्य परिषद् में यह विचार हो ही रहा था कि किस प्रकार वेन को सुवेन के लिए राज्य छोड़ कहीं अन्यत्र जाने पर उद्यत करें तब वेन सेना के शिविर में अपने राजा बनने की घोषणा कर रहा था। उसने यह प्रबन्ध कर रखा था कि अतिबल की मृत्यु का समाचार उसके द्वारा ही परिषद् को जाए।

ज्यों ही उसे विदित हुआ कि उसके पिता का देहान्त हो गया है तो उसने राज्य परिषद् भवन, राज्य भवन और अपनी माताओं तथा भाइयों के भवनों पर सेना बैठा दी और राज्य भार अपने हाथ में ले लिया।

वेन ने अपने राज्याभिषेक के दिन का भी निश्चय करके उसकी घोषणा कर दी। इतना करने के उपरान्त वह अपने निष्ठावान सुभट्टों को लेकर राज्य परिषद् में पहुँच गया। ज्यों ही ऋषिगण को विदित हुआ कि राजा का देहान्त हो गया है तब ही उनको विदित हो गया कि सेना ने उनके भवन को घेर लिया है।

इस पर कश्यप वयोवृद्ध होने के कारण भवन के द्वार पर आकर खड़ा हो, सेनापति को समीप बुलाकर पूछने लगा, "तुम लोग यहाँ खड़े क्या कर रहे हो?"

"हमें आज्ञा है कि राज्य परिषद् से कोई भी सदस्य कहीं न जाए। राजकुमार स्वयं यहाँ आने वाले हैं।"

"परन्तु वह न तो सेनाध्यक्ष है और न ही राजा। उसकी आज्ञा का पालन तुम्हारे करने योग्य नहीं है।"

"हम महाराज वेन को राजा मानते हैं। वह राजा होने के नाते हमारा नेता, शासक और सर्वेसर्वा है।"

"परन्तु उसका राज्याभिषेक नहीं हुआ। वह अभी राजा नहीं है।"

"उसका राज्याभिषेक हो चुका है। सेनापतियों ने मिलकर उसका राज्याभिषेक किया है।"

"बिना वेद मन्त्र पढ़े?"

"वे पढ़ लिए गए थे।"

"तो वह हमसे क्या चाहता है?"

"महाराज अभी परिषद् में पधार रहे हैं और स्वयं आपको बताएँगे कि वे क्या चाहते हैं।"

कश्यप सैनिकों से विवाद करने की क्षमता नहीं रखता था; अतः वह भीतर आकर सब ऋषियों को एकत्रित कर वस्तुस्थिति का वर्णन करने लगा। उसने बताया, "आप सब लोग बन्दी बना लिए गए हैं। क्यों तथा कब तक के लिए, वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा वेन आपको अभी आकर बताएँगे ।"

ऋषिगण सब समझ गए। किसी को भी कुछ और अधिक कहने-सुनने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई । कश्यप ने ही बात आगे चलाई । उसने कहा, "राज्य की शक्ति सेना है। वह इस समय किसी न किसी प्रकार वेन ने अपने पक्ष में कर ली है । दूसरी शक्ति जनबल है, परन्तु जनबल एक जड़वत् पदार्थ है। उसको सक्रिय करने के लिए किसी शक्तिशाली चेतना की आवश्यकता है । साथ ही उस जनबल को सक्रिय करने के लिए उसके समीप पहुँचने की आवश्यकता है । पिछले दस वर्ष से हमने राज्य-कार्य में लीन होने के कारण अपने को इस जड़वत् शक्ति से दूर रखा है । अतः हम नहीं जानते कि यह शस्त्र भी हमारी सहायता करेगा अथवा नहीं ?

"अतः मेरी सम्मति यह है कि जब वेन यहाँ आए तो उसको मनमानी करने की स्वीकृति दे, हम यहाँ से चल दें ।"

महर्षि प्रमुचि सब ऋषिगणों में युवा थे। अतः उनको चुपचाप चल देने की बात पसन्द नहीं आई। उन्होंने कहा, "हमें वेन को कह देना चाहिए कि उसका अभिषेक नहीं हुआ है। वह अभी राजा नहीं है और राज्याभिषेक बिना ब्राह्मण वर्ग तथा प्रजा वर्ग की अनुमति के सम्पन्न नहीं हो सकता ।"

कश्यप ने कहा, "तब वह हमें अपनी सैनिक शक्ति से कारागार में डाल देगा और हमारे विषय में प्रजा में मनमानी मिथ्या बातें फैलाकर हमें निन्दित घोषित कर देगा। परिणाम यह होगा कि राज्य में दूसरी शक्ति भी हमारे सम्पर्क और प्रभाव में नहीं रहेगी । हम शक्तिहीन कुछ कर नहीं सकेंगे ।"

प्रमुचि चुप रहे। कश्यप ने अपनी योजना बता दी। उसने कहा, "हमें इस समय, बिना वेन के कृत्य को स्वीकार अथवा अस्वीकार किए अपने को राज्य से पृथक् कर लेना चाहिए । यहाँ से अवसर पाते ही पितामह के पास पहुँचना चाहिए और उनकी सम्मति तथा आशीर्वाद से इस दिशा में कुछ करना चाहिए ।"

यह निश्चय हो गया कि पूर्ण परिषद् के वक्ता कश्यप मुनि ही हों और अन्य सब मौन रहें। उन्हें कुछ अधिक काल तक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ी। वेन स्वयं उनको निस्तेज करने के लिए उनसे बात करना चाहता था। अतः वह आया तो परिषद् की सभा आरम्भ हो गई। सभा में बैठते ही वेन ने यह घोषणा कर दी, "मैं अभी-अभी सैनिक शिविर से आया हूँ और उन्होंने सर्वसम्मति से मुझे यहाँ का राजा स्वीकार कर लिया है।

"अतः राजा के अधिकार से मैं अपनी परामर्श दाता समिति का निर्माण करना चाहता हूँ । बताइए, आपमें से कौन-कौन उस समिति में सम्मिलित होना चाहेंगे ?"

कश्यप मुनि ने कहा, "यह हम तब बताएँगे जब आप हमें व्यक्तिगत रूप में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा समष्टिगत रूप में उस समिति में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देंगे। पहले आप बताइए कि क्या आप हम सबको अथवा हममें से किसी को उसका सदस्य बनने का निमन्त्रण देते हैं ?"

"मैं समझता हूँ कि सात की परामर्शदाता समिति बहुत बड़ी है। पाँच से अधिक सदस्य नहीं होने चाहिए। साथ ही इस समिति में एक सैनिक और एक वित्ताधिकारी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, व्यापार भी उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। अतः एक सदस्य व्यापार के विषय का ज्ञाता भी होना चाहिए। शेष दो सदस्य आप में से लेना चाहता हूँ। वह भी इस कारण कि आपका राज्य सम्बन्धी विषयों में अनुभव है।"

कश्यप ने कहा, "राजा वेन ! यह हमारी परामर्शदाता समिति नहीं थी। यह तो राज्य परिषद् थी। इसके अधीन सेना, व्यापार इत्यादि विषयों के सचिव थे। तुम सचिवों को राज्य परिषद् में सम्मिलित करना चाहते हो। यह विधान नहीं है। फिर भी हम इस विषय में त्रिवर्ग शास्त्र के अनुसार कार्य करना चाहते हैं। यदि इच्छा हो तो इसी रूप में इस परिषद् को रखा जाए। अन्यथा इस परिषद् को भंग कर दिया जाए और उसके स्थान पर राजा की परामर्शदाता समिति का निर्माण किया जाए।"

"मैं नामों को महत्त्व नहीं देता। नाम कुछ हो सकता है। हाँ, इस सभा का कार्य राजा को राज्य के विषय में परामर्श देना है और रहेगा।"

"परन्तु महाराज ! हम नाम और गुण में सम्बन्ध बनाए रखना चाहते हैं। इस कारण हमारी सम्मति होगी कि यदि यह राज्य परिषद् होगी तो इसके अधिकार और इसका निर्माण त्रिवर्ग शास्त्रानुसार होगा और इसके कार्य भी उस शास्त्र के अनुसार होंगे। और यदि किसी अन्य गुण और रूप वाली समिति बनानी है तो उसका नाम भी दूसरा होगा। हमारा यही मत है।"

"हमारा से क्या अभिप्राय है ?"

"इस परिषद् का सामूहिक मत यही है।"

"परन्तु क्या आपने पहले ही इस विषय पर विचार कर लिया था ?"

"हाँ। इस विषय में हम सब एकमत हैं।"

"तो ठीक है। आज से राज्य परिषद् भंग की जाती है और उसके स्थान पर राजकीय परामर्शदाता समिति का निर्माण किया जाता है।"

"कौन कर रहा है ?"

"यहाँ का राजा।"

"शास्त्रानुसार राजा परिषद् को भंग नहीं कर सकता। परिषद् राजा को राज्यच्युत कर सकती है। हाँ, परिषद् अपने को स्वतः भंग कर सकती है।"

"वह कब करती है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब वह अपने को शासन चलाने के अयोग्य पाती है तो अपने को भंग कर देती है और उसके स्थान पर नवीन परिषद् का निर्माण प्रजा का विद्वान् वर्ग करता है।"

"ठीक है। आप इस सभा को भंग कर दीजिए। अभी मैं एक परामर्शदाता समिति का निर्माण करता हूँ। बाद में उचित समय पर विद्वानों की सभा बुलाकर नवीन परिषद् का निर्वाचन करा लिया जाएगा।"

महर्षि प्रमुचि ने कहा, "राजा वेन ! हम इसे भंग करने का निर्णय आपसे पृथक् में बैठकर करना चाहते हैं।"

"यह नहीं हो सकता। राजा को अधिकार है कि वह परिषद् की सभाओं में बैठकर सम्मति दे और सम्मति स्वीकार करे।"

कश्यप ने विवाद को शान्त करने के लिए कह दिया, "महाराज ठीक कहते हैं। आप बैठिए। मैं राज्य परिषद् की इस सभा में यह प्रस्ताव करता हूँ कि यह परिषद् भंग कर दी जाए जिससे कि शास्त्रानुसार नई परिषद् का गठन हो सके।"

यह प्रस्ताव सबने स्वीकार कर लिया। इस पर राजा वेन ने कहा, "मैं अपनी परामर्शदाता समिति में आपमें से दो सदस्य लेना चाहता हूँ और इन दो स्थानों के लिए मैं महर्षि प्रमुचि और महर्षि नमुचि को निमन्त्रण देता हूँ।"

अब सब इन दोनों नामांकित ऋषियों के मुख पर देखने लगे। महर्षि नमुचि ने उत्तर दिया, "मैं इस पद को स्वीकार करने से पूर्व पितामह से परामर्श करना चाहता हूँ।"

"कैसे उनसे पूछेंगे ? इसमें कई मास लग सकते हैं।"

"नहीं। मेरे पास दिव्य दृष्टि है और मैं रात्रि में उस दृष्टि से पितामह से सम्मति करके कल प्रातःकाल बता दूँगा।"

"और आप, प्रमुचि जी ?"

"मैं भी आपको कल प्रातःकाल बता दूंगा।"

"ठीक है। ये दोनों महर्षि यहाँ रहेंगे और शेष यहाँ से एक घड़ी के भीतर चल दें। आप विरक्त जीव हैं। आपको इस प्रासाद में से कुछ भी अपने साथ नहीं ले जाना चाहिए।"

परिषद् की सभा समाप्त हुई और ऋषिगण उस भवन से जाने के लिए तत्पर हो गए। ऋषिगण अपने परिवारों के साथ वहाँ रहते थे। वे सब बिना एक तिनका भी अपने साथ लिए अपने परिवारों के साथ परिषद् भवन से निकल गए। महर्षि प्रमुचि और नमुचि भी उनके साथ ही चल दिए। किसी ने उनको जाने से रोका नहीं।

: ४ :

जब वेन को यह पता चला कि सबके सब ऋषिगण अपने परिवार सहित परिषद् भवन को छोड़ ब्रह्मलोक की ओर चल दिए हैं तो उसने विस्मय में पूछ लिया,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सबके सब चले गए हैं अथवा कोई नहीं भी गया ?"

सूचना देने वाला परिषद् भवन का मुख्य प्रबन्धक था। उसने बताया, "महाराज ! सातों के सातों सदस्य और उनके साथ उनके परिवार के पचपन सदस्य एवं सेवक भी गए हैं।"

"और वे नगर में किसी के घर पर नहीं ठहरे ?"

"नहीं महाराज ! वे सीधे सरस्वती के तट के साथ-साथ बने पथ पर जाते देखे गए हैं।"

"नगर के लोगों ने उनको रोका नहीं ?"

"सब अपने-अपने घरों से निकल राजपथ पर आ खड़े हुए थे और चुपचाप उनको जाते देखते रहे हैं। नगर के द्वार तक सैनिक उनके साथ गए थे। जब वे नगर द्वार से निकलकर नदी तट वाले पथ पर चले तो सैनिक वापस आ गए हैं।"

"ठीक ही हुआ है। प्रमुचि और नमुचि भी तो पितामह के भक्त हैं। वे भी उनसे ही सम्मति करने की बात कहते थे।"

अगले दिन से राज्य-कार्य चलने लगा। सबसे प्रथम राज्याभिषेक उत्सव मनाया गया। यह उत्सव एक पखवाड़ा तक चलने की घोषणा की गई और प्रत्येक दिन का कार्यक्रम बनाया गया। इसमें नाच-रंग, खाना-पीना और भोग-विलास सब प्रकार के इन्द्रिय सुख सम्मिलित किए गए।

पूर्ण पखवाड़े में लोग गाने-बजाने, नाच-रंग और खाने तथा भोग-विलास में इतने लीन हुए कि किसी को भक्ष्याभक्ष्य, गम्यागम्य, कर्तव्याकर्तव्य, वाच्यावाच्य तथा दोषादोष का भी ज्ञान नहीं रहा।

इस उत्सव में आने का निमन्त्रण किसी अन्य राजा को नहीं भेजा गया। फिर भी ब्रह्मपुरी में रहनेवाले, कश्यप-पुत्र हिरण्यकशिपु स्वयं ही आ गए थे।

हिरण्यकशिपु के आने पर वेन को विस्मय तो हुआ, परन्तु प्रसन्नता नहीं। विस्मय का कारण यह था कि उसने किसी भी राजा को निमन्त्रण नहीं भेजा था और यह विख्यात हो रहा था कि हिरण्यकशिपु पितामह की सेवा में कई वर्ष व्यतीत कर चुका है। वहाँ वह ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त करता रहा था और हिरण्यकशिपु के कथनानुसार वह उनके आशीर्वाद से ही ब्रह्मपुरी का शासक बन गया है।

ब्रह्मपुरी किसी काल में वेन के बाबा अनंग के अधीन थी, परन्तु उसके पिता के काल में जलवायु तथा अधिक अन्न उत्पन्न करने में एक अच्छा क्षेत्र न समझ उसे छोड़ दिया था। अतः जब वेन के पिता को यह समाचार मिला था कि ब्रह्मपुरी कश्यप के पुत्र हिरण्यकशिपु को दे दी गई है तो उस स्थान को एक व्यर्थ का स्थान समझ और हिरण्यकशिपु के पिता को राज्य परिषद का एक प्रतिष्ठित सदस्य मान ब्रह्मपुरी में किसी अन्य राज्य की चिन्ता नहीं की गई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब वेन द्वारा हिरण्यकशिपु के पिता को अपमानित कर अनंग पुर से निकाल देने पर हिरण्यकशिपु का वेन के राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होने आना विस्मय का विषय था।

नगर के बाहर हिरण्यकशिपु को रोका गया और उससे पूछा गया कि उसके वहाँ आने का क्या प्रयोजन है? हिरण्यकशिपु का उत्तर था कि वह उत्सव में सम्मिलित होने आया है।

वेन ने अपने सभा भवन में उसका अति आदर और सम्मान से स्वागत कर, उसे बैठाया और पूछा, "भगवन्! किस प्रयोजन से आपका यहाँ आना हुआ है?"

"मैं आपके पूज्य पिता के स्वर्गवास होने की बात सुन, यहाँ शोक प्रकट करने के लिए आ रहा था कि आपकी राज्य परिषद् के सदस्य ब्रह्म लोक को जाते हुए मिले। उनमें मेरे पिता भी थे।

"उनसे विदित हुआ कि आपको अपने पिता के देहान्त का शोक नहीं, वरन् प्रसन्नता है। इस समाचार से मेरी सब सुषुप्त प्रवृत्तियाँ जाग पड़ीं और मैं आपकी प्रसन्नता में सम्मिलित होने चला आया हूँ। शोक से हर्षोल्लास मुझे अधिक रुचि-कर है।"

"भला आपकी कौन-कौन-सी सुषुप्त प्रवृत्तियाँ मेरी बात से जाग्रत् हो उठी हैं?"

"मुझमें भी सुखभोग की प्रवृत्ति है। मैं भी मानता हूँ कि भोग के लिए जीवन का एक अल्पकाल नियत है और उस अल्पकाल में संसार के अनेकानेक भोगों का रसास्वादन नहीं हो सकता। इस कारण किसी के मरने का शोक मनाने में समय व्यर्थ गँवाना ठीक नहीं।

"अतः जब मुझे यह विदित हुआ कि आपने अपने पिता के देहान्त पर शोक मनाने के स्थान पर उत्सव रचा दिया है तो मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही।"

"परन्तु भगवन्! मैंने तो यह सुना था कि आप पितामह के लोक में तपस्या करने और ज्ञान प्राप्ति के लिए गए थे?"

"हाँ। तपस्या मैंने की है। परन्तु मुख्य बात उस तपस्या का उद्देश्य था, न कि तपस्या।"

"क्या उद्देश्य था आपकी उस घोर तपस्या का?"

"मैं अपने अजेय होने का वर प्राप्त करना चाहता था।"

"तो क्या वर प्राप्त हुआ है?"

"पितामह ने यह वर दिया है कि कोई भी उसकी सृष्टि का व्यक्ति मुझसे शत्रुता अथवा द्वेष-भाव नहीं रखेगा। यदि रखेगा तो मैं अजेय रहूँगा।"

वेन ने कहा, "भगवन्! आप इस भूमण्डल में एक महान् शक्ति बन गए हैं।"

"हाँ। फिर भी मैंने पितामह के वेद मत को स्वीकार नहीं किया। मैं मानता हूँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वेद मत में धर्म के नाम पर जीवन में अनेकानेक प्रतिबन्ध उपस्थित हैं। वे सब दुर्बलों की रक्षा के लिए आविष्कार किए गए हैं। जबकि दुर्बलों के लिए प्रकृति ने कोई स्थान नियत नहीं किया। संसार के सब भोग बलशालियों के लिए हैं।"

"कितनी समानता है आपके और मेरे विचारों में।" वेन का कथन था।

"इसी कारण अपने पिता के यहाँ से निकाले जाने पर भी इस राज्याभिषेक की बधाई देने मैं यहाँ चला आया हूँ।"

वेन हिरण्यकशिपु की बातों से अति प्रभावित हुआ था। वह मन में विचार करता था कि यह नर व्यक्ति है। ऐसों के साथ मित्रता रखने से उसका और उसके राज्य का कल्याण होगा।

अतः अभिषेकोत्सव में हिरण्यकशिपु को भी सम्मिलित होने का निमंत्रण दे दिया गया। दोनों राजाओं की परस्पर मैत्री हो गई। दोनों ने अपने राज्य में पितामह की त्रिवर्ग स्मृति से विलक्षण स्मृतियाँ स्वीकार कर लीं। धर्म बलशालियों की आज्ञा का नाम हो गया। जो बलवानों की आज्ञापालन करता था, वह धर्म का पालन करनेवाला माना जाता था। जो बलशालियों की आज्ञा का उल्लंघन करता था, वह अधर्मी समझा जाता था। दोनों राज्यों में राजा और सेना बलवान थी, अतः वहाँ सेना की आज्ञा धर्म था।[1]

वेन की अनंग पुरी और इस जनपद में निर्धन एवं दुर्बलों की भूमि, सम्पत्ति और स्त्री वर्ग सुरक्षित नहीं रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य-भर में डाकुओं और चोरों के गुट बन गए जो प्रत्येक वस्तु जिसे वे पा जाते थे, आत्मसात कर लेते थे।

राजा और इन गुटों में भी परस्पर संघर्ष होने लगा था। जीवन के लिए आवश्यक उपलब्धियों को निर्माण करने वालों की संख्या कम होने लगी। वे लोग अपने काम-धन्धे छोड़-छोड़कर भागने लगे।

राज्य को धन मिलना कम हो गया और तब राज्य ने ब्राह्मणों, विद्वानों ऋषियों और कृषकों पर कर लगाना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक यज्ञ, हवन में डाली जाने वाली हवि में से राजकीय भाग लिया जाने लगा। दुर्बल और निर्धन तो इसलिए राज्य छोड़ने लगे कि उनका धन-सम्पद एवं स्त्री वर्ग बलशालियों से सुरक्षित नहीं था और ब्राह्मण, विद्वान्, होत्री, ऋत्विक और यजमान इसलिए

---

१. बलवांश्च यथा धर्मं लोके पश्यति पुरुषः।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः॥
(महा० भा० सभा०—६९-१५)

संसार में बलवान् मनुष्य जिसको धर्म समझता है, धर्म वेला में उसी को धर्म समझा जाता है। निर्बल को बलवान् की बात माननी पड़ती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य छोड़ने लगे कि उनको धर्म-कर्म पर भी कर देने के लिए बाध्य किया जाने लगा था।

राज्य को अथवा लुटेरे गुटों के लिए जब कर अथवा लूट-मार के लिए भी मिलना कठिन होने लगा तो वे आपस में एक-दूसरे को लूटने लगे।

इससे हिरण्यकशिपु को अपने राज्य में भी एक समस्या उपस्थित हो गई। लुटेरा वर्ग जब अनंगपुर जनपद में अपनी लूट के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं पा सके तो वे धन-धान्य से पूर्ण ब्रह्मपुरी जनपद में लूट मचाने के लिए आने लगे।

हिरण्यकशिपु ने अपने राज्य में महामन्त्री के पद पर महर्षि भृगु के पौत्र एवं कवि के पुत्र शुक्राचार्य को नियुक्त किया हुआ था। शुक्राचार्य नास्तिक विद्वान् था। इसी कारण हिरण्यकशिपु ने उसे भारी प्रलोभन दे अपने राज्य में बुलाया था और उसे अपना मन्त्री एवं अपने पुत्रों का गुरु नियुक्त कर दिया था।

जब अनंगपुर के लोग ब्रह्मपुरी में लूटमार करने लगे तो हिरण्यकशिपु ने आचार्य जी को बुलाकर पूछा, "भगवन्! इन लोगों से किस प्रकार का व्यवहार किया जाए?"

शुक्राचार्य ने समस्या का सुझाव दिया, "वास्तव में इस राज्य की आधार-शिला में बल-प्रयोग की प्रथा है। परन्तु जो दो राज्य इसी नीति के माननेवाले पड़ोस-पड़ोस में आ जाएँ तो उन दोनों का परस्पर भिड़ना ठीक नहीं। इससे दोनों की हानि होती है। लाभ किसी को नहीं हो सकता।

"अत: इन लुटेरों के इस राज्य में घुस आने पर इन लुटेरों का दमन करना चाहिए। परन्तु हमें यह नहीं मानना चाहिए कि इन लुटेरों का अनंगपुर राज्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध है और न ही अपने मन में यह बात आनी चाहिए कि इनके दमन से हम पड़ोसी राज्य को हानि पहुँचाने की नीयत से ऐसा कर रहे हैं।"

अनंगपुर राज्य में वहाँ की राजनीति का भी घोर विनाशकारी परिणाम उत्पन्न होने लगा। उस राज्य के लड़ाकू और योद्धा ब्रह्मपुरी राज्य में आने से भय खाने लगे। वेन को परिश्रम करनेवाली प्रजा पर और अधिक कर बढ़ाने पड़े। जो कुछ पड़ोसी राज्य से लूट-खसूटकर आ रहा था, वह बन्द हो गया। इससे अनंगपुर राज्य के भले लोग भाग-भागकर ब्रह्मलोक में पहुँचने लगे।

इस अवस्था को देख पितामह ने ऋषियों की एक सभा बुलाई और उसमें निश्चय हुआ कि अनंगपुर में विप्लव खड़ा कर वेन को गद्दी से हटाया जाए। इसके लिए कश्यप मुनिव नमुचि नियुक्त हुए।

ये ऋषिगण जब अनंगपुर में पहुँचे तो वहाँ की भयभीत प्रजा इनसे मिलने के लिए आने लगी। पूर्व इसके कि इनके वहाँ पहुँचने का समाचार वेन को मिले, इन्होंने सेना के नायकों से मिलकर विचार-विनिमय आरम्भ कर दिया और सैनिकों में भले लोग इन ऋषियों की रक्षा के लिए एकत्रित हो गए। परिणाम यह हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जब वेन के सुभट्ट इनको राज्य प्रासाद में ले चलने के लिए आए तो वे यहाँ सैनिकों का जमघट देख विस्मय करने लगे।

एक सेनानायक ने एक सुभट्ट से पूछा, "यहाँ कैसे आए हो?"

"कश्यप मुनि को महाराज के पास ले चलने के लिए।"

सुभट्ट को कश्यप मुनि के सम्मुख उपस्थित किया गया तो कश्यप ने उसके आने का कारण जान कह दिया, "वेन से जाकर कह दो कि वह अब इस जनपद का राजा नहीं है। इस कारण उसकी आज्ञा के पालन की मैं आवश्यकता नहीं समझता। यदि उसे हमसे कुछ काम है तो वह स्वयं आ सकता है।"

सुभट्ट ने पूछा लिया, "यदि वेन राजा नहीं तो क्या आप राजा हैं?"

"मैं ब्रह्म दण्ड हूँ। अभी कुछ समय में यहाँ न्यायपालक आएँगे और तब वे वेन के अपराधों की जाँच-पड़ताल कर दण्ड निर्धारित करेंगे। वह दण्ड मैं दूँगा।"

सुभट्ट लौट गए और जब उन्होंने ऋषि आश्रम की अवस्था वर्णन की तो वेन ने कह दिया, "यह सोलह पत्नियों का पति और सैकड़ों पुत्र-पौत्रों का जन्मदाता मुझ बलिष्ट राज्याधिकारी का अपमान करके बच नहीं सकता।"

इतना कह वेन उसी समय शस्त्रास्त्र से सुसज्जित बीस सुभट्ट लेकर ऋषियों के निवास स्थान पर जा पहुँचा। उस स्थान पर अब तक सहस्रों नागरिक और सैकड़ों सैनिक एकत्रित हो चुके थे।

वेन ने वहाँ से कुछ सुभट्ट सैनिक-शिविर में सैनिक सहायता लाने के लिए भेज दिए और स्वयं भीड़ को सम्बोधन कर कहने लगा, "आप लोग अपने-अपने घरों को चले जाएँ। सेना आने ही वाली है। उसके आते ही यहाँ एकत्रित विद्रोहियों का संहार आरम्भ हो जाएगा।"

इस समय कश्यप आश्रम से निकल आया और वेन के सम्मुख उपस्थित हो उससे बोला, "न्यायाधीश तुम्हें भीतर बुला रहे हैं। चलो।"

"मैं उसे न्यायाधीश नहीं मानता।"

कश्यप ने वहाँ खड़े लोगों से कहा, "इसे पकड़ लो और भीतर ले चलो।"

इस बात के कहते ही सहस्रों हाथ वेन को पकड़ने के लिए उसकी ओर लपके। वेन ने अपना खड्ग निकाल लिया और अपनी रक्षा के लिए चलाने को उठाया; इसी समय कश्यप ने हाथ के संकेत से उसे कहा, "यह खड्ग निष्काम है।" उसके यह कहते ही खड्ग उसके हाथ से नीचे गिर पड़ा। खड्ग के गिरते ही लोग उत्साहित हो उसको पकड़ने के लिए आगे बढ़े। वेन ने वहाँ से भागना चाहा, परन्तु वहाँ एकत्रित विशाल जन-समूह ने उसे घेर लिया। इसके उपरान्त लोग उसको मुक्कों और लातों से पीटने लगे। जब कश्यप ने वेन को भूमि पर गिरते देखा तो उसने लोगों को शान्त करने का यत्न किया और वेन को जीवित पकड़ने का आग्रह किया,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वेन गिरा और उसके चिथड़े उड़ गए। जब लोगों को हटाया गया तो उसका शरीर टूक-टूक हो चुका था।[1]

: ५ :

प्रजा ने जब वेन के शरीर पर अपना क्रोध निकाल लिया तो अपने ही कृत्य के औचित्य पर अनिश्चित मन एक दूसरे का मुख देखती रह गई।

कश्यप आगे बढ़ा तो उसके लिए मार्ग छोड़ लोग एक ओर हट गए, परन्तु वेन का तो कहीं पता ही नहीं था। कहीं एक हाथ और कहीं एक टाँग तथा कुछ दूर पर कुचला हुआ सिर और समीप में एक बाँह का अग्रभाग लुढ़का पड़ा था।

कश्यप ने लोगों को कहा, "इसके सब अंग एकत्रित करो और उसको अग्नि-देव की भेंट करना चाहिए।"

तदनन्तर प्रजा तथा सैनिकों को सम्बोधन कर उसने कहा, "अनंगपुर निवासियो! अनंगपुर के भूतपूर्व अधिपति वेन के विरुद्ध पितामह के समक्ष आरोप लगाए गए थे। उन आरोपों पर उसे मृत्युदण्ड मिलना चाहिए था, परन्तु पितामह ने यह उचित समझा था कि वेन को सब आरोप बताकर उन पर उसका उत्तर सुना जाए और तदनन्तर उसे उचित दण्ड दिया जाए।

"परन्तु जो उसके अत्याचार से पीड़ित थे, उन्होंने उसे दण्ड दे दिया है। यह दण्ड अन्यायपूर्ण तो नहीं है, फिर भी यदि जीवित वेन को उसके अपराधों का अनुभव कराया जाता तो यह अनुभूति उसके लिए अगले जन्म में कल्याणकारी हो सकती थी। जो व्यक्ति प्रायश्चित करता हुआ अपने अपराधों का दण्ड भोगता है, वह शीघ्र ही दोषमुक्त हो पुनः इस लोक में अपनी उन्नति के लिए आ सकता है।

"अब यह कार्य आगामी जन्म में वह स्वयं करेगा। हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि जो हम क्षुद्र जीव यहाँ नहीं कर सके, वह उसे परलोक में करने का अवसर प्रदान करे।

"हम अब विद्वान् ऋषि-महर्षियों का एक सम्मेलन बुलाएँगे और इस जनपद के लिए नवीन राज्याधिकारी का निर्वाचन करेंगे।

"तब तक के लिए भगवान नमुचि यहाँ प्रबन्ध करेंगे। प्रजा को चाहिए कि वह अपने-अपने कार्य में संलग्न हो जाए।

"इस समय देश की धन-सम्पदा प्रायः विनष्ट हो चुकी है, परन्तु उस धन-

---

१. तं प्रजासु विधर्माणं रागद्वेषवशानुगम्।
मन्त्रपूतैः कुशैर्जघ्नुर्ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥

(महा० भा० शा०—५९-९४)

वेन, राग द्वेष से अभिभूत अधर्माचरण करने लगा तो ऋषियों ने मन्त्र भूत कुशाओं (सु-सम्मति से शिक्षित प्रजाओं) से उसे मरवा डाला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पदा का स्रोत मानव परिश्रम आप हैं। यदि आप मन से परिश्रम करेंगे तो शीघ्र ही यह राज्य पुनः धन-धान्य से भरपूर हो जाएगा।

"जाइए अपने लिए और अपने जनपद के लिए परिश्रम में लीन हो जाइए। प्रभु आपकी सहायता करेंगे।"

कश्यप मुनि के इस प्रकार के वचनों से लोग शान्त हो, अपने घरों को लौट गए।

मानव समाज की यह प्रथम जन-क्रान्ति भूमण्डल के अन्य राज्यों के लिए विचार का विषय बन गई। हिरण्यकशिपु को भी जब यह समाचार मिला तो वह शुक्राचार्य के पास पहुँचकर पूछने लगा, "आचार्यवर! आपने वेन के विषय में सुना है?"

"हाँ राजन्! वहाँ यही होना था।"

"क्यों?"

"मैंने वहाँ के लुटेरों के इस राज्य में घुस आने और यहाँ लूट-मार मचाने पर जब यह कहा था कि उनको पकड़कर बिना उस राज्य को बीच में लाए उन्हें दण्ड देना चाहिए तो मैं कुछ ऐसी ही आशा कर रहा था।"

"आचार्यवर! मुझे भय है कि यहाँ पर भी प्रजा वही कुछ न कर दे।"

"यदि तुम्हें भय है तो इसका उपाय अभी से करो।"

"क्या उपाय करूँ?"

"देश में विद्वानों की मान-प्रतिष्ठा में वृद्धि करो और उनको दान-दक्षिणा से प्रसन्न रखो।"

"वह तो मैं कर रहा हूँ। आप विद्वत् शिरोमणि यहाँ के सर्वेसर्वा हैं।"

"परन्तु तुम मद्य का सेवन बहुत करते हो और मद्य के मदात्यय में कभी-कभी मेरी भी निन्दा कर देते हो।"

"महाराज! भविष्य में ऐसा नहीं करूँगा।"

"प्रजा को डरा-धमकाकर रखना चाहिए। विशेष रूप में जो प्रजा का उच्छृंखल अंश है, उनको बन्दी बनाकर रखो। वह विप्लव उत्पन्न कर सकता है।"

परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मपुरी के जनपद में किंचित्मात्र भी स्वेच्छाचरण करने वालों को उच्छृंखल मान, मृत्यु अथवा कारावास का दण्ड दिया जाने लगा।

इसी समय अनंगपुर में ऋषियों का सम्मेलन होने लगा। पितामह का आदेश था कि यथासम्भव वेन की सन्तान में से किसी को नरेश पद पर नियुक्त किया जाए।

वेन के उत्तराधिकारियों को ऋषि-मण्डल के सम्मुख उपस्थित होने को कहा गया। यह देखा गया कि वेन के वंश में सैकड़ों युवा कुमार और बालक उपस्थित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वे सब एक-एक के उपरान्त ऋषि मण्डल के सम्मुख उपस्थित हुए। ऋषिगण किसी को अल्पायु के विचार से और किसी को अल्प बुद्धि के विचार से अस्वीकार करते गए। अन्त में दो पुत्रों में तुलना हो गई। दोनों युवा थे और बुद्धिमान और सबल थे।

इन दोनों को ऋषि-मण्डल के सामने बारी-बारी से उपस्थित होने के लिए कहा गया। पहले एक नील नाम का लड़का उपस्थित हुआ और उससे ऋषियों के नेता नमुचि ने प्रश्न करने आरम्भ कर दिए।

ऋषि ने पूछा, "क्या नाम है ?"

"नील।"

"किसके पुत्र हो ?"

"महाराज वेन के।"

"माता का क्या नाम है ?"

"सीमा।"

"उसके पिता का क्या नाम है और वह कहाँ रहती है ?"

"माँ को ज्ञात नहीं। वह वनवासी जाति की थी जिसमें विवाह की प्रथा नहीं थी। जब मेरी माँ उत्पन्न हुई, उसकी माँ कई पुरुषों की स्त्री थी।"

"और तुम्हारी माँ का विवाह वेन से विधिवत् हुआ था ?"

"नहीं। महाराज वन में मृगया के लिए गए हुए थे जब उन्हें माँ मिल गई और वे उसे पकड़कर राजधानी में ले आए और अपने प्रासाद में रख लिया।"

"कुछ पढ़े हो ?"

"मल्ल युद्ध करना सीखा है।"

"और कुछ ?"

"इतने से जीवन निर्वाह होता रहा है।"

"अच्छा जाओ।"

इसके उपरान्त एक अन्य युवक उपस्थित किया गया। उससे भी प्रश्न पूछा गया, "क्या नाम है ?"

"भगवन्! पृथु।"

"माँ का नाम ?"

"वायु।"

"वायु के पिता का नाम ?"

"महर्षि मस्त।"

"वायु का विवाह वेन से विधिवत् हुआ था अथवा अनियमित ?"

"विवाह विधिवत् हुआ था। वह महर्षि कश्यप ने कराया था।"

"क्या पढ़े हो ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वेद, वेदांग और स्मृति शास्त्र।"

"कौनसा स्मृति शास्त्र।"

"स्वयंभुव का त्रिवर्ग शास्त्र।"

"धर्मपालन करोगे ?"

"अवश्य महाराज।"

"धर्म क्या होता है ?"

"जिससे सबका कल्याण हो सके।"

"चोर का भी ?"

"हाँ भगवन्! चोर का कल्याण उसे कारावास में रखने से होता है। उसके लिए उसे कारावास में रखना धर्म है।"

इस पर सर्वसम्मति से पृथु को राजा स्वीकार किया गया। राज्याभिषेक के समय उससे वचन लिया गया। एक-एक वाक्य ऋषि बोलता था और पृथु उसको स्वीकार करता जाता था।[१]

जिस कार्य से धर्म की सिद्धि होती है वही करोगे। प्रिय-अप्रिय का विचार छोड़कर, काम, क्रोध, लोभ, मोह और मान को दूर हटाकर सब प्राणियों के प्रति समभाग देखोगे। लोक में जो कोई भी मनुष्य धर्म से विचलित हो, उसे सन्तान धर्म पर दृष्टि रखते हुए अपने बाहुबल से परास्त करके दण्ड दोगे।

यह प्रतिज्ञा करो कि तुम मन, वाणी और कर्म द्वारा वेद वचन का नित्य पालन करोगे। वेद में दण्ड नीति से सम्बन्ध रखने वाला जो नित्य धर्म बताया गया है, उसका निशंक होकर पालन करोगे।

जब पृथु ने ऋषि आदेश के पालन का वचन दे दिया तो उसका राज्याभिषेक कर दिया गया। इस बार राज्याभिषेक के समय यज्ञ-याग और दान-दक्षिणा प्रचुर मात्रा में किए गए।

---

१. नियतो यत्र धर्मो व तमशंङ्कः समाचार।
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः॥
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद् धर्ममवेक्षता।
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः।
तमशंक करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥
(महा भा० शा० ५९-१०३ से १०७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः जनपद में शान्ति स्थापित हो गई। पितामह तथा ऋषियों के आदेशानुसार धर्माचरण और आचरण का स्तर ऊँचा होने लगा।

भूमि समतल कर उस पर कृषि की जाने लगी। अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न किए जाने लगे और जनपद का कार्य सुख-सुविधा और सम्पत्ति से युक्त हो गया।

इस समृद्धि की गूँज ब्रह्मपुर जनपद के शासक हिरण्यकशिपु के कान में भी पहुँची। वैसे तो उसके अपने क्षेत्र में भी सम्पन्नता विराजमान थी। इसका मुख्य कारण वहाँ के मन्त्री स्मृतिकार शुक्राचार्य का सुप्रबन्ध था, किन्तु वहाँ एक अन्य भी विशेष बात थी। वहाँ का राजा साक्षात् परमात्मा का अवतार माना जाता था। इसका परिणाम यह हो रहा था कि राजा एतदर्थ राज्य के मन्त्री की आज्ञा ईश्वर के विधान की भाँति मानी जाती थी। इसमें एक दोष भी उत्पन्न हो रहा था। वह यह कि राजा को ईश्वर की भाँति स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी। इसका परिणाम यह हो रहा था कि हिरण्यकशिपु उच्छृंखल हो रहा था। अन्य प्रजागण उसके लिए उपभोग की वस्तु समझे जाते थे। उनको निर्जीव भूमि की भाँति नियम का पालन करना पड़ता था। राजा इन सब नियम के बन्धनों से ऊपर था। यह ठीक था कि उनको परस्पर धर्म और न्याय का व्यवहार रखने पर बाध्य किया जाता था, परन्तु जब बात राजा और प्रजा के भीतर होती थी तब न्याय और धर्म सब राजा के पक्ष में हो जाते थे। राजा की इच्छा और सुख-सुविधा सर्वोपरि थीं।

लोग व्यापार करते थे और सहस्रों तथा लाखों रुपये का लेन-देन होने लगा था; परन्तु राजा को प्रत्येक वस्तु बिना मूल्य के प्राप्य थी। कोई भी उससे मूल्य माँगने का साहस नहीं कर सकता था। वह सबका ईश्वर अर्थात् स्वामी था।

एक दिन मन्त्री महोदय राजा से मिलने आए तो महाराज पृथु के विषय में बात चल पड़ी। मन्त्री ने बताया कि पृथु ने राज्यकोष से धन व्यय कर बहुत-सी भूमि समतल करा दी है। वहाँ अन्न इतनी मात्रा में उत्पन्न होने लगा है कि वहाँ के रहने वालों के खाने से पर्याप्त बच जाता है और वहाँ से आ-आकर हमारे राज्य में बहुत ही कम मूल्य पर बिकने लगा है। हिरण्यकशिपु ने कहा, "तब तो ठीक है। यह भूमि पर्वतीय है और यहाँ कृषि का कार्य अधिक नहीं हो सकता। लोगों को अन्न सस्ते मूल्य पर मिल जाएगा।"

"परन्तु महाराज! यहाँ के कृषक अन्न उत्पादन का काम बन्द कर रहे हैं। वे इतने कम मूल्य पर अन्न नहीं दे सकते। साथ ही अनंगपुर से आने वाले अन्न का मूल्य देने के लिए यहाँ के रहने वालों के पास धन नहीं है।"

"तो ऐसा करिए कि वहाँ का अन्न यहाँ आना रोक दीजिए।"

"इससे तो प्रजा में विद्रोह उत्पन्न हो जाएगा। लोग यह जान कि यहाँ से वहाँ अन्न सस्ता है, इसमें वे राजा को दोष देने लगेंगे।"

"भला मेरा इसमें क्या दोष है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वहाँ के राजा ने भूमि को समतल कराकर कृषकों की सहायता की है। वैसी सहायता आपको भी करनी चाहिए।"

"हम कैसे सहायता कर सकते हैं ? यहाँ की पर्वतीय भूमि तो समतल हो नहीं सकती।"

"परन्तु यहाँ की पर्वतीय भूमि पर कुछ ऐसी वस्तुएँ उत्पन्न की जा सकती हैं जो हम अनंगपुर में बेचकर वहाँ से धन वापस ले सकते हैं।"

"तो आचार्य जी, ऐसा कराइए।"

"उसके लिए अंगिरा जैसे विद्वान बाहर से बुलाने पड़ेंगे। उन विद्वानों के साथ वेद ज्ञान भी आएगा और तब···।"

इतना कहकर शुक्राचार्य चुप रहा। कुछ समय तक आचार्य जी के कहने की प्रतीक्षा कर हिरण्यकशिपु ने पूछ लिया, "हाँ तो महाराज ! वेद ज्ञान के यहाँ आने से क्या होगा ?"

"होगा यह कि आपके अधिकार कम होने लगेंगे। जन-जन यह जानने लगेगा कि आप ईश्वर नहीं हैं। आप ईश्वर हो भी नहीं सकते।"

"यह हम नहीं चाहते।"

"मेरा यह कहना है कि आपको अपने अधिकारों में कमी करनी पड़ेगी।"

"बिना इस प्रकार की व्यवस्था उत्पन्न किए कुछ करना चाहिए।"

"महाराज ! यत्न करता हूँ। इसके लिए मुझे भी अपने अधिकारों में कुछ तो वृद्धि करनी पड़ेगी।"

"आप जो मन में आए, करें। मैं अपने बल और बुद्धि से ईश्वर बना हूँ और इस पद को मैं छोड़ नहीं सकता।"

शुक्राचार्य मुस्कराकर बोला, "महाराज ! यत्न करूँगा।"

शुक्राचार्य ने पर्वतीय भूमि पर फलों की उपज करानी आरम्भ कर दी, परन्तु धन का यह स्रोत न तो पर्याप्त था और न ही यह उस गति से चल सका जिससे अनंगपुर में अन्न की उपज बढ़ रही थी।

परिणामस्वरूप राज्य में असन्तोष बढ़ने लगा। ब्रह्मपुर में एक वस्तु विशेष होती थी। वह था स्वर्ण। अनंगपुर से व्यापार में ब्रह्मपुर का स्वर्ण कम होने लगा और प्रजा के पास स्वर्ण बहुत कम था। जिसके पास यह कुछ अधिक होता था, राजा उससे छीन लेता था।

जब लोगों का असन्तोष सीमा को छूने लगा तो हिरण्यकशिपु की चिन्ता बढ़ गई। तब शुक्राचार्य ने सम्मति दी, "महाराज ! मैं समझता हूँ कि आप अनंगपुर जाएँ और वहाँ की उन्नति का रहस्य जानें। तब हम अपने राज्य में भी कुछ कर सकेंगे।"

अनंगपुर जाकर वहाँ की स्थिति का अपनी आँखों अध्ययन करने का विचार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिरण्यकशिपु को पसन्द आया। परन्तु कठिनाई उपस्थित हुई कि चुपचाप उस राज्य में जाया जाए अथवा वहाँ के राजा को सूचना देकर ?

शुक्राचार्य चाहता था कि हिरण्यकशिपु महाराज पृथु को पत्र लिखे और उसके साथ मैत्री स्थापित करने के विचार से वहाँ जाने की इच्छा प्रकट करे। वह समझता था कि पृथु इस प्रस्ताव का स्वागत करेगा और हिरण्यकशिपु को अपने राज्य में आने का निमन्त्रण दे देगा।

हिरण्यकशिपु ऐसा नहीं समझता था। उसका विचार था कि वहाँ एकाएक बिना सूचना के और यदि सम्भव हो तो बिना प्रकट हुए, जाए और सब बात देख आए कि किस प्रकार वह अपने राज्य में इतनी उन्नति कर सका है।

अतः एक दिन वह अपने कुछ सेवकों को साथ लेकर अनंगपुरी में जा पहुँचा।

: ६ :

हिरण्यकशिपु का विचार गुप्त रूप से अनंगपुर जनपद में पहुँच यहाँ का वृत्तान्त जानने का था, परन्तु ऐसा नहीं हो सका। अनंगपुर का राज्य पर्वतों से मैदान में उतरते ही आरम्भ होता था और प्रत्येक ऐसे मार्ग पर जो पर्वत से मैदान में आता था, अनंगपुर राज्य के संरक्षक बैठे थे और आने-जाने वालों से पूछ-ताछ करते रहते थे। हिरण्यकशिपु के राज्य में ऐसा प्रबन्ध नहीं था। अतः जब इसे और इसके साथियों को रोककर पूछा गया तो इनको बताना पड़ा कि कौन हैं और अपने आने का प्रयोजन यह बताना पड़ा था कि वे महाराज पृथु से मिलने आए हैं।

संरक्षकों ने यह उचित समझा कि एक-दूसरे राज्य के नरेश के आने की सूचना अपने राजा को भेजनी चाहिए। अतः उन्होंने हिरण्यकशिपु को वहीं ठहरा लिया और नगर में महाराज पृथु के पास सूचना भेज दी।

नगर के बाहर से जब हिरण्यकशिपु का परिचय राज्य प्रासाद में पहुँचा तो पृथु स्वयं रथ, हाथी ले उसके स्वागत के लिए आ गया। पृथु ब्रह्मपुरी के लोगों को बहुत आदर-सत्कार से नगर में ले गया और उनको सुन्दर, सुसज्जित व सुदृढ़ भवनों में ठहरा दिया गया।

हिरण्यकशिपु को अनंगपुर में पग रखने ही पहले से अब में अन्तर दिखाई देने लगा। वह वेन के राज्याभिषेक के समय वहाँ आया था, परन्तु उस समय प्रजा के मुखों पर मुर्दनी छाई प्रतीत होती थी। प्रायः लोग भयभीत और कुछ ऐसे भूमि की ओर देखते हुए दिखाई देते थे मानो कि वे सब किसी महान् पाप-कर्म में लीन हैं।

अब सब लोग प्रकाशित, प्रफुल्ल वदन, प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होते थे।

दो दिन तो हिरण्यकशिपु की तथा उसके साथ आए हुओं की सेवा खुले हृदय से की गई। उनको खाने-पीने, रहने और सेवा-टहल तथा मनोरंजन से सन्तुष्ट कर दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे दिन पृथु अपने ऋषिगणों को लेकर हिरण्यकशिपु से मिलने आया। ऋषिगणों के नेता कश्यप मुनि थे। कश्यप हिरण्यकशिपु का पिता था और उसने पिता का आदर-सत्कार उठ एवं चरण स्पर्श कर किया।

जब औपचारिक व्यवहार और वार्त्तालाप हो चुका तो पृथु ने कहा, "महाराज हिरण्यकशिपु ! आपने दर्शन देने का कष्ट किया। हमारा नगर और हम आपके आभारी हैं। अतः कोई विशेष सेवा हमारे योग्य हो तो बताने की कृपा करें।"

हिरण्यकशिपु ने कहा, "यहाँ से हमारे जनपद को जाने वाले लोग यहाँ की बहुत प्रशंसा करते हैं। इससे यहाँ इस राज्य की समृद्धि मैं आँखों से देखना चाहता हूँ।"

"तो अभी तक कुछ देखा है अथवा नहीं ?"

"अभी तक तो एक वस्तु ही देखी है और दो रात से वह हमारा मनोरंजन कर रही है। हमारा अभिप्राय है विरुचि देवी।"

पृथु हँस पड़ा। उसने कहा, "महाराज ! आपने कुछ नहीं देखा। उससे अधिक सुन्दर, सभ्य, सुशील और सुशिक्षित तो मेरी महारानी सुमति है। और उससे भी सब गुणों में अधिक एक ब्राह्मण की पत्नी सुभद्रा है।"

"तो महाराज ! उनके दर्शन करवा दें, मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा।"

"उनके दर्शन हो सकते थे, परन्तु जब आप अपनी महारानी को साथ लेकर आते।"

"तो इससे मुझे क्या लाभ होता ? वे दर्शन तो महारानी जी को होते।"

"जैसे नौका में बैठा यात्री नदी पार चला जाता है वैसे आप भी वह सौभाग्य प्राप्त कर लेते जो महारानी को मिलता।"

"परन्तु हमारे लिए कठिनाई यह है कि महारानियाँ अनेक हैं, एक नहीं। किसको लाते और किसको नहीं लाते, निर्णय करना अति कठिन था।"

"आप अपने ज्येष्ठ राजकुमार की माता को ले आते तो ठीक रहता।"

"वहाँ राजकुमार भी अनेक हैं, जो इस अवस्था के हैं कि अपने को राज्याधिकारी मानें।"

"परन्तु मैंने सुना था कि आपका सबसे बड़ा पुत्र प्रह्लाद है। वह ईश्वरभक्त और सद्बुद्धि रखने वाला है।"

"परन्तु उससे बड़ा एक और है। उसकी माँ ने उसका नाम विक्रम रखा है।"

"यह हमारे लिए एक ऐसा समाचार है जो हमने पहले कभी नहीं सुना था।"

"यह स्वाभाविक ही है। हमारे यहाँ के समाचार जानने में न तो आपकी रुचि होनी चाहिए और न ही जानना सम्भव है।"

पृथु पुनः हँसा। हँसते समय महाराज पृथु के मुख की शोभा इतनी बढ़ जाती थी कि हिरण्यकशिपु उसे मन्त्रमुग्ध देखता रह जाता था। पृथु ने कहा, "आपके आचार्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या तो आपको बताते नहीं अथवा वे स्वयं जानते नहीं। वस्तुस्थिति यह है कि इस राज्य में मेरे मन्त्रीगणों को आपके राज्य की प्रत्येक जानने योग्य बात का ज्ञान रहता है। हम सब जानते हैं। यह विक्रम के विषय में हमें ज्ञात नहीं था। कदाचित् वह जानने योग्य कोई नहीं है।"

"परन्तु हम तो उसको अपना युवराज घोषित करने वाले हैं।"

इस पर पृथु ने कश्यप मुनि जी की ओर देखकर पूछ लिया, "ऋषिवर ! आप क्या समझते हैं ?"

"मैं समझता हूँ कि ब्रह्मपुरी जनपद का राजा एक चक्रवर्ती महाराज प्रह्लाद होंगे।"

"और यह विक्रम कौन है ?" पृथु ने पूछ लिया।

कश्यप ने कहा, "जब हिरण्यकशिपु अविवाहित था तो यह वन में विचरता हुआ एक वनवर स्त्री से सम्बन्ध बना बैठा था। वह स्त्री पिछले वर्ष ब्रह्मपुरी में आई है और अपने पुत्र को हिरण्यकशिपु का सबसे बड़ा पुत्र घोषित कर रही है। महामात्य शुक्राचार्य भी उस पुत्र को राज्यगद्दी पाने में सहायक हो रहे हैं।"

"शुक्राचार्य जी की उसमें क्या रुचि है ?"

"वह उसे राज्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति मानते हैं।"

"यह क्यों ?"

"शुक्राचार्य जी राजा के दो गुण मानते हैं। एक तो यह कि वह सुन्दर, बलवान् और शान्त स्वभाव का हो। वह राज्य की रक्षा के लिए सदा तत्पर हो। दूसरे, वह अति शोभनीय हो, जिसको देख उसकी प्रजा मन्त्रमुग्ध उसका मुख देखा करे। और इन गुणों के प्रतिकार में राज्य में राजा को साक्षात् ईश्वर माना जाए। वह धर्म और न्याय से ऊपर हो और ईश्वर की भाँति वह स्वतन्त्र हो।"

"और परमात्मा ?"

"शुक्राचार्य का यह कहना है कि यदि कोई इस विश्व में ईश्वर है तो उसका अवतार ही किसी देश का राजा होता है।"

"परन्तु महाराज !" पृथु ने पुनः हिरण्यकशिपु से बात कही, "इससे तो अति भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो जाएगी। आपके राज्य में दो ईश्वर हो जाएँगे और दोनों के भक्त आपस में ही लड़ मरेंगे।"

अब हिरण्यकशिपु हँसकर बोला, "महाराज पृथु ! हमारे राज्य में एक ही ईश्वर है और वह मैं हूँ। दूसरे ईश्वर को, जिसकी आप कल्पना कर रहे हैं, हमने धक्के दे-देकर वहाँ से निष्कासित कर दिया। उसका अन्त हो चुका है और अन्त्येष्ठि संस्कार हो चुका है। उस ईश्वर की चिता का धुआँ कभी-कभी दिखाई देता है, परन्तु एक न एक दिन तो वह चिता जलकर राख होगी और तब धुआँ भी समाप्त हो जाएगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हम समझते हैं," कश्यप ने उत्तर दिया, "कि धुआँ उठ रहा है और वह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक हो रहा है। इससे यही प्रकट होता है कि आग प्रतिदिन तीव्र हो रही है और सम्भव है कि वह एक दिन पूर्ण नगर को ही घेर ले।"

"यह नहीं हो सकेगा। ब्रह्मपुरी जनपद का ईश्वर हिरण्यकशिपु है और वह सजग, सतर्क और सदा सक्रिय है। उसके वहाँ रहते वह अग्नि जलती नहीं रह सकती।

"मैं आपका संकेत समझ रहा हूँ। आपका अभिप्राय है कि प्रह्लाद का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है और वह किसी दिन पूर्ण नगर में छा जाएगा। परन्तु पिताजी! हमारे जनपद में गंगा का शीतल जल है। वह उस अग्नि को एक क्षण में बुझा देगा।"

"बेटा! ऐसा करके देख लो।"

इस प्रकार बात समाप्त हो गई और हिरण्यकशिपु को अनंगपुर जनपद में दर्शनीय वस्तुएँ एवं स्थान दिखाए जाने लगे।

एक सप्ताह तक हिरण्यकशिपु का प्रवास अनंगपुर में रहा। इन दिनों में एक दिन महाराज हिरण्यकशिपु को महाराज पृथु के प्रासादों में भोज दिया गया। उस समय राज्य के प्रमुख लोगों को भी एक पड़ोसी राज्य के नरेश का अभिनन्दन करने के लिए आमन्त्रित किया गया।

भोज के पूर्व महाराज पृथु ने स्वयं अपने राज्य के प्रमुख व्यक्तियों का हिरण्यकशिपु से परिचय कराया। सबसे प्रथम हिरण्यकशिपु की महारानी से अपनी पत्नी की भेंट कराई गई। हिरण्यकशिपु ने हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए कहा, "मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन हो गए। महाराजा पृथु ने तो कहा था कि जब तक मैं अपने देश की महारानी को लेकर नहीं आता, दर्शन नहीं होंगे।"

"हाँ, यह तो था। आपका महारानी जी को साथ न लाने का यही अर्थ समझा गया था कि आप मुझे अपने से परिचय के योग्य नहीं मानते। यह तो मैंने ही आग्रहपूर्वक आपके दर्शनों का हठ किया है। मेरे मन में उत्कट इच्छा थी कि विश्व के स्वामी भगवान् परमातमा के भक्त प्रह्लाद की माता नहीं तो पिता के ही दर्शन कर लूँ।"

"ओह!" हिरण्यकशिपु के मुख से अनायास ही निकल गया। वह कुछ विचार कर पूछने लगा, "महारानी जी! प्रह्लाद तो माता से युक्त है। उसका मुझसे कुछ अधिक सम्बन्ध नहीं।"

"प्रत्येक व्यक्ति में अग्नि पिता से ही आती है। माता तो भूमि मात्र है। शरीर ही निर्माण कर सकती है। वह भी बालक के पिता द्वारा दी गई अग्नि के बल पर।"

महारानी के साथ ही एक अन्य युवती अति सौम्य स्वरूप परन्तु शृंगार शून्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी थी। महारानी ने कहा, "महाराज! यह हैं हमारे पुरोहित सदाशुभ की पत्नी सुभद्रा।"

इस नगर से हिरण्यकशिपु विस्मय में समीप खड़ी पुरोहित जी की पत्नी को देखने लगा। तदुपरान्त महाराज पृथु से पूछने लगा, "यही वह चमत्कार है जिसका वर्णन आपने एक दिन किया था?"

"हाँ, यही वह सुभद्रा हैं जिनको मैं अपने राज्य की विभूति मानता हूँ।"

"क्या विशेषता है इनकी?"

"यह गणितज्ञ हैं और लाखों करोड़ों अंकों वाली राशियों के गुणा तथा भाग एक क्षण में कर देती हैं।"

"और यह इनका सौन्दर्य है?"

"हाँ। जिसका पार आज तक कोई स्त्री अथवा पुरुष पा नहीं सका।"

हिरण्यकशिपु हँस पड़ा और बोला, "इसका लाभ क्या है?"

"यह निश्चित भविष्य की ज्ञाता हैं।"

"तब तो कुछ लाभ उठाया जा सकता है।"

इस सब समय सुभद्रा महारानी के समीप मुस्कराती हुई खड़ी थी।

"हाँ।" महाराज पृथु ने कह दिया, "परन्तु यह समय भविष्यवाणी सुनने का नहीं। इस समय नगर के प्रमुख स्त्री-पुरुष आपके दर्शन एवं परिचय के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

विवश हिरण्यकशिपु आगे बढ़ा। पृथु ने कहा, "आइए, मैं आपकी अपने राज्य की अन्य विभूतियों से भेंट कराना चाहता हूँ।"

पृथु उसे एक अन्य प्रौढ़ावस्था के व्यक्ति के सामने ले गया। उसने बताया, "यह हमारे नगरसेठ हैं। जपने देश का अन्न विदेशों में भेजते हैं। इस प्रकार अपने देश के लिए धन अर्जन करते हैं।"

"देश के लिए? भला देश के लिए कैसे?"

"जो भी धन बाहर से आता है, वह देश के कार्य ही आता है। उस धन के मुख्य रूप में तीन भाग हो जाते हैं। एक भाग उन कृषकों तथा उन श्रमिकों के पास जाता है जो अन्न उत्पन्न करने, अन्न ढोने, लाने, ले जाने का काम करते हैं। दूसरा भाग यह धर्म-कार्यों पर व्यय कर देते हैं। यह सैकड़ों आचार्यों को अन्न, वस्त्र इत्यादि देते हैं और वे इनका प्रयोग करते हुए सहस्रों शिक्षार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देते हैं। इस धनराशि में से सभा, भवन और पूजा-गृह बनाए जा रहे हैं। इनकी आय का तीसरा भाग यह स्वयं अपने और अपने परिवार के पालन-पोषण पर व्यय करते हैं।"

"हमारे यहाँ प्रथा इससे भिन्न है।" हिरण्यकशिपु ने कह दिया, "सब लाभ राज्यकोष में आ जाता है। और उसका वितरण राज्य करता है। इस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे राज्य के राज्यकोष में आने वाली धनराशि लगभग दस लक्ष स्वर्ण है और उसमें से आठ लक्ष स्वर्ण मैं आचार्यों में बाँटता हूँ। शेष दो लक्ष राज्य प्रासाद पर व्यय होता है।"

"यह व्यर्थ का झंझट आप क्यों करते हैं ?"

"यह व्यर्थ का झंझट नहीं। यह जन मन को अपने राज्य के अनुकूल बनाने का बृहत आयोजन है। सब विद्यालयों और गुरुकुलों में हिरण्यकशिपु ही ईश्वर है, की गूँज उठती है।"

नगरसेठ भानु प्रसाद कहने लगा, "महाराज ठीक कह रहे हैं। इतनी बुद्धिमत्ता की बात यहाँ किसी को ज्ञात नहीं।"

पृथु उसे आगे अन्य आमन्त्रित नागरिकों के पास ले गया।

: ७ :

अनंगपुर से विदा होने के पूर्व हिरण्यकशिपु अपने पिता कश्यप मुनि से उनके आवास पर मिलने गया। मुनि जी ने पूछ लिया, "सुनाओ वत्स ! कैसे आए हो ?"

"जब इस नगर में आया हूँ जहाँ आप एक मुख्य मन्त्री हैं तो आपसे मिले विना लौट नहीं सका।"

"मैं यही पूछ रहा हूँ कि इस नगर में आने का क्या प्रयोजन है जो राज्य-कार्य को छोड़ यहाँ घूम रहे हो ?"

"राज्य-कार्य तो शुक्राचार्य करते हैं।"

"और तुम क्या करते हो ?"

"आपके प्रिय पुत्र का अभ्युदय। उसके श्रेय एवं कल्याण का आयोजन दिन-रात चलता रहता है।"

"और मेरे प्रिय पुत्र को श्रेय और कल्याण किस बात में प्रतीत होता है ?"

"स्वादिष्ट मद्य-मांस, मिष्ठान्न का भोजन। अति कोमल वस्त्र, अति श्रेष्ठ सुन्दरियों से रमण, अलौकिक संगीत का श्रवण और मनोहर नृत्य के नित्य दर्शन।"

"पर यह सब क्यों ?"

"इसलिए कि मुझे इनमें रस मिलता है और इन सबके भोग की मुझमें सामर्थ्य है।"

"रस तो मिलता होगा। यह अपनी-अपनी रुचि की बात है। जिस बात में किसी की रुचि नहीं उसकी प्राप्ति में रस प्राप्त नहीं होता। रुचि स्वभाव और संस्कारों से बनती है। ये दोनों पूर्वजन्म के कर्मों का फल है। मैं यही पूछ रहा था कि वे कौन से पुण्य-कर्म तुमने किए थे जिनके कारण तुम्हें यह सब अनायास ही प्राप्त हो रहा है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु भगवन् ! इसके जानने की आवश्यकता क्या है ? यदि ये किहीं पुण्य-कर्मों का फल है तो होने दो।"

"यह ठीक है कि उन पुण्य-कर्मों को जानने की आवश्यकता नहीं। फिर भी इतना तो जान लेना चाहिए कि ज्यों-ज्यों फल का भोग किया जाता है, उसके स्रोत पुण्य फल क्षीण होते जाते हैं। जो वस्तु संचय होती है, वह समाप्त भी होती है। बुद्धिमान लोग कोष को रिक्त होने नहीं देते। उसमें व्यय के साथ-साथ आय भी करते रहते हैं।

"यही आशय था मेरे पूछने का। उस पुण्य-कर्मों के कोष को कैसे भर रहे हो? स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर सुखद वस्त्र, सुन्दर रमणियाँ, मनोहर संगीत और नृत्य तो उस पुण्य-कर्मों के कोष को व्यय करने के साधन हैं, उनमें वृद्धि के नहीं। मैं पूछ रहा हूँ कि संचय भी कुछ करते हो अथवा नहीं ?"

"वह आचार्यजी कर रहे हैं। वह आठों प्रहर कार्य में संलग्न रहते हैं और राज्य का हित-चिन्तन करते रहते हैं।"

"इसका फल उनको मिलेगा। तुमको क्यों और कहाँ से मिलेगा ?"

"मैं उनको इसका प्रतिकार देता हूँ। उस प्रतिकार के उपलक्ष्य में ही वह कार्य कर सकते हैं।"

"वह प्रतिकार का धन भी वहीं से आता है जहाँ से नर्तकियों और वेश्याओं को देने के लिए आता है। बात वहीं रही कि तुम्हारा पुण्य-कर्मों का कोष क्षीण हो रहा है।"

"पिताजी ! एक दिन देवलोक से एक व्यक्ति आया था और कह रहा था कि मौसी अदिति का सबसे छोटा लड़का विष्णु परमात्मा का अवतार है।"

"वह हम तुम सब हैं। उसी की शक्ति हममें अवतरित हो रही है। तभी तो हम प्रत्येक प्रकार की कामनापूर्ति के लिए प्रयत्न करते हैं।

"पर मैं तो अपने को विष्णु से बड़ा अवतार मानता हूँ। मैं उससे आयु, ज्ञान और विद्या में बड़ा हूँ। मैंने पितामह के ब्रह्मलोक में रहते हुए तपस्या भी की है। उसने कदाचित् ब्रह्मलोक के दर्शन भी नहीं किए।"

"हाँ, परन्तु मैंने देखा है कि देव लोक ब्रह्मलोक से अधिक सुन्दर, सुखद और स्वास्थ्यप्रद है।"

"आप वहाँ किस कार्य से गए थे ?"

"राज्य-कार्य से गया था।"

"इस राज्य को देव लोक से क्या कार्य हो सकता है ? वह यहाँ से दूर है और मार्ग अति दुर्गम तथा भय से भरा है।"

"इसी कारण तो मुझे भेजा गया था। महाराज पृथु का कहना था कि यदि मैं चाहूँगा तो वहाँ सुगमता से पहुँच सकूँगा। अतः मैं गया था और विष्णु से भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला हूँ। वह अति होनहार युवक प्रतीत होता है।"

"पिताजी ! आपको क्या प्रतीत होता है ? यदि मैं देवलोक पर आक्रमण कर दूँ तो विजय किसकी होगी ?"

"आक्रमण अकेले करोगे अथवा सेना के साथ ?"

"सेना सहित।"

"तो एक घड़ी-भर में पूर्ण सेना जलाकर राख कर दी जाएगी।"

"कैसे ?"

उनके पास एक दिव्य अस्त्र है जो नगर के नगर एक क्षण में अग्नि के मुख में डाल देते हैं।

"आपने देखा है ऐसा किया जाता हुआ ?"

"हाँ, मेरे देखते-देखते एक पर्वत पर स्थित पूर्ण वन और उसके साथ ही पर्वत का अस्तित्व ही विलुप्त हो गया था। उस अस्त्र के चलने पर इतना प्रकाश हुआ कि आँखें बन्द हो गईं और जब आँख खुलीं तो वहाँ पर सपाट शिला की भाँति एक विशाल मैदान था। न पर्वत रहा था न वन।"

"और यदि अकेला युद्ध करूँगा तो ?"

"तब वह दिव्य अस्त्र नहीं चलाएगा ! तब विष्णु तुमसे द्वन्द्व युद्ध करेगा और विजय उसकी होगी।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि वह अभी तक ब्रह्मचारी है। उसने अभी तक किसी स्त्री के साथ रमण नहीं किया। वह वीर्य और तेज का पुंज तुम जैसे व्यसनी व्यक्ति को पल भर में परास्त कर देगा।"

"पर मुझे पितामह ने वर दे रखा है कि मुझको कोई मनुष्य अथवा देवता नहीं मार सकता।"

"तो पितामह ने यह वर दे रखा है कि तुम दुराचार और व्यभिचार करो ?"

"यह मैं पितामह के कहने से नहीं करता। यह तो मैं अपने ईश्वर होने से करता हूँ।"

"यह तुम्हें भ्रम हो गया है कि तुम ईश्वर हो।"

"शुक्राचार्य जी यही कहते हैं।"

"वह तुम्हें मूर्ख बना रहे हैं।"

"नहीं पिताजी। वह मुझसे अतुल प्रेम और स्नेह करते हैं।"

"यह सम्भव है। परन्तु मैं समझता हूँ कि वह कदाचित् यही समझ रहे हैं कि तुम्हारी हत्या हो जाए तो तुम्हारा कल्याण होगा। इसी कारण तुमको शीघ्र मृत्यु के पथ पर ले जा रहे हैं।"

हिरण्यकशिपु को अपने पिता से भेंट का सुख अनुभव नहीं हुआ। वैसे तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता उससे कभी भी स्नेह नहीं करता था, परन्तु इस दिन की बात तो बहुत ही रूक्ष और कटु प्रतीत हुई थी।

हिरण्यकशिपु राज्य अतिथि-गृह से जाने की तैयारी ही कर रहा था कि नगर रक्षक एक व्यक्ति के हाथ-पाँव बाँधे हुए राज्य न्यायालय में ले जा रहा था। न्यायकर्ता ऋषि नमुचि थे। नमुचि ने नगर रक्षकों से पूछा, "इसे किसलिए पकड़ा है और इस प्रकार बाँध रखा है?"

"भगवन्! यह नगर की एक स्त्री को पकड़कर अपने रथ पर बाँधे हुए नगर से बाहर लिए जा रहा था। जब इसे रोकने का यत्न किया गया तो यह सैनिकों को रथ के नीचे कुचलकर भाग जाना चाहता था, परन्तु इसे पकड़ लिया गया है और इस कारण कि कहीं भाग न जाए, इसके हाथ-पाँव रस्सी से बाँध रखे हैं।"

"वह स्त्री कौन है?"

"वह राज पुरोहित जी की पत्नी सुभद्रा हैं। उन्हें महारानी जी के प्रासाद में भेज दिया गया है।"

"क्यों और कैसे पकड़ा है उसे इसने।"

"वह कहती है कि वह पूजा-गृह से लौट रही थी कि यह मन्दिर के बाहर रथ लिए खड़ा था। उसे बलपूर्वक पकड़ और रथ से बाँध यह नगर से बाहर को भाग खड़ा हुआ। क्यों? वह नहीं जानती।"

"क्या नाम है तुम्हारा?" न्यायाधीश ने रथी से पूछ लिया।

"भगदत्त।"

"कहाँ के रहने वाले हो?"

"ब्रह्मपुरी के।"

"यहाँ क्यों आए थे?"

"महाराज हिरण्यकशिपु के साथ आया हूँ।"

"उस स्त्री को किसलिए लिए जा रहे थे?"

"अपने महाराज हिरण्यकशिपु की आज्ञा थी कि इस स्त्री को अपने नगर में ले चलें। वहाँ उनका ही राज्य है और लुकाव-छुपाव की आवश्यकता न होती, परन्तु यहाँ राज्य उनका नहीं है। इस कारण मुझे आज्ञा हुई थी कि मैं इस स्त्री को चुपचाप और बहुत प्रातःकाल पूजा-गृह से निकलते ही पकड़कर ले जाऊँ। यदि नगर के बाहर संरक्षक न होते तो मैं अपने महाराज की आज्ञा पालन कर पुरस्कार पाता।"

महर्षि नमुचि ने एक क्षण तक विचार किया और नगर रक्षक को कह दिया, "इसे तुरन्त महाराज के पास ले जाओ। इसका स्वामी हिरण्यकशिपु नगर को छोड़कर जाने ही वाला है।"

नगर रक्षक उस बन्दी को लेकर राज्य प्रासाद में जा पहुँचा। वहाँ महर्षि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमुचि का सन्देश देकर महाराज पृथु के सामने बन्दी सहित उपस्थित हो गया। उनको स्थिति का ज्ञान कराया गया तो उन्होंने उस बन्दी को कश्यप मुनि के पास भेज दिया। वह समझ गए थे कि दोषी हिरण्यकशिपु है और वह कश्यप मुनि का पुत्र है।

कश्यप ने पूर्ण कथा सुनी तो आज्ञा दे दी कि इस व्यक्ति को नगर द्वार के बाहर एक ऐसे स्थान पर फाँसी पर लटका दिया जाए जहाँ पर महाराज हिरण्यकशिपु जाते हुए अपने आज्ञाकारी सेवक के शव को लटका देख उसके दाह-कर्म के लिए उसे अपने साथ ब्रह्मपुरी को ले जा सकें।

ऐसा ही किया गया। मध्याह्न का भोजन कर हिरण्यकशिपु अपने सेवकों के साथ राज्य प्रासाद से विदा हुआ तो सेवकों में से एक ने पूछ लिया, "महाराज ! भगदत्त साथ नहीं है ?"

"वह अपनी पुरी में हमारे पहुँचने की सूचना लेकर हमारे आगे-आगे गया है।"

परन्तु यह बात चिरकाल तक छिपी नहीं रह सकी। अनंगपुरी के प्राचीर-द्वार के बाहर ही पथ के तट पर एक वृक्ष से भगदत्त का शरीर लटकता देखा गया। हिरण्यकशिपु के एक सेवक ने लटक रहे भगदत्त के शरीर को पहचाना तो महाराज से कह दिया, "महाराज ! यह शव भगदत्त का है।"

हिरण्यकशिपु और सेवक गणों ने अपने रथ खड़े कर लिए। उस वृक्ष के नीचे एक पट्ट पर यह लिखा था, "यह चोर इस नगर से एक स्त्री को उठाकर ले जाता पकड़ा गया है। इसके अपराध स्वीकार करने पर इसे मृत्युदण्ड दिया गया है।"

पट्ट पर लिखे इस वाक्य को पढ़, सब मुख देखते रह गए। एक सेवक ने कहा, "यह एक विदेशीय को यहाँ के धर्म के अनुसार दण्ड दिया गया है। महाराज ! यह सहन नहीं किया जाना चाहिए।"

हिरण्यकशिपु एक क्षण तक वृक्ष के नीचे खड़ा विचार करता रहा और फिर सेवकों को कहने लगा, "इसके शव को उतारो और एक रथ में डालकर ले चलो। इसका संस्कार अपने नगर में चलकर करेंगे।"

"महाराज !" एक सेवक ने कहा, "इस अपराध का दण्ड नहीं दिया जाएगा ?"

"यहाँ नहीं। इस समय दण्ड दिया जाना सम्भव भी नहीं, परन्तु हम इस अपमान को क्षमा भी नहीं कर सकते। हम इसका प्रतिकार लिए बिना नहीं रहेंगे।"

शव वृक्ष से उतारा गया और एक रथ पर डालकर ले जाया गया।

: ८ :

हिरण्यकशिपु को अपने एक सेवक का फाँसी चढ़ाकर एक वृक्ष से लटकाया जाना एक घोर अपमान की बात ही समझ में आई और अपनी राजधानी में पहुँचते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उसने राज्य के मुख्यमन्त्री शुक्राचार्य को बुला भेजा। शुक्राचार्य अपने साथ महाराज के ज्येष्ठ पुत्र प्रह्लाद को लेकर वहाँ पहुँच गया।

हिरण्यकशिपु ने आचार्यजी को आदर से बैठाया और अपने अनंगपुर का वृत्तान्त सुना दिया। शुक्राचार्य ने पूछा, "तो यह आज्ञा भगदत्त को महाराज ने दी थी कि सुभद्रा देवी को पकड़कर यहाँ ले आए ?"

"हाँ।"

"परन्तु यह आज्ञा आपने क्यों दी ?"

"हम चाहते थे कि वह स्त्री हमारे राज्य की शोभा को बढ़ाती ?"

"परन्तु महाराज ! आप किसी दूसरे के राज्य की विभूति को कैसे अपने अधिकार में ले सकते हैं ?"

"इस कारण कि हम शक्तिशाली हैं। हम ईश्वर हैं। संसार की सब श्रेष्ठ वस्तुओं पर हमारा अधिकार होना चाहिए।"

"महाराज ! आप अपने राज्य के ईश्वर हैं। अनंगपुर के नहीं।"

"अर्थात् मैं विश्व का ईश्वर नहीं हूँ ?"

"यह अधिकार अभी आपने प्राप्त नहीं किया।"

"तो यह कैसे प्राप्त कर सकूंगा ?"

"महाराज ! पहले आप ब्रह्मपुरी के ईश्वर बने रहने की चिन्ता करिए। आपके यहाँ से जाने के उपरान्त आपके इस पुत्र ने नगर में आपके विपरीत विद्रोह खड़ा कर दिया है।"

"क्यों प्रह्लाद ! क्या कहते हो ?"

"पिताजी ! आप इस जनपद के राजा हैं, परन्तु ईश्वर नहीं हैं।"

"क्यों ?"

"ईश्वर पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक एक अव्यक्त शक्ति का नाम है जो सूर्य, चन्द्र और तारागण इत्यादि को बनाती, चलाती और उनका प्रलय करती है। आपमें यह सामर्थ्य नहीं है।"

"कम से कम इस राज्य में हमारी यह सामर्थ्य है।"

"नहीं, इस राज्य में भी नहीं है। आप यहाँ रहने वाले मानवों पर शासन मात्र करते हैं। आप उनके निर्माण, पालन और विनाश करने में समर्थ नहीं हैं।"

"हम समझते हैं कि हम समर्थ हैं।"

"आप किसी मनुष्य का निर्माण करके दिखाइए। तब ही माना जा सकता है कि आप मानव-निर्माता हैं। ईश्वर बनने के लिए उससे भी कहीं अधिक सामर्थ्य की आवश्यकता होती है।"

हिरण्यकशिपु हँस पड़ा और बोला, "प्रह्लाद ! अपनी माँ से जाकर पता करो कि तुम्हारा निर्माण किसने किया है ? वह मैंने ही किया है। मेरी ही अनुमति से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जनपद में सब उत्पन्न होते हैं। यदि मैं आज्ञा करूँ तो मनुष्य सृष्टि ही रुक सकती है।"

"पिताजी ! आप भूल कर रहे हैं। बिना सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परमात्मा की स्वीकृति के एक तिनका भी नहीं हिला सकता।"

हिरण्यकशिपु ने आचार्यजी को सम्बोन्धित कर कहा, "आप इसे समझाइए कि मनुष्य कैसे उत्पन्न होते हैं और कैसे मेरी आज्ञा से मारे जा सकते हैं। अभी आप इसे ले जाइए। मैं इस भूमण्डल का ईश्वर बनने का उपाय करना चाहता हूँ।"

शुक्राचार्य उठ खड़ा हुआ। आचार्यजी के जाने से पूर्व हिरण्यकशिपु ने उनको कह दिया, "आचार्यवर ! मैं सबसे पहले इस पृथु को सन्मार्ग दिखाना चाहता हूँ। उसने मेरे एक सेवक की हत्या कर मेरा घोर अपमान किया है।"

शुक्राचार्य ने दाहिना हाथ उठा आशीर्वाद दे दिया; तदनन्तर प्रह्लाद को साथ लिए हुए प्रासाद से बाहर निकल आया।

जब शुक्राचार्य प्रह्लाद को साथ लेकर राज्य प्रासाद में गया था तो देखने वालों को यह भय लग रहा था कि प्रह्लाद को फाँसी चढ़ा देने का दण्ड हो जाएगा। कई मास से प्रह्लाद अपनी पाठशाला में अपने ही पिता के विरुद्ध यह प्रचार कर रहा था कि राजा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग अनुचित है। हिरण्यकशिपु राजा है, ईश्वर नहीं।

आरम्भ में सुनने वाले उसकी बात सुनकर हँस पड़ते थे, परन्तु धीरे-धीरे बात को बार-बार और स्पष्टतः बताने पर लोग समझने लगे थे। विद्यालय के विद्यार्थियों से बात नगर में फैल रही थी।

नगर में बहुत लोग ऐसे थे जो हिरण्यकशिपु के ईश्वर माने जाने के कारण भारी हानि उठा चुके थे। सबसे बड़ा आघात स्त्री वर्ग पर हो रहा था। जनपद में कोई सुन्दर स्त्री अथवा कुमारी होती तो जनपद का ईश्वर उसे बुलाकर अपने प्रयोग में लाता था। यदि किसी के पास कोई सुन्दर वस्तु होती तो उससे जनपद का ईश्वर वह वस्तु छीन लेता था।

ईश्वर की इच्छा सर्वोपरि थी और नगर की सेना तथा सुभट्ट सदा ईश्वरेच्छा पूर्ण करने में लीन रहते थे। सैनिक और सुभट्ट सदा भारी वेतन पाते थे और सुन्दर, स्वादिष्ट एवं दुर्लभ वस्तुओं की जूठन उनको भी प्राप्त होती रहती थी। इससे वे राजा के ईश्वर माने जाने में अपना लाभ मानते थे। अतएव वे सेवक सब राजा के पक्ष में थे। इस सैनिक संगठन बल के सम्मुख सामान्य नागरिक अपने को असहाय पाता था और अत्याचार सहन करने के अतिरिक्त कुछ भी उपाय नहीं कर सकता था।

अब जनपद के ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र ही कह रहा था कि राजा ईश्वर नहीं है। इस कारण उसकी अनियमित बातों का विरोध होना चाहिए। राजा के पुत्र और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य के युवराज को उनके मन की बात कहते देख प्रजा में साहस उत्पन्न हो रहा था।

पूर्ण जनपद में आशा और उत्साह की तरंग उठने लगी थी और सामान्य लोग भी अब कानों-कान बात कर रहे थे। ऐसे वातावरण में नगर के लोगों ने देखा कि आचार्य प्रह्लाद को साथ लिए हुए हिरण्यकशिपु के प्रासाद में गया है।

इससे पूर्व प्रह्लाद को राज्य प्रासाद में जाते कभी नहीं देखा गया था। वह आठ वर्ष की आयु का था जब नारद मुनि के आश्रम से अपनी माँ के साथ लौटा था। प्रह्लाद का जन्म उसी आश्रम में हुआ था। उस समय हिरण्यकशिपु ब्रह्म लोक में तपस्या कर रहा था। वहाँ वह युद्ध करने के ढंग एवं शस्त्रास्त्रों के प्रयोग की प्रक्रिया सीख रहा था। वह आठ वर्ष तक वहाँ रहा और जब पूर्ण दक्ष होकर लौटने लगा तो पितामह ने उसे यह प्रमाण-पत्र दिया था कि वह अजेय है।

हिरण्यकशिपु के लौटने पर प्रह्लाद की माँ अपने पुत्र को लेकर आश्रम से लौट आई थी, परन्तु हिरण्यकशिपु की अब उसमें रुचि नहीं थी। अतः उसके लिए राज्य प्रासाद से पृथक् एक आवास बनवाकर उसे वहाँ रख दिया था और हिरण्यकशिपु अपनी शक्ति एवं पितामह से प्राप्त प्रमाण-पत्र से उन्मत्त नित्य नई पत्नी की खोज करने लगा था।

नगर के लोग जानते थे कि प्रह्लाद की माँ और प्रह्लाद कभी राज्य प्रासाद में नहीं बुलाए जाते। प्रह्लाद को शुक्राचार्य पढ़ाता था, परन्तु नारद मुनि के आश्रम की शिक्षा उसके मन पर इतनी दृढ़ छाप छोड़ चुकी थी कि आचार्यजी की शिक्षा व्यर्थ सिद्ध हो रही थी।

प्रह्लाद इस समय अठारह वर्ष का युवक हो चुका था। वह अब वीर्यवान्, परन्तु सात्त्विक विचारों का युवक था और मन में दृढ़ संकल्प कर चुका था कि पिता के अनधिकारपूर्ण ग्रहण किए अधिकारों को निःशेष कर देगा।

जब प्रह्लाद ने खुलकर प्रजा में यह कहना आरम्भ किया कि राजा के लिए भी धर्म के नियम होते हैं और सनातन धर्म सबके लिए एक समान है, तब शुक्राचार्य को चिन्ता लगने लगी।

जिन दिनों हिरण्यकशिपु अनंगपुर गया हुआ था, विद्रोह की भावना प्रबल होने लगी थी। इस यात्रा में दो सप्ताह के लगभग लगे और हिरण्यकशिपु की अनुपस्थिति में सैनिकों और सुभट्टों को भी प्रह्लाद की जीवन-मीमांसा भली प्रकार समझ में आने लगी थी।

इस कारण महामन्त्री शुक्राचार्य हिरण्यकशिपु के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। जब उसे सूचना मिली कि महाराज यात्रा से लौट आए हैं तो वह प्रह्लाद को लेकर राज्य प्रासाद में जा पहुँचा।

हिरण्यकशिपु तो अपने अनंगपुर में हुए अपमान की बात बताने के लिए महा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्री से भेंट करना चाहता था, परन्तु जब उसे विदित हुआ कि उसके अपने राज्य में और उसका अपना पुत्र ही उसकी प्रतिष्ठा को क्षीण करने में लगा है तो उसे चिन्ता लग गई।

: ६ :

शुक्राचार्य ने प्रह्लाद को समझाना आरम्भ कर दिया। उसे राज्य पाने पर स्वेच्छा से विचरने और मनमाने भोग-ऐश्वर्य की उपलब्धि का आश्वासन देकर कहा, "तुम स्वयं ही अपने पांव पर कुल्हाड़ा चला रहे हो जो राज्य में राजा की महिमा को कम कर रहे हो।"

"परन्तु आचार्यवर !" प्रह्लाद ने दृढ़ता से अपने पक्ष को उपस्थित करने के लिए कह दिया, "यह मानव जीवन तो एक बन्दी जीवन है। इसमें किसी को भी स्वेच्छा से अम्बरान्त तक जाने की स्वीकृति नहीं है।"

"यह ठीक है, परन्तु राजा तो मानवों से ऊपर होता है। वह सर्व-ऐश्वर्य सम्पन्न है। इसी कारण उसे ईश्वर कहा है। उसको विशेषता प्राप्त है और वह सब बन्धनों से मुक्त होता है।"

"आचार्य जी ! मैं इसे एक अयुक्त कथन समझता हूँ। राजा भी बन्धनों में जकड़ा हुआ है। वह इस शरीर के रहते हुए पृथ्वी से बँधा हुआ है और चन्द्र लोक अथवा सूर्य लोक में नहीं जा सकता। वह वायु के बिना जीवित नहीं रह सकता। उसे भी अन्न-जल की आवश्यकता रहती है। ये सब बन्धन उसके लिए वैसे ही हैं जैसे किसी भी मनुष्य के लिए हैं। अतः मनुष्य होने के नाते वह जनसाधारण से श्रेष्ठ नहीं है।"

"फिर भी," आचार्य ने उसे समझाया, "वह राजा है। जब वह नगर में घूम जाता है तो सहस्रों लोग उसके दर्शनों के लिए पथ के तट पर आकर खड़े हो जाते हैं। जहाँ मुझ जैसे पढ़े-लिखे विद्वान् को अपनी जीविका के लिए राजा के सामने हाथ पसारने पड़ते हैं वहाँ उसके लिए लोग अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए तैयार रहते हैं।

"देखो प्रह्लाद ! यदि राजा कहे तो सैनिक पूर्ण नगर को आग लगा फूंक सकते हैं और किसी में साहस नहीं कि आज्ञा का उल्लंघन कर सके। इस कारण तुमको यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि राजा में सर्वसाधारण से कुछ विशेषता होती है।"

"भगवन् ! मैं यह मानता हूँ, परन्तु यह विशेषता इसी कारण है कि राजा कुछ विशेष कर्तव्यों का पालन करता है। यदि वह उन कर्तव्यों का पालन न करे तो वह विशेषता उसमें नहीं रहती। और उस विशेषता का यह अर्थ कैसे हो गया कि राजा प्राकृत धर्मों का भी उल्लंघन कर सकता है। यदि वह उसका उल्लंघन करेगा तो उस मनुष्य की भाँति जो प्रासाद की छत पर चढ़कर चाँद को पकड़ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए छलाँग लगा देता है, अपनी स्वयं हत्या कर लेगा।"

"परन्तु क्या तुम्हारा पिता किसी प्रकार के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर रहे हैं।"

प्रह्लाद ने गम्भीर भाव बनाए हुए कहा, "तो क्या यह आप नहीं जानते ?"

"मैं क्या नहीं जानता ?"

"यही कि पिताजी प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर रहे हैं। किसी अन्य के परिश्रम से उत्पन्न सम्पदा को स्वयं आत्मसात कर लेते हैं। मेरा एक सहपाठी कुमुद था। आप उसे जानते हैं। उसकी माँ का सैनिकों ने अपहरण कर लिया था और महाराज ने उसे कुछ मास तक अपने प्रासाद में रखा। तदनन्तर निकाल दिया। कुमुद की माँ ने आत्मग्लानि से पीड़ित हो अपने को जलती अग्नि में झोंक दिया था।

"बताइए, यह महाराज की अनधिकार चेष्टा थी अथवा नहीं ?"

"परन्तु वह यहाँ का राजा है। वह पूर्ण जनपद की रक्षा का भार अपने हाथ में लिए हुए है। इस कारण उसके विशेषाधिकार भी हैं।"

"विशेष कर्तव्यों पर विशेषाधिकार तो होते ही हैं, परन्तु प्रत्येक कर्तव्य की सीमा होती है और प्रत्येक अधिकार की भी।

"कोई एक किसी दूसरे के धर्मयुक्त अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकता। आचार्य जी, नगर में जिस किसी के पास कुछ अधिक धन एकत्रित होने लगता है, राजा उससे छीन लेता है। जब किसी की सम्पत्ति धर्मयुक्त उपायों से एकत्रित की गई हो तो फिर उससे छीन लेने में क्या युक्ति है ?"

"युक्ति यही है कि तुम्हारा पिता राज्य वहन करने वाला है। उसे धन चाहिए और जिसके पास हो, उससे न लिया जाए तो अभावग्रस्त से छीनने में तो स्थान ही नहीं होता। राज्य जैसे दुस्तर कार्य के लिए सब धन-सम्पद रखने वालों को स्वतः राज्य को देना चाहिए।"

"गुरुजी! ऐसे नहीं। प्रत्येक बात के लिए कोई नियम होना चाहिए। अनियमित छीना-झपटी से तो सदा असन्तोष और रोष उत्पन्न होगा। साथ ही उच्च से उच्च राज्याधिकारी के लिए भी उसके भोग की सीमा होनी चाहिए।

"गुरुजी! जब मैं यह कहता हूँ कि राजा ईश्वर नहीं, राजा मात्र है तो मेरा अभिप्राय यही है कि वह धर्म से बँधा हुआ है। ईश्वर असीम है। उसकी सामर्थ्य और अधिकार भी असीम हैं।"

"यह बुद्धि विहीन और अशिक्षित प्रजा के लिए कहा जाता है कि राजा ईश्वर है। इसका अर्थ है कि वह ऐश्वर्यवान है। इस प्रकार राजा के व्यक्तित्व और नाम की सज-धज से अलंकृत करने के लिए उसे ईश्वर कहा जाता है।"

"गुरुवर! आप यह किसलिए करते हैं, यह विवादास्पद नहीं। विवाद की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात तो यह है कि यह नाम और सज-धज किस प्रयोग में लाई जा रही है ? यदि ईश्वर होने का अर्थ यह है कि कुमुद की माँ का अपहरण करने वाला दण्ड से मुक्त हो सकता है तो यह अत्यन्त दूषित कार्य है। यदि किसी मनुष्य को ईश्वर मान लेने से वह किसी की भी सम्पत्ति लूट सकता है तो उससे ईश्वर का प्रत्यय छीन लेना चाहिए।"

"परन्तु राजा को ईश्वर मान लेने से लाभ तो तुमको भी होगा।"

"कैसे महाराज ?"

"जब अपने पिता के उपरान्त तुम राज्य गद्दी पर बैठोगे तो तुमको भी यह सुविधाएँ प्राप्त होंगी जो इस समय तुम्हारे पिता, इस जनपद के ईश्वर को प्राप्त हैं।"

"मुझे इन सुविधाओं की आवश्यकता नहीं। अधर्म तो कभी मेरे लिए कल्याण का सूचक नहीं हो सकता। मैं तो राजा से लेकर जनपद में एक निर्धन और दुर्बल व्यक्ति के लिए एक समान धर्म के नियमों का प्रचलन चाहता हूँ। यदि राजा को कुछ अधिक सुख-सुविधा प्राप्त होती है तो इस कारण नहीं कि वह ईश्वर है, वरन् इस कारण कि वह राजा है और राज्य प्रबन्ध चलाता है।"

"तुम तो अपना हित भी विचार नहीं कर रहे।"

"मेरा हित धर्म की स्थापना में है, न कि ईश्वर बनने में।"

"तुम्हारी बात तुम्हारा पिता नहीं मानेगा।"

"वह क्या नहीं मानेंगे ?"

"अपने को ईश्वर मानना छोड़ेंगे नहीं।"

"मैं उनको छोड़ने को नहीं कह रहा। मैं तो प्रजा को कह रहा हूँ कि उनको ईश्वर मत मानो। वे ईश्वर नहीं हैं। केवल राजा मात्र हैं और राजा ऋषियों से पदच्युत किया जा सकता है।"

"लोगों के ऐसा मानने से क्या होगा ?"

"इस संसार में सब प्राणी और वस्तु धर्म से बँधे हुए कार्य करते हैं। धर्म पथ के छोड़ने का अर्थ है भयंकर वन में भटक जाना और ऐसे व्यक्ति को इसके परिणामों को सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

"तो तुम अपने पिता को धमकी दे रहे हो ?"

"मैं उनको शुभ सम्मति दे रहा हूँ।"

"ठीक है। अभी तक मैं तुमको गुरु के नाते समझा रहा था और अब यहाँ के मन्त्री के नाते आज्ञा देता हूँ कि तुम अपने ही घर में स्वयं को बन्दी मानकर रहो। तुम घर से बाहर निकलते देखे गए तो प्राणदण्ड के भागी बन जाओगे।"

"मैंने क्या अपराध किया है ?"

"तुमने राज्य के विपरीत विद्रोह की ध्वजा उठाई है। राज्य के विपरीत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह का दण्ड मृत्यु है और मैं मन्त्री होते हुए इस दण्ड के देने का अधिकार रखता हूँ।"

"अधिकार तो आपको मृत्युदण्ड देने का है, परन्तु मन्त्रीवर ! मुझे मृत्युदण्ड देना अन्याययुक्त है। आपका मुझ निरपराध को बन्दी बनाना भी अन्याययुक्त है और उस अन्याययुक्त आज्ञा का पालन न करने पर मुझे मृत्युदण्ड देना तो घोर अन्याय होगा।"

"तो तुम नहीं मानोगे ?"

"जी नहीं। मैं अभी नगर के चौराहे पर खड़ा होकर कहने जा रहा हूँ कि राजा ईश्वर नहीं होता। राजा राज्य करने के कारण कुछ विशेष सुविधाओं का भागीदार है, परन्तु उसके अधिकार धर्म की सीमा में सीमित हैं और धर्म का एक लक्षण है कि जो कुछ एक व्यक्ति अपने साथ किया जाना पसन्द नहीं करता, वह व्यवहार उसे किसी दूसरे के साथ भी नहीं करना चाहिए।"

इतना कहकर प्रह्लाद ने गुरुवर के चरण स्पर्श किए और उनके आवास से बाहर निकल आया। शुक्राचार्य प्रह्लाद की युक्ति और साहस से प्रभावित हुआ था, परन्तु वह समझता था कि राज्य-कार्य बच्चों का खेल नहीं है। यह सब राजकुमार को समझ लेना चाहिए। वह मन में यह संकल्प कर बैठा था कि इस राजकुमार को सन्मार्ग दिखाना चाहिए। यदि यह न किया गया तो जनपद में घोर उपद्रव होने लगेंगे और फिर सहस्रों कदाचित् लाखों की हत्या होगी। इस सम्भावना पर आचार्य अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठे थे।

हिरण्यकशिपु को अनंगपुर से लौटे हुए दो सप्ताह हो चुके थे, जब शुक्राचार्य प्रह्लाद के विषय में दण्ड का निश्चय करने महाराज से मिलने गए। उनको राज्य-प्रासाद के मार्ग में बड़ी संख्या में सैनिक अस्त्र-शस्त्र लिए हुए राज्य प्रासाद की ओर जाते हुए दिखाई दिए।

आचार्य ने एक सैनिक से पूछ लिया, "क्या बात है जो आप लोग इतनी संख्या में राज्य प्रासाद की ओर जा रहे हैं ?"

"महाराज ने पूर्ण सेना को वहाँ एकत्रित होने के लिए कहा है।"

"क्यों ? यही तो पूछ रहा हूँ।"

"सुना है कि महाराज सेना के सम्मुख एक वक्तव्य देने वाले हैं।"

"सत्य ?" आचार्य को विस्मय हुआ। अभी तक प्रथा यह रही थी कि महाराज के सब कार्य महामन्त्री की सम्मति से होते थे, परन्तु इस समय उससे पूछे बिना सैनिकों का आह्वान किया गया है।

आचार्य जी रथ पर जा रहे थे और सैनिक पैदल थे। नगर चौराहे पर एक विशाल जनसमूह एकत्रित था और मार्ग अवरुद्ध हो रहा था। आचार्य जी को रथ रोकना पड़ा। राजप्रासाद को जाते हुए सैनिक भी उस भीड़ में सम्मिलित होते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहे थे।

मार्ग रिक्त न होने के कारण रथ रुका तो महामन्त्री ने समीप खड़े एक नागरिक से पूछा, "यहाँ क्या हो रहा है?"

"एक सभा हो रही है।"

आचार्य जी को विस्मय हुआ और बोले, "क्या यह सभा है? सभा तो वह होती है जहाँ विद्वान्, सभ्य जन विचार-विनिमय कर रहे हों।"

"विचार-विनिमय तो हो चुका है और उस विचार का परिणाम बताने के लिए ही लोगों को एकत्रित किया जा रहा है।"

"कौन एकत्रित कर रहा है?"

"यह मैं नहीं जानता।"

"सभा कहाँ हुई थी? उसमें कौन-कौन थे और क्या विचार हुआ है?"

"यह जानने के लिए ही तो हम यहाँ खड़े हैं।"

भीड़ में लोग कानों-कान रथ की चर्चा करने लगे थे। एक ने रथ पहचाना और कह दिया, "महामन्त्री का रथ प्रतीत होता है।"

"हाँ।" दूसरे ने कह दिया, "मालूम तो वही होता है।"

"यह यहाँ किसलिए आए हैं?"

"सभा भंग कराने।"

"क्यों?"

"देखते नहीं कि इस भीड़ में कितने सैनिक खड़े हैं?"

"इससे क्या होता है? सैनिक भी तो नागरिक हैं। उनकी रुचि भी इस कार्य में होनी स्वाभाविक है।"

"किस कार्य में?"

"नागरिकों की सभा में।"

"तो महामन्त्री भी उसी सभा में आए प्रतीत होते हैं?"

"कह नहीं सकते।"

एकत्रित भीड़ में इस प्रकार की चर्चा होने लगी थी। आचार्यजी विचार कर रहे थे कि वह अभी लौट जाए अथवा किसी दूसरे मार्ग से राज्य प्रासाद को चल दे। वह अभी विचार ही कर रहे थे कि राजकुमार प्रह्लाद एक प्रासाद से एक अति सुन्दर और ओजस्वी युवक के साथ बाहर निकला। प्रह्लाद एक क्षण तक गुरुजी को रथ में वहाँ खड़े देख झिझका, परन्तु शीघ्र ही सँभल और प्रणाम कर बोला, "गुरुदेव! आइए, आज हमारी इस सार्वजनिक सभा के अध्यक्ष पद को सुशोभित करिए।"

अब सभा का प्रयोजन जानने का अवसर जान शुक्राचार्य ने प्रह्लाद से पूछ लिया, "यह किसकी सभा है और क्यों की जा रही है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सभा नागरिकों की है और जनपद के सम्बन्ध में एक अत्यावश्यक विषय पर विचार के लिए बुलाई गई है।"

"परन्तु तुमको यह विदित होना चाहिए कि सभा में सभासद केवल सभ्य, सुशिक्षित और सदाचारी ही हो सकते हैं।"

"हाँ भगवन् ! आपकी कृपा से मैं यह जानता हूँ। सभा तो हो चुकी है और उसमें सब उपस्थित गण सभ्य, सुशिक्षित और सदाचारी ही थे।"

"परन्तु मैं उसमें आमन्त्रित नहीं था।"

"वह इसलिए कि आप राजा के वेतनधारी सेवक हैं। सेवक स्वयं कुछ नहीं होता। उसका कोई भी कर्म उसका अपना नहीं होता। वह अपने स्वामी का एक अंग मात्र होता है।"

"हाँ, यह तो है।"

"और गुरुजी ! आपके स्वामी महाराज हिरण्यकशिपुजी न सभ्य हैं और न सुशिक्षित। वह सदाचारी तो हैं ही नहीं। इस कारण आपको इस सभा में आमन्त्रित नहीं किया गया। आप अपने स्वामी का एक अंग मात्र हैं।"

"प्रह्लाद ! तुम विद्रोह कर रहे हो।"

"नहीं भगवन् ! यह विद्रोह नहीं कहलाता। धर्मानुसार आचरण करने वाला व्यक्ति विद्रोही नहीं हो सकता। विद्रोह अधर्माचरण का सूचक है।"

"धर्म क्या है ?"

शुक्राचार्य अपनी बात समाप्त नहीं कर सका कि समीप खड़े ओजस्वी युवक ने कह दिया, "राजकुमार ! चलो, सभा आरम्भ करने का समय हो गया है।"

"तो आइए गुरुवर !"

"मैं अपने स्वामी को मिलने जा रहा था और तुम्हारे इन लोगों ने मार्ग रोक रखा है। अब तो पीछे लौटने को भी मार्ग नहीं रहा।"

"यह तो बहुत ठीक है। अब आपके लिए न राज्य प्रासाद को जाने के लिए मार्ग रिक्त है और न घर लौटने का। परन्तु गुरुवर, एक मार्ग अभी भी खुला है। आइए, उस पर चलने का ही निमन्त्रण दे रहा हूँ।"

"और वह कौन-सा मार्ग है ?"

"धर्म का।"

शुक्राचार्य हँस पड़ा और बोला, "मैं विचार कर रहा हूँ कि क्या सत्य ही धर्म का मार्ग है ?"

"हाँ, विचार करिए और परीक्षा करिए।"

"तो तुम सभा करो। मैं यहाँ बैठा हुआ देख, सुन और विचार करूँगा।"

: १० :

सभा में वही ओजस्वी युवक, जो प्रह्लाद के साथ प्रासाद से निकला था और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको साथ लेकर सभा के मंच पर आया था, वक्तव्य देने लगा। उसने मानव समाज का विश्लेषण करके बताया, "यह इतर प्राणियों से सर्वथा विलक्षण समाज है। इसमें प्रत्येक को परमात्मा ने विकासयुक्त बुद्धि दी है। इसमें प्रत्येक को अपने, अपने भाई-बन्धुओं, अपने स्त्री-वर्ग, पड़ोसी और नगर के साथियों के कल्याण की कामना करनी चाहिए और उस कल्याण के निमित्त प्रत्येक को यत्न करना चाहिए।

"जो सबके कल्याण की बात होती है, वह करने वाले का भी कल्याण करती है। इस सिद्धान्त का विचार करके ही हमने यह निर्णय किया है कि इस जनपद में हो रहे अकल्याण को मिटा दिया जाए। इसके मिटाने में व्यक्तिगत हानि को सहन करके भी सबको सहयोग देना चाहिए।

"समस्या यह है कि ब्रह्मपुरी के महाराज मात्र एक मानव हैं। उसके अधिकार राजा होने से राज्य के सम्बन्ध में कुछ अधिक हैं, परन्तु मानव धर्म से वह भी वैसा ही बँधा है जैसे कि हम सब बँधे हुए हैं। यदि वह कुछ अमानवीय व्यवहार कर रहा है तो इस कारण कि हम उसे सहन कर रहे हैं।

"हम जनपद के विद्वान् और बुद्धिमान जनों ने एकत्रित्र होकर यह निश्चय किया है कि आज से महाराज की किसी भी अमानवीय आज्ञा का पालन नहीं किया जाएगा।

"मैं पूछता हूँ कि आपमें से कितने ऐसे हैं जो किसी भी मनुष्य को अमानवीय अधिकार देना चाहते हैं ?"

एक ने मंच पर से ही उच्च स्वर में कहा, "कोई नहीं।"

सभा में से सहस्रों कण्ठों से यह शब्द निकल गया, "कोई नहीं! कोई नहीं ! !"

जब 'कोई नहीं' घोष का तुमुलनाद शान्त हुआ तो उसी ओजस्वी मूर्ति ने कहा, "हम और कुछ नहीं चाहते। एक अमानवीय कृत्य यहाँ यह हो रहा है कि महाराज के पुत्र को राज्य प्रासाद में घुसने नहीं दिया जाता। उसकी माता को अपना उचित पटरानी पद प्राप्त नहीं है। यह सब अकारण है। यह अन्याय मिट जाना चाहिए। इसके साथ ही राज्य के कार्यभार में युवराज को उचित कार्य मिलना चाहिए।

"यह हमने विद्वत् सभा की ओर से माँग की है। इसके पूर्ण होने पर शेष बात पर विचार किया जाएगा।"

इस पर वक्ता ने कथन समाप्त किया और सभा विसर्जित कर दी। इस पर प्रजा 'भगवान नरसिंह की जय हो', 'भगवान नरसिंह की जय हो' के घोष करती हुई उठ खड़ी हुई और सब इधर-उधर अपने-अपने मार्ग पर चल पड़े।

आचार्यजी के रथ के लिए मार्ग अभी भी अवरुद्ध था। आचार्य इस भाषण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ता से मिलना चाहते थे, परन्तु मार्ग साफ होने से पूर्व ही प्रह्लाद आचार्यजी के पास आया और नमस्कार करके पूछने लगा, "गुरुवर ! सुना आपने ?"

"हाँ ! परन्तु यह कौन था ?"

"लोग इसे नरसिंह कहते हैं।"

"क्या अभिप्राय है इसका ?"

"नरों में सिंह।"

"ओह ! परन्तु सिंहों का आखेट किया जाता है ?"

"हाँ ! परन्तु आचार्यजी, नरसिंह का आखेट नहीं होता। नरसिंह राज्य करते हैं।"

"वह तुम्हारा पिता है।"

"मैं विद्वत् सभा के आदेश से आज राज्य प्रासाद में उचित कार्यभार सँभालने के लिए जा रहा हूँ।"

"परन्तु तुम्हारा नरसिंह कहाँ है ?"

"वह चला गया है।"

"कहाँ ?"

"जहाँ से आया था।"

"कहाँ से आया था ?"

"अब आएगा तो पूछकर बताऊँगा।"

"क्या वह अपने राज्य में रहता है ?"

"अवश्य रहता होगा।"

"तो अब ?"

"आप चलिए, मैं भी वहीं आ रहा हूँ।"

"अकेले ही अथवा विद्वत् सभा के सदस्यों सहित ?"

"अभी तो अकेला ही जा रहा हूँ।"

"तो आओ, मेरे रथ पर बैठ जाजो। मैं तुमको लिए चलता हूँ।"

प्रह्लाद गुरुजी के पीछे बैठ गया। मार्ग साफ होते ही रथ चल पड़ा। प्रजा ने युवराज को मन्त्री के साथ राज्य प्रासाद की ओर जाते देखा तो उनमें से कुछ यह समझे कि आचार्य विद्वत् सभा के निर्णय का पालन कराने के लिए युवराज को अपने साथ राज्य प्रासाद में ले जा रहे हैं। कुछ को यह सन्देह भी हुआ था कि यह मंत्री तो युवराज को बन्दी बनाने के लिए राज्यभवन में लिए जा रहे हैं।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की बातों में लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे कि इस सभा और युवराज के राज्य प्रासाद को प्रस्थान का क्या परिणाम होता है ?

राज्य भवन में रानी सुषुम्ना महाराज को नगर में हो रही सभा के विषय में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह रही थी। रानी की दासियों ने यह समाचार दिया था कि नगर के मैदान में नागरिकों की एक भारी सभा हो रही है। इस पर रानी ने महाराज को अपने आगार में बुला लिया था। हिरण्यकशिपु जब रानी के सामने आया तो उसने अपनी दासियों से प्राप्त सूचना महाराज के समक्ष रख दी और पूछा, "आप क्या कर रहे हैं ?"

"मुझे इस सभा की सूचना नहीं है। परन्तु मुझे इसकी सूचना होनी ही चाहिए, क्या इसकी आवश्यकता है ?"

"तो किसको होनी चाहिए ?"

"राज्य के मन्त्री को।"

"मुझे भय है कि आपके मन्त्री आपसे छलना खेल रहे हैं।"

"परन्तु इसका प्रमाण क्या है ? यह महारानी का केवल मात्र भ्रम भी तो हो सकता है।"

"परन्तु आज इस सभा को होने देना और उसमें सहस्रों लोगों का एकत्रित हो जाना क्या इसका प्रमाण नहीं है कि आपके हाथ से राज्य छीनकर आचार्यजी अपने शिष्य को देना चाहते हैं ?"

"मुझे दोनों में कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं हुआ। फिर भी मैं मन्त्रीजी को बुलाता हूँ और इस विषय में ज्ञान प्राप्त करता हूँ कि यह सभा किस प्रयोजन से बुलाई गई थी ?"

"हाँ, पता करिए और मेरी सम्मति मानिए। पचास सशस्त्र सैनिकों को उन पर छोड़ दीजिए। वे इस सभा को कुचल डालेंगे।"

हिरण्यकशिपु महारानी के आगार से बाहर मुख्य भवन में पहुँचा तो वहाँ शुक्राचार्य प्रह्लाद के साथ खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज ने आचार्य को प्रणाम कर कहा, "आपका कल्याण हो। इस समय मैं आपको ही बुलाने के लिए दूत भेजने वाला था।"

"महाराज ! आज्ञा करिए।"

"सुना है कि आज नगर में किसी प्रकार की सभा हो रही है। यह क्या है ?"

"महाराज ! मैं वहीं से आ रहा हूँ। सभा आपके राज्य की व्यवस्था के विपरीत मनोद्गार प्रकट करने के लिए की गई है। वह अव्यवस्था क्या-क्या है जिसे सभा दूर करना चाहती है, उसके विषय में विस्तार से बताने के लिए यह राजकुमार यहाँ आया है।"

"तो यह सभा इसने बुलाई थी ?"

शुक्राचार्य ने राजकुमार की ओर देखकर कह दिया, "हाँ, अब तुम बताओ।"

हिरण्यकशिपु ने कहा, "हम इसकी बात नहीं सुनना चाहते। यह वही ईश्वर का झगड़ा आरम्भ कर देगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज ! यह आपको बताएगा कि सभा में क्या हुआ है ? बात यह है कि सार्वजनिक सभा तो केवल वास्तविक सभा में हुए निश्चय को बताने के लिए हुई थी । वास्तविक सभा एक भवन में गुप्त रूप में हुई है और उस सभा में क्या हुआ, यह राजकुमार ही बता सकेगा ।"

"परन्तु यह तो विद्रोह है ?"

"जो कुछ भी है, उसको जानना तो चाहिए ।"

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद की ओर देखकर पूछ लिया, "अच्छा बताओ बालक ! यह सभा कहाँ हुई थी ?"

"यह नगर मन्दिर में हुई थी ।"

"इसमें कौन-कौन था ?"

"मैं सभा में आमन्त्रित नहीं था। इस कारण मैं वहाँ द्वार पर ही खड़ा रहा था। जब सभा हो रही थी तो मैं आचार्य जी के प्रासाद में था । वहाँ से नगर में से होता हुआ मैं अपने घर को जा रहा था कि मैदान में बहुत से लोगों को एकत्रित देखा। पता चला कि पितामह का एक दूत आया है और सभा कर रहा है। मैं सभा-स्थान पर जाने लगा तो मुझे भीतर नहीं जाने दिया गया ।

"सभा-स्थान से केवल एक व्यक्ति निकला था। वह पितामह का दूत ही था। कुछ अन्य लोग भी थे, परन्तु सुना है कि वे मेरे वहाँ पहुँचने से पहले ही चल दिए थे।

"पितामह के दूत ने मुझे पहचाना तो पूछ लिया कि मैं कहाँ गया था ? उसने मेरे घर पर मुझे बुलाने के लिए सन्देश भेजा था। मैंने बताया कि मैं आचार्य जी के निवास-स्थान पर था। इसके उपरान्त उस दूत ने मुझे कहा कि मैं आपसे मिल-कर उनकी सभा का निश्चय बता दूँ ।

"मैंने उस महापुरुष से कहा था कि वह स्वयं आपसे मिल लें। परन्तु उसने कहा है कि वह आपसे एक अन्य दिन मिलेगा। मिलने से पूर्व वह आपको समय देना चाहता है कि आप उसके द्वारा कही बातों पर विचार कर रखें। वह आपसे हाँ अथवा न का उत्तर लेने आएगा ।"

"तो वह मुझे पितामह का दास समझता है और मेरा उत्तर सुनकर मुझे सेवा से मुक्त करे अथवा न करे, यह निश्चय करने आएगा ।"

"यह उसने नहीं कहा। यह नगर पितामह का बसाया है और वह पितामह का दूत है। इसका जो भी अर्थ आप समझें ।"

हिरण्यकशिपु सभा के विषय में और अधिक जानने के लिए उत्सुक हो उठा । इस कारण उसने पूछा, "हाँ, उसने मुझे क्या कहला भेजा है ?"

"उसने कहा है कि आप तुरन्त राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें। साथ ही आप अपने उत्तराधिकारी को ऋषियों से स्वीकार कराएँ। स्वीकृत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराधिकारी को आप राज्य का कार्य-भार सौंप दें।"

"और मैं क्या करूँ?"

"आप अपनी प्रेमिकाओं से भोग-विलास करिए अथवा वन में आखेट और इच्छा हो तो वन में जाकर तपस्या करिए।"

"और मैं यदि ऐसा न करूँ तो?"

"तब मेरे कहने के लिए कुछ नहीं है।"

"और उसको बताओगे नहीं कि मैं उसको न तो पितामह का दूत मानता हूँ और न ही उसके आदेश को पितामह का कथन?"

"मैं समझता हूँ कि उसके पास आपके मन की बात जानने का मुझसे अतिरिक्त भी कुछ अन्य साधन है।"

"तो एक बात तुम भी सुन लो। हम तुमको युवराज नहीं मानेंगे। युवराज वह होगा जो यह मानेगा कि मैं ईश्वर का अवतार हूँ। विक्रम इस बात को मानता है। परन्तु प्रह्लाद, राज्य प्रासाद में एक अन्य रानी है। वह गर्भ धारण किए हुए है और उसके बालक उत्पन्न होने तक हम युवराज की घोषणा नहीं कर सकते। हम उसको भी देख लें। तब ही युवराज की घोषणा करेंगे।

"दूसरी बात है युवराज को ऋषियों से स्वीकार कराने की। हम उनका यह अधिकार नहीं मानते कि वे मेरे निर्णय को रद्द करें अथवा उस पर विचार भी करें।

"तीसरी बात भी सुन लो। अभी मैं वृद्ध नहीं हुआ। इस कारण मैं अभी राज्य-कार्य नहीं छोड़ूँगा।"

"परन्तु पिताजी!" प्रह्लाद ने कहा, "जनपद की प्रजा ने इस निर्णय को स्वीकार किया है। सब इस प्रस्ताव पर प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होते थे।"

"प्रजा मिट्टी के ढेले के समान होती है। इस पर जैसे संस्कार डाल दें, वैसा ही इसका रूप बन जाता है।"

"इस अवस्था में मुझे कुछ नहीं कहना। तो मैं अब चलूँ?"

"देखो बालक! हम तुम्हारी सब चतुराई को भाँप गए हैं। यह आयोजन तुमने प्रजा को मेरे विरुद्ध करने के लिए किया है। तुमने जो अपनी अनभिज्ञता बताई है, उस पर हमें विश्वास नहीं।"

"यह आपका अधिकार है कि आप इस बात पर विश्वास करें अथवा न करें। परन्तु पिताजी, पितामह के दूत की बात को स्वीकार न करने से बहुत कठिनाई उत्पन्न हो जाएगी।"

"तुम मूर्ख हो। मैंने जब ब्रह्मलोक में अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन किया तो पितामह मुझ पर प्रसन्न हो गए। वह मेरे कौशल और पराक्रम को देखकर प्रसन्न हुए थे। यदि अब उनका विश्वास नहीं रहा तो उनको चाहिए कि अपनी प्रसन्नता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस ले लें। भला इससे मुझे क्या अन्तर पड़ता है ?

"हाँ, हम तुमसे पूछते हैं कि तुम हमें ईश्वर मानते हो अथवा नहीं ?"

"पिताजी ! मैं आपको अपना पिता मानता हूँ।"

"और तुम ईश्वर के पुत्र हो ?"

"यह भी ठीक है, परन्तु मेरे एक अन्य पिता हैं।"

"अच्छा ! कौन है वह ?"

"यह आचार्य जी हैं। इनसे पूर्व नारद मुनि थे। और कदाचित् कोई अन्य भी हो सकते हैं। ये मेरे मानस पिता हैं।"

"और हम क्या हैं ?"

"आप इस मानवी शरीर के निर्माता मानवी पिता हैं।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि तुमको कोई अन्य गुरु मिला है जिसने तुममें यह धूर्तता भर दी है और तुम हमें धोखा देने लगे हो।

"देखो प्रह्लाद ! तुम्हें आज मेरे सामने और फिर हमारी राज्य सभा तथा पूर्ण प्रजा के सामने स्वीकार करना पड़ेगा कि मैं साक्षात् ईश्वर हूँ।"

"पिताजी ! मैं असत्य भाषण नहीं करता। इस कारण जिस बात को मैं नहीं मानता, उसको कहूँगा भी नहीं।"

"क्यों आचार्य जी ! यह आपको गुरु मानता है, फिर भी यह कहता है कि मैं ईश्वर नहीं हूँ।"

"महाराज ! यह विवाद पिता-पुत्र के मध्य है। इसमें मैं कुछ भी नहीं करूँगा।"

"देखिए आचार्य जी ! मैंने आपको विश्वास दिलवा दिया था हम महान् शक्ति के स्वामी हैं।"

"हाँ महाराज ! आपने प्रमाण दिया था कि ब्रह्मपुर में आप ही सबसे बली हैं, परन्तु दूसरे जनपदों में आप अपनी सामर्थ्य का प्रमाण नहीं दे सके। पृथु ने आपके प्रिय सेवक भगदत्त की हत्या करा दी और आप वहाँ कुछ कर नहीं सके।"

"तब तो हम समझते हैं कि महारानी सुषुम्ना का कथन सत्य है।"

"क्या कथन है महारानी जी का ?"

"उनका कहना है कि आप हमसे छलना खेल रहे हैं। आप हमारे मुख पर कुछ कहते हैं और पीछे इस बालक को दूसरी बात की शिक्षा देते हैं।"

शुक्राचार्य का मुख क्रोध से लाल हो गया। फिर भी वह कुछ बोला नहीं। उसे मौन देख हिरण्यकशिपु ने कहा, "देखिए आचार्य जी ! लक्षणों से वस्तु का ज्ञान होता है और आपके शिष्य के विचारों से आपके विचारों का ज्ञान होता है। अतः हम आज ही आपको यहाँ से चले जाने की आज्ञा देते हैं और हम इस बालक को इसी प्रासाद में बन्दी बना लेने की आज्ञा देते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसे हम एक मास की अवधि विचार करने के लिए देंगे। तदनन्तर हम इसे कहेंगे कि या तो यह हमें ईश्वर माने, अन्यथा यह अपने ईश्वर को बुला ले और हम इसको जीवित भस्म कर देंगे।"

शुक्राचार्य का मुख पीला पड़ गया। फिर भी वह मौन बैठा रहा। अब हिरण्य-कशिपु ने ताली बजाई तो दो सुभट्ट आ गए। उसने कहा, "इसको भवन के भूम्यान्तर्गत आगार में बन्द कर दो। वहाँ इसके भोजनादि का प्रबन्ध रहे।"

सुभट्टों ने प्रह्लाद को बाँह से पकड़ना चाहा, परन्तु प्रह्लाद ने घूरकर उनकी ओर देखते हुए कहा, "इसकी आवश्यकता नहीं। चलो, मैं स्वेच्छा से चलता हूँ।"

: ११ :

जब प्रह्लाद सुभट्टों के साथ महाराज के आगार से बाहर निकला तो शुक्राचार्य ने कहा, "तो महाराज ! मैं जाऊँ ?"

"हमने आपको अपनी आज्ञा सुना दी है।"

शुक्राचार्य उठ खड़ा हुआ और "महाराज ! आपका कल्याण हो।" आशीर्वाद दे बाहर निकल गया।

शुक्राचार्य राज्य भवन से बाहर निकला तो उसने देखा कि राज्य भवन के बाहर लोगों की भीड़ एकत्रित हो रही थी। लोग आचार्य जी को बाहर निकलता देख, उनके रथ के चारों ओर खड़े होने लगे।

शुक्राचार्य ने उनकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा तो भीड़ में से एक व्यक्ति ने पूछ लिया, "आचार्यवर ! युवराज कहाँ हैं ?"

"वह राज्य भवन में है।"

"वह आपके साथ क्यों नहीं आया ?"

"वह बन्दी बना लिया गया है।"

"क्यों ?"

"वह अपने पिता को ईश्वर नहीं मानता।"

"तो आप उसे ईश्वर समझते हैं ?"

"वह इस जनपद के ईश्वर हैं।"

"पर भगवन् ! जनपद में बड़े व्यक्ति को राजा कहते हैं।"

"हाँ, यह बात तो महाराज मानते हैं। परन्तु वह अपने को जनपद के राजा से बड़ा मानते हैं।"

"वह ऐसे नहीं हैं।" एक अन्य ने कह दिया, "उनके सेवक भगदत्त को उनकी आँखों के सामने फाँसी पर लटका दिया गया और यह जगदीश्वर अनंगपुर में कुछ नहीं कर सके।"

"यह बात मैंने महाराज को कही थी। परन्तु वह कह रहे थे कि इसका प्रबन्ध वह कर रहे हैं और शीघ्र ही ब्रह्मपुरी और अनंगपुर एक राज्य हो जाएँगे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग मुख देखते रह गए। अब आचार्य जी ने कहा, "राजकुमार को एक मास का अवसर दिया गया है। यदि उसने पिता का कहा न माना तो जलाकर भस्म कर दिया जाएगा।"

"आचार्य जी ! यह अनर्थ होगा। महारानी जी को बहुत दुःख होगा।"

"तो महारानी जी को कहो कि कोई उपाय करें। मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता।"

इतना कह शुक्राचार्य ने हाथ के संकेत से लोगों को एक ओर हटाया और रथ चला दिया।

नगर में धूम मच गई कि प्रह्लाद बन्दी बना लिया गया है और उसको जीवित जला देने की आज्ञा हो गई है।

प्रह्लाद की माता को भी यह समाचार मिला। वह उसी समय अपने निवास गृह से चलकर शुक्राचार्य के आवास पर जा पहुँची। परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के समय आचार्य जी अपने परिवार सहित वहाँ से विदा होने का विचार कर रहे थे।

उनका पूर्ण परिवार रथ पर बैठ चुका था और आचार्य जी रथ के अश्वों के समीप खड़े थे। जब महारानी वहाँ पहुँची तो आचार्य ने आगे बढ़कर नमस्कार किया, और पूछा, "आज्ञा हो महारानी जी ?"

"मैं आपके पास न्याय की माँग करने आई थी।"

"माताजी ! मैं न्यायकर्ता नहीं रहा। फिर भी एक बात आपको स्मरण रखनी चाहिए कि इस जनपद में बलवान की बात ही धर्म है और उसकी आज्ञा का चलन ही न्याय होता है।

"इस कारण मैं कुछ कर नहीं सका। अब क्षमा-प्रार्थना भी नहीं कर सकता। कारण कि मैं मन्त्री पद से हटा दिया गया हूँ। साथ ही मैं यह जनपद छोड़कर जा रहा हूँ।"

शुक्राचार्य की पत्नी और लड़की रथ में बैठी थीं। आचार्य जी की एक ही लड़की थी। वह अभी पाँच-छः वर्ष की थी। माँ और लड़की देख रही थीं कि महारानी जी की आँखों में आँसू बह रहे थे। उसे इस प्रकार आँसू बहाते देख माँ-बेटी की आँखें तरल हो गईं। आचार्य जी दृढ़ मुद्राए बनाए हुए थे। महारानी को मौन देखकर आचार्य जी ने कहा, "माताजी ! परमात्मा से प्रार्थना करिए। वही सहायक हो सकता है।

"एक बात मुझे दिखाई देती है कि कहीं भगवान् ने सहायता करने में देर कर दी तो आप विधवा तो होंगी ही, साथ ही पुत्रविहीन भी हो जाएँगी। अतः उस आँखों के अन्धे और कानों से बहरे भगवान् को कहना चाहिए कि शीघ्र ही सहायता भेजे।"

इतना कह शुक्राचार्य सारथी के स्थान पर बैठ गया और रथ को दौड़ाता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ चल दिया।

महारानी ने अपने को निस्सहाय पा विधवा और पुत्रविहीन होने की दोनों स्थितियों से बचने के लिए आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया। वह अपने निवास-स्थान पर जा आसन लगा बैठ गई और भोजन करना छोड़ दिया। वह समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा जल लेने लगी।

प्रह्लाद के बन्दी बना लिए जाने और उसके माता के अनशन का समाचार पूर्ण जनपद में और तदनन्तर जनपद के बाहर अन्य जनपदों में भी फैलने लगा।

एक सप्ताह व्यतीत होते-होते यह बात हिरण्यकशिपु के प्रासाद में भी चर्चा का विषय बन गई। हिरण्यकशिपु का विचार था कि शुक्राचार्य उसके कह देने पर भी कि उसे मन्त्री पद छोड़ देना चाहिए, छोड़कर नहीं जाएगा। कम-से-कम जाने से पहले वह उसे एक बार पुनः अपने आदेश पर विचार करने के लिए कहेगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। ब्रह्मपुर के शासक को इस पर विस्मय था!

सुषुम्ना को जब यह विदित हुआ कि आचार्य नगर छोड़ चला गया है तो वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने इस समाचार के विख्यात होते ही महाराज से यह प्रस्ताव करना आरम्भ कर दिया कि मन्त्री पद पर उसका भाई चन्द्र नियुक्त किया जाए।

चन्द्र एक सेना नायक था। वह शूरवीर था और राजा का भक्त था। इस कारण उस पर भरोसा किया जा सकता था, परन्तु प्रह्लाद के बन्दी बनाए जाने और उसकी माता के अन्न छोड़ प्राण त्यागने के प्रयास ने नगर-भर में भारी असन्तोष उत्पन्न कर दिया था।

ऐसे समय में सुषुम्ना ने भाई को मन्त्री बनाने के प्रस्ताव पर बल देना आरम्भ कर दिया।

हिरण्यकशिपु का कहना था—

"मैं अभी भी आशा कर रहा हूँ कि आचार्य जी वापस आ जाएँगे। उनको मेरे जैसा उदार नरेश कहीं नहीं मिलेगा।"

"परन्तु वह नहीं लौटेगा। मुझे विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि वह काम-भोज क्षेत्र में असुर राज्य का मन्त्री बनने चला गया है।"

"वह इतना योग्य व्यक्ति था कि संसार में वैसा दूसरा मिलना कठिन है।"

सुषुम्ना ने कह दिया, "मैं समझती हूँ कि आप चन्द्र को इस पद पर नियुक्त कर दें। उसमें सब प्रकार के ऐसे गुण हैं जिनसे वह इस पद के सर्वथा योग्य है, वह शूरवीर है और निर्णयात्मक बुद्धि रखता है।"

"मुझे भय है कि यदि प्रह्लाद की माँ को कुछ हो गया तो मेरा जीवित रहना कठिन हो जाएगा।"

"क्यों? उसके जीवन और आपके जीवन में परस्पर क्या सम्बन्ध है?"

"मैं जीवन की बात नहीं कह रहा। मेरा अभिप्राय प्रजा के रोष से है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसी कारण मैं चन्द्र की नियुक्ति की बात कह रही हूँ। वह जिस प्रकार लाठी से भेड़ें हाँकी जाती हैं, प्रजा को सीधा मार्ग दिखाता रहेगा।"

आखिर हिरण्यकशिपु मान गया और उसने अगले दिन राज्य सभा में घोषणा कर दी, "आचार्य शुक्र मन्त्री का कार्य छोड़कर कहीं वनों में चले गए हैं। अतः यह आवश्यक हो गया है कि उनके स्थान पर किसी योग्य व्यक्ति को मन्त्री पद पर नियुक्त किया जाए। हम सेनानायक चन्द्र को इस पद पर नियुक्त करते हैं और हम चाहते हैं कि वे प्रजागण के साथ वैसा ही न्याय का व्यवहार करें जैसा आचार्य जी किया करते थे और प्रजागण भी इसका वैसा ही मान करें जैसा कि आचार्यजी का करते थे।"

चन्द्र एक अविज्ञात व्यक्ति था। केवल उसके अधीन सैनिक ही उसे जानते थे और उनकी दृष्टि में भी वह अति क्रूर और मूर्ख व्यक्ति था।

परिणाम यह हुआ कि जो सैनिक प्रह्लाद की माता के कारण असन्तुष्ट थे, वह विचार करने लगे कि इस मूर्ख व्यक्ति के अन्याय और अत्याचार से कैसे मुक्ति पाई जा सकती है?

प्रह्लाद की माता के अनशन की गूँज जनपद से बाहर भी पहुँची थी और ब्रह्मपुरी के लोगों को कुछ ऐसा अनुभव होने लगा था कि जनपद के देहातों के अथवा बाहर के जनपदों के लोग ब्रह्मपुरी में घूमते-फिरते दिखाई देने लगे हैं।

चन्द्र को भी इस बात की सूचना मिली तो उसने नगर में चलते-फिरते लोगों से पूछ-ताछ आरम्भ कर दी। नगर मार्गों पर सैनिक खड़े कर दिए और वे किसी भी मार्ग पर चलते व्यक्ति को रोककर पूछ लेते कि उसका नाम क्या है? उसका धाम कहाँ है? वह किसका पुत्र है और किस काम से घूम रहा है? इससे असन्तोष और भी अधिक बढ़ने लगा।

कभी-कभी किसी स्त्री पर भी सन्देह कर रोका जाता तो वह सैनिकों से लड़ पड़ती। नगर में नित्य झगड़े होने लगे। सैनिक भी इस प्रकार के कार्य से ऊबकर कार्य छोड़ विद्रोह की बातें विचार करने लगे थे।

चन्द्र को भी सूचना मिल रही थी कि उसकी यह पूछ-ताछ की नीति असफल हो रही है।

एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति से एक सैनिक ने पूछ लिया, "भद्र! कहाँ के रहने वाले हो?"

"अनंगपुर के।"

"यहाँ किसलिए आए हो?"

"नहीं बताऊँगा।"

"यह तो बताना पड़ेगा।"

"इस जनपद के लोग अनंगपुर जनपद में जाते हैं तो उनसे इस प्रकार की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें पूछी नहीं जातीं।"

"परन्तु यहाँ विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी है।"

"क्या परिस्थिति उत्पन्न हो गई है?"

"यह कि एक महारानी ने अनशन किया हुआ है।"

"क्यों?"

"राजा ने उसके पुत्र को बन्दी बनाया हुआ है।"

"उसने क्या अपराध किया है?"

"यह मैं जानता नहीं।"

"तो मैं तुमको नहीं बताऊँगा कि मैं यहाँ किस अर्थ आया हूँ।"

"मैं तुम्हें पकड़कर मन्त्री के पास ले चलूँगा।"

"पकड़ने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं चलने को तैयार हूँ।"

जब यह विवाद हो रहा था तो मार्ग पर चलते-फिरते लोग एकत्रित होने लगे थे। इन एकत्रित होने वालों में अधिकांश ब्रह्मपुर के नागरिक थे और कुछ परदेशी भी थे। इन परदेशियों में से एक ने कहा, "महाराज ने नवीन मन्त्री की नियुक्ति के समय यह कहा था कि पूर्व मन्त्री श्री शुक्राचार्य का-सा ही व्यवहार होगा। उनके काल में यह पूछ-ताछ नहीं होती थी।"

"हाँ, हाँ! नहीं होती थी।" सब एकत्रित लोग बोल उठे। इस पर सैनिक भी चिढ़ गया और बोला, "यह बात आपको मन्त्री अथवा महाराज से कहनी चाहिए। मैं अपने स्वामी की आज्ञा का पालन ही कर रहा हूँ।"

इस पर एक बोल उठा, "तो चलो अपने मन्त्री अथवा राजा के पास।"

इस प्रकार सैनिक उस व्यक्ति को बाँह से पकड़ राज्य प्रासाद की ओर चल पड़ा।

: १२ :

सैनिक भी प्रजा द्वारा की गई इस अवज्ञा से असन्तुष्ट थे। अतः एक बार निर्णय हो जाए कि पूछ-ताछ होगी अथवा नहीं होगी; इस कारण उसने उस व्यक्ति को राज्य प्रासाद में ही ले जाना उचित समझा।

इन दिनों चन्द्र भी अपना कार्य राज्य प्रासाद में ही किया करता था। घटनावश चन्द्र और हिरण्यकशिपु उस समय विचार-विमर्श कर रहे थे, जब प्रजा की एक भीड़ उस सैनिक के साथ राज्य प्रासाद के बाहर जा पहुँची।

नगर में किसी ने यह सूचना दे दी कि प्रह्लाद की हत्या होने वाली है। इससे पूर्ण नगर ही राज्य प्रासाद की ओर उमड़ पड़ा।

सैनिक ने भीतर सूचना भेज दी कि वह एक विशेष व्यक्ति को पकड़कर लाया है जो अपने विषय में जानकारी महाराज को ही देना चाहता है और उसके साथ बहुत से लोग यहाँ एकत्रित हो गए हैं। लोग महाराज के दर्शन चाहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य भवन का प्रांगण भीड़ से खचाखच भर गया था और अभी अन्य लोग भी आ रहे थे। चन्द्र ने आज्ञा दी कि सब लोग तो भीतर नहीं आ सकते, इस कारण कुछ प्रमुख व्यक्ति ही भीतर आकर बता सकते हैं कि वे क्यों आए हैं ?

सैनिक उस व्यक्ति को, जिसे वह बन्दी बनाकर लाया था, साथ लेकर भीतर जाने लगा। उसके साथ एक अन्य व्यक्ति भी चल पड़ा। सैनिक ने पूछा, "तुम किसलिए चल रहे हो ?"

"मैं प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में चल रहा हूँ।"

"तुम्हारा नाम ?"

"यह भीतर चलकर बताऊँगा।"

सैनिक को यह विदित था कि मन्त्री ने कुछ प्रमुख व्यक्तियों को भी भीतर आने की स्वीकृति दी है। अतः वह उस व्यक्ति को भी मना नहीं कर सका।

राज्य प्रासाद के एक विशाल आगार में हिरण्यकशिपु बैठा मन्त्री से परामर्श कर रहा था, सैनिक दोनों नागरिकों को लेकर भीतर जा पहुँचा।

मन्त्री ने प्रश्न पूछा, "तुम किस प्रयोजन से आए हो ?"

पकड़कर लाए व्यक्ति ने कहा, "यह सैनिक मुझे यहाँ अकारण पकड़ लाया है।"

"किसलिए पकड़ लाए हो ?" मन्त्री ने सैनिक से पूछा।

परन्तु तीसरे व्यक्ति ने सैनिक के कुछ कहने से पूर्व ही कह दिया, "यह व्यक्ति अपने यहाँ आने के कारण को बताना नहीं चाहता।"

इस पर हिरण्यकशिपु ने पूछ लिया, "तुम कौन हो ?"

"मैं प्रजा का नेता हूँ।"

"तुमको किसने नेता बनाया है ?"

"नेता बनाए नहीं जाते। नेता स्वयं बना करते हैं। बाहर खड़ी भीड़ को देख लें। मैं उनकी बात कहने आया हूँ। इस कारण मैं उनका नेता हूँ।"

राज्य भवन के प्रांगण में एकत्रित भीड़ का हो-हल्ला भीतर भी सुनाई दे रहा था। इस कारण प्रमाण की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई।

"हाँ ! तो हमारी प्रजा क्या चाहती है ?" महाराज ने कुछ नम्रता से पूछ लिया। उसने इस स्वनियुक्त नेता के आने से पूर्व सब बात पर विचार किया था और वह उस बात को पूर्ण करने से पहले किसी प्रकार का प्रजा के साथ झगड़ा करना नहीं चाहता था।

नेता बने व्यक्ति ने कहा, "नगर में चलते-फिरते नागरिकों से पूछ-ताछ की जाती है कि वे कौन हैं, कहाँ से आए हैं और उनका क्या कार्य है इस नगर में ? यह पहले इस नगर में हुआ नहीं था। इस कारण असन्तुष्ट भीड़ बाहर इस आज्ञा को वापस लेने के लिए कहने आई है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु यह आज्ञा एक विशेष प्रयोजन से की गई है।"

"तो वह प्रयोजन ही बता दिया जाए।"

"राजा को विवश नहीं किया जा सकता कि वह सब कुछ प्रजा को बता दे।"

"देखिए श्रीमन्! आपका पुत्र प्रह्लाद कहता था कि सब नागरिक एक समान हैं। सबके साथ न्याय होगा। इस कारण हम इस नियम का पालन चाहते हैं।"

"परन्तु वह अभी राजा नहीं बना। इस कारण उसको नगर में व्यवस्था देने का अधिकार नहीं।"

"प्रजा ने उसको राजा बनाया है।"

"कब ?"

"आज एक सप्ताह से ऊपर की बात है। आचार्य शुक्र जी अभी यहीं पर थे। तब विद्वानों की एक सभा में राजकुमार को यहाँ का युवराज नियुक्त किया गया था और महाराज को राज्य के कार्य-भार से निवृत्त करने का निर्णय लिया गया था।"

"परन्तु हमने विद्वत् सभा की बात नहीं मानी।"

"विद्वानों की बात न मानने का परिणाम अच्छा नहीं हो सकता।"

"हमने यह निश्चय किया है कि प्रह्लाद को बुलाकर उसे हम अपने अधीन रहने की प्रेरणा दें। यदि वह मान जाए तो उसे मुक्त किया जा सकता है, अन्यथा उसे मृत्युदण्ड दिया जा चुका है।"

"तो महाराज! उससे पूछिए कि वह क्या चाहता है? प्रजा भी इस बात को जानने के लिए उत्सुक है।"

हिरण्यकशिपु ने विचार किया और ताली बजाई। दो सुभट्ट भीतर आ गए। उनको आज्ञा दे दी गई कि प्रह्लाद को यहाँ लाया जाए।

सुभट्ट गए और प्रह्लाद को चलाते हुए ले आए।

प्रह्लाद जन-नेता को देख मुस्कराया। हिरण्यकशिपु ने उसको मुस्कराते देखा तो पूछ लिया, "किसलिए मुस्कराए हो बालक ?"

"पिताजी! आपने मुझे इनके कहने पर बुलाया है ?"

"इन्हें जानते हो ?"

"जी! परन्तु यह अपना परिचय स्वयं देंगे।"

"यह तो कहता है कि यह जन-नेता है।"

"हाँ, यह ठीक कहते हैं।"

"छोड़ो इस बालक को। बताओ, हमारा प्रस्ताव स्वीकार है अथवा नहीं ?" जननेता ने कहा।

"क्या ?"

"तो तुम नहीं जानते ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जो कुछ आपकी बात जानता हूँ, उसे अस्वीकार कर चुका हूँ। कोई अन्य और बात हो तो बताइए ?

"देखो, मैंने एक बात विचार की है। मैं इस जनपद का ईश्वर हूँ। मेरे इस जनपद में अधिकार वही हैं जो तुम लोग ईश्वर को देते हो। रही बात अन्य जनपदों की, वह यदि तुम इतना मान जाओ तो हम पूर्ण पृथिवी को विजय कर उसके ईश्वर बनने का यत्न करेंगे।"

"पृथिवी की बात पिताजी, पृथिवी वाले जानें। मुझे उससे कोई प्रयोजन नहीं। मैं ब्रह्मपुर में रहता हूँ और यहाँ रहता हुआ भी मैं आपको वह अधिकार नहीं दे सकता जो ईश्वर को देता हूँ।

"वह सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है और सबके कर्मफल को देने वाला है। वह···।"

"बस, बस। कुछ विचार करो कि तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारे कर्मों का फल देने वाला मैं हूँ, वह नहीं है।"

"पर पिताजी! आप तो उसकी इच्छा के बिना एक तिनका भी नहीं तोड़ सकते।"

"तिनका? अरे मूर्ख बालक! हमने तुमको मृत्युदण्ड दिया है और तुम्हें बुलाया है कि यदि तुम धृष्टता के लिए क्षमा माँगो तो हम दण्ड वापस ले सकते हैं। अन्यथा···।"

प्रह्लाद ने पिता को चुप होते देखकर पूछा, "हाँ, अन्यथा भी बताइए?"

"तो तुमको मृत्यु से भय नहीं लगता?"

"पिताजी! आप मुझे मार नहीं सकते। आप अपने पुत्र की हत्या कर सकते हैं, परन्तु आप नहीं जानते कि आपके पुत्र के इस शरीर में एक जीवात्मा है। मैं वह हूँ और जीवात्मा मरता नहीं। उसे कोई मार नहीं सकता। इस कारण आप मेरी हत्या नहीं कर सकते।"

"बहुत ढीठ हो गए हो।"

"यह आरोप ठीक नहीं पिताजी। मैं वास्तविक ज्ञान को जान उसे हृदयंगम कर चुका हूँ। यह ढीठता नहीं है, यह तो ज्ञानवान होना है।"

"तो तुम नहीं मानोगे?"

"आपकी मानने योग्य बात मान रहा हूँ।"

"मानने योग्य और न मानने योग्य का निर्णय तुम कर रहे हो?"

"यह धर्मशास्त्र करता है। पितामह की स्मृति शास्त्र में यह लिखा है कि सनातन धर्मों का पालन सबके लिए आवश्यक है। राजा, रंक, बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब इस धर्म का पालन करें और उन धर्मों में से बहुत से हैं जिनका आप उल्लंघन कर रहे हैं। इसी कारण जनपद के विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप राज्य कार्य-भार के अयोग्य हैं। आपने इस जनपद की एक समय तक सेवा की है, इस कारण आपको सुख एवं शान्ति से जीवन व्यतीत करने की स्वीकृति दी है और आपके राज्य-कार्य को अब मैं चलाऊँगा।"

"अरे दुष्ट ! तुम अपने पिता, राजा और ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह करते हो ? तो जाओ नरक में। हमारी आज्ञा है कि तुम्हें भस्म कर दिया जाए।"

हिरण्यकशिपु सुभट्टों को आज्ञा देने के लिए क्रोध में हाथ उठा कहने ही लगा था कि जन-नेता ने हिरण्यकशिपु का हाथ पकड़ लिया और उसे घसीटकर सिंहासन से नीचे खींच लिया।

हिरण्यकशिपु के मुख से निकला, "पकड़ो पकड़ो।" परन्तु वह आगे कुछ नहीं कह सका। जन-नेता का एक मुक्का उसके मुख पर लगा। मुक्का वज्र के समान कठोर था और उसके मुख से बात नहीं निकल सकी। उसके सिर को चक्कर आने लगे और वह मुक्के के वेग से भूमि पर लुढ़क गया।

चन्द्र जन-नेता की ओर लपका, परन्तु जन-नेता की एक लात के प्रहार से ही वह दस पग दूर लुढ़क गया।

सामने खड़ा सुभट्ट भयभीत राज्य भवन से बाहर की ओर चिल्लाता हुआ भागा। बाहर प्रांगण में खड़ी प्रजा की भीड़ को वह पुकार-पुकारकर कहने लगा, "बचाओ ! बचाओ !! महाराज को मार डाला।"

भीड़ को नियन्त्रण में रखने के लिए राज्य भवन के सुभट्ट वहाँ खड़े थे। वे भीड़ का विचार छोड़ राज्य प्रासाद के भीतर भागे और भीड़ उनको भीतर को भागते देख स्वयं भी राज्य भवन के भीतर को लपकी।

परन्तु सुभट्टों और भीड़ के भीतर जाने से पूर्व हिरण्यकशिपु भूमि पर मृत पड़ा था। उसका पेट फाड़ा जा चुका था और भूमि रक्त से लथपथ हो चुकी थी।

सुभट्ट यह भयंकर दृश्य देख स्तब्ध रह गए। वह जन-नेता हिरण्यकशिपु के शव के समीप खड़ा हाथ के संकेत से सुभट्टों और भीड़ को दूर रहने को कहते हुए बोला, "तुम सब बाहर चलो।"

इस समय भीड़ में से किसी ने घोष कर दिया, "नरसिंह हरि की।" और भीतर तथा बाहर की प्रजा ने घोष कर दिया, "जय हो।"

सुभट्ट इस घोष से निस्तेज हो अपनी जान बचाने के लिए अपने आगारों की ओर भागे। वहाँ उनके स्त्री वर्ग रहते थे। उनके मन में भय समा गया कि वह नागरिकों की सुन्दर लड़कियों, बहुओं और स्त्रियों को हरकर महाराज के लिए लाया करते थे और इस समय भीड़ अपने साथ हुए अत्याचार का प्रतिकार लेने का यत्न कर सकती है। इस भय से त्रसित वे भवन के पिछवाड़े में अपने आगारों की ओर अपने बाल-बच्चों की रक्षा के लिए भागे।

वह जन-नेता जिसका नरसिंह हरि के नाम से जयघोष किया गया था, भीड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को राज्य भवन से बाहर चलने के लिए कहने लगा था।

भीड़ हर्षोल्लास से उत्तेजित हिरण्यकशिपु के शव को चीर-फाड़कर अपने मन का रोष निकालना चाहती थी, परन्तु उस जन-नेता के संकेत और वाणी में बल और प्रभाव था। उसके संकेत पर लोग प्रासाद से बाहर जाने लगे।

चन्द्र अब अपने मारे जाने की बारी समझ जन-नेता के पाँव पर अपना सिर रखे पड़ा था। जन-नेता ने पाँव की ठोकर से उसे दूर धकेलते हुए कहा, "उठो और राजमुकुट लाओ। नवीन राजा का राज्याभिषेक होगा।"

चन्द्र इससे सान्त्वना पाकर उठा और भवन के रत्नागार में चला गया।

हिरण्यकशिपु की मृत्यु का समाचार भवन के भीतर और बाहर सर्वत्र फैल गया था। बाहर प्रांगण में लोग नरसिंह हरि की जय-जयकार कर रहे थे और भवन के भीतर स्त्रियों के रोने-धोने से हाहाकार मचा था। भीतर के वे लोग जो राज्य परिवर्तन में लाभ समझ रहे थे, भवन से निकल प्रांगण में नागरिकों में जा खड़े हुए थे। सुभट्ट अपने गणवेश उतारकर सामान्य नागरिकों के पहरावे में अपने बाल-बच्चों को ले भवन के पिछवाड़े के द्वार से भाग रहे थे।

चन्द्र राजमुकुट लेकर आया तो नरसिंह हरि ने उसे पकड़ लिया और बाहर प्रांगण में आ गया। वहाँ एक ऊँचे स्थान पर वह खड़ा हो गया। उसने अपने समीप प्रह्लाद को खड़ा कर लिया और प्रजा को शान्त रहने का संकेत करने लगा।

जब लोग शान्त हुए तो नरसिंह हरि ने कहा, "इस जनपद के सर्वजन को विदित हो कि मैं प्रजापति कश्यप का कनिष्ठ पुत्र विष्णु हूँ। हिरण्यकशिपु मेरा भाई था। वह मेरी विमाता का पुत्र था।

"जब हिरण्यकशिपु के प्रजा पर अत्याचार का समाचार पितामह के पास पहुँचा तो उनका आदेश हुआ कि मैं हिरण्यकशिपु को सन्मार्ग दिखाऊँ। मैं यहाँ आया। यहाँ आकर मैंने भाई के व्यवहार का ज्ञान प्राप्त किया। जनपद के प्रमुख विद्वानों की सभा बुलाई और फिर भाई के पुत्र प्रह्लाद कुमार के विचार सुने।

"विद्वानों की सभा ने यह निश्चय किया कि हिरण्यकशिपु को कहा जाए कि वह राजगद्दी छोड़ दे और स्वेच्छा से अपने योग्य पुत्र प्रह्लाद को राज्य सौंप, वन को चला जाए।

"यह सन्देश प्रह्लाद के द्वारा हिरण्यकशिपु को भेज दिया गया। उस सन्देश के प्रतिकार में उसने प्रह्लाद को बन्दी बना लिया और उसे जीवित भस्म कर देने की आज्ञा दी।

"अब मेरे लिए कोई उपाय ही नहीं रह गया था कि मैं हिरण्यकशिपु को मार्ग से पृथक् कर दूँ। सन्मार्ग वह देख नहीं सका। इस कारण उसको मार्ग से हटा देना ही उचित प्रतीत हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं जानता था कि वह मुझसे युद्ध नहीं कर सकता। व्यसनों में डूबा हुआ व्यक्ति किसी भी चरित्रवान के सामने खड़ा नहीं हो सकता। परन्तु मैं उसको अवसर देना चाहता था कि यह सन्मार्ग स्वीकार कर ले।

"अब हिरण्यकशिपु का देहान्त हो गया है। वह अपने पापों का फल भोगने यमधाम को जा चुका है।

"इस कारण इस जनपद के सुप्रबन्ध के लिए यहाँ के विद्वानों ने प्रह्लाद को यहाँ का शासक नियुक्त करने का निश्चय किया है।

"अतः मैं प्रह्लाद का राज्याभिषेक करता हूँ और इस बालक को यह सम्मति देता हूँ कि वेद धर्म के अनुसार यहाँ का राज्य चलाए। धर्म और न्याय के मार्ग में अपना-पराया सब समान होना चाहिए। यहाँ विद्वानों का आदेश पालन होगा और सद्चरित्र तथा परिश्रमियों का मान होगा।

"मैं प्रह्लाद को इस जनपद का शासक घोषित करता हूँ।"

इतना कह विष्णु ने प्रह्लाद के सिर पर राजमुकुट रखकर कुमकुम से उसको तिलक लगा दिया।

इसके उपरान्त विष्णु ने अपने सबल, प्रभावी और गम्भीर स्वर में घोषणा की।

"महाराज प्रह्लाद की जय हो।"

सहस्रों उपस्थित जनों ने एक स्वर से इसके समर्थन में ऊँचे स्वर में कहा, "महाराज प्रह्लाद की जय हो।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमारसम्भव

□

पुराणों में समस्त विश्व एवं मानव जाति का इतिहास भरा पड़ा है। यह सारा इतिहास कथा तथा उपकथाओं के रूप में प्रचलित है, उन पुराणों को आधार मानकर इतर युग के कवियों तथा साहित्य-कारों ने अनेक काव्यों तथा अन्यान्य ग्रन्थों की रचना की है। तदपि अनेक कथा तथा उपकथाएँ नितान्त अछूती रह गई हैं।

'कुमारसम्भव' में उपन्यासकार ने कुमारसम्भव के जन्म से पूर्व-काल की जगत की स्थिति और शासन-व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है और बताया है कि आसुरी प्रवृत्ति के शासकों एवं जनों से त्रस्त होकर संसार त्राहि-त्राहि करने लगा था और किस प्रकार पितामह ब्रह्मा को एक ऐसे शासक की आवश्यकता अनुभव होने लगी, जिसका जन्म उसके माता-पिता की घोर तपस्या का परिणाम हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

पुराणों में अथाह ज्ञान भरा है। वह ज्ञान कथाओं और उपकथाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है। पुराणों में स्थान-स्थान पर ब्रह्मलोक, देवलोक, इन्द्रलोक, कैलासलोक का उल्लेख आता है। कथा किसी भी काल और युग की क्यों न हो, ब्रह्मलोक का राजा ब्रह्मा और देवलोक का राजा विष्णु, इन्द्रलोक का राजा इन्द्र तथा कैलासलोक का राजा शिव ही कहा जाता है। हाँ, असुरलोक और भूलोक के राजाओं में परिवर्तन होता रहता है। कदाचित् उनमें से कोई ऐसा प्रभावशाली, शक्तिशाली राजा नहीं हुआ, इसलिए एक नाम निर्धारित नहीं किया जा सका। हाँ, कालान्तर में अथवा यों कहा जाए कि मध्य युग में विक्रमादित्य साहसांक एक ऐसा सम्राट् हुआ है, जिसके नाम पर विक्रमी संवत् प्रचलित हुआ।

इसी प्रकार युगों-युगों तक और आज तक भी देवताओं के गुरु का नाम बृहस्पति तथा असुरों के गुरु का नाम शुक्राचार्य पड़ता आया है। बृहस्पति का अपर नाम 'गुरु' भी है। शुक्र का तो पूरा नाम ही शुक्राचार्य के रूप में लिया जाता है। तदनन्तर सूर्यवंशियों के कुल पुरोहित का नाम वशिष्ठ ही रखा जाता रहा है और इसी प्रकार व्यास पीठ के सम्बन्ध में भी प्रचलित है कि उस पीठ पर आसीन पण्डित व्यास व्यास नाम से अभिहित होगा। अस्तु।

हम अनेक स्थानों पर यह उल्लेख कर आए हैं कि हमारे पुराणों में समस्त विश्व एवं मानव जाति का इतिहास भरा पड़ा है। यह सारा इतिहास कथा तथा उपकथाओं के रूप में प्रचलित है, उन पुराणों को आधार मानकर इतर युग के कवियों तथा साहित्यकारों ने अनेक काव्यों तथा अन्यान्य ग्रन्थों की रचना की है। किन्तु तदपि अभी तक अनेक कथा तथा उपकथाएँ नितान्त अछूती ही रह गई हैं।

उन्हीं साहित्यकारों में, वर्तमान बीसवीं शती में हिन्दी के महान् साहित्यकार स्व० श्री गुरुदत्त का भी नाम है। उन्होंने पुराणों के आधार पर अनेक उपन्यासों की रचना की है। 'कुमारसम्भव' उसी श्रृंखला का एक उपन्यास है। कालिदास के काव्य 'कुमारसम्भव' से इसका किसी प्रकार भी साम्य नहीं है। यह विशुद्ध पुराण ग्रन्थों पर आधारित है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने कुमारसम्भव के जन्म से पूर्व काल की जगत् की स्थिति और शासन-व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है और बताया है कि आसुरी प्रवृत्ति के शासकों एवं जनों से त्रस्त होकर संसार त्राहि-त्राहि करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा था और किस प्रकार पितामह ब्रह्मा को एक ऐसे शासक की आवश्यकता अनुभव होने लगी, जिसका जन्म उसके माता-पिता की घोर तपस्या का परिणाम हो। इसके लिए उन्होंने नारद के माध्यम से कैलासाधिपति शिव को जहाँ प्रोत्साहित किया वहाँ हिमवान की कनिष्ठ कन्या उमा को प्रोत्साहित कर शिव को वर रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या के लिए प्रेरित किया।

शिव यद्यपि स्वयं शक्तिमान्, वीर्यवान तथा वीर और साहसी शासक थे। देवताओं में अनेक ऐसे अन्य शासक भी थे, किन्तु आसुरी प्रवृत्ति का सर्वनाश करने के लिए किसी विशिष्ट व्यक्ति की ही आवश्यकता थी। उस आवश्यकता की पूर्ति उमा-शिव के पुत्र कुमारसम्भव के माध्यम से की गई। अन्त में उनको विष्णु के पद पर प्रतिष्ठित कर प्रजा की तुष्टि का उपाय किया गया और कुछ काल तक राज्य संचालन करने के उपरान्त अन्त में तपस्या के प्रभाव से उत्पन्न पुत्र ने तपस्या का मार्ग ही ग्रहण किया।

यद्यपि यह उपन्यास है, तदपि तत्कालीन पौराणिक स्थिति का विशद् और वास्तविक वर्णन इसमें उपलब्ध है। विद्वान् उपन्यासकार ने एक कृति के माध्यम से दोनों का अनुभव पाठकों को कराने में सफलता अर्जित की है।

—अशोक कौशिक

जन्माष्टमी : २०४७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

"दीदी ! आज आपका मुख मलिन क्यों हो रहा है ?"

"तो तुम्हें यह मलिन प्रतीत हो रहा है ?"

"हाँ। केवल यही नहीं, वरन् यह भी कि आपके होंठ सूख रहे हैं।"

"हाँ। इसका कारण तो है; परन्तु तुम्हें बताऊँगी नहीं।"

"क्यों ?"

यह वार्तालाप दो बहनों के बीच हो रहा था। हिमाचल पर्वत की नगरी राजधानी औषधिप्रस्थ के राजप्रासाद में बैठी दो कुमारियाँ, वहाँ के महाराज की पुत्रियाँ एक बैठकघर में बैठी बातें कर रही थीं। बड़ी बहन की वयस इस समय इक्कीस वर्ष की थी और छोटी बहन पन्द्रह वर्ष की थी। दोनों अति सुन्दर, सुशिक्षित और सुशील थीं। यही कारण था कि बड़ी वहन ने अपनी उदासी और निराशा का कारण नहीं बताया। वह अपने यौवन के साथ उत्पन्न होने वाली भावनाओं तथा कल्पनाओं के विषय में बताना नहीं चाहती थी। वह समझ रही थी कि उसकी छोटी बहन, जो अभी कौमार्यावस्था में पदार्पण ही कर रही है, उस के मनोद्‌गारों को समझ नहीं सकेगी।

छोटी बहन बड़ी के अनुमान से कुछ अधिक ज्ञानवान प्रतीत होती थी। वह पुराण-शास्त्रों का अधिक गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करती रही प्रतीत होती थी। उसने भगवान् विष्णु के प्रति लक्ष्मी के मनोभावों के विषय में पढ़ा था। वह कैलास-पति भगवान् शिव के प्रति उसकी पत्नी सती की पूर्ण कथा को जानती थी। इन्द्र और शची के प्रणय की कथा भी उसे ज्ञात थी। इससे छोटी बहन उमा अपनी बड़ी बहन गंगा के मनोभावों के विषय में कुछ सन्देह किए बिना पूछ रही थी।

गंगा घण्टों ही अपने आगार में भीतर के द्वार बन्द कर गम्भीर चिन्तन में मग्न रहती थी और कभी-कभी अपनी प्रिय सखी प्रियंवदा के साथ नगर के बाहर वन में भ्रमण के लिए जाया करती थी। प्रत्येक बार जब वह जाती थी तो विशेष प्रकार की मनःस्थिति लेकर लौटा करती थी। कभी वह वसन्त ऋतु के प्रभात के समय प्रफुल्लित हुए गुलाब के फूल की भाँति भ्रमण से लौटा करती थी और कभी कोयल की भाँति मधुर वाणी से गुनगुनाती आती थी। एक बार तो वर्षा ऋतु आने की आशा से भरे हुए मयूर की भाँति नाचती, उछलती और फुदकती प्रतीत हुई थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु आज उसके मुख का रंग पीला पड़ा हुआ था। आँखें शुष्क, व्याकुल और चंचल प्रतीत हुई थीं। अधर सूखे हुए और वर्णविहीन हो रहे थे। वह छोटी बहन के समीप एक चौकी पर बैठी तो थी, परन्तु उसके हाथ परस्पर पंजा डाले घुटने पर धरे थे। छोटी बहन उमा ने देखा था कि हाथों में अस्थिरता थी। वे कभी-कभी रह-रहकर काँप उठते थे।

जब बड़ी बहन ने कहा कि वह अपनी चंचलता और उदासी का कारण नहीं बताएगी तो छोटी बहन ने पूछा, "क्यों ?"

बड़ी बहन ने कह दिया, "कारण न बताने का कारण भी नहीं बताऊँगी।"

"तो मत बताओ; परन्तु दीदी ! चाँद निकला सबको दिखाई दे जाता है और उस उदय हो रहे चाँद का अभिप्राय सब अपने-अपने मन से लगाते हैं। कोई उसमें शुभ के दर्शन करता है और कोई उसमें अशुभ भी देखने लगता है।"

"इसमें चाँद का हानि-लाभ कुछ भी नहीं होता। लोग जो चाहे समझ लें। उनके सत्य अथवा मिथ्या अनुमान की लाभ-हानि उनकी ही होती है, चाँद की नहीं।"

"यह ठीक है दीदी ! परन्तु चाँद का उदाहरण तो एकपक्षीय था। तुम चाँद नहीं हो। चाँद तो एक ही दिशा और गति से चलने वाला जड़ पदार्थ है। तुम तो सजीव, संवेदना से युक्त और बुद्धि रखने वाला प्राणी हो। अतः मेरी प्यारी बहन ! बता दो, तुम्हें क्या कष्ट है ?"

"परन्तु तुम समझ नहीं सकोगी।"

"यही तो पूछ रही हूँ कि क्यों नहीं समझ सकूँगी ?"

"वह इस कारण कि तुममें अभी यौवन का आविर्भाव नहीं हुआ। यौवन आने से विचारों में परिवर्तन होने लगता है।"

"क्या परिवर्तन होने लगता है ? तुम शब्दों में तो बता सकती हो। मैं देव-भाषा समझ सकती हूँ। कदाचित् अपनी आयु के बालक-बालिकाओं से अधिक भलीभाँति समझती हूँ। गुरुजी मुझे विद्या-विशारदा की उपाधि देने वाले हैं।"

गंगा ने विचार किया कि वह भाषा क्या हुई, जो मन के भावों को सभ्य ढंग से व्यक्त नहीं कर सकती ! इसलिए उसने बताने का निश्चय किया तो बताने लगी। उसने कहा, "उमा ! जानती हो कि लड़कियों का विवाह होता है ?"

"जानती क्यों नहीं ! रोहिणी का सोम से विवाह हुआ था न। और सुना है कि माताजी का पिताजी से विवाह हुआ था और फिर लीलावती का कमलेश्वर से हुआ था।"

"बस, यही। मैं भी किसी से विवाह करना चाहती हूँ।"

"तो कर लो।"

"वह नहीं चाहता।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो मत करो।"

गंगा हँस पड़ी और बोली, "यही तो तुम समझ नहीं सकतीं। मैं तो उन्हीं से विवाह करना चाहती हूँ।"

"तो इसका एक उपाय है। जब किसी वस्तु के लिए उत्कट इच्छा अनुभव हो और वह प्राप्त न हो तो उसकी प्राप्ति के लिए शास्त्र में उपाय बताया है।"

"क्या?"

"तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि इति क्रिया योगः। योग तो तुम समझती ही हो। अप्राप्य की प्राप्ति के लिए तीन उपायों की आवश्यकता है। तप अर्थात् निरन्तर प्राप्ति का यत्न। परन्तु यत्न विरोधी दिशा में भी हो सकता है। इस कारण यत्न की दिशा क्या हो, इसके लिए स्वाध्याय की आवश्यकता है। इसका अभिप्राय है कि जिसको तुम पाना चाहती हो, तुमको जानना चाहिए कि उसका स्वभाव क्या है। जब स्वभाव जानकर तुम उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करोगी तो तुम अवश्य उसे पा जाओगी।"

गंगा चुप रही। उमा के सुझाव ने उसके सम्मुख विचारों का पिटारा खोल दिया। वह गम्भीर विचार में लीन हो गई। उसका विचार था कि जिसको पाने की इच्छा रखती है, उसके स्वभाव को वह जानती है। परन्तु वह उसके स्वभाव को पसन्द नहीं करती। उसकी दृष्टि में वह फक्कड़, स्वेच्छाचारी, स्वतन्त्रता का प्रेमी, निरंकुश देवता है। वह सबका कल्याण करनेवाला और सबके साथ सद्भाव रखने वाला प्राणी है। उसने कभी कोई कार्य अपने स्वार्थ के लिए नहीं किया।

ये सब बातें बहुत अच्छी होते हुए भी गंगा के अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं थीं। वह दिन का आधा समय तो अपने शरीर के बनाने-सजाने और सुधारने में व्यय करती थी। प्रातः उठ व्यायाम करती, जिससे शरीर के अंग-प्रत्यंग चालू रह सकें। तदनन्तर स्नानादि करती। राजा की कन्या होने के कारण, दासियाँ उसे स्नान करवाती थीं। उसके शरीर को सुगन्ध लगातीं, उसके बालों को सँवारतीं और श्रृंगारित करती थीं। उसकी आँखों में काजल, होंठों पर सुर्खी और कानों में आभूषण इत्यादि से उसको सजाती थीं। फिर दूध, मक्खन, मिष्टान्न इत्यादि अल्पाहार लेती थी। इस सबको करते-करते दिन का प्रथम प्रहर समाप्त हो जाता था। तदनन्तर वह अपने शयनागार में जा अपने मुख और शरीर को देखती और देख-देखकर दासियों के कार्यों पर प्रसन्न होती थी। वह अपने श्रृंगार में दोष देखती तो उनसे सम्बन्धित दासी को बुला, समझाती कि अमुक बात में उसने भूल की है। यदि वह बालों की माँग खींचने में इस प्रकार करती तो वह अधिक आकर्षित हो जाती। उसे नाक की यह कील दूसरी पहनानी चाहिए थी। उसे उसके लम्बे केशों को बाँधने में यह कर दिया जाता तो वह अधिक सुन्दर प्रतीत होती।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार आधे दिन के उपरान्त वह मध्याह्न का भोजन करती और फिर विश्राम करती। दिन के तीसरे प्रहर के समाप्त होते-होते उसकी सखियाँ आ जातीं और वह उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करतीं। वे उसके साथ खेलती-कूदतीं और मनोरंजन के लिए उद्यान में भ्रमण पर चली जातीं।

इस प्रकार आधा दिन तो बन-ठन में व्यतीत हो जाता और आधा दिन उस बने-ठने शरीर की प्रशंसा सुनने में व्यतीत हो जाता। इससे वह विचार करती थी कि यह तो उसके स्वभाव से सर्वथा विलक्षण है, जिससे वह प्रेम करने लगी थी। उसने उसका अध्ययन किया था। वह प्रातः से सायंकाल तक दूसरों के हित की चिन्ता और उसके लिए कार्य करता रहता था।

वह कैलासपति शिव था। उसका अध्ययन करने के लिए वह चोरी-चोरी कैलासनगर गई थी और उसने उसके राज्य की अवस्था और उसके कार्य की व्यवस्था देखी थी। वह उसने पसन्द नहीं किया था। परन्तु वह समझती थी कि शिव के घर में कोई स्त्री नहीं। इस कारण इसकी व्यवस्था में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है और यदि वह इस महापुरुष की पत्नी बनकर यहाँ आ सकी तो वह ऐसा सुधार करेगी कि पूर्ण देश नियमबद्ध हो कार्य करने लगेगा। कैलासनगर में सड़कें बन जाएँगी, महल खड़े हो जाएँगे। उद्यान पुष्पित हो उठेंगे। फलों के उद्यान पृथक् होंगे और पुष्पोद्यान पृथक्। महल पृथक् होगा और सफाई करने वालों के झोंपड़े पृथक्। यहाँ अश्व और रथ चलेंगे, विमान उड़ेंगे और सब लोग सुखी अनुभव करेंगे।

यह धारणा बनाकर गंगा कैलास नगर से लौटी थी। उसके उपरान्त उसने इस महापुरुष से भेंट करने के लिए यत्न किया। उसकी सखी पद्मा ने उसका प्रबन्ध कर दिया। उसने अपनी भगिनी उलूकी से अपनी राजकुमारी की इच्छा व्यक्त की तो उलूकी ने कहा, "महाराज नहीं मानेंगे।"

"तो फिर कैसे हो सकेगा? भेंट तो होनी चाहिए। शिवजी अब भरपूर यौवन में हैं और यदि वह हमारी राजकुमारी के दर्शन कर सकें तो निस्सन्देह वह उसे पसन्द करेंगे और फिर विवाह का प्रबन्ध हो जाएगा।"

"एक बात हो सकती है।" उलूकी ने कहा।

"हाँ, बताओ क्या?"

"महाराज कभी-कभी प्रमोदवन में भ्रमण के लिए आते हैं। मेरे भाई उनके साथ जाया करते हैं। अगली बार जब वह वहाँ गए तो मैं उनके जाने के समय की सूचना तुम्हें भेज दूँगी। तुम राजकुमारी को लेकर वहाँ पहुँच जाना। तब दोनों में साक्षात्कार करा देना। शेष ईश्वराधीन है।"

इस भेंट का प्रबन्ध हुआ। उलूकी का सन्देश पद्मा को मिला कि उस दिन तीसरे प्रहर महाराज शिवजी प्रमोदवन में भ्रमणार्थ जाने वाले हैं। यदि वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमारी को लेकर वहाँ पहले ही पहुँच जाए तो दोनों में साक्षात्कार होना स्वाभाविक है।

इस साक्षात्कार और दोनों की परस्पर भेंट एवं वार्तालाप से ही गंगा निराश हो राजप्रासाद में लौटी थी। औषधिप्रस्थ में राजप्रासाद के अन्तःपुर में वह जब वहाँ जाकर चौकी पर धम से बैठी तो समीप की चौकी पर बैठी उमा ने उसे देखा और विस्मय में मुख देखती रह गई।

तदनन्तर दोनों में उपरिवर्णित वार्तालाप हुआ। जब उमा ने तप, स्वाध्याय के विषय में कहा तो गंगा चुप रही और मन में विचार करने लगी कि आखिर उमा बच्ची ही तो है। यह सब बात को समझ नहीं सकती। इस कारण वह उठी और अपने आगार में चली गई।

: २ :

उमा बहन को इस प्रकार एकाएक उठकर अपने शयनागार में जाती देखती ही रह गई। जब वह बैठकघर से निकल गई तो उमा खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसका विचार था कि उसको कोई देख नहीं रहा और बहन तो सुन सकने की सीमा से परे ही चली गई थी।

परन्तु यह बात नहीं थी। उमा की माँ मैना ने तो गंगा को जाते देखा था और उमा को उसकी ओर पहले विस्मय में निहारते और फिर खिलखिलाकर हँसते देखा था। वह जब बैठकघर में आई तो गंगा अपने दुःख का कारण बता चुकी थी और उमा भी उसे अपनी सीख दे चुकी थी। इस कारण माँ दोनों बेटियों की बात सुन नहीं सकी थी। उसने उमा को हँसते देखा तो समीप आकर पूछा, "हँस किसलिए रही थी?"

उमा को माँ के पीछे से आगे आ इस प्रकार पूछने पर पहले तो कुछ अटपटा प्रतीत हुआ, परन्तु शीघ्र ही अपने पर नियन्त्रण कर बताने लगी, "माँ! दीदी किसी से विवाह करना चाहती है और वह इससे विवाह करना नहीं चाहता। बस, यही बात है।"

"और तुम हँसीं किस कारण हो?"

"क्योंकि मनुष्य प्रत्येक बात के लिए प्रयत्न कर सकता है। मैंने दीदी को प्रयत्न का ढंग बताया है और फिर यह कहा है कि ढंग से प्रयत्न करने पर अपने को ईश्वर के आश्रय छोड़ देना चाहिए।

"लगता है दीदी नाराज हो, अपने शयनागार में चली गई हैं।"

माँ उमा की बात सुन कुछ देर तक तो विचारमग्न खड़ी उमा की ओर देखती रही। फिर बोली, "अच्छा! तुम अपनी पढ़ाई करो। मैं गंगा से मिलकर पता करूँगी कि वह क्या चाहती है।"

उमा उठकर अपने पठन-कक्ष में चली गई और मैना बड़ी लड़की की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक बात जानने के लिए उसके शयनागार की ओर चल पड़ी।

माँ ने लड़की के शयनागार का द्वार खोला और भीतर आ पूछने लगी, "अभी दिन रहते ही शयनागार में आने का क्या अभिप्राय है ? स्वास्थ्य ठीक है न ?"

"नहीं माँ ! मानसिक कष्ट है।"

"क्या कष्ट है ?"

"कैलासपति को तो तुम जानती ही हो। मैं उनसे प्रेम करने लगी हूँ।"

"क्यों ?"

"नहीं जानती कि क्यों। लगभग एक वर्ष पूर्व की बात है। एक दिन मैंने उन को प्रमोदवन में विहार करते देखा था। तब से ही मैं उनको पति के रूप में पाने की इच्छा करने लगी हूँ।

"माँ ! एक दिन मेरी सखी पद्मा ने मुझे यह कहा कि पहले उसके राज्य के दर्शन करने चाहिए और मैं पिताजी के विमान में कैलास नगर जा पहुँची। वहाँ की अवस्था तो कुछ अच्छी नहीं थी। सड़कें थीं ही नहीं। लोग पूर्ण वस्त्र भी नहीं पहने थे। कोई साँपों से खेलता हुआ दिखाई दिया तो कोई बन्दरों से। कोई काम करता दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मैं तो वहाँ से निराश लौटने वाली थी कि यह महापुरुष दिखाई दे गए। हाथ में त्रिशूल लिये आ रहे थे। गले में नागों का जोड़ा लटक रहा था। अधोवस्त्र तो एक व्याघ्र के चर्म का बना था और शेष शरीर नंगा था। पाँव में खड़ाऊँ भी नहीं थीं।

"परन्तु माँ ! उनके ओजस्वी रूप को देख मैं मन्त्र-मुग्ध हुई खड़ी रही। उन्होंने मुझे देखा नहीं। वह अपने ही विचारों में लीन समीप से निकल गए और मेरे संकल्प को दृढ़ कर गए कि इनसे विवाह का यत्न करूँगी।

"ज्यों-त्यों दिन व्यतीत हो रहे थे, मैं अपने मन में व्याकुलता बढ़ती अनुभव कर रही थी। यह मुझे ज्ञात था कि आप और पिताजी इसमें सहायता तो दूर रही, विरोध ही करेंगे। इस कारण आपसे नहीं कहा।

"मैंने उनसे स्वयं साक्षात्कार करने का यत्न किया। पद्मा की बहन उलूकी ने समाचार भेजा था कि कैलासपति आज प्रमोदवन में आने वाले हैं। अतः मैं आज वहाँ गई थी। वह अपने वृषभ नाम के वाहन पर वहाँ आए थे। वह आज अकेले थे। इस अवसर से लाभ उठा मैं उनके सामने जा खड़ी हुई। वह पूछने लगे, 'देवी ! कौन हो ?'

"मैंने कहा, 'हिमवान की ज्येष्ठ पुत्री गंगा हूँ।'

" 'यहाँ वन-भ्रमण के लिए आई हो ?'

" 'नहीं भगवन् ! मैं तो आपके दर्शन करने आई हूँ।'

" 'कैसे जानती थीं कि हम यहाँ आ रहे हैं ?'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'आपके राज्य से किसी ने यह समाचार भेजा था कि आप आज यहाँ आने वाले हैं और कदाचित् वह आपके साथ होगा। अतः उसकी सखी, जो अपनी सखी से मिलने के लिए इच्छुक थी, यहाँ आने लगी तो मैं भी आपके दर्शनार्थ चली आई हूँ।'

" 'अभिप्राय यह कि तुमने हमें पहले भी देखा है ?'

"हाँ भगवन्! इसी प्रमोदवन में। यह तो आप जानते ही हैं कि यह वन दोनों राज्यों की सीमा पर है और दोनों स्थानों के लोग यहाँ मनोरंजन के लिए आते रहते हैं।'

" 'हाँ! यह स्थान अति रमणीक है और यहाँ के हरिण अति प्यारे लगते हैं।

" 'तो अब हम जाएँ ?' वह महापुरुष पूछने लगे।

"मैंने कहा, 'मैं आपसे कुछ जानना चाहती हूँ।'

" 'क्या ?'

" 'आप विवाह कब करेंगे ?'

" 'किस कारण पूछ रही हो ?'

" 'मैं आपकी छत्रछाया में पत्नी के रूप में रहना चाहती हूँ।'

" 'तुम हो तो सुन्दर; परन्तु हम समझते हैं कि विवाह से पूर्व दो बात कर लो। एक तो हमारा राज्य देख लो, जिससे अनजाने कहीं वहाँ चली गईं तो बाद में पश्चात्ताप न हो।'

" 'मैंने आपके राज्य को भलीभाँति देखा है।'

" 'क्या देखा है ?'

" 'यही कि वहाँ बहुत कुछ विकास और उन्नति की आवश्यकता है। यदि आप मुझे वहाँ ले गए तो मैं आपका यह कार्य कर दूँगी और कैलास नगर को अपने राज्य की राजधानी के समान बना दूँगी।'

" 'और राजधानी में रहने वालों को भी अपने नगरवासियों की भाँति दास बना दोगी ?'

" 'महाराज! वहाँ के रहने वाले दास नहीं हैं।' मेरा कहना था।

" कैलासपति ने कहा, 'यह हमने मिथ्या नहीं कहा। वहाँ एक राजा तुम्हारे पुरखा हो चुके हैं, जिन्होंने हमारे परिवार को कभी पसन्द नहीं किया और विवाह के उपरान्त यज्ञ में अपनी लड़की और जामाता को भी नहीं बुलाया। इस पर हमारे परिवार की उस महिला ने अपना अपमान समझकर अपने को आग लगा भस्म कर डाला था।

" 'तो तुम हमारे राज्य को भी वैसा ही बनाना चाहती हो, जहाँ अपने घर की स्त्रियों और उनके पति का अपमान किया जाए ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'नहीं देवी ! यह नहीं होगा । तुम्हारी सभ्यता तुम्हें शुभ हो । वह हमें पसन्द नहीं । हम तो सबका कल्याण करने वालों में हैं और यदि मैं राज्य को सँवारने-बनाने लगा तो निस्सन्देह सेवकों की एक सेना रखनी पड़ेगी और फिर सेवकों का स्वामी होने के कारण हम भी तुम्हारे पूर्वजों के समान मूर्ख और क्रूर हो जाएँगे ।

" 'नहीं, यह नहीं होगा देवी ! यहाँ से चल दो, अन्यथा जो कुछ उस स्त्री के पति ने तुम्हारे पूर्वजों के यज्ञ में किया था, हम यहाँ न कर बैठें ।'

"माँ ! मैं मुख देखती रह गई और वहाँ से निराश हो, लौट आई हूँ ।"

"तो उस गँवार व्यक्ति का विचार छोड़ दो । वहाँ कुछ है भी नहीं । भाँग उत्पन्न होती है और वही पी जाती है । जानती हो, भाँग पीने से क्या होता है ?"

"क्या होता है माँ ?"

"पीने वाले अपने विचार-लोक में विचरने लगते हैं और फिर संसार में सुख-सुविधायुक्त जीवन भी नहीं चला सकते । कहीं अधिक पी जाते हैं तो मुख पर बैठी मक्खी भी नहीं उड़ा सकते ।"

"परन्तु माँ ! मैंने उनको तीन बार देखा है और उनको सदा सजग, सचेत और उज्ज्वल कान्तिमय ही देखा है ।"

"तो उस समय उसने नहीं पी होगी ।"

"मैं अभी यही विचार कर रही थी कि यदि वहाँ विवाह नहीं हुआ तो फिर क्या होगा ?"

"होगा क्या ? तुम्हारा देवलोक, किन्नर अथवा त्रिवृत्त देश के किसी राज-कुमार से विवाह कर देंगे ।"

"परन्तु माँ ! अभी तक मैं मन से उन्हें ही वरण किए हुए हूँ । मैं उनके अति-रिक्त किसी से अभी विवाह की कल्पना भी नहीं कर सकती ।"

"देखो, मैं तुम्हारे पिताजी से कहूँगी कि तुम्हारा कुछ अन्य राजकुमारों से परिचय करा दें । उनसे परिचय के उपरान्त अपने विवाह का निश्चय कर लेना ।"

इस घटना के उपरान्त महाराज हिमवान ने एक यज्ञ रचा और उसमें कई देशों के राजकुमारों को बुलाया । कैलासपति को उन्होंने नहीं बुलाया । यज्ञ की पूर्णाहुति से पूर्व एक दिन हिमवान ने अपनी लड़की गंगा से पूछा, "अब बताओ, किस देश में जाना चाहती हो ?"

गंगा आँखें झुकाए पिता के सम्मुख खड़ी रही । पिता ने पुनः पूछा, "हाँ, क्या इच्छा है ? बताओ ।"

"पिताजी ! माँ को बताऊँगी ।"

"ठीक है । आज रात बता देना । कल यज्ञ की पूर्णाहुति होगी । उस समय मैं कन्यादान करना चाहता हूँ ।"

रात भोजनोपरान्त माँ ने लड़की से पूछा । लड़की ने बताया, "माँ ! जितने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार यहाँ आए हैं, उनमें से कोई कैलासपति के उपानह से भी तुलना नहीं रखता। न माँ, अब मैं विवाह नहीं करूँगी।"

माँ ने उद्विग्न हो कहा, "मगर अभी विवाह न करने को किसलिए कहती हो? संसार बहुत बड़ा है। इसमें सैकड़ों देश हैं। मैं कहूँगी तो तुम्हारे पिता तुम्हारा स्वयंवर भी कर देंगे।"

"नहीं माँ! मेरे लिए राज्य का धन व्यर्थ में गँवाना नहीं चाहिए। और फिर वहाँ किसी असुर देश का राजकुमार भी तो आ सकता है, जो बलपूर्वक मुझे उठा ले जाए और बल से मुझ पर अपना अधिकार मान बैठे।

"माँ! यदि कहीं ऐसा हुआ तो मैं अपने को भस्म कर दूँगी।"

माँ चुप रही। गंगा के विवाह की चर्चा अभी स्थगित कर दी गई।

परन्तु इन दिनों नारद ब्रह्मलोक से काम्बोज जाता हुआ हिमाचल प्रदेश में से गुजरा तो महाराज हिमवान का अतिथि हो गया। उसके सम्मुख जब गंगा की कथा कही गई तो नारद ने अपनी भविष्यवाणी कर दी और कहा, "यह विवाह इसके भाग्य में नहीं। फिर भी मैं गंगा के गर्भ से एक पुत्र की उत्पत्ति देखता हूँ, जो कैलासपति से भी अधिक ओजस्वी, शूरवीर और सुन्दर होगा।"

"तो भगवन्! गंगा का विवाह कहाँ होगा?"

नारद ने आँखें मूँद विचार किया और कहा, "इसका विवाह नहीं होगा।"

"तो पुत्र कैसे होगा?"

"यह मैं नहीं बता सकता।"

इस पर तो गंगा के माता-पिता को यह समझ आया कि यह लड़की देवलोक में जाकर वेश्यावृत्ति करने लगेगी। इससे गंगा माता-पिता के मन से उतर गई।

नारद की उमा से भी बातचीत हुई। नारद ने पूछा, "सुनाओ उमा बेटी! तुम आजकल क्या करती हो?"

"भगवन्! मैं भाषा तथा व्याकरण पढ़कर अब कपिल मुनि का ग्रन्थ सांख्य पढ़ रही हूँ।"

"और तुम विवाह कब करोगी?"

"नहीं जानती भगवन्! अभी मन में प्रेरणा नहीं हो रही। दीदी कहती है कि अभी तीन-चार वर्ष में प्रेरणा होने लगेगी। कैसे होने लगेगी, अभी तो यह भी नहीं जानती।"

"सौभाग्यवती रहो बेटी!" मुनि ने आशीर्वाद के रूप में कह दिया, "एक बात समझ लो कि तब तक सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए, जिससे यदि विवाह की प्रेरणा हो तो तुम्हें ज्ञान हो कि विवाह का क्या प्रयोजन है! साथ ही यह भी कि वह प्रयोजन कहाँ से सिद्ध होगा!"

नारद के जाने के उपरान्त उसके द्वारा की गई भविष्यवाणी पर विचार होने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। नारद का कहा असत्य होगा, यह तो स्वप्न में भी विचार नहीं किया जा सकता था। इस कारण बिना विवाह के गंगा माता बनेगी, इस पर विचार होने से गंगा के भविष्य के विषय में बहुत बुरे-बुरे विचार उत्पन्न होने लगे। देवलोक में तो विवाह की प्रथा मिश्रित थी। जीवन-भर के लिए सम्बन्ध बनते थे। कुछ एक सम्बन्ध वर्षों के लिए भी होते थे। ऐसे उदाहरण तो बहुत मिलते थे, जब सन्तान-उत्पत्ति के लिए सम्बन्ध बनाए जाते थे और सन्तान-उत्पन्न होते ही विवाह सम्बन्ध टूट जाता था। इन प्रथाओं से इन्द्र राजनीतिक लाभ उठाता रहता था।

हिमाचल प्रदेश में विशेष रूप में हिमवान के परिवार में विवाह जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध माना जाता था। इस कारण गंगा के विषय में दिन-प्रतिदिन अधिक और अधिक चिन्ता होने लगी। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जाता था और गंगा किसी भी युवक से विवाह करने से इनकार करती थी तो नारद की भविष्यवाणी पर चिन्ता बढ़ती जाती थी।

: ३ :

नित्य की निन्दा, आशंका और अपनी इच्छा के विपरीत सम्मति सुन-सुनकर गंगा एक दिन घर से लापता हो गई। गंगा की सखी पद्मा से पूछताछ होने लगी तो उसने बताया, "जाने से एक दिन पूर्व सायंकाल गंगा मिलने आई थी और मैंने उसे यह समाचार दिया था कि मेरा विवाह निश्चय हो गया है। इसपर उसने पूछा था कि मैं कहाँ विवाही जा रही हूँ।

"मैंने कहा, 'सखी ! नहीं जानती। कल पिताजी समाचार लाए थे कि जहाँ वह गए थे, वह मान गए हैं। और दो दिन में ही वह मुझसे विवाह के लिए अपने सगे-सम्बन्धियों को लेकर आएँगे और विवाह करके मुझे ले जाएँगे।'

"गंगा ने पूछा, 'बिना देखा-देखी के विवाह हो रहा है ?'

"मैंने बताया, 'हम ब्राह्मण हैं। हम ब्रह्म-विवाह को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। ब्रह्म-विवाह में कन्या पक्ष वाले वर पक्ष को देखकर निर्वाचन करते हैं। इस कारण उन्होंने देखा होगा और अवश्य पसन्द किया होगा।

" 'मेरे पिताजी ने वर को देखा है। उनकी परीक्षा भी की प्रतीत होती है और पसन्द कर निश्चय कर लिया है।'

" 'तो तुम बिना देखे ही अन्धे कुएँ में छलाँग लगा रही हो ?'

" 'पिताजी देख आए हैं। कहते हैं कि कुआँ अन्धा नहीं। जल से भरा है, कुएँ पर रहट भी लगा है जिससे सबको जल पीने को मिलता रहे।'

"महारानी जी !" पद्मा ने गंगा की माँ को बताया, "इसपर गंगा गम्भीर विचार में मग्न यहाँ से चली गई। मैं आज किसी समय उसके घर पर आ उससे अपने विवाह पर आने का निमन्त्रण देने वाली थी, परन्तु महारानीजी ने तो उलटा समाचार सुनाया है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी ने यह कथा घर पर बताई तो उमा ने एक बात और बता दी। उसने कहा, "माताजी ! दीदी कह रही थी कि जब माता-पिता को अपने बच्चों के मनोबल पर विश्वास न रहे तो जीवन में कुछ भी रस नहीं रहता।"

इस प्रकार यह समझा गया कि गंगा ने दृषद्वती नदी में प्रवाह ले लिया है। कुछ दिन ढूँढ़ने और चिन्ता करने के उपरान्त बात समाप्त हो गई।

परन्तु यह घटना उमा के मन पर अपना एक अमिट प्रभाव छोड़ गई। वह विचार करती थी कि वह कैसा व्यक्ति है कि गंगा जैसी सज्ञान लड़की उसे देखते ही उसके आकर्षण में आ गई। उसने गंगा और उसकी सखी पद्मा से सुना था कि वह कभी- कभी प्रमोदवन में आता है। इस कारण वह इच्छा करने लगी थी कि वह भी किसी ऐसे दिन प्रमोदवन में जाए, जिस दिन कैलासपति वहाँ आने वाला हो। वह तनिक देखे तो सही कि उसमें क्या चमत्कार है, जिस कारण उसकी सज्ञान बहन पागल बन उसकी माला जपने लगी थी।

वैसे वह बचपन में अपने माता-पिता के साथ प्रमोदवन में विहार करने जाया करती थी, परन्तु अब कई वर्ष से यह विहार बन्द था। इसमें एक कारण यह भी था कि बहुत धन व्यय कर महाराज हिमवान ने अपने राजप्रासाद में ही एक बहुत सुन्दर पुष्पवाटिका बनवा ली थी और वे अपने भ्रमण की लालसा वहीं पूरी कर लेते थे।

इस सब विचार पर उमा के मन में विचार आया कि अपने गुरुजी से कहे कि उसे प्रमोदवन दिखाने ले चलें। प्रमोदवन तीन राज्यों के संगम पर स्थित था—देवलोक, कैलासलोक और हिमलोक। अतः वहाँ नित्य ही तीनों राज्यों के लोग भ्रमण करने आया करते थे।

वन बहुत बड़ा था और उसमें प्राकृतिक जल-प्रवाहिका, झरने, वट और चीड़ के पेड़ तथा हरिणादिक वन-पशु तथा बहुत जलचर और थलचर थे। तोता, मैना, मयूर, कपोत आदि भाँति-भाँति के पक्षी कलरव करते हुए बहुत ही लुभायमान होते थे।

जब उमा ने गुरुजी से कहा तो वह अपनी शिष्या को भ्रमणार्थ ले चलने के लिए तैयार हो गए। महाराज से कहकर वाहन तैयार करवाए गए और गुरु चक्रधर एक दिन उमा और उसकी सखियों को लेकर प्रमोदवन में जा पहुँचे। दिन-भर भ्रमण किया गया। सब प्रसन्न और आनन्दित हो वहाँ से लौटे। केवल उमा निराश लौटी थी। उसकी एक परम सखी थी कुन्तला। वह देख रही थी कि राजकुमारी जाते समय जितनी उल्लसित थी, लौटते समय उतनी नहीं थी। सब रथों में लौट रही थीं। वे कई रथों में सवार थीं। उमा की आठ-दस सखियाँ उसके साथ गई थीं और वे चार रथों में थीं। गुरु चक्रधर और उनकी धर्मपत्नी शर्मिष्ठा एक पृथक् रथ में थे। उमा और उसकी सखी कुन्तला एक रथ में बैठ लौट रही थीं। मार्ग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही कुन्तला ने पूछा, "राजकुमारी ! प्रसन्न नहीं हो। क्या बात है ?"

उमा ने यह तो बताया कि वह प्रसन्न नहीं, परन्तु उसने यह नहीं बताया कि क्यों प्रसन्न नहीं है।

जब कुन्तला ने कारण जानने का हठ किया तो उमा ने बहाना बना दिया, "मेरी इच्छा यहाँ अधिक बार, कम से कम एक मास में एक बार आने की होती है, परन्तु मुझे भय है कि पिताजी मना कर देंगे।"

"क्यों मना कर देंगे ?"

"वह कहा करते हैं कि घर में ही इतना धन व्यय करके एक सुन्दर उद्यान तैयार करवाया है तो फिर इतनी दूर जाकर धूल छानने की क्या आवश्यकता है ?"

"वाह! यह भी कोई युक्ति है ! देखो सखी ! यदि किसीके पास एक लक्ष स्वर्ण हो तो फिर वह अधिक उपार्जन न कर अपने हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाए ?"

"पर सखी ! मैं यह बात अपने पिता से नहीं कह सकती।"

"हम अपने गुरुजी से कहकर जाने और वाहन पाने की स्वीकृति ले लेंगे।"

"परन्तु गुरुजी नहीं मानेंगे। कहेंगे कि मास का एक दिन व्यर्थ चला जाया करेगा।"

"तो हम गुरु-माता से कहेंगे।"

"हाँ। तब बात बन सकेगी। गुरु-पत्नी का आग्रह गुरुजी नहीं टाल सकते हैं।"

यह योजना रथ में ही बन गई और उसी दिन सायंकाल चक्रधरजी की शिष्याओं का एक आयोग शर्मिष्ठाजी की सेवा में जा पहुँचा। शर्मिष्ठाजी को इस प्रस्ताव में आपत्तिजनक कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ; परन्तु गुरुजी और फिर महाराज को मनाने में कठिनाई हुई।

चक्रधर ने महाराज के सम्मुख अपनी पत्नी की युक्ति दोहरा दी। उन्होंने कहा, "स्त्री पुरुष से एक भिन्न प्रकार का प्राणी है। जहाँ पुरुष एक कर्मठ प्राणी होने से तथा व्यवहार में रत रहने के कारण कलारहित, शुष्क कर्मचारी-मात्र है, वहाँ स्त्री जाति साक्षात् कला का स्वरूप है। अपने शरीर, मन और बुद्धि से प्रभाव उत्पन्न किया करती है। पुरुष तो एक यन्त्र-मात्र ही रह जाता है; परन्तु महाराज ! स्त्री, कला की देवी, निर्माण करने के लिए है। प्राकृतिक सौन्दर्य से अधिक भला और क्या हो सकता है, जो स्त्री में कलात्मक प्रकृति उत्पन्न करे ?

"इस कारण अब राजकुमारी के लिए पुस्तकों के स्थान पर प्रकृति के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है।"

विवश स्वीकृति देनी पड़ी और मास में एक बार नियमित रूप में यात्रा होने लगी। एक वर्ष में ही उमा की मनोकामना पूरी हुई।

गंगा को राजभवन से लापता हुए एक वर्ष से अधिक हो चुका था और उमा इस समय सोलहवें वर्ष में पदार्पण कर रही थी। वह तो कैलासपति को जानती

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं थी। केवल नाम सुना था और गंगा से इतना जाना हुआ था कि वह एक अति सुन्दर युवक है। उस दिन तो उमा के मन में यह विचार भी धीमा पड़ रहा था कि वह किसी को देखने प्रमोदवन में एक वर्ष से अधिक काल से आ रही है।

लड़कियाँ एक वट वृक्ष के नीचे खेल-कूद रही थीं कि कैलासपति शिव अपने तीन गणों के साथ आया। आज वह अपने वृषभ वाहन पर बैठा हुआ भ्रमण कर रहा था।

वृषभ के दोनों ओर उसके गण थे और एक गण कन्धे पर एक बन्दर बिठाए आगे-आगे चल रहा था। वृषभ के दाहिनी ओर एक गण ने हाथ पर एक बाज उठाया हुआ था और बाईं ओर वाले गण ने हाथ में एक डमरू पकड़ा हुआ था। वृषभ पर सवार व्यक्ति के गले में साँप लटक रहे थे और वह जटा-जूटधारी केवल व्याघ्र-चर्म का अधोवस्त्र धारण किए, हाथ में त्रिशूल पकड़े जा रहा था।

दोनों गणों के पाँव में कौड़ियों और घोंघों की मालाएँ थीं। गले और कानों में भी छोटे-छोटे सुन्दर घोंघों के भूषण थे और वृषभ पर बैठा कैलासपति जटाओं का जूड़ा बना एक फनदार साँप को डोर के रूप में जूड़े से लपेटे हुए था। छाती और बाँह तथा पेट नाभि तक नंगा था। हाथ में त्रिशूल पकड़े था, जिसके साथ दो साँप लिपटे हुए बार-बार जिह्वा निकाल रहे थे। पाँव से नंगा था, परन्तु नंगे पाँव और घुटनों तक खुली टाँगें अति सुडौल, सुदृढ़ और सुन्दर दिखाई देते थे।

कैलासपति की यह सवारी उसी वट वृक्ष के पास से गुजरी, जिसके नीचे उमा और उसकी सखियाँ खेल-कूद रही थीं। कैलासपति चलता-चलता वट वृक्ष के समीप आया तो खड़ा हो गया और लड़कियों के खेल-कूद को देखने लगा। एका-एक कुन्तला राजकुमारी को पकड़ते-पकड़ते गिरी तो कैलासपति की हँसी निकल गई। हँसी की ध्वनि ऐसी थी, मानो किसी वाद्य-यन्त्र की तारें किसीने बल से छेड़ दी हों!

इस हँसी ने सब सखियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। कैलास-पति भी अपनी हँसी से आकर्षित सखियों को खेल-कूद छोड़ उसकी ओर देखने पर सकुचा और आगे को चल पड़ा। खेल रही सब सखियों ने वृषभ वाहन पर चढ़े इस व्यक्ति को देखा तो फिर जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

उमा कैलासपति की साँपों से स्नेह की बात सुन चुकी थी। इससे तुरन्त उसके मन में विचार आया कि हो न हो, यह गंगा के प्रेम को जाग्रत् करने वाला कैलास-पति ही न हो। अब वह उसके रूप का चिन्तन करने लगी तो समझ गई कि सम्भवतः यही कैलासपति है, जिसे देखने वह पिछले एक वर्ष से प्रमोदवन की यात्रा कर रही है।

इतना विचार करते ही वह मन में चिन्तन करने लगी कि क्या सत्य ही यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर प्राप्तव्य है ? वह गंगा को मूर्ख समझती थी, परन्तु आज उसकी समझ में आया कि सत्य ही वह प्राप्त करने के योग्य है।

उस दिन जब लड़कियाँ हिमाचल राजधानी को लौटने लगीं तो उसने पण्डित चक्रधर की पत्नी शर्मिष्ठा से पूछा, "माताजी ! यह वृषभ वाहन पर कौन आया था, जिसकी हँसी ने हम सबका ध्यान आकर्षित कर लिया था ?"

"मैं नहीं जानती। कोई पगला-सा प्रतीत होता था। अच्छा ठहरो, तुम्हारे गुरुजी से पता करती हूँ।"

वह घूमकर अपने पति से पूछने लगीं, "आप जानते हैं कि वह कौन व्यक्ति था, जो साँपों की मालाएँ पहने वृषभ पर सवार होकर जा रहा था ?"

"कैलासपति प्रतीत होता था।"

"वह बौराया-सा व्यक्ति ?"

"बौराया नहीं देवी ! देवों का देव महादेव। यह ठीक है कि इसके पूर्वजों ने बहुत शौर्य के काम किए थे, परन्तु वर्तमान तीनों लोकों में अभी भी इस राज्य का अधिपति देवताओं का प्रमुख माना जाता है।

"वरुण, विष्णु और इन्द्र तो देव-पद के योग्य ही माने जाते हैं, परन्तु कैलास-पति महादेव पद पाए हुए है।"

"किसने इसे यह पद दिया ?"

"तो तुम नहीं जानतीं ! देवताओं को देव-पद योगी और मानयुक्त ब्रह्माजी करते हैं।"

"परन्तु वह तो ब्रह्मलोक के स्वामी हैं। उनका इन लोगों पर क्या अधिकार है?"

"अधिकार विद्वत्ता और ज्ञान का है। देखो देवी ! इस समय भूमण्डल दो भागों में बँटा हुआ है—असुर राज्यों में और देव राज्यों में। असुर राज्यों के नेता हैं तारकासुर, जो भूमध्यसागर के दक्षिण में एक शासक हैं और देव राज्यों के नेता हैं इन्द्र। असुर राज्यों के गुरु हैं शुक्राचार्य और देव राज्यों के गुरु हैं ब्रह्माजी। शुक्राचार्य और ब्रह्मा स्वयमेव राजा नहीं हैं। ये रहते भी दूसरों से पृथक्-पृथक् हैं। न तो शुक्र असुरों के राज्य का भोग करते हैं और न ही ब्रह्मा देवलोक का; परन्तु इनकी विद्वत्ता के कारण दोनों की व्यवस्था भूमण्डल के दोनों विभागों पर चलती है।

"हमारा राज्य भी देव राज्यों में एक है। हम अपने-अपने राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में स्वतन्त्र हैं; परन्तु हम देव गुट्ट में हैं और कभी असुर गुट्ट वाले कष्ट देने लगते हैं तो हम देवताओं की पंक्ति में खड़े होते हैं।

"अब तो कई सौ वर्षों से दोनों पक्षों में संघर्ष नहीं हुआ, परन्तु हम इस संघर्ष के लिए तैयार रहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं समझता हूँ कि यह वृषभ की सवारी वाला कैलासपति महादेव ही था।"

उमा गुरुजी की बात सुन रही थी और अब अनुभव करती थी कि गंगा का चुनाव उचित ही था। सत्य ही यह व्यक्ति वरने योग्य है।

वह विचार करती थी कि गंगा का चयन तो ठीक ही था, परन्तु इस महापुरुष ने गंगा को अस्वीकार किया था। सम्बन्ध नहीं बना तो गंगा की ओर से यत्न न करने के कारण नहीं बना था या इस महापुरुष के उसे न पसन्द करने के कारण ?

उस दिन घर पहुँचकर वह विचारमग्न हुई तो उस दिन की बात विचार करने लगी थी, जिस दिन गंगा ने उसे अपने अस्वीकार किए जाने की बात बताई थी। उमा ने कहा था कि अप्राप्त को प्राप्त करने का उपाय है—तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

: ४ :

गंगा ने तप, स्वाध्याय और प्रणिधान कुछ भी नहीं किया। कदाचित् वह नहीं जानती थी कि प्रयत्न कैसे किया जाए, और वह इस व्यक्ति का ज्ञान प्राप्त करने का साधन नहीं जानती थी। इसी कारण वह यत्न नहीं कर सकी। इस पर भी उसका मन यह चाहने लगा था कि इसे पति के रूप में प्राप्त किया जाए।

जहाँ पिछले एक वर्ष से वह गंगा के आकर्षण-केन्द्र को देखने की इच्छा में भटक रही थी, अब उसके प्राप्त करने के लिए अपने को व्याकुल अनुभव करने लगी थी। कदाचित् यह व्याकुलता अपरिणामी ही रहती। उमा की सब विद्वत्ता भी उसे यह नहीं बता रही थी कि कौन-सा उपाय करे। भाग्यवश उन दिनों नारद दक्षिण के देशों में भ्रमण कर लौटा था और ब्रह्मलोक को जाता हुआ हिमवान महाराज से मिलने आया। उमा को अपने मन की बात जानने का अवसर मिल गया। नारद गंगा के विषय में पूछ रहा था। परिवार में बैठे हुए उसने गंगा की माँ से पूछ लिया, "महारानीजी ! गंगा का पता चला है अथवा नहीं ?"

"भगवन् ! मिल गया है। वह ब्रह्मलोक में जा पहुँची है। अपने को ब्रह्माजी के संरक्षण में बताती है।"

"यह कैसे पता चला है ?"

ब्रह्माजी के एक पार्षद एक पत्रिका लाए हैं। पत्रिका में लिखा है कि पुत्री गंगा महादेव शिवजी से विवाह करना चाहती है।"

"मैं समझता हूँ कि यह नहीं होगा। कदाचित् इस लोक में सम्भव नहीं; परन्तु किसी अन्य लोक में यह सम्भव हो सकता है।" हिमवान् ने कहा।

नारद हँस पड़ा और बोला, "किसी दूसरे लोक में तो वह गंगा नहीं होगी। कोई अन्य नाम, शरीर, मन और बुद्धि वाली होगी। प्राणी में जीवात्मा एक अंग है। यद्यपि वह एक अत्यावश्यक और मुख्य अंग है, तथापि केवल जीवात्मा प्राणी नहीं कहलाता। जीवात्मा के अतिरिक्त प्राणी में परमात्मा के दिए हुए सात प्राण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी होते हैं और परमात्मा वे सात प्राण जीवात्मा को तब तक नहीं देता, जब तक वह शरीर धारण न करे। अतः विवाह और संयोग केवल जीवात्मा के आश्रय और उसके लिए नहीं होता। इसमें शरीर, मन, बुद्धि और प्राण भी महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।

"इसीसे मैं कहता हूँ किसी अन्य लोक में इन दोनों का संयोग होगा तो वह गंगा और महादेव में नहीं होगा। किस-किस शरीर में होगा, कहा नहीं जा सकता।"

"तो ब्रह्माजी ने ठीक बात नहीं कही न?"

"कही तो ठीक है, परन्तु उनको कहना इस प्रकार चाहिए था कि दो आत्माएँ एक गंगा के शरीर में और दूसरी महादेव के शरीर में, किसी अन्य जन्म में विवाह-बन्धन में बँधेंगी।"

समीप बैठी उमा हँस पड़ी। वह बोली, "तो क्या मुनिवर! ब्रह्माजी को भाषा और बात कहने का ढंग नहीं आता?"

"नहीं बेटी! मैंने यह नहीं कहा। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि गंगा ब्रह्माजी से अपने विवाह में सहयोग प्राप्त करने गई होगी। पहले भी जब प्रजापति दक्ष के यज्ञ में कैलासपति ने हत्याकाण्ड मचाया था तो ब्रह्माजी ने कैलासपति को शान्त कर सुलह कराई थी। गंगा बेटी कदाचित् अब भी इसी आशा से ब्रह्माजी के पास गई हो कि वह उसकी सहायता कर देंगे और कैलासपति से उसका विवाह हो जाएगा; परन्तु ब्रह्माजी ने गंगा को निराश न करने के लिए अगले जन्म की बात कह दी है।

"निस्सन्देह उनका आशय यही है कि आत्मा-आत्मा का सहवास किसी अन्य लोक में किसी अन्य शरीर और नाम में होगा।"

"परन्तु जब इस जन्म में नहीं हो सकता तो गंगा को इससे क्या?"

"गंगा के जीवात्मा को तो है।"

एकाएक उमा ने कहा, "मैंने गंगा दीदी को कहा था कि तपस्या करे तो वह उसे इसी जन्म में प्राप्त कर सकती है।"

"परन्तु गंगा के भाग्य में यह विवाह नहीं लिखा है।"

"तो वह कौन भाग्यशालिनी है, जिसके भाग्य में उस महापुरुष को पति के रूप में पाना लिखा है?"

"उमा बेटी! यह तो उस लड़की को देखकर ही बता सकता हूँ।"

"यह बताने के लिए लड़की का क्या देखेंगे?"

"जो गंगा का देखा था।"

"आपने गंगा का क्या देखा था?"

"उसकी हस्त-रेखाएँ देखी थीं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महामुनि ! तो क्या आप लड़की का हाथ देखकर बता देंगे कि वह उसे प्राप्त कर सकेगी अथवा नहीं ?"

"हाँ। मैं समझता हूँ मुझे इस सामुद्रिक विद्या का इतना ज्ञान है कि मैं यह ठीक-ठीक बता सकता हूँ। मैं केवल इस जन्म की बात ही बता सकता हूँ। भावी जन्म और भूतकाल के जन्मों के विषय में जानने की दूसरी विद्या है। वह मैंने नहीं पढ़ी।"

"तो महाराज ! यह बताइए कि इस हाथ की स्वामिनी वर्तमान कैलासपति को वर सकेगी अथवा नहीं ?" इतना कह उसने अपना हाथ मुनिवर के सम्मुख कर दिया।

उमा की इस बात पर महाराज हिमवान ने कह दिया, "भगवन् ! मत बताइए। ये दोनों लड़कियाँ पागल मालूम होती हैं।"

"क्यों पिताजी ! मैं कैसे पागल हूँ ?"

"तुमने सुना नहीं कि शिव ने क्यों गंगा को अस्वीकार किया है ?"

"नहीं पिताजी ! मुझे मालूम नहीं।"

"उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हमारे पूर्वजों ने उसकी किसी पूर्वज स्त्री का अपमान किया था, जिससे वह ग्लानि से दुःखी यज्ञ में ही जल मरी थी। वह हमारे परिवार से घृणा करता है।"

"परन्तु मैं अभी उसको स्वयं ही वरने नहीं जा रही। विवाह तो आप ही करेंगे।"

"नहीं बेटी ! हम नहीं करेंगे। जिसके एक पुरखा ने हमारे एक पुरखा के यज्ञ में विघ्न डाला था और यज्ञ में नर-बलि दी थी, उसकी सन्तान के घर हम अपनी लड़की को स्वेच्छा से नहीं भेज सकते।"

"पिताजी ! मैं बिना आपकी स्वीकृति के कहीं विवाह नहीं करूँगी; परन्तु किसी बात का ज्ञान प्राप्त करने में क्या हानि है ?"

माता-पिता लड़की के इस आश्वासन पर प्रसन्न थे और चुप रहे। नारद मुनि ने उमा का हाथ देखा और परेशानी में उमा का मुख देखता रह गया। महाराज हिमवान ने नारदजी के मुख पर परेशानी देखकर पूछ लिया, "क्यों भगवन् ! क्या देखा है आपने इस लड़की के भाग्य में ?"

"यह कैलासलोक की महारानी बनेगी, परन्तु उसके लिए हमको भारी यत्न करना पड़ेगा।"

"तो यह निश्चय है ?" उमा की माँ ने पूछ लिया।

"नहीं महारानी जी ! इस लड़की के भाग्य में महादेव शिवजी से विवाह तो लिखा है, परन्तु उसमें महान् बाधाएँ भी हैं।

"एक तो यह कि यह तपस्या में उस महादेवजी के स्तर तक पहुँच जाए और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बाधा इसके माता-पिता के मनोद्गारों की है।"

"और भगवन्!" महारानी ने पूछ लिया, "यदि ये बाधाएँ दूर न हुई तो क्या होगा?"

"तब यह अविवाहित रहेगी।"

"इसका विवाह किसी अन्य स्थान पर नहीं हो सकता?" हिमवान ने पूछ लिया।

"महाराज! इसके भाग्य में तो ऐसा ही विधान है; परन्तु मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। यह भी स्वतन्त्र है। तब यह अन्य कर्म करेगी और उनका फल कर्म के अनुसार होगा।"

"भगवन्! कर्म से क्या अभिप्राय है आपका?"

"प्रत्येक नर किसी पूर्व कर्म-फल को स्वीकार न कर अपना भविष्य बनाने में स्वतन्त्र है।"

"और यदि इस जन्म के कर्म पूर्वजन्म के कर्मों के फल का विरोध करें तो क्या होगा?" महारानी ने पूछ लिया।

"यदि कोई जीवात्मा अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का विरोध कर सके तो अन्तिम फल दोनों का संमिश्रित परिणाम होगा। न तो पूर्वजन्म के कर्म का फल उतना उग्र होगा और न वर्तमान जन्म के कर्म का फल सम्पूर्ण मात्रा में होगा।"

नारद की इस बात को सुन और समझकर महाराज हिमवान और उनकी पत्नी का उत्साहवर्धन नहीं हुआ। वे घोर चिन्ता में निमग्न मुनिजी का मुख देखने लगे। नारद ने आगे कहा, "पूर्वजन्म के कर्म का फल यदि शुभ हो तो उस शुभ को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए और यदि हो सके तो उस शुभ में और शुभ की वृद्धि करनी चाहिए।"

अब उमा ने पुनः पूछा, "परन्तु महामुनिजी! क्या कैलासपति से विवाह मेरे लिए कल्याण का सूचक होगा?"

"निस्सन्देह; परन्तु बिना बाधाओं को दूर किए यह विवाह हो नहीं सकेगा।"

उमा विचार करती थी कि इस महापुरुष से विवाह करने से क्या शुभ हो सकता है। नारद उसके मन के भाव को जान गया और मुस्कराकर बोला, "बेटी उमा! जानना चाहती हो कि क्या शुभ सम्पन्न होगा इस विवाह से?"

"हाँ भगवन्! मेरे मन में यह द्विविधा उत्पन्न हो गई है कि एक परिवार के शत्रु के साथ विवाह का यत्न करूँ और जब हो जाए तो फिर उससे सन्तान उत्पन्न करूँ। उस सन्तान का पालन करूँ, जो माता-पिता के परिवार से घृणा करे। क्या मैं इस विचार को छोड़ नहीं सकती?"

"छोड़ सकती हो। इसपर भी तुम्हारी समस्या का यह समाधान नहीं। वह कुछ अन्य है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो इस विवाह के अतिरिक्त कोई सुझाव बताइए।" उमा की माँ ने कहा।

"एक सुझाव तो है ही। वह यह कि विवाह न करे। उसके लिए न इसकी ओर से और न ही इसके माता-पिता की ओर से किसी प्रकार का यत्न किया जाए। पूर्व कर्मफल की बाधाओं के कारण विवाह नहीं होगा, और ये बाधाएँ दूर नहीं हो सकेंगी।

"एक दूसरा भी सुझाव है। उमा को देवलोक में भेज दिया जाए, जहाँ बिना विवाह के भी सन्तान प्राप्त की जाती है; परन्तु इसका यह प्रयास निरर्थक होगा, क्योंकि इसके भाग्य में स्व-सन्तान-सुख नहीं है।"

इस सूचना पर तो महाराज और महारानी नारद को ही अशुभ सूचना में दोषी मानने लगे थे। उनके मन में नारद के साथ हुए वार्तालाप पर शोक उत्पन्न होने लगा। वे मौन हो टुकुर-टुकुर मुनिजी का मुख देखते रह गए।

उमा भी भ्रमित मन से उठी और अपने शयनागार में चली गई। वह जीवन को ही एक उलझन समझने लगी थी और उस उलझन में फँसी, छटपटाती हुई अपनी शय्या पर लेट गई। चिरकाल तक उलझन को समझने के यत्न में थके मन के साथ सो गई।

रात के भोजन के समय उसे जगाया गया और भोजन का समय हो जाने की सूचना दी गई। वह बिस्तर से उठी और भोजनागार में जा पहुँची। वहाँ उसके माता-पिता और ज्येष्ठ भ्राता तथा उनकी पत्नी ही थे। उमा ने भोजन पर बैठते ही पूछा, "माँ ! मुनिजी गए ?"

"हाँ। उनको स्वयं भी मध्याह्न की बातों का शोक था।"

"किसलिए शोक था ?"

"वह कहते थे कि उनको गंगा की बात आरम्भ नहीं करनी चाहिए थी। उसीकी बातों से तो तुम्हारे विवाह की बात चल पड़ी थी।"

उमा ने मुस्कराते हुए कहा, "तो क्या वह यह भी कहते थे कि यदि मेरे विवाह की चर्चा न होती तो मेरा विवाह कहीं अन्यत्र हो जाता और यदि यहाँ कैलासपति के साथ होता तो बाधाएँ न होतीं ?"

"यह तो नहीं कहा। कह भी कैसे सकते थे ? भाग्य तो बदला नहीं जा सकता। उन्होंने यह तो कहा है कि यदि कुछ टस-से-मस कर सकती हो तो तुम ही कर सकती हो।"

"परन्तु माँ ! मैं क्यों करूँगी ? मेरा मन कह रहा है कि मेरा विवाह कैलासपति के साथ हो और उसमें जो बाधाएँ हैं, उनको दूर करने का यत्न करूँ।"

"कैसे दूर करोगी ?" माँ का प्रश्न था।

"तपस्या से। ठीक दिशा में किया गया यत्न सदा फल लाता है। मैं अब सोते-सोते यत्न की दिशा पर विचार कर रही थी।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमवान हँस पड़ा। उसने कहा, "उमा ! तुम अभी बच्ची हो। तुम नहीं जानतीं कि सोने पर मन भी सो जाता है।

"अर्थात् सोए हुए मनुष्य का मन भी सो जाता है। तो भला तुम सोए-सोए कैसे विचार और कल्पना कर रही थीं ?"

"पिताजी ! भूल हो गई। सोए-सोए नहीं, स्वप्नावस्था में सुझाव दिखाई दिया है। यह कहा है कि स्वप्न-स्थान में सुषुप्ति और जाग्रत् स्थान की सन्धि का स्थान होता है और उस स्थान पर जीवात्मा भूत और भविष्य दोनों को देखता है। मैंने भी पूर्ण जाग्रत् स्थान से पहले ही विचार किया और मुझे वर्तमान से भविष्य का पूर्ण मार्ग दिखाई दे गया है।"

बात ठीक थी। यह शास्त्र का मत था और हिमवान की हँसी विलीन हो गई। बात राजकुमार महेन्द्र ने की। उसने पूछा, "उमा ! क्या देखा है स्वप्न में ?"

"भैया ! तपस्या। फिर सफलता। तदनन्तर माता-पिता के घर में बाजे-गाजे और कैलासनगर को मेरी विदाई।"

राजकुमार के मुख से निकल गया, "बात तो ठीक है, यदि हो सके तो।"

"क्या ठीक है ?" महाराज हिमवान ने पूछ लिया।

"यही कि हमारी और कैलासपति की मैत्री हो जाएगी। दोनों देशों में समझौता और विचारों का आदान-प्रदान होगा। व्यवहार भी होगा, जिससे राज्य और भी अधिक समृद्ध होगा।

"पिताजी !" महेन्द्रकुमार ने आगे कह दिया, "देवेन्द्र से सम्बन्ध बिगड़ रहे हैं। उनमें भी सुधार होगा। कैलासपति हमारा सहायक हो जाएगा।"

इस बात ने पिता का मुख बन्द कर दिया। देवलोक की महिमा कम हो रही थी और देवेन्द्र अपने देश की प्राचीन प्रभुता को पुनः स्थापित करने का यत्न कर रहा था। इससे वह पड़ोसी राज्यों को आत्मसात् करने की चिन्ता में था। इन्द्र की प्रभुता को अपने से दूर रखने के लिए ही महेन्द्र यह उपाय बता रहा था।

महेन्द्र के कथन से उत्साहित होकर उमा ने पूछा, "तो भैया ! करूँ यत्न ?"

"क्या यत्न करोगी ?"

"यह तो विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि माताजी ने मुनि नारदजी को भगा दिया है, नहीं तो मैं उनसे ही पता करना चाहती थी कि किस प्रकार यत्न करूँ।"

"वह क्या बताता ?" महारानी ने कहा, "वह स्वयं तो अपना विवाह कर नहीं सका। भला तुम्हारे विवाह की बात कैसे बता सकता था ?"

"माँ ! कदाचित् मुनिजी के मन में विवाह की इच्छा ही नहीं हुई, अन्यथा सुना है कि देवलोक में तो अप्सराएँ चलते-फिरते के गले पड़ती रहती हैं।"

"उसके गले में तो कोई नहीं पड़ी।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो यह उनसे ही पूछना चाहिए कि क्यों नहीं पड़ी। देखने में तो वह एक अच्छे और आकर्षक व्यक्ति प्रतीत होते हैं।"

महेन्द्र ने प्रचलित किंवदन्ती बता दी। उसने कहा, "माँ ! सुना है कि उसे ब्रह्माजी ने अभिशाप दिया हुआ है कि उसको स्त्री-सुख नहीं मिलेगा।"

"क्यों ? क्या अपराध किया था उसने ?"

"कहते हैं कि एक समय वह इन्द्र के साथ प्रतिस्पर्धा में एक स्वयंवर पर जाने लगा तो इन्द्र ने ब्रह्माजी से यह वर माँग लिया कि जो कोई भी उससे सौन्दर्य और ओज में प्रतिस्पर्धा करे, वह बन्दर की आकृति का हो जाए। यह कहा जाता है कि नारद भी ब्रह्माजी के पास वर माँगने जा पहुँचा और यह वर माँग लिया कि उसकी प्रतिस्पर्धा में आने वाला व्यक्ति कुरूप दिखाई दे।

"और माँ ! ब्रह्माजी ने जानबूझकर ये वर दोनों को दे दिए। वे जानते थे कि जो व्यक्ति रात-दिन भ्रमण करता रहता है, उसका विवाह नहीं होना चाहिए। अतः नारद को इन्द्र की प्रतिस्पर्धा के लिए जा रहा जान और नारद को इन्द्र के लिए वर माँगता जान यह समझा कि इस प्रौढ़ावस्था में यह एक युवती की लालसा कर अनुचित कर रहा है। अतः जिस युवती से यह विवाह करने जाए, वह इसे पितातुल्य समझे। परिणामस्वरूप स्वयंवर से दोनों निराश लौटे।"

"बहुत विचित्र है !" महेन्द्र की माँ ने कह दिया।

"हाँ।" महेन्द्र ने कह दिया, "माँ ! यह किंवदन्ती है कि ब्रह्माजी ने स्त्री-जाति पर दया के भाव से इन दो महापुरुषों को विवाह के प्रत्याशियों के क्षेत्र से बाहर कर दिया है।"

भोजन हो रहा था। एकाएक महाराज हिमवान ने कहा, "हम समझते हैं कि कैलासपति को भी ब्रह्माजी इसी प्रकार शाप दे देते तो तुम्हारी बहन का कल्याण हो जाता।"

"क्या कल्याण होता पिताजी ?" उमा ने पूछ लिया, "बता दीजिए। तब मैं इस स्थान पर विवाह के लिए यत्न नहीं करूँगी।"

"यह फक्कड़ राजा जिससे विवाह करेगा, उसे एक निर्धन से भी निर्धन पति की प्राप्ति ही होगी। इस कारण स्त्री-जाति पर कृपा करने वाले ब्रह्माजी इस महा-पुरुष को भी तेजविहीन होने का शाप दे देते तो बहुत ठीक होता।"

उमा हँस पड़ी और बोली, "और श्री ब्रह्माजी मुझे ही सर्वथा कुरूप क्यों न कर दें, जिससे वह मुझे पसन्द ही न करे। मेरी पूर्ण तपस्या ही विफल हो जाए।"

भोजन समाप्त हो गया था और सब अपने-अपने शयनकक्ष को चले गए। बात आगे नहीं चल सकी।

: ५ :

महेन्द्रकुमार की पत्नी सुचाला ने शयनागार में जाते ही अपने पति से पूछा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप उमा के विषय में क्या कहते हैं?"

"मैं इस विवाह के लिए बहन को यत्न करने से रोकना नहीं चाहता।"

"तो उस बेचारी की सहायता कर दीजिए।"

"क्या सहायता कर दूँ?"

"जो वह कहे।"

"वह तो अभी स्वयं नहीं जानती कि वह क्या करे।"

"तो उससे मिलकर उसकी योजना में सहायता कर दें। देखिए देव! लड़कियाँ माता-पिता के घर में नहीं रहतीं। यदि उनका विवाह न हो तो भी वह पिता का घर छोड़ जाती हैं। गंगा बहन छोड़ गई हैं और यह भी छोड़ जाएगी। यह स्त्री-जाति का स्वभाव है। आप नहीं जानते, परन्तु मैं जानती हूँ। इस कारण इसके घर छोड़ने से पूर्व इसका पथ-प्रदर्शन और सहायता कर दीजिए।"

महेन्द्र समझ रहा था कि उसकी पत्नी उसे अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध करने को कह रही है। इस कारण उसने कहा, "देवी! यह तो माता-पिता से विद्रोह करना होगा।"

"नहीं देव! यह बहन से सहानुभूति होगी। माता-पिता भूल कर रहे हैं।"

"तो वे क्या करें?"

"उमा की इच्छा जानकर उन्हें स्वयं कैलासपति के पास जाना चाहिए और उसे अपनी अभिलाषा बता, पूर्वजों की बातें भूल जाने के लिए कहना चाहिए। उमा सुन्दर, विदुषी और शास्त्र की ज्ञाता लड़की है। यदि परिवार का वैमनस्य मिट जाए तो कैलासपति विवाह के लिए तैयार हो जाएगा।

"देखिए देव! इतना तो भाई को बहन के लिए करना ही चाहिए। घर वालों को सुमति दीजिए और बहन को उपाय बताइए कि वह किस प्रकार अपने वर को अपने अनुकूल कर सकती है।"

महेन्द्र गम्भीर विचार में निमग्न हो गया; परन्तु ज्यों-ज्यों वह विचार करता था, त्यों-त्यों वह सुचाला के विचार को ठीक समझता जाता था।

अगले ही दिन वह उमा से मिलने चल पड़ा। अपने साथ सुचाला को भी ले गया। परस्पर विचार-विनिमय हुआ और एक योजना बन गई।

उनकी समझ में आया कि दो समस्याएँ हैं—एक तो कैलासपति को अपने पूर्वग्रहों से मुक्त कर उमा की ओर आकर्षित करना और दूसरी बात थी, हिमवान महाराज को लड़की की इच्छा के अनुकूल हो जाने के लिए कहना।

प्रथम कार्य के लिए तो योजना यह बनी कि उमा के लिए प्रमोदवन में एक स्थान बनवाया जाए और वह वहाँ पर व्रत, उपवास और परमब्रह्म परमात्मा का चिन्तन करे।

सुचाला उमा की सहायिका बन गई और प्रमोदवन में दृषद्वती नदी के तट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एक मन्दिर बनवा दिया गया। मन्दिर के बाहर एक वट वृक्ष था और वहाँ से नदी गर्र-गर्र करती बहती हुई दिखाई देती थी।

यह निर्माण-कार्य महेन्द्र ने बिना माता-पिता के ज्ञान के कराया। जब मन्दिर तैयार हो गया तो उमा ने अपनी माताजी से कहा, "माँ! मैं चालीस दिन का व्रत रख रही हूँ।"

"किस उद्देश्य से व्रत रख रही हो?"

"पति पाने के उद्देश्य से।"

"तुम निपट मूर्ख हो। पति पाने के लिए व्रतों से शरीर को क्षीण और ओज-विहीन करने से सफलता नहीं मिलेगी। पति पाने के लिए शृंगार करने की विधि जानने की आवश्यकता है; तुम्हारे शृंगार को जो देखेगा, वही तो तुम्हें वरेगा। जो तुम्हें देखने ही नहीं आए, उसके लिए तो 'गुड़-खल एको भाव' वाली बात हो जाएगी।"

"माँ! मैं बन-ठनकर किसीको विवाह के लिए तैयार नहीं करना चाहती। यह रीति देवलोक की अप्सराओं की है। हमारे देश और परिवार में कोई अप्सरा अभी तक नहीं हुई। मैं भी नहीं हूँगी।"

मैनादेवी ने अपने पति से कहा तो वह उमा से पूछने लगा, "तो तुम हमारा कहा नहीं मानोगी?"

"आपका कहना क्या है?"

"कैलासपति का विचार छोड़ दो।"

"पिताजी! मैं उनसे विवाह की याचना करने नहीं जा रही। हम क्षत्रियों की कन्याओं को वरने पति आते हैं। यहाँ भी वही होगा। तब आप स्वीकार करेंगे तो विवाह होगा।"

हिमवान समझा कि यह बच्चों का प्रलाप है। इससे बोल उठा, "जो मन में आए, करो।"

"पिताजी! आगामी पूर्णिमा के दिन मैं व्रत करने जाऊँगी।"

"कहाँ जाओगी?"

"भाभी ने भैया से कहकर प्रमोदवन में एक मन्दिर बनवा दिया है। मैं वहीं बैठकर व्रतपालन करूँगी।"

पिता ने समझा कि लड़की पत्थर की दीवार से माथा फोड़ने जा रही है। इस कारण वह चुप रहा।

उसे महेन्द्र पर रोष था कि वह उसके विकृत विचारों में बहन की सहायता कर रहा है।

अतः अपने राज्य-कार्यालय में जाकर महेन्द्र को बुला, पूछने लगा, "तुमने उमा के लिए प्रमोदवन में मन्दिर बनवाया है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ पिताजी !"

"क्यों ?"

"बहन ने कहा कि वह व्रत रखेगी और चालीस दिन तक वायु और जल-पान ही करेगी। आपकी बहू सुचाला ने कहा कि इसके लिए तो किसी वन में एकान्त स्थान होना चाहिए। अतः मैं एक दिन वहाँ गया और एक अति रमणीक स्थान पर मन्दिर बनाने का निश्चय कर आया। अब मन्दिर बन गया है और मन्दिर के द्वार पर एक विशाल वट वृक्ष है। बहन का विचार है कि वह वहाँ आसन लगा भगवान् की भक्ति करेगी। उस स्थान से नदी के दिव्य दर्शन होते हैं। पिताजी ! आप चलकर देखिए। उस स्थान से नदी और वन की शोभा बहुत ही लुभायमान दिखाई देती है।"

हिमवान मुख देखता रह गया और उसने केवल इतना कहा, "काल व्यतीत होने के साथ मानव-स्वभाव भी बदलता चला जाता है।"

"हाँ पिताजी ! यह तो है ही। जब वेद का आविर्भाव हुआ, उस समय की परिस्थिति का ज्ञान नहीं। यह तो सत्ययुग के आरम्भ में था। पूर्ण युग व्यतीत हो अब त्रेता युग का भी एक बहुत बड़ा अंश व्यतीत हो चुका है। इस कारण वेद के स्थिर अर्थों पर निर्वचन बाद में होते हैं और वे निर्वचन कुछ-कुछ रूप-रंग में भिन्न भी हो जाते हैं। यह भिन्नता जगत् की बदलती परिस्थिति और मानव-स्वभाव के बदलने के कारण आ रही है।"

हिमवान इस बात को समझा नहीं था। उसके गुरु ने यह बात बताई नहीं थी। इस कारण वह पुत्र का मुख देखता रह गया। चक्रधर, जो पहले महेन्द्र को पढ़ाता था और बाद में उमा को पढ़ाता रहा था, महान् विद्वान् ब्राह्मण था। उसीका पढ़ाया हुआ वह पिता को बता रहा था। पिता नहीं समझा तो पुत्र ने कुछ और व्याख्या करके बताया, "पिताजी ! मानव-सृष्टि तो वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में हुई थी। उससे पहले प्राणी-सृष्टि तो थी। कीट-पतंग, पशु-पक्षी, कच्छ-मच्छ—ये सब पहले बन चुके थे। उससे भी पहले चाक्षुष मन्वन्तर में यहाँ वनस्पतियाँ हुई थीं। जब वर्तमान मन्वन्तर की वर्तमान चतुर्युगी आरम्भ हुई तो मानव युवा पुरुष और स्त्रियाँ उत्पन्न हुए। उनके साथ ही कुछ ऋषि लोग भी उत्पन्न हुए। उन ऋषियों ने अन्तरिक्ष में वेद छन्द-तरंगों के रूप में प्रसारित होते सुने और फिर राष्ट्रीय मानवी भाषा में मनुष्यों को सुनाए।

"उस समय तो ऋषि लोग वेदार्थ समझते थे और वेद भाषा और मानवी भाषा एक हो रही थी। इस कारण अर्थों का भ्रम नहीं होता था; परन्तु काल व्यतीत होने के साथ परिस्थितियाँ बदलीं और मानव-प्रकृति भी बदली और वेदार्थ में अन्तर आने लगा।

"परन्तु निरुक्ताचार्यों ने बताया है कि शब्द अक्ष (धुरी) है। शब्द के भिन्न-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न यौगिक अर्थ उस अक्ष से लगे अरे हैं और निर्वचन चक्र की परिधि है। तीनों अक्ष, अरे और चक्र की परिधि सम्बन्धित रहते हैं। विद्वान् लोग यह देखें कि संसार चक्र किस अवस्था में है। उसके अनुसार ही अरे पर बल पड़ता है और फिर अक्ष से सम्बन्धित अर्थ कर दिए जाते हैं।"

महाराज हिमवान ने कुछ-कुछ समझते हुए पूछ लिया, "वेद को भूतल पर उतरे कितने वर्ष हो चुके हैं।"

पिता के प्रश्न पर महेन्द्रकुमार ने बताया, "इस चतुर्युगी के सत्ययुग के १७,२८,००० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और त्रेतायुग के भी ८,६३,८२० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान युग-परिवर्तन में एक सौ अस्सी वर्ष रह गए हैं।

"अयोध्या के राजाओं के आदिपुरुष इक्ष्वाकु ने वेदों का पुनः प्रचार किया था और तब से अब तक वेदों पर शाखाएँ, आरण्यक, उपनिषदादि अनेक विवेचनाएँ निकल चुकी हैं।"

"तो तुम यह कहते हो कि लड़कियों का स्वभाव बदल गया है?"

"हाँ पिताजी! परन्तु वेदों के निर्वचनों की भाँति ही। यह भी अपने अक्ष (धुरे) से बँधा हुआ है। मनुष्य में यदि स्वभाव को जीवन का चक्र मान लें तो अरे हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार—पंच विकार। अक्ष (धुरा) है मन। स्वभाव मन के चारों ओर पंच विकारों से बँधा हुआ चक्कर काट रहा है। विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकाररूपी अरे ऊपर-नीचे होते रहते हैं और स्वभाव बदलता दिखाई देता है।"

हिमवान समझ गया कि पण्डित चक्रधर उसके गुरु विश्वपति से अधिक योग्य विद्वान् हैं। अब उसने बात बदल दी और पूछ लिया, "उमा के साथ वहाँ कौन रहने जा रहा है?"

"वह किसीको भी अपने समीप नहीं चाहती। मैंने, उसकी भाभी ने और उसकी एक सखी कुन्तला ने साथ रहने का प्रस्ताव किया है, परन्तु वह कहती है कि यदि उसके साथ कोई वहाँ रहने गया तो वह आमरण उपवास कर देगी।"

"क्यों?"

"यह वह बताती नहीं।"

"उसे अकेली वन में रहने पर भय प्रतीत नहीं होता?"

"वह कहती है, नहीं। मरने से अधिक कुछ नहीं हो सकता, और वह कभी अनिच्छा से कुछ करने पर विवश की गई तो श्वास रोक जीवनान्त कर देगी।"

"देखो महेन्द्र! इस हठी लड़की की बात सुनकर मैं प्रसन्न नहीं हूँ; परन्तु गंगा की भाँति मैं इसे लापता होने नहीं देना चाहता। इस कारण मैं इसकी सब बात मान लूँगा; परन्तु मुझे जो करना चाहिए, वह मैं करूँगा ही। इसके कार्यक्रम में विघ्न डाले बिना मैं इसकी देखरेख और रक्षा का प्रबन्ध करूँगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जाओ, उसे कह दो कि यद्यपि मैं उसके व्यवहार से प्रसन्न नहीं; परन्तु उसके मार्ग में बाधा नहीं बनूंगा।"

महेन्द्र पिता के व्यवहार से प्रसन्न उमा को यह सूचना देने गया और उमा का माता-पिता के प्रति कृतज्ञता और आभार का सन्देश ले आया।

कार्तिक पूर्णिमा के दिन बहुत प्रातःकाल उमा रथ पर सवार हो प्रमोदवन को जाने लगी तो उसने भाई और भावज को भी साथ ले जाने से इनकार कर दिया। वह बहुत प्रातःकाल राजप्रासाद से चलने वाली थी। यह इस विचार से कि वह अज्ञात वहाँ से जाना चाहती थी; परन्तु जब वह राजप्रासाद के द्वार पर पहुँची तो सबसे पहले उसे अपनी सखियों और सहपाठियों का जमघट मिला। सब सहेलियाँ उसे घेरकर खड़ी हो गईं। कुन्तला ने पूछा, "सखी! इतने प्रातःकाल कहाँ जा रही हो?"

उमा पहले तो सकुचाई। वह समझ गई कि उसकी गुप्त रूप से अज्ञात स्थान को जाने की योजना विफल हो रही है। फिर भी उसने साहस पकड़ पूछ लिया, "और तुम सब इतने प्रातःकाल घरों को छोड़ किसको देखने यहाँ आई हो?"

"तो ठीक है?" कुन्तला ने ही बात की।

"क्या ठीक है?" उमा ने पूछा।

"कि तुम अपने पतिदेव की संगति में जा रही हो?"

"बिना विवाह किए? बहुत दुष्ट हो कुन्तला! तुम मुझे क्या समझी हो?"

"सखी! संगति शब्द के बहुत विस्तृत अर्थ हैं। बिना विवाह के भी संगति हो सकती है।"

"वह कैसे हो सकती है?"

"जैसे मित्र-मित्र किसी विषय पर विचार करने के लिए मिलते हैं।"

"परन्तु मैं ऐसे किसी काम से नहीं जा रही।"

"तब भी ठीक है। सखी, कब लौटोगी?"

"अभी चालीस दिन के लिए जा रही हूँ।"

"कहाँ जा रही हो और कहाँ से चालीस दिन के उपरान्त लौटोगी?"

"नहीं बताऊँगी।"

"हम माताजी से पता करेंगी।"

"मैंने माताजी को भी पता बताने से मना किया हुआ है।"

"तो पिताजी से पता करेंगी।"

"कर लेना।"

"परन्तु सखी! हमसे रुष्ट होकर जा रही हो क्या?"

"नहीं।"

"तब ठीक है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी सारथी आ गया और उमा लपककर रथ पर जा पहुँची।

: ६ :

वर्तमान कैलासपति तो एक अति उन्नत और उदार विचार का व्यक्ति था। वह गंगा से भी विवाह कर लेता, परन्तु वह गन्धर्व-विवाह को दोषपूर्ण मानता था और यही वह गंगा के कथन से समझा था। वह जानता था कि दोनों परिवारों में वैमनस्य चला आता है और गंगा बिना अपने माता-पिता की स्वीकृति के उससे विवाह की याचना कर रही हैं। इसलिए उसने उसे अस्वीकार दिया था।

बाद में उसे समाचार मिला था कि गंगा अपने प्रासाद से लापता हो गई है और फिर ब्रह्मलोक में जा पहुँची है। इससे वह प्रसन्न नहीं था और उसने गंगा का विचार मन से निकाल दिया था।

एक दिन कैलासपति अपने परामर्शदाताओं में बैठा राज्य-प्रबन्ध के विषय में विचार कर रहा था। कैलासपति का कहना था, "देखो महापुरुषो ! मैंने अपने राज्य में सबको सब प्रकार की स्वतन्त्रता दे दी है। मैंने सबके मन पर यह अंकित कर रखा है कि सब लोग राज्य की ओर से पूर्ण रूप में स्वतन्त्र हैं। केवल मैं यह चाहता हूँ कि प्रत्येक नागरिक उतनी ही स्वतन्त्रता का सेवन करे जो और जितनी स्वतन्त्रता वह दूसरों को देने को तैयार है।"

"महाराज !" मुख्य पार्षद ने कहा, "कुछ लोगों ने गुट्ट बना लिया है और वे दूसरों का अधिकार छीनकर आत्मसात् कर रहे हैं। जिसका अधिकार वे छीनते हैं, उसे डरा-धमकाकर राज्याधिकारी के पास में जाने से मना कर देते हैं।"

"और तुम लोग क्या कर रहे हो ?"

"हमारे न्यायाधीश प्रमाण चाहते हैं और वह हम दे नहीं सकते।"

"तो तुम सब मूर्ख हो। देखो, मैं बताता हूँ। यह बताओ कि वे परस्पर क्या वस्तु छीनते हैं ?"

"खाने के मेवे, पहनने के वस्त्र और भोग करने को स्त्रियाँ।"

"तो ऐसा करो। कुछ अपने विश्वस्त लोगों के संरक्षण में सूखे मेवों की बहुत बड़ी मात्रा याकों पर लादकर देवलोक को भेजो। उस सामान को उस स्थान के समीप से गुजारो, जहाँ उनका केन्द्र-स्थान है। उनको लूटने दो और अपने लोगों को कहो कि वे उनका विरोध न करें।

"तदनन्तर छापा मारकर केवल हमारे गुप्तचर लूटमार करने वालों का पीछा करें। उन लोगों को जो लूटने वाले हैं, पकड़ लो।

"परन्तु महामन्त्री ! एक बात का ध्यान रहे। मैं किसी निर्दोष को दंडित नहीं होने दूंगा।"

कैलासपति की योजना पर उसी रात अमल किया गया। नगर से बहुत बड़ी मात्रा में सूखे मेवे सबके सम्मुख बोरों में बाँधे गए। जो पूछता, उसे बताया जाता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि माल देवलोक को जा रहा है। याकों के स्वामियों को भाड़े की अग्रिम राशि भी दी गई। यह विचार था कि माल ले जाने और लौटने में दो साल लगेंगे।

नगर से माल निकला तो एकान्त स्थान पर डाकुओं ने घेरा डाल लिया। वे एक सौ के लगभग थे। माल ले जाने वाले पच्चीस याकों के स्वामी और दो माल के स्वामी तथा कुछ सेवक थे। सब मिलाकर पैंतीस व्यक्ति थे। डाकू इन्हें घेरकर माल के साथ ही नगर से दूर एक पहाड़ की कन्दरा में ले गए। माल ले जाने वाले मिन्नत-समाजत करते रहे, परन्तु उनकी बात नहीं सुनी गई।

मालिक और नौकरों को हाथ-पाँव बाँधकर एक कन्दरा में डाल दिया गया और दूसरी कन्दरा में डाकू बैठ माल का बँटवारा करने लगे।

जब माल बाँटा जा चुका और सब लुटेरे अपने-अपने माल की गठरियाँ बाँधने लगे तो राज्य कर्मचारी खड्ग, भाले, त्रिशूल इत्यादि लिए हुए वहाँ आ पहुँचे और सबको माल सहित अधिकार में करके ले गए।

अगले दिन उनको न्यायालय में उपस्थित किया गया। लुटेरों ने अपना अपराध स्वीकार किया तो उनको दण्ड सुना दिया गया। न्यायाधीश का यह कहना था, "इस देश के विधि-विधान में यह कहा गया है कि यहाँ के सब नागरिक प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता का भोग कर सकते हैं, परन्तु उनको वैसी ही स्वतन्त्रता दूसरों को भोग करने की स्वीकृति देनी होगी।

"इस विधान के अनुसार जिनका माल लूटा गया था, उनको राज्य यह स्वीकृति देता है कि वे भी तुम्हारी धन-सम्पदा लूट लें। अतः वे व्यापारी, जिनका माल लूटा गया था और वे याकों के स्वामी तथा सेवक भी दो दिन के भीतर इन लुटेरों के घरों को, जो कुछ वहाँ है, लूट सकते हैं। यह उस माल के अतिरिक्त होगा, जो उनका उनको वापस मिल रहा है।

"इसके अतिरिक्त राज्य में व्यवस्था के लिए राज्यदण्ड विधान में उनको अंग-भंग करने का दण्ड दिया जाता है।"

अतः जो लड़ाके थे, उनके हाथ काट दिए गए और जो भागने में तेज थे, उनकी टाँगें काट ली गईं।

इस भयंकर दण्ड के उपरान्त भी एक समस्या उत्पन्न हो गई। लुटेरों के घरों से विवाहित और अविवाहित एक सौ से अधिक स्त्रियाँ मिलीं। उनको भी व्यापारी और याकों के स्वामी लाकर परस्पर बाँटने लगे तो मामला मन्त्रिमण्डल में उपस्थित हो गया।

महामन्त्री ने अपनी विशेष आज्ञा से स्त्रियों के वितरण को रोककर मन्त्रिमण्डल में यह विषय विचारार्थ रख दिया।

महाराज मन्त्रिमण्डल की अध्यक्षता कर रहे थे। महामन्त्री सुधाकर ने कहा, "न्यायाधीश की यह आज्ञा थी कि लुटेरों की सब धन-सम्पदा लुटने वाले लूट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं, परन्तु स्त्रियाँ तो धन-सम्पदा में नहीं आतीं। इस कारण वे लूट के माल में नहीं समझी जा सकतीं।"

एक अन्य मन्त्री ने कहा, "उन स्त्रियों ने अपने लुटेरे पतियों की लूट का भोग किया है। इस कारण वे उस पाप की भागी हैं, जिसके उनके पति, भाई इत्यादि हैं।"

इस वक्तव्य पर आपत्ति की गई। आपत्ति यह थी कि स्त्रियाँ तो पति की आय का भोग करने वाली ही होती हैं। पति धर्म की आय करता है अथवा अधर्म की, इसको जानना उनका कार्य नहीं। अतः वे पति के कर्मों की उत्तरदायी नहीं। हाँ, जो भोग-सामग्री उस पाप की आय से घर में है, वह दूसरे लूट सकते हैं।

बहुत वाद-विवाद हुआ। अन्त में कैलासपति ने यह निर्णय दिया, "वे स्त्रियाँ, जो इस डाके के कार्य में किसी प्रकार भी सहयोग देती रही हैं, उन्हें दण्ड दिया जा सकता है, जैसे उनके पतियों को अंग-भंग कर देने का दण्ड दिया गया है; परन्तु वे लूट का माल न होने के कारण दूसरों द्वारा लूटी नहीं जा सकतीं।"

दण्ड अति भयंकर था, परन्तु यह वहाँ के नियमानुसार था। राज्य में बन्दीगृह नहीं था। प्रत्येक अपराध का दण्ड ऐसा ही होता था, जिसमें बन्दीगृह के बिना ही अपराधी दण्डित होता था।

दण्ड का मुख्य प्रयोजन यह था कि साधु लोग इन अपराध करने वाले दुष्ट-जनों से बचाए जा सकें। इसके लिए ही अपराधियों को पुनः अपराध करने से रोकने के लिए अंगहीन भी किया जाता था। मृत्यु-दण्ड तो इन दुष्टजनों से साधुजनों की रक्षा का अन्तिम उपाय था।

कोई राज्य-कर्मचारी इस काम के लिए नहीं रखे हुए थे, जो नागरिकों की देख-रेख करते रहें अथवा सुरक्षा का प्रवन्ध करते रहें। देश में अन्न, दूध-घी बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध था। इस कारण किसी को अभाव या कष्ट नहीं था।

फल-कन्द-मूल इतनी मात्रा में उपलब्ध होते थे कि लोग केवल इन प्राकृतिक उपलब्धियों से ही जीवन चला सकते थे। जो अन्न का भोग करना चाहते थे, वे राज्य की स्वीकृति से सामान्य कर पर भूमि ले उसपर अन्न उत्पन्न करते थे और फिर उसका उपभोग करते थे। अन्न खाने वाले लोग बहुत कम थे। प्रायः कन्द-मूल-फल पर ही निर्वाह करते थे। जीवन-निर्वाह के निमित्त दूसरी वस्तु वस्त्र और तीसरी गृह थे। गृह प्रायः लकड़ी के बनाए जाते थे और जंगल बहुत होने के कारण लकड़ी आवश्यकता से अधिक होती थी। प्रायः लोग स्वयं ही अथवा पड़ोसियों की सहायता से वन से लकड़ियाँ काट लेते थे। उनको स्वयमेव ही चीर-फाड़कर, ठोंक-ठाककर मकान खड़ा कर लेते थे। जो परिश्रम करना नहीं चाहते थे वे पर्वतों की कन्दराओं में रहते थे। वस्त्र भी प्राकृतिक तन्तुओं से परिवार में ही बना लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते थे।

ऐसा सरल-सादा जीवन था। राज्य ने कुछ वन अपनी आय के लिए सुरक्षित रखे हुए थे। उनकी उपज को वह विदेशों, विशेष रूप में देवलोक और पांचाल देश में भेजता था और वहाँ से स्वर्ण प्राप्त कर उससे विदेशी वस्तुएँ क्रय कर देशवासियों में वितरण करता था।

जब हिमाचल प्रदेश के महाराज की पुत्री गंगा का समाचार राज्य में पहुँचा तो कैलासपति के पार्षदों ने पूछा, "महाराज, सुना है कि लड़की अति सुन्दर थी !"

"हाँ, कुरूप तो नहीं कही जा सकती।"

"तो उसे यहाँ रानी बनाकर ले आते !"

"मुझे लड़की कुछ मूर्ख प्रतीत हुई। वह विवाह का निमन्त्रण अपने पिता के हाथ न भेजकर स्वयं ही सन्देश लेकर आ पहुँची थी। मुझे यह पसन्द नहीं था।"

इस समाचार के कुछ ही समय पश्चात् यह समाचार मिला कि लड़की पिता के घर से भाग गई है। इसपर यह अनुमान लगाया गया कि लड़की के माता-पिता ने इस विवाह की स्वीकृति नहीं दी होगी।

वात पुनः मन्त्रिमण्डल में हुई तो शिवजी का कहना था, "मैं पहले ही समझ रहा था कि उसके घरवाले इस देश के राजा से लड़की का विवाह नहीं चाहते। कदाचित् उसने अपने माता-पिता से कहा होगा और उन्होंने नहीं माना होगा, जिससे वह घर से भाग गई है।"

लड़की का ब्रह्मलोक में जाना तो पसन्द किया गया, परन्तु भगवान् शिव बिना लड़की के माता-पिता के सम्बन्ध लेकर आए विवाह में रुचि नहीं रखता था।

अभी यही चर्चा चल रही थी कि हिमवान की दूसरी लड़की उमा के प्रमोद-वन में तपस्या पर बैठने का समाचार आया।

समाचार लाने वाले से सभापति ने पूछा, "किस प्रकार तपस्या आरम्भ की गई है ?"

"महाराज, प्रमोदवन में दृषद्वती के तट के पास एक रमणीक स्थान पर एक वाटिका में राज्य की ओर से मन्दिर बनाया गया है और लड़की वहाँ स्वयं चालीस दिन का उपवास कर रही है।"

"उपवास में ले क्या रही है ?"

"प्रथम दस दिन में अन्न क्रमशः कम कर शून्य करेगी। तदनन्तर वायु और जल का ही सेवन इक्कीस दिन तक किया जाएगा और पुनः दस दिन में ग्रास-ग्रास बढ़ाकर पूर्ण भोजन इकतालीसवें दिन लिया जाएगा।"

"व्रत का उद्देश्य क्या है ?"

"यह ज्ञात नहीं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसके पास कौन रहता है ?"

"कोई नहीं। वह अकेली है। परन्तु उससे छुप-छुपकर राज्य-कर्मचारी और राजकुमारी की सखियाँ देख-रेख कर रही हैं। कोई समीप नहीं जाने पाता। कम से कम राजकुमारी के विचार से वह वहाँ अकेली है।"

"बहुत विचित्र हैं हिमवान की लड़कियाँ ! इनके गुरु कौन हैं ?"

"बड़ी लड़की के गुरुजी का तो देहान्त हो चुका है। छोटी लड़की के गुरु पण्डित चक्रधर हैं।"

"कोई मूर्ख प्रतीत होता है।"

"भगवन् ! यह किस कारण कहते हैं ?"

"उपवास का सम्बन्ध अपने मन और बुद्धि की शुद्धि के लिए भी हो सकता है और इसका उद्देश्य अपने प्रियजनों पर दबाव डालकर किसी प्रकार की बात मनवाना भी हो सकता है। निरुद्देश्य उपवास से शरीर क्षीण अथवा तेज-विहीन होने के अतिरिक्त कुछ नहीं होता।"

सूचना देने वाले ने कहा, "महाराज, एक वहाँ नगर में हो रही कानाफूसी भी सुनी जा रही है।"

"क्या ?"

"वह यह कि उमा उसी पथ पर चल पड़ी है, जिसपर उसकी बहन गंगा गई है।"

"परन्तु उसने तो व्रत नहीं रखा था।"

"महाराज, व्रत तो साधन है और उद्देश्य साधन से भिन्न होता है। लक्ष्य लक्षणों से जाना जाता है। यह कहा जा रहा है कि दोनों बहनों का लक्ष्य एक ही है।"

"और वह लक्ष्य क्या है ?"

"भगवन् ! वह लक्ष्य आप हैं।"

"ओह ! तो यह वहाँ कुछ लोगों को ज्ञात हो गया है कि मुझपर बाण चलाए जा रहे हैं ?"

"यह कहना कठिन है कि ये बाण हैं अथवा कि कुछ और हैं।"

"देखो भद्र, महाराज हिमवान की लड़की जब मुझसे मिलने आई थी तो सोलहों शृंगार एवं भूषण-वस्त्र पहनकर आई थी। मैं यह समझा था कि वह कामबाण चला रही थी, परन्तु मेरे मन पर संयम का सुदृढ़ कवच था और उसके बाण निरर्थक हो रहे थे।"

"महाराज !" सूचक ने कहा, "इस तपस्या और उपवास को आप क्या समझे हैं ? प्रत्यक्ष रूप में तो ये कामबाण नहीं प्रतीत होते।"

कैलासपति विचार में लीन हो गया। उसने इस विषय में कुछ कहने के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना विचार करने में कोई कारण न समझ हिमवान की लड़की का विचार छोड़ दिया।

उमा के चालीस दिन के उपवास के उपरान्त राज्य के गुप्तचर समाचार लाए और वह समाचार कैलासपति के मन्त्रिमण्डल को बताया गया। महामन्त्री ने कहा, "जिस दिन राजकुमारी उमा का व्रत समाप्त हुआ, उस दिन हिमाचल की जनता मन्दिर के बाहर बहुत बड़ी संख्या में राजकुमारी के दर्शन के लिए पहुँची। यद्यपि राजकुमारी नहीं चाहती थी, परन्तु लोगों के आग्रह को वह टाल नहीं सकी और उसने अन्तिम दिन नदी के तट पर आकर अपनी प्रजा को दर्शन दिए।

"उस समय राजकुमारी ने यह घोषणा की कि वह अब साठ दिन का व्रत आरम्भ करेगी। तिथि उसके गुरुजी निश्चय करेंगे।

"नगर की स्त्रियों और राजपरिवार की स्त्रियों ने पूछा था कि इन व्रतों से वह क्या सिद्ध करना चाहती है? राजकुमारी का कहना था कि मैं यह सब आत्म-शुद्धि के लिए कर रही हूँ।"

"तो यह उसके गुरुजी करा रहे हैं?"

"इन व्रतों से महाराज हिमवान प्रसन्न नहीं हैं। फिर भी वह सज्ञान लड़की से अपनी बात बलपूर्लक मनवा नहीं सके।"

महाराज ने मन्त्रिमण्डल में बात बदल दी। उसने कहा, "सुना है कि हमारी प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट है और वे बहुत बड़ी संख्या में महापार्षदजी से मिलने आए थे?"

"हाँ महाराज, बीस-पच्चीस वर्ष से देवलोक के साथ हमारा व्यापार बढ़ रहा है। लोग यहाँ से वहाँ जाते हैं और वहाँ के लोग भी यहाँ आते हैं। देवलोक में ईंट, पत्थर, चूना के मकान बनते हैं। सड़कें भी ईंट, चूने की हैं। नगर में कृत्रिम उद्यान हैं और महाराज, वहाँ अग्नि के प्रवाह से प्रकाश और ऊष्मा प्राप्त होते हैं। वह देश तो शीत-प्रधान है, परन्तु अग्नि-किरणों से पूर्ण देश रहने योग्य उष्ण और प्रकाश-मान बना रहता है।

"महाराज, यहाँ के लोग भी यह चाहते हैं कि अपने देश में भी वैसा ही प्रबन्ध किया जाए।"

"तो वहाँ की छूत यहाँ भी आ गई है?"

"लोगों को वह सुखदायक प्रतीत होती है।"

"अर्थात् वे सुख और सुविधा में अन्तर नहीं समझते। हम समझते हैं कि इसमें जनता का दोष प्रतीत नहीं होता। यह दोष तो हमारे देश के आचार्यों का प्रतीत होता है। उन्होंने दोषपूर्ण शिक्षा दी है।"

"तो महाराज! आचार्य वर्ग को बुलाया जाए और पूछा जाए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, पहले हम अपने देश के आचार्यों से बात करेंगे। तदनन्तर जनता से भी मिलेंगे।"

: ७ :

कैलासपति के भवन में एक महान् यज्ञ किया गया। यज्ञ विद्या-सम्बन्धी विषय पर विचार करने के लिए था। देश-भर के आचार्य और अध्यापक बुलाये गए थे। यज्ञ तीन दिन तक चलता रहा। तीनों दिन प्रातःकाल देवयज्ञ के उपरान्त एक प्रहर तक और सायंकाल देवयज्ञ से पूर्व एक प्रहर तक विद्या के विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद होता रहा।

पहले दिन कैलासपति ने इस सन्देश से विषय को आरम्भ किया :

"मेरे पास प्रजा के लोग यह याचिका लेकर आए हैं कि देवलोक जैसी सुख-सुविधा यहाँ भी निर्माण की जाएँ। शीतल-उष्ण जल के फव्वारे और स्नानागार बनाए जाएँ। मकान ईंट, पत्थर और चूने के बनवाए जाएँ। सड़कें पक्की हों। उष्ण देशों के-से फल और फूल उत्पन्न किए जाएँ। शीतल और उष्ण पवन आवश्यकतानुसार बहे और खाने को पकवान, मिष्टान्न, भाँति-भाँति के मसाले और स्वादिष्ट सुगन्धित पदार्थों से युक्त भोज्य वस्तुएँ बनाने की सुविधा दी जाए।

"यह विचार यहाँ आया है और लोगों ने स्वीकार किया है। जब कोई नया विचार स्वीकार किया जाता है, जो प्रचलित विचार के सर्वथा विपरीत है तो हम समझते हैं कि देश की शिक्षा में परिवर्तन हुआ है। शिक्षा से ही मानव-स्वभाव और फिर उससे इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। अतः हम यह प्रश्न देश के विद्वानों के सम्मुख रखते हैं, वे हमें बताएँ कि हम इस दिशा में क्या करें और कहाँ तक करें।"

इस भूमिका के उपरान्त पण्डित महिधर ने अपना वक्तव्य दिया, "महाराज! सत्ययुग में क्या उपलब्ध था और क्या उपलब्ध नहीं था, कहा नहीं जा सकता; परन्तु त्रेता युग के आरम्भ में प्लावन के उपरान्त बहुत ही कम संख्या में मनुष्य थे और पृथ्वी उनके लिए उत्पन्न करती थी। अब जनसंख्या इतनी बढ़ गई है कि भूमि स्वयं सबके लिए उत्पन्न नहीं कर सकती। इस कारण कृत्रिम पैदावार में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। इस कृत्रिम पैदावार के लिए ऊर्जा की कमी है। अतः ऊर्जा उत्पन्न करने की आवश्यकता है। उसके लिए ये सब कल-कारखाने लगवाने आवश्यक हो गए हैं। अपने देश में जनसंख्या बढ़ी तो है, परन्तु इतनी नहीं कि भूमि उनका पालन न कर सके। परन्तु महाराज! प्रत्येक माता-पिता के तीन से पाँच तक बच्चे होते हैं। इस कारण ऐसी सम्भावना प्रतीत होती है कि शीघ्र ही यहाँ भी वह स्थिति उत्पन्न हो जाएगी कि अन्न अधिक उत्पन्न किया जाए अथवा विदेशों से यहाँ मँगवाया जाए।

"जनसंख्या बढ़ने के साथ वन कम होते जाते हैं और लोग पशुओं का मांस भी खाने लगे हैं। पूर्व इसके कि वे मनुष्य का भी मांस खाने लगें, हमें यहाँ उपज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ाने का उपाय करना चाहिए। इसके लिए ऊर्जा और भूमि की आवश्यकता बढ़ गई है।"

"क्या ऊर्जा बिना सूर्य के भी अन्न उत्पन्न कर सकेगी?" कैलासपति का प्रश्न था।

"हाँ महाराज! वह इस प्रकार कि एक पग लम्बी-चौड़ी भूमि में जितना अन्न उत्पन्न हो सकता है, ऊर्जा की सहायता से दुगुना उत्पन्न हो सकेगा। दूसरे शब्दों में हम भूमि दुगुनी कर लेंगे।"

इसके उपरान्त विचार-विनिमय चलने लगा। विद्वानों में एक-दूसरा पक्ष भी था। उस पक्ष के प्रवक्ता ने बताया, "समस्या भूमि, ऊर्जा और कल-कारखानों की नहीं है। समस्या जनसंख्या की है। यदि जनसंख्या पर नियन्त्रण न किया तो जितने भी कारखाने और कल आज बनाओगे, दस वर्ष में वे सब अपर्याप्त हो जाएँगे। फिर और बड़े-बड़े कारखाने बनाओगे तो कल-कारखानों में काम करने वाला एक-एक कर्मचारी भी मशीन की भाँति जड़ हो जाएगा। इससे उन्नति के स्थान पर अवनति होगी।"

एक अन्य दृष्टिकोण भी था, "यदि सन्तान कम करने की आवश्यकता हो तो देवलोक की भाँति यहाँ भी ओषधि प्रयोग से लोगों को सन्तान-निरोध के लिए कहा जाए।"

तीनों दिन तक वाद-विवाद इस प्रकार चलता रहा। तीसरे दिन मध्याह्नोत्तर कैलासपति शिव ने पूर्ण विचार-विमर्श का निष्कर्ष निकालकर बताया।

शिव ने कहा, "मैं समझता हूँ कि पूर्ण समस्या जनसंख्या की है। परमात्मा ने भूमि, जल और अन्य प्राकृतिक उपलब्धियाँ सीमित मात्रा में दी हैं। यद्यपि मैं समझता हूँ कि इन उपलब्धियों की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है, परन्तु वह असीम नहीं हो सकती। अतः जनसंख्या की समस्या तो सदा बनी रहेगी। प्रश्न यह है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण उस ढंग से किया जाए जैसे देवलोक में किया जा रहा है अथवा उस ढंग पर, जैसा हम यहाँ अभी तक करते रहे हैं।

"हमारा उपाय तो शास्त्र-वर्णित संयम है। संयम के लिए आवश्यक है—चित्त और मन पर निरोध, ईश्वर-भजन, ज्ञान-ध्यान में लीनता, स्त्री-पुरुषों का जहाँ तक सम्भव हो दूर-दूर रहना, शारीरिक परिश्रम कम और बौद्धिक परिश्रम अधिक।

"दूसरा उपाय देवलोक में प्रयोग किया जा रहा है। वहाँ सन्तान-निरोध ओषधियों से किया जा रहा है और वासना को निर्बाध किया जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि जनसंख्या कम हो रही है। अब देवेन्द्र यह चिन्ता करने लगे हैं कि सन्तान अधिक हो, परन्तु यह हो नहीं रहा। जब एक बार वासना की चटक लग जाए तो फिर यह हटती नहीं और जब एक बार जीवनस्तर व्यय के विचार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ऊँचा हो जाए तो फिर घट नहीं सकता। यह ठीक है कि इन्द्र के मित्रों की संख्या बहुत अधिक है और देवलोक पर किसीने आक्रमण नहीं किया, परन्तु मैं जानता हूँ कि यदि किसी असुर राज्य ने देवलोक पर आक्रमण कर दिया तो इन्द्र देवलोक की रक्षा नहीं कर सकेगा।

"देश की रक्षा के लिए सुदृढ़, बुद्धिमान, संयमी, कठिनाइयों को सहन करने योग्य सैनिक चाहिए, अन्यथा देश की रक्षा एक विकट ससस्या बन जाएगी।

"एक बार इन्द्रदेव से मेरी इसी विषय पर बात हुई थी और वे कहने लगे कि उसके पास दिव्य अस्त्र है, और बहुत कम बल वाले और संख्या में कम लोग भी दिव्य शस्त्रास्त्रों से देश की रक्षा कर सकेंगे।

"मुझे उनकी यह युक्ति ठीक प्रतीत नहीं हुई। ज्ञान-विज्ञान किसी की बपौती नहीं है और हम यह मानते हैं कि अन्तरिक्ष के देवतागण अभी भी ज्ञान छन्दों में उच्चारण कर रहे हैं। असुरों में भी उन छन्दों को श्रवण कर समझने वाले उत्पन्न हो सकते हैं। तब शस्त्रास्त्र में श्रेष्ठता हमारा एकाधिकार नहीं रह जाएगा। तब शस्त्रास्त्रों की श्रेष्ठता की बात टाँय-टाँय फिस हो जाएगी।

"सब प्रयासों का आदि और अन्त मानव-शरीर, मन और बुद्धि है। ये तीनों संयम से वृद्धि और श्रेष्ठता पाते हैं। इस कारण मैं जनसंख्या में वृद्धि रोकने का उपाय यह नहीं समझता।"

जब कैलासपति अपना वक्तव्य दे चुके तो एक आचार्य ने प्रश्न पूछ लिया, "महाराज ! यह बात तो ठीक है, परन्तु लोगों को किस प्रकार समझाया जाए ? वासनामय जीवन अति प्रिय होता है और यह व्यक्तिगत धर्म है। इसे रोकना अति कठिन है।"

कैलाशपति का उत्तर था, "आचार्यवर ! यह ठीक है, परन्तु आप लोगों का यह सम्मेलन इस बात के लिए किया गया है कि आप यह समझ लें कि :

" (१) सन्तान-निरोध करना है।

" (२) इसके लिए संयम और वे सब उपाय, जो संयम को उत्साहित करने वाले हैं, लाने हैं।

" (३) दूसरे उपायों से क्या हानि होगी, यह बताना है।

" (४) प्रजा मन, शरीर और बुद्धि से निर्बल हुई तो क्या हानि होगी, यह सोचना है।

"इन सब बातों पर आपको निश्चय करना होगा और फिर इनको सम्पन्न करने लिए शिक्षा में उचित उपाय करना होगा।"

प्रश्नकर्ता ने आगे पूछा, "यदि हमने शिक्षा में उचित सुझाव आज दिए तो इनका प्रभाव पच्चीस वर्ष के उपरान्त प्रकट होगा। तब तक तो लोग सर्वथा बिगड़ जाएँगे और सम्भव है कि यहाँ विप्लव हो जाए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसका उपाय राज्य करेगा; परन्तु स्थाई और ठीक उपाय तो शिक्षा के द्वारा ही होगा।"

आचार्यों के इस यज्ञ के उपरान्त कैलासपति ने राज्य के प्रमुख और बुद्धिशील व्यक्तियों की एक सभा बुलाई। राजभवन के सबसे बड़े आगार में एक सहस्र के लगभग लोग एकत्रित किए और उनमें कैलासपति ने यह घोषणा कर दी :

"प्रजागण ! प्रजा के कुछ लोगों ने यह याचिका दी है कि देवलोक की भाँति यहाँ भी विज्ञान-सम्बन्धी विकास किया जाए और अग्नि-विद्युत् आदि का प्रबन्ध किया जाए, जिससे जीवन सुलभ, सुगम और सरस हो सके।

"मैं यह सब प्रबन्ध करने को तैयार हूँ, परन्तु स्मरण रखें कि इन सब सुविधाओं का मूल्य चुकाना होगा। ये सुविधाएँ, देवलोक में और यहाँ पर भी, यदि चालू की गईं तो घोर परिश्रम से ही उपलब्ध हो सकेंगी। तब बड़े-बड़े यन्त्रालय लगाने होंगे। उनमें लोग बैल और अश्वों की भाँति कार्य करेंगे। काम ठीक न करने पर या तो काम से निकाल दिए जाएँगे अथवा चाबुक लगा-लगाकर आपको काम करने पर विवश किया जाएगा। यह दासता के जीवन का आरम्भ होगा।

"यह मैं जानता हूँ कि प्रयत्न जीवात्मा का धर्म है; परन्तु दासता में प्रयत्न करना धर्म नहीं। दासता का अर्थ है, दूसरे की इच्छा से काम करना। स्वेच्छा से कार्य करना स्वतन्त्रता है। दोनों प्रकार से अच्छे कार्य भी किए जा सकते हैं और बुरे कार्य भी। फिर भी स्वतन्त्रता से विचारकर किया हुआ कार्य फल उत्पन्न करता है, अन्यथा एक पशु की भाँति जीवन बन जाता है।

"इस कारण मेरी सम्मति यह है कि व्यक्तिगत रूप में अपने लिए सुख-सुविधा प्राप्त करने का यत्न करो। ज्ञान प्राप्त करो और बिना किसीके आश्रय अपने-आप जितना सुख प्राप्त कर सको, करो।

"ज्यों ही सामूहिक रूप से सुख-प्राप्ति की ओर यत्न किया जाएगा, राज्य को आपके कार्य में हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ेगी और फिर वही दासता यहाँ भी उपस्थित होगी, जो देवलोक में है। सैकड़ों और सहस्रों लोग एक-एक यन्त्र में बाँधकर काम में लगाए जाएँगे। काम न करने अथवा नियत काम से कम करने पर कोड़ोंसे पीट-पीटकर काम कराया जाएगा। तदनन्तर एक संयंत्र की निर्मित वस्तुएँ दूसरे संयन्त्र वालों को मूल्य पर दी जाएँगी और इस प्रकार तुम जो कुछ भी अर्जन करोगे, वह दूसरों से निर्मित वस्तुओं पर व्यय हो जाएगा। इस प्रकार आवश्यकताओं की दासता आरम्भ हो जाएगी।

"मैं इस प्रकार राज्य-कार्य नहीं कर सकूँगा। यह सर्वहित अथवा लोक-कल्याण का कार्य होगा नहीं। हमारा घोष 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' इस प्रकार का कार्य करने के लिए प्रेरणा नहीं देगा।

"एक बात मैं और बता देना चाहता हूँ। भोग की लालसा कभी तृप्त नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती। जो कुछ प्राप्त होता है उससे अधिक पाने की लालसा बनी रहेगी। यह कामनामय जीवन कल्याण का जीवन नहीं होगा।

"अब सब लोग जाओ और अपने सम्बन्धियों, मित्रों तथा पड़ोसियों को समझाओ। सब अपने-अपने सुख के साधन अपने प्रयास से उपलब्ध करो।

"यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आप जानें और आपका काम जाने। तब यह राज्य देवलोक का एक अंग बन जाएगा और मैं अपना निवास कहीं अन्यत्र ले जाऊँगा।"

कैलासपति की इस चुनौती की पार्षद महासमिति में चर्चा हुई।

"कहाँ जाएँगे महाराज?" मुख्य पार्षद का प्रश्न था।

"देखो महापार्षद! ईश्वरीय नियम से मैं इस भूलोक को जीवन-भर नहीं छोड़ सकता। इस कारण रहूँगा तो इस पृथ्वी पर ही। मेरा जीवन अभी ढाई-तीन सौ वर्ष चलेगा और तब तक का प्रबन्ध कर लूँगा। मुझ जैसे फक्कड़ के लिए, जिसकी आवश्यकताएँ नगण्य-सी हैं, किसी भी पेड़ के नीचे आश्रय मिल जाएगा।"

"परन्तु महाराज! हम क्या करेंगे?"

"देखो महामना! अभी तक आप ऐसे ही रहते हो, जैसे मैं रहता हूँ। इससे यह सब छोड़-छाड़कर कहीं चल देने में आपको भी कष्ट नहीं होगा।

"हाँ, यदि सत्ता का मद मस्तिष्क में चढ़ गया तो फिर आप देवेन्द्र से मिल लेना और वह आपका मार्गदर्शन करा देगा।"

कैलासलोक में शिव के कथन से आतंक छा गया। सब जानते थे कि इस लोक जितनी स्वतन्त्रता अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती; परन्तु शारीरिक भोगों का प्रलोभन बहुत प्रबल था और वह छोड़ा नहीं जा सकता था। इस कारण प्रत्येक नागरिक के मन में घोर मानसिक संघर्ष चल पड़ा था।

चिन्तित प्रजाजनों में महापार्षद सुधाकर की पत्नी उर्मिला भी एक थी। जिस दिन नागरिकों की सभा राजभवन में हुई थी, वह पति के घर पहुँचते ही पूछने लगी, "क्या हुआ है?"

"महाराज ने प्रजा को डाँट दिया है कि यदि देवलोक जैसे यन्त्र लगवाने के लिए प्रजा कहेगी तो प्रजा को देवलोक की प्रजा बन जाना चाहिए और वे यह लोक छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाएँगे।"

"परन्तु आर्य, मैं अपनी बहन के घर देवलोक में एक मास तक रही हूँ, और वहाँ सुख तो बहुत है।"

"क्या सुख है?"

"दिन हो अथवा रात, बादल हों अथवा सूर्य निकला हो, वहाँ सब समय मकानों में ऊष्मा बनी रहती है। दीवारों से स्वतः प्रकाश निकलता रहता है और कभी अँधेरा होता ही नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक अन्य बात देखी है। वह यह कि आठों प्रहर दिन-रात, शीतल और उष्ण जल प्रवाहिकाओं में से स्रवित होता रहता है।

"नित्य रात को रंगरेलियाँ होती हैं। नाटक, संगीत, नृत्य स्थान-स्थान पर राज्य की ओर से होते रहते हैं।

"अमरावती में सड़क के प्रत्येक मोड़ पर फव्वारे लगे हैं, जो देखने में बहुत ही भले प्रतीत होते हैं।"

"यहाँ यह कुछ नहीं हो सकता। इसके लिए जन-जन पर कर लगाना पड़ेगा और काम में वृद्धि के लिए परिश्रम अधिक और मजदूरी कम करनी होगी।"

"देखिए आर्य ! एक बात करिए। महाराज का विवाह करा दीजिए और फिर एक बार महारानीजी को देवलोक की सैर करा दीजिए तो सब ठीक हो जाएगा।"

"क्या ठीक हो जाएगा ?"

"महारानी महाराज को समझा देंगी और फिर जो भी महाराज के लिए निर्माण होगा, उसका एक अंश हमको भी प्राप्त होगा।"

"हाँ। यह योजना परीक्षा करने योग्य है। स्त्री कलात्मक होती है और वह पूर्ण देश को कलात्मक बनवा देगी। कठिनाई यही है कि महाराज बड़े होते जाते हैं और विवाह के लिए अभी इच्छा नहीं करते।"

"परन्तु समाचार तो है कि हिमवान की लड़की घोर तपस्या कर रही है।"

"किस सिद्धि के लिए तपस्या कर रही है ?"

"आर्य ! मेरी एक दासी की बहन हिमाचल की राजधानी में रहती है। कुछ दिन हुए वह अपनी बहन से मिलने आई थी और बता रही थी कि राजकुमारी ने चालीस दिन के व्रत के उपरान्त अब अस्सी दिन का व्रत रखा हुआ है। सबसे कठिन काल व्रत में तब होता है जब बीच में कुछ दिन के लिए केवल जलपान ही किया जाता है। इस बार यह बीस दिन की अवधि थी। राजकुमारी इतनी दुर्बल हो गई थी कि अन्तिम दिनों में तो वह हिल-डुल भी नहीं सकती थी। राजकुमारी की इस शोचनीय अवस्था को देख प्रजागण को यह सन्देह हो गया है कि राजकुमारी किसीसे विवाह करना चाहती है और उसके माता-पिता पसन्द नहीं करते। इस कारण प्रजागण राजमहल के बाहर एकत्रित होकर महाराज और महारानी से याचना करने लगे कि राजकुमारी की इच्छा पूर्ण क्यों नहीं की जाती ?

"महाराज हिमवान ने लोगों को आश्वासन दिया है कि वह और उसके परिवार के लोग उसकी इच्छा में बाधक नहीं हैं। क्या बाधा है, यह राजकुमारी स्वयं ही बता सकती है। प्रजागण राजकुमारी के पास भी पहुँचे थे। वह प्रमोदवन में एक पक्की कुटिया में, जो मन्दिर के रूप की प्रतीत होती है, व्रत किए हुए लेटी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पहले तो प्रजागण को राजकुमारी के पास जाने नहीं दिया जाता था। यह प्रतिबन्ध राजकुमारी का ही लगाया हुआ था। जब प्रजागण ने बहुत हल्ला किया तो संरक्षकों को राजकुमारी ने कहा कि प्रजा के दो प्रतिनिधि उसे देखने आ सकते हैं।

"प्रजा के दो प्रमुख राजकुमारी के सम्मुख उपस्थित हुए थे और राजकुमारी से जो वार्तालाप हुआ, उन प्रमुखों ने बाहर आकर सुनाया था। हमारी दासी की बहन भी प्रमोदवन में राजकुमारी के दर्शन के लिए गई थी। प्रमुखों ने प्रजागण को बताया कि राजकुमारी कहती है कि उसका व्रत एक अति श्रेष्ठ पति पाने के निमित्त है। वह उसका नाम नहीं बताना चाहती। कारण यह कि ऐसा करने से उसपर उनके व्रत का दबाव पड़ेगा। यह वह नहीं चाहती। व्रत तो वह आत्मोन्नति के लिए कर रही है। उनको राजकुमारी ने बताया है कि जब उसको विश्वास हो जाएगा कि वह उसके समान उन्नत और श्रेष्ठ योगयुक्त हो गई है तो वह स्वयं उसे अपने घर ले चलने के लिए आ जाएगा।

"प्रजा के प्रमुख ने बताया कि सब लोग आपके दर्शन करना चाहते हैं। राजकुमारी का कहना था कि वह इसकी आवश्यकता नहीं समझती। परन्तु प्रमुखों ने युक्ति की और कहा कि दर्शन देने वाले ही की आवश्यकता का प्रश्न नहीं। यह आवश्यकता तो दर्शन करने वाले की होती है।

"राजकुमारी मान गई कि प्रजागण पंक्ति बाँधकर समीप से दर्शन कर निकल जाएँ तो उसे कोई आपत्ति नहीं। केवल वे उससे कुछ पूछें नहीं और किसी प्रकार का शोर न करें।

"उस दिन राजकुमारी के उपवास का पैंतालीसवाँ दिन था। उसको कुछ भी न लिए हुए तब पन्द्रह दिन हो चुके थे। उसकी एक सखी कुन्तला ही उसके पास बैठी थी और एक चम्मच से बूँद-बूँद कर जल उसके मुख में डाल रही थी। प्रजागण, जो लगभग पाँच-छः सहस्र की संख्या में थे, उनकी शय्या के समीप से पंक्ति में दर्शन करते हुए निकल रहे थे। सबको दर्शन करने में एक प्रहर से ऊपर लगे और दासी की बहन का कहना है कि राजकुमारी शरीर से दुर्बल तो प्रतीत होती थी, परन्तु ओज में उन्नत प्रतीत होती थी। उसका कहना है कि ऐसा प्रतीत होता था कि उसके मुख के भीतर कोई ज्योति प्रदीप्त हो रही थी और मुख ऐसे चमक रहा था जैसे पूर्णिमा का चाँद चमकता है।"

सुधाकर अपनी पत्नी की बात सुन चकित रह गया। उसकी पत्नी उर्मिला ने कहा, "अपनी दासी की बहन कहती थी कि वहाँ राजधानी में कानों-कान लोग कह रहे हैं कि यह तपस्या कैलासपति को वरने के लिए की जा रही है।"

अब तो सुधाकर अपनी पत्नी का मुख देखने लगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ८ :

उमा का अस्सी दिन का व्रत समाप्त हो चुका था। उसको भोजन क्रमशः लेते हुए बीस दिन हो चुके थे। चावल के माण्ड से आरम्भ कर अब वह अपना सामान्य भोजन लेने लगी थी। यह व्रत का अस्सीवाँ दिन था। नियमानुसार केवल कुन्तला ही उसके पास थी। भोजनोपरान्त उमा ने कुछ विश्राम किया और दृषद्वती के तट पर दोनों एक पत्थर पर बैठ, नदी की शोभा निहार रही थीं कि एकाएक कुन्तला ने पूछा, "सखी! अब आगे क्या विचार है?"

"मैं अब इससे भी लम्बे व्रत की कल्पना करने लगी हूँ।"

"क्या लाभ होगा इससे?"

"जो कुछ पहले दो व्रतों से लाभ हुआ है, इस बार उससे अधिक लाभ होगा।"

"क्या लाभ हुआ प्रतीत हुआ है?"

"प्रत्यक्ष रूप में अपनी प्रजा के मनों तक मैं पहुँच गई हूँ। उन सबकी सहानुभूति मेरे साथ है। अभी उसकी सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई, जिसकी मैं चाहती हूँ।"

"परन्तु सखी! उसको तुम्हारे व्रतों का समाचार मिला हो, यह भी प्रतीत नहीं होता। सहानुभूति तो बाद की बात है।"

"सखी! शास्त्र कहता है कि मानव-मन उसी तत्त्व का बना है जो प्रकृति का प्रथम रूपान्तर है और वह सर्वव्यापक है। उस तत्त्व को महत् कहते हैं। जब प्रजागण के मन में मेरे व्रत की तरंग गई है तो वहाँ भी निस्सन्देह पहुँची होगी। ज्यों ही उसके मन में मेरे सत्य हृदय का सन्देश मिला, वह अवश्य आएगा और मुझसे बातचीत कर मुझे अपने घर ले जाएगा।"

"परन्तु सखी! इस बार पूर्ण व्रत के दिनों में तुम्हारे जीवन की चिन्ता ही लगने लगी थी। तुम लेटी-लेटी अचेत हो जाती थीं।"

"परन्तु मैं मरने वाली नहीं थी। भीतर से मैं सब देख और सुन रही थी।"

"फिर भी सखी! मेरी सम्मति है कि अब इस खेल को बन्द कर दो।"

"परन्तु यह खेल नहीं है। यह तो मैं अपनी कठिन यात्रा को पग-पग करके पार कर रही हूँ।"

कुन्तला का राजधानी से सम्पर्क था। उसने महारानी और महाराज को उमा की भावी योजना की सूचना भेज दी। महेन्द्र अपनी पत्नी के साथ उमा से मिलने आया। उसने ही बहन के लिए प्रमोदवन में वह मन्दिर बनवाया था और वह ही उसकी सब प्रकार की सहायता कर रहा था।

जब पति-पत्नी उमा से मिलने आए तो उसने कुछ रोष में पूछ लिया, "दादा! तुमने ही राजधानी में यह धूम मचवा दी है कि मैं व्रत रखकर मर रही हूँ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं बहन !" महेन्द्र का कहना था, "हमने इस विषय में एक भी शब्द किसी बाहरी व्यक्ति को नहीं कहा। यह तो जनता में स्वतः ही बात फैल गई है। और एक बात मैं यह बताने आया हूँ कि देवलोक और ब्रह्मलोक तक तुम्हारे व्रत की गूँज हो गई है।"

"परन्तु दादा ! जहाँ मैं सूचना पहुँचाना चाहती हूँ, वहाँ तो अभी तक नहीं पहुँची। कम से कम वहाँ से किसी प्रकार की सहानुभूति की अभी आशा नहीं बनी।"

"तो तुम यह व्रत अपनी इच्छा का ढोल पीटने के लिए कर रही हो ?"

"नहीं दादा ! मैं तो यह कह रही हूँ कि मेरे व्रत की बात किसी को भी बतानी नहीं चाहिए। यह मैं अपना आत्मिक बल ऊँचा करने के लिए कर रही हूँ।"

"तो कितना ऊँचा हुआ है अभी तक ?" सुचाला ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

"भाभी ! अभी कैलास पर्वत जितना ऊँचा नहीं हुआ।"

"तो तुम पर्वतवत् जड़ बन जाना चाहती हो ?"

"नहीं भाभी ! पर्वतवत् जड़ नहीं, वरंच पर्वत पर रहने वालों की भाँति आत्मवान्।"

"ओह !" सुचाला ने कह दिया, "और बहन ! कितना ऊँचा चढ़ गई अनुभव करती हो ?"

"नीचे की ओर देखने से तो भय लगता है। शंका उत्पन्न होती है कि कहीं पाँव फिसल गया तो न जाने किस गहराई में जा गिरूँ और जब ऊपर को देखती हूँ तो वह बहुत दूर प्रतीत होता है।"

"तो फिर ?"

"अब एक सौ दिन व्रत रखने का विचार है।"

"सब व्यर्थ है।" महेन्द्र ने कहा, "देखो बहन ! व्रत का एक उद्देश्य तो पूर्ण हो गया है। पिताजी ने प्रजा के सम्मुख यह स्वीकार कर लिया है कि वह तुम्हारी इच्छा का विरोध नहीं करेंगे। दूसरा उद्देश्य कदाचित् इस प्रकार पूर्ण नहीं होगा। कहो तो मैं तुम्हारा सन्देश लेकर कैलास देश की राजधानी की यात्रा करूँ ?"

"यदि आपने अथवा माता-पिताजी ने कुछ ऐसा किया तो मेरे लिए जल मरने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं रहेगा।"

"क्यों ?"

"यह इस देश में अभी प्रथा नहीं कि लड़कियाँ वर से याचना करती फिरें।"

"परन्तु गंगा ने तो ऐसा किया था।"

"तभी वह निन्दनीय रही। वह पति से स्वीकार नहीं हुई। मैंने दीदी से कहा था कि पहले योग्यता प्राप्त करो, फिर फल-प्राप्ति की इच्छा करो।"

"तो फिर ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आगामी पूर्णिमा के दिन तीसरा व्रत आरम्भ करूँगी। पैंतीस दिन भोजन छोड़ने में और पैंतीस ही दिन पुनः सामान्य स्तर पर भोजन करने में और तीस दिन सर्वथा अनशन।"

"बहुत कठिन होगा।" सुचाला ने कहा, "हम समझते हैं फिर वर प्राप्त करते-करते यह शरीर ही छूट जाएगा।"

"नहीं भाभी ! मैं ऐसा नहीं समझती। मैं यह समझती हूँ कि मैं इससे भी अधिक दिन तक बिना अन्न ग्रहण किए जीवन व्यतीत कर सकती हूँ। पूर्ण व्रत के दिनों में भोजन सूक्ष्म अवस्था में वायु के साथ मिला हुआ प्रकृति माँ भेजती है और वह जीवन-डोर बँधी रखने में सहायक होता है।"

"परन्तु हमें भय लग रहा है।"

"किस बात का ?"

"बहन उमा के हमें छोड़ जाने का।"

"वह तो एक दिन छोड़ना ही होगा। भाभी भी तो अपने माता-पिता, भाई-बन्धुओं को छोड़कर आई हुई हैं।"

"उनसे तो मैं मिलती रहती हूँ। मैं पिछले मास अपने गाँव पांचाल में गई थी।"

"तो मैं भी आया करूँगी।"

"परलोक से भी ?"

"नहीं भाभी ! मैं परलोक नहीं जा रही। अभी इस जन्म के बहुत से काम करने शेष हैं। मैं उनको किए बिना नहीं जाऊँगी।"

महेन्द्र और सुचाला का आना सफल नहीं हुआ और उमा ने तीसरा भीषण व्रत आरम्भ कर दिया। इस समय तक राजकुमारी उमा के व्रतों की देश की प्रजा और देश से बाहर जाने वाले लोगों में चर्चा होने लगी थी। इन्द्र के राजप्रासाद में भी इसकी गूँज पहुँची थी। नारद इन्द्र से मिलने आया हुआ था और इन्द्र देवलोक में किंवदन्ती सुना रहा था।

इन्द्र ने पूछा, "मुनि महाराज ! आपको हिमाचल देश में गए कितना काल व्यतीत हो चुका है ?"

"एक वर्ष के लगभग हो चुका है।"

"सुना है कि हिमवान की बड़ी लड़की घर से भाग ब्रह्मलोक में चली गई है ?"

"हाँ, देवेन्द्र ! वह गई तो भागकर ही थी, परन्तु ब्रह्माजी ने उसे अपने देश में रहने की सुविधा दे दी है। साथ ही उन्होंने हिमवान, गंगा के पिता, से उसे वहाँ रखने की स्वीकृति ले ली है।"

"तो पितामह जी को भी इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई थी ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किस बात की आवश्यकता अनुभव हुई थी ?" नारद ने इन्द्र के मनोभावों को समझने के लिए पूछ लिया।

इन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "जिस आवश्यकता से कोई पुरुष स्त्री की संगति प्राप्त करता है।"

नारद ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "इन्द्र ! तुम दिन-प्रतिदिन दुष्ट होते जाते हो।"

"सत्य ? नहीं महामुनि ! मैं अनुभव करता हूँ कि मैं दिन-प्रतिदिन संसार को अधिक भली प्रकार जान रहा हूँ।"

महामुनि नारद ने कहा, "नहीं देवेन्द्र ! तुम्हारा अनुमान मिथ्या है। ब्रह्माजी इस आयु से ऊपर हो चुके हैं। उन्होंने गंगा को देवताओं के हित के लिए अपने देश में रखा हुआ है। वह भूत, भविष्य के भी ज्ञाता होने से जानते हैं कि गंगा के गर्भ से उत्पन्न सन्तान देवताओं का अपार हित करने वाली होगी। इसी भविष्यवाणी की सहायतार्थ पितामहजी गंगा को अपने संरक्षण में रखे हुए हैं।"

"आप दोनों वृद्ध जन अपने मन से जोड़-तोड़ लगाते रहते हैं और सृष्टि आपकी अवहेलना करती हुई अपने मार्ग पर चलती जाती है।"

"हाँ, यह तो है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। इस कारण यह कभी अपने प्रारब्ध के भी विपरीत कर्म करने लगता है। इसका परिणाम भयंकर होता है। मनुष्य अल्पज्ञ और मूढ़ होने के कारण यह कहता है कि वह अपने भाग्य का विधाता है। परन्तु ऐसा है नहीं।"

इन्द्र ने बात बदल दी और कहा, "सुना है कि हिमवान की दूसरी लड़की उमा भी व्रत पर व्रत रख रही है ?"

"हाँ, वह पति पाने के लिए व्रत रख रही है।"

"परन्तु वह तो अति सुन्दर कही जाती है ?"

"हाँ, मन, बुद्धि और शरीर तीनों से वह अति सुन्दर है।"

"तो वह पति पाने के लिए वहाँ बैठी क्या कर रही है ? उसे आप सम्मति दीजिए कि देवलोक में चली आए। मैं उसे अपने राजप्रासाद में रख लूँगा।"

नारद हँस पड़ा। उसकी हँसी अति मधुर और लुभायमान हुआ करती थी। इस कारण इन्द्र इसका अर्थ समझने को भूल उसकी हँसी की ध्वनि में ही लीन हो, उसका मुख देखता रह गया।

नारद ने हँसकर कहा, "हिमवान की छोटी लड़की उमा देवताओं को घृणा की दृष्टि से देखती है। देखो देवेन्द्र ! किसी समय देवताओं को संसार-भर के ज्ञान-विज्ञान का स्वामी माना जाता था। उस काल के देवताओं ने घोर परिश्रम कर प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को समझ लोक-कल्याण का कार्य भी बहुत किया था। परन्तु देवेन्द्र ! महाप्लावन के उपरान्त मनु की सन्तान ने शून्य से आरम्भ कर बहुत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नति की है और शीघ्र ही वे देवताओं पर एक दिन आक्रमण कर देंगे। तब तुम्हारा अभिमान चूर होगा।"

इन्द्र हँस पड़ा। हँसते हुए बोला, "वे भले ही ज्ञान-विज्ञान में हमारे समान उन्नति कर लें, परन्तु वे नीति में हमारी समानता नहीं कर सकते। हम सदा नीति में उनको पछाड़ देंगे।"

नारद का कहना था, "हिमाचल प्रदेश भी मनु-सन्तान से बसा हुआ है और उनका आचार-व्यवहार आप लोगों के आचार-व्यवहार से भिन्न है। आपके देश में पति-परिवर्तन एक सामान्य-सी बात समझी जाती है, परन्तु वहाँ पति-पत्नी सम्बन्ध यदि जन्म-जन्मान्तर तक नहीं तो मरणपर्यन्त तक समझे जाते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ जब एक की भार्या बन गईं तो फिर दूसरों से सम्बन्ध बनाना नहीं चाहतीं।"

इन्द्र ने बात बदल दी। उसने कहा, "तो हिमवान की बेटी उमा किससे विवाह की अभिलाषा क्या कर रही है?"

"कैलासपति महादेव शिवजी से।"

"उस भंगड़ में उसने क्या देखा है?"

"यह मैं नहीं बता सकता। मेरी दृष्टि वह नहीं जो एक कुमारी की दृष्टि हो सकती है। इस कारण मैं उसके अन्तर्मन की बात बता नहीं सकता। एक बात मैं जानता हूँ कि देवलोक के लोगों से कैलास देश वालों का रहन-सहन और व्यवहार अति सरल और श्रेष्ठ है। वहाँ लोग झूठ नहीं बोलते।

"मुझे स्मरण है, कुछ वर्ष की बात है कि डाकुओं का एक गुट देवलोक में आ रहे माल को लूटता पकड़ा गया था। जब वे लोग न्यायालय में उपस्थित किए गए तो सब डाकुओं ने अपने कर्म को स्वीकार किया, परन्तु उसे दूषण नहीं माना।

"डाकुओं के प्रमुख ने न्यायाधीश के सम्मुख स्वीकार किया कि उन्होंने देव-लोक जाते हुए माल का अपहरण किया है।"

" 'क्यों किया?' न्यायाधीश ने पूछा।

" 'इस कारण कि हम ऐसा करने की सामर्थ्य रखते हैं।'

"न्यायाधीश ने कहा, 'अब राज्य की सामर्थ्य आपसे अधिक सिद्ध हुई है।'

" 'जी!' डाकुओं के नेता का कहना था, 'और हम राजदण्ड भोगने के लिए तैयार हैं।'

"इस पर विचार किया गया और दण्डस्वरूप उनकी टाँगें काट दी गईं, जिससे वे देश छोड़कर भाग न सकें और हाथ से करने का काम उनको दिया गया है। उस काम का पारिश्रमिक उनको मिलता है।"

"बहुत सरलता है दण्ड-विधान में?"

"हाँ! महाराज शिव कहते हैं कि परमात्मा के दिए प्राण (शारीरिक शक्ति) से उन्होंने अधर्म-कर्म किया था और वह शक्ति उनमें क्षीण कर दी गई है। वे उसके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारी नहीं रहे।

"शेष जीवन का साधन राज्य की सहायता से उनको मिलता है। वे बैठे-बैठे अब हाथ से काम करते हैं।"

"यह तो अति क्रूरता है।"

"महादेव इसको दया का कार्य मानते हैं।"

"और हिमवान की राजकुमारी उस देश के शासक से विवाह करेगी?"

"वह ऐसी इच्छा कर रही है।"

"देखिए मुनिवर! आप वहाँ जाइए और उसे कहिएगा कि मेरे राजभवन में आ जाए तो यहाँ उसे अधिक सुख और सुविधा प्राप्त होगी।"

"मैं तो कैलासलोक को जा रहा हूँ।"

"किस प्रयोजन से?"

"ब्रह्माजी का सन्देश देने के लिए।"

"क्या सन्देश है उनका?"

"यही कि शिव को अपने यौवन में ही विवाह कर एक और पुत्र उत्पन्न करना चाहिए। पश्चिम से काली घटाएँ उमड़ती चली आ रही हैं। अभी उन घटाओं का बीज रूप ही दृष्टिगोचर हो रहा है। आज से पच्चीस-तीस वर्ष में यदि इन घटाओं को रोका न गया तो ये पूर्ण देवलोक पर छा जाएँगी। अभी से जिनमें वीर पुत्र उत्पन्न करने की सामर्थ्य है, उनको अपनी सामर्थ्य का प्रयोग करना चाहिए।"

"और वह मानवों की कन्या से विवाह कर ले?"

"हाँ, देवेन्द्र! यही ब्रह्माजी के सन्देश का आशय है।"

इन्द्र जोर से हँसा और बोला, "अच्छा मुनिवर! वहाँ से लौटते हुए अपने इस दूत-कार्य का परिणाम बताते जाइए।"

"आशा तो यही करता हूँ कि आपको विवाह पर बारात में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मेरे लौटने से पहले मिलेगा।"

"तो मुझे उस भंगड़ की वर-यात्रा में सम्मिलित होना चाहिए?"

"यह आपके विचार का विषय है। मैं इच्छा करता हूँ कि महाराज हिमवान आपको आमन्त्रित करें।"

"हाँ, यह विचारणीय तो होगा ही।"

बात इससे आगे नहीं हुई और नारद कैलासलोक को प्रस्थान कर गया।

: ६ :

कैलासपति के पार्षद मण्डल ने महाराज को आग्रहपूर्वक विवाह करने के लिए कहा तो कैलासपति ने अगले दिन पार्षदों को राज्यभार सौंप स्वयं समाधिस्थ होने का विचार बना लिया। पार्षद-मण्डल ने यह विचार पसन्द नहीं किया, परन्तु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसीका साहस नहीं हो रहा था कि वह कैलासपति से कहे कि समाधिस्थ होने का समय विवाह के कुछ काल उपरान्त होगा।

जिस दिन समाधि में प्रवेश करने का विचार था, उससे एक दिन पूर्व नारद मुनि वहाँ आ पहुँचा। इससे सब पार्षद बहुत प्रसन्न हुए और वे विचार करने लगे थे कि मुनिजी महाराज से कहकर उसको अपने निर्णय पर पुनरावलोकन करने के लिए प्रस्तुत करेंगे।

परन्तु मुनिवर आए तो आते ही राजप्रासाद में जा कैलासपति से वार्तालाप में लीन हो गए। आवभगत के उपरान्त नारद ने विवाह के विषय पर बात आरम्भ कर दी।

"कैलासपति ! विवाह कब कर रहे हैं ?" नारद ने पूछा।

"आपकी इसमें क्या रुचि है ? आपको मेरे विवाह से क्या मिलने वाला है ?"

"देखिए भगवन् ! मानव-कल्याण लक्ष्य है और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो कुछ जिसके पास होता है, वही उसको कल्याणार्थ देना चाहिए।

"ब्रह्माजी को पता है कि आपमें वीर पुत्र उत्पन्न करने की सामर्थ्य है। इस सामर्थ्य को आप राज्य की भलाई तथा लोक-कल्याण के लिए दे दें।"

"ओह ! परन्तु मुनिवर ! यह कैसे पता चला कि मुझमें यह सामर्थ्य है ?"

"यह ब्रह्माजी ने अपने योगबल से जाना प्रतीत होता है।"

यह सुन कैलासपति गम्भीर हो विचार करने लगा। कुछ देर विचारकर वह बोला, "तो आप बताइए, किससे विवाह की याचना करूँ ?"

"याचना करने की क्या आवश्यकता है ? आपके पड़ोस में ही एक राजकुमारी घोर तपस्या कर रही है।"

"तो क्या वह तपस्या विवाह के लिए है ?"

"हाँ।"

"कैसे जानते हैं यह ?"

"व्रतों की श्रृंखला आरम्भ होने से पहले उस राजकुमारी ने मुझे अपने मन की बात कही थी। मैंने ही उसे कहा था कि उसे आपके स्तर तक उठना चाहिए। लड़की ने शेष स्वयं निश्चय किया है।"

"क्या लाभ होगा इस प्रकार के व्रतों से ?"

"व्रतों के अवसर पर रक्त का पाचन सम्बन्धी काम कम हो जाता है और वह मस्तिष्क को सम्पुष्ट करने में अपना पूर्ण बल लगा देता है। आप भी तो यही करते हैं। मन का बाह्य जगत् से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए आप उसे इन्द्रियों से पृथक् कर लेते हैं। यही समाधि है। आपका मन उन सब विषयों पर चिन्तन और उनपर कल्पना करने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है। उसपर बाह्य विषयों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रभाव नहीं रहता। तब मन शिव संकल्पयुक्त होता है।

"जहाँ तक मैं समझा हूँ कि वह लड़की भी यही कर रही है।"

"और आप समझते हैं कि पिछले दो व्रतों में वह मेरे स्तर पर पहुँच गई है?"

"देखिए भगवन्!" नारद ने कहा, "परमात्मा ने नारी को पुरुष से दुर्बल बनाया है, परन्तु उसका मन उसी अनुपात में अधिक प्रबल होता है। यह परमात्मा का विधान है कि पुरुष दूसरे की सेवा करने से दास प्रकृति ग्रहण कर लेता है और स्त्री पति की सेवा से वैकुण्ठधाम पा जाती है। सेवा तो सेवा ही होती है। यह मन की भावना में अन्तर के कारण होता है। स्वामी की सेवा में विवशता होती है और पति की सेवा में श्रद्धा, भक्ति और अपनी उन्नति की भावना होती है। इसी प्रकार आपने जब व्रत रखने आरम्भ किए थे तो आप उसे भंग करने पर विवश हो गए थे। आपका ध्यान शरीर में अबाध शक्ति संचय करने में लगा हुआ था, परन्तु उसका ध्यान मन और आत्मा की अपूर्णता को दूर करने की ओर लगा हुआ है।

"अब आपने व्रतों का उपाय छोड़ समाधिस्थ होने का उपाय स्वीकार किया है। समाधिस्थ अवस्था में आपका मन क्या-क्या संकल्प करता रहता है, यह तो आप ही बता सकते हैं।

"मैं अपने अनुभव से बताता हूँ कि समाधि अवस्था में भी मन समाधि-समाप्ति की तिथि की गणना करता रहता है।"

समाधि की इस विवेचना पर कैलासपति हँस पड़ा। नारद ने अपना अनुमान बता दिया, "तो आप भी मेरे कथन का समर्थन करते हैं?"

शिव ने बात बदल दी। उसने कहा, "तो आप मुझे क्या करने के लिए कहते हैं?"

"मैं चाहता हूँ कि आप मेरे साथ प्रमोदवन में चलें और उस कुमारी को वरने का वचन दे दें। तब मैं उसके पिताजी को कहूँगा कि वह इस वचन के उपलक्ष्य में अपनी सामर्थ्यानुसार आपकी भेंट-पूजा देने आएँ और उमा के इस व्रत से पूर्णतः स्वस्थ हो जाने पर आपको विवाह के लिए वहाँ आने का निमन्त्रण दे दें।"

"यह सब ब्रह्माजी का कहना है?"

"हाँ, परन्तु उन्होंने इसमें कारण देवताओं के हित की बात ही कही है। वह सदा इस विषय पर चिन्तन करते रहते हैं कि इस भूमण्डल पर देव-पक्ष असुर-पक्ष से अधिक बलशाली बना रहे।

"बल का स्रोत प्राण ही है और प्राण शरीर में रहते हैं। महान सामर्थ्यवान् प्राण के निवास के लिए दिव्य गुणयुक्त शरीर उसने दे रखा है। शरीर पुरुष-स्त्री मिलकर ही बना सकते हैं। इस कारण ब्रह्माजी महाराज़ दिव्य शरीर उत्पन्न करने का यत्न करते रहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उनका आपके विवाह का आग्रह भी इसी लक्ष्य से है। परन्तु मैं तो लड़की की दृढ़ निष्ठा और उसके शुभ संकल्प को देखकर आपसे कह रहा हूँ कि प्रमोदवन चलना चाहिए।"

कैलासपति अपने पार्षद-मण्डल के बार-बार आग्रह से तंग आकर और स्वयं हिमवान के समक्ष जाकर उसकी लड़की माँगने में संकोच अनुभव करते हुए इनसे छूटने का सुगम मार्ग समाधिस्थ होना ही समझ समाधि की तिथि निश्चित किए हुए था। जब नारद ने इस संकोच से निकलने का उपाय बताया तो वह नारद के साथ प्रमोदवन चलने के लिए तैयार हो गया। फिर भी उसने कहा, "मुनिवर! मैंने सुना है कि व्रती कुमारी के समीप किसी पुरुष को फटकने भी नहीं दिया जाता।"

"श्रीमान्! इसको मुझपर छोड़िए। मैं यहाँ से परसों चलूँगा और आज ही यहाँ से एक प्रतिहार के द्वारा यह सन्देश भेज रहा हूँ कि लड़की का भाई महेन्द्र मुझे प्रमोदवन में मिले।"

"तो मेरे विषय में भी लिखेंगे?"

"मैं नहीं लिखूँगा। हाँ, यदि आप प्रकट होना नहीं चाहते तो फिर सामान्य व्यक्तियों के-से पहरावे में चलिए। अन्यथा वे लोग पहचान जाएँगे तो आपका आदर-सत्कार करेंगे। आपके आदेश की अवज्ञा नहीं करेंगे।"

"परन्तु मैं इस समय अभी प्रकट होना नहीं चाहता। मैं आपका एक अनुचर बनकर ही चलना चाहता हूँ।"

नारद खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, "हाँ, यदि आप अपने को छुपाकर चलना चाहते हैं तो आपको एक सामान्य मनुष्य का स्वरूप धारण करना पड़ेगा। फिर भी मैं आपको लेकर कुमारी के सामने चलूँगा। यह निश्चित ही है।"

जिस समय प्रतिहार नारदजी का सन्देश लेकर हिमाचल देश को गया, पार्षद-मण्डल ने देखा तो वह समझ गया कि नारद कैलासपति से उस बात को मनवाने में सफल हो गया है जिसमें वे असफल हो रहे थे; परन्तु किसीका साहस नहीं होता था कि महाराज से इस विषय पर बात करे। अभी तक किसीको यह ज्ञान नहीं था कि प्रतिहार जो पत्र लेकर गया है, उसमें क्या लिखा था।

अगला दिन नारद ने कैलासलोक में धर्म-व्यवस्था जानने में व्यतीत किया। वह भिन्न-भिन्न व्यवसाय में लगे लोगों से मिला।

इस देश में सब लोग हाथ से काम करते थे। देवलोक से भिन्न यहाँ किसी भी काम के लिए एक से अधिक व्यक्ति के इकट्ठे काम करने के यन्त्र नहीं थे। इस कारण जहाँ-जहाँ नारद गया, उसने लोगों से यह ही जानने का यत्न किया कि क्या वह अपने भाग्य से सन्तुष्ट हैं?

मण्डी में जहाँ कैलासलोक के मेवे एकत्रित कर सुखाकर बोरों में बाँधकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजे जाते थे, वहाँ एक स्त्री से, जो मेवों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बाँटकर पृथक्-पृथक् कर रही थी, नारद ने पूछा, "भगिनी ! इस काम का पारिश्रमिक क्या पाती हो ?"

नारद की भव्यमूर्ति छुपी नहीं रह सकती थी। इस कारण स्त्री ने यह समझ कि कौन उससे पूछताछ कर रहा है, काम छोड़ उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़ बोली, "भगवन् ! दिन-भर में दस ताम्र।"

"पति है ?"

"हाँ। वह बैठा है। उसको भी दिन-भर काम करने के दस ताम्र मिलते हैं।"

"और सन्तान है ?"

"जी। एक लड़की है। उसका विवाह हो चुका है और एक लड़का है जो पाठशाला में पढ़ने जाता है।"

"तो इस बीस ताम्र से निर्वाह हो जाता है ?"

"हाँ महाराज ! हम प्रतिदिन चार से पाँच ताम्र बचा लेते हैं।"

"उन्हें कहाँ रखती हो ?"

"जिनका हम काम करते हैं, उन्हींके पास जमा कर देते हैं।"

"वह तुम्हें आवश्यकता के समय दे देता है ?"

"हाँ भगवन् ! पिछले दस वर्ष से जमा किए पर हमने अपनी लड़की का विवाह किया था और उस समय हमारा मूल धन इनके पास दो सौ रजत से ऊपर हो गया था। हमने लड़की के विवाह के लिए माँगा तो इन्होंने दो सौ रजत मूलधन के और पच्चीस रजत ब्याज और पच्चीस रजत अपनी ओर से भेंटस्वरूप दिए थे। इससे हम विवाह सुगमता से कर सके थे।"

"परन्तु तुम्हारे पति की तो टाँगें नहीं हैं ?"

"यह उसके अपने कर्मों का फल है। वह माल के साथ देवलोक में गया था। वहाँ से बहुत-सी बातें सीख आया। उनकी पूर्ति अपनी न्यून आय में हो नहीं सकी तो उसने पथिकों को लूटना आरम्भ कर दिया। एक दिन वह पकड़ा गया और इसकी टाँगें राजाज्ञा से काट दी गईं। वह भी अब वही काम करता है, जो मैं करती हूँ।"

"परन्तु क्या यह दण्ड कठोर नहीं ?"

"हमने इसपर विचार किया है और इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि राज्य ने हमारे साथ रियायत की है। हमारा पति-पत्नी सम्बन्ध बना हुआ है। हम अपने बच्चों को श्रेष्ठ शिक्षा-दीक्षा देकर संसार में जीवन चलाने के योग्य बनाने में सफल हुए हैं।"

नारद उस स्त्री के पति के पास चला गया। वह दोनों टाँगें कटी होने के कारण खड़ा नहीं हो सकता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या नाम है भद्र ?" नारद ने उससे पूछा ।

"श्रीकान्त ।"

"ओह ! ब्राह्मण हो ?"

"नहीं महाराज ! वैश्य हूँ ।"

"यह टाँगों को क्या हुआ ?"

"मैं देवलोक गया था । वहाँ सुरा बहुत कम मूल्य पर मिलती थी । मुझे वह पीने का स्वभाव हो गया । वहाँ छः मास रहकर आया तो यहाँ सुरा सुगमता से नहीं मिलती । एक महाजन बनाता है और वह बहुत मूल्य लेता है । उसका मूल्य मैं नहीं दे सकता था । इस कारण पथिकों को लूटना आरम्भ कर दिया । एक दिन पकड़ा गया और यह दण्ड पा गया हूँ । मैं सदा पकड़ने वालों से भागकर बच जाया करता था । इस कारण न्यायाधीश ने टाँगों से विहीन कर दिया है ।

"तब से मैं यहाँ अपनी पत्नी के साथ काम करता हूँ और अब अपने जीवन से सन्तुष्ट हूँ ।"

इस प्रकार दिन-भर नारद नगर में घूम-घूमकर जनता की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करता रहा । सायंकाल वह कैलासपति को अपनी पूछताछ का परिणाम बताने लगा तो कैलासपति महादेवजी ने बताया, "दो वर्ष हुए, लोगों ने इच्छा व्यक्त की कि देवलोक की भाँति के यन्त्रों की-सी सुविधा उत्पन्न की जाए । मैंने उस दिन से यह स्वीकृति दे दी है कि कोई भी मनुष्य ऐसा कोई भी यन्त्र बना सकता है जो उसके परिश्रम के फल में वृद्धि कर सके । परन्तु राज्य किसी ऐसे यन्त्र की स्वीकृति नहीं देगा, जिसमें एक से अधिक व्यक्ति कार्य करते हों ।"

"इसका परिणाम क्या हुआ है ?"

"परिणाम यह हुआ है कि एक परिवार की उपज बढ़ गई है और अब परिवार-परिवार में एक-दूसरे से सुन्दर, सुदृढ़ और सुखप्रद माल बनाने की प्रतिस्पर्धा चल पड़ी है । इसके लिए मुझे कुछ लोग पाताल देश में भेजने पड़े थे । वे वहाँ से वहाँ की कारीगरी सीख आए हैं और अब यहाँ कार्य करने लगे हैं ।"

तीसरे दिन प्रतिहार हिमाचल प्रदेश से नारद के पत्र का उत्तर ले आया और उसी दिन नारद और शिव एक विमान में प्रमोदवन को चल पड़े ।

शिवजी महाराज ने अपनी सर्प-मालाओं को उतार दिया और केशों को साधुओं की भाँति खुले कन्धों पर छोड़ दिया । वह एक ब्राह्मण के वस्त्र—धोती, कुर्ता—पहनकर नारद के साथ चल पड़ा ।

नारद ने चलते समय महादेव से कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भीख माँगने वालों की गुदड़ी में कोई श्रेष्ठ लाल लपेटा हुआ है ।"

"तो उसको कैसे छिपा सकता हूँ ?"

"थोड़ा मुख की चमक कम करने के लिए विभूति मसल लें ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेव ने वैसा ही किया और दोनों एक घड़ी-भर में प्रमोदवन में दृषद्वती नदी के तट पर जा पहुँचे। वहाँ महेन्द्र और उसकी पत्नी सुचाला नदी के तट पर प्रतीक्षा कर रहे थे।

महेन्द्र को इस दूसरे व्यक्ति को नारद के साथ देख अटपटा-सा अनुभव हुआ। परन्तु नारद के काम में आपत्ति तो हो ही नहीं सकती थी। उसने केवल यह पूछा, "भगवन्! यह भी उमा के सामने जाएँगे?"

"क्यों? तुम नहीं चाहते?"

"भगवन्! इसमें मेरे चाहने न चाहने की बात नहीं। मैंने अभी उसकी सखी के हाथ यह सन्देश भेजा है कि आप उसका सुख-समाचार लेने आ रहे हैं।"

"तो ठीक है। इस व्यक्ति के विषय में हम स्वयं ही उससे बात कर लेंगे।"

: १० :

कुन्तला को महेन्द्र ने नदी के तट पर बुला लिया था और वहाँ उसे बिठा, यह समाचार दिया था, "ब्रह्मलोक में बहन के व्रत की बात सुन वहाँ से नारदजी महाराज आए हैं और बहन से मिलना चाहते हैं। तुम उसे सूचित कर दो। मैं उनके साथ मन्दिर में आऊँगा।"

कुन्तला ने उमा को यह समाचार दिया तो वह आँखें मूँद विचार करने लगी। उस दिन इस तीसरे व्रत का पैंसठवाँ दिन था। अगले दिन से तीस दिन के निराहार के उपरान्त पुनः अन्न मिलने वाला था। वह अति दुर्बल हो रही थी और निश्चल शय्या पर लेटी हुई थी। कुन्तला ने उसके कान के समीप मुख कर यह समाचार दिया। इसपर उसने आँखें मूँद लीं। ऐसा अनुभव हुआ कि वह अचेत हो गई है। इस कारण कुन्तला ने स्वर्ण पात्र में रखे गंगाजल को चम्मच में लिया और दो-तीन बूँद उसके मुख में डालने का यत्न किया। जल गले के नीचे नहीं उतरा और मुख से बाहर निकल गालों पर फैल गया। कुन्तला ने समझा कि खेल समाप्त हो गया। वह पुनः कान के समीप मुख ले जाकर बोली, "सखी! होश करो। नारदजी आ रहे हैं।"

इसपर उमा के नेत्र खुले। कुन्तला ने देखा कि उनमें ज्योति, जो मद्धम हो चुकी थी, एकाएक पुनः प्रज्वलित हो उठी है। कुन्तला ने पुनः कहा, "तो भैया से कहूँ कि मुनिजी को ले आएँ?"

होंठ फड़के और कुन्तला ने कान होंठों के समीप ले जाकर समझने का यत्न किया। वह कह रही थी, "सखी! मैं प्रसन्न हूँ।"

"ईश्वर का धन्यवाद है।" कुन्तला ने कहा, "तुम्हारी चेतना और बुद्धि सदा की भाँति निर्मल है।"

पुनः होंठ फड़के और कुन्तला ने कान समीप ले जाकर सुना। उमा ने कहा था, "तो इस प्रयास की धूम ब्रह्मलोक तक जा पहुँची है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐसा ही प्रतीत होता है।"

अब दोनों सखियाँ नारदजी के आने की प्रतीक्षा करने लगीं। आधी घड़ीभर ही प्रतीक्षा करनी पड़ी। नारद एक सेवक के-से वस्त्रों वाले व्यक्ति के साथ सामने आया। उमा ने दोनों को देखा और फिर कुन्तला की ओर देखा। कुन्तला ने कान उसके होंठों के समीप लगाकर सुना और फिर उमा की पीठ के पीछे हाथ का आश्रय देकर बिठाया तो उसने समीप खड़े नारद और उस सेवक की ओर देखा। तदनन्तर उसने हाथ सेवक के चरणों तक ले जाने का निश्चय किया। चरण स्पर्श नहीं हो सके। इस प्रयास में वह अचेत हो गई और नीचे लुढ़कने लगी। कुन्तला ने उसे भूमि पर लुढ़क जाने से बचाने के लिए पकड़ लिया और देखा कि वह सर्वथा अचेत है। उसे उसने लिटाकर चम्मच से जल उसके होंठों में डाला। इस बार जल गले से नीचे उतर गया। दो-तीन बार जल देने से वह सचेत हो गई। उसे सचेत देख महादेव ने कहा, "कुमारी! देखा नहीं, नारदजी तो यह हैं और मैं तो इनका सेवक हूँ।"

उमा के होंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई। अब उसने नारद की ओर देख, हाथ उठा प्रणाम किया। इसमें भी कुन्तला को उसके काँपते हाथों को सहायता देनी पड़ी। जब सत्कार और अभिवादन हो चुका तो नारद ने कहा, "मैं तुम्हारे लिए ब्रह्माजी का आशीर्वाद लेकर आया हूँ।"

कदाचित् उमा इतना परिश्रम करने पर थक गई थी। वह केवल नारद के साथ आए व्यक्ति को ध्यानपूर्वक देखती रही।

कुन्तला ने कहा, "मुनिवर! आज निराहार का अन्तिम दिन है और उमा बहन कल से अन्न लेना आरम्भ करेंगी।"

नारद ने बताया, "मैं आज यहाँ से इसके पिता से मिलने जा रहा हूँ।" यह बात उमा को सुनाने के लिए कही गई थी। उसने कुन्तला की ओर देखा और कुन्तला ने अपने कान उसके फड़कते होंठों के समीप कर सुना और कह दिया, "राजकुमारी आप दोनों का धन्यवाद करती हैं और अब वह सो रही हैं।"

नारद और महादेव वहीं पर खड़े ही थे कि वह आँखें मूँद नींद की साँस लेने लगी थी।

दोनों मन्दिर से निकल बाहर चले तो महेन्द्र, जो दोनों के पीछे खड़ा था, वह भी पीछे-पीछे चलने लगा। नारद ने सेवक के वस्त्रों में अपने साथी को कहा, "भगवन्! लड़की आपको पहचान गई प्रतीत होती है।"

"मैं समझता हूँ कि वह आपके चरण-स्पर्श करना चाहती थी और झुक गई थी मेरी ओर। यह उसकी दुर्बलता के कारण हुआ।"

"नहीं भगवन्! मैं पहले भी इनके घर में जाता हूँ और लड़कियाँ मुझे पिता समान समझती हैं। उन्होंने कभी भी मेरे चरण-स्पर्श करने का यत्न नहीं किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर आपने देखा नहीं था कि जब आपने कहा था कि नारदजी तो यह हैं और मैं सेवक मात्र हूँ तो उसके होंठ खिल उठे थे, अर्थात् वह आपके छिपने पर व्यंग्य का भाव बना रही थी।"

महेन्द्र पीछे चलता हुआ यह सुन रहा था। अतः वह बातों का भाव समझ आगे आ बहुत ध्यान से कैलासपति महादेव की ओर देखने लगा। अब तो वह भी पहचान गया और हाथ जोड़ नमस्कार कर कहने लगा, "महाराज ! पहले के अनादर के भाव के लिए क्षमा चाहता हूँ, आपके बदले वेश से भूल हो गई है।"

नारद और कैलासपति दोनों हँसने लगे। नारद ने बात बदलकर महेन्द्र से पूछा, "कैसे आए हो ?"

"मुनिवर ! अपने रथ में आया हूँ। मेरी पत्नी सुचाला भी साथ है।"

"तो हमारे लिए रथ में स्थान नहीं है ? हम कैलासपति को यहीं से लौटा देना चाहते हैं।"

"भगवन् ! आपके लिए तो स्थान बन जाएगा; परन्तु इनके लिए तो हम विशेष रथ लेकर इनको लेने जाएँगे।"

"यही मेरा अभिप्राय है।"

इस समय तक तीनों वृषभ नाम के विमान के पास जा पहुँचे। नारद और कैलासपति उसीमें आए थे। नारद ने कैलासपति से कहा, "महादेव ! मैं दो दिन में लौटूँगा और शेष कार्यक्रम वहाँ आकर बताऊँगा।"

शिव विमान पर सवार हो गया तो महेन्द्र नारद को अपने रथ की ओर ले चला। सुचाला इन लोगों के चले जाने के उपरान्त उमा के पास ही ठहर गई थी। इस कारण इसको एक घड़ी-भर रथ के समीप प्रतीक्षा करनी पड़ी। आखिर सुचाला आई और नारदजी को खड़ा देख समझ गई कि वह उसी रथ में उनकी राजधानी को जा रहे हैं।

जब रथ में बैठे तो सुचाला ने कहा, "मुनिवर ! आपके अनुचर किधर गए हैं ?"

"उनको मैंने वापस भेज दिया है।"

"मैं उनके मुख पर देख रही थी। वह उमा रानी को देख-देख मुग्ध हो रहे थे। मैंने देखा था कि उमा रानी ने उन महाशय के चरण-स्पर्श करने का यत्न किया था। इस कारण मैं उसकी नींद खुलने तक वहीं ठहरी थी। जब थकावट दूर होने से वह जागी तो मैंने पूछा, "बहन ! नारदजी को पहचाना नहीं था ?

" 'पहचाना था भाभी !' उसने कहा, 'परन्तु महामुनिजी के साथ आए उस बहुरूपिए को भी पहचाना है भाभी ? मैं प्रसन्न हूँ। मैं समझती हूँ कि मेरी तपस्या सफल होने वाली है।' "

अब सुचाला ने मुनिदेव नारद को सम्बोधित कर पूछा, "तो क्या उमा रानी का अनुमान सत्य है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ देवी ! नारद ने उत्तर में कहा, "वह देवों के देव महादेव कैलासपति ही हैं।"

"परन्तु वह वेश बदलकर क्यों आए हैं ?"

"उनकी इच्छा थी कि उनको कोई देख न पाए और वह स्वयं देख सकें कि यह लड़की वास्तव में तपस्या कर रही है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उमा का मन तपस्या से इतना स्वच्छ और निर्मल हो चुका है कि उससे लुकाव-छुपाव सम्भव नहीं था ! देखो महेन्द्र ! मैं जा रहा हूँ आपके देश की राजधानी औषधिप्रस्थ को। वहाँ आपके पिता से आपकी बहन के विवाह का कार्यक्रम बनाने के लिए बातचीत करूँगा। मुझे आप वर की ओर से आपसे कन्यादान की याचना करने आया समझ लें।"

बात सुचाला ने की। उसने कहा, "अभी उसे अपने पूर्ण भोजन लेने में पैंतीस दिन लगेंगे और कम से कम दो मास उसे अपनी व्रतों से उत्पन्न दुर्बलता दूर करने में लग जाएँगे। इस प्रकार आपको कार्यक्रम ऐसा बनाना होगा जिससे वह भरपूर यौवनावस्था में पति के घर में जाए।"

"यह सब कुछ महाराज हिमवान के सम्मुख विचार किया जाएगा। लड़की की माताजी का भी तो विचार करना होगा। वह अपनी व्रतों से दुर्बल हुई लड़की को पति के घर भेजना पसन्द नहीं करेंगी।

"साथ ही इस समय महादेवजी के घर में कोई बड़ी, अनुभव रखने वाली स्त्री नहीं है। इस कारण सब कुछ विचारकर ही यहाँ से जाऊँगा। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत-से देवतागण भी महादेवजी की वर-यात्रा में सम्मिलित होने आएँगे।"

"अर्थात् हमें उनके स्वागत का प्रबन्ध भी करना होगा ?"

"हाँ। ब्रह्माजी का आदेश है कि सब देवता इस दम्पती को आशीर्वाद दें। उनको कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम की ओर से काली घटाएँ उठने का यत्न कर रही हैं और यदि इधर देवताओं के पक्ष में कोई मार्तण्ड समान ओजस्वी वीर न हुआ तो वे काली घटाएँ पूर्ण पूर्वाचल पर छा जाएँगी। उनका अनुमान है कि वह मार्तण्ड महादेवजी के वीर्य से उत्पन्न होगा। इस कारण वह सब देवताओं को इस विवाह के लिए आशीर्वाद देने को कह रहे हैं।"

महेन्द्र ने कहा, "ब्रह्माजी इतनी दूर की बात विचार करते हैं। यह समय से बीस वर्ष पूर्व है। क्या तब तक देवताओं का संगठन सुदृढ़ नहीं किया जा सकता ?"

"मेरी इस विषय पर ब्रह्माजी से खुलकर बात हुई है। ब्रह्माजी का विश्वास अब अदिति की सन्तान पर नहीं रहा। इनके मन बूढ़े हो गए हैं। जिनके मन बूढ़े हो जाते हैं, वे युवा प्राणियों-सा कार्य नहीं कर सकते। बूढ़ों की भाँति संगठन भी वृद्धता का सूचक होगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वैसे ब्रह्माजी ने इन्द्र को बुलाकर भूमध्य सागर के तटवर्ती कृष्ण वर्ण असुरों की शक्ति से सतर्क रहने की बात कही है। इन्द्र से ब्रह्माजी ने तैयारी के लिए कहा है। परन्तु इन्द्र का कहना है कि उन्होंने विष्णु को पश्चिम दिशा का पालक नियुक्त किया हुआ है। वह ही इसके विरोध का प्रबन्ध करेंगे। कुछ वामन जैसी नीति की बात भी करनी पड़ेगी।

"ब्रह्माजी का कहना था कि वह एक लक्ष योद्धा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित तैयार कर रहा है।

"इन्द्र का उत्तर था कि एक सुदर्शन चक्र लाखों के लिए पर्याप्त है। सामान्य प्रजा को अनुशासन के शिकंजे में डालने की क्या आवश्यकता है?

"इन्द्र के विचारों को सुनकर ब्रह्माजी उससे निराश हो महादेव पर दृष्टि लगाए हुए हैं।"

महेन्द्र का कहना था, "यदि इन्द्र का आश्रय छोड़, वह हमें सहायता दें तो हम और कुछ हिमालय से दक्षिण के राज्य दो-तीन लाख सेना तैयार करने में सहयोग दे सकते हैं।"

"ब्रह्माजी का विचार है कि कोई योग्य सेनापति होना चाहिए। वह आपके पिता को इस योग्य नहीं मानते।

"एक काल था कि शिक्षक वर्ग शिक्षा की प्रक्रिया में ही रस लेने लगे थे और शिक्षा के तत्त्व मन और बुद्धि के विकास को भूल गए थे।

"उस काल में हिरण्यकशिपु के लड़के प्रह्लाद को तत्कालीन नारद विद्यालय में शिक्षा के लिए भेजकर कुछ परिणाम उत्पन्न किया गया था, परन्तु अब तो ऐसा नहीं हो सका। अब देवलोक में कोई ऐसा गुरुपद के लिए ख्यातिप्राप्त गुरु दिखाई नहीं देता जो तारक के लड़के को शिक्षा के लिए आकर्षित कर सके। इसके विपरीत यह सुनने में आया है कि देवेन्द्र अपने पुत्रों में से किसी को पश्चिमी देशों में शिक्षा ग्रहण करने भेजना चाहता है। इस कारण ब्रह्माजी शिक्षा-केन्द्रों के स्थान माँ के गर्भ को ही नव-निर्माण का स्रोत समझने लगे हैं।"

महेन्द्र और सुचाला नारद की बातें सुनकर गम्भीर विचार में मग्न हो गए। वे समझने लगे थे कि ब्रह्माजी उमा को तपस्या से इस योग्य हो गया समझने लगे हैं कि वह भूमण्डल के जन समुदाय का नेतृत्व करने के लिए पुत्र को जन्म दे सकेगी। उन्हें इसमें संशय हो रहा था, परन्तु वे अपने संशय का वर्णन नहीं कर सके। वे स्वयं भी संशय का कारण नहीं जानते थे।

पहर-भर की यात्रा के उपरान्त वे हिमाचल प्रवेश की राजधानी औषधिप्रस्थ में जा पहुँचे। इस नगर का नाम इस देश में ओषधियों की उत्पत्ति, उनके जानकार एकत्रित करने वाले और व्यापारियों के कारण पड़ा था, जो यहाँ की श्रेष्ठ गुण वाली ओषधियों को देश-देशान्तर में वितरित करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण भारतवर्ष में ओषधियाँ यहाँ से जाती थीं और वहाँ का धन इस नगर में बटोरा जा रहा था। इस कारण नगर धन-धान्य से युक्त और सुन्दर अट्टालिकाओं तथा सड़कों से युक्त, उद्यानों और पुष्पवाटिकाओं से भरपूर था। देवलोक से हिमवान ने भी अग्नि मोल ले ली थी, जो पूर्ण नगर-भर को जगमग कर रही थी।

जिस समय नारदादि नगर में पहुँचे तो सायंकाल हो चुकी थी, परन्तु अग्नि-केन्द्र से पूर्ण देश में प्रकाश, ऊष्मा थी और कार्य हो रहा था।

महाराज हिमवान और मैना चिन्ताग्रस्त महेन्द्रादि के प्रमोदवन से लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे जानते थे कि वह दिन उमा के व्रत का चरम अनशन का था। इस कारण वे चिन्ता कर रहे थे।

रथ जब महेन्द्र, सुचाला और नारदजी को लेकर राजप्रासाद के द्वार पर पहुँचा तो रथ का शब्द सुन हिमवान और मैना बाहर आ गए और रथ से नारद को उतरते देख, मुनिजी के चरण-स्पर्श कर आदर से भीतर ले गए।

भीतर बैठकघर में उन्हें बिठा हिमवान पूछने लगे, "मुनिवर, कैसे आना हुआ है?"

"मैं उमा रानी के विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

इसके साथ ही नारद ने अपने ब्रह्मलोक से चलने और प्रमोदवन तक पहुँचने का सब वृत्तान्त बता दिया।

हिमवान का निश्चित मत था कि वह यद्यपि इस सम्बन्ध को एक श्रेष्ठ सम्बन्ध नहीं समझता; फिर भी अपनी सज्ञान लड़की के मनोभावों का आदर करते हुए वह लड़की का कन्यादान करने के लिए तैयार है।

"श्रीमान्!" नारद ने कहा, "केवल कन्यादान ही नहीं, वरन् वर की अस्वाभाविकताओं को भी सहन करने के लिए आग्रह है। उसके देश में उसके साथी, जो उसके गण कहलाते हैं, विचित्र रूप-रेखा और रहन-सहन वाले व्यक्ति हैं। ब्रह्माजी का आदेश है कि आप उन सबका भलीभाँति आदर-सत्कार करें।"

"तो ब्रह्माजी महाराज जानते हैं कि कैलासपति किस प्रकृति का पुरुष है?"

"वह सब कुछ जानते हैं; परन्तु उनका यह मत है कि मनुष्य का मूल्य बाहरी रूप-राशि से नहीं लगाना चाहिए। काला, गोरा, एक आँख वाला अथवा दो आँखों वाला, सीधे मुख वाला अथवा टेढ़े मुख वाला होने से उनके भीतर की आत्मा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता और फिर उनके वस्त्रों से तो कभी भी नहीं लगाया जा सकता।

"मनुष्य का मूल्यांकन उसके मन और बुद्धि की निर्मलता और तीक्ष्णता से लगाया जा सकता है। महादेव सर्वथा श्रेष्ठ मन और बुद्धि के स्वामी हैं और ब्रह्मा जी का कहना है कि उनका इस घर में आदर भी, इसी दृष्टि से होना चाहिए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों का सूत्र भंग कर मैंना ने महेन्द्र से पूछ लिया, "महेन्द्र ! बहन के स्वास्थ्य का क्या समाचार लाए हो ?"

"माँ! वह जीवित है और इस व्रत की कठोरता को सहन कर गई प्रतीत होती है। कल से उसे अन्न देना आरम्भ हो जाएगा।"

"वैसे वह चित्त में कैसी प्रतीत होती है ?"

"वह प्रसन्न है और मुनिजी के सन्देश को सुनकर वह प्रसन्नता अनुभव करती प्रतीत हुई।"

हिमवान ने पुनः वार्तालाप में हस्तक्षेप करते हुए पूछा, "परन्तु मुनिवर! इस सब नाटक में मुख्य पात्र क्या कहता है ?"

"वह आज प्रमोदवन में आया था और उसने उमा को देखा है। दोनों में बातचीत तो नहीं हुई, परन्तु उनके हाव-भाव से लगा, दोनों इस भेंट से प्रसन्न प्रतीत होते थे।

"मैं उनके ज्ञान में ही यहाँ ब्रह्माजी का सन्देश लेकर आया हूँ। उन्होंने इसमें आपत्ति नहीं की। जहाँ तक मेरी समझ में आया है कि उनकी इस सबमें अनुमति है।"

अब महाराज ने लड़के की ओर देखकर कह दिया, "तो कल से नगर में उत्सव की घोषणा कर दो। देश-भर के ब्राह्मणों और निर्धनों को विवाह के दिन राजधानी आने का निमन्त्रण भेज दो और हीरे, मोती, स्वर्ण तथा रजत वर-कन्या की न्योछावर में बाँटने की घोषणा कर दो।

"अपने पुरोहितों को बुलाओ और शुभ मुहूर्त का पता कर महादेव कैलासपति जी के नाम निमन्त्रण-पत्रिका लिख भिजवा दो।"

इस निश्चय के तीन मास उपरान्त कैलासपति और उमा का विवाह हुआ। उमा कैलासलोक में पार्वती के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह उसके पर्वतीय देश की होने के कारण था।

बारात में सब मुख्य-मुख्य देवता इन्द्र, वरुण, विष्णु, अश्विनीकुमार इत्यादि सब आए। इन रथों और हाथियों पर सवार देवताओं के आगे-आगे महादेव शिवजी महाराज के गण कोई हाथ पर बाज उठाए हुए और कोई तोता-मैना को पिंजरे में लटकाए हुए, कोई भाँग घोटने का डण्डा कन्धे पर रखे हुए और कोई चिलम से चरस का दम लगाते हुए आगे-आगे चलते हुए सम्मिलित थे। वर तो अपने वृषभ पर हाथ में त्रिशूल लिये चन्द्र-संकेत का मुकुट पहने, परन्तु अपनी जटाओं को साधुओं की भाँति सिर पर जूड़े में बाँधे हुए व्याघ्र चर्म को शरीर पर लपेटे तथा गले में विषधर सर्पों की मालाएँ पहने हुए थे।

नगर के सब नर-नारी इस विचित्र वर-यात्रा को देखने के लिए राज्य-मार्ग पर उमड़ पड़े। एक ओर तो देवेन्द्र हाथी पर सवार अति मूल्यवान रत्नों से विभूषित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और दूसरी ओर कैलासपति के गण केवल मृग-चर्म से शरीर ढाँपे हुए नंगे पाँव और नंगे सिर थे।

सब नगरवासी इस विचित्र रूप-राशि और रंग-ढंग की वर-यात्रा को देखकर राजकुमारी और उसके पिता की मानसिक अवस्था पर सन्देह करते थे।

परन्तु नगरवासी अभ्यागतों का स्वागत राज्य की ओर से होता देख सब मौन थे और हर्ष ही प्रकट कर रहे थे।

वर और अन्य अभ्यागतों की तीन दिन तक राज्य की पूर्ण सामर्थ्य से आवभगत और सेवा-सुश्रूषा की गई। सब प्रसन्न प्रतीत होते थे।

विवाह पर आए सबको धन-धान्य से और अंजुलियाँ भर-भरकर रत्नादि दे-देकर विदा किया गया। राजकुमारी की विदाई के समय पूर्ण राजमार्ग पर वर और वधू की न्योछावर रत्नादि से की गई और राजपथ पर रत्न लुढ़कते कई दिन तक दिखाई देते रहे। राज्य के निर्धन लोग वरादि के विदा हो जाने के कई दिन उपरान्त भी मार्ग पर रत्नों को ढूँढ़ते रहे।

अन्तिम दिन पुरोहितों और राज्य के ब्राह्मणों को अंजुली भर-भरकर दान में रत्न दिए गए।

इस प्रकार उमा का विवाह सम्पन्न हुआ।

: ११ :

कैलास नगर में उमा की डोली पहुँची तो वहाँ के नगरवासियों ने वधू का स्वागत किया। नगर की स्त्रियाँ तथा मन्त्रियों की पत्नियाँ ही थीं। महादेव के घर पर माँ-बहन नहीं थीं।

पहुँचने के दिन राज्य-भर के लोग नववधू को देखने लगे। उनकी भेंट-पूजा करने आते रहे। उमा, जो यहाँ आकर पार्वती—पर्वतीय प्रदेश की लड़की होने से इस नाम से विख्यात हो रही थी—अतिश्रेष्ठ रूप-रेखा वाली थी। उसे देख कैलास लोक के लोग अति प्रसन्न प्रतीत होते थे। वह समझते थे कि भारतवर्ष के एक अत्यन्त धनी देश के महाराज की लड़की उनकी महारानी बनी है। इससे सब अपने महाराज और अपने देश को धन्य-धन्य मानते थे।

महाराज की आज्ञा से वहाँ एक महान् भण्डारा किया गया। देश के सब राज्य कर्मचारियों और नागरिकों के लिए सर्वश्रेष्ठ भोजन का प्रबन्ध था जो दिन के तीसरे प्रहर, जब विवाह पर गए लोग लौटे थे, से आरम्भ होकर आधी रात तक चलता रहा। इस सब समय भगवान् शिव भण्डारे पर उपस्थित रहे। इस कारण पार्वती को भी वहाँ ठहरना पड़ा। बीच में वह खड़ी-खड़ी थक गई तो उसने अपने पति को कहा, "देव ! मैं तो खड़ी-खड़ी थक गई हूँ।"

"ओह !" महाराज के कहने पर उसके लिए भोजन कर रहे लोगों में से एक ने उच्चासन लगा दिया। शिव ने उसे उस पर बिठाकर कहा, "देवी ! ये लोग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जिनके कारण मैं देव और महादेव हूँ। इस कारण मैं तो इनकी सेवा में दिन-रात रहता हूँ। जब तक सब तृप्त नहीं हो जाते, मैं यहाँ रहूँगा। तुम्हें भी रहना चाहिए। हाँ, तुम्हारे बैठने को यह आसन लगा दिया है।"

विवश पार्वती बैठ गई और लोग भोजन कर तृप्त हो वहाँ आते और महाराज तथा महारानी के चरण स्पर्श कर अपनी श्रद्धा, भक्ति प्रकट करके ही जाते। जाते समय पार्वती सबको कुछ न कुछ भेंटस्वरूप अपने माता-पिता के घर से लाए धन में से देती थी। शिवजी महाराज की आज्ञा थी कि सबको एक समान ही दिया जाए। लगभग एक सौ रजत सबको मिल रहा था।

यद्यपि यह धनराशि पार्वती की दृष्टि में पार्षदों तथा उनकी पत्नियों को देने के लिए अति सामान्य प्रतीत हुई थी, परन्तु जब पति की आज्ञा हुई कि मायके से लाया गया सामान समान रूप में वितरण होना चाहिए तो वह दे रही थी। उसके विस्मय का ठिकाना नहीं था कि लेने वाले इसे जागीर समझ स्वीकार करते थे।

आधी रात के समय यह कार्यवाही समाप्त हुई तो पति-पत्नी दोनों अपने राजप्रासाद के भोजनालय में गए और वहाँ दोनों को खाने के लिए वही, जो बाहर सब नागरिकों के लिए वितरण हो रहा था, इनके लिए भी लाया गया।

पार्वती ने कहा, "देव ! यह सब तो देख-देखकर ही चित्त भर गया है।"

"तो तुम वह कुछ ले सकती हो, जो मैं नित्य लेता हूँ।"

"बहुत कृपा होगी।" पार्वती का कहना था।

शिवजी महाराज के संकेत पर भुने और छिले हुए नमक लगे जौ और नदी का शीतल जल लाकर सामने रख दिया गया।

इससे तो पार्वती बहुत परेशान हुई। यह तो उससे भी मोटा अनाज था, जो सब प्रजागणों को बाँटा गया था।

उसने विस्मय से पूछा, "तो यह आप नित्य लेते हैं ?"

"हाँ। ऊपर से गरम-गरम दूध।"

"परन्तु भगवन् ! इससे तो पेट में पीड़ा होने लगेगी। मुझे इसे खाने का अभ्यास नहीं।"

"तो इस समय क्या खाती हो ?"

"इस समय तो मैं सोया करती थी। यह भोजन करने का समय नहीं।"

"क्या भूख नहीं लगी ?"

"लगी तो है ! परन्तु भुने जौ खाने का स्वभाव नहीं। तो क्या यहाँ सब लोग रात को यही खाते हैं ?"

"नहीं। अपने घर में तो सब अपनी-अपनी सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार भोजन करते हैं। यहाँ तो मैंने तुम्हारे विवाह के उपलक्ष्य में यह भोज दिया था। यह इस ढंग से विचार किया गया था कि भोज पर आने वाले बीस सहस्र प्राणी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात तक निपट सकें। यह मेरी आज्ञा थी कि सबके लिए समान भोजन हो। इस कारण आज मैंने अपने लिए भी सबके समान भोजन लेने का प्रयास किया है।"

"परन्तु घर पर तो सब अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भोजन लेते हैं न?"

"हाँ।"

"और हम भी तो अपने घर में बैठे हैं?"

"हाँ।"

"तो क्या मैं अपने घर में अपनी रुचि के अनुसार भोजन नहीं ले सकती?"

"ले क्यों नहीं सकतीं। इस देश में यह जनता के मूलाधिकारों में है कि वह भोजन अपनी रुचि और सामर्थ्यानुसार कर सकते हैं। इस पर राज्य की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं।"

"तो महाराज! मुझे भी स्वीकृति दीजिए कि मैं अपनी रुचि और सामर्थ्यानुसार भोजन कर सकूँ।"

"हाँ; यह स्वीकृति तो है।"

"और महाराज! मुझे यह भी स्वीकृति दीजिए कि मैं अपने पति को अपने मन का भोजन करा सकूँ।"

"चाहे वह तुम्हारे पति को पसन्द न हो?"

"वह भी अपनी रुचि और सामर्थ्यानुसार कर सकते हैं।"

"तब ठीक है। यह यहाँ के नियमविरुद्ध नहीं।"

पार्वती उठी और अपने पिता के घर से आई सोलह प्रकार की मिठाई और अन्य भोजन-सामग्री एक थाल में रखकर ले आई और उस थाल को अपने और पति के बीच रखकर बोली, "भगवन्! मेरा आग्रह है कि अब आप इसको चखकर देखिए। यदि अनुकूल समझ में आए तो इसमें से लीजिएगा।"

"अनुकूल तो यह है। तीन दिन तक तुम्हारी माताजी के घर पर यही कुछ तो खाता रहा हूँ।"

"नहीं भगवन्! यह नहीं था। यह तो विशेष रूप से आज के लिए माँ ने बनवाकर भेजा है। इसमें केसर, कस्तूरी और अन्य सुगन्धित एवं स्वादिष्ट पदार्थ पड़े हैं।"

इसे महादेव ने चखा और पसन्द किया। अब दोनों एक ही थाल में से खाने लगे। ज्यों-ज्यों भोजन समाप्त होता जाता था, पति-पत्नी एक-दूसरे को पाने की उत्सुकता अधिकाधिक अनुभव करने लगे। पार्वती कुछ ऐसी ही आशा करती थी। यद्यपि वह जानती नहीं थी कि क्या किया जाएगा और उसका क्या रस आएगा। परन्तु सखियों से सुनी बातों से वह विवाह की विशेष रस्म की प्रतीक्षा करती हुई धीरे-धीरे खा रही थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब महादेव का पेट भर चुका, तो बोला, "बहुत खाने वाली प्रतीत होती हो !"

"नहीं भगवन् ! एक सामान्य स्त्री के समान ही खाती हूँ।"

"परन्तु तुम तो अभी खा ही रही हो और हम तृप्त हो चुके हैं।"

"तो यह आज्ञा मानूँ कि खाना बन्द करूँ ?"

"नहीं, यह बात नहीं। पेट भरकर ही उठना चाहिए। आज मैं तुम्हें अपनी शय्या पर स्थान देना चाहता हूँ।"

"तो क्या कल के लिए स्थगित नहीं हो सकता ?"

"इससे क्या लाभ होगा ?"

"प्रतीक्षा में भी तो आनन्द अनुभव होता है। मैं प्रतीक्षा का आनन्द भोग कर चुकी हूँ और उस आनन्द को एक दिन के लिए और लम्बा करना चाहती हूँ।"

"सब व्यर्थ है। हम अब और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते।"

"तब तो आपके विषय में मेरी धारणा बदलती जाती है।"

"बदलकर क्या होती जाती है ?"

"यही कि आप एक अधीर व्यक्ति हैं। शास्त्र में इसकी प्रशंसा कहीं नहीं है। अधीर के हाथ में पकड़ा हुआ दूध का प्याला छलक जाता है।"

"परन्तु मैं इतनी शक्ति रखता हूँ कि इसे छलकने नहीं दूंगा।"

पार्वती चुप रही। भोजन समाप्त हुआ और दोनों उठकर हाथ-मुख प्रक्षालन करने साथ के जलागार में चले गए। वहाँ पर हाथ-मुख धो पार्वती ने झुककर पति के चरण-स्पर्श किए और नमस्कार कर अपने लिए नियत शयनागार को चल पड़ी।

"कहाँ जा रही हो ?" शिवजी महाराज ने पूछा।

"दासी ने बताया था कि मेरे सोने का आगार यह है।" पार्वती ने उस आगार की ओर अंगुली से संकेत कर दिया।

"परन्तु आज तो मैं तुम्हें अपने आगार में आने का निमन्त्रण दे रहा हूँ।"

"परन्तु यहाँ तो निमन्त्रण देने का स्थान नहीं।"

"हाँ; परन्तु देवी ! अपहरण करने का स्थान तो सर्वत्र होता है।"

इतना कहते-कहते शिवजी ने उसे अपनी लम्बी भुजाओं से पकड़कर उठा लिया।

"अरे ! तुम तो बहुत हलकी हो।" शिवजी महाराज का कहना था।

महादेव उसे अपने शयनागार में ले गए।

आधी रात को व्यतीत हुए भी दो घड़ी हो चुकी थीं, जब दोनों शयनागार में गए थे और प्रातःकाल हो गया। एकाएक शिव को अपने नित्य-कर्म की याद आ गई। वह पत्नी को शय्या पर ही छोड़ अपने नित्य-कर्म में लीन होने चले गए। वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने लगे तो पार्वती ने पूछा, "तो बस ?"

"अब भगवद्-पूजन का समय हो रहा है। इस कारण तुम्हारे सौन्दर्य से पुनः रात को पूर्ण न्याय करूँगा।"

शिव आगार से निकले तो पार्वती उसी शय्या पर लेटी-लेटी सो गई।

दिन का पूरा एक प्रहर व्यतीत होने पर वह जागी तो दासी पलंग के समीप खड़ी-खड़ी देख-देख निहाल हो रही थी।

पार्वती की आँख खुली तो पूछने लगी, "क्या देख रही हो ?"

"महारानीजी के मुख और शरीर पर प्रेम के चिह्न।"

"तो वे दिखाई देते हैं ?"

"हाँ, महारानीजी ! इतने स्पष्ट हैं जितने कि आपके शरीर के अन्य सौन्दर्य-स्थान। दोनों ने मिलकर एक विचित्र छटा निर्माण की हुई है। वही देख-देख मुग्ध हो रही थी।"

पार्वती ने अपने वस्त्रों को ठीक कर शरीर को ढाँपकर कहा, "बहुत प्रशंसा कर रही हो दासी !"

"भगवती ! अब दिन का एक प्रहर व्यतीत हो चुका है। स्नानादि नित्यकर्म से अवकाश पाइए। महाराज भोजनालय में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

इस पर तो पार्वती हड़बड़ाकर उठी और अपने स्नानागार को चल दी। दिन का मध्यकाल हो रहा था, जब स्नानादि से निवृत्त हो वह अपने प्रतीक्षा कर रहे पति के सम्मुख आ चरण-स्पर्श कर समीप बैठ गई।

"नींद खुल गई ?"

"क्या करती देव ! जब आपने रात के समय सोने नहीं दिया तो दिन को रात बनाना पड़ा है।"

"तुम तो बहुत बातें करना जानती हो ?"

"जानती तो नहीं थी। परन्तु देव ! आप सिखाएँ तो कैसे नहीं सीख सकती ? इतने चतुर शिक्षक के रहते भला मैं अशिक्षित कैसे रह सकती हूँ ?"

"परन्तु यह तुम्हारे मुख पर क्या हुआ है ?"

"ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम की गाथा मेरे शरीर पर चित्रित हो गई है। मिलिन्द दासी भी यही कह रही थी।"

"तुम्हें भला प्रतीत हुआ है ?"

"इसे बुरा कैसे अनुभव कर सकती हूँ। यह वह परम पावनकथा है, जो सृष्टि के आदि से सब देवता अपनी पत्नियों के शरीरों पर अंकित करते आए हैं।

"आपने अत्यन्त कृपा कर एक मानव जाति के प्राणी को देव-योनि में सम्मिलित किया है तो आप द्वारा की गई चित्रकारी को नापसन्द कैसे कर सकती हूँ ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पीड़ा तो नहीं होती ?"

"भगवन् ! मीठी-मीठी।"

इस समय मिलिन्द, जो महाराज ने पार्वती की सेवा के लिए विशेषकर नियुक्त की थी, स्वर्ण-थाल में पूरी, खीर, साग, चटनी, अचार और भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयाँ ले आई।

शिवजी ने दासी से पूछा, "यह क्या है ?"

"महारानीजी की आज्ञा है।"

शिवजी ने प्रश्न-भरी दृष्टि में पार्वती की ओर देखा तो पार्वती ने कहा, "महाराज ! रात आपने यह कहा था कि भोजन क्या किया जाए और कितना किया जाए, यह यहाँ के नागरिकों के मूलाधिकार है। मैं उसी का भोग कर रही हूँ।"

"परन्तु मेरे भी तो कुछ अधिकार हैं ?"

"हाँ। मैं आपको किसी शिशु की भाँति विवश नहीं कर रही कि आप यह ही लें। इसपर भी निवेदन तो कर ही सकती हूँ। निवेदन करना मेरे मूलाधिकारों में है।"

"परन्तु मैं तो वही भोजन लेना चाहता हूँ, जो हमारी प्रजा को उपलब्ध है।"

"मैं आपको मना नहीं कर रही। परन्तु ऐसा क्यों न किया जाए कि जो कुछ आपके लिए उपलब्ध है, वही आपके समान परिश्रम करने वाले प्रजागण को मिले।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

इस समय तक सुगन्धित और देखने में लुभायमान भोजन को सम्मुख पड़ा देख, दोनों अनायास ही खाने लगे थे। खाते-खाते ही पार्वती पति को समझा रही थी कि कैसे बढ़िया से बढ़िया भोजन एक निर्धन से निर्धन को उपलब्ध हो सकता है।

पार्वती बता रही थी, "अपने देश में ओषधियों का व्यापार होता है। हिमालय से लेकर लंका द्वीप तक अनेकानेक प्रकार की ओषधियाँ हिमाचल से ही जाती हैं और उनसे राज्य में नित्य अपार धन आता रहता है; परन्तु भोजन, वस्त्र और अन्य उपभोग के पदार्थ देश में उत्पन्न किए जाते हैं और उनमें से एक दाना भी विदेश में जाने नहीं दिया जाता। परिणाम यह होता है कि उपभोग के पदार्थ देश में आवश्यकता से अधिक रहते हैं और फिर सस्ते हैं। निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी विभिन्न व्यंजन उपलब्ध कर सकता है।"

"परन्तु इससे तो किसान, जो अन्न उत्पन्न करते हैं, वे अति दीन-हीन अवस्था में हो जाएँगे। उनके पास राज्य-मुद्रा कम होने से विदेश से आने वाली सामग्री को क्रय करने की सामर्थ्य नहीं होगी।"

पार्वती अपने देश के अर्थशास्त्र का प्रथम पाठ पतिदेव को पढ़ा रही थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा, "धन परिश्रम से उत्पन्न होता है। परिश्रम के दो अंग हैं—एक, शारीरिक सामर्थ्य और दूसरा, काल। दोनों का युक्तियुक्त समन्वय हो तो कोई निर्धन नहीं रह सकता।

"पिताजी के देश में शिक्षा का लक्ष्य यह है कि मनुष्य अपनी सामर्थ्य का उचित प्रयोग कर सके। प्रत्येक व्यक्ति वहाँ शिक्षित है और वहाँ की शिक्षा का यह लक्ष्य है कि दिन में उपजाऊ परिश्रम पर प्रत्येक व्यक्ति उसे व्यय करे। खेतों में काम करने वाले किसान का और वास्तव में प्रत्येक नागरिक का यह स्वभाव बना दिया जाता है कि उपजाऊ परिश्रम का ढंग जाने और उसको दो प्रहर-भर करे। ऐसा करने से किसान को भी वैसा ही धनार्जन करने का अवसर मिल जाता है जैसा किसी भी नागरिक को।

"देश में कार्य बहुत है। वनौषधियाँ और वनों की अन्य उपज इतनी है कि लोग थक जाते हैं, परन्तु कार्य समाप्त नहीं होता।"

"परन्तु यहाँ तो किसान अपने अवकाश के समय में भाँग घोटते और पीते हैं, फिर भाँग के नशे में हवाई कल्पनाएँ करते हुए सोते हैं।"

"एक दिन राज्य के कुछ लोग महाराज की आज्ञा से देवलोक में भेजे गए थे। वे यह देखने गए थे कि वहाँ की अर्थव्यवस्था क्या और कैसी है।

"उन लोगों में एक मन्त्री-पद पर नियुक्त व्यक्ति भी गया था। उन मन्त्री ने महाराज को देवलोक की अर्थव्यवस्था का वर्णन सुनाया। उस समय मैं और माताजी भी समीप बैठी सुन रही थीं।

"मन्त्री महोदय ने बताया था कि वहाँ प्रायः काम यन्त्रों से होता है। एक-एक व्यक्ति दो-दो सौ व्यक्तियों का काम कर सकता है। परिणामस्वरूप वहाँ बहुत बड़ी संख्या में लोग बेकार घूमते हैं। उनके करने के लिए काम नहीं। इस कारण वहाँ के इन्द्र ने सबके खाने-पहनने का प्रबन्ध राज्य की ओर से करवा दिया है। प्रत्येक परिवार को रहने को मकान, जिसमें प्रकाश, ऊष्मा और सुख-सुविधा का प्रबन्ध है, दिया जाता है। बेकार लोगों के लिए मनोरंजन का प्रबन्ध भी राज्य करता है। अन्यथा राज्य को भय है कि खाली मन भूत-पिशाचों का डेरा न बन जाए। पुरुष-स्त्री के मनोरंजन के लिए वहाँ दिन-रात नृत्य-संगीत, खेल-तमाशे होते रहते हैं।

"मन्त्री महोदय का कहना था कि वहाँ लोग दुर्बल मन और शरीर से अशक्त होते जाते हैं और एक समय वहाँ जनसंख्या में वृद्धि होने लगी तो राज्य-नियम कर दिया गया है कि सब स्त्रियाँ एक प्रकार की ओषधि खाएँ, जिससे उनके सन्तान न हो।

"राज्य के साधन कितने भी क्यों न हों, वे असीम नहीं हो सकते। इस कारण राज्य देवलोक में एक सीमित संख्या में ही मनुष्यों का पालन कर सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देव ! उस मन्त्री के कथन पर पिताजी ने राज्य में शिक्षा में सुधार किया। उससे कार्य करने की मनुष्य की सामर्थ्य में वृद्धि और उसके प्रयोग का स्वभाव उत्पन्न करने का ढंग सिखाया जाता है। देश में यन्त्रों से काम करने से घृणा उत्पन्न की गई है।

"राज्य-कर्मचारी दिन-रात इस बात में लीन रहते हैं कि उपयोगी कार्य करने की व्यक्ति में सामर्थ्य और योग्यता उत्पन्न की जाए। यह व्यक्ति के ऊपर छोड़ दिया जाता है कि वह क्या काम करे।"

भोजन समाप्त हुआ। शिवजी यह विचार कर रहा था कि देश में सुधार का ढग क्या और कैसे हो।

पार्वती के उस दिन के कथन का अर्थ वह समझा था कि यन्त्रों से काम लेने पर समृद्धि में उन्नति नहीं होती। इससे आर्थिक असमता उत्पन्न होती है। व्यक्ति की अपनी सामर्थ्य और योग्यता ही वास्तविक धन और आनन्द का स्रोत है।

169082

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

यह कथा त्रेता युग के अन्तिम चरण की है। वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में वसुन्धरा ने सूर्य की सहायता से मनुष्य की रचना की थी। भारतीय परम्परा के अनुसार इसे लगभग तीस लाख वर्ष व्यतीत हो चुके थे। राम का युग आरम्भ होने वाला था। यह वह काल था, जब अयोध्या में दशरथ के पिता अज राज्य करते थे। इनके एक पूर्वज भगीरथ गंगा को अपने देश में लाने के लिए तपस्या कर रहे थे।

अयोध्या कोशल राज्य की राजधानी थी और इस राज्य के उत्तर की ओर ही हिमाचल देश था। हिमाचल देश के पश्चिमोत्तर में कैलास देश और उत्तर में किरात देश था। उससे उत्तर में देवलोक था। देवलोक से उत्तर में ब्रह्मलोक था। मेरु पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव को चारों ओर से घेरे हुए था।

उस काल के विद्वानों ने इस लम्बे काल के अनुपात में मनुष्य-जीवन के छोटा होने का अनुमान लगाकर यह निश्चय किया था कि ऐतिहासिक व्यक्तियों के पिता का नाम ही पुत्र का नाम भी हो। ब्रह्मलोक की गद्दी पर ब्रह्मा ही होते हैं। वहाँ के अध्यक्ष का नाम ब्रह्मा हो जाता था और देवलोक में राजा इन्द्र कहलाता था। हिमाचल प्रदेश में हिमवान और कैलास में सदा शिव ही कहलाता था।

यही प्रथा प्रायः असुर देशों और परिवारों में भी चलती थी। असुर देश का पुरोहित शुक्राचार्य होता था और राजा वृषपर्वा।

इसमें कहीं-कहीं व्यतिक्रम भी होता रहता था। उन दिनों, जिस समय की यह कथा है, मेरु अर्थात् उत्तरी ध्रुव एक मानव-अनुकूल जलवायु वाला देश था। यह पृथ्वी और सूर्य की गतियों का परिणाम ही था कि प्रत्येक छब्बीस हजार वर्ष में एक बार ध्रुव पर बारह महीने कनेर फूलती थी और एक बार यह पूर्णतः हिम से आच्छादित हो जाता था। जिस काल की यह कथा है उस समय मानव मजे में मेरु पर रहते थे और ब्रह्मा वहाँ का मुख्य पुरोहित था।

ये ब्रह्मा, इन्द्रादि नाम तो वेद की भाषा के शब्द थे, परन्तु मानव-प्रकृति के अनुसार श्रेष्ठ भाषा के शब्दों में सन्तान का नाम रखने की प्रथा तब भी थी। अतः ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वरुण, इन्द्र, नारदादि नाम तो बार-बार प्रयुक्त होते थे।

उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय सहिष्णुता आजकल से अधिक थी। इसमें कारण वेद धर्म का व्यापक प्रचार था। वेद धर्म में विश्व में सर्वोपरि एक महान् चेतन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता था जो सबके कर्मों को 'चाक्रशीति' देखता और न्याय की व्यवस्था करता है। इसी धर्म में यह स्वीकार किया गया था कि कर्म करने वाले प्राणी में जीवात्मा है। वह अपने कर्मों के फल से बच नहीं सकता। तीसरी बात जो इस धर्म में स्वीकार की गई थी, वह यह कि जीवात्मा अमर है। मरता तो केवल शरीर है। सुख-दुःख का भोगने वाला भी जीवात्मा है, शरीर नहीं। इस कारण एक जन्म के कर्मफल दूसरे जन्म तक जाते हैं।

इन तीन मूल धारणाओं से वैदिक धर्मानुयायियों का व्यक्तिगत और समष्टि-गत जीवन चलता था। इस धर्म का प्रवक्ता ब्रह्मा था। वह सबसे समान भाव रखता हुआ सबको कर्म करने में स्वतन्त्रता का उपासक था। अच्छे-बुरे कर्म तो मनुष्य अपने मन और बुद्धि पर नियन्त्रण के अनुसार करता था। मन पर जीवात्मा का नियन्त्रण तो योगाभ्यास की शिक्षा तथा अभ्यास से कराया जाता था।

परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक दूसरा पक्ष भी था। वह परमात्मा को नहीं मानता था। अच्छी-बुरी घटनाएँ प्राकृतिक नियमानुसार होती हुई मानता था। इनका मनुष्य के कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं। इन प्राकृतिक घटनाओं पर अधिकार पाया जा सकता है और इनके द्वारा आने वाली विपदा से बचा जा सकता है।

अतः परमात्मा इत्यादि किसी चेतन शक्ति की उपस्थिति वे नहीं मानते थे और न ही वे प्राकृतिक शक्तियों के विपरीत होने से किसी को दुःख होने की बात मानते थे। मनुष्य प्रकृति की एक घटना है और जब अन्य प्राकृतिक घटनाओं से इसका सामना होता है तो प्रकृति के सरल व्यवहार में विघ्न पड़ने से अव्यवस्था ही दुःख है। उससे बचने के लिए प्रकृति को समझकर उसका विरोध न करना ही दुःख से बचने का उपाय है। इस जीवन-मीमांसा के प्रवक्ता शुक्राचार्य थे। अथवा जो भी इन विचारों का आचार्य होता था, उसका नाम शुक्राचार्य रखा जाता था।

यह मत प्रायः देवलोक और भारत देश से दूर देशों में पनप रहा था। सूर्य-वंशियों और देवताओं के व्यापक प्रचार से वंचित होने से भिन्न विचारधारा को मानने वाले लोग जब व्यवहार में अपने विचारों को लाते थे तो पूर्व में कहे आस्तिक समुदाय से विरोध प्रकट होने लगे थे।

जब शिव-पार्वती का विवाह हुआ था तब ऐसे ही विचारों वाला एक शासक तारक नाम से उत्पन्न हुआ और द्रुत गति से उन्नति करने लगा था। वह पश्चिम में क्षीर सागर से भी दूर भूमध्य सागर के तटवर्ती एक छोटे-से देश का शासक था। उसे एक योग्य आचार्य मिला तो उसने शक्ति-संचय करने का यत्न आरम्भ किया। तारक ने अपने लड़के अनिल और सूर्य को शिक्षा के लिए ब्रह्मलोक में भेजा था और वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके आने पर इन शक्तियों द्वारा अपने राज्य को सुदृढ़ और विशाल बनाने का यत्न आरम्भ कर दिया। यह समाचार पितामह ब्रह्मा को मिला था जिसके अनुरूप ब्रह्मा चाहता था कि तारक के लड़कों का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध करने के लिए यहाँ देवलोक में भी शूरवीर, बुद्धिमान और तपस्वी युवक तैयार किए जाएँ।

ब्रह्माजी ने नारद को भेजकर हिमवान की लड़की पार्वती से शिवजी का विवाह करा दिया। यह सब इस आशा से कि दोनों के सन्तान होगी, वह तारक को परास्त करने में सफल होगी।

ब्रह्माजी ने नारद को बुलाया और अपने समीप आदर से बिठाकर कहा, "देवर्षि ! कभी पश्चिम के देशों में भी गए हैं अथवा नहीं ?"

"भगवन् ! उधर गए तीन वर्ष से अधिक हो गए हैं।"

"हम समझते हैं कि तुम्हें उस ओर भ्रमण के लिए जाना चाहिए। वहाँ के आचार्य और शासक से मिलकर उन्हें समझाना चाहिए कि देवताओं की ओर कुदृष्टि न करें। अन्यथा भारी युद्ध होगा और उसमें लाखों मानव मारे जाएँगे।"

"परन्तु भगवन् ! तारक के दो लड़के तो आपके देश में ही शिक्षा प्राप्त करके गए हैं।"

"हाँ; परन्तु सब पर शिक्षा का समान प्रभाव नहीं होता। शिक्षा तो मन को निर्मल करने के लिए होती है। उससे मन अधिक और अधिक ज्ञान-संचय के योग्य होता जाता है। परन्तु बुद्धि योगाभ्यास से तीक्ष्ण और पारदर्शक होती है। जो केवल मन को निर्मल करते रहते हैं, वे ज्ञान का उपभोग उचित ढंग पर नहीं कर सकते।

"यही बात तारक कुमार अनिल की हुई है। उसका मन तो उज्ज्वल हो गया है, परन्तु बुद्धि तीक्ष्ण नहीं हुई और परिणाम यह हो रहा है कि वह आस-पड़ोस के राज्यों को आत्मसात् कर एक बड़ा राज्य बना रहा है। यह भी समाचार है कि वह क्षीर सागर देश पर आक्रमण करने वाला है। वहाँ आजकल कोई लोकपाल नहीं। इस कारण व्यवस्था दुर्बल हो रही है।

"इससे किसी प्रकार से अनिल को पूर्वाभिमुख होने में कुछ विलम्ब उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए। तब तक यदि शिव के कोई बालक हो गया तो आज से बीस वर्ष में हम इस योग्य हो जाएँगे कि तारक का मुँहतोड़ उत्तर दे सकें।"

नारद जाने के लिए तो तैयार हो गया, परन्तु कहने लगा, "भगवन् ! यह काम इन्द्र का है।"

"हाँ, परन्तु उसे तो अपनी रानियों और अप्सराओं से ही अवकाश नहीं। मैंने उसे कहा तो वह कहने लगा, 'रोग आने से पूर्व उसकी चिकित्सा करना मूर्खता के लक्षण हैं।' वह समझता है कि तनिक उसे कुछ उन्नति कर लेने दो तब उसको विनष्ट करने में भी मजा आएगा।"

"भगवन् ! इन्द्र अब आपसे भी विपरीत युक्ति करने लगा है ?"

"वह अति विषयासक्त होने के कारण दुर्बल बुद्धि होता जा रहा है। उसे शिक्षा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने का एक अन्य उपाय कर रहा हूँ, परन्तु अभी तुम्हें तारक के देश में जाना चाहिए और वहाँ के शासक और आचार्य से मिलना चाहिए। उसे सत्-शिक्षा देनी चाहिए। यह मेरा काम है।''

नारद विस्मय करता था कि पहले तो ब्रह्म देश में शिक्षा का केन्द्र बना। उसमें सब देशों के शिक्षार्थी ले लिए जाते हैं। जब वे वहाँ की शिक्षा प्राप्त कर विश्व की शान्ति में विघ्न डालने लगते हैं तो यह बूढ़े बाबा चिन्ता करने लगते हैं। परन्तु ब्रह्मा के सम्मुख वह कुछ कह नहीं सका और उसी दिन वह पश्चिम के देशों में पैदल भ्रमण करता हुआ चल पड़ा।

नारद को विचार आया कि कैलासपति से मिलते हुए जाएँ तो अधिक ठीक है। तनिक देखें, ब्रह्माजी की पहली योजना कहाँ तक सफल हो रही है।

पार्वती के विवाह को पाँच मास व्यतीत हो चुके थे। नारदजी वहाँ जा पहुँचे।

कैलास भवन में नारद के आने की सूचना गई तो दोनों, राजा और रानी, भागे-भागे आए और देवर्षि नारद का राजप्रासाद के द्वार पर स्वागत करने लगे।

पति-पत्नी ने हाथ जोड़ प्रणाम किया और आदरसहित मुनिजी को भीतर ले जाकर पूछा, "भगवन्! किधर से आ रहे हैं?"

"इस समय तो मैं सीधा ब्रह्मलोक से आ रहा हूँ।"

"वहाँ गंगा मिली?" पार्वती ने पूछ लिया।

"जब-जब भी मैं वहाँ जाता हूँ, वह दूसरे-तीसरे दिन आती रहती है। तुम्हारे विवाह का समाचार उसे ब्रह्माजी से ज्ञात हुआ था। अतः जब मैं इस बार गया तो वह तुम्हारे विषय में विशेषकर पूछती थी।

"तुम्हारे विषय में तो मैं स्वयं कुछ नहीं जानता और इस कारण मैं उसे कुछ बता नहीं सका। अब तुम बताओ कि तुम्हारे सन्तान कब होने वाली है?"

पार्वती उत्तर देने की अपेक्षा अपने पति का मुख देखने लगी। शिवजी ने कहा, "अभी जल्दी किस बात की है? पार्वती अभी उन्नीस वर्ष की है और मैं समझता हूँ कि लड़की के गर्भ चौबीस-पच्चीस वर्ष की वयस से पहले नहीं होना चाहिए।"

"और दिन-रात अपने यौवन को नाली में बहाते हैं क्या? यह तो बहुत ही व्यर्थ का जीवन है।"

शिव और पार्वती नारदजी के कथन पर हँस पड़े। हँसने का न तो उन्होंने कारण बताया और न ही मुनिजी के प्रश्न का उत्तर दिया। इससे नारद मन में कुछ रुष्ट अनुभव करता हुआ चुप रहा।

वह एक दिन ही वहाँ रहा और ब्रह्माजी द्वारा बताए अपने काम पर चल दिया। जब नारदजी चले गए तो शिवजी महाराज ने प्रेमपूर्वक पार्वती को निहारते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए पूछा, "मुनिजी के प्रश्न का अर्थ समझा था ?"

"बस इतना ही कि आपकी सन्तान कब होगी ?"

"हाँ, प्रश्न तो इतना ही था, परन्तु इसके पीछे एक समाचार है।"

"भगवन् ! क्या ?"

"मैं तुमसे विवाह करने के लिए ब्रह्माजी की प्रेरणा से तैयार हुआ था।"

"पितामह का, इस प्रेरणा से क्या प्रयोजन था ?"

"उन्होंने अपने देश में एक शिक्षणालय खोल रखा है। उसमें देश-देशान्तर के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते हैं। वे जब वहाँ की उत्कृष्ट शिक्षा को प्राप्त कर अपने देश में लौटते हैं तो उस शिक्षा के बल पर वे मानब-समाज को दासता की शृंखलाओं में बाँधने लगते हैं। तब बाबा को उनकी चिन्ता होने लगती है।

"इसी चिन्ता के निवारण के लिए उन्होंने मुझसे विवाह कर लेने को कहकर यह इच्छा व्यक्त की कि मैं शीघ्र ही एक अति बलशाली सन्तान को उत्पन्न कर असुरों का व्यापक संहार करने के लिए उसे तैयार कर दूं।

"मैंने जब तुम्हें देखा तो विवाह के लिए तो उद्यत हो गया, परन्तु उनकी दूसरी बात स्वीकार नहीं की। हम पति-पत्नी रूप में विहार तो करते हैं, परन्तु मैं इस बात का ध्यान रखता हूँ कि बीजारोपण न हो।"

"परन्तु भगवन् विवाह का परम उद्देश्य तो पूर्ण करना ही चाहिए।"

"विवाह के दोनों उद्देश्य हैं। भोग-सुख और सन्तान सुख। मैं आधा फल अभी प्राप्त कर रहा हूँ। शेष के लिए किसी उपयुक्त समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

पार्वती को यह जीवन-मीमांसा यद्यपि अयुक्त प्रतीत हुई थी, परन्तु यह अति रसमयी थी। इस कारण वह चुप रही।

महादेव ने कह दिया, "विवाह के इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त मैं एक अन्य उद्देश्य की पूर्ति भी तो कर रहा हूँ।"

"क्या ?"

"तुम्हारे पिताजी के देश की सभ्यता के ग्राह्य अंश को यहाँ प्रचलित कर रहा हूँ। तुम्हारे कहे अनुसार यहाँ स्त्री-पुरुष शिल्प में दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक कुशल हो रहे हैं। अभी तक इस देश के पचास के लगभग लोग हिमाचल में जाकर कपड़ा बुनने और फलों को उन्नत करने का ढंग सीखकर आ चुके हैं। और राज्य-भर में एक प्रकार की स्फूर्ति उत्पन्न हो गई है।"

पार्वती प्रसन्न थी कि उसके इस देश में आने से यह पिछड़ा देश भी उन्नति की ओर पग उठाने लगा है।

वास्तव में बात यह थी कि हिमाचल देश की अर्थ-व्यवस्था वहाँ कैलासलोक में भी प्रचलित की जा रही थी। यह पहले प्रचलित दिशा से भिन्न थी। भिन्नता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी राज्य का नये-नये कामों के प्रचार में सहयोग। पहले व्यक्ति अपनी ही योग्यता और परिश्रम से जो कुछ उपलब्ध कर सकता था, उसपर ही सन्तोष करता था। अब राज्य उसकी योग्यता और पुरुषार्थ में सहयोगी बन रहा था। फलों को पौध लगा उनकी उत्तम किस्म का निर्माण करने का ढंग यहाँ के लोग हिमाचल प्रदेश से सीखकर आए थे। उद्यानों में भूमि पथरीली होने से नीचे के प्रान्तों और देशों से मिट्टी मँगवाकर भूमि उपजाऊ बनाई गई थी और वहाँ वे ओषधियाँ उत्पन्न की जाने लगी थीं जो अच्छी कीमत पर बिकती थीं। राज्य इस प्रारम्भिक काम में सहायक हो जाता था और शेष काम व्यक्ति के अपने करने पर छोड़ दिया जाता था। भूमि की देख-रेख राज्य करता था और उसपर उत्पादन व्यक्ति करता था। उपज में से राज्य को वह भूमि-कर देता। शेष का वह स्वयं स्वामी होता था। इसका परिणाम हो रहा था कि व्यक्ति अधिकाधिक परिश्रम करते थे और फल प्राप्त कर उसका भोग करते थे।

वन्य ओषधियों को उत्पन्न करना, एकत्रित करना और उनको विधिवत् ढंग से सुरक्षित विदेशों में भेजने का कार्य तो इस देश में सर्वथा नवीन था। जिन लोगों ने इस काम को आरम्भ किया था, वह धनवान होते जाते थे।

उन्नत प्रकार के मेवों के बीज हिमाचल प्रदेश से लाए गए थे और उनकी उपज इस देश में भी की गई थी। यह भी विदेशों से धन आर्कषित कर रहा था।

इस प्रकार धन के आगमन में राज्य सहायक भी हो रहा था। वह व्यवसाय और वाणिज्य का ढंग सिखाता था। इसका प्रतिकार राज्य यह ले रहा था कि वह किसी भी कार्य में किसी व्यक्ति को एकाधिकार प्राप्त करने में बाधक बन रहा था। दूसरे, कार्य का ढंग ऐसा रखा गया था कि जिससे कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के अधीन रहकर कार्य न करे। अधिक से अधिक एक कार्य में एक ही स्थान पर परिवार के लोग सम्मिलित हो सकते थे।

परिणामस्वरूप औद्योगीकरण तो हुआ था, परन्तु उस औद्योगीकरण में व्यक्ति ही प्रधान रहा। किसी को किसी के अधीन वेतनधारी बनने का अवसर नहीं आया।

यह अर्थ-व्यवस्था देवलोक की व्यवस्था से भिन्न थी। वहाँ सामूहिक औद्योगीकरण था। पहले व्यक्तिगत रूप में अग्नि का संचय कर उसे उद्योगों में व्यक्तिगत परिश्रम का स्थानापन्न बनने दिया गया। इससे बेकारी में वृद्धि हुई, तदनन्तर जो व्यक्ति किसी उद्योग में संलग्न थे, उनके वेतनों में वृद्धि हुई तो निर्मित वस्तुओं का मूल्य बढ़ने लगा। इस रोग को दूर करने के लिए सब उद्योग राज्याधीन कर लिए गए। राज्याधीन करने से यह सुविधाजनक समझा गया कि उद्योगों को यन्त्रों पर अधिकाधिक निर्भर किया जाए और व्यक्तिगत परिश्रम को हेय समझ कम किया जाए। इससे तो बेकारों की संख्या और बढ़ी और यन्त्रों की देखरेख तथा टूट-फूट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रारम्भिक मूल्य के कारण वस्तुएँ और भी महँगी हो गईं। इसपर जब हाहाकार मचने लगा तो सब लोगों के लिए बेकारी में वेतन तथा वृद्धावस्था में वेतन, यहाँ तक कि घरों में पत्नी-कर्म करने वाली स्त्रियों को भी राज्य द्वारा वेतन मिलने लगा।

इस अर्थ-व्यवस्था से दो अवगुण उत्पन्न हुए। एक तो बिना परिश्रम करके वेतन पाने का अधिकार बन गया और दूसरा पूर्ण प्रजा राज्य तथा राज्य-कर्मचारियों के अधीन हो दास-प्रवृत्ति का स्वभाव बना बैठी। प्रातः से रात तक पूर्ण जीवन राज्याधीन हो गया और अब स्थिति यह थी कि रात के कार्य पर भी राज्य का नियन्त्रण हो गया था। सन्तानोत्पत्ति पर भी सीमाएँ और उन सीमाओं को स्थिर रखने के लिए राज्य का हस्तक्षेप होने लगा था।

शिवजी महाराज जहाँ देवताओं की इस अर्थ-व्यवस्था को नापसन्द करता था वहाँ वह नर-सृष्टि कर फिर उसके संहार का उपाय तो सर्वथा व्यर्थ का प्रयास समझता था। वह यत्न कर रहा था कि उसकी प्रजा प्रथम तो संयम से रहे और फिर योग के उपायों से सन्तान-निरोध करे। इस प्रकार कैलासपति युद्धों की समस्या का समाधान करता था।

: २ :

जब शिवजी महाराज ने देश में जनसंख्या कम करने के उपायों के विषय में पार्वती को बताया तो वह चिन्ता व्यक्त करने लगी। उसका कहना था, "इससे तो कभी कैलासलोक पर किसी असुर राज्य ने आक्रमण कर दिया तो यहाँ की रक्षा असम्भव हो जाएगी।"

"मेरे पास ऐसे अस्त्र हैं जिनसे मैं अकेला ही लक्ष-लक्ष को पछाड़ सकता हूँ। मैं चाहूँ तो योग की शक्ति से राज्य के चारों ओर ऐसी भीत खड़ी कर सकता हूँ कि लक्ष-लक्ष शत्रु मिलकर भी उसे तोड़-फोड़ नहीं सकते।"

पार्वती चुप रही। यद्यपि वह इस स्थिति से प्रसन्न नहीं थी। वह समझती थी कि सन्तान न होने से वे निर्भय हो रति-क्रिया में रत हो रही है। पार्वती के विचार से वह सीमा से अधिक ही इसमें प्रवृत्त थी। इससे वह किसी शुभ परिणाम की आशा नहीं करती थी।

परन्तु शुभ न होने के अतिरिक्त कुछ अशुभ भी हो सकता है, वह यही चिन्ता किया करती थी।

काल व्यतीत होता गया और पार्वती के सन्तान नहीं हुई। नारद को असुर देशों से लौटने में दो वर्ष लगे। वैसे तो ब्रह्माजी की कृपा से उसे वायु के मार्ग से वहाँ जाने-आने के लिए सुविधा भी उपलब्ध थी, परन्तु स्वभाव से नारद मुनि पैदल यात्रा करने में अधिक लाभ मानता था। क्योंकि इससे उसका भूमण्डल का ज्ञान विस्तार पाता रहता था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक दो वर्ष के उपरान्त वह ब्रह्मलोक को जाते हुए कैलासलोक में से गुजरा तो उसे महादेव शिवजी महाराज और उनकी भार्या पार्वती से मिलने का अवसर मिला।

शिबजी ने नारदजी से पता किया कि उस कार्य में—जिसपर वह पश्चिम के देशों में गए थे, सफलता प्राप्त हुई अथवा नहीं।

नारद ने बताया, "मौखिक रूप में तो सफलता हुई है, परन्तु मुझे उसपर विश्वास नहीं। वहाँ के वर्तमान महाराज तारक, जो पहले अनिल नाम का था, वह अभी-अभी राजगद्दी पर आरूढ़ हुआ है। वह अभी पच्चीस वर्ष का युवक ही है। उसका अपने पिता से किसी विषय पर मतभेद हुआ तो पुत्र पिता की हत्या कर स्वयं राजगद्दी पर आसीन हो गया है।

"इस समय उसकी प्रजा में एक भारी अंश ऐसे लोगों का है जो कि उसके द्वारा अपने पिता की हत्या को पसन्द नहीं करता। वह प्रजा के उस अंश को निःशेष कर रहा है। इस कारण वह ब्रह्माजी की बात को स्वीकार करता प्रतीत होता है। परन्तु घर की व्यवस्था सुधारने के उपरान्त वह क्या करेगा, कहा नहीं जा सकता। जो अपने पिता से मतभेद होने पर उसकी हत्या करने पर तैयार हो जाय, वह प्रजा से मतभेद होने पर क्या करेगा, कहा नहीं जा सकता।"

"इसीसे कहता हूँ कि परमात्मा के ऋतों का पालन करना चाहिए। उससे सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती है।" यह शिवजी महाराज की सम्मति थी।

"परन्तु क्या यह प्रकृति और परमात्मा का ऋत नहीं कि विवाह का फल सन्तान होनी ही चाहिए?"

"उसके लिए मैं समय की प्रतीक्षा में हूँ?"

"किस समय की प्रतीक्षा में हैं?"

"मैं दक्षिण में मलयगिरि पर एक राजप्रासाद बनवाना चाहता हूँ। वहाँ जाकर ही पार्वती माँ बनेगी।"

"परन्तु उस राजप्रासाद के बनवाने में विलम्ब किस कारण हो रहा है?"

"हम कई बार वहाँ जा चुके हैं। परन्तु कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला। पिछली बार हम अपने वृषभ पर आकाश-मार्ग से जा रहे थे कि भूमि पर एक सुन्दर नवजात शिशु चिल्लाता हुआ मिला। पार्वती ने वृषभ वहाँ उतारने को कहा और उस निस्सहाय शिशु को उठाकर ले आई। अभी यह अपनी सन्तान की लालसा उसीसे पूरी कर रही है।"

"क्या नाम रखा है उस शिशु का?"

"सुकेश। यह उसके सुन्दर केशों के कारण नाम रखा है। परन्तु वह बालक पर्याप्त बलवान और बुद्धिशील होगा, ऐसा मेरा अनुमान है।"

नारद कैलास नगर में एक दिन ही ठहरा और ब्रह्मलोक को चल दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग में चलते हुए भूमण्डल की स्थिति पर विचार करता हुआ और उसका विश्लेषण करता हुआ जा रहा था। अपने पूर्ण विचार को नारद ने ब्रह्माजी के सम्मुख रख दिया तो ब्रह्माजी ने प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। ब्रह्माजी ने पूछा, "तारक के महामन्त्री से भी मिले हो ?"

"हाँ, महाराज ! शुक्राचार्यजी से बहुत गम्भीर विषयों पर बातचीत होती रही है। उस वार्तालाप से तो निराशा में वृद्धि ही हुई है।

"पितामह ! वह परमात्मा के अस्तित्व तथा जीवात्मा के कर्ता होने में विश्वास नहीं रखता। उसने मुझसे कहा, 'जो व्यक्ति इन अटल नियमों को समझकर अपने को उनके अनुकूल बना लेता है, वह सुख-सुविधा पाने में सम्पन्न हो जाता है। जो जानकर अथवा अनजाने में प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने लगता है, वह दुःख और कष्ट भोगता है।'

"मैंने पूछा, 'वह नियम क्या हैं ?'

"उसने कहा, 'योग्य का जीवित रहना और अयोग्य का पीछे हट जाना अथवा हटा दिया जाना।'

"मेरा सुझाव था कि इसमें प्रकृति के स्थान पर परमात्मा को रख दें तो दोनों बातों में अन्तर पड़ जाएगा।

"वह बोला, 'हाँ, प्रकृति को परमात्मा भी कहा जा सकता है। परन्तु तब परमात्मा को अचेतन और जड़ मानना होगा।'

" 'और सृष्टि-रचना ?' अगला प्रश्न था।

" 'वह तो प्रकृति में नियमों से विघटन और निर्माण होता रहता है। यह एक रथ के चक्के के समान घूमता हुआ नीचे-ऊपर होता रहता है।'

" 'और यह रचना का स्थान, काल और दिशा किस प्रकार निश्चित होती है ?'

" 'यह सब घटनावश होता है।'

"इस मीमांसा की पृष्ठभूमि पर मैं यह समझा हूँ कि वह देश भूमण्डल में अनर्थ उत्पन्न करेगा। वह सामर्थ्य-संचय कर रहा है। सामर्थ्य-संचय करते ही वह उपद्रव करने लगेगा।

"पितामह ! तारक को देवलोक से सन्धि करने की बात भी मैंने कही थी। परन्तु वह नहीं माना। उसका कहना है, 'हमारी सन्धि प्रकृति से है। आप भी प्रकृति के अनुकूल हो जाएँ तो हमारा और आपका व्यवहार समान हो जाने से स्वतः सन्धि हो जाएगी।'

"मेरा उससे यह कहना था कि जब हममें से कोई प्रकृति के नियमोंका उल्लंघन करेगा तो विग्रह होगा। यह प्रकृति ही कराएगी। इससे हमें प्रकृति के नियमों को जानकर उसके अनुकूल बनने का यत्न करना चाहिए। विरोध करने वाला विनष्ट हो जाएगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माजी ने मुस्कराते हुए कहा, "बात तो वह ठीक ही कहता है। केवल परमात्मा के स्थान पर वह प्रकृति का उपासक है। इस कारण वह सुमति को तब ही समझ सकेगा जब उससे जड़ पदार्थों की भाँति व्यवहार किया जाएगा। जड़ पदार्थ बिना ठोकर खाए हिलता नहीं।

"देखो मुनिवर! इससे युद्ध होगा और यह युद्ध अति भयंकर होगा। उसे पता नहीं कि इस आँधी के सम्मुख सब असुर ऐसे उड़ जाएँगे जैसे वायु के सम्मुख तिनके उड़ जाते हैं। प्रकृति से परमात्मा में भिन्नता है। निर्जीव प्रकृति पर परमात्मा का ही शासन है। प्रकृति के नियमों पर मनुष्य परमात्मा के नियमों से शासन करता है। जो परमात्मा की शक्ति को अपने में समझ लेता है वह प्रकृति पर शासन करता है। वह उसकी दासता नहीं कर सकता?"

नारद ने पूछा, "तो पितामह, अब क्या होगा?"

ब्रह्मा ने उत्तर दिये बिना पूछ लिया, "महादेव के सन्तान क्यों नहीं हो रही?"

"महादेवजी कहता है कि वह खेत में बीज ही नहीं डालता। इस कारण उपज कैसे हो सकती है?"

"वह ऐसा क्यों नहीं करना चाहता?"

"इससे हत्याएँ होंगी।"

"ओह! तो उसे अपने अगले जन्म की चिन्ता लगने लगी है?"

"हाँ महाराज! वह यही कहता है कि उसकी पूर्ण तपस्या का एक ही उद्देश्य है कि उसका जीवात्मा प्रकृति के बन्धन से छूट परम मोक्ष को प्राप्त हो सके।"

"वह युवक देवता अभी से बूढ़ा हो रहा है। मोक्षावस्था निश्चलता नहीं। उसको प्राप्त करने के लिए अकर्मण्यता निष्फल है। कर्म में दिशा होती है। निश्चलता में दिशाहीनता होती है। दिशाहीनता का अभिप्राय ही है कि अपने को प्रकृति के आश्रय छोड़ देना। यह जल के नीचे को बहने के समान मोक्ष की ओर नहीं, घोर नरक की ओर चलना है। यह देवता इसी दिशा में जा रहा प्रतीत होता है।"

"भगवन्!" नारद ने आदरयुक्त भाव से कहा, "इन देवताओं को अपने शिक्षण संस्थान में बुलाकर इन्हें सत्य का पुनः प्रदर्शन कराइए।"

"वह नहीं मानेगा। क्योंकि वह समझने लगा है कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ और नवीन विचारों को नहीं जानता।

"ये बुद्धिमान लोग नहीं जानते कि इस लोक में नया कुछ भी नहीं होता। केवल परिस्थितियों के अनुकूल घटना घटती है। घटना के नियम सदा एक समान रहे हैं।

"मनुष्य जड़ नहीं है। यह चेतन आत्मा का बाहरी कलेवर-मात्र है। जीवात्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकृति के कलेवर को चलायमान करता है। यह इसके कर्म में स्थान, दिशा और अवस्था का निश्चय करता है।

"वर्तमान युग के देवता लोग इस बात को समझ नहीं रहे। न समझने में दो बातों की बाधा आ खड़ी हुई है। एक, शारीरिक सुखों की अनुभूति होने से नीचे को लुढ़कते दिखाई देते हैं और दूसरे, परमात्मा पर सीमा से अधिक विश्वास कर रहे हैं। देवता लोग यह समझने लगे हैं कि वे परमात्मा के विशेष पुत्र हैं और यह कर्तव्य पिता का है कि वह अज्ञानी पुत्र को समय-समय पर बचाता रहे।

"ये दोनों बातें मिथ्या हैं। शारीरिक सुख, मानसिक सन्तोष और धैर्य से कम आकर्षण होना चाहिए; परन्तु उनके लिए, जिनके मन शिव-संकल्पयुक्त होते हैं। शिव-संकल्पों में सफलता ही शारीरिक कष्टों को पार करने की सामर्थ्य रखती है। परन्तु जिनके ये संकल्प हैं ही नहीं, उनको उनमें सफलता-असफलता का भास कैसे हो सकता है?"

नारद ने देखा कि ब्रह्माजी सत्य ही वृद्धता को प्राप्त हो रहे हैं। युवा और वृद्ध में अन्तर ही यह होता है कि जहाँ वृद्ध हताश हो भावी को अनिवार्य समझ उसकी प्रतीक्षा करता है, वहाँ युवक मार्ग अवरुद्ध होने पर भी बाधा में से मार्ग निकालने के लिए यत्नशील हो जाता है। इस कारण नारद ने अपने यौवन को सार्थक करते हुए कहा, "पितामह! क्या इससे निकलने का कोई मार्ग नहीं है?"

"मार्ग तो है। परन्तु वह देवताओं के द्वारा नहीं, वरंच मनु-सन्तान के द्वारा बन सकता है। मनुष्यों में कोई ऐसा व्यक्ति उत्पन्न हो सकता है जो भू-भार को हल्का कर दे। मैं कभी-कभी विचार करता हूँ कि अपना निवास-स्थान मेरुलोक छोड़ अयोध्याजी में चला जाऊँ और इक्ष्वाकु लोगों में अपनी शिक्षा-दीक्षा का कार्य आरम्भ कर दूँ।"

"परन्तु महाराज! मनुष्यों में भी तो बहुत दोष हैं।"

"हाँ। वे बुद्धि के स्थान श्रद्धा पर अधिक बल देते हैं। श्रद्धा बुद्धि से मार्ग-दर्शन प्राप्त किए बिना अन्धे कुएँ में गिरा सकती है।"

"तो भगवन्! देवताओं में ही नव जीवन संचार का कोई उपाय करिए। मैं समझता हूँ कि हम पहले ही पिछड़ रहे हैं। यदि इस प्रयास में और देर की गई तो फिर गया काल लौटकर नहीं आएगा।"

ब्रह्माजी इससे गम्भीर विचार में लीन हो गए।

नारद के ब्रह्मलोक में लौटने के तीन-चार दिन उपरान्त ही ब्रह्माजी ने पुनः नारद को बुलाया और आज्ञा दी कि अविलम्ब प्रमुख देवताओं की एक सभा बुलानी चाहिए।

"भगवन्!" नारद ने पूछा, "आप किन-किनको प्रमुख मानते हैं?"

"मैं समझता हूँ कि अग्नि, मित्र, वरुण, वायु, अश्विनियों को बुलाना पर्याप्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा।"

"और महाराज ! इनको आप देवताओं में प्रमुख मानते हैं? लोक में तो इन्द्र, विष्णु, महेश को ही देवता समझा जाता है, मित्र इत्यादि तो उपदेवता हैं।"

"तुम देवता के अर्थ प्रभुता प्राप्त व्यक्ति को समझने लगे हो? मैं गुणों में दिव्य गुण वालों को श्रेष्ठ मानता हूँ। ये चारों, अभिप्राय यह कि अग्नि, वायु इत्यादि, आज सर्वश्रेष्ठ देवता हैं।

"देखो, मुनिवर, तुम जाओ और इनको मुझसे मिलने का निमन्त्रण दे आओ। ये मेरी योजना को आरम्भ करेंगे। जब योजना चल निकलेगी तो मन से वृद्ध हो रहे अन्य देवता स्वतः उसमें सम्मिलित हो जाएँगे।

"देखो, नारद ! काल द्रुत गति से चल रहा है। इस कारण मेरे कार्य में तुम पैदल नहीं, विमान पर जाया करो। पहले ही तुमने सामान्य-से कार्य के लिए दो वर्ष व्यर्थ गँवा दिए हैं।"

अतः नारद अगले ही दिन इन देवताओं के देशों को चल दिया।

: ३ :

अग्नि, मित्र, वरुण और वायु जब ब्रह्माजी के भवन में पहुँचे तो ब्रह्माजी ने इनको आदरसहित ठहराया और विश्राम के उपरान्त इनसे वार्तालाप आरम्भ कर दिया।

ब्रह्माजी ने कहा, "देखो बच्चो ! मुझे भविष्य अन्धकारयुक्त प्रतीत हो रहा है। दूर पश्चिम में काली घटाएँ निर्मित हो रही हैं और ज्यों ही वे बल पकड़ेंगी, पूर्व के देशों पर छा जाएँगी।

"वहाँ के नास्तिक आचार्य के शिष्य जब इधर आए तो फिर वे प्रत्येक प्रकार का पाप, अत्याचार और अनाचार सम्पन्न करेंगे।"

वरुण का कहना था, "पितामह ! इस काम के लिए तो इन्द्र अधिक योग्य था। उसे सतर्क और सबल करने की आवश्यकता है।"

"उसकी सहायता भी ली जाएगी। इस समय कोई महान संगठनकर्ता उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि देवलोक की भूमि बंजर हो चुकी है। वहाँ अब वीर-धीर, शक्तिवान और प्रतिभावान बालक उत्पन्न नहीं होते। इस कारण कोई उर्वरा भूमि देखकर बीज के लिए उपलब्ध करनी चाहिए।

"आप इस विषय में विचार कर कार्य करिए। जब आप इस काम में सफल हो जाएँगे तब मैं अन्य देवताओं को इन्द्र के नेतृत्व में युद्धभूमि पर उतरने की प्रेरणा दूँगा। मैं समझता हूँ कि इसमें ही कल्याण सम्भव है।"

ब्रह्मा के आदेश पर चारों देवता परस्पर विचार-विनिमय करने लगे और फिर एक योजना सोचने में सफल हुए।

परमात्मा के विधान से प्राणी की उत्पत्ति पिता के वीर्य और माँ की भूमि के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वरा होने पर ही सम्भव है। अभी तक इसके अतिरिक्त प्रकृति में अन्य कोई उपाय नहीं जिससे प्राणी का सृजन हो सके। अतः इस परिणाम पर पहुँच कर यह विचार होने लगा कि किसी ऐसे व्यक्ति के वीर्य को सींचने का प्रबन्ध किया जाए जिससे ब्रह्माजी द्वारा वर्णित गुणों वाला बालक निर्मित हो सके। पहले उस पुरुष को ढूंढ़ना चाहिए और फिर उस बीज के ग्रहण करने की सामर्थ्य वाली स्त्री ढूँढ़नी चाहिए।

पुरुष तो समक्ष था। सब इस बात पर सहमत थे कि कैलासपति महादेव इस प्रकार के बालक के लिए बीज दे सकता है। परन्तु उसकी पत्नी पार्वती की समर्थता पर उनमें मतभेद हो गया कि वह बीज को फल में परिणत कर भी सकेगी अथवा नहीं।

एक तो यह निश्चय ही था कि पार्वती बिना पति की इच्छा के बीज ग्रहण नहीं करेगी और दूसरा यह कि यदि घटनावश वह ग्रहण करने पर विवश कर भी दी जाए तो सोचना है वह ब्रह्माजी द्वारा कहे गुणों वाला बालक निर्माण करने के लिए उचित भूमि रखती भी है अथवा नहीं। मित्र का विचार था कि वह इतनी सामर्थ्य रखती है और वह उपयुक्त भूमि होगी। परन्तु उसके अन्य तीन परामर्श-दाता इसके विपरीत मत रखते थे।

इस कारण चारों अपनी समस्या लेकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे। उन्होंने ब्रह्माजी को बताया कि उन्होंने यह योजना तो बना ली है कि कैलासपति महादेव का बीज प्रयोग किया जाए, परन्तु पार्वती यदि किसी प्रकार बीज ग्रहण करने पर विवश कर भी दी जाए तो वह उसके पालन करने में समर्थ होगी अथवा नहीं, वे इसमें एकमत नहीं हैं।

ब्रह्माजी ने विचार किया और कहा, "पार्वती के विषय में मुझे भी सन्देह है। परन्तु मैं जानता हूँ कि ब्रह्मलोक में यहाँ एक अन्य है जो इस कार्य को करने में सर्वथा समर्थ है। आप अपनी योजना का पूर्व अंश सम्पन्न करें तो मैं दूसरे अंश के लिए पार्वती की बड़ी बहन गंगा को इस काम के लिए तैयार कर दूँगा।"

इस प्रकार योजना बन गई। चारों देवता कैलासलोक की राजधानी को चल पड़े।

ये चारों देवता कैलासपति-भवन की सेविकाओं में मिले-जुले विचरने लगे और पति-पत्नी की गतिविधियों का अध्ययन करने लगे।

एक दिन इनको अवसर मिल गया। पति-पत्नी रति-क्रिया में संलग्न थे। अग्नि महादेव के शरीर में घुस गया और उसे निरन्तर उत्तेजित रखने में लीन हो गया। वायु शरीर के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त हो रति-क्रिया में पार्वती को रत रखने में लगा। विष्णु बीज स्खलित करने के लिए बाध्य करने लगा। मित्र पलंग के नीचे छुपे हाथ में स्वर्णपात्र लिए तैयार था। ठीक समय पर महादेव को अपनी यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिज्ञा स्मरण आई कि सन्तान नहीं उत्पन्न करनी परन्तु यह कुछ देर से हुआ और बीज स्खलित होते ही मित्र ने पात्र में ले लिया। बीज मिलते ही वह भागा। पार्वती ने उसे देख लिया और शाप दे दिया।

जब पार्वती शाप दे रही थी तो महादेव के शरीर से अन्य देवता भी निकल विलुप्त हो गए। महादेव ने पूछा, "देवी ! क्या हुआ है?"

"आपका तेज लेकर कोई भाग गया है।"

"कैसे लेकर भागा है ?"

"स्वर्णपात्र में।"

"कौन था वह ?"

"आपके विवाह पर वह आया था। मैं नाम नहीं जानती, परन्तु पहचानती हूँ।"

"अवश्य देवताओं में से कोई होगा। यह देवताओं ने किसी प्रकार का षड्यन्त्र किया प्रतीत होता है।"

"परन्तु क्यों ?"

"वे मेरी सन्तान चाहते हैं। अब वे इसको किसी देवांगना को देकर प्राप्त करेंगे।"

"वे सन्तान किसलिए चाहते हैं ?"

"इनके मस्तिष्क में यह बात बैठ गई है कि मेरा लड़का आगामी देवासुर-संग्राम में इन देवताओं का नेतृत्व करेगा।"

"यह तो बहुत ही शुभ कार्य है।"

"मैं अपनी सन्तान को इस कार्य के लिए नहीं देना चाहता। यह हमारी परम्परा के विपरीत कार्य है। मैं शिव हूँ। सबका कल्याण करने वाला हूँ।"

"परन्तु असुरों की हत्या भी भले लोगों का कल्याण ही करेगी।"

"कौन भला है और कौन बुरा है ? यही तो विचारणीय है। देखो प्रिय ! जब नारद मुनि पश्चिमी देशों से लौटा था तो मुझे कह रहा था कि मुझे तुमसे सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए। मैंने उसे कहा था कि देवताओं के लिए मैं किसी भी प्राणी की हत्या में सहयोग नहीं दूंगा।

"इसी कारण हम विवाह का रस तो प्राप्त करते हैं, परन्तु मैं सन्तान की इच्छा नहीं करता।"

"तो अब क्या होगा ?" पार्वती मन से प्रसन्न हो रही थी। परन्तु पति की मानसिक दशा में मौन थी।

परन्तु मित्र तो ब्रह्माजी के आदेश से यह कर रहा था। निश्चयानुसार वह वेगगामी विमान द्वारा ब्रह्मलोक में जा पहुँचा। वहाँ पर गंगा को वह तेज सौंप दिया गया। उसने इसे प्रसन्नतापूर्वक धारण किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा के गर्भ ठहर गया और गर्भ जब पलने लगा तो उसे हिमालय पर जाकर रहने की सम्मति दी गई। हिमालय उसका जन्मस्थान था और वहाँ का जलवायु उसके अनुकूल था।

समय पाकर बालक का जन्म हुआ। बालक के छः मुख थे। अर्थात् उसको छः बालकों के समान भूख लगती थी। इस कारण देवताओं ने छः कृत्तिकाएँ उसके पालन के लिए नियुक्त कर दीं। छः कृत्तिकाओं का दूध पीते हुए कुमार बढ़ने लगा।

कुमारसम्भव का पिता महादेव था और माँ गंगा थी। इसकी धाय छः कृत्तिकाएँ थीं। इस कारण इसका नाम कार्त्तिकेय हुआ।

: ४ :

कुमार की उत्पत्ति का समाचार पार्वती को भी मिला। उसे यह सुनकर विस्मय हुआ कि पुत्र की उत्पत्ति के लिए गंगा माता-पिता के देश में आ गई है। उसे ऐसा लगा कि उसके माता-पिता ने इस प्रकार सन्तान प्राप्त करने को पसन्द नहीं किया और उन्होंने लड़की को अपने संरक्षण में लेने तथा उसकी देख-रेख करने से इन्कार कर दिया है। गंगा वहाँ ब्रह्माजी के प्रबन्ध में रहती थी। कृत्तिकाएँ भी ब्रह्माजी के आदेशानुसार कुमार की धाय का कार्य कर रही थीं।

जब कुमार छः मास का हुआ तो पार्वती को यह समाचार मिला कि लड़का अति सुन्दर है और छः धायों का स्तन-पान कर ही सन्तुष्ट होता है। वह छः मुख वाला विख्यात हो रहा है। इससे उसके मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि वह उस लड़के को देखे। साथ ही वह गंगा से भी मिलने की इच्छा करने लगी थी।

एक समय जब पति-पत्नी दोनों अति प्रेममय अवस्था में थे, पार्वती ने अपनी इच्छा व्यक्त कर दी। उसने कहा, "देव ! अपने पिताजी के देश में गिरिपर्वत पर भ्रमण के लिए चलना चाहिए।"

"वहाँ क्या है ?"

"एक अविवाहिता माँ है, जो सुना है कि बहुत ही प्रेम से अपने बच्चे का लालन-पालन कर रही है।"

"अपनी बहन से मिलना चाहती हो ?"

"हाँ; और देव की सन्तान के दर्शन करना चाहती हूँ।"

"उससे देवी का क्या सम्बन्ध है ?"

"वह मेरी सन्तान होने वाली थी। मैं ऐसा अनुभव करती हूँ कि माता की गोद में से कोई चोर उसे उठाकर ले गया है।"

"परन्तु तुमने चोर को अति कठोर दण्ड दिया है। तुमने पृथिवी को शाप दिया है कि भविष्य में वह बहुत-से पतियों की भार्या बनेगी।"

"वह उस समय की परिस्थिति में स्वाभाविक ही था।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु उस बेचारी को तुम्हारे शाप से संकट अनुभव होने लगा है। अभी से कई नरेश उसके अंशमात्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लालायित रहने लगे हैं।"

"आज से पहले यह प्रथा थी कि देवता और असुर ही पृथिवी पर शासन के लिए लालायित रहते थे, परन्तु पृथिवी सदा देवताओं के कक्ष में ही निवास करती थी। इसी कारण जब-जब भी असुर उसे अपने अन्तःपुर में ले जाकर रखने का यत्न करते थे तो वे देवताओं से पराजित होते थे।

"अब उसपर अथवा उसके मुख्यांश पर तारक दावा कर रहा है और देवता अपना दावा पृथिवी पर बाँट देना चाहते हैं। परन्तु ब्रह्माजी देवताओं को फटकार बताकर तारकासुर से युद्ध की प्रेरणा देते हैं। इस पर भी जब पृथिवी ने कहा कि तुमने उसे शाप दिया है तो इससे तारक उसके पूर्ण क्षेत्र पर नहीं तो एक मुख्यांश पर अधिकार पाने वाला है। इसीसे देवता लोग भयभीत हैं और तारक से आमना-सामना करने से संकोच करते हैं।

"ब्रह्माजी ने उसको कहा कि पार्वती का शाप निष्फल नहीं जा सकता, परन्तु पृथिवी के पति एक से अधिक होते हुए भी वह एक ही पुत्र की माँ होगी और भावी शासक उसका पुत्र कुमार ही होगा।"

"तो कुमार पृथिवी का पुत्र है ! मैंने तो सुना था कि वह गंगा के गर्भ में निर्मित उसका ही पुत्र है।"

"एक बात तुम नहीं जानतीं और मैं जानता हूँ। वह यह कि यदि वह तेज तुम्हारे गर्भाशय में पड़ जाता तो तुम उसका भार सहन नहीं कर सकतीं। इस कारण यह तो ठीक ही हुआ है कि तुम्हें उसका कष्ट सहन करना नहीं पड़ा; परन्तु पृथिवी भी यह जानती है कि गंगा इसका बोझ सहन नहीं कर सकेगी। इस कारण इसके गर्भ में पालन का उत्तरदायित्व अग्निदेव को दिया गया। यह अग्निदेव के ही कारण है कि इस बालक को छः बालकों के समान भूख लगती है और जब वह गंगा के पेट में पाँच मास का था तो वह इतना भारी हो गया था कि गंगा उसके पालन का बोझ सहन नहीं कर सकी। तब पृथिवी को ब्रह्माजी ने आज्ञा दी कि वह गंगा के इस कार्य में सहायता करे। पृथिवी ने ही हिमाचल देश का स्थान चयन किया और उसने वहाँ गंगा की सहायता कर कुमार को पूर्णांग एवं स्वस्थ जन्म दिलवाया है।

"अतः पृथिवी भी कुमार की माँ है। इस कारण पृथिवी का पुत्र माँ को असुरपति से मुक्त कराने में सफल प्रयास करेगा।"

"कब करेगा ?"

"जब वह उन्नीस-बीस वर्ष का होगा।"

"तब तक पृथिवी और पृथिवी के वसु इस तारकासुर से पीड़ित रहेंगे ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भगवती !" शंकरजी ने मुस्कराते हुए कहा, "यह उस कर्म का फल है, जो उसने एक पति-पत्नी को अपने गुह्य कर्म को देखने तथा उस कर्म में बाधा डालने के रूप में किया है। तुम्हारा रोष ठीक ही था। यह इस कारण नहीं कि उसने तुम्हें माँ बनने से वंचित किया है। वह तो मैं करता ही, परन्तु तुम्हारा शाप इस कारण फलीभूत हो रहा है कि उसने हमारे उस कर्म को, जो प्रकृति ने देखने से मना किया हुआ है, देखने की धृष्टता की है।"

"मैं तो उस समय यह समझ रही थी कि आप प्रेम और वासना में इतने रत हैं कि वीर्य-दान देंगे ही।"

"इस अग्नि ने मेरे मस्तिष्क को मोहित कर रखा था। उस समय मुझे अपना प्रण, कि तुम्हें माँ बनने का कष्ट नहीं दूँगा, स्मरण नहीं रहा था कि किसीने छींक मार दी। इस प्रकार ब्रह्माजी की योजना सफल हुई। पृथिवी हमारा तेज ले गई और गंगा तेज को ग्रहण करने के लिए तैयार बैठी थी।"

पार्वती ने बात बदल दी और उसने पूछ लिया, "तो क्या आप अपने पुत्र को देखने की इच्छा नहीं करते ?"

"नहीं; परन्तु यदि तुम कहो तो हम चल सकते हैं।"

"भगवन् ! मेरी तो उत्कट इच्छा हो रही है कि उस विचित्र बालक को देखने जाऊँ। साथ ही मैं चाहती हूँ कि गंगा और माता-पिता में सन्धि करवा दूँ और वह अपने माता-पिता के घर में रह सके।"

"यह नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"केवल इसलिए कि तुम्हारे पिता का अभी भी वही स्वभाव है, जो तुम्हारे एक पूर्वज दक्ष प्रजापति का था।

"इस देश का एक शासक शंकर नाम का हो चुका है। उसे हिमाचल देश के शासक दक्ष की कन्या सती ने अपने माता-पिता की इच्छा के बिना वरा था। इससे वे उससे अति रुष्ट थे।

"एक बार दक्ष ने यज्ञ किया। उसमें सब देवताओं को बुलाया था, परन्तु न तो सती को निमन्त्रण भेजा और न ही उसके पति शंकर को।

"सती की इच्छा हो गई कि अपने माता-पिता के दर्शन करे। इस कारण वह यज्ञ पर अनामन्त्रित ही चली गई। वहाँ उसे किसीने पूछा तक नहीं। यज्ञ पर आए सामान्य ब्राह्मणों की पंक्ति में उसे स्थान मिला।

"सती ने अपनी माता से कहा कि उसके पति शंकर महादेव को भी उस यज्ञ पर आमन्त्रित किया जाए; परन्तु दक्ष और सती की माँ लड़की की धृष्टता को भूले नहीं थे और उन्होंने शंकरजी को निमन्त्रण देने से इन्कार कर दिया।

"सती को क्रोध आ गया और वह उसी यज्ञ की अग्नि में कूद पड़ी और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलकर भस्म हो गई।

"यह समाचार शंकरजी को मिला। वे सती के आत्मदाह पर क्रोध से भर गए और अनामन्त्रित ही यज्ञ में जा धमके। वहाँ जा अपने श्वसुर दक्ष से पूछने लगे कि उसकी पत्नी कहाँ है?

"दक्ष ने यज्ञशाला के एक कोने में पड़ी राख को दिखा दिया। यह देखकर तो शंकरजी ने अपना त्रिशूल तान लिया और वहाँ आए सब ऋषियों और देवताओं की हत्या कर दी।

"बाद में जब ब्रह्माजी वहाँ पर आए तो उन्होंने दामाद और श्वसुर में सन्धि करवा दी। फिर भी दोनों में वैमनस्य नहीं मिटा। वह वैमनस्य हमारे परिवार वालों ने तो तुमसे विवाह के उपरान्त छोड़ दिया है; परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे माता-पिता में अभी भी अपने पूर्वजों का स्वभाव विद्यमान है।

"मेरी सूचना है कि हिमवान और मैना ने अपनी बड़ी लड़की को अभी तक क्षमा नहीं किया।

"जब तक वह उनके राज्य में गर्भ-भार से पड़ी रही, राज्य की ओर से उसे किसी प्रकार की सहायता नहीं दी गई। अतः वह बिना पति के माँ बनी रहेगी जिसकी प्रतिष्ठा न तो अपने माता-पिता के घर में होगी और न ही ससुराल में।"

"उसकी ससुराल कहाँ है?"

"कैलासलोक में। वहीं से उसे वह पुत्र मिला है।"

समस्या के इस प्रकार उपस्थित होने से शिवजी महाराज गम्भीर विचार में मग्न हो गए। कितनी ही देर तक महादेव मौन मन में मनन करते रहे और पार्वती उनके मुख पर देखती रही।

आखिर शिवजी महाराज ने अपना विचारित मत बता दिया। उन्होंने बताया, "देखो प्रिये! मैंने तुम्हारी बड़ी बहन से विवाह करने से इनकार इस कारण किया था कि जिस रूप में वह मेरे सम्मुख उपस्थित हुई थी, वह मेरी पत्नी बनकर रहने के लिए नहीं था; वरंच अपने सौन्दर्य और बनाव-शृंगार से मुझ पर शासन करने के लिए था।

"मैंने उसे अस्वीकार कर दिया था। उसके विपरीत तुम्हारे दर्शन तो शृंगार युक्त नहीं हुए थे, वरंच व्रत और तपस्या से हुए क्षीण और निस्तेज शरीर के थे। मैंने तुम्हें स्वीकार किया था। मैं समझ गया था कि गंगा मुझपर शासन करने के लिए आना चाहती थी और तुम तो मेरी श्रद्धालु भक्तिनी बनकर मेरे पास आकर रहने के लिए यह तप कर रही हो। यही कारण है कि मैंने तुम्हें अपनी गोद में स्थान दिया है।

"मैं समझता हूँ कि यदि अब भी उसे यहाँ लाऊँगा तो वह अपने स्वभाव से प्रेरित होकर मेरे सिर पर सवार होकर रहने का यत्न करेगी।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वती मुस्कराती हुई अति मनमोहक चितवन में अपने पति का मुख देखते हुई बोली, "भगवन्! तो सिर पर स्थान दे दीजिए और मैं तो आपके चरणों में ही प्रसन्न रहूँगी।"

महादेवजी हँस पड़े और बोले, "परमप्रिय पार्वती! तुम बहुत ही प्रबल युक्ति और वार्तालाप करने वाली हो। तुम्हारी प्रत्येक बात अर्थ और बल से युक्त होती है। इससे मैं वहाँ जाने से इनकार नहीं कर सकता।"

पार्वती ने पति के चरण स्पर्श कर पूछा, "तो कब चलेंगे?"

"जब तुम्हारी इच्छा हो।"

: ५ :

हिमाचल प्रदेश में गिरि पर्वत पर शिव और पार्वती अपने विमान में जा रहे थे। उन्होंने आकाश से ही देखा कि गंगा के लिए इन्द्र ने एक विशाल प्रासाद बनवा दिया है। उसके प्रासाद के चारों ओर घना वन है और उस वन में गंगा का निवास-स्थान काले बादलों में पूर्ण चन्द्रमा के समान चमक रहा है।

पार्वती ने इच्छा व्यक्त की कि विमान को दीदी के निवास-स्थान से कुछ अन्तर पर उतारना चाहिए जिससे कि उनके आने का पता तब ही चले जब वे उसके सम्मुख जा खड़े हों।

"हाँ।" महादेव ने कहा, "यही ठीक होगा कि हम विमान से उस पश्चिम वाले वन से बाहर ही उतरते हैं। वहाँ पैदल ही चलेंगे। मैं भी चुपचाप उसके सामने जा उपस्थित होना चाहता हूँ। मुझे भय है कि वह हमें देखते ही कहीं छुप न जाए और फिर वहाँ से निकले ही नहीं और हमारा यहाँ आना व्यर्थ जाए।"

अतः गंगा के निवास-स्थान से पश्चिम की ओर वन के पार उन्होंने अपना विमान उतारा और हल्के-हल्के पग रखते हुए बिना कुछ बोले गंगा के निवास-स्थान की ओर चल पड़े।

उन्हें उस घने वन में एक शिला पर एक व्यक्ति लेटा हुआ मिला। कई महीनों से अन्न ग्रहण न करने के कारण वह अति दुर्बल और ओजविहीन हो रहा दिखाई दिया।

उस व्यक्ति के समीप एक व्यक्ति राज्य के प्रतिहारों के-से वस्त्र पहने भूमि पर शिला के नीचे बैठा था और एक-एक बूँद जल उसके मुख में डाल रहा था। शिव और पार्वती उस मरणासन्न व्यक्ति को वहाँ निर्जन स्थान पर केवल एक सेवक के साथ पड़ा देख चकित रह गए।

पति-पत्नी दोनों सेवक के समीप खड़े होकर पूछने लगे, "यह कौन व्यक्ति है और यहाँ किसलिए पड़ा है?"

सेवक ने ऊपर दृष्टि उठा दोनों को देखा, पहचाना और दोनों के चरणस्पर्श कर हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव और पार्वती घबराए और प्रश्न-भरी दृष्टि से सेवक की ओर देखने लगे। वे समझ रहे थे कि एकाएक गंगा के सम्मुख जा खड़े होंगे; परन्तु इस सेवक को पहचानते देख उन्हें अपने को गुप्त रख पाना कठिन प्रतीत होने लगा था।

सेवक ने कहा, "महाराज ! राजकुमारी गंगा के प्रासाद का द्वार इन पेड़ों के पार है और यह इक्ष्वाकुवंशीय महाराज भगीरथ गंगाजी से एक वर पाने की अभिलाषा में यहाँ पड़े हैं।"

"यह क्या वर चाहते हैं और क्यों चाहते हैं ?"

"भगवन् ! कथा लम्बी है। इस प्रकार खड़े-खड़े बता नहीं सकता। माँ भगवती पार्वतीजी को मैं खड़े-खड़े कथा सुनने के लिए नहीं कह सकता।"

"हम गंगाजी के प्रासाद में जा रहे हैं और यदि उन्होंने पसन्द किया तो इन तपस्वी महाराज को भीतर बुला लेंगे। तब आराम से अपनी कथा बता देना।"

सेवक चुप रहा। उसने अपने स्वामी की ओर देखा। वह आँखें खोले दुर्बलता के कारण काँपते हुए हाथ जोड़े हुए लेटा था।

पार्वती का ध्यान उस ओर गया तो उस मरणासन्न व्यक्ति को देख उसे अपनी तपस्या के दिन स्मरण आ गए। उसने अपने पति से कहा, "देव ! अब चलिए। भीतर चलकर दीदी की स्वीकृति से इसे भी भीतर लिवा ले जाएँगे और इस कठोर तपस्या का कारण जानने का यत्न करेंगे।"

शिव ने आशीर्वाद दिया और पार्वती का हाथ अपनी बाँह में लेकर प्रासाद के द्वार को चल पड़े। मार्ग में चलते हुए पार्वती ने कहा, "मैं समझती हूँ कि यह व्यक्ति बच नहीं सकेगा।"

"कैसे कहती हो ?"

"उसके मुख पर मृत्यु के लक्षण चित्रित हो रहे हैं।"

"नहीं देवी ! वह अभी मरेगा नहीं। हम इसे दीर्घ जीवन दिलवाने का यत्न करेंगे।"

"आप बहुत दयालु हैं।"

शिव मुस्कराते हुए कहने लगा, "एक बार पहले भी इसी अवस्था में एक व्यक्ति को जीवन-दान कराया था और हमें उसका खेद नहीं रहा।"

पार्वती समझी कि उसके पति को भी उसके व्रत की बात स्मरण आ गई है। इससे वह कहने लगी, "आपको उस व्यक्ति का मुख स्मरण है ?"

"हाँ। एक अन्तर था। वह व्यक्ति आशा से भरा हुआ था और यह व्यक्ति निराश प्रतीत होता है।"

"परन्तु आपके वचन ने तो इसमें आशा का संचार कर दिया होगा। आपने इसकी कथा सुनने की बात कही है।"

"परन्तु बहुत कुछ गंगा के व्यवहार पर निर्भर करता है। यदि उसने हमारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा नहीं माना तो हम क्या कर सकेंगे ?"

"भगवन् ! गंगा इतनी कठोर नहीं कि वह इतना कठोर व्रत पालन करने वाले पर भी द्रवित न हो उठे।"

"हाँ, यह मानव-दुर्बलता है।"

"परन्तु आप तो मानते नहीं।"

"मनुष्य के नाते तो मानता ही हूँ। यद्यपि मैं मनु-सन्तान नहीं हूँ।"

तब तक वे द्वार पर पहुँच गए। वहाँ द्वारपाल बैठा था। शिव समझ गया कि अब तो उनके आने की बात उनसे मिलने के पहले ही गंगा को विदित हो जाएगी। परन्तु उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब द्वारपाल ने शिव और पार्वती को आते देख, हाथ जोड़ शीश नवा प्रणाम किया और मार्ग छोड़ एक ओर हटकर खड़ा हो गया।

"तो तुम हमें जानते हो ?"

"हाँ, भगवन् ! आपकी भीतर प्रतीक्षा हो रही है।"

"ओह !" शिव द्वारपाल का मुख देखता रह गया। द्वारपाल ने आगन्तुक दम्पती के मुख पर विस्मय देखा तो कह दिया, "भीतर पितामहजी महाराज आए हुए हैं और मैं उनका ही सेवक हूँ।"

"ओह ! परन्तु पितामह किस कारण आए हैं ?"

"आपसे भेंट करने ही आए हैं। उनको विदित हो गया था कि आप यहाँ आ रहे हैं। इस कारण वह अभी, आधी घड़ी हुए, यहाँ पर पहुँचे हैं !"

अब तो शिव और पार्वती लम्बे-लम्बे पग भरते हुए राजप्रासाद की ओर चल पड़े।

भीतर गंगा के प्रासाद के बाहर ब्रह्माजी का विमान खड़ा था और पार्षद वहाँ खड़े थे। इनके समीप पहुँचते ही सब आदरयुक्त मुद्रा में मार्ग छोड़, खड़े हो गए। ऐसा प्रतीत होता था कि शिव और पार्वती को दूर से ही किसीने देखकर भीतर सूचना भेज दी थी। ये पति-पत्नी अभी राजप्रासाद में प्रविष्ट ही हुए थे कि गंगा और ब्रह्मा इनकी अगवानी करने के लिए प्रासाद के द्वार पर आ पहुँचे।

शिव और पार्वती ने ब्रह्माजी के चरण-स्पर्श किए तो ब्रह्माजी ने शिव को उठा गले लगाते हुए कहा, "बहुत देर कर दी है। मैं आधी घड़ी से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

गंगा और पार्वती दोनों गले मिल रही थीं। दोनों बहनें अति प्रसन्न थीं।

ब्रह्माजी ने शिवजी की बाँह में बाँह डाली और भीतर बैठकघर में ले गए। वहाँ सबसे पहले उनकी दृष्टि एक बालक पर पड़ी जो तीन वर्ष की वयस का प्रतीत होता था। बालक शिवजी महाराज की प्रतिलिपि ही था। परन्तु कुमार तो अभी एक वर्ष से भी कम वयस का ही था। वह बालक तो बैठकघर में ऐसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल-फिर रहा था कि मानो वह तीन वर्ष का हो चुका हो।

पार्वती ने संशय में बहन गंगा के मुख पर देखा तो उसने बता दिया, "यह इनकी कृपा का ही फल है।" और उसने शिवजी महाराज की ओर संकेत कर दिया।

"परन्तु इनकी कृपा हुए तो अभी एक वर्ष और आठ मास ही हुए हैं और यह···।"

बात ब्रह्माजी ने समझा दी। उन्होंने कहा, "यह केवल इनकी कृपा का फल ही नहीं। यदि कैलासपति के अपने प्रयास का फल ही होता तो यह अभी पालने में पड़ा हुआ ऊँ-आँ-ऊँ-आँ कर रहा होता। यह जहाँ अग्निदेव का फल है जिससे यह छः माताओं का दूध पीकर पचा सकता है, वहाँ यह पृथिवी की कृपा का फल भी है कि इसके शरीर में विकास पाने को स्थान है। इसका शरीर खाया-पीया आत्मसात् कर सकता है।"

"तो यह कुमार ही है?" शिवजी ने पूछा।

"हाँ। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि शीघ्र ही तारकासुर से आमना-सामना हो और उसको देवलोक का विध्वंस सम्पन्न करने से पूर्व ही पराजित किया जा सके।

"परन्तु उस भविष्य में होने वाले घोर संग्राम में अभी एक न्यूनता प्रतीत हो रही है।"

तब तक सब यथायोग्य आसनों पर बैठ गए थे। सबके सम्मुख दूध, मिष्टान्न स्वागतार्थ रखा जा चुका था। बात ब्रह्माजी ही कर रहे थे। वह कह रहे थे, "तारक को प्रत्यक्ष रूप से मैत्री का भाव प्रकट करते हुए और चोरी-चोरी सैनिक तैयारी आरम्भ किए पाँच वर्ष हो चुके हैं। मैं जब-जब भी देवेन्द्र से उसकी तैयारी की बात कहता था, वह यह कहता था कि तारक मित्र है। वह मित्रता का दम भरता है। कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि उसपर विश्वास न किया जाए।

"मुझे देवेन्द्र के अनुमान पर सन्देह था। इसी कारण मैंने नारद को उसके देश में भेजा था और वह उसका ठीक अनुमान लगाकर आया था। नारद का कहना था कि कर्म विचारों की उपज होते हैं। विचारों से कर्म पृथक् नहीं किए जा सकते। तारक तथा उसकी प्रजा के विचार शुक्राचार्य की देन हैं। शुक्राचार्य प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों को ही जगत् का संचालक मानता है। प्राकृतिक शक्तियाँ क्रिया-प्रतिक्रिया-मात्र ही होती हैं; परन्तु प्रकृति किसी क्रिया को आरम्भ करने वाली नहीं है। इस कारण जो उस प्रारम्भिक शक्ति के स्रोत की अवहेलना कर क्रिया-प्रतिक्रिया के जाल में फँस जाते हैं, वे सदा मिथ्या दिशा में चलने लगते हैं।

"शक्ति का आदिस्रोत परमात्मा है। वह शक्ति के प्रयोग की दिशा, काल और अवस्था का निश्चय करने वाला है। अतः उसके भाव और उद्देश्यों को समझे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना जो मनुष्य कर्म करता है वह प्रायः भूल कर मिथ्या मार्ग पर चल पड़ता है। यही शुक्राचार्य का शिष्य तारक कर रहा है।"

"परन्तु पितामह ! ये देवता लोग क्या कर रहे हैं ? अभी-अभी सूचना मिली है कि इन्द्र ने मिथिला में गौतम की पत्नी से दुराचार किया है और इस समय गौतम के शाप से पीड़ित अश्विनीकुमारों की चिकित्सा में है।"

"मैंने इन्द्र को डाँटा है और इस दुराचार का कारण पूछा है। इसपर वह कुछ युक्तियुक्त कारण तो बता नहीं सका। अपना स्पष्टीकरण उपस्थित करने का बहाना करता रहा।"

"पितामह ! ये देवता मनुष्य-समाज के साथ महान छलना खेल रहेहैं। इनकी सभ्यता का नाश अवश्यम्भावी है।"

"हाँ कैलासपति ! परन्तु तुम समझ नहीं रहे। मैं इन देवताओं की सभ्यता की रक्षा के लिए यत्न नहीं कर रहा। सभ्यता के विचार से कदाचित् असुरों की सभ्यता देवताओं से श्रेष्ठ है। परन्तु सभ्यता तो फल है। कभी किन्हीं कृत्रिम कारणों और परिस्थितियों में, ऋतु अनुकूल होने से फल स्वादिष्ट हो जाए तो पेड़ के मूल में दोष होने से वे श्रेष्ठ फल स्वादिष्ट नहीं रह सकते।

"मेरा अभिप्राय यह है कि संस्कृति विचार है। वे व्यवहार में मूल कारण होते हैं। व्यवहार को ही सभ्यता कहा जाता है। जब विचार मिथ्या हों तो किन्हीं बाहरी कारणों से सभ्यता भली दिखाई देने पर भी दुःखदायी होती है।

"देवताओं की संस्कृति का आधार ठीक है। ये मूर्ख वासनाओं के अधीन अपनी संस्कृति के विपरीत व्यवहार बना रहे हैं। यही कारण है कि ये मन से भले होते हुए भी कर्म से दुष्ट प्रतीत होते हैं।

"मैं तुम्हें एक अन्य उदाहरण देता हूँ। गंगा रानी के पश्चिमी द्वार पर एक मानव-नरेश व्रत रखे लेटा हुआ है। वह भी देवताओं के कर्म से दुःखी हो जीवन-मरण की बाजी लगाए हुए है।"

"पितामह ! इसकी क्या कथा है ? मैं भी उसे अत्यन्त हीन-दीन और दुर्बल अवस्था में देखकर आ रहा हूँ।"

"उसकी कथा यह है कि वह इक्ष्वाकुवंशीय अयोध्या के नरेश सगर का वंशज है। सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया था और अश्वमेध यज्ञ के विधि-विधान के विपरीत अश्व को भारतवर्ष के बाहर के देशों में भी भेजा था। इससे इन्द्र रुष्ट हो गया और उस अश्व को पकड़कर पाताल में ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम में छुपा दिया। कपिल मुनि को इसका ज्ञान नहीं था।

"सगर के पुत्र और सैनिक अश्व को खोजने लगे। पूर्ण पृथिवी को खोज डाला, परन्तु वह अश्व मिला नहीं। खोजते-खोजते उनको वह अश्व पाताल देश में कपिल की अश्वशाला में बँधा मिला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सगर के सैनिक और पुत्रों ने कपिल मुनि से पहले भी पूछा था कि उन्होंने महाराज सगर के यज्ञ का अश्व देखा हो तो बता दें। मुनिजी का सदा यही उत्तर रहा कि वह अश्व के विषय में कुछ नहीं जानते। किन्तु जब अश्व मुनिजी की अश्वशाला में ही बँधा मिला तो सगर के पुत्र मुनि को गालियाँ देने लगे। मुनिजी को क्रोध आ गया और उस क्रोध में उन्होंने उन सबको भस्म कर दिया।

"अब अश्व के साथ महाराज सगर अपने पुत्रों की भी खोज करने लगा। जब उसको यह पता चला कि उसके पुत्र कपिल मुनि के आश्रम में भस्म हुए पड़े हैं तो महाराज सगर ने मुनिजी की विनती कर पूछा कि ऐसा क्यों किया गया है?

"कपिल मुनि ने बताया कि एक दिन बहुत-से लोग उन्हें चोर, झूठा और ठग कहकर दुर्वचन प्रयोग करने लगे तो उन्होंने क्रोध में उन सबको भस्म कर डाला।

"सगर को सन्देह हुआ कि यह सब दुर्घटना भ्रम में हो गई है। किसी कारण से ही उसके पुत्रों ने मुनि को दुर्वचन कहे होंगे। उसे विदित था कि उसके पुत्र शील स्वभाव वाले और धर्मयुक्त व्यवहार रखने वाले थे। इस कारण मुनि से उनके दुर्व्यवहार का कारण पूछा। मुनिजी नहीं जानते थे।

"बाद में सगर को पता चला कि यज्ञ का अश्व मुनिजी की अश्वशाला में बँधा हुआ है। तब उसने अपना सन्देह बताया। मुनि ने इससे अपने को अनभिज्ञ बताया। सगर समझ गया कि यह सब कुछ भूल में हुआ है।

"सगर ने मुनिजी से अश्व वापस ले, अपना यज्ञ सम्पन्न किया और इस बात की जाँच की कि अश्व मुनिजी की अश्वशाला में कैसे पहुँच गया। यह बात जब प्रमाणित हो गई कि अश्व इन्द्र ने चुराकर बिना मुनिजी के ज्ञान के उनकी अश्वशाला में बाँध दिया था और सत्य ही मुनिजी को उसका ज्ञान नहीं था, तो सगर मेरे पास पहुँचा और इन्द्र के व्यवहार की आलोचना करने लगा

"साथ ही उसने यह बताया कि उसके पुत्रों की आत्माएँ मुनिजी के क्रोध से सन्तप्त अभी घोर नरक योनियों में पड़ी हुई हैं। वह मुझसे न्याय माँगने लगा। मैंने सगर को कपिल मुनि के पास भेजा और वह उनसे विनय-अनुनय करने लगा। मुनिजी ने कहा कि उनके शाप और क्रोध का निराकरण यह है कि सगर अपने पुत्रों के मोक्ष के निमित्त कोई ऐसा कार्य करे, जो महान लोक-कल्याण का हो।

"इतिहास में यह वर्णन मिलता है कि दृषद्वती, जो प्रमोदवन के नीचे जाकर भूमि में विलीन हो जाती है, किसी समय गंगा नदी कहलाती थी। यह उत्तरी भारत को सींचती हुई सागर में गिरती थी। कपिल मुनि ने यह कहा कि उसके पुत्रों की मुसीबत का कारण देवता हैं और देवताओं ने गंगा नदी चुराकर भारतवर्ष के बहुत बड़े भाग को वीरान किया हुआ है। यदि वह गंगा को पुनः भारतवर्ष में ले आएगा तो वह और उसके पुत्र पापमुक्त हो जाएँगे।

"सगर ने देवताओं की मिन्नत-समाजत की, परन्तु वे नहीं माने। उसने इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ घोर तपस्या कर गंगा के लिए प्रमोदवन से लेकर भारत के मैदानों तक का मार्ग बनवाया है, परन्तु देवता अपने क्षेत्र से उसे जाने नहीं देते।

"यह सब कुछ करते हुए सगर, अंशुमान और उनके कई बंशज मर चुके हैं। अब भगीरथ आमरण व्रत रखे हुए यहाँ पड़ा हुआ है।"

"परन्तु पितामह ! दीदी इसमें क्या कर सकती है?" पार्वती ने पूछ लिया।

"भगीरथ का विचार है कि गंगा देवी और मैं देवताओं का कार्य कर रहे हैं और यदि हम दोनों देवताओं पर दबाव डालें तो देवता विवश किए जा सकते हैं।

"एक बात और है। दृषद्वती जब गंगा थी, तब देवताओं ने इसकी कैलास-क्षेत्र में से दिशा बदली थी। भगीरथ समझता है कि यदि मैं और गंगा कैलासपति पर दबाव डालें तो महादेव अपने राज्य से गंगा का मुख मोड़ भारताभिमुख कर देंगे।

"अयोध्या के आचार्यों का मत है कि गंगा नदी के मानव-लोक में चले जाने से प्रलयकाल तक लक्ष-लक्ष मानवों का कल्याण होगा। इससे तब तक भगीरथ के पुरखाओं को स्वर्ग का वास मिलेगा।"

पार्वती ने पूछा, "पितामह ! आप देवताओं के लिए इतनी भाग-दौड़ कर रहे हैं, तब आप ही उनको यह आदेश क्यों नहीं देते ?

"प्रभु ! क्या सगर के अश्व को छिपाकर चोरी-चोरी मुनि कपिल की अश्वशाला में बाँध आना देवेन्द्र का अपराध नहीं था? उसके अपराध के लिए सगर-पुत्रों और अब उनके वंश वालों को पीड़ित करना क्या अन्याय नहीं है? आप आज्ञा दें तो यह सब एक क्षण में हो सकता है। साथ ही गंगा के द्वार पर पड़े नरेश को जीवन-दान मिल सकता है।"

"बेटी पार्वती ! मेरे पास किस बात का अधिकार है, जिससे मैं देवताओं को आदेश दे सकता हूँ ! मेरे पास न सेना है और न ही कोई ऐसे साधन हैं, जिनसे मैं इन देवताओं को सन्मार्ग दिखा सकूँ। एक बात और है। इस काल के देवताओं के पाप-कर्म के कारण दृषद्वती नदी को गंगा में परिणत करके मैं देवलोक से मानव-लोक में भेज दूँगा तो भविष्य में होने वाले देवता मुझे कोसते रहेंगे।

"मैं आज यहाँ इसी कारण आया हूँ कि गंगा द्वारा ही कोई ऐसा कार्य कराऊँ, जिससे मानसरोवर से निकलने वाली दृषद्वती गंगा हो जाए और फिर उसका बहाव भारतवर्ष की ओर हो जाए।

"गंगादेवी कह रही है कि ये सब परिवर्तन कैलासलोक में होने वाले हैं। बिना कैलासपति की स्वीकृति के कुछ भी नहीं हो सकेगा।

"सौभाग्य से शिव यहाँ आ गए हैं। अब तुम लोग ही कोई ऐसी योजना बनाओ, जिससे देवताओं का किया पाप-कर्म निःशेष हो जाए और सगर के पुत्र पुनः अपने पुण्य-कर्मों का फल पा सकें।"

शिवजी ने पूछा, "पितामह ! क्या अश्व को पकड़ लेना इन्द्र के अधिकार में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था ? इन्द्र के अतिरिक्त कोई अन्य नरेश भी तो यह कर सकता था। और फिर सगर अश्वमेध यज्ञ कर रहा था। इस यज्ञ की सीमा भारतवर्ष ही थी। उसने किस कारण अश्व को भारतवर्ष के बाहर देवलोक में भेज दिया ?"

"इस सब बात पर विचार-विमर्श हो चुका है। जब सगर तत्कालीन ब्रह्माजी के पास आया था तो सगर ने अपने कार्य का कारण बताया था।

"उसका कहना था कि वह भारतवर्ष और देवलोक को दो देश नहीं मानता। अश्वमेध यज्ञ राजनीतिक समर के लिए नहीं किया जाता। यह सांस्कृतिक ऐक्य का सूचक है। वेद धर्म की यज्ञ-परिपाटी को स्वीकार करने वाले सब देशों के ऐक्य का सूचक है। अश्व को केवल वे राजा लोग ही रोकते हैं, जो इस यज्ञ-परिपाटी को स्वीकार नहीं करते। देवता उनके यज्ञ की परिपाटी को मानते हैं। इस कारण अश्व को देवलोक में इन्द्र का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भेजा गया था। इन्द्र को सांकेतिक भेंट देकर उनके यज्ञ को आशीर्वाद देना चाहिए था।

"अश्व को पकड़ने का अभिप्राय यह था कि इन्द्र यज्ञ-प्रथा को नहीं मानता। तब सगर युद्ध की चुनौती देता और उसे विश्वास था कि वह देवलोक को विजय कर वहाँ के देवेन्द्र को पदच्युत कर किसी धर्मात्मा देवेन्द्र को वहाँ आसीन कर देता। अश्वमेध यज्ञ करते हुए देश-विजय करने का विचार नहीं होता। केवल वैदिक व्यवहार को चलन देने की बात होती है।

"इन्द्र ने अश्व को पकड़ा, परन्तु युद्ध से बचने के लिए छलना खेली। अश्व को कपिल महामुनि की अश्वशाला में और वह भी मुनिजी को बताए बिना बाँध दिया। यह तो महापाप था।"

अब पुनः पार्वती ने बातों में हस्तक्षेप करते हुए पूछा, "क्या महाराज सगर को आपके पास पहुँच विनय-अनुनय करने के स्थान पर देवलोक को विजय नहीं करना चाहिए था ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सगर व्यर्थ की डींग हाँक रहा था कि वह देवलोक को विजय कर सकता था ?"

ब्रह्माजी पार्वती की युक्ति सुनकर हँस पड़े। हँसते हुए बोले, "तत्कालीन ब्रह्मा यह जानते थे कि सगर में यह सामर्थ्य थी कि वह देवलोक की ईंट से ईंट बजा दे।

"मैं तो अब भी यह अनुभव करता हूँ कि भविष्य में होने वाले युद्ध में देवताओं की विजय भी भारतीयों के सहयोग के बिना नहीं हो सकती और यदि कहीं भारतवासी तारक की ओर से लड़ने के लिए तैयार हो गए तो देवताओं की पराजय निश्चित है। तब तो कदाचित् वैदिक संस्कृति का चिह्न ही मिट जाएगा।"

"तो पितामह ! बाहर बैठे नरेश की समस्या को सुलझा देना चाहिए। उसके पूर्वजों से देवताओं ने अन्याय किया था और उसका प्रतिकार कुछ तो देना ही चाहिए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो देवी पार्वती का यह कहना है कि दृषद्वती को गंगा के रूप में भारत भेज देना चाहिए ?"

"इसमें क्या हानि है ?" शिवजी ने सुझाव दिया, "हिमालय देश में वर्षा पर्याप्त होती है।"

"मैं गंगा से ही यह कहने आया हूँ कि वह शिवजी महाराज को कहकर मान-सरोवर से निकलने वाली दृषद्वती को भारतवर्ष का मार्ग खुलवा दें।"

"परन्तु मैं क्यों इनसे कहूँ और यह मेरा कहा क्यों मानेंगे ?" गंगा ने कहा।

"वह इस कारण कि आपने इनके पुत्र को जन्म दिया है, जो संसार में भारी कल्याण-कार्य करने वाला है।"

गंगा इसका अर्थ समझने के लिए शिवजी का मुख देखने लगी। शिवजी ने ब्रह्माजी के कथन का अर्थ समझने के लिए पूछा, "पितामह ! इन दोनों बातों का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? देवताओं, विशेष रूप में इन्द्र के पाप-कर्मों का और गंगा तथा मेरा दृषद्वती को भारतवर्ष में भेजने का ?"

"देखो कैलासपति ! सम्बन्ध यह है कि सगर की सन्तान भगीरथ को उसके आचार्यों ने यह विश्वास दिला दिया है कि उसके पूर्वजों की आत्माएँ अभी तक कपिल मुनि के शाप से सन्तप्त हैं।

"भगीरथ को यह विश्वास हो गया है कि गंगा देवताओं का महान् कार्य कर रही है और उसके कहने पर इन्द्रादि देवता अपने पाप-कर्म से मुक्ति पाने के लिए यह छोटी-सी बात कर देंगे। वे महादेव से कहकर दृषद्वती को भारत जाने के लिए मार्ग दे देंगे।"

"परन्तु पितामह ! मेरी समझ में नहीं आ रहा कि यह सब क्यों मानूँ ?"

"यह इसलिए कि यह तुम्हारे परिवार का लक्षण है कि वह लोक-कल्याण के लिए ही भूतल पर आया है। शिव-पद ही लोक-कल्याण का सूचक है। इस समय यह सहानुभूति का संकेत न केवल सामयिक लाभ देने वाला होगा, वरंच इसमें सहस्रों और लाखों वर्ष तक भविष्य में शिव की महिमा संसार में बनी रहेगी और वह आपके सब परिवार वालों के लिए स्वर्ग के द्वार खोलती रहेगी।"

अब पार्वती ने दयनीय दृष्टि से अपने पति की ओर देखकर कहा, "देव, मान जाइए।"

"क्या मान जाऊँ प्रिये ?"

"वही, जो दीदी गंगा कहे।"

गंगा ने पूछ लिया, "पार्वती ! मैं क्या और क्यों कहूँ ?"

"दीदी ! तुम्हारे कार्य से जहाँ एक ओर देवतागण तुम्हारा कहा मानेंगे, वहाँ देव, मेरा अभिप्राय है कि कैलासपति भी मान जाएँगे। इस कारण दीदी, ऐसा करो, जिससे एक महान् आर्य सम्राट् को जीवन-दान मिले। दूसरी ओर मनु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान पुनः देवताओं की सहयोगी हो जाए और तीसरा लक्ष-लक्ष भावी सन्तान तुम्हारे गुणानुवाद गाती रहे।"

"अर्थात् मानसरोवर के द्वार भारतवर्ष की ओर खोल दिए जाएँ?"

"हाँ; और तुम उन द्वारों की रक्षा के लिए कैलासलोक में चलकर रहो। वही तुम्हारा उचित स्थान है।"

"परन्तु तुम मेरी बहन हो! मैं तुम्हारी सौतन बनकर वहाँ कैसे रह सकूँगी?"

"तुम मेरी पूज्य हो। मुझे तुमसे ईर्ष्या नहीं होगी।"

"तथास्तु।" गंगा ने कहा।

ब्रह्माजी ने तुरन्त ही सब मुख्य-मुख्य देवताओं को गंगा के निवास-स्थान पर बुला लिया। साथ ही आज्ञा दे दी कि भगीरथ को उठाकर गंगा के प्रासाद के भीतर ले आओ और उसको अन्न देने का प्रबन्ध करो।

देखते-देखते वहाँ का वातावरण बदला। देवताओं का एक विशाल समारोह वहाँ हो गया और तब तक भगीरथ स्वस्थ हो अपनी योजना बताने लगा।

भगीरथ का कहना था, "यह मानसरोवर, जो बिन्दुसर भी कहलाता है, अभी भी सात नदियों का स्रोत-स्थान है। सिन्धु, शतुद्रा, सरस्वती, जम्बू, दृषद्वती, पावनी तथा नलिनी।

"दृषद्वती बहुत छोटी-सी नदी है और यह पर्वतों से नीचे उतर भूमि में ही विलीन हो जाती है। यदि देवलोक की गंगा इसमें छोड़ दी जाए तो दृषद्वती उत्तरी भारत भूमि को सागर तक अपने जल से हरा-भरा कर देगी। इससे जहाँ मेरे पूर्वजों का संकटमोचन होगा, वहाँ भारतवर्ष सदा के लिए देवताओं का कृतज्ञ रहेगा।"

जब देवताओं ने स्वर्गलोक की गंगा को दृषद्वती में छोड़ा जाना स्वीकार किया, तब भगीरथ 'जय गंगा' कहता हुआ बिन्दुसर की ओर चल पड़ा।

शिव ने गंगा को कैलासलोक में ले जाकर रखना स्वीकार कर लिया। इसमें ब्रह्माजी का एक प्रयोजन था। वह कुमार की शिक्षा-दीक्षा महादेवजी की देख-रेख में कराना चाहते थे।

: ६ :

कथा-काल से कई सौ वर्ष पूर्व की बात है। देवलोक में जलाभाव अनुभव किया गया। वहाँ के विद्वानों ने यह योजना बनाई थी कि बिन्दुसर से एक नदी निकाल कर देवलोक को ले जाई जाए। इसके लिए जब यत्न करने लगे तो हिमालय के राजा हिमवान ने इसमें आपत्ति की। बिन्दुसर से निकलने वाली सात नदियों में जल कम हो जाने की सम्भावना थी। इस विवाद पर दोनों देशों में युद्ध होने की सम्भावना होने लगी। इस युद्ध में कैलासपति शंकर देवताओं का पक्ष लेता। इस कारण हिमवान अपना पक्ष दुर्बल पाता था। जब ब्रह्माजी ने इस झगड़े में हस्तक्षेप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया तो हिमवान ने ब्रह्माजी को मध्यस्थ मान उनके निर्णय को स्वीकार कर लिया। ब्रह्मा ने कुछ व्यापारिक सुविधाएँ हिमाचल प्रदेश को दिलवाकर एक नदी बिन्दुसर से उत्तर की ओर ले जाने की स्वीकृति दे दी।

इस प्रबन्ध से हिमाचल प्रदेश को भारी लाभ हुआ था, परन्तु हिमाचल प्रदेश के दक्षिण में कोसल देश तथा उसके पड़ोसी देशों में सूखा पड़ गया था। उत्तर को ले जाने वाली नदी गंगा के चालू हो जाने पर दृषद्वती सूख गई थी और यह पहाड़ से उतरते ही मैदान में जाकर जलविहीन होने लगी थी।

अत: जब कपिल मुनि के हाथों सगर के पुत्रों की हत्या हुई तो कोसल राज्य के आचार्यों ने यह भविष्यवाणी कर दी कि कपिल मुनि के शाप के सन्ताप का निवारण तब ही होगा, जब देवताओं से गंगा का जल लेकर पुन: दृषद्वती में प्रवाहित किया जाएगा। सगर ने ब्रह्माजी के सम्मुख अपनी माँग उपस्थित कर दी। देवताओं ने इनकार कर दिया। सगर की मृत्यु के उपरान्त अंशुमान ने भी यही माँग जीवित रखी। अंशुमान ने देवताओं से लोहा लेने के लिए तैयारी करनी आरम्भ कर दी। उसने एक सौ अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिए तैयार कर ली। इससे तो देवता भड़क उठे और वे यह समझ कि देवलोक प्राकृतिक बाधाओं से सुरक्षित होने के कारण भारत के आक्रमण के सफल होने का भय नहीं, अंशुमान की माँग को नहीं मानते रहे थे।

परन्तु वर्तमान देवेन्द्र के काल में देवलोक में भोग-सामग्री के अत्यधिक प्रचार के कारण और विवाहादि के नियमों में बहुत सीमा तक छूट के कारण देवताओं में शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक पतन होने लगा तो अशुमान की सन्तान भगीरथ ने अपनी सैनिक तैयारी प्रबल कर दी। उसने उन प्राकृतिक बाधाओं को पार करने के साधन भी निर्माण करने आरम्भ कर लिए, जिनके कारण देवता अपने को सुरक्षित समझते थे।

दूसरी ओर दूर तारकासुर देवलोक और उसके समीपवर्ती देशों पर आक्रमण की तैयारी करने लगा था। मेरु पर अधिकार करना तारक के लिए लक्ष्य था। मेरु में न केवल अपार स्वर्ण-भण्डार था, वरंच अग्नि महाभूत (रेडियो एक्टिव ऐलिमेण्ट्स) का महान् भण्डार भी था। इससे अपार ऊर्जा की उत्पत्ति होती थी और छब्बीस सहस्र वर्ष में लगभग तेरह सहस्र वर्ष का शीतकाल सुगमता से पार किया जा सकता था। तारकासुर की योजना यह थी कि ब्रह्मलोक की यह ऊर्जा वह अपने देश में उठाकर ले आए और इन देशों को उजड़ जाने दे।

ब्रह्माजी का यह विचार था कि तारकासुर और देवताओं में युद्ध अनिवार्य है और यदि कहीं इक्ष्वाकु की सन्तान सूर्यवंशियों का गठजोड़ तारक ऐ हो गया तो पूर्ण भारतवर्ष के राज्य भी, जो उस समय सूर्यवंशियों के साथी थे, तारक की सहायता के लिए चल पड़ेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समस्या भगीरथ के सम्मुख भी आई थी। उसे तारक का प्रस्ताव मिला था कि यदि वह देवलोक और मेरु पर्वत के स्वर्ण और अग्नि-तत्त्व को उससे बाँटकर प्रयोग करने के लिए राजी हो जाए तो दोनों मिलकर देवलोक और उसके साथ अन्य राज्यों पर अधिकार कर लेंगे।

भगीरथ देवताओं से रुष्ट तो था, परन्तु वह देवताओं व ब्रह्मलोक को वैदिक संस्कृति का स्रोत एवं सहयोगी समझ तारक के प्रस्ताव को मान नहीं रहा था। इस के साथ उसके अपने मन्त्रीगण और लड़के इस बात पर बल दे रहे थे कि देवताओं जैसे हीनचरित्र तथा झूठ बोलने वालों के रक्षण से वैदिक संस्कृति की रक्षा नहीं, वरंच हानि होगी।

इस द्विविधा में फँसा हुआ भगीरथ देवलोक में जाने वाली नदी गंगा के समाधान के लिए तपस्या करने लगा था। उसने बिन्दुसर से गंगा का बहाव उत्तर से दक्षिण की ओर करने की पूरी योजना और तैयारी कर उस गंगा को दृषद्वती में डाल देने का प्रबन्ध किया हुआ था; परन्तु कैलासलोक का शासक इसमें बाधक था। वह अपने को देवताओं का साथी समझ, उनको हानि पहुँचाने वाली किसी भी योजना को मानने के लिए तैयार नहीं था।

इसी समय हिमवान की बड़ी लड़की के बिना विवाह के लड़का हो गया और उसकी जब पूर्ण कथा भगीरथ ने सुनी तो वह गंगाकुमारी के द्वार पर अनशन करने बैठ गया।

यह बात स्पष्ट ही थी कि भगीरथ की माँग युक्तियुक्त थी। गंगा का जल पहले दृषद्वती में ही आता था और पूर्ण उत्तरी भारत को सींचता हुआ सागर में गिरता था। जब से गंगा उत्तर पथगामिनी बनी थी, तब से ही भारतवर्ष का यह भाग ऊसर हो रहा था।

इसके अतिरिक्त देवताओं ने धोखे से भगीरथ के पूर्वजों को कपिल मुनि के विरुद्ध करा दोनों में झगड़ा उत्पन्न कराया था। इस कारण मनु-सन्तान सूर्यवंशियों में और देवताओं में चरमसीमा तक द्वेष पहुँचा हुआ था। भगीरथ चाहता था कि यदि गंगा नदी का प्रस्ताव देवता मान जाएँ तो दोनों देशों में सन्धि हो जाएगी और फिर दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी हो जाएँगे।

ब्रह्मा इस पूर्ण स्थिति से परिचित थे। इस कारण भगीरथ को जब छः मास के लगभग अनशन किए हो गए तो वह गंगा और शिव के समर्थन से देवताओं को गंगा नदी का जल भारतवर्ष को दे देने पर राजी करने के विचार से गंगा के निवास स्थान पर आए थे।

ब्रह्मा अपनी नीति में सफल हो गए। सूर्यवंशियों और देवताओं में सन्धि हो गई। गंगा का जल पुनः दृषद्वती में डालना स्वीकार हो गया। सूर्यवंशियों से तारक के विरुद्ध देवताओं की सहायता का वचन हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोध्या के सूर्यवंशियों का उस समय पूर्ण भारतवर्ष पर और फिर भारत से बाहर यवन क्षीर सागर एवं भूमध्यसागर के पूर्व स्थित देशों पर प्रभाव था। इस कारण देवताओं को इस सन्धि से तारकासुर से सुरक्षा का आश्वासन मिला।

इस प्रकार सन्धि करके भगीरथ तो स्वास्थ्य-लाभ कर बिन्दुसर पर बने बाँध को तोड़ने में लग गया, जिससे दृषद्वती का जल उत्तर पथगामी गंगा में जाता था। जब यह जल दृषद्वती में पड़ा तो दृषद्वती का नाम गंगा हो गया। भगीरथ के प्रयास से प्राप्त मानकर भागीरथी भी कहने लगे थे।

महादेव शिवजी के देश और घर में भी इस सब परिवर्तन का प्रभाव हुआ। कैलासपति के राजप्रासाद के ऊपर की छत के आगार पार्वती की बड़ी बहन गंगा को मिल गए और नीचे के आगारों में पार्वती रहती थी।

इस सब प्रबन्ध का प्रभाव वहाँ की धनी-मानी प्रजा पर ही हुआ। महादेव के मुख्य पार्षद सुधाकर के घर में पार्वती से विवाह के पूर्व हुए वार्तालाप की स्मृति हरी-भरी हो गई।

गंगा जब राजप्रासाद के ऊपर की छत पर आ अपने पुत्र कुमार के साथ रहने लगी तो इसकी चर्चा कैलासलोक में होने लगी। महाराज के मुख्य पार्षद सुधाकर की पत्नी उर्मिला से चर्चा चल पड़ी। उर्मिला का प्रश्न था, "यह जो राजप्रासाद की ऊपर की छत पर रहने लगी है, वह यहाँ किसलिए आई है?"

"यह अपने लड़के के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के लिए यहाँ आई है।" सुधाकर का उत्तर था।

"यह महारानीजी से अधिक सुन्दर है।"

"महाराज का विचार इसके विपरीत है।"

"तो फिर उसे लाकर अपने राजप्रासाद में किसलिए रखा है?"

"ब्रह्माजी के कहने पर।"

"यह महाराज की दूसरी पत्नी बनकर रहेगी।"

"तो फिर क्या हुआ?"

"हुआ यह कि अब इस देश के अन्य लोग भी दो और कदाचित् इससे भी अधिक पत्नियाँ रखेंगे।"

"तो रख लें। इससे मुझे और तुम्हें आपत्ति क्यों हो?"

"परन्तु घर-घर में कलह-क्लेश होगा। दो पत्नियों वाले सब घरों में ऐसा ही होता है।"

"मैंने यह बात महाराज से कही है और वे कहते हैं कि जो इतने मूर्ख हैं कि बिना सामर्थ्य के अधिक विवाह करेंगे तो वे नरक में जाने ही चाहिए। उनके लिए साक्षात् नरक का द्वार उनके घर में ही खुल जाएगा।"

उर्मिला ने बातों का सूत्र जारी रखते हुए पूछ लिया, "तो यह आपके महाराज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ख नहीं बनेंगे ?"

"उनकी सामर्थ्य अपार है। इस कारण उनके घर में ऐसी कथा दोहराई नहीं जाएगी।"

"मैं समझती हूँ कि इसकी नींव तो रखी गई है।"

"कैसे ?" सुधाकर ने पूछ लिया।

"पार्वती का लड़का है सुकेश और गंगा का लड़का है कुमार। दोनों बड़े हो रहे हैं। दोनों पिता की सम्पत्ति, मेरा अभिप्राय है राज्य के लिए लड़ पड़ेंगे।"

"यदि माताएँ न लड़ीं, तो उनके पुत्र क्यों लड़ेंगे ?"

"परन्तु सुकेश तो महाराज का पुत्र नहीं है।"

"हाँ। यह पता चला है कि लड़के के अपने माता-पिता यहाँ आए थे और अपना लड़का माँग रहे थे।"

"यह सब बात तुम्हें किसने बताई है ?"

"महारानीजी की एक सेबिका है माया। वह हमारी सेविका की बहन है। वह सब बातचीत, जो वहाँ होती है, बताती रहती है।"

"उसने और क्या बताया है ?"

"वह कह रही थी कि सुकेश का पिता लंकाद्वीप का राजा है। उसका नाम विद्युत्केश है। वह अपनी महारानी सालकण्टका को साथ लेकर आया था। महाराज तो उसके पुत्र को वापस कर देना चाहते थे, परन्तु छोटी रानी नहीं मानी। वह कहती थी कि उसका इस लड़के से स्नेह हो गया है। इस कारण वह नही मानी।

"अभी तो लंका-नरेश लौट गया है, परन्तु मैं इससे इस राज्य में वैमनस्य का बीज देखती हूँ।"

"मैं कल महाराज से इस विषय में पता करूँगा। सुकेश इस समय पाँच वर्ष का हो गया है।"

"परन्तु गंगा का पुत्र है तो तीन वर्ष का फिर भी वह सात वर्ष की वयस का प्रतीत हो रहा है। सुना है कि बहुत गति से शारीरिक विकास कर रहा है।"

अगले दिन राज्य के मुख्य पार्षद सुधाकर ने शिवजी महाराज से पूछ लिया, "महाराज ! क्या सुकेश आपकी सन्तान नहीं है ?"

"सुधाकरजी ! यह किसलिए पूछ रहे हैं ?" शिवजी ने कहा।

"सुना है कि कुछ दिन हुए, सुकेश के माता-पिता आए थे और अपना पुत्र वापस माँग रहे थे।"

"हाँ, वह लंकाधिपति है; परन्तु हमने यह बालक गन्धमादन पर्वत पर निस्सहाय पड़ा पाया था। इस कारण मैंने देने से इनकार कर दिया है।"

"तो वह मान गया है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"माना तो नहीं, परन्तु अभी वह चला गया है। फिर भी पुनः आने के लिए कह गया है। उसका एक दृष्टि से कहना ठीक ही है।"

"किस दृष्टि से कहना ठीक है ?"

"सुधाकरजी ! मैंने वहाँ अपना एक गण भेजकर पता किया है। उस गण का यह कहना है कि लंकाधिपति का नाम है विद्युत्केश। यह एक धर्मात्मा पिता का पुत्र है। इसके पिता का नाम प्रहृति था।

"दुर्घटना यह हुई है कि इसकी पत्नी सन्ध्या की रानी की लड़की है। सन्ध्या की रानी को उस लोक में वेश्या कहते हैं। विद्युत्केश की पत्नी वेश्या की लड़की होने से स्वभाव से सन्तान की अनिच्छा करती थी। इस कारण प्रसव कराने वह गन्धमादन पर्वत पर एकान्त स्थान पर चली गई। वहाँ उसने इस बालक को जन्म दिया और उसे मरने के लिए निर्जन वन में छोड़ अपने देश को लौट गई। बालक के पुण्यकर्मों के फल से मैं विमान में महारानीजी के साथ जा रहा था कि इस बालक के रोने का शब्द सुनाई दिया। हम इसका कारण जानने भूमि पर उतरे तो हमने इस बालक को रोते देखा। पार्वती का मन दया से द्रवित हो गया और वह उसे वहाँ से उठा लाई और उसके लालन-पालन का प्रबन्ध कर दिया।

"उस बालक को यहाँ रहते हुए पाँच वर्ष हो चुके हैं और अब महारानी उससे बहुत स्नेह अनुभव करती हैं। जब बालक के माता-पिता आए और उन्होंने बालक माँगा तो पार्वती जी ने उन्हें डाँटा और बालक देने से इनकार कर दिया।

"तब वे मेरे पास आए। मैं भी उनके व्यवहार से प्रसन्न नहीं हूँ और मैंने एक विकृत स्वभाव वाली स्त्री को बालक देने से इनकार कर दिया है।

"विद्युत्केश अश्रुपूर्ण आँखों से अपने राज्य के उत्तराधिकारी की याचना करता हुआ गया है। मैंने उसे पुनः आने की प्रेरणा दी है। मैं किसी प्रकार उस स्त्री और महारानीजी में समझौता कराना चाहता हूँ।"

"परन्तु महाराज ! उनको पता कैसे चला कि यही लड़का वह बालक है, जिसे इसकी माँ वन में छोड़ आई थी ?"

"उसने इसके शरीर में तब एक चिह्न देखा था और उस चिह्न की बात बताई तो वह ठीक निकली। महाराज विद्युत्केश को ज्योतिषियों ने बताया था कि बालक अभी जीवित है। उसने भारतवर्ष के कोने-कोने में इसकी खोज की। इस बालक के मिलने का इतिहास तो हमने कभी भी किसी से चोरी नहीं रखा। इस कारण जैसे दो और दो चार होते हैं, इसी प्रकार इस बालक के इतिहास और लक्षणों को देखकर यह जान लिया है कि वह उनका ही बालक है। उन्होंने महारानी पार्वती और मुझे भी विश्वास दिला दिया है कि यह उनका ही पुत्र है।"

सुधाकर ने कहा, "महाराज ! मेरा आग्रह है कि बालक उनको वापस कर दिया जाए और फिर उनसे किसी प्रकार का सम्पर्क न रखा जाए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों ?"

"मुझे एक भविष्यवेत्ता ने बताया है कि सुकेश और कुमार में भविष्य में कैलासलोक के आधिपत्य के लिए झगड़ा होगा और उसमें कैलासलोक विध्वंस हो जाएगा।"

"ऐसा कुछ नहीं होगा। सुकेश अपने देश में जाकर राज्य करेगा और जब तक जीवित रहेगा, महारानीजी से पुत्र-समान व्यवहार रखेगा। मैं यह भी जानता हूँ कि कुमार अपना जीवन-कार्य समाप्त कर हिमालय पर तपस्या के लिए चला जाएगा और यह देश बिना राजा के ही रहेगा।

"परन्तु यह अभी दूर की बात है। मैं और महारानी पार्वती अभी इस कलेवर में पाँच सौ वर्ष तक यहाँ शासन करेंगे। तब तक भूमण्डल की क्या अवस्था होगी, अभी नहीं बताई जा सकती।

"सुधाकरजी ! आप चिन्ता न करें। इस बालक से प्रजा को किसी प्रकार की हानि पहुँचने की संभावना नहीं है।"

सुधाकर को महाराज महादेव शिवजी की भविष्य के अन्धकार में देखने की सामर्थ्य पर बहुत विश्वास था। इस कारण वह सन्तुष्ट होकर चुप रहा। कार्य यथापूर्व चलने लगा।

किन्तु उर्मिला की भविष्यवाणी के अनुसार कैलासलोक में भी बहुपत्नीत्व-प्रथा विस्तार पाने लगी।

कैलासलोक में भी तो स्त्रियों की संख्या कम थी, परन्तु पड़ोस के देवलोक में इसका बाहुल्य था और वहाँ से स्त्रियाँ प्रव्रजन कर कैलासलोक में आने लगीं। परिणामस्वरूप कैलासलोक की जनसंख्या में भी वृद्धि होने लगी। उपज तो भूमि के अनुपात से ही बढ़ती और फलती-फूलती है।

: ७ :

इसी विषय पर लंका के राजप्रासाद में भी चर्चा हो रही थी। उन दिनों सागर के कई द्वीपों पर राक्षसों का राज्य था। मुख्य द्वीप लंका था। इसमें ही राक्षस राज्य की राजधानी थी; परन्तु अभी राजधानी पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं हुआ था। वहाँ के राजा और लोग समुद्र को ही अपनी राजधानी की प्राचीर समझ सुरक्षित अनुभव करते थे।

इस कारण राजभवन तो था, परन्तु किसी प्रकार का दुर्ग नहीं था। विशाल राजप्रासाद के अन्तःपुर में बैठे हुए वहाँ के शासक विद्युत्केश और उसकी पत्नी सालकंटका में बातचीत हो रही थी। दोनों कैलासलोक की यात्रा करके लौटे थे।

महारानी सालकंटका का कहना था, "बहुत लम्बी यात्रा की, परन्तु सब व्यर्थ।"

"मैं इसे व्यर्थ नहीं समझता।" विद्युत्केश का कहना था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या लाभ हुआ ?"

"यही कि तुम्हारे पुत्र के दर्शन किए हैं। उससे बातचीत भी की है। वह प्रतिभाशाली बालक है और उसको मैं जब एक बार यहाँ ले जाऊँगा तो यहाँ की जलवायु, यहाँ के सागर का दृश्य तथा हमारी लक्ष-लक्ष सेना को देखकर वह यहाँ रहने के लिए तैयार हो जाएगा। आवश्यकता यह है कि उससे सम्पर्क रखा जाए और कभी उसे निमन्त्रण देकर यहाँ भ्रमण करने का अवसर दिया जाए।"

"मैं इसमें कुछ लाभ नहीं समझती।"

"तो क्या किया जाए ?"

"आप एक नया विवाह कर सन्तान उत्पन्न करिए।"

"नहीं देवी ! ऐसा नहीं होगा। मैं किसी सन्ध्या की रानी का पुत्र नहीं हूँ। मैंने विवाह के समय तुम्हें वचन दिया था कि मैं अन्य किसी स्त्री का पत्नी के रूप में मुख नहीं देखूँगा।"

"ये सब व्यर्थ की बातें हैं। आखिर आपने मेरे सम्मुख ही तो वचन दिया था और अब मैं ही कह रही हूँ कि आप दूसरा विवाह कर लीजिए।"

"नहीं देवी ! मैंने परमात्मा को साक्षी रखकर वचन दिया था। वचन तुम्हारे विषय में अवश्य था, परन्तु था वह परमात्मा के सम्मुख। इस कारण मैं इस वचन को भंग नहीं कर सकता और फिर मैं तुम्हारे बालक को देखकर उसपर रीझ गया हूँ। वह अति सुन्दर, बलिष्ठ, बुद्धिमान बालक है। मैं उसे यहाँ लाकर यहाँ का राज्य उसके हाथ में सौंपकर देह-त्याग करूँगा।"

सालकंटका मौन हो गई। वह अपने पति के दृढ़ संकल्प को जानती थी। इस कारण अब वह पति से प्रतिवर्ष कैलास-यात्रा के लिए आग्रह करने लगी।

धीरे-धीरे सुकेश को भी ज्ञात हो गया कि उसके वास्तविक माता-पिता पार्वती और शिवजी महाराज नहीं हैं। उसके माता-पिता सालकंटका और विद्युत्केश हैं।

शिवजी महाराज भी लंका-नरेश से मैत्री के सम्बन्ध रखना चाहते थे। वह अब यह भी देख रहे थे कि असुरराज तारक से युद्ध अवश्य होगा और एक भयंकर युद्ध होने वाला है, जो कदाचित् दस-बीस वर्ष चलेगा। उस युद्ध में भूमण्डल के सब राज्य दो भागों में बँट जाने वाले हैं। इस कारण वह चाहते थे कि विद्युत्केश देवताओं के पक्ष में युद्ध करने न भी आए तो भी वह विपरीत पक्ष में न जा सके।

इस कारण महादेव विद्युत्केश के प्रतिवर्ष आने को पसन्द करता रहा; परन्तु इसका परिणाम जहाँ यह हुआ कि सुकेश का स्नेह अपने माता-पिता से बढ़ने लगा, वहाँ यह भी होने लगा कि विद्युत्केश देवताओं के पक्ष से सहानुभूति रखने लगा था।

सुकेश पन्द्रह वर्ष का था कि विद्युत्केश ने सुकेश को अपने राज्य लंका में आने का निमन्त्रण दे दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक पन्द्रह वर्ष के युवक के मन में देशाटन करने की उत्कट इच्छा होनी स्वाभाविक थी। वह अभी तक हिमाचललोक, देवलोक और ब्रह्मलोक में जाता रहा था। इन देशों में बहुत उच्चकोटि की तकनीकी उन्नति देख चुका था। अब वह कुछ उष्ण देशों में भी जाना चाहता था। इस कारण विद्युत्केश के निमन्त्रण पर वह माता पार्वती के पास पहुँचा और बोला, "माताजी ! माता, लंका की महारानी जी, ने मुझे अपने देश में दो मास के भ्रमण का निमन्त्रण दिया है।"

"हाँ। मुझे भी उन्होंने कहा है। मैंने तुम्हारे पिता महादेवजी से इस विषय पर बातचीत की है। वह तुम्हें अपना विमान देंगे, जिससे तुम भलीभाँति भ्रमण कर सको और अधिक से अधिक स्थानों को देख सको। बताओ, कब जाना चाहते हो ?"

"लंकाधिपति का कहना है कि अगहन से माघ मास तक भ्रमण करने के लिए बहुत अच्छे हैं।"

"तो ठीक है। तुम तैयारी करो और जाओ, भ्रमण कर आओ।" परिणामस्वरूप सुकेश दो दिन में ही दक्षिण द्वीपों पर भ्रमण करने के लिए तैयार हो गया। महादेवजी ने अपना एक विमान लड़के को दिया, जिससे वह दो मास में अधिक से अधिक स्थानों का दर्शन कर सके।

इस समय कुमार तेरह वर्ष की वयस का हो चुका था, परन्तु वह उन्नीस-बीस वर्ष का परिपक्व युवक दिखाई देता था। अभी से वह योग्य शिक्षकों से सेना के संचालन का ढंग और युद्ध-विद्या को सीख रहा था। इन्द्र, वरुण इत्यादि देवता इसकी शिक्षा-दीक्षा में रुचि ले रहे थे।

इस समय भूमण्डल के असुर-राज्य एक हो गए थे। असुर का अभिप्राय उन लोगों से था जो इस संसार को प्रकृति का ही प्रपंच मानते थे। वे जगत् को घटनावश निर्मित मानते थे, जिसमें पशु-पक्षी भी घटनावश बन गए थे।

इन अनीश्वरवादियों के विचार से कोई बनाने वाला अथवा बने को भोगने वाला नहीं था। जिसका वश चले, वह जी सकता था और सुख-भोग कर सकता था।

तारक अपने देश के आसपास के राज्यों का एक संघ बनाकर स्वयं उनका नेता बन गया था। इस समय उसके अधीन पाँच सहस्र अक्षौहिणी सेना थी और जहाँ भी वह जाता था, उसके सैनिकों को जो कुछ हाथ लग जाता, वे उन्हें आत्मसात् कर लेते। इसका परिणाम यह हो रहा था कि जब तारक के सैनिक किसी देश में जाते थे, वहाँ भवनों के खण्डहरों के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता था।

क्षीर सागर का क्षेत्र सर्वथा उजड़ गया था। पश्चिम दिशा का लोकपाल विष्णु अल्पवयस्क था और तारक की सेना का टिड्डी दल वहाँ चढ़ आया था। परिणामस्वरूप वहाँ के सब अस्त्र-शस्त्रों के साथ देवता लोग पूर्व देशों में चले आए थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं से खाली किए देश में असुर लोग स्वयं बस जाते थे और वहाँ अपने ढंग से नवनिर्माण करते थे ।

जब क्षीर सागर देश पर अधिकार कर लिया गया तो देवताओं में हलचल उत्पन्न हुई । तारक भी समझ गया कि पूर्व के द्वार पर उसका अधिकार हो गया है और अब वह विशाल पूर्वाञ्चल पर किस ओर से अधिकार जमाना आरम्भ करे, यह सोचना है । एक कुशल सैनिक की भाँति वह सीधा आगे बढ़कर अपने अगल-बगल वालों को अपने देश से सम्बन्ध-विच्छेद करने का अवसर देना नहीं चाहता था । इस कारण उसने अपने राजदूत लंकादि द्वीपों और भारतवर्ष के राजाओं के पास भेजे ।

जब तारक का राजदूत लंका में पहुँचा तो सुकेश भी वहाँ भ्रमण के लिए गया हुआ था । तारक का राजदूत जब विद्युत्केश से बातचीत करने आया तो सुकेश वहाँ उपस्थित था ।

तारक के राजदूत का कहना था, "देवता लोग चरित्रहीन होने से स्वयं अपने को जीवित नहीं रख सकते । इस कारण यदि उनकी सहायता अन्य देश नहीं करेंगे तो कम से कम नर-रक्त बहाकर देवलोक विजय हो जाएगा ।"

विद्युत्केश का कहना था, "परन्तु जिसे तुम लोग चरित्रहीनता कहते हो, उसे ही तो तुम स्वयं व्यवहार में लाते हो । अन्तर केवल नाम का है । तुम देवताओं की चरित्रहीनता को अपने देश में स्वतन्त्रता के नाम पर व्यवहार में लाते हो । क्या नाम बदलने से काला श्वेत हो जाता है ?"

राजदूत का प्रश्न था, "महाराज ! किस बात को आप चरित्रहीनता कहते हैं, जो हम असुरों में भी है ?"

"जिसको तुम देवताओं में चरित्र की शिथिलता कहते हो ।"

"मैं तो वहाँ के देवेन्द्र की दूसरों की पत्नियों से धोखाधड़ी से सम्बन्ध बनाने की बात कह रहा हूँ ।"

"और तारक के देश में यही बात अधिकार मानकर पुरुष और स्त्रियाँ करते हैं । वहाँ पुरुष-स्त्री का सम्बन्ध बनना अथवा टूटना कथन-मात्र से होता है, अर्थात् देवता लोग जिसे बुरी बात मानकर चोरी-चोरी करते हैं, वही बात आप एक अधिकार मानकर प्रत्यक्ष रूप में करते हैं ।

"तारक ने अपने पिता की हत्या करके पिता की सबसे छोटी रानी को अपनी पत्नी बना लिया था और अपने मन्त्री निषाद की लड़की को दो मास तक अपने राजप्रासाद में पत्नी के रूप में रखकर छुट्टी दे दी थी । बताओ, क्या यह मेरी सूचना असत्य है ?"

राजदूत का कहना था, "महाराज ! यह अपने-अपने देश की प्रथा है । हमारे देश में स्त्री भूमि मानी जाती है । जैसे यहाँ के लोग भूमि के लिए युद्ध और हत्याएँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, वैसे ही हम स्त्रियों के लिए भी करते हैं। साथ ही खेत बंजर हो जाने पर छोड़ दिए जाते हैं।"

"तो फिर तुम देवताओं की चरित्रहीनता की बात क्यों कहते हो ? केवल तुम हमें अपने पक्ष में करने लिए ऐसा कहते हो ?"

"परन्तु महाराज ! वे बहुत दुष्ट हैं।"

"उसका भी कोई उदाहरण दे दो। हमारे ज्ञान में उन्होंने आज तक किसी दूसरे के देश पर आक्रमण नहीं किया। किसीके देश को उजाड़ा नहीं है। सबसे बड़ी बात यह है कि अपने महान विद्वान् पितामह के कहने पर स्वर्ग-पथगामी गंगा को दक्षिण-पथगामी होने की स्वीकृति दे दी है। इससे उनके अपने देश का एक क्षेत्र सर्वथा ऊसर और अन-उपजाऊ हो गया है। परन्तु जब वे माने तो गंगा अब भारत को हरा-भरा कर रही है।"

"वह तो उन्होंने अपनी दुर्बलता देखकर ऐसा किया है।"

"किसी कारण से भी हो। यह हुआ है और बिना युद्ध के हुआ है। केवल बात-चीत द्वारा ही हुआ हैं। न तो भारतवासियों ने अपनी नदी को वापस लेने के लिए युद्ध किया था और न ही देवता अपनी हानि को देखकर भारतवासियों के साथ युद्ध कर रहे हैं। ऐसे वचन पालन करने वालों के साथ मित्र बनकर रहना मुझे लाभदायक लग रहा है।"

"मैं अपने महाराज की ओर से यह जानने के लिए आपके पास आया हूँ कि आप हमारे देवलोक-विजय में तटस्थ रहने का क्या मूल्य माँगते हैं ?"

सुकेश, जो पिता के समीप बैठा राजदूत से हो रहे वार्तालाप को सुन और समझ रहा था, बोल उठा, "तुम्हारे राजा भला कार्य करने का भी मूल्य देते हैं ?"

"देखो राजकुमार !" राजदूत का कहना था, "संसार में भला और बुरा कुछ नहीं। इसमें स्वहित और परहित की बात ही विचारणीय होती है। जो स्वहित में है, वह भला कहा जाता है और जो परहित में हो, वह बुरा माना जाता है। इस कारण अपने निष्पक्ष रहने के लिए आप क्या मूल्य चाहते हैं ?"

विद्युत्केश ने मुस्कराते हुए कहा, "आप ही बताइए कि आपके महाराज मुझे घर पर बैठे रहने के लिए क्या देना चाहते हैं ?"

"देखिए महाराज ! यदि आप इस भावी युद्ध में चुपचाप घर बैठे रहें, तो आपको क्या-क्या लाभ होंगे, वे मैं आपको बता सकता हूँ।

"प्रथम यह कि आपके लाखों सैनिकों की हत्या, जो युद्ध में होने वाली है, नहीं होगी। दूसरा यह कि महाराज तारक से आपकी मैत्री होगी। सामर्थ्यवानों के साथ मित्रता से भविष्य में आप सुरक्षित रहेंगे। तीसरा, यदि आप इस युद्ध में मौन रहें तो क्षीर सागर का तटवर्ती देश आपको मिल जाएगा। वहाँ का शासक इस समय तारक है। वह पूर्ण जम्बू द्वीप पर अपना शासन जमा रहा है। उस ओर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भाग क्षीर सागर तटवर्ती देश का शासन आपको दिया जा सकेगा।"

"वहाँ तो आदिकाल से विष्णु का शासन चला आता है।"

"वह बिना युद्ध किए भाग गया है। इस भाग जाने से उसका अधिकार नहीं रहा कि वह वहाँ का शासक कहलाए। देखिए महाराज! हम यह मानते हैं कि भूमि और स्त्री बलशाली की सम्पत्ति होती है, और बलशाली का अधिकार है कि यदि उसके पास अपने प्रयोग से अधिक हो जाए तो अपने मित्रों में बाँट दे। आदिकाल से यह प्रथा चली आती है।"

"और वहाँ की प्रजा?"

"उसे हमने निःशेष कर दिया है। अब वहाँ न प्रजा है और न प्रजा की कुछ भी सम्पत्ति। केवल उर्वरा भूमि है और वह एक युवा स्त्री की भाँति आपको भेंट में मिल जाएगी। आप उसको सन्तानयुक्त कर सकते हैं।"

सुकेश ने पुनः वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "अथवा पिताजी को आप एक विधवा युवती, जिसके पति की आपने हत्या की है, भेंट दे रहे हैं?"

"कुमार! आप ठीक समझे हैं। वह स्थान एक अति सुन्दर स्त्री के समान है।"

सुकेश ने इस उपमा को सुन, घृणा से कहा दिया, "हम इस प्रकार के संयोग को बलात्कार कहते हैं। हम यह पाप नहीं करेंगे।"

"हमारे महाराज सुन्दर युवा स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न करना पुण्यकार्य मानते हैं।"

"देखो राजदूत महोदय! हमारे और तुम्हारे महाराज के दृष्टिकोण में अन्तर है। हमारी मैत्री और किसी भी कार्य में सहयोग नहीं हो सकती, क्योंकि जिसे हम रात मानते हैं, उसे आप दिन समझते हैं।

"इससे भी एक अधिक महत्त्व की बात तुम्हें बताता हूँ। वह क्षेत्र जम्बू द्वीप का द्वार है और तुम्हारे महाराज जम्बू द्वीप पर अधिकार जमाना चाहते हैं। उनकी सेनाएँ उसी द्वार से आने के कारण सेनाओं का आना-जाना बना रहेगा। हम अपने राज्य में किसी दूसरे की सेनाओं को आने नहीं देते। इस प्रकार तुम्हारे महाराज जम्बू द्वीप में अधिकार नहीं रख सकेंगे।"

"आप अपने मित्र की सेनाओं को भी वहाँ से गुजरने नहीं देंगे?"

"अपने पिता का हत्यारा भी क्या किसी का मित्र हो सकता है?"

विद्युत्केश राजदूत से सुकेश के युक्तियुक्त वार्तालाप को सुन बहुत प्रसन्न था। वह समझ रहा था कि कैलासलोक में शिक्षा का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध है। सुकेश के वार्तालाप के ढंग को सुन वह सुकेश को अपने ही देश में रख लेने की इच्छा करने लगा था।

सुकेश को वहाँ के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य और सुन्दर युवतियाँ तथा वहाँ के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य भोग-प्रसाधन दिखाए गए और उनका भोग कराया गया।

सुकेश की इच्छा हो गई कि वह अब लंका में ही रहेगा, परन्तु वह पार्वती का स्नेह और सेवा-सुश्रूषा नहीं भूला था। अतः उसने कहा, "पिताजी ! कैलास-लोक वाली माताजी से पूछकर मैं यहाँ आऊँगा।"

राजदूत तो निराश होकर लौट गया।

: ६ :

तारक की ओर से इसी प्रकार के प्रस्ताव भारत के नरेशों के सम्मुख भी रखे गए। तब तक भारतवर्ष की सेना यवन देश को प्रस्थान कर चुकी थी। यवन देश की पश्चिमी सीमा क्षीर सागर से लगती थी। यह सम्भावना थी कि क्षीर सागर पर अधिकार करने के उपरान्त यवन देश पर अधिकार किया जाएगा। वैसे क्षीर सागर से सीधा देवलोक पर आक्रमण किया जा सकता था, परन्तु भारतवर्ष के नरेशों ने इससे पूर्व अपने देश पर आक्रमण की सम्भावना समझकर अपनी रक्षा के लिए यवन देश में सेनाएँ भेज दीं। यवन देश ने इस सहायता का स्वागत किया। वह अकेला तारक और उसके साथियों का विरोध करने में अपने को अशक्त पाता था।

तारक का दूत भारतवर्ष के नरेशों से यही कहने आया था कि उसका विचार भारतवर्ष पर आक्रमण करने का नहीं है।

तक्षशिला में भारत के नरेशों और तारक के दूत में बातचीत हुई। भारत के नरेशों का प्रवक्ता इक्ष्वाकुवंशीय महाराज ककुत्स्थ था। ककुत्स्थ से जब तारक के राजदूत ने अपने महाराज का सन्देश दे दिया तो ककुत्स्थ ने कहा, "तुम्हारे महाराज ने आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व नारदजी को यह वचन दिया था कि उसकी देवलोक से किसी प्रकार की शत्रुता नहीं है किन्तु आज उसने देवलोक के पश्चिम के लोकपाल को मार भगाया है !"

"पश्चिम दिशा का लोकपाल बालक था और शासन उसके मन्त्रिगण करते थे। वे अपने हित में ही शासन कर रहे थे। इस कारण उनको हटाने का यत्न किया गया था।"

"परन्तु लूटा-पीटा तो वहाँ की जनता को है। मन्त्रिगण तो अपना धन-सम्पत्ति बटोरकर चले आए हैं।

"इसका अभिप्राय तो यही है कि तारक का विचार वहाँ की प्रजा के विपरीत था।"

तारक के राजदूत ने कहा, "यदि भारत-नरेश तारक के देवलोक पर आक्रमण में बाधा खड़ी न करें तो महाराज तारक यवन देश भारत के नरेशों को परस्पर बाँट लेने की स्वीकृति दे देंगे।"

"परन्तु यवन देश तो हमारा मित्र है। उसको हम क्यों अपने में बाँट लेंगे ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह इस कारण कि आप हमारे महाराज के अभियान का विरोध नहीं करेंगे।"

"परन्तु देवलोक इत्यादि देशों पर तारक के राज्य को हम अपने से शत्रुता मानते हैं।"

"तब तो तारक महाराज को पहले भारत की ईंट से ईंट बजा देनी होगी।"

"हाँ। हम यह नहीं चाहते। हमने परस्पर यह निश्चय किया है कि देवलोक के शासन ने आदिकाल से आज तक भारतवर्ष पर आक्रमण नहीं किया। इससे इस भले राज्य की हम रक्षा करेंगे।"

तारक का यह प्रयास भी विफल रहा। इस समय भारतवर्ष की सेना संगठित होकर क्षीर सागर देश पर आक्रमण की तैयारी कर रही थी। यह तारक जानता था। इस कारण उसने देवताओं के प्रत्याक्रमण तक्षशिला से लौटते ही यवन देश पर आक्रमण की दुन्दुभि बजा दी और दोनों सेनाओं की हरियावल में छुट-पुट झड़पें होने लगी थीं।

इस समय लंका और उसके साथ समुद्र द्वीपों के शासक विद्युत्केश ने अपनी समुद्री नौकाओं द्वारा एक विशाल सेना क्षीर सागर देश पर आक्रमण के लिए भेज दी। इसी समय शिवकुमार भी देव सेना को लेकर क्षीर सागर-क्षेत्र को चल पड़ा था।

तारक स्वयं को चारों ओर से घिर गया अनुभव करने लगा था। उसने असुर देशों से और सेना बुलवा ली। एक सौ एक स्थानों पर युद्ध होने लगा। दक्षिण सागर से आरम्भ कर उत्तर सागर तक युद्धक्षेत्र बन गया। कुमार उत्तरी सागर से क्षीर सागर के उत्तरी तट तक युद्ध का संचालन कर रहा था। यवन देश में तारक का विरोध भारतीय नरेश कर रहे थे और लंका तथा आसपास के द्वीपों की सेनाएँ सागर से क्षीर सागर देश पर आक्रमण करने लगी थीं।

ब्रह्माजी की योजनानुसार यह पिछले सत्रह-अट्ठारह वर्ष की तैयारी का परिणाम था।

कुमार ने जब बढ़ रही असुर सेना को रोक दिया तो तारक को चुनौती भेज दी कि लक्ष-लक्ष निरपराध जनता की हत्या करने की अपेक्षा वह स्वयं मुझ अकेले से द्वन्द्व-युद्ध कर ले। जो जीत जाए, वह इस क्षेत्र का शासक हो जाए।

तारक का उत्तर था, "मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। तुम अभी अविवाहित युवक हो। तुमसे मैं शारीरिक बल में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। इस कारण जो बात मुझमें श्रेष्ठ है, उसीसे मैं तुम्हारा विरोध करूँगा।"

तारक का अभिप्राय था कि वह महान् संगठनकर्ता है और उस योग्यता से ही वह इस युवक का विरोध करेगा।

घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। ऐसी सूचना थी कि नित्य एक-आध लक्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैनिकों से कम की हत्या नहीं हो रही थी, परन्तु दोनों ओर से नए-नए सैनिक युद्धभूमि में आ डटते थे।

इस समय विद्युत्केश देवताओं के कार्य के लिए लंका की सेनाओं का नेतृत्व कर रहा था। यह सेना समुद्र की ओर से क्षीर सागर देश के तट पर उतरकर क्षीर सागर देश पर अधिकार पाने का यत्न कर रही थी। यवन देश से भारत-वर्षीय सेनाएँ क्षीर सागर क्षेत्र में जा पहुँची थीं और उत्तर में देव सेनाएँ कुमार के नेतृत्व में पूर्ण मोर्चे पर छा गई थीं और असुरों को धीरे-धीरे पीछे हटा रही थीं।

दोनों पक्षों के पास दिव्यास्त्र थे, परन्तु वे दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं कर रहे थे। दोनों डरते थे कि यदि इन अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ हुआ तो युद्ध शीघ्र समाप्त हो जाएगा, परन्तु अपने ही शस्त्रास्त्रों से अपने ही सैनिकों की हत्या हो सकती है। इस कारण दोनों पक्ष दिव्यास्त्रों के रखते हुए भी इनका प्रयोग नहीं कर रहे थे।

शिव महादेव भी अपने गणों के साथ युद्धभूमि में अपने पुत्र के नेतृत्व में युद्ध कर रहा था।

एक अवसर पर महादेव शिव और इन्द्र दोनों एक ही स्थान पर युद्ध करते-करते जा पहुँचे। दिन-भर युद्ध होता रहा। दोनों ने कई सहस्र असुरों का संहार उस दिन किया था। जब रात हो गई और शवों के ढेरों के बीच दोनों देवता रात होने पर अपने-अपने विमानों पर सवार हो शिविर को जाने लगे तो इन्द्र ने कहा, "भैया! कैलास को जा रहे हो?"

"हाँ दादा!"

"मैं इस घृणित कार्य से ऊब गया हूँ, आज मेरी अमरावती जाने में रुचि नहीं है।"

"तो दादा! आओ, मेरे साथ, रात कैलासलोक में ही व्यतीत कर लेना। प्रातः फिर यहीं आना होगा। हमारे नेता का यही आदेश है।"

देवेन्द्र भी यही विचार कर रहा था। वास्तव में वह शीघ्रातिशीघ्र किसी विश्राम के स्थान पर पहुँचकर स्नानादि से निवृत्त हो कुछ घण्टे विश्राम करना चाहता था, परन्तु महादेव दो वर्ष से हो रहे इस युद्ध के विषय में विचार करना चाहता था। वह मन ही मन व्यर्थ के नर-संहार से ऊब गया था।

अतः इन्द्र अपने साथियों को अपने विमान में देवलोक को भेजकर स्वयं महादेव के विमान में जा बैठा। वहाँ से आधी घड़ी का ही मार्ग था। मार्ग में महादेव ने अपने मन की बात नहीं की। वह चाहता था कि अपने भवन में रात का भोजन करके विश्राम से पहले विचार करेगा और यदि कोई नई बात सूझ गई तो अपने सेनापति कुमार को बताएगा।

परन्तु कैलास राजभवन पर पहुँचे तो कुमार का विमान वहाँ पहले ही पहुँचा हुआ था। सुकेश भी अपने विमान पर वहाँ आया हुआ था। इन्द्र ने इन दोनों के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमानों को भवन के बाहर खड़े देखा तो कहा, "मैं समझता हूँ कि यहाँ आना ठीक नहीं हुआ।"

"क्यों ?" महादेव ने पूछ लिया।

"मैं तो शीघ्रातिशीघ्र विश्राम के लिए यहाँ आया था।"

"और दादा ! मैं एक आवश्यक परामर्श के लिए तुम्हें यहाँ लाया था।"

"तो क्या वह परामर्श इन दोनों कुमारों की उपस्थिति में हो सकेगा ?"

"क्यों नहीं ! दोनों बुद्धिशील व्यक्ति हैं और कोई भी युक्तियुक्त बात कही जाए तो उसे सुनते हैं और फिर उस पर विचार करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।"

"मैं ऐसा नहीं समझता था। मैं यह समझ रहा था कि युवक क्षत्रिय स्वभाव रखने के कारण लड़ते-लड़ते आगे बढ़ना ही जानते हैं। इनको नीतिशास्त्र का ज्ञान नहीं और ये हमारी बात सुनेंगे नहीं।"

"नहीं दादा ! ऐसी कोई बात नहीं। सुकेश कुछ हठी स्वभाव का हो रहा है, परन्तु कुमार तो सदा सुनने और अपने मन की विचारित बात सुनाने के लिए तैयार रहता है।"

"परन्तु यह युद्ध-योजना तो पितामह की है न, और कदाचित् पृथ्वी पर बढ़ गई जनसंख्या को कम करने के लिए ही है। पितामह ने युद्ध का यह चित्र निर्माण किया है। मेरा वज्र तो सूर्योदय से सूर्यास्त तक हत्याएँ करता-करता कुन्द हो रहा प्रतीत होता है।"

"परन्तु मेरा त्रिशूल तो ज्यों-ज्यों असुरों का रक्त-पान करता जाता है, अधिकाधिक तीखा और कार्यकुशल होता जाता है।"

"अर्थात् इन मनुष्यों की हत्या करने से तुम्हारे उत्साह में वृद्धि होती है।"

"हाँ दादा ! मेरा यही अभिप्राय है, अन्यथा यह त्रिशूल तो पिछले एक सौ वर्ष से हाथ की शोभामात्र ही बना हुआ था। यह स्वयं कुछ भी नहीं करता।"

"मैं तो इस हत्याकाण्ड को व्यर्थ समझने लगा हूँ।"

इस समय भीतर से पार्वती, गंगा, सुकेश और कुमार बाहर आ गए। उन्होंने विमान के वहाँ पहुँचने की गड़गड़ाहट सुनी थी, परन्तु जब किसी को भीतर आते नहीं देखा तो कारण जानने के लिए बाहर निकल आए थे। भीतर से आए प्राणियों ने महादेवजी के साथ देवेन्द्र को आया देखा तो विस्मय प्रकट करते हुए आगे बढ़कर पूछा, "तो आज आप देवेन्द्रजी को भी यहाँ ले आए हैं ?"

यह प्रश्न सुकेश का था। पूर्व इसके कि महादेव अथवा देवेन्द्र कुछ उत्तर देते, पार्वती ने कह दिया, "तो बेचारी शची बहनजी निराश बैठी होंगी ?"

देवेन्द्र हँस पड़ा और बोला, "यहाँ छोटी भाभी जो प्रसन्न प्रतीत होती हैं।"

"परन्तु मैं तो शची दीदी की बात कर रही हूँ। मेरे सन्तोष से वह सन्तुष्ट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे हो जाएँगी ?"

"उसे कल प्रसन्न कर लूँगा।"

"तब आइए।" पार्वती ने देवेन्द्र का अपने राजप्रासाद में स्वागत करते हुए कहा। भीतर दूध इत्यादि पदार्थ सबके लिए आए तो बातें होने लगीं। देवेन्द्र ने वही बात आरम्भ कर दी, जो वह आते हुए विमान में महादेव से कर रहा था। देवेन्द्र ने कहा, "मैं तो दोनों पक्ष के एक-एक योद्धा से द्वन्द्व-युद्ध का निर्णय करने के पक्ष में हूँ।"

सुकेश ने पूछ लिया, "तो यह जनसंख्या बढ़ जाने से हुआ भू-भार कैसे कम होगा?"

"जैसे हमारे देश में कम हो रहा है।" देवेन्द्र का सतर्क उत्तर था।

"परन्तु इस उपाय से तो उत्कृष्ट गुणों वाले भी आपके देश में उत्पन्न होने रुक गए हैं।"

"कहाँ कम हो गए हैं? हमारे ही क्षेत्र में कुमार का जन्म हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भृगु, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य और अन्य अनेकानेक शौर्यवान और बुद्धिमान लोग उत्पन्न हो रहे हैं।"

"क्यों इसके मुकाबले में मानवों और असुरों में विशेष प्रतिभा रखने वालों की संख्या हमारे यहाँ से अधिक नहीं है? तभी तो पदार्थों और शस्त्रास्त्रों में उन्होंने हमसे अधिक उन्नति कर ली है।"

"यह कैसे कहते हो?" इन्द्र का प्रश्न था।

"यह मैं इस कारण कहता हूँ कि इस युद्ध में देवतागण दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने से डरते हैं। आज से पूर्व जितने भी देवासुर-संग्राम हुए हैं, सबमें देवताओं ने दिव्यास्त्रों से ही विजय प्राप्त की थी।"

महादेव ने बात बीच में ही काटकर कहा, "केवल यही नहीं, वरंच देवताओं में दिव्यास्त्रों के प्रयोग करने वाले भी अब उत्पन्न नहीं होते। यदि आज सुदर्शन चक्र बनाने वाले और उसके प्रयोग करने वाले हमारे पास होते तो हम सुदर्शन चक्र निर्माण कर चुके होते।"

"परन्तु उसमें प्रयोग होने वाले आग्नेय पदार्थ की कमी भी तो है। ब्रह्मलोक में उस आग्नेय पदार्थ की उपज के लिए नवीन स्रोतों पर खोज की जा रही है।"

"पितामहजी से इस विषय पर मेरी बात हुई है। यह आज से आठ वर्ष पहले की बात है। जब कुमार की शिक्षा-दीक्षा आरम्भ होने लगी थी, तो दैवी पक्ष में सैनिक भर्ती करने का प्रस्ताव भी पितामह कर रहे थे।

"मैंने कहा था कि अधिक सैनिकों की आवश्यकता नहीं। हमें कुछ ऐसे दिव्यास्त्र निर्माण कर लेने चाहिए, जिनसे एक-एक योद्धा लक्ष-लक्ष सेना का संहार कर सके।

"इस पर पितामह ने कहा था कि यह देवेन्द्र की नीति के विरुद्ध है। वह इन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्त्रों के विशाल स्तर पर निर्माण के पक्ष में नहीं हैं। इस कारण इनके निर्माण की विद्या को जानने वाले बहुत कम हो गए हैं।"

सुकेश ने कह दिया, "और पिताजी ! इनकी निर्माण-विद्या को उन्नत करने वालों की सृष्टि भी तो नहीं हो रही। एक दिन पितामह कह रहे थे कि तारक के देश में हमसे बढ़िया दिव्यास्त्र बन गए हैं।"

"हाँ।" कुमार ने इस बात का समर्थन कर दिया, उसने कहा, "युद्ध आरम्भ होने से पूर्व नारदजी तारक से और शुक्राचार्यजी से मिलने गए थे और यह सन्धि कर आए थे कि वर्तमान युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं होगा। नारदजी ने यह भय दिखाया था कि इन अस्त्रों के व्यापक प्रयोग से पुरुषों में सन्तान-बीज ही विनष्ट हो जाएगा। तब कौन किसके लिए लड़ेगा? इसमें किसी प्रकार का लक्ष्य नहीं रह जाएगा।"

इस सन्धि के उपरान्त ब्रह्माजी ने सुख की साँस ली थी। उनका कहना था कि वे हमसे अधिक उन्नत अस्त्र बना चुके हैं और तब तक इन अस्त्रों को युद्ध में प्रयोग करना वर्जित रहना चाहिए जब तक देवताओं के पास कम से कम असुरों के समान वे अस्त्र तैयार नहीं हो जाते।

देवेन्द्र हँस पड़ा। हँसते हुए कुमार से पूछने लगा, "और जब तक देवताओं के पास ऐसे अस्त्र संख्या में और श्रेष्ठता में अधिक नहीं हो जाते, तब तक ये प्रयोग न हों, बाद में होने लगें, यही कह रहे हो न?"

"हाँ, भगवन्!" कुमार का कहना था, "पितामह के कथन से यही समझ में आया था।"

"मुझे यह बात भलीभाँति स्मरण है कि मैंने कहा था, 'पितामह! तब तो घोर अन्याय का चलन हो जाएगा।'

" 'युद्ध में सब बातें स्वीकार और प्रयोग की जाती हैं। देवता इस कला में असुरों से बाजी ले लेंगे, तब ही विजय होगी'।"

"परन्तु मैंने सुना है।" सुकेश का उत्तर था, "यद्यपि असुर दिव्यास्त्रों का इस युद्ध में प्रयोग नहीं कर रहे, परन्तु वे इनको अधिक और अधिक प्रभावी संख्या में अत्यधिक बनाने का निरन्तर यत्न कर रहे हैं।"

"यह तुम्हें किसने बताया है?"

"मेरे लंका वाले पिताजी ने असुर देशों में कुछ गुप्तचर भेजे थे। उनका यह कहना है कि वहाँ दिन-रात विद्वान् लोग बैठे अस्त्र-शस्त्रों में नित्य नवीन आविष्कार करने में लगे हुए हैं।"

"परन्तु मैं तो इस निर्दोष नरसंहार का विरोध कर रहा हूँ। आज एक दिन में दोनों पक्षों के एक लाख से अधिक सैनिक मरे हैं। वे बेचारे जानते भी नहीं कि युद्ध किस उद्देश्य से हो रहा है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेव ने हँसते हुए पूछ लिया, "और दादा ! तुम जानते हो कि यह युद्ध किसलिए हो रहा है ?"

"हाँ, मैं तो जानता हूँ।"

"क्या जानते हो ?"

"यही कि कुछ नेतागण के सुख-आराम और प्रभुता को स्थिर रखने के लिए यह सब किया जा रहा है ?"

"यह ठीक है।" महादेव का कहना था, "परन्तु राजा अथवा नेता भी तो जनसाधारण की रुचि के अनुसार ही बनते हैं। उनके बनने में जनसाधारण ही तो उत्तरदायी होते हैं। जब वे मूर्खता के कारण अपने गुरु तथा राजा और नेता को धूर्त बना लेते हैं तो फिर संसार में व्यापक ह्रास होने लगता है।"

"परन्तु नेता इत्यादि तो अपने पूर्वजन्म के कर्मों से बनते हैं। इनकी नियुक्ति जनता द्वारा निर्वाचन से नहीं होती। हाँ, जब कर्मफल से ऐसे पुण्यात्मा उत्पन्न हो जाते हैं, तब सामान्य जनता उनके पीछे लग जाती है। इसमें यदि किसी का दोष है तो परमात्मा का है, ऐसे पुण्यात्माओं को इस लोक में भेज देता है। यहाँ की जनसंख्या तो सरलचित्त होने के कारण अपने नेताओं के पीछे लग जाती है।"

"उनका दोष यही है कि वे मन और बुद्धि को अविकसित ही रहने देते हैं।" महादेव ने ही बातों को जारी रखा।

"कुछ भी हो, मुझे यह बात अति अरुचिकर अनुभव हो रही है कि भूलें तो नेतागण करें और फल भोगे पूर्ण जनता।"

"तो आप क्या चाहते हैं ?" कुमार ने पूछ लिया।

"मैं तो चाहता हूँ कि दोनों पक्षों का एक-एक योद्धा द्वन्द्व-युद्ध कर ले और जो जीत जाए, वह शासक बन जाए।"

"अर्थात् जनता को भेड़ों की भाँति हाँककर एक गड़रिये के स्थान पर दूसरा ले जाए ?"

"यदि वे भेड़ें नहीं हैं, तो जाने से इनकार कर दें।"

"उस इनकार का ही प्रदर्शन तो यह युद्ध है। तारक गड़रिया चाहता था कि देवलोक और उसके मित्र राष्ट्रों की जनता की ऊन वह उतारे। देवलोक इत्यादि की जनता ने अपनी ऊन उसे काटने नहीं दी तो युद्ध हो गया। इस युद्ध में वह अपनी भेड़ों को आगे कर देवलोक की भेड़ों को धकेलकर समुद्र में डुबो देना चाहता था। देवलोक की भेड़ों ने यह स्वीकार नहीं किया। वे समुद्र में धकेलकर डुबो दी जाने से बचने के लिए ही तो युद्ध कर रही हैं।

"देखिए महाराज ! द्वन्द्व युद्ध भी हो सकता है। मैं तो तैयार हूँ। आप तारक अथवा उसके किसी भी योद्धा को तैयार कर ले आइए।

"परन्तु जब वह अपनी प्रजारूपी भेड़ों को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवलोक आदि देशों पर छा जाना चाहता है तो फिर यह अनिवार्य हो जाता है कि जनता जनता से भिड़ जाए। कोटि-कोटि जनता से तो परमात्मा स्वयं भी युद्ध नहीं कर सकता। उसे भी अपने साथ कोटि-कोटि जनता को तैयार करना पड़ता है।"

इन्द्र निरुत्तर हो रहा था। इस कारण वह विस्मय में कुमार का मुख देखता रह गया। वह अनुभव करने लगा था कि कुमार केवल शारीरिक बल में ही विशेष नहीं, वरंच बुद्धि और ज्ञान में भी बहुत उन्नति किए हुए है। यद्यपि वह अभी अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की वयस का ही था, परन्तु उसने युक्ति एक अनुभवी विद्वान् के समान की थी।

: ६ :

दो वर्ष के निरन्तर संघर्ष के उपरान्त तारक को अनुभव होने लगा था कि उसकी सेना में अनेक प्रकार के अभावों की वृद्धि होने लगी है। सबसे बड़ा अभाव तो सैनिकों की संख्या में था। यद्यपि असुर पत्नियाँ अधिक सन्तान उत्पन्न करती थीं, परन्तु कुशलता के सम्मुख संख्या हीन सिद्ध होने लगी। आरम्भ में तो संख्या का प्रभाव हुआ था। तारक भूमध्य सागर से चलकर काम्बोज की सीमा तक आ गया था। उसने जान-बूझकर यवन देश को छोड़ दिया था। वह चाहता था कि जम्बू द्वीप की पूर्ण शक्ति देवलोक और कैलासलोक में सुरक्षित रहे। इस कारण शक्ति के इन केन्द्रों पर अधिकार कर लेने से यवन देश भारतवर्ष और लंका इत्यादि तो बिना युद्ध किए ही अधीनता स्वीकार कर लेंगे। अतः इनको डरा-धमकाकर तथा इन देशों के प्रति मैत्री के भाव का प्रदर्शन कर वह इनको युद्ध में कूदने से रोकने का यत्न कर रहा था। आरम्भ में तो वह इसमें कुछ सफल हो रहा था, परन्तु ज्यों ही वह क्षीर सागर क्षेत्र पार कर काम्बोज की सीमा पर पहुँचा तो उसके दक्षिण में तीनों देशों की संयुक्त शक्ति आकर डट गई। देवताओं ने भी उसे जम्बू द्वीप में पर्याप्त आगे बढ़ आने का अवसर दिया, परन्तु यहाँ पहुँचकर बाधा खड़ी कर दी।

यह योजना कुमारसम्भव की ही थी। वह चाहता था कि युद्धस्थल से जितनी दूर तारक की शक्ति और सेना का स्रोत होगा, उतना ही वह दुर्बल सिद्ध होगा।

तारक की नीति में एक अन्य दोष भी था। उसके स्वयं नास्तिक होने के कारण उसके सैनिक भी नास्तिक थे। एक नास्तिक के लिए वर्तमान जीवन ही सब कुछ होता है और वह जीवन को लम्बा तथा सुखकर करने का ही सदा विचार करता रहता है। जब-जब भी उसे यह समझ आता है कि युद्ध में सम्मिलित होने से उसकी युद्ध-समाप्ति से पूर्व मृत्यु हो जाना निश्चित है तो वह युद्ध से बाहर होने के यत्न में लग जाता है। उसे अपने किसी प्रिय स्वजन अथवा अपने पुत्र-कलत्र को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध से लाभान्वित होने की आशा ही युद्ध में संलग्न रखती है। इस विचार से ज्यों-ज्यों युद्ध लम्बा होता जाता था और उसमें हत्याएँ अगणित होने लगी थीं तो नास्तिक सैनिक का उत्साह भंग हो रहा था।

इसके साथ असुर सेना में यह समाचार प्रसारित होता जाता था कि देवताओं के देश में, विशेष रूप से लंका इत्यादि देशों में मनुष्य-मनुष्य में वर्ण-भेद तथा जाति-भेद नहीं माना जाता तो असुर सैनिकों में अपने पक्ष के विजयी होने से लाभ कम दिखाई देने लगा था। बहुत बड़ी संख्या में सैनिक और सैनिकों के साथ आए सेवक दास-श्रेणी के थे।

युद्ध के लम्बा होने से असुरों की दो विपरीत स्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं। एक तो सेवक अपने सैनिक मालिकों को छोड़-छोड़कर भाग रहे थे और अपने को देवता-पक्ष वालों के अधीन कर बन्दी बनने के लिए तैयार हो जाते थे। दूसरा, विजय दूर होती दिखाई देने से सैनिक विजित क्षेत्रों में बसने की इच्छा करने लगे थे।

इस सब स्थिति को समझकर तारक अपनी राजधानी मारमोरिका में जा पहुँचा। अपने विमान से राजप्रासाद में पहुँचते ही उसने अपने महामन्त्री एवं गुरु शुक्राचार्य को सूचना भेजकर बुलाया और बताया, "भगवन्! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सेना में भगदड़ मचने में अब अधिक देर नहीं। वैसे वे सैनिक, जो अपने मित्र देशों से आए थे, उतने विश्वसनीय कभी नहीं हुए, जितने कि अपने देशवासी सैनिक रहे हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी अपने सैनिकों से हीन होती है, परन्तु वे उत्साह में भी हीन सिद्ध हो रहे हैं। न जाने कैसे उनमें यह किंवदन्ती फैलती जाती है कि देवताओं के देश में और उनके मित्र देशों में दासप्रथा नहीं है और वहाँ पहुँचते ही दास मुक्त और स्वतन्त्र हो जाते हैं। इससे तो सब दास-श्रेणी के सैनिक स्वतः भाग-भागकर विपक्षियों की शरण में जाने लगे हैं।"

"यह ठीक है।" आचार्य का कहना था, "मैं प्रायः नित्य अपने विमान पर युद्धभूमि का निरीक्षण करने आता हूँ। बहुत ऊँचे अन्तरिक्ष में उड़ते हुए युद्ध की गतिविधि देखता रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि इस बार देवताओं ने युद्ध-नीति में परिवर्तन कर दिया है।

"पहले उनका एक-एक सैनिक युद्ध की चुनौती दिया करता था। प्रायः देव-सेना का नायक असुर सेना के नायक से द्वन्द्व-युद्ध करने को तैयार रहता था। इस बार वैसी कोई चुनौती नहीं आई।

"यदि द्वन्द्व-युद्ध की चुनौती आती, तब भी हम स्वीकार नहीं करते। कारण यह कि इस बार देवताओं का सेनापति एक अति दुर्द्धर्ष योद्धा है और तुम वृद्ध हो रहे प्रतीत होते हो। इसी कारण इस बार द्वन्द्व-युद्ध को बदल यह स्वीकार किया था। परन्तु एक असुर सैनिक के देव सैनिक से बलशाली होने से मैं सैनिकों में द्वन्द्व-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध की प्रथा को जारी रखना हितकर समझता था। युद्ध-क्षेत्र में एक-एक सैनिक पृथक्-पृथक् लड़ता था।

"परन्तु इस बार देवताओं ने युद्ध-नीति में मूल-चूल परिवर्तन कर दिया है। उनके आक्रमण सामूहिक होते हैं। वे पचास-पचास और सौ-सौ की टुकड़ियों में आगे बढ़ते हैं और हमारे सैनिकों को घेरे में ले लेते हैं और फिर उनकी हत्या करने में सफल हो जाते हैं। दूसरा, पूर्ण मोर्चे पर दक्षिण सागर से लेकर उत्तर सागर तक पाँच सहस्र योजन के अन्तर पर एकसाथ युद्ध हो रहा है और इसी ढंग से हो रहा था।

"शत्रु सैनिकों की टुकड़ियाँ एक-एक सौ गज के अन्तर पर बढ़ती हैं। ये दोनों बाजुओं से हमारी सेना में घुस जाती हैं और फिर एक हो जाती हैं। तब अपने घेरे में जितने भी सैनिक आ जाते हैं, उनकी सफाई कर देती हैं।"

"और देव! सैनिकों का इस प्रकार संहार होने से उनमें भगदड़ मच रही है। पीछे से आने वाले सैनिकों की संख्या इतनी अधिक नहीं, जितनी कि भागने वालों की है। परिणामस्वरूप युद्धभूमि पर असुर सैनिकों की संख्या कम हो रही है।"

शुक्राचार्य ने बताया, "मैं एक अन्य बात देख आया हूँ। वह यह कि जो सेवक एवं सैनिक देवताओं के हाथ जीवित लग जाते हैं, उनको निःशस्त्र कर युद्धभूमि से दूर अपने देश में कृषि इत्यादि कर्मों पर लगा दिया जाता है और उनको देवताओं के समान खाने-पहनने की सुविधा दी जाती है। वे बन्दी, जो देवताओं के काम पर नहीं लगाए जाते, उन्हें पाताललोक में भेज, वहाँ स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया जाता है। इसके दो लाभ हो रहे हैं। वहाँ का अन्न देव-पक्ष के देशों में आ रहा है, जिसके दो परिणाम हो रहे हैं—एक यह कि जिन देशों की सेनाएँ युद्ध लड़ रही हैं, वहाँ कृषकों का अभाव अनुभव नहीं हो रहा। अन्न पाताल देश से आ रहा है। दूसरा, अपने देशों के सैनिक वहाँ अधिक सुख-सुविधा मिलती देख, अपने देश को तथा अपने परिवार को भूल रहे हैं। वहाँ वे नये परिवार निर्मित करने लगे हैं।"

तारक ने कहा, "मैं आपसे यह स्वीकृति पाने की आशा से आया हूँ कि हम एकाएक बिना किसी प्रकार का पूर्व-संकेत दिए दिव्यास्त्रों से युद्ध आरम्भ क्यों न कर दें?"

"मैंने इस विषय पर भी विचार किया है। दिव्यास्त्रों से युद्ध आरम्भ करने पर प्रथम आतंक तो उत्पन्न हो जायगा, परन्तु तब देवताओं को भी अपने दिव्यास्त्र प्रयोग करने का बहाना मिल जाएगा और मैं समझता हूँ कि अमृत-मन्थन के उपरान्त हुए युद्ध में सुदर्शन चक्र की प्रकार का कोई अन्य चक्र युद्ध-भूमि में आ गया तो युद्ध एक ही दिन में समाप्त हो जाएगा। मैं समझता हूँ कि फिर तुम्हारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही दशा हो जाएगी, जो दैत्यों की उस युद्ध के उपरान्त हुई थी।

"सुदर्शन चक्र से सैनिक और उनके सेवकों का तो कहीं चिह्न भी नहीं रहा था। साथ ही वहाँ की भूमि भी पिघलकर तरल हो गई थी और बाद में वहाँ के पर्वत पिघलकर सपाट स्लेट की भाँति हो गए थे।"

"तो फिर क्या किया जाए? मेरी सूचना है कि एक लाख सैनिकों से अधिक एक दिन में मारे जाते हैं और लगभग इतने ही जान बचाकर युद्धभूमि से भागते हैं अथवा शत्रु के सामने हथियार डाल देते हैं अथवा अपने घरों को लौट जाते हैं।"

शुक्राचार्य का कहना था, "कहो तो सन्धि के लिए प्रयत्न करूँ?"

"सन्धि हो सकेगी क्या? क्या उसके उपरान्त किसी प्रकार का सुखी जीवन मिल सकेगा?"

"यत्न तो किया जा सकता है। आखिर कुछ तो हानि उनकी भी हो रही है, और यदि ब्रह्माजी से बातचीत की जाए तो सन्धि की आशा की जा सकती है।"

"परन्तु मैंने सुना है कि इस बार ब्रह्माजी इस युद्ध से सर्वथा तटस्थ हैं।"

"यह सब कहने की बात हो सकती है। ब्रह्माजी की परम्परा तो यह है कि कम-से-कम नर-हत्या हो। उनकी मीमांसा में मानव-जीवन परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट कारीगरी है और इसको, जितना सम्भव हो, सुरक्षित रखने का अवसर वह संवरण नहीं कर सकेंगे।"

"तो प्रयत्न करिए; परन्तु गुरुदेव! सन्धि की शर्तों के विषय में मुझसे सम्मति करके ही निश्चय करिए।"

"यह तो होगा ही। आखिर सन्धि तुममें और देवेन्द्र में होने वाली है और बिना आप दोनों की अनुमति के सन्धि कैसे हो सकेगी?"

"तो गुरुदेव! यह करिए। मुझे तो निकट भविष्य में ही अपनी पराजय दिखाई देने लगी है।"

उसी समय शुक्राचार्य अपने विमान पर सवार होकर ब्रह्मलोक में जा पहुँचा। मेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मपुरी में प्रभातकाल था जब शुक्राचार्य वहाँ पहुँचा। रहने वालों के वास-स्थान पुरी में बिखरे हुए थे और वहाँ सड़कें और सँकरे मार्ग नहीं थे। एक मकान से दूसरे मकान पर जाने का मार्ग पगडण्डियाँ ही थीं।

ब्रह्मपुरी के बिखरे हुए गृहों में एक भव्य भवन, जो ब्रह्माजी का अपना निवास-स्थान था, उसके अतिरिक्त कोई अन्य बहुत बड़ा मकान नहीं था। शुक्राचार्य इसे पहचानता था। वह ब्रह्माजी से मिलने कई बार पहले भी आ चुका था। अतः उसने अपना विमान पुरी में उस भव्य भवन के द्वार पर उतरवाया और वहाँ खड़े प्रतिहार से अपना नाम बता भीतर सूचना करने को कहा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माजी भगवद्-भजन में लीन थे । अतः शुक्राचार्य का नाम सुनकर नारद बाहर आ गया और आचार्य को आदरसहित ले जाकर एक आसन पर मानसहित बिठाकर पूछा, "आचार्यवर ! किस कारण इतनी दूर आने का कष्ट किया है ?"

"कष्ट तो कुछ नहीं हुआ, आधे प्रहर में मारमोरिका से यहाँ पहुँच गया हूँ। साथ ही अपने विमान में सोने के लिए स्थान है। वहाँ से सायंकाल का भोजन करके चला था और यहाँ तो प्रभात वेला ही हुई है।"

"हाँ भगवन् ! परन्तु यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं । पितामहजी तो इस समय पूजा में लगे हैं । मैं चाहता था कि यदि उनके पूजा से अवकाश पाने से पहले मैं कुछ सेवा कर सकूँ तो आप आज्ञा कर सकते हैं।"

"महामुनि ! मैं तो आज पितामहजी से ही मिलने आया हूँ।"

नारद मुस्कराकर पूछने लगा, "तो आपके शौचादि का प्रबन्ध कर दूँ ?"

"हमारे देश के समय-विभाग से उसका अभी समय नहीं हुआ । मैं तो यह चाहूँगा कि अभी आप मुझे आधा प्रहर के लिए विश्राम का स्थान बता दें तो मैं कुछ और नींद ले लूँ।"

"आइए।" नारद आचार्यजी को एक विशाल शयनागार में ले गया । वहाँ पलंग, बिस्तर इत्यादि लगा था । वहाँ रात को सोने के समयोचित पहनने के वस्त्र भी रखे थे । एक सेवक वहाँ आने वाले अतिथि की सेवा के लिए पहले ही उपस्थित था । नारद आचार्य को उस सेवक की देख-रेख में छोड़ स्वयं आगार से बाहर निकल गया ।

ब्रह्मलोक के मध्याह्न के समय दोनों महापुरुषों में भेंट हुई । ब्रह्माजी देवताओं के पुरोहित थे और शुक्राचार्य असुरों के । जब दोनों पक्षों के बौद्धिक नेता परस्पर वार्तालाप करने लगे तो शुक्राचार्य ने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "भगवन् ! वर्तमान युद्ध में देवताओं की अपार हानि देखकर मैं इसे बन्द कराने आया हूँ । मुझे भय लगने लगा है कि कहीं देवताओं की जाति ही निःशेष न हो जाए । मेरी सूचना के अनुसार एक लाख से अधिक देवता अथवा उनके पक्ष के लोगों की नित्य देह छूट रही है । पिछले दो वर्ष में सात करोड़ से अधिक देवता मृत्यु के घाट उतर चुके हैं । इस कारण मैं आपसे यह निवेदन करने आया हूँ कि क्या यह अच्छा नहीं होगा कि दोनों पक्ष परस्पर सन्धि कर लें ?"

ब्रह्माजी ने मुस्कराते हुए कहा, "आचार्यवर ! देवता मरते नहीं, ये तो केवल शरीर बदलते हैं । असुरों के शस्त्रास्त्र से जब उनके शरीर इतने क्षत-विक्षत हो जाते हैं कि वे काम चलाने योग्य नहीं रहते तो देवात्माएँ उनको फटे वस्त्रों की भाँति फेंक देती हैं और वे नया शरीर धारण कर लेती हैं।"

"परन्तु पितामह ! मैंने तो सुना है कि देवताओं की पत्नियाँ सन्तान उत्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से इनकार करती हैं और बहुत-सी तो इस हेतु कृत्रिम उपाय प्रयोग करने से बाँझ हो गई हैं।"

"आचार्यवर ! आपकी यह सूचना सर्वथा ठीक है, परन्तु हमने लाखों की संख्या में पाताललोक से पत्नियों का आयात किया है और कई लाख और आयात कर रहे हैं। उनसे देवता लोग सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं।"

शुक्राचार्य ने ब्रह्माजी को यह सूचना दी, "हम पिछले तीस वर्ष से यह यत्न करते रहे हैं कि कृत्रिम उपायों से मनुष्य, स्त्री-पुरुष उत्पन्न किए जाएँ। हमने मनुष्य-शरीर का विश्लेषण किया है और उन तत्त्वों से मनुष्य-शरीर बनाने का यत्न करते रहे हैं। हमें इसमें सफलता नहीं मिली। शरीर से ही शरीर उत्पन्न होता है और जैसा शरीर माता-पिता का होता है, वैसा ही शरीर बनता है। मूल तत्त्वों से लगभग मानव-शरीर जैसा हमने बना भी लिया है, परन्तु उसमें जीवन नहीं आता। कभी-कभी तो एक शरीर के स्वतः कई शरीर बनकर मनुष्य के अतिरिक्त कुछ और बन जाते हैं और वे क्षणिक जीवन प्राप्त कर विनष्ट हो जाते हैं।"

ब्रह्माजी हँस पड़े और बोले, "आचार्यवर ! पहले प्राणी के जीवन के लिए अन्न और ऊर्जा का निर्माण तो करके देखो। आज तक वे सूर्य की सहायता से ही प्राप्त होते हैं। अन्न से ही तो शरीर बनता है। जब तक मनुष्य सूर्य की सहायता के बिना अन्न नहीं बना लेता, प्राणी-शरीर बना सकना सम्भव नहीं।

"और फिर देखो ! मैं तुम्हें एक घटना का वृत्तान्त बताता हूँ। अपने देश में नागरिक मकान बनाते हैं। एक बार विश्वकर्मा ने मकानों का एक प्रकार प्रस्ताव किया। मेरे साथी ऋषियों ने उसे पसन्द किया और हमने एक सहस्र मकान बनवाकर लोगों को उनमें आकर रहने का निमन्त्रण दे दिया। उन मकानों को देखकर अधिक लोगों ने अस्वीकार कर दिया। कुछ एक ने उनको पसन्द किया, परन्तु कुछ ही काल में रहने वालों ने मकान तोड़-फोड़ अपनी सुविधानुसार बना लिए। विश्वकर्मा की सब योजना विफल गई। तब से मैं मकान बनाने के प्रत्याशी के लिए भूमि दे देता हूँ। मकान बनाने का सामान भी प्रस्तुत करवा देता हूँ और प्रत्येक रहने वाला मकान अपनी रुचि-अनुसार बनाता है।"

शुक्राचार्य समझ गया था कि वह व्यर्थ की बातों के जंगल में फँस गया है। उसने अपने आने के उद्देश्य पर पुनः वार्तालाप आरम्भ कर दिया।

शुक्राचार्य ने कहा, "पितामह ! कुछ भी हो, इतने विशाल स्तर पर नरहत्या तो कभी भी वाञ्छनीय नहीं हो सकती। मैं तो युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"परन्तु आचार्य ! युद्ध मैं और तुम तो कर नहीं रहे। जो युद्ध कर रहे हैं, उनकी सम्मति के बिना युद्ध कैसे बन्द हो सकेगा?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तब?"

"यदि तुम कहो तो युद्ध के नेताओं को यहाँ बुला लिया जाए और उनकी परस्पर बातचीत हो जाए।"

"परन्तु पहले तो आप सन्धि करा देते थे।"

"इस बार मैं युद्ध से बाहर रखा गया हूँ। युद्ध की योजना मुझसे पूछकर नहीं बनाई गई। मैं तो यह चाहता था कि कुमार और तारक अपने नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त हो एक स्थान पर द्वन्द्व-युद्ध कर लेते और दोनों के युद्ध से निर्णय हो जाता कि कौन जीत गया है और कौन पराजित हो गया है।

"परन्तु इस बार देवताओं के साथ मानव और यक्ष भी युद्ध-योजना बनाने में सहयोग दे रहे हैं।

"मानवों में इक्ष्वाकुवंशीय ककुत्स्थ नाम का राजा है। उसके विद्वानों ने एक ऐसी युक्ति दी है, जिससे नेताओं के द्वन्द्व-युद्ध से निर्णय अशुद्ध प्रतीत हुआ है। उन विद्वानों की युक्ति सुनकर तो मैं समझा हूँ कि एक-आध व्यक्ति की हत्या से संस्कृतियों में भेद नहीं मिट सकता। उनका कहना था कि संस्कृति जब सिद्धान्तों को छोड़ शारीरिक सुख-सुविधा के अधीन ढाली जाने लगे तो संस्कृति से लाभ उठाने वाले को समझाना चाहिए। यदि वे शारीरिक सुखों से अन्धे हुए बुद्धि का प्रयोग छोड़ दें तो उनकी जीवात्माओं को उनके शरीरों से पृथक् कर उनको नये शरीर में प्रवेश करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार उनको नवीन बुद्धि मिल जाती है और नवीन मानव नवीन पथ का राही बन सकता है। तब यह आचार्यों का कार्य है कि उनको मार्ग दिखाया जाए।

"मुझे यह योजना पसन्द आई है और मैंने इस बार युद्ध-संचालन का कार्य भारतवर्षीय विद्वानों के हाथ में दे रखा है।

"इससे एक लाभ तो हो रहा है। देवता लोग भी जो भूमि पर भार-रूप ही रह गए थे, उनके बोझ से भू-भार को कम किया जा रहा है और पाताललोक से बहुत-सी पत्नियाँ मँगवाकर नई सृष्टि निर्मित की जा रही है।"

"परन्तु पितामह! इसमें तो देर लगेगी। कम से कम बीस वर्ष में नई सन्तति तैयार हो सकेगी। तब तक तो पृथ्वी मनुष्यों से रहित हो जाएगी।"

"तो फिर क्या किया जाए?" ब्रह्माजी का प्रश्न था।

"युद्ध बन्द कर दिया जाए और सन्धि की चर्चा आरम्भ की जाए।"

"तो लड़ने वाले दोनों पक्ष के नेताओं को बुला लिया जाए।"

"यदि आप समझते हैं तो शिव-कुमारसम्भव को बुला लिया जाए। मैं तारक को बुलवा लेता हूँ।"

"नहीं आचार्यवर! इस प्रकार नहीं। इस बार युद्ध केवल देवताओं और असुरों में ही नहीं हो रहा। तारक ने भी अपने विचार के देशों को एकत्रित किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है और देवताओं ने भी अन्य जाति के नरेशों को युद्ध में सम्मिलित किया हुआ है। इस कारण पाँच-पाँच व्यक्ति दोनों पक्ष के एकत्रित हो जाएँ तो पहले युद्ध-बन्दी की और फिर सन्धि की चर्चा की जा सकती है।"

"तब ठीक है। मैं इसको शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की इच्छा कर रहा हूँ।"

"ठीक है। वे पाँच-पाँच व्यक्ति, जिनको युद्ध बन्द करने का अधिकार हो, एकत्रित हो जाएँ और निर्णय करें।"

"कहाँ एकत्रित हों ?"

"मैं हिमाचललोक में ओषधिप्रस्थ नगर का स्थान प्रस्तावित करता हूँ।"

शुक्राचार्य माना तो सन्धि-सभा बुला ली गई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

यहाँ जलप्लावन हुए कई लाख वर्ष हो चुके थे। इस काल में पृथ्वी के उत्तरीय गोलार्द्ध में मानव-जनसंख्या बहुत बढ़ चुकी थी। विशेष रूप में हिमाचल से दक्षिण के देशों में तो जनसंख्या बढ़कर अब कम होने लगी थी। प्रकृति के नियमानुसार किसी बात की अति होने पर उसमें ह्रास उत्पन्न होने लगता है।

यद्यपि मनुष्य अपने में मन और बुद्धि यन्त्र रखने के कारण प्रकृति के विधि-विधान का विरोध करता रहता है, परन्तु उसे भी प्राकृतिक विवशताओं के कारण अपना मार्ग बदलना ही पड़ता है और प्रकृति की अनुकूलता स्वीकार करनी ही पड़ती है।

पृथ्वी की अपनी धुरी पर चक्कर काटने से दिन और रात होती है। रात को जब सूर्य का प्रकाश नहीं रहता, तब भी मनुष्य दीपक जला प्रकृति का विरोध करने का यत्न करता रहता है। फिर भी मनुष्य ने अपने विश्रामकाल को रात के समय ही निश्चित किया है।

पृथ्वी के सूर्य की प्रदक्षिणा करने से और अपनी धुरी को सूर्य के अभिमुख न रखने के कारण वर्ष में ऋतु-परिवर्तन होता है। कभी तो ज्येष्ठ-आषाढ़ की गर्मी और कभी मार्गशीर्ष-पौष के शीत का विरोध मनुष्य को करना पड़ता है। परन्तु अपने सब कृत्रिम साधनों के प्रयोग करने पर भी वह उष्ण ऋतु से बचने के लिए हिमाचल की चोटियों पर और शीतकाल की उग्रता का विरोध करने के लिए सागर-तटवर्ती देशों को प्रस्थान करता रहता है।

यही बात एक अन्य प्राकृतिक परिवर्तन के दुःखद एवं विनाशकारी प्रभाव से बचने के लिए मनुष्य करता है। ऊपर वर्णित गतियों के अतिरिक्त पृथ्वी एक अन्य गति रखती है। यह अपनी धुरी पर घूमती हुई वेग से घूमने वाले लट्टू की भाँति अपने मेरु पर डोलती रहती है। इस डोलने के कारण एक महान् परिवर्तन पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध पर प्रति छब्बीस सहस्र वर्ष में होता रहता है। इन छब्बीस सहस्र वर्षों में मेरु अर्थात् उत्तरी ध्रुव एक बार सूर्य की ओर झुक जाता है और एक बार सूर्य से दूसरी ओर हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस छब्बीस सहस्र वर्ष की अवधि में एक बार तो मेरु पर बारह मास कनेर फूलती हैं और एक बार शीत बढ़ जाने से हिम के अम्बार लग जाते हैं और वहाँ अपने सब कृत्रिम उपायों का प्रयोग करते हुए भी मनुष्य रह सकने में असमर्थ हो जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे अयोध्या-निवासी ज्येष्ठ-आषाढ़ की गर्मी से बचने के लिए विंध्याचल अथवा हिमाचल की चोटियों पर चढ़ जाता है, वैसे ही पृथ्वी की पूर्वोक्त गति के कारण मेरु तेरह सहस्र वर्ष तक मनुष्य के खेल-कूद का स्थान बना रहता है और फिर दूसरे तेरह सहस्र वर्ष में मेरु के मैदानों और पर्वतों को छोड़ दक्षिण भूमध्य रेखा के समीप प्रव्रजन कर जाता है।

जिस काल की कथा कही जा रही है, मेरु डोलता हुआ सूर्याभिमुख हो रहा था और वहाँ उष्णकाल को आए हुए छः सहस्र वर्ष हो चुके थे। इस कारण ब्रह्म-लोक और देवलोक में वनस्पतियाँ, फल-फूल प्रचुर मात्रा में हो रहे थे और ये देश तथा अन्य उत्तरी ध्रुव के समीप के देश प्रजाओं से भर रहे थे।

इस छब्बीस सहस्र वर्ष के चक्कर से भूमध्य रेखा के समीप के देश बहुत ही कम प्रभावित होते थे। भूमध्य रेखा के समीप के देशों में दिन-रात तो होते थे, ग्रीष्म और शीत ऋतु के वार्षिक परिवर्तन भी होते थे, परन्तु उत्तरी ध्रुव के इस डोलने का प्रभाव नहीं होता था। परिणाम यह था कि इस छब्बीस सहस्र वर्ष में एक बार होने वाले शीत तरंग में देश बसे रहते थे।

कथा-काल में मेरु देश बस रहा था। ब्रह्मलोक में, जो मेरु के समीप एक पर्वत शिखर पर था, जनसंख्या बढ़ रही थी। इस कारण ब्रह्माजी को भी जन-वृद्धि से कष्ट होने लगा था। वह निरन्तर यत्न कर रहे थे कि उनके देश में कम से कम जन-वृद्धि हो और वहाँ का जलवायु शुद्ध, पवित्र बना रहे।

जब तारक और कुमारसम्भव के नेतृत्व में दो वर्ष से चल रहा देवासुर संग्राम तीव्र गति से नर-संहार कर रहा था, तब असुर पहले घबराए थे। उनकी पूर्ण सामाजिक व्यवस्था सामूहिक मानव-परिश्रम पर आधारित होने के कारण वे युद्ध से जनसंख्या कम होने से अपने समाज को डावाँडोल हो गया अनुभव करने लगे थे।

असुर देशों में बड़े-बड़े नगर थे, जिनमें सुख-साधन उपलब्ध करने के लिए बड़े-बड़े संयन्त्र लगे हुए थे। एक-एक यन्त्र में लक्ष-लक्ष मानव भेड़ों की भाँति दिन में दो प्रहर परिश्रम करते हुए पसीना बहाते थे। तब जाकर नगरों की व्यवस्था बनी रह सकती थी।

तारक की राजधानी मारमोरिका नगर की जनसंख्या पचास लाख थी। इस पचास लाख जनसंख्या के पालन-पोषण का भार राज्य पर था। इस कारण राज्य को विवश होकर बहुत बड़े-बड़े यन्त्र लगा जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती थी।

परन्तु जब युद्ध आरम्भ हुआ तो असुर देश के आचार्य शुक्राचार्य का अनुमान था कि पूर्ण जम्बू द्वीप पर असुर एक सप्ताह में छा जाएँगे। केवल संख्या के दबाव से क्षीर सागर से लेकर जम्बू द्वीप के उत्तरी और पूर्वी समुद्रतट तक पूर्ण क्षेत्र असुर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य में सम्मिलित हो जाएगा।

पहले तो ऐसा ही हुआ। एक रात क्षीर सागर तटवर्ती देश पर छोटी-सी असुर सेना विमानों द्वारा उतरी और पूर्ण देश पर सूर्योदय से पूर्व अधिकार पा गई।

वहाँ का राजा विष्णु तब अल्पवयस्क था और असुर-आक्रमण का समाचार पाते ही उसके संरक्षक उसे लेकर अमरावती जा पहुँचे और पूर्ण क्षीर सागर तटवर्ती देश पर दिन निकलने तक असुर सैनिक छा गए और वहाँ की धन-सम्पदा और स्त्री-वर्ग पर अधिकार जमा बैठे।

यद्यपि तारक की आज्ञा थी कि पूर्व इसके कि क्षीर सागर क्षेत्र पर आक्रमण का समाचार देश से बाहर निकले, यवन देश में असुर सेना पहुँच उसपर अधिकार-सम्पन्न हो जानी चाहिए, परन्तु हुआ इसके विपरीत। घनी आबादी के नगरों में रहने वाले सैनिक क्षीर सागर क्षेत्र के खुले मैदानों और प्राकृतिक शोभायुक्त नदी-नालों तथा पहाड़ों को देख वहाँ मनोरंजन में लग गए। वे भ्रमण करने और देश की शोभा देखने के लिए ठहर गए। उनके लिए वहाँ सबसे बड़ा आकर्षण वहाँ की गौरवर्णीय स्त्रियाँ थीं। सामान्य सैनिक वहाँ की धन-सम्पदा को देख लोभवश उसे आत्मसात् करने में लग गए एवं वहाँ की सुन्दर-सभ्य स्त्रियों पर मन ललचा बैठे। परिणाम यह हुआ कि पूर्ण क्षेत्र में लूट-खसोट मच गई और सेनाध्यक्ष की आगे बढ़ने की आज्ञा होने पर भी सेना प्राप्त भोग में लीन कुछ दिन वहाँ रहने में ही कल्याण समझने लगी।

सेना को तृप्त होने और देश में प्राप्तव्य सुख-साधनों के समाप्त होने में कई सप्ताह लगे और तब तक देवलोक इत्यादि में इस आक्रमण का विरोध करने की तैयारी हो गई।

असुरों की योजना में प्रथम बाधा यही हुई और जहाँ तारक यह समझता था कि दो-तीन दिन में वह अमरावती में प्रवेश कर अपने को जम्बू द्वीप का सम्राट् घोषित कर देगा, वहाँ उसे यवन देश की सीमा पर ही देवसेना से युद्ध करना पड़ा। जब सेनाएँ आमने-सामने हुईं तो ये एक-दूसरे को घेर लेने के लिए पंखों की भाँति फैलने लगीं और फिर भारत सागर से मेरु सागर तक मोर्चे लग गए। लगभग दस सहस्र योजन लम्बे मोर्चे पर देव और असुर सेनाएँ एक-दूसरे का संहार करने लगीं।

इस घटना के दो वर्ष उपरान्त असुर पक्ष की ओर से पूर्ण युद्ध के क्रम पर अवलोकन करने की आवश्यकता पहले पड़ी। तारक युद्ध-भूमि का निरीक्षण कर अपने नगर मारमोरिका में पहुँच अपने मन्त्री-वर्ग से बातचीत करने लगा तो पता चला कि प्राय: सब असुर-देश, जो युद्ध में भाग ले रहे हैं, लगभग पुरुषविहीन हो चुके हैं। इन देशों में प्राय: वृद्धजन और बालक तथा स्त्री-वर्ग ही रह गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब उद्योग संयन्त्रों में स्त्री-वर्ग ही काम कर रहा है। उस समय अनुभव-विहीन लड़कियों और लड़कों को भी काम पर लगाया जा रहा था। यह स्थिति थी, जब तारक अपने गुरु शुक्राचार्य के पास जा पहुँचा। तारक का तो यह विचार था कि दिव्यास्त्र निकालने और प्रयोग करने का समय आ गया है; परन्तु शुक्राचार्य का मत था कि अब संधि-वार्ता का समय आ गया है। वह चाहता था कि संधि-वार्ता से पूर्व युद्धबन्दी होनी आवश्यक है। इसी निमित्त वह ब्रह्मलोक में गया था।

शुक्राचार्य को ब्रह्माजी ने उत्तर तो कुछ उत्साहवर्धक नहीं दिया, परन्तु दोनों पक्षों के पाँच-पाँच प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाने की योजना वह प्राप्त कर सका। इस सभा के लिए पाँच दिन का अवसर देना पड़ा था।

शुक्राचार्य इतना आश्वासन ले तारक के पास लौट गया और वहाँ उससे अपने पक्ष के प्रतिनिधियों के लिए विचार करने लगा।

सब असुर देशों के प्रतिनिधियों की एक सभा में तारक के विरुद्ध भारी असन्तोष प्रकट हुआ। असुर देश चाहते थे कि पहले दिन ही दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया जाता तो युद्ध एक दिन में ही समाप्त हो जाता; परन्तु शुक्राचार्य का यह कहना था, "यह हम कर सकते थे, परन्तु सब दिव्यास्त्रों के प्रयोग पर भी पूर्ण देव पक्ष को हम विनष्ट नहीं कर सकते थे। यह अनुमान लगाया गया था कि काम्बोज अथवा किरात देश जितना भूखण्ड ही एक बार में निःशेष किया जा सकता था; परन्तु देवताओं का दिव्यास्त्रों का भण्डार ब्रह्मलोक में है और वहाँ तक एक ही दिन में पहुँचा नहीं जा सकेगा। परिणाम यह होगा कि जिस दिन हम काम्बोज इत्यादि किसी एक देश को विनष्ट करेंगे, उससे अगले दिन पूर्ण असुर-क्षेत्र धू-धू कर जलता दिखाई देने लगेगा। इस कारण हमने युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं किया।

"यही कारण है कि हम दो वर्ष के घोर युद्ध के उपरान्त भी अभी तक जीवित हैं तथा इस नगर में बैठे भविष्य के विषय में विचार कर रहे हैं।"

यद्यपि शुक्राचार्य के इस वक्तव्य पर सबको सन्तोष नहीं हुआ, परन्तु जो असन्तुष्ट थे, वे भी इस अवसर पर परस्पर झगड़ने में लाभ न समझ भविष्य के विषय में विचार करने लगे थे।

इस सभा में यह निश्चय हुआ कि जितनी अच्छी से अच्छी शर्तों पर सन्धि होती है, कर लेनी चाहिए। युद्धबन्दी का प्रबन्ध करने के लिए पाँच प्रतिनिधि निर्वाचित हुए, जो कि निश्चित दिन ब्रह्माजी के पास पहुँच गए।

जिस दिन शुक्राचार्य यह निश्चय कर तारक से बातचीत करने ब्रह्म देश से लौटा था, उसी दिन ब्रह्माजी ने नारद को महादेव शिव के पास भेज दिया था। ब्रह्माजी का यह कथन था कि देव-पक्ष के पाँच मुख्य-मुख्य नेताओं का नाम लेकर नारदजी आ जाएँ। प्रतिनिधियों को निश्चित दिन ब्रह्मलोक में पहुँचने को कह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाय।

ब्रह्माजी स्पष्ट देख रहे थे कि इस दो वर्ष के युद्ध में आधे से अधिक युवा पुरुषों की मृत्यु हो चुकी है और मृत्यु की तुलना में उत्पत्ति दशांश भी नहीं हुई। तब ब्रह्माजी को मानव-सभ्यता के उसी प्रकार पुनः विलुप्त होने की आशंका प्रतीत हो गई थी, जैसे महा जलप्लावन के उपरान्त हुई थी। तब मनु को सब कुछ शून्य से पुनः आरम्भ करना पड़ा था। इसे ग्यारह-बारह लाख वर्ष व्यतीत हो चुके थे। ब्रह्माजी अभी मानव-सृष्टि के सर्वथा निःशेष होने का समय नहीं मानते थे। इस कारण उस कठिनाई के उत्पन्न होने से पहले ही युद्ध बन्द कर देना चाहते थे।

यही कारण था कि केवल पाँच दिन में ही युद्ध-बन्दी के विषय पर विचार के लिए सभा बुला ली थी।

: २ :

सन्धि-चर्चा की बात कैलासलोक में उस दिन पहुँची, जिस दिन निराश इन्द्र शिवजी महाराज के साथ विमान पर बैठ रात कैलासलोक की राजधानी में आया था। कुमार तो वहाँ पहले ही आया हुआ था।

रात का भोजन कर विश्राम के लिए सब शयनागारों में गए हुए थे कि राज-भवन के बाहर विमान की गड़गड़ाहट से सबके कान खड़े हो गए। सब मेहमान और भवन के रहने वाले बाहर से सूचना आने की प्रतीक्षा करने लगे कि कौन आया है। कुमार तो लपककर पलंग से उठा और शयनागार से निकल देखने चल पड़ा कि कौन आया है। उसे मार्ग में ही एक प्रतिहार के साथ मुनि नारद आता दिखाई दिया। उसने देखा, पहचाना तो चरण-स्पर्श कर हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछ लिया, "मुनिवर! कैसे आना हुआ है?"

"पितामह का एक सन्देश तुम्हारे पिता के नाम लेकर आया हूँ।"

"तो प्रातःकाल तक प्रतीक्षा करेंगे अथवा इसी समय भेंट होगी?"

"आज्ञा है कि तुरन्त सन्देश दे दिया जाए।"

कुमार ने प्रतिहार को कहा, "मिलिन्द! मुनिजी को बैठकघर में बिठाओ। मैं पिताजी को इनके आने की सूचना देता हूँ।"

नारद ने पूछा, "प्रतिहार बता रहा है कि आज देवेन्द्र भी यहाँ आया हुआ है?"

"जी हाँ।"

"तो उसको भी बुला लो।"

"मैं आऊँ या नहीं?"

"यह तुम्हारी इच्छा पर है। तुमसे कुछ छुपा हुआ नहीं है।"

कुमार पिताजी और देवेन्द्र को बुलाने चला गया।

नारद अभी बैठकघर में पहुँचा ही था और प्रतिहार उसके लिए दूधादि के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में पूछ रहा था कि युद्ध के तीन नेता, जो इस समय वहाँ उपस्थित थे, आ गए। ये तीनों नारद के सामने ब्रह्माजी का सन्देश सुनने बैठे तो नारद ने ब्रह्माजी का सन्देश सुना दिया।

नारद ने कहा, "पितामह चाहते हैं कि अपने पक्ष के अधिकृत पाँच व्यक्ति कल प्रातः द्वितीय प्रहर आरम्भ से पूर्व ही ब्रह्मलोक में आ जाएँ।"

इस आदेश पर तो कुमार का कहना था, "पिताजी! मैं तो सेनापति हूँ। मेरा काम तो केवल इतना ही है कि कम से कम काल में अधिक से अधिक शत्रुओं को विनष्ट करूँ। इसके अतिरिक्त सेनापति का कुछ भी काम नहीं। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं जाकर सोऊँ और फिर प्रातःकाल मैं अपना कर्तव्य भली प्रकार से निभा सकूँ।"

"ठीक है।" नारद ने कह दिया, "कुमार! तुम जाओ और सो जाओ।"

परन्तु इन्द्र ने समझा कि कुमार नाराज हो गया है। इस कारण उसने उसे रोकते हुए कहा, "नहीं कुमार! ठहरो। बिना तुमसे सम्मति किए हम इस विषय पर कुछ भी कह नहीं सकेंगे।"

कुमार ने अपने पिता के मुख पर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा तो महादेवजी ने कह दिया, "कुमार! ठहरो। तनिक बात समझ लेने दो।"

इतना कह महादेव ने नारद को कहा, "मुनिवर! यह बताइए कि देवता और असुरों के नेताओं की जो सभा होने वाली है, इस सभा में विचारणीय विषय क्या है?"

"युद्ध-बन्दी।"

"जो युद्ध का संचालन कर रहा है, उसके बिना आप क्या विचार करेंगे?"

"यह आपके विचार का विषय है कि उसमें कौन-कौन सम्मिलित होंगे। मैं तो देवों के देव महादेव को कहने आया हूँ कि एक इस प्रकार की सभा की जा रही है। आप उसमें अपने पक्ष के पाँच नेताओं को भेजिए।"

"तब ठीक है। आप अभी जाकर अपने लिए नियत कक्ष में विश्राम करिए। मैं आपको कल सायंकाल तक बता सकूँगा कि हम इस सभा में आएँगे अथवा नहीं; और यदि आएँगे तो कौन-कौन आएँगे।"

नारद मुख देखता रह गया। इन्द्र ने महादेव के कथन की सफाई दे दी। उसने कहा, "महामुने! यह युद्ध केवल देवताओं और असुरों में नहीं हो रहा। इस युद्ध में असुरों की ओर से मानव, दनुज, दिगन्त इत्यादि अनेक राष्ट्रों के लोग युद्ध कर रहे हैं, इसी प्रकार देव-पक्ष में देवताओं के अतिरिक्त गन्धर्व, किरात, पर्वतीय, मानव और सागर द्वीपों के यक्ष इत्यादि भी सम्मिलित हैं। इस कारण सबके सब पितामह का आदेश मानेंगे अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

"मुनिवर! महाराज ककुत्स्थ ने अपनी बीस अक्षौहिणी सेना भेजते समय यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा था कि युद्ध में विजय हमारी निश्चित है, परन्तु सन्धि की शर्तों में हम पराजित होना नहीं चाहते । पूर्व के सब देवासुर-संग्रामों में, महाराज ककुत्स्थ का विचार है कि देवता विजयी होते हुए भी पराजित इस कारण हुए हैं कि वे आवश्यकता से अधिक भले लोग हैं और विजयी होकर भी पराजित को फलने-फूलने का अवसर देते हैं। इस कारण इस बार हम ऐसा नहीं कर सकेंगे। युद्ध से सन्धि-वार्ता कम महत्त्व का कार्य नहीं है।"

विवश नारद ने कहा, "तो क्या मुझे कल सायंकाल तक आपका आतिथ्य ग्रहण करना पड़ेगा ?"

"हाँ।" महादेव का सतर्क उत्तर था, "आप यहाँ आराम से रहिए। हम तो प्राय: सब ही युद्ध-भूमि पर चले जाएँगे और कल सायंकाल ही मुख्य-मुख्य नेता यहाँ एकत्रित हो सकेंगे और बता सकेंगे कि यह सभा ठीक समय पर हो रही है अथवा यह समय से पूर्व।"

नारद अपने विश्राम-कक्ष में गया तो तीनों देवता परस्पर विचार करने लगे कि इस नई परिस्थिति में क्या करना चाहिए।

महादेव का कहना था, "देवेन्द्र ! आप भी तो युद्ध से ऊब गए अनुभव कर रहे थे ?"

"नहीं भैया ! मैं युद्ध से ऊबा नहीं हूँ। मैं तो युद्ध की वर्तमान घातक विधि के विषय में अपनी अरुचि प्रकट कर रहा था।"

अब कुमार ने कह दिया, "मैं यह सम्मति देता हूँ कि सभा में सम्मिलित हुआ जाए और कह दिया जाए कि तारक अथवा उनका कोई सबसे बड़ा सेनापति मुझ से द्वन्द्व-युद्ध कर ले। यदि मैं जीत जाऊँ तो सन्धि की शर्तें उपस्थित करूँगा और यदि वह विजयी हुआ तो उसकी शर्तें मानी जाएँगी।"

महादेव का कहना था, "मैं इसको नहीं मानता। मैं तो समझता हूँ कि पृथिवी पर असुर-जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। इस कारण असुरसंहार कुछ काल तक अभी चलना चाहिए। जितने असुर प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं, उससे दस गुना अधिक की हत्या न हो तो विजय भी पराजय में बदल जाएगी। इतनी असुर-हत्या करने पर भी केवल दस वर्ष तक ही विश्राम मिलेगा।"

कुमार ने सुझाव उपस्थित करते हुए कहा, "पिताजी ! असुर-प्रवृत्ति तो कभी भी निःशेष नहीं हो सकती। मानसिक विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—तो जहाँ-जहाँ भी अविकसित मन होगा, उत्पन्न होते रहेंगे। इस कारण मैं समझता हूँ कि मानव-समाज में विकार निःशेष हो ही नहीं सकते। इनके प्रतिकार में होने वाले युद्ध भी समाप्त नहीं होंगे।

"इस कारण मेरा विचार यह है कि असुर-प्रवृत्ति को निःशेष करने का अवसर कभी भी उत्पन्न नहीं होगा। अतः युद्ध की समाप्ति पर आगामी युद्ध का विचार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिए।"

"वह तो वहाँ अपना राज्य स्थापित हुए बिना नहीं हो सकता और पूर्ण भूमण्डल पर देव राज्य स्थापित होना इस समय सम्भव नहीं।" यह बात इन्द्र कह रहा था। उसका कहना था, "इस कारण अभी बीस वर्ष के लिए सन्धि की जाए और उसमें हमें देव राज्य मारमोरिका की सीमा तक माँग लेना चाहिए। इन बीस वर्षों में, यदि यह सन्धि चलती रही तो, हम शिक्षा से एक नए विचारों की सन्तति निर्माण कर देंगे। इससे देव-शक्ति बढ़ेगी। शेष कार्य बीस वर्ष उपरान्त करेंगे।"

शिव का विचार था, "यह शर्त असुर नहीं मानेंगे।"

तो युद्ध अभी चलना चाहिए। युद्ध में यदि शत्रु पक्ष की जनता के किसी बड़े भाग पर आधिपत्य न हुआ तो युद्ध में विजय नहीं, पराजय समझी जाएगी। जो दोषी है, उनको दोषमुक्त करने के लिए उनपर शासन प्राप्त करना युद्ध में विजयी होने वालों का जन्मसिद्ध अधिकार है।"

कुमार का यही विचार था। साथ ही उसका कहना था, "परन्तु पिताजी! जो कुछ भी इस सभा का परिणाम हो वह तो पंचों के विचार का विषय है। इसमें मेरी सम्मति यह है कि सन्धि करने के लिए पक्ष-विपक्ष में विचार के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए।

"वार्ता के लिए अरुचि तो पराजय का लक्षण है। फिर भी पिताजी! मैं आपको युद्ध की वर्तमान स्थिति बताता हूँ।

"इस बार जनता में परस्पर युद्ध हो रहा है। नेतागण तो केवल जनता की युद्ध-नीति चलाने वाले हैं। इस कारण जनता के आत्मबल की बात मैं बताता हूँ। अपने पक्ष के सैनिक तो समझ रहे हैं कि इस युद्ध के उपरान्त भूमण्डल पर हम जम्बू द्वीप वालों का साम्राज्य होगा, राज्य नहीं। पिताजी! इस कारण अपनी जनता समझ रही है कि वे दिन-प्रतिदिन इस इच्छापूर्ति के समीप जा रहे हैं।

"इसके विपरीत जो असुर के पक्ष से भागे हुए सैनिक हमारी ओर आते हैं, उनसे यह पता चलता है कि उनकी सेना संख्या के विचार से और मानसिक शक्ति के विचार से कम हो रही है।

"एक बात अपने पक्ष के लोग यह कह रहे हैं कि देवताओं ने अपने दिव्यास्त्र क्यों छुपा रखे हैं? इनका कार्य भी प्रकट होना चाहिए।"

"यह सन्धि भी पितामह ने की थी कि वर्तमान युद्ध में दिव्यास्त्र प्रयोग नहीं किए जाएँगे। कदाचित् पितामह की यह सूचना है कि दिव्यास्त्रों के निर्माण में असुर हम पर बाजी ले चुके हैं। इस कारण उनके प्रयोग से हम घाटे में रहेंगे।"

"परन्तु महादेव!" इन्द्र का कहना था, "मेरी सूचना इसके विपरीत है। मैं तो यह समझ रहा हूँ कि इस समय भी दिव्यास्त्रों में हम विपक्षियों से उन्नत अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। उसमें भी हम विजयश्री को प्राप्त कर लेंगे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेव का कहना था, "तब ठीक है। महाराज ककुत्स्थ, महाराज विद्युत्केश, महाराज हिमवान और किरात नेता राघवेन्द्र इत्यादि को कल रात यहाँ बुला लो।"

देवेन्द्र ने यह माना तो सब पुनः विश्राम करने अपने-अपने शयनागार में चले गए।

अगले दिन कैलास राज्य-भवन में छोटे-बड़े बीस नेताओं की सभा हो गई। नारद को इस सभा से बाहर ही रखा गया और एक प्रहर-भर के वार्तालाप के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि ब्रह्मलोक में हो रही सभा होनी चाहिए और उसमें देवेन्द्र, शिव, ककुत्स्थ, विद्युत्केश और महाराज हिमवान सम्मिलित हों और यह भी निश्चय हुआ कि पूर्ण विजय दोनों पक्षों के नेताओं के द्वन्द्व-युद्ध के उपरान्त मानी जाए। जो नेता विजयी हो, उसका पक्ष विजयी समझा जाए।

यदि यह शर्त स्वीकार न हो तो यह माँग की जाए कि भूमध्य सागर के पूर्वी तट तक दैवी पक्ष वालों का राज्य स्वीकार कर लिया जाए। देवता लोग वहाँ तक अपना शासन स्थापित कर लेंगे।

इस प्रकार इस गोष्ठी के उपरान्त ब्रह्मलोक में गोष्ठी हुई। पाँच-पाँच व्यक्ति दोनों पक्ष के पितामह के सभा-भवन में हो रही सभा में एकत्रित हुए और परस्पर वार्तालाप आरम्भ हुआ।

कुमार स्वयं इस सभा में नहीं था, परन्तु उसने देवेन्द्र को यह निवेदन किया था, "किसी निर्णय पर पहुँचने में ढील की जाए। यदि सम्भव हो तो बीस दिन का समय मुझे मिल जाए। तब तक मैं अपनी सेना भूमध्य सागर के पूर्वी तट तक पहुँचा दूँगा। परिणामस्वरूप जो कुछ हम माँग रहे हैं, उतना हमारे अधिकार में आ चुका होगा।"

नियत दिन ब्रह्मलोक में ग्यारह व्यक्तियों की सभा हुई। शुक्राचार्य असुरों के पक्ष का नेतृत्व कर रहे थे और देवताओं का नेतृत्व इन्द्र के हाथ में था। ब्रह्मा सभापति के आसन पर विराजमान हो गए।

दस दिन जल-मन्थन के उपरान्त सभा बिना किसी निर्णय तक पहुँचे समाप्त हो गई। महाराज ककुस्त्थ का प्रस्ताव स्वीकार हुआ कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधि अपने-अपने पक्ष के राज्यों से सम्मति कर लें। अपने और उन राज्यों को इस सभा में हुए वार्तालाप की सूचना दें कि सन्धि की शर्तों में क्या-क्या बातें आई हैं। इसके अतिरिक्त वे और क्या चाहते हैं।

दस दिन के विचार-विमर्श के उपरान्त सात दिन के लिए सभा विसर्जित की गई। इस प्रकार बीस दिन तो प्राप्त कर लिये गए और इन दिनों में युद्ध और भी तीव्र हो गया। दोनों पक्ष यह समझ रहे थे कि सन्धि समीप है और जितना भू-भाग वे अपने अधिकार में कर लेंगे, उतना ही सन्धि के समय वे सन्धि की शर्तें करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लाभ में रहेंगे।

इन सत्रह दिनों में छः मास के बराबर हताहत हुए और आहतों को चिकित्सा के लिए उठवाना भी कठिन हो गया। देवताओं की क्षति कम हुई थी। इसमें कारण उनके पास बढ़िया शस्त्रास्त्रों का होना था। दैवी पक्ष में भारतवासियों का सम्मिलित होना बहुत लाभ की बात सिद्ध हुई और असुर इसको अनुभव करते थे।

अब राज्य-राज्य में सन्धि के विषयों पर विचार होने लगा। यद्यपि दैवी-पक्ष वालों की जन-हानि असुर-पक्ष वालों से तीन गुणा कम हुई थी। फिर भी वे लोग स्वभाव से युद्ध बन्द करने के पक्ष में थे। असुर पक्ष वाले यह देखते थे कि युद्ध से कितना लाभ और कितनी हानि हुई। उनके लिए जनसंख्या का कम हो जाना एक बहुत बड़ी न्यूनता थी। उनके राज्य में जनसंख्या कम होने से अन्न उपार्जन करने वालों की संख्या कम हुई तो सुख-सुविधा का सामान बनना भी कम हो गया। अन्न की कमी से उनको पुरुषों का अभाव अधिक अखरता था। इस कारण सामान्य जनता युद्धबन्दी के पक्ष में थी। इसके अतिरिक्त राज्याधिकारी इस कारण युद्ध-बन्दी के लिए परेशान थे कि तारक के पास दिव्यास्त्र कहे जाते थे और अभी तक युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं हुआ था। इस कारण उसके मित्र राष्ट्र सन्देह करने लगे थे कि तारक के पास दिव्यास्त्र हैं अथवा नहीं। असुर पक्ष ने साथी एकत्रित करने के लिए यह झूठ बात फैला दी थी। सन्देह का परिणाम यह हुआ कि उस पक्ष में सम्मिलित सब देशों की यही सम्मति हुई कि युद्ध तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

इसके विपरीत दैवी-पक्ष वालों में सम्मति बँटी हुई थी। लंका-नरेश विद्युत्केश और इक्ष्वाकुवंशीय ककुत्स्थ के राज्य-मन्त्रियों की यही सम्मति थी कि दैवी-पक्ष विजयी हो रहा है। इस कारण पूर्ण भूमण्डल को विजय कर एक भूमण्डलीय गणराज्य स्थापित कर लिया जाए और संयुक्त परिवार की भाँति रहना चाहिए। यवन और काम्बोज देशों के लोग सन्धि के पक्ष में थे। किरात और गन्धर्व देशों के लोग निष्पक्ष थे। वे समझते थे कि उनको देवेन्द्र का समर्थन करना चाहिए। कैलासलोक और देवलोक के राज्य युद्धबन्दी के लिए कठोर शर्तें रख रहे थे।

इस प्रकार की स्थिति का जब मुख्य सन्धि सभा में प्रदर्शन किया गया तो असुर देश किसी भी शर्त पर सन्धि करने के लिए तैयार हो गए।

: ३ :

कुमार तो सन्धि-सभा में सम्मिलित नहीं हुआ था। उसने पहले दिन से अपना व्यवहार ऐसा बना रखा था कि वह युद्ध करने के लिए ही बना है और तब तक युद्ध करेगा, जब तक युद्ध करने की आवश्यकता समझेगा।

जब ब्रह्मलोक में सन्धि-वार्ता हो रही थी, तब तक सेना उसके अधीन कार्य करती रही। जिस दिन ब्रह्मलोक में सन्धि-सभा आरम्भ हुई, उस दिन देवसेना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर पहुँच चुकी थी और इस सागर के दक्षिणी तट पर आगे बढ़ने का कार्यक्रम बन रहा था।

ब्रह्मलोक में शुक्राचार्य ने सबसे पहले यह माँग की कि सन्धि-वार्ता आरम्भ होने से पूर्व युद्ध-बन्दी की घोषणा कर दी जाए और दोनों पक्षों की सेनाओं को शस्त्रास्त्र समेट लेने की आज्ञा हो जाए।

देवेन्द्र ने इस बात का विरोध किया। उसकी युक्ति यह थी, "असुरराज तारक ने बिना किसी प्रकार की घोषणा के युद्ध आरम्भ कर दिया था और युद्ध से पूर्व किसी प्रकार की माँग नहीं की थी। बिना सूचना के युद्ध आरम्भ कर दिया था तो अब यह युद्ध तब ही बन्द होगा, जब देव पक्ष की बात मान ली जाएगी अथवा जब तक उसका धर्म के विपरीत होना सिद्ध नहीं होगा।"

शुक्राचार्य का कहना था, "युद्ध तो पूर्ण रूप से धर्म-विरुद्ध कार्य ही है। इस कारण इसे तो बन्द होना ही चाहिए।"

महादेव का कहना था, "देवेन्द्र का यह कहना है कि देव-पक्ष की ओर से कोई अधर्मयुक्त कार्य हो तो बताया जाए। युद्ध असुर पक्ष ने आरम्भ किया था। उसने आचार्य के कथनानुसार अधर्मयुक्त कार्य किया था। अतः असुर सेना को अपने-अपने देश को लौट जाना चाहिए। तब ही उनका अधर्मयुक्त कार्य समाप्त होगा। हाँ, जब देवता कोई अधर्मयुक्त कार्य करेंगे तो उसको रोकने के लिए कहा जा सकता है।"

शुक्राचार्य ने कहा, "अब हमने युद्ध-बन्दी के लिए आग्रह किया है। अतः हमने अधर्मयुक्त कार्य को समाप्त करने का आह्वान किया है। अब आपके पास इस अधर्मयुक्त कार्य को करते रहने का कोई कारण नहीं।"

"कारण यही है कि अभी आपने उस अधर्मयुक्त कार्य के लिए जो व्यवहार किया था, वह जारी है। अभी तक वह व्यवहार अर्थात् देव-पक्ष के क्षेत्र में आप उपस्थित हैं। देखिए आचार्यवर ! जब तक आप अपनी सेनाओं को अपने-अपने देश में वापस नहीं भेज देते तब तक आप अधर्मयुक्त कार्य तो कर ही रहे हैं। आप दूसरे के देश में बैठे हैं। युद्ध-बन्दी तो तब होगी, जब असुर सेनाएँ अपने-अपने देश को लौट जाएँगी।

"इस समय कुक्कट द्वीपों में तथा भूमध्य सागर के दक्षिणी तट पर सबा और साम देशों की सेनाएँ तथा तारक के देश मारमोरिका तथा दनुज, दानवादि जातियों के सैनिक अपने-अपने देश से सहस्रों मील दूर आकर मोर्चे पर डटे हुए हैं, तब तक युद्ध-बन्दी की घोषणा निरर्थक है।"

ब्रह्मा ने स्थिति का विश्लेषण करने के लिए कह दिया, "आक्रमण और युद्ध में अन्तर करना चाहिए।"

इन्द्र का स्पष्टीकरण था, "आक्रमण युद्ध का प्रारूप है। यह आक्रमण का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग ही है। मेरे कहने का भावार्थ यह है कि आक्रमण की स्थिति नहीं रहनी चाहिए। तब ही युद्ध-बन्दी अर्थात् आक्रमण के विपरीत कार्य रोका जा सकता है।"

"ठीक है इन्द्र !" ब्रह्माजी ने कहा, "आक्रमण का कुछ कारण था। इसलिए उस कारण को दूर करने की माँग की जा रही है।"

"ठीक है। बताया जाए कि आक्रमण का क्या कारण था ?"

शुक्राचार्य ने समझा कि अनजाने में ब्रह्माजी असुरों का पक्ष लेने लगे हैं। इस से वह प्रसन्न था और आक्रमण का कारण बताने लगा।

शुक्राचार्य ने कहा, "हमें देवताओं और उनके साथियों के विरुद्ध पाँच शिकायतें हैं। प्रथम यह कि देवताओं ने दिव्यास्त्र निर्माण कर उनका एक बहुत बड़ा भण्डार बनाया हुआ है। द्वितीय यह कि देवताओं ने सब उर्वरा भूमि पर अधिकार जमा रखा है। भारत-समुद्र की पूर्ण रत्नादि सम्पत्ति पर लंकाधीश का अधिकार है। समुद्रों की सब सम्पत्ति सबके लिए उपलब्ध होनी चाहिए।

"तीसरी बात यह है कि देवताओं की पत्नियाँ गौरवर्णीय और सुन्दर हैं। प्रकृति की इस सम्पत्ति पर भी हम उनका एकाधिकार स्वीकार नहीं करते। चौथी यह कि संसार के सब ज्ञान-विज्ञान पर मानवों और देवताओं ने एकाधिकार बना रखा है। हम उसका भोग भी चाहते हैं। पाँचवीं बात यह है कि हम सब देशों में प्रकृति की देन स्वर्णादि धातुओं का अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार चाहते हैं, जिससे इन पदार्थों का मनमाना दाम न लिया जा सके।"

ज्यों-ज्यों शुक्राचार्य इस असमानता का वर्णन करता जा रहा था, इन्द्रादि देवता हँस रहे थे। विशेष रूप में गौरवर्णीय सुन्दर स्त्रियों के विषय की बात सुन कर तो देव-पक्ष के साथ असुर-पक्ष के लोग भी हँस पड़े थे।

ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "देखो आचार्यवर ! भूम्यान्तर्गत अथवा समुद्रान्तर्गत चल सम्पत्ति उनकी है, जो उसको निकालकर प्रयोग करने की क्षमता रखते हैं। जिनके राज्य में वह सम्पत्ति उपलब्ध होती है, वे सामान्य-सा कर अपने प्रबन्ध के अनुरूप लेते हैं। यदि किसी असुर देश के रहने वाले को इस प्राकृतिक धन-सम्पद को प्राप्त करने में बाधा खड़ी की गई है तो बताओ। भूमण्डल के किसी भी नागरिक को इन प्राकृतिक उपलब्धियों को प्राप्त करने की क्षमता रखने पर राज्य-कर देकर स्वीकृति मिल जाती है। तुम यह बताओ कि अकारण किसी विदेशी से किसी देव-पक्ष के देशों में इस विषय में भेद-भाव किया गया है तो उसकी जाँच-पड़ताल हो सकती है।

"यही बात स्त्री-वर्ग की है। स्त्रियों की बात प्राकृतिक पदार्थों से कुछ भिन्न है। स्त्री न केवल सौन्दर्य, प्रेममय स्वभाव और भोग की निधि है, वरन् वह एक चेतन प्राणी भी है। जहाँ तक इसके प्राकृतिक गुणों का सम्बन्ध है, वे सबके लिए समान हैं; परन्तु उनके चेतन गुण पर तो उनका अपना ही अधिकार है। यह चेतना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की देन नहीं। यह उनमें उपस्थित आत्मा की देन है और इसके लिए देव तथा अन्य राज्यों के पास विनय-अनुनय करने की आवश्यकता नहीं। इसके लिए उनकी आत्मा के पास पहुँचना होगा। इसमें राज्य हस्तक्षेप नहीं करता। कोई भी असुर इन सुन्दर स्त्रियों के पास विवाह का प्रस्ताव तथा उसके लिए यत्न कर सकता है।"

शुक्राचार्य का कहना था, "हम आत्मा के अस्तित्व तथा यदि कुछ आत्मा नाम की वस्तु है भी तो उसको प्रकृति का एक अंग ही मानते हैं। अतएव हम आत्मा को न मान उसके अधिकारों को भी नहीं मानते।"

अत: वार्तालाप युद्ध-बन्दी के स्थान पर प्राकृतिक उपलब्धियों और उन पर अधिकार पर चल पड़ा। इन पर विवाद होते-होते दिन, तदनन्तर सप्ताह व्यतीत होने लगे। परमात्मा से लेकर पृथ्वी पर के कीट-पतंग तक और हिमालय पर्वत की उपलब्धियों से लेकर मेरु, सुमेरु में उपस्थित आग्नेय, महाभूत, जो अपने पेट की अग्नि स्वत: ही उगल रहे हैं, पर चर्चा चलने लगी।

इस सन्धि-वार्ता को चलते-चलते तीन मास व्यतीत हो गए। एक दिन समाचार आया कि कुमार ने अपनी सेना को लेकर मारमोरिका राजधानी में जा तारक के राजप्रासादों पर अधिकार कर लिया।

इस समाचार को पाते ही तारक देवताओं को गालियाँ देता हुआ अपने देश को चल पड़ा।

तारक ने सभा को छोड़ते हुए कहा, "हमें वार्तालाप में उलझाकर देवताओं ने हमसे छलना की है। ये आततायी और मिथ्यावादी हैं। इनसे बात तो युद्ध-भूमि पर ही हो सकती है। यह सन्धि-वार्ता तो धोखा है।"

तारक को देवताओं, विशेष रूप से कुमारसम्भव को पापी और झूठा कहते हुए उठते देख सभा भंग हो गई। सब असुर पक्ष के लोग सभा-मण्डप से बाहर निकल गए। देव पक्ष के लोग मण्डप में ही खड़े विपक्षियों को उठकर बाहर जाते देखते रहे।

शुक्राचार्य अपने स्थान से उठ ब्रह्माजी के सामने जा पहुँचा। ब्रह्माजी भी अपने अध्यक्ष के स्थान से उठ, सभा-मण्डप को खाली होते देख रहे थे।

शुक्राचार्य ने कहा, "पितामह ! यह छलना तो तुम्हारे साथ की गई है। अत: आपको कुमार को शाप दे देना चाहिए।"

ब्रह्माजी ने शुक्राचार्य का हाथ पकड़ सभा-मण्डप से बाहर ले चलते हुए कहा, "आचार्यवर ! जो सूचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, उनसे तो कुमार न पापी है और न ही मिथ्यावादी। उसने कुछ भी लुकाव-छुपाव से नहीं किया। यहाँ सभा में भी किसी देव-पक्ष वाले ने युद्धबन्दी स्वीकार नहीं की। इस अवस्था में कुमार को लांछन लगाना और गालियाँ देना अकारण है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा-भवन से निकल दोनों विद्वान् ब्रह्माजी के निवास-कक्ष की ओर जा रहे थे। शुक्राचार्य ने कहा, "पितामह ! मैंने आरम्भ में ही माँग उपस्थित की थी कि युद्धबन्दी की आज्ञा जारी की जाए।"

"परन्तु यह बात न तो देव पक्ष वालों ने मानी थी और न ही उन्होंने युद्ध-बन्दी के लिए रुचि प्रकट की थी। इसके विपरीत मैंने भी कह दिया था कि आक्रमण निःशेष हो जाए तो युद्ध-बन्दी स्वतः हो जाएगी।"

"परन्तु पितामह ! कुमार तारक की राजधानी में पहुँच, उसके राजप्रासादों पर अधिकार करने की सूचना तो सन्धि-वार्ता होते-होते देव-पक्ष वालों के आक्रमण की बात हो गई है। इसी से तारक नाराज होकर चला गया है।"

पितामह चलते-चलते खड़े हो गए और शुक्राचार्य के मुख पर देखकर बोले, "यह तो कुमार के सामने आने पर पता करने की बात थी कि वह किस कारण तारक के राज्य में प्रवेश कर गया है और मारमोरिका के राज्य-भवनों पर किस कारण अधिकार कर बैठा है। यह तो उसको यहाँ सभा में उपस्थित हो कारण वर्णन करने के लिए कहा जा सकता था और तब उसके व्यवहार पर किसी निष्पक्ष व्यक्ति से निर्णय माँगा जा सकता था।"

"तो क्या आप उसे वापस बुला रहे हैं ?"

ब्रह्माजी ने पुनः अपने भवन की ओर चलते हुए कहा, "मैंने कुमार को सभा में उपस्थित होने की आज्ञा भेज दी है। तारक को मुझसे पूछना चाहिए था कि इस सूचना पर मैंने क्या कार्यवाही की है।"

शुक्राचार्य ने अपने पीछे आते हुए अपने एक पार्षद से कहा, "रवि ! जाओ महाराज तारकजी को बुला लाओ।"

इतना कह शुक्राचार्य पुनः ब्रह्माजी के साथ उनके आवास-कक्ष की ओर चल पड़ा।

इन्द्रादि देवता अति प्रसन्न अपने-अपने निवास के लिए मिले आगारों को चल पड़े। इन्द्र यही चाहता था। कुमार के साथ उसकी बात हो चुकी थी। कुमार ने कहा था, 'देवेन्द्र ! मैं इस युद्ध को इसके अन्तिम परिणामों पर पहुँचाए बिना नहीं छोड़ूँगा।'

देवेन्द्र ने मुस्कराते हुए पूछा था, 'अन्तिम परिणाम क्या समझते हो ?'

'यही कि आक्रमण करने वालों को निःशेष कर दिया जाए। आक्रमण करने वालों का अगुआ तारक है। वह इस भूतल पर नहीं रहेगा। सबके सब उसके सहयोगी न रहकर मेरे सहयोगी बन जाएँगे। तारक के देश और राजधानी की ईंट से ईंट बज जाएगी।'

इन्द्र ने समझा था कि तारक युद्धभूमि में नहीं था, इस कारण वह बच गया है, अन्यथा कुमार अपनी यह प्रतिज्ञा भी पूर्ण कर चुका होता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा और शुक्राचार्य पितामह-भवन के बैठकघर में पहुँचकर आसनों पर बैठे तो ब्रह्माजी ने शीतल पेय लाने की आज्ञा दे दी। सेवक सन्तरों के रस से भरे रजत प्याले ले आया। इनको लेकर दोनों महाजन अभी पीने ही लगे थे कि शुक्राचार्य का भेजा हुआ सेवक आ गया और बताने लगा, "महाराज ! मेरे वहाँ पहुँचने से पूर्व ही महाराज तारक अपने विमान पर सवार हो अपने देश के लिए प्रस्थान कर चुके थे।"

"अन्य प्रतिनिधियों को कहो कि वे अभी न जाएँ। सब वहीं ठहरें। मैं उनसे विचार करने के लिए आ रहा हूँ।"

ब्रह्माजी ने पेय लेते हुए कहा, "तारक ने यह भूल की है। यदि यह सत्य है कि कुमार राजभवनों पर अधिकार कर चुका है तो तारक वहाँ जाकर जीवित नहीं रह सकता।"

"परन्तु वह शारीरिक बल में तो कुमार से बलिष्ठ और अधिक अनुभवी प्रतीत होता है। यदि कहीं दोनों में द्वन्द्व-युद्ध हो गया तो निस्सन्देह कुमार मारा जाएगा।"

"हाँ।" ब्रह्माजी का कहना था, "यह सम्भावना भी है। फिर भी यह ठीक नहीं हुआ। तारक को यहाँ रहना चाहिए था, जिससे कुमारसम्भव से किए जाने वाले प्रश्नोत्तरों में वह भी भाग ले सकता और फिर किसी परिणाम पर पहुँचा जा सकता।"

"अब और क्या परिणाम ढूँढ़े जाने वाले हैं? प्रत्यक्ष रूप में तो असुर पक्ष निःशेष हो गया है।"

ब्रह्माजी ने मुस्कराते हुए कहा, "पाप और पुण्य इस पृथ्वी पर कभी निःशेष नहीं होते। दोनों देव और असुर-प्रकृति के लोग इस संसार में आदिकाल से हैं। और अन्तकाल तक रहेंगे। इस कारण किसी पक्ष का शेष होना सम्भव नहीं। प्रश्न तो यह है कि एक की विजय और दूसरे की पराजय किन उपायों से की गई है? वे उपाय धर्मयुक्त हैं अथवा अधर्मयुक्त?"

इसपर शुक्राचार्य गम्भीर हो विचारमग्न हो गया।

: ४ :

सभा में आए इन्द्रादि देव पक्ष के प्रतिनिधि अपने-अपने देश को लौट जाने वाले थे। सब इस घोर युद्ध के परिणाम से प्रसन्न थे। यद्यपि युद्ध में सम्मिलित होने वाले देशों को बहुत हानि उठानी पड़ी थी। धन-जन की अपार हानि हुई थी। फिर भी इस विचार से कि युद्ध आरम्भ करने वालों को अति कठोर दण्ड दिया गया है, सब प्रसन्न थे।

अयोध्या-नरेश महाराज ककुत्स्थ तो ब्रह्मपुरी से जाने के विषय में अपने सेवकों को आज्ञा दे रहे थे कि शीघ्र ही घर लौटने की तैयारी कर दी जाए। इस समय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितामहजी का सन्देश आया कि अभी कोई नहीं जाए। वह स्वयं उनके शिविर में किसी आवश्यक विषय पर विचार करने आ रहे हैं। इस सन्देश के आने पर महाराज ककुत्स्थ ने अपना प्रस्थान रोक दिया। इन्द्रादि देवता भी तैयारी कर रहे थे। उनको पता चला कि ककुत्स्थ ने सामान बाँधना रोक दिया है तो उसके पास चले आए। इन्द्र ने अयोध्या-नरेश का आधा सामान बँधा रखा देख पूछ लिया, "तो आप नहीं जा रहे ?"

"अभी जाना स्थगित कर दिया है। वैसे तो अपनी राजधानी से आए हमें दो मास से ऊपर हो चुके हैं और वहाँ जाना ही है, परन्तु पितामह के आदेश की अवहेलना नहीं की जा सकती।"

इन्द्र हँस पड़ा। हँसते हुए बोला, "महाराज ! सब अपने-अपने स्थान पर माननीय होते हैं और यदि वे किसी दूसरे के स्थान पर जा बैठें तो सदा अपमानित कर वहाँ से हटा दिए जाते हैं।"

महाराज ककुत्स्थ के इस बात पर कान खड़े हो गए। वह इन्द्र के इस कथन का आशय समझने का यत्न करने लगा। कोसल-नरेश का मुख देखते हुए इन्द्र ने अपने कथन की व्याख्या कर दी। उसने कहा, "हमारे पितामह शान्ति के देवता हैं। अतः शान्ति-वार्ता के समय वह अध्यक्ष थे। अब राज्यकाल है और यह मेरा, देवराज का कार्यकाल आ गया है। अब पश्चिमी महासागर से लेकर पूर्वी महासागर तक मेरा साम्राज्य है। यह अब मेरे काम का अवसर है।"

ककुत्स्थ समझ गया कि देवराज को इस विजय पर अभिमान हो रहा है। उसका इस विजय में यदि अधिक नहीं तो उतना ही भाग है, जितना कि उसका। फिर भी अपने विजय प्राप्त करने पर अपनी शेखी बघारने वाले इन्द्र से उसने कहा, "वह ज्ञान में और अनुभव में मुझसे अधिक हैं। इस कारण अपने देश और जातीय स्वभावानुसार मैं उनकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता।"

देवेन्द्र इस कथन से झेंप गया और कुछ नरम हो बोला, "परन्तु महाराज ! अब सन्धि-वार्ता समाप्त हो गई है। असुरराज वार्ता भंग कर चला गया है। उसके आचार्य भी वार्ता से उठ आए हैं। अब इस वार्ता को समाप्त न कर उसके विषय पर पुनः विचार करने का अभिप्राय ऐसे है, जैसे हड्डियों में मांस समाप्त हो जाने पर भी उसे चूसते जाना।"

महाराज ककुत्स्थ मुस्कराया और बोला, "चूसने वाले को इसमें रस मिलता है, तभी तो वह उसे छोड़ता नहीं। अतः भगवन् ! मुझे ब्रह्माजी के कथनों में और भी रस मिलने की आशा है।"

इन्द्र चुपचाप खड़ा रहा। समीप खड़े शिव और वरुण इन दोनों में हो रही वार्ता सुन रहे थे। इस कारण शिव ने कह दिया, "मैं भी जाना स्थगित कर रहा हूँ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरुण का कहना था, "मैंने तो अभी सामान बाँधने की आज्ञा ही नहीं दी। अब पितामहजी के यहाँ आने की प्रतीक्षा में हूँ।"

अपने ही साथियों के इस प्रकार विचार को सुन इन्द्र ने कह दिया, "यदि आप सब नहीं जा रहे तो मैं भी अपना जाना स्थगित कर देता हूँ। मेरा सामान तो अपने विमान में जा चुका है, परन्तु पितामहजी की बात सुनकर ही जाऊँगा।"

इस प्रकार सब पुनः शिविर के साझे बैठकघर को चल पड़े। इन्हें वहाँ चिरकाल तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

पितामह और शुक्राचार्य दोनों वहाँ आए। आते ही शुक्राचार्य ने अपने विरोधी पक्ष वालों को कहा, "असुर पक्ष के सब नरेश अपने-अपने देशों को चले गए हैं और उनको पुनः बुलाया जा सकता है।

"मैं और पितामह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि अब विजय-पराजय का निश्चय हो जाने पर दोनों पक्षों में कैसे सम्बन्ध रहेंगे, यह विचारणीय हो गया है।"

"तो पितामह का इसमें क्या मत है?"

"मेरा मत है कि भूमण्डल के सब देशों का एक परिमण्डलीय-संघ बन जाना चाहिए और सब देशों के साझे कार्यों पर उस संघ में निर्णय हुआ करे। उस संघ को बनाने का तथा उसके अधिकार और कार्य-विधि के विषय में विचार करने का कार्य आवश्यक है।"

"पितामह!" इन्द्र ने कहा, "इस काम के लिए मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि हमारी ओर से महामुनि नारद बातचीत करेंगे। जो कुछ वह निश्चय करेंगे, हम उसको स्वीकार कर लेंगे।"

पितामह ने समझा कि देवेन्द्र उनकी और आचार्य की हँसी उड़ा रहा है। इस कारण पितामह ने शिवजी की ओर देखकर कहा, "महादेव, तुम क्या कहते हो?"

"मैं नारदजी को इस काम के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं मानता। उस सभा में अपने प्रतिनिधित्व के लिए मैं तो पितामह को ही उचित समझता हूँ।"

कोसल-नरेश महाराज ककुत्स्थ ने कहा, "पितामह तो इस सन्धि-सभा के अध्यक्ष होंगे। सभा में सभासद् तो अन्य लोग होने चाहिए। अपने देश का मैं प्रतिनिधित्व करूँगा। इस काम के लिए मैं कुछ काल तक यहाँ ठहरने के लिए भी तैयार हूँ।"

"अब बताओ देवेन्द्र! क्या विचार है?"

देवेन्द्र ने एक क्षण ही विचार किया और कह दिया, "परन्तु दूसरे पक्ष का तो कोई भी प्रतिनिधि यहाँ नहीं है।"

"यह शुक्राचार्यजी जो हैं।" ब्रह्माजी ने सुझाव दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस नई परिस्थिति में इनको भी तो अपने साथियों से नवीन सम्मति करनी होगी।"

शुक्राचार्य ने यह स्वीकार किया कि जो कुछ वह यहाँ स्वीकार करेगा, उस-पर बाद में उन देशों से सम्मति करनी होगी, जो देश इस युद्ध से सम्बद्ध हैं।

पितामह के मन की कल्पना मन में ही रह गई। उन्होंने कह दिया, "तो ठीक है। अब इन्द्रादि भी जा सकते हैं।"

देव पक्ष के प्रतिनिधि अपने-अपने निवास-कक्ष को चले गए और घरों को जाने की तैयारी करने लगे। शुक्राचार्य भी विचार कर रहा था कि वह मारमोरिका जाए अथवा वहाँ की स्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान न होने से अभी किसी अन्य स्थान पर जाकर रहे। इसी चिन्ता में वह अपना सामान ठीक करवा रहा था कि ब्रह्माजी का एक प्रतिहार आया और उससे कहने लगा, "पितामहजी का आग्रह है कि आप अभी कुछ दिन के लिए यहीं रहिए। वह आपसे एक अति गम्भीर विषय पर विचार करना चाहते हैं।"

शुक्राचार्य मान गया। प्रतिहार उसको ब्रह्माजी के भवन के अतिथिगृह में ले गया।

जब इन्द्र अपने विमान को जाने लगा तो शिवजी ने पूछा, "दादा! तुमने ब्रह्माजी के कथन का अनादर किस कारण किया है?"

"मैंने अनादर नहीं किया। युक्ति से उनको समझा दिया है कि भूमण्डल के सम्राटों में सन्धि-वार्ता किस प्रकार होगी, उसका विचार करने का अभी समय नहीं।

"मुझे कुछ ऐसा लगा था कि कुमार के लौटने तक यह हम सबको यहाँ रोकना चाहते थे।

"हमको यहाँ रोकने की आवश्यकता नहीं। कुमार के इस कार्य की व्याख्या जानने की आवश्यकता तो है, परन्तु देवलोक के गुप्तचर उसके साथ हैं। वे या तो अभी तक देवलोक लौट आए होंगे अथवा एक-दो दिन में आ जाएँगे और मुझे वहाँ की घटना का वृत्तान्त पता चल जाएगा।"

ककुत्स्थ ने भी कहा, "मुझे भी कुछ ऐसा ही समझ में आया था कि पितामह हमें यहाँ किसी प्रयोजन के लिए रोक रहे थे। वह अपना अभिप्राय हमें आचार्यजी के सम्मुख बता नहीं सके।"

"आचार्यजी को मैं देवलोक में चलने का निमन्त्रण देने वाला हूँ।"

"कब?"

"तनिक उनको चलने के लिए तैयार होने दो, अन्यथा ब्रह्माजी समझेंगे कि मैं उनको जानबूझकर यहाँ से ले गया हूँ और कदाचित् मैं उनको देवलोक में बन्दी बना रखना चाहता हूँ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये लोग अभी विचार-विमर्श ही कर रहे थे कि इनको सूचना मिली कि शुक्राचार्य ब्रह्मलोक में ही ठहरा लिए गए हैं।

इस बात ने सबको विचार करने पर विवश कर दिया कि पितामह अवश्य किसी प्रकार की योजना मन में रखते हैं। साथ ही सब यह भी विचार कर रहे थे कि अब वह योजना उनकी अनुपस्थिति में बनेगी। सबसे प्रबल सन्देह इन्द्र को था। वह ब्रह्माजी को सीमा से अधिक वृद्ध हो गया अनुभव करता था और वर्तमान विजय को पराजय में बदलने में यत्नशील प्रतीत हुआ था।

एकाएक इन्द्र ने कह दिया, "मैं आज यहाँ से विदा नहीं हो रहा।"

सन्देह तो महाराज ककुत्स्थ के मन में भी था। इतिहास जैसा वह अपने आचार्यों से सुनता था, उससे समझ रहा था कि भले लोग दयावश दुष्ट की दुष्टता को उसकी पराजय के उपरान्त विस्मरण कर उसे पुनः शक्ति-संचय करने का अवसर दे देते हैं।

उसके अपने मन में भी एक योजना थी और उस योजना को शान्ति-सभा, वह जब भी हो, में उपस्थित करना चाहता था; परन्तु इन्द्र ने शान्ति-सभा को धकेलकर आगे कर दिया था और पितामह ने उनके बिना ही कुछ करने का विचार बना लिया प्रतीत होता था। इसी कारण वह समझ रहा था कि पितामह ने शुक्राचार्य को अपने पास ही रोक लिया है।

ककुत्स्थ और अन्य देव पक्ष के प्रतिनिधि अभी अपने-अपने मन में यह विचार कर रहे थे कि ब्रह्माजी का आचार्यजी को यहाँ रख लेने का क्या उद्देश्य हो सकता है कि तब तक इन्द्र बोल उठा, "मैं अभी नहीं जा रहा।" उसने अपने सेवकों को आज्ञा दे दी, "मेरा सामान विमान से उतारकर ले आओ।"

"परन्तु देवेन्द्र! पितामह को अपने इस व्यवहार की सफाई क्या देंगे? तुम ही तो सबसे अधिक उत्सुक थे यहाँ से जाने के लिए।"

इन्द्र ने कह दिया, "कह दूँगा कि विमान में कुछ खराबी आ गई है और उसे ठीक किया जा रहा है।"

ककुत्स्थ हँस पड़ा। बोला, "तो असत्य भाषण करोगे?"

"नहीं। बात ठीक है; परन्तु बाहर खड़े विमान में खराबी नहीं आई, वरंच मेरे मन के विमान में गड़बड़ मच गई है। वह अभी शची की ओर वेग से भागा जा रहा था कि अब तारक और उसके साथियों के विषय में विचार करने लगा है।"

"यही तो मिथ्यावाद है। न तुम्हारा विमान बिगड़ा है और न ही मन। यह तुम्हारी बुद्धि ही शरारत कर रही है।"

"तो आप ऐसा मत कीजिए। आप लोग जा सकते हैं। आपमें से किसी के विमान में तो खराबी आई नहीं। मुझे कुछ ऐसा समझ आ रहा है कि आप सबको शीघ्र ही लौटकर यहाँ आना पड़ेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ककुत्स्थ ने कुछ विचार किया और अपने विमान को जाने का निश्चय कर बोला, "अच्छा, दादा देवेन्द्र ! मैं चलता हूँ। यदि पुनः यहाँ आना पड़ा तो आ जाऊँगा।"

वरुण और विद्युत्केश तो अब तक जा चुके थे। जब ये दोनों भी गए तो महादेव और इन्द्र ही रह गए। महादेव की ओर देखकर इन्द्र ने पूछा, "तो शिव ! तुम भी नहीं जा रहे ?"

"मैं तो पहले भी नहीं जा रहा था। मैं कुमार से मिलने के लिए उत्सुक हूँ और उसे लेकर ही कैलासलोक में जाऊँगा। मुझे ज्ञात हुआ है कि जब से युद्धभूमि अपने देश से दूर गई है, वह कैलासलोक में नहीं गया। उसकी माँ भी चिन्ता करती होगी।"

इन्द्र मुस्कराया और चुप रहा। दोनों अपने-अपने विश्राम-कक्ष में चले गए। इन्द्र ने अपना सामान विमान से वापस मँगवा लिया।

ब्रह्माजी को सूचना मिल गई कि इन्द्र और शिव अभी टिके हैं। वे अपने देशों को नहीं लौटे।

रात को भोजन के समय ये सब एकत्रित हुए तो ब्रह्माजी ने पूछ लिया, "तो तुम अभी नहीं गए ?"

"नहीं महाराज !" उत्तर इन्द्र ने दिया, "मैं आचार्यजी को साथ लेकर जाने का विचार रखता हूँ।"

"क्यों ? इनसे क्या काम है ?"

"मेरा अनुमान है कि मारमोरिका में इनका निवास-स्थान इनके लिए सुरक्षित नहीं रहा होगा और इनको मैं अपने यहाँ वही सुख-सुविधा देने की क्षमता रखता हूँ जो इनको असुरलोक में प्राप्त होती थीं।"

शुक्राचार्य ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "देवेन्द्र ! मेरी सुख-सुविधा के विषय में क्या जानते हो ?"

"भगवन् !" इन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "सब सुविधाओं की बात तो नहीं कह सकता। कुछ शयनागार की सुविधाएँ ऐसी भी हो सकती हैं, जो मुझे ज्ञात न हों। मेरे गुप्तचर वहाँ तक न पहुँचे हों, परन्तु बाहर की बातें तो मैं प्रायः सब जानता हूँ। प्रातः से रात सोने तक की आपकी दिनचर्या सब मुझे ज्ञात है।

"पितामह ! इनकी सेवा के लिए तारक ने एक सौ दासियाँ रखी हुई थीं और आप पिछले पाँच वर्ष से अपना एक नीति का ग्रन्थ लिख रहे हैं। उसके लिए भी इनको एक अति सुन्दर, सभ्य, सुशील और बहुत ही सुन्दर सुलेख लिख सकने वाली लेखिका मिली हुई है।"

शुक्राचार्य खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, "तो ये सब सुविधाएँ देवेन्द्र मुझे देने वाले हैं ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ भगवन् ! मैं यत्न करूँगा कि वहाँ की सब सेविकाएँ ही आपके लिए अमरावती में मँगवा लूँ, जिससे आपको सब कुछ वैसा ही दिखाई दे, जिसका आपको पिछले बीस वर्ष से अभ्यास है।"

"तब तो ठीक है। मैं अमरावती चलूँगा। परन्तु मैं आशा कर रहा हूँ कि तारक भी तो निश्चल बैठने वाला व्यक्ति नहीं। जब भी जहाँ अपना निवास बनाएगा, वहीं मैं चला जाऊँगा।"

"तो तारक से भी आपका मोह है ? भगवन् ! मैं उसे भी आपके पास बुलवा दूँगा। आपका निवास और उसका निवास-स्थान एक ही होगा।"

ब्रह्माजी ने बताया, "तारक मारा गया है। इस कारण उसकी अब चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। अपने पीछे वह पटरानी और दो पुत्र छोड़ गया है। कुमार ने उनको भी बन्दी बनाकर यहाँ भेजने का विचार किया हुआ है।"

महादेव कुमार की बात सुन विस्मय में पितामह का मुख देखने लगा। ब्रह्माजी ने भोजन आरम्भ किया तो अतिथि भी भोजन करने लगे। भोजन करते हुए महादेव ने पूछा, "और कुमार कब लौट रहा है ?"

"वह इस समय कैलासलोक में बैठा अपनी माँ को अपने युद्धकार्य का वृत्तान्त बता रहा है।"

"ओह ! और मैं उसे अपने साथ वहाँ ले जाने के लिए ही यहाँ ठहरा हुआ हूँ।"

"वह कल यहाँ आएगा। आज कैलास-भवन में विश्राम कर रहा है और उसकी माँ उसके विवाह के विषय पर विचार कर रही है।"

"बस, स्त्रियों में यही दोष है। दिन-रात वे विवाह, सन्तान और फिर पुत्र-पौत्रों की बात ही विचार करती रहती हैं।"

"यह क्या कोई बुरी बात है ?" ब्रह्माजी ने मुस्कराते हुए पूछ लिया और कहा, "परमात्मा द्वारा आरम्भ किए यज्ञ को ही तो वे चलाने में यत्नशील रहती हैं।"

"जो बात पुरुष नहीं कर सकते, विधाता ने वह उनके करने के लिए नियत की हुई है और वे ही वह सब करने का यत्न करती रहती हैं।"

शुक्राचार्य ने बताया, "हम पिछले एक सौ वर्ष से कृत्रिम प्राणी निर्माण करने का यत्न कर रहे थे। लगभग एक सौ से ऊपर विद्वान् दिन-रात इस बात का यत्न कर रहे थे कि स्त्रियों को प्रसव के कष्ट से मुक्त कर दिया जाए। ऐसे मटके बनाए जा रहे थे, जिनमें प्राणी माँ के पेट से बाहर बन सके। हम यहाँ तक तो सफल हो गए थे कि पुरुष-ओज और स्त्री-रज के संयोग से माँ के पेट से बाहर सन्तान-निर्माण करें, परन्तु हम इस बात में सफल नहीं हो सके कि बिना रज और वीर्य के प्राणी-निर्माण कर सकें।"

ब्रह्माजी ने मुस्कराकर कहा, "और जो मटकों में निर्मित होते हैं वे अभी तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे श्रेष्ठ नहीं बन सके, जैसे माँ के पेट में निर्मित होते हैं।"

"हाँ, परन्तु हमारे विद्वान् इसपर भी यत्न कर रहे थे कि माँ के पेट में निर्मित और मटके में निर्मित प्राणी एक समान हों। इसमें सफलता नहीं मिल सकी।"

"और आचार्यवर! मैं ऐसा शरीर बनाने की क्षमता रखता हूँ, जिसमें माँ के पेट से भी अधिक सुन्दर और सुदृढ़ शरीर निर्माण हो सके; परन्तु मैं यह करता नहीं। आदिब्रह्मा ने ऐसा ही किया था। उसने जन्तुओं की अनेक श्रेणियाँ सृष्टि के आदि में निर्माण की थीं। उसमें देवी पृथिवी और देवता सविता का सहाय मिला था। वह अब भी हो सकता है, परन्तु मैं ऐसा करता नहीं।"

"क्यों?" इन्द्र का प्रश्न था।

"केवल इस कारण कि प्राकृतिक उपायों से उत्पन्न प्राणी इस कृत्रिम निर्माण से अधिक सुगम और निश्चित उपाय है। पृथिवी और सविता से निर्मित प्राणियों में दस-पन्द्रह प्रतिशत ही पूर्णांग और सन्तुलित मन तथा बुद्धि रखते हैं। शेष पच्चासी और नब्बे प्रतिशत शरीरों को जीवात्मा ग्रहण करने से अस्वीकार कर देती है। वे उन शरीरों में आकर निवास नहीं करतीं। कभी किसी विवशता के कारण आती भी हैं तो उसे छोड़ने के लिए उत्सुक रहती हैं।

"माँ के पेट में तो सहस्र में एक-आध शरीर ही अस्वीकार होता है। शेष सब में जीवात्माएँ प्रसन्नतापूर्वक निवास स्वीकार करती हैं।"

शुक्राचार्य ब्रह्मा के इस कथन पर गम्भीर भाव में विचार करता रहा और भोजन भी करता रहा।

: ५ :

अगले दिन मध्याह्न के समय कुमार ब्रह्मलोक में पहुँच गया। अपने विमान से उतरते ही वह सीधा ब्रह्माजी के कक्ष के बाहर जा पहुँचा। शिव और इन्द्र भी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे तारक और उसके परिवार के विषय में जानना चाहते थे। अतः भवन के बाहर विमान के उतरने का शब्द सुनकर वे अपने-अपने निवास-कक्ष से निकल आए और कुमार के पितामह के सम्मुख उपस्थित होने की स्वीकृति मिलने से पूर्व ही उसके सामने जा पहुँचे।

कुमार ने पहले महादेव और बाद में इन्द्र के चरण-स्पर्श किए तो दोनों ने उसकी पीठ पर हाथ रख आशीर्वाद दिया। शिव का प्रथम प्रश्न था, "तुम्हारी माता तथा मौसी कैसी हैं?"

"पिताजी! दोनों अति प्रसन्न हैं और उत्सुकता से आपके लौटने की प्रतीक्षा में हैं।"

इन्द्र मुस्कराता हुआ पूछने लगा, "क्या तुम्हारे विवाह की तैयारी में वे इनके सहयोग की इच्छा नहीं करतीं?"

"हाँ पिताजी! परन्तु मैंने माँ को कह दिया है कि अभी मेरी विवाह की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा नहीं है।"

"क्यों ?"

इस समय भीतर आने की पितामह की स्वीकृति हो गई। तीनों पितामह के समक्ष जा खड़े हुए। शुक्राचार्य भी वहाँ उपस्थित था।

ब्रह्माजी ने कुमार को अपने समीप बिठाकर उसकी पीठ ठोकते हुए कहा, "कुमार ! मैं तुम्हारी इस युद्ध में सफलता और इसे पूर्णता तक पहुँचाने पर बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी पच्चीस वर्ष की योजना को तुमने आज पूर्णता तक पहुँचाने में भगीरथ-प्रयत्न किया है। मैं अति प्रसन्न हूँ।

"वैसे तारक के निधन का समाचार तो मिला है, परन्तु यह किस प्रकार हुआ, हम सुनने के लिए उत्सुक हैं। क्या उससे द्वन्द्व-युद्ध हुआ था ?"

"नहीं पितामह ! जब सन्धि-सभा यहाँ आरम्भ हुई थी तो मैं असुरों को भगाता हुआ भूमध्य सागर में डूबने के लिए धकेल रहा था। उस समय तारक के साथी असुर-नरेशों ने मेरे सम्मुख हथियार डाल दिए। मैंने उनको जीवनदान तो दिया, परन्तु निर्भय जीवन का आश्वासन नहीं दिया। वह तो आपके अधीन ही है। अन्तिम शान्ति-व्यवस्था तो आपके अधीन ही थी।

"मेरे जीवन-दान से वे सेना सहित अपने-अपने देशों को लौट गए तो मेरे लिए मार्ग सुगम हो गया। लंकाधिपति विद्युत्केश की सहायता से सागर-पोत उपलब्ध हुए तो मैं सेना को लेकर पूर्ण भूमध्य सागर को पार कर मारमोरिका जा पहुँचा।

"ऐसा प्रतीत होता है कि उस नगर का पुरुष-वर्ग सेना में भरती हो, यमलोक पहुँच चुका था। नगर का सब प्रबन्ध स्त्रियों के हाथ में ही था। अतः हमारे पोत के वहाँ पहुँचते ही श्वेत पताका से हमारा स्वागत हुआ और शान्ति से हमारा अधिकार हो गया। मैंने सुकेश को वहाँ के शासक के रूप में रखने का विचार किया और स्वयं एक रात वहाँ विश्राम कर लौटने ही वाला था कि आकाश से तारक का विमान उतरता दिखाई दिया। सुकेश ने उसे आकाश में ही ध्वंस कर दिया। विमान भूमि पर जलता हुआ गिरा तो उसमें से कोयले की भाँति जला हुआ तारक का शव मिला।

"मैं अब तारक के देश का प्रबन्ध सुकेश के हाथ सौंप आया हूँ। रात मैं कैलाश-भवन में रहा हूँ और अब आपकी सेवा में उपस्थित हूँ।"

"और सुकेश कैसा है ?" महादेव ने पूछ लिया।

"वह अति प्रसन्न है। प्रायः सब असुर देशों की समस्या वहाँ पुरुषों का अभाव है। मैंने तो उसे सम्मति दी है कि वहाँ की स्त्रियों को सागर-पोतों में भर-भरकर देव-पक्ष के देशों में बाँट दे।

"फिर भी सबको पति मिलने कठिन हैं। अतः असुरों को यह प्रथा स्वीकार करनी पड़ेगी कि एक पुरुष कई-कई पत्नियाँ रख सके।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हें कोई स्त्री पत्नी-रूप में मिली अथवा नहीं ?" इन्द्र का प्रश्न था।

"एक बहन के रूप में मिली है। उसे मैं माताजी के पास छोड़ आया हूँ।"

"ओह !" शिव विस्मय में मुख देखता रह गया।

कुमार ने कहा, "पिताजी ! अपने राजभवन में एक लड़की का अभाव-सा लगता था। इस कारण तारक की एक लड़की शील को ले आया हूँ।"

"और वह स्वेच्छा से चली आई है ?" ब्रह्माजी का प्रश्न था।

"तारक की दस-बारह पत्नियाँ थीं। शील की माता का देहान्त हो चुका था। जब उसने पिता का निधन होता देखा तो मुझे मिली और विवाह की याचना करने लगी। मैंने उसे कहा कि वह तो छोटी-सी बहन लग रही है। वह बारह-तेरह वर्ष की आयु की है।

"लड़की ने कहा, 'तो अपनी माँ के पास ले चलो। बहन-भाई की माँ तो एक ही होती है।'

"मुझे उसका यह प्रस्ताव पसन्द आया और मैं उसे कैलासलोक में ले आया और अपनी बहन कहकर माताजी के पास रख आया हूँ।"

"तुम्हारी माताजी ने इसे कैसा अनुभव किया है ? उन्होंने उसे अपनी बेटी के रूप में स्वीकार किया है अथवा पुतोहू के रूप में ?" शिवजी का प्रश्न था।

"वह इस नये जीव के राजप्रासाद में पहुँचने से सन्तोष अनुभव करती प्रतीत हो रही थीं।"

ब्रह्माजी ने बात बदल दी। उन्होंने पूछा, "क्या युद्ध का अन्य कुछ परिणाम भी समझ में आया है ?"

"प्रायः सब असुर देशों में हाहाकार मचा हुआ है। राज्य भिखारी हो गए हैं। पिछले तीन वर्ष से वहाँ धनाभाव के कारण सार्वजनिक कार्य नहीं हो सके। इससे विद्यालय, रुग्णालय, चिकित्सालय, पंथागार और नगरों में मार्ग और अन्य सुख-सुविधा के सार्वजनिक साधन सब टूट-फूट चुके हैं।"

पितामह ने इन्द्र से कहा, "सब देशों के विद्वानों की एक सभा बुलाकर इस समस्या पर विचार करना चाहिए। मैं समझता हूँ कि यदि इसी मात्रा में नहीं तो भी बहुत बड़ी सीमा तक यह समस्या अपने पक्ष के देशों में भी उपस्थित हो चुकी होगी।"

इन्द्र का कथन था, "महाराज कोसल-नरेश बता रहे थे कि अयोध्या के विद्वानों को इस स्थिति की सम्भावना प्रतीत होती थी और उन्होंने इसके लिए युद्ध से कई वर्ष पूर्व ही प्रबन्ध विचार कर लागू कर दिए थे।

"देवलोक में तो यह समस्या इतनी उग्र नहीं। कारण यह कि वहाँ स्त्रियाँ पहले ही स्वतन्त्र रूप से जीवनयापन करना जानती हैं। वे कभी भी पुरुषों पर निर्भर नहीं रहीं। केवल यौन-सम्बन्धों की सुविधा कम हो जाएगी। इसके लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने देश में वही उपाय प्रयोग कर रहा हूँ, जो अयोध्या के विद्वानों ने आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व प्रयोग करने आरम्भ किए थे।"

शिव ने पूछ लिया, "क्या उपाय प्रयोग कर दिए हैं?"

"उन्होंने बताया है कि सब अध्यापकों, पुरोहितों और आचार्यों को यह आदेश दे रखा था कि पूर्ण देश में वैराग्य का वातावरण बनाना है। कोसल-नरेश कह रहे थे कि कई वर्ष से वहाँ वर्ष-भर में उत्पन्न होने वाले बच्चे अनुपात से कम उत्पन्न हो रहे थे।"

"परन्तु," ब्रह्माजी का प्रश्न था, "इस शिक्षा से तो पुरुष भी प्रभावित हुए होंगे। तो फिर यह कैसे हो गया कि युद्ध में सब देशों से अधिक सैनिक उनके देश ने भेजे थे और वे मेरी सूचनानुसार लड़े भी बहुत बहादुरी से हैं। भारतवर्ष के योद्धाओं में कोसल राज्य के योद्धा सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।"

"क्यों कुमार?" शिवजी का प्रश्न था, "कोसल-निवासी सैनिकों के विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है?"

"पिताजी! वे सब सेना की प्रथम पंक्ति में होकर लड़ते रहे हैं। वैसे भारतवर्ष के सब सैनिक युद्ध करने में अति वीर-धीर और गम्भीर सिद्ध हुए हैं। कठिन से कठिन स्थिति से भी वे अपने कार्य से विचलित नहीं होते थे।"

"यह असम्भव प्रतीत होता है।" पूर्ण वृत्तान्त सुन रहे शुक्राचार्य ने कह दिया, "यह सब मानव-स्वभाव के विपरीत है।"

"आचार्यवर! स्वभाव तो बदला जा सकता है और महाराज ककुत्स्थ भी यही कह रहे थे कि वैराग्य का अर्थ स्वभाव को संसार का मोह छोड़ कर्तव्यपालन की ओर प्रवृत्त करना ही था। उनके देश के विद्वानों ने वैराग्य से यही अर्थ ग्रहण किए हैं।"

"इस स्थिति में उस देश के विद्वानों को भूमण्डल के उन सब देशों में भेजना चाहिए, जिन पर युद्ध का विनाशकारी प्रभाव हुआ है।"

शुक्राचार्य ने पुनः वार्तालाप में भाग लेते हुए पूछा, "यह स्वभाव कैसे बदला जा सकता है? मैं तो समझता हूँ कि जीवन-काल में तो यह बदला नहीं जा सकता। पदार्थ के गुणों की भाँति ही यह मनुष्य से चिपटा रहता है।"

"हाँ भगवन्!" इन्द्र ने कहा, "इसका बदलना कठिन तो है, परन्तु यह बदला जा सकता है। हमने देवलोक में इस पर परीक्षण किए हैं। संसार-भर की स्त्रियाँ एक पति की संगति की इच्छा स्वभाव से करती हैं; परन्तु पचास वर्ष के निरन्तर प्रचार और प्रलोभनों से हमने अपने देश में यह स्वभाव बना दिया था कि स्त्रियाँ स्वभाव से पति बदलती हैं।"

ब्रह्माजी हँस पड़े और बोले, "यह पहाड़ की ढलान पर नीचे को लुढ़कना है। यह स्वभाव में परिवर्तन नहीं कहलाता। यह लुढ़कना तो भू-आकर्षण के कारण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवशता है। ज्यों ही भू-आकर्षण को निःशेष करते हैं तो मनुष्य स्वभाव से नीचे गिरने की अपेक्षा ऊपर को उठने लगता है।"

"तो क्या स्वभाव ऊपर को उठता है?" शुक्राचार्य का प्रश्न था।

"हाँ।" ब्रह्माजी का निश्चित मत था, "जीवात्मा-परमात्मा का सयुजा और सखा होने के कारण उनकी स्वाभाविक इच्छा अपने सखा और सहयोगी की ओर जाने में रहती है। प्रश्न यह नहीं होता कि जीवात्मा का स्वभाव बदला जाए। समस्या यह है कि भू-आकर्षण की भाँति इसकी विवशताओं को निःशेष किया जाए। इसे प्रकृति के भोगों से अलिप्तता-निर्माण करना कहते हैं।"

अब इन्द्र ने कह दिया, "पितामह! यही महाराज ककुत्स्थ ने कहा था। उसका कहना था कि जब भगीरथ ने देवताओं से सन्धि की तो उनके वंशज, जो अयोध्या में राज्य करते थे, देवताओं से सन्धि के परिणामस्वरूप किसी धर्म-युद्ध की सम्भावना पर विचार करने लगे थे। इसी निमित्त उन्होंने अपने देश के विद्वानों की सभा बुलाकर भविष्य में होने वाले युद्ध के विनाशकारी परिणामों से बचने के उपायों पर विचार किया था।

"वहाँ के विद्वानों ने दो बातों का चलन तब से ही उत्पन्न किया था। एक तो प्रकृति से अलिप्तता; परन्तु यह तो एक नकारात्मक चलन है। इसके स्थान पर उन्होंने कर्तव्यपरायणता स्वभाव में लाने का यत्न किया।

"साथ ही कर्तव्य का भी निश्चय कर प्रत्यक्ष किया गया। कर्तव्य पर निश्चय किया गया लोक-कल्याण।"

ब्रह्माजी ने कहा, "मैं चाहता था कि इस युद्ध के प्रमुख योद्धा शिवकुमार को भूमण्डल में सर्वश्रेष्ठ उपाधि से विभूषित किया जाए और उसके लिए अमरावती में एक बृहत् उत्सव का आयोजन किया जाए।"

"यह तो होना ही चाहिए।" इन्द्र का कहना था, "पितामह! दिन निश्चय करिए और तब महोत्सव का प्रबन्ध कर दिया जाएगा, जिसमें भूमण्डल के दो-तीन लाख प्राणियों का समारोह हो सके।"

"मैं यह अमरावती में नहीं चाहता।" शिवजी का कथन था।

"तो कहाँ चाहते हो? कैलासपुरी में?"

"नहीं भगवन्! मेरे देश की अर्थव्यवस्था इस प्रकार के उत्सव का आयोजन नहीं कर सकती।"

"तो फिर क्या विचार है?"

"मैं तो भारत के किसी स्थान पर इस उत्सव का प्रबन्ध कराना चाहता हूँ।"

"ठीक है। मैं महाराज ककुत्स्थ से इस विषय पर विचार कर निश्चय करूँगा। मैं चाहता हूँ कि कुमार के साथ विभिन्न देशों के एक सौ जीवित तथा मृत योद्धाओं का सम्मान किया जाए और उनका स्मारक स्थापित किया जाए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो अब हम जाएँ ?" इन्द्र ने पितामह से पूछ लिया।

"तो क्या अभी तक तुम मेरे कहने से यहाँ रुके हुए थे ?" ब्रह्माजी ने इन्द्र से पूछा, "तुम तो विमान के बिगड़ जाने से यहाँ ठहरे हुए थे न।"

इन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "परन्तु वह तो कल ही ठीक हो गया था।"

"तब गए क्यों नहीं ?"

"मैं आचार्यजी को देवलोक ले जाना चाहता हूँ।"

"मैंने···" ब्रह्माजी का कहना था, "आचार्यजी को एक सुझाव दिया है। वह यह कि यहाँ पर रहते हुए आप अपना नीतिशास्त्र लिखें। आचार्यजी मान गए हैं और ग्रन्थ लिखने के लिए यहाँ सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। इस कारण यह अब यहाँ रहने का विचार बना बैठे हैं।"

"परन्तु यहाँ की सब सुविधाएँ वहाँ भी तो उपलब्ध हो सकेंगी।"

शुक्राचार्य ने इन्द्र के प्रस्ताव का उत्तर दिया, "मैं समझता हूँ कि मुझे एक नीति-शास्त्र लिख ही देना चाहिए। उसके लिए यहाँ पितामहजी का जैसा पुस्तकालय है वैसा भूमण्डल में अन्य किसी स्थान पर उपलब्ध नहीं। मैंने यहीं शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया है।"

शुक्राचार्य का यह विचार जान इन्द्र चुप रहा।

: ६ :

सुकेश और कुमार ने इकट्ठे ही मारमोरिका नगर में प्रवेश किया था। जब वहाँ के नागरिकों की ओर से श्वेत पताका द्वारा युद्धबन्दी का आह्वान किया गया तो कुमार अपने साथ आई दो अक्षौहिणी सेना को नगर के बाहर शिविर लगाने की आज्ञा देकर स्वयं दो सहस्र सैनिकों के साथ नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर-निवासी इस विजयी सेना को देखने के लिए राजपथ पर उमड़ पड़े। कुमार को विस्मय हुआ कि वहाँ सुभट्टों का कार्य भी स्त्रियाँ ही कर रही हैं और दर्शकों में प्रायः स्त्रियाँ अथवा पन्द्रह वर्ष से कम वयस् के बालक-बालिकाएँ ही थे। बीच में कहीं-कहीं कुछ पुरुष भी खड़े दिखाई देते थे।

राजप्रासाद पर तो स्त्रियों और लड़कियों का जमघट ही दिखाई दिया। कुमार के साथ सुकेश भी इस विजय-यात्रा में उसके साथ-साथ था। दोनों भाई अश्वों पर सवार होकर ओज से प्रदीप्त मुख वाले दो सहस्र चुने हुए योद्धाओं के साथ राजमहल पर पहुँचे तो वहाँ खड़ी सुभट्ट स्त्रियों को खड्ग धारण किए द्वार पर देखा।

कुमार ने एक से पूछा, "राजप्रासाद का मुख्य प्रबन्धक कौन है ?"

सुभट्टों की एक नायिका ने आगे बढ़कर प्रश्न का उत्तर दिया, "श्रीमन् का पुष्पमालाओं से स्वागत करने के लिए राजप्रासाद की मुख्य प्रबन्धिका राजभवन के द्वार पर खड़ी हैं।"

"तो यहाँ कोई पुरुष प्रबन्धक नहीं है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं महाराज ! युवा पुरुष प्रायः युद्ध में मारे गए हैं। वहाँ से बहुत कम लौटे हैं और वे सब अपने-अपने संयन्त्रों में कार्य करते हैं। उसमें भी स्त्रियाँ बहुत अधिक संख्या में हैं।

"क्योंकि राजभवन में रहने वाले सब राजपरिवार के युवक युद्ध में मारे गए हैं, इस कारण अब आपका स्वागत तो भवन की स्त्रियाँ ही कर रही हैं। इसी कारण उनकी प्रतिनिधि मैं यहाँ खड़ी हूँ और वे भवन के द्वार पर आपके स्वागतार्थ खड़ी हैं।"

कुमार अपने साथ आए सब सैनिकों को वहीं प्रासाद के फाटक पर खड़ा कर, अपने साथ पचास सैनिकों को लेकर भीतर भवन को चल पड़ा। भवन के द्वार पर राजपरिवार की तीस के लगभग स्त्रियाँ हाथों में पुष्पमालाएँ लिए विजेता का स्वागत करने के लिए खड़ी थीं।

दोनों भाई, कुमार और सुकेश, अश्वों से उतरे तो इनके दो सेनानायक नग्न खड्ग लिए इनसे दो पग पीछे इनकी सुरक्षार्थ खड़े थे। ये चारों आगे बढ़े तो गौर-वर्णीय नीली-नीली आँखों और चन्दन की लकड़ी के से रंग के बालों वाली एक लड़की आगे आई और कुमार के गले में माला डालती हुई बोली, "वीर योद्धा ! हम भवन की रहने वाली महाराज तारक के परिवार की सब स्त्रियाँ आपका स्वागत करती हैं।"

पुष्पमाला पहना उसने दोनों हाथों से मार्ग दिखाते हुए भीतर आने का निमन्त्रण दिया।

कुमार ने इस प्रकार प्रायः युवतियों और उनमें दो-चार प्रौढ़ावस्था की स्त्रियों का जमघट देख, पुष्पमाला से स्वागत करने वाली लड़की से पूछा, "तो ये सब महाराज की पत्नियाँ हैं ?"

"नहीं भगवन् ! परिवार की केवल बीस स्त्रियाँ हैं। उनमें से पन्द्रह महाराज की पत्नियाँ हैं और पाँच लड़कियाँ हैं। हमारे भाई सब युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। शेष सेविकाएँ ही हैं अथवा कुछ देश के मन्त्रियों की पत्नियाँ हैं।"

अति शुद्ध और स्पष्ट उच्चारित देवभाषा उस लड़की के मुख से सुन, कुमार ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा, "तुम तो बहुत शुद्ध भाषा बोलती हो ?"

"हाँ वीर पुरुष ! मैं महाराज तारक की छोटी लड़की हूँ। भारत से आमन्त्रित विद्वानों द्वारा मेरी शिक्षा-दीक्षा हो रही थी। वे लोग यहाँ से कुछ दिन पूर्व ही चले गए हैं। अतः आपके स्वागत और सुख-सुविधा का प्रबन्ध करने के लिए मुझे ही नियुक्त किया गया है।"

दोनों कुमार और उनके अंगरक्षक सेनानायकों ने उस लड़की के साथ-साथ राजभवन में प्रवेश किया। वे सब एक बहुत ही खुले बैठकघर में जा पहुँचे। वहाँ एक ऊँची चौकी पर देश के फलों और मिठाइयों तथा सुगन्धित पेयों का अम्बार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा था। बीच-बीच में सुन्दर फूल रखकर उनको सजाया गया था।

उस लड़की ने, जो स्वागत कर कुमारों को भीतर लाई थी, कहा, "हमारे देश में लगभग अकाल पड़ा हुआ है। इसलिए आपके स्वागत का यह सामान्य-सा प्रबन्ध ही हो सका है।"

कुमार ने कहा, "यहाँ पर खाने की वस्तु लेने से पहले मैं दो बातें करना चाहता हूँ। पहला है मेरे निवास का प्रबन्ध। मैं कुछ भी खाने से पूर्व स्नानादि और पूजा-पाठ करना चाहता हूँ। दूसरी यह कि यहाँ की सब सुभट्ट स्त्रियों के स्थान पर, मेरे सैनिक इस राजप्रासाद की सुरक्षा और सेवा का प्रबन्ध करने लगें।"

"तो आप हम स्त्रियों से भी डरते हैं?"

"आपके शौर्य से नहीं, परन्तु कुटिलता से। स्त्रियों का यह सहज स्वभाव है, जब वे किसी कार्य करने पर विवश की जाएँ तो कुटिलता पर उतारू हो जाती हैं। उनमें प्रतिकार की भावना अधिक मात्रा में होती है।"

"परन्तु श्रीमान्! हम तो स्वेच्छा से आपका स्वागत और सत्कार कर रही हैं।"

"यह ठीक हो सकता है, परन्तु इसकी अभी परीक्षा नहीं हुई।"

लड़की ने एक क्षण ही विचार किया और कहा, "आप अपने सैनिक बुलाइए। परन्तु यहाँ की स्त्रियाँ विपक्षी सैनिकों द्वारा किए जाने वाले दुराचार से भयभीत हैं। विशेष रूप से राजपरिवार की स्त्रियाँ।"

"क्या मैं यहाँ की प्रवक्ता का नाम जान सकता हूँ?"

"मैं महाराज तारक की सबसे छोटी लड़की शील हूँ। मेरी माता का देहान्त हो चुका है और पिताजी की यह इच्छा थी कि मैं शिक्षा-दीक्षा से सुशोभित हो, भारत के किसी नरेश से विवाह दी जाऊँ और अपने देश और उस देश में मैत्री की कड़ी बन सकूँ।"

"शील! यह तो अब भी हो सकेगा; परन्तु सबसे प्रथम तुम राजपरिवार की सब स्त्रियों को यह आश्वासन दे दो कि उनसे कोई भी सैनिक अशिष्टता का व्यवहार नहीं करेगा। हमारे देश की यह प्रथा नहीं। दूसरा, राजपरिवार की सब स्त्रियों का परिचय करा दो, जिससे राजपरिवार और सेविकाओं में भेदभाव हो सके। तीसरा, महाराज के परिवार की सेविकाओं के अतिरिक्त सब सेविकाएँ निकाल दी जाएँगी और उनके स्थान पर अपने देश के सैनिक प्रबन्ध करेंगे।"

"यह ठीक ही है। आपका आश्वासन मैं अपनी माताओं और बहनों को दे देती हूँ और तब उनका परिचय करवाती हूँ।

"तदनन्तर एक-एक सेविका प्रत्येक परिवार की स्त्रियों के लिए छोड़ सब सेविकाओं को छुट्टी दे देती हूँ। आप प्रबन्ध के लिए अपने सैनिक भीतर बुला सकते हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार ने सुकेश की ओर देखा और वह समझ गया। वह एक अंगरक्षक को साथ लेकर बाहर चला गया।

इस समय शील ने एक बड़ी आयु की स्त्री से अपनी भाषा में बातचीत करनी आरम्भ कर दी। वास्तव में शीलकुमारी सबको कुमार का आश्वासन और सेविकाओं के विषय में इच्छा बता रही थी।

उस स्त्री ने, जो दक्षिण के किसी शासक की लड़की, तारक की सबसे बड़ी पत्नी थी, अपने समीप सब स्त्रियों को बुला, शील की बात समझा दी और फिर सेविका को आज्ञा दे दी। उन सेविकाओं को सब रानियों तथा लड़कियों को रख, शेष को राजप्रासाद से बाहर चले जाने की आज्ञा दे दी।

जब तक यह प्रबन्ध हो रहा था, सुकेश अपने साथ पचास सैनिक लेकर राजभवन का प्रबन्ध उनको सौंपने लगा था। चार सैनिक कुमार और सुकेश की सेवा के लिए इन दोनों के शयनागारों की सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दिए। एक घड़ी में ही राजप्रासाद का वातावरण बदल गया। देवलोक और कैलासलोक के सैनिकों का प्रबन्ध हो गया।

तब एक सुसज्जित आगार में पहुँच कुमार और सुकेश से राज-परिवार की सब स्त्रियों का परिचय हुआ। कुमार ने शीलकुमारी के द्वारा सबको अपना आश्वासन देकर अपने-अपने आगारों में जाने का आदेश दे दिया।

तदनन्तर कुमार और सुकेश ने अपना परिचय शीलकुमारी को दिया। कुमार ने ही शील से पूछा, "राजकुमारी, कभी महादेव शिव कैलासपति का नाम सुना है?"

"हाँ भगवन्! वह सब देवताओं के बड़े महादेव माने जाते हैं।"

"यह तो उनकी उपाधि है। उनका नाम शिव है। हम दोनों उनके सुपुत्र हैं। उनकी दो रानियाँ हैं। वे दोनों सगी बहनें हैं। मैं बड़ी बहन का लड़का कुमार हूँ और यह मेरा भाई महाराज की छोटी रानी का लड़का है।

"अब हम स्नानादि के लिए अवकाश चाहते हैं। इस भोज्य सामग्री का उपयोग हम पूजा-पाठ के उपरान्त करेंगे। राजकुमारी आधा प्रहर उपरान्त यदि दर्शन देंगी तो हम उनकी सहायता की आकांक्षा करेंगे।"

शील ने उनको उनके आगारों में ले जाकर छोड़ दिया। उसके आते ही कुमार ने कहा, "सुकेश दादा! हमें यहाँ बहुत सावधानी से रहना चाहिए। विक्रम को मुख्य प्रबन्धक नियुक्त कर सुरक्षा प्रबन्ध करवा दो।"

"भैया! विक्रम को मैंने नगर का आयुक्त नियुक्त कर दिया है और राजप्रासाद तथा राजभवन का प्रबन्ध वीरसेन के हाथ में दे दिया है। राजपरिवार की बीस स्त्रियों के अतिरिक्त सबको राजप्रासाद से बाहर निकाल दिया गया है।"

"और राजपरिवार की तथा उनकी मुख्य सेविकाओं को पहले चखाए बिना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी खाद्य पदार्थ का सेवन नहीं करना।"

"परन्तु यह लड़की तो बहुत ही सभ्य प्रतीत होती है।"

"हाँ दादा! कुमार ने कहा, "ये स्त्रियाँ यहाँ रहेंगी और मैं चाहता हूँ कि तारक से सन्धि के उपरान्त इनको उसके हवाले कर देना।"

एक प्रहर के उपरान्त द्वार पर खड़े अंगरक्षक ने कुमार के आगार में आकर सूचना दी, "राज्यपरिवार की वही लड़की उपस्थित है।"

"उसे भीतर ले आओ।" कुमार ने आदेश दिया।

शील द्वार पर खड़ी यह आज्ञा सुन रही थी। वह भीतर आ गई।

कुमार ने कहा, "हमारा भोजन बाहर शिविर से आया है। फिर भी हम दोनों भाई आपके स्वागत का अनादर न करते हुए आपके द्वारा बनवाए भोजन का थोड़ा-थोड़ा अंश लेंगे; परन्तु उससे पहले आपको प्रत्येक भोज्य पदार्थ चखकर प्रमाण देना होगा कि यह विषयुक्त नहीं है।"

शील एक क्षण तक कुमार का मुख देखती रही। कुमार उसके मुख पर देख रहा था। उस पर अनिश्चल भाव देख उसे सन्देह होने लगा था कि दाल में कुछ काला है।

परन्तु पूर्व इसके कि वह अपना अनुमान कहे, शीलकुमारी बोल उठी, "भगवन्! मैं आपसे निवेदन करूँगी कि आप बाहर बड़े आगार में रखी भोज्य-सामग्री में से एक ग्रास भी मत लें। आप अपने शिविर से आया अन्न ही ग्रहण करें।"

"तो यह बात है?"

"मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ; परन्तु सत्य कह रही हूँ कि यहाँ आपकी हत्या का प्रबन्ध है।"

"और तुम उनसे छलना कर रही हो?"

"नहीं भगवन्! छलना नहीं, वरंच अपने साथ न्याय कर रही हूँ। मैं आपसे एक निवेदन करने वाली हूँ।"

"क्या?"

"मैं अपने चित्त में निश्चय कर चुकी हूँ कि रात्रि में मैं आपकी सेवा में रहूँगी।"

"हमें रात को किसी सेविका की आवश्यकता नहीं। हम अपनी सेवा स्वयं करते हैं। हमारे सब सैनिक ऐसा ही करते हैं और पिछले बीस वर्षों से हमको अपनी सेवा स्वयं करते हुए अभ्यास हो गया है। हमें इससे कष्ट नहीं होता।"

शील लज्जा से आँखें नीचे किए हुए बोली, "परन्तु मैं तो आपकी पत्नी के रूप में सेवा करना चाहती हूँ।"

"वह तो हम विवाह के उपरान्त ही केवल अपनी विवाहिता पत्नी से सेवा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेते हैं।"

"परन्तु आपके देवलोक में तो सुना था कि यही प्रथा है, जिसका मैं आपसे प्रस्ताव कर रही हूँ।"

"मैं देवलोक का रहने वाला नहीं। मैं और मेरे साथ यहाँ आए सब सैनिक कैलासलोक के हैं। हमारे यहाँ बिना विवाह की पत्नी स्वीकार नहीं की जाती।"

"तो भगवन्! मुझसे विवाह कर लीजिए। मैं आपकी पत्नी बनने की इच्छा कर रही हूँ।"

"परन्तु तुम तो मुझे बहन दिखाई देती हो।"

"तब तो मुझे आप अपनी माँ के पास ले चलिए। मैं माँ के वात्सल्य की भूखी हूँ।"

"हाँ, यह हो जाएगा।"

कुमार ने सुकेश को अपने आगार में बुला लिया और वहीं शिविर से आया भोजन किया। तदनन्तर कह दिया, "यह राजकुमारी हमारी बहन बन गई है और माताजी के पास चलने के लिए तैयार हो रही है।"

"यह तो माताजी के लिए बहुत अच्छा उपहार होगा।"

"हाँ। मैं मान गया हूँ और कल यह मेरे साथ कैलासलोक को जाएगी। मैं तुम्हें यहाँ का शासक नियुक्त करता हूँ। जब तक तारक से सन्धि होकर इस देश के भविष्य के विषय में निश्चय नहीं हो जाता, जब तक तुम विक्रम की सहायता से यहाँ का प्रबन्ध करोगे। अपने पास ये पाँच सहस्र सैनिक रखो और यदि अधिक की आवश्यकता पड़े तो मुख्य सैनिक शिविर पर सन्देश भेजना। वहाँ से उचित सहायता पहुँच जाएगी।"

भोजन के उपरान्त दोनों भाई अपने-अपने आगार में सोने का प्रबन्ध करने लगे। शील उनको अपने अंगरक्षकों के साथ छोड़कर बाहर चली गई। वह तेरह वर्ष की वयस की कुमारी थी, परन्तु शरीर से वह सोलह वर्ष की युवती प्रतीत होती थी और कुमार को देखते ही उस पर मुग्ध हो उससे विवाह की इच्छा करने लगी थी; परन्तु उसके बहन कहने पर वह अपना विचार बदल उसकी माँ के संरक्षण में जाने की इच्छा करने लगी थी।

वह कुमार को विश्राम करने के लिए अपने शयनागार में छोड़ जब बाहर आई तो अपने परिवार की सब स्त्रियों पर कड़ी देखरेख और उनके अपने-अपने आगारों से आने-जाने तथा परस्पर मिलने पर नियन्त्रण देख चकित रह गई। इससे वह पुनः कुमार के शयनागार के बाहर जा पहुँची। भीतर सूचना भेजने पर वह बुला ली गई। कुमार सोने की तैयारी कर रहा था। उसने शील को देख पूछा, "अब किस कारण आई हो?"

"मेरी माताओं और बहनों को बन्दी बना लिया गया है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ। यह मेरी आज्ञा से हुआ है। तुम्हारे कथानुसार उन्होंने षड्यन्त्र कर मुझे विष देकर मेरी हत्या का यत्न किया था। इस कारण उनको बन्दी बनाकर न्यायाधीश के समक्ष उचित दण्ड के लिए भेज दिया जाएगा।"

"वह न्यायाधीश कौन होगा?" शील का प्रश्न था।

"हमारी सेना के साथ विद्वान् न्यायाधीश रहते हैं। विक्रमजी किसी को उनमें से नियुक्त करेंगे।"

"विक्रम कौन है?"

"जिसे मेरे भाई सुकेश ने यहाँ का आयुक्त नियुक्त किया है। मेरा भाई आप के पिताजी की अनुपस्थिति में इस देश का शासक नियुक्त हुआ है।"

"ओह!"

"क्यों? क्या यह प्रबन्ध आपको पसन्द नहीं?"

"श्रीमान्! यह तो अभी देखना है कि आपके भाई और विक्रमजी क्या करते हैं।"

"कुछ ऐसा प्रबन्ध होगा, जो तुम्हारे पिता के प्रबन्ध से श्रेष्ठ होगा। ये सब कैलास देश की प्रजा हैं और वहाँ की यह परम्परा है कि किसी के साथ अन्याय, अनाचार और अत्याचार नहीं किया जाता।"

"देख लूँगी।"

"हाँ; परन्तु तुम तो बहन हो, इसलिए तुम्हें उन स्त्रियों के साथ बन्दी नहीं बनाया गया। साथ ही तुमने मेरी जान बचाने का यत्न किया है।"

"परन्तु मैं तो आपसे विवाह की इच्छा करती थी।"

"मैं समझता हूँ कि पत्नी से भगिनी का पद ऊँचा होता है और मैंने तुम्हें उस पद पर आसीन कर दिया है।"

"आपकी कृपा है।"

"मैं कल अपने देश को लौट रहा हूँ और यदि यह पद स्वीकार है तो तुम मेरे साथ वहाँ चल सकती हो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि माँ तुमसे पुत्रीवत् स्नेह करने लगेंगी।"

शीलकुमारी अपने शयनागार में जा अपने और परिवार वालों के भविष्य पर विचार करती हुई सो नहीं सकी।

आधी रात के कुछ ही उपरान्त उसे राजप्रासाद के बाहर बहुत बड़े धमाके का शब्द सुनाई दिया। वह चौंककर पलंग से उठी और शयनागार से बाहर को भागी। ज्योंही वह आगार से बाहर निकली तो उसकी सेविका भी उसके साथ थी और उसके आगार के बाहर खड़ा सैनिक प्रहरी उनके पीछे-पीछे भागा। इस कारण वे दोनों भागती-भागती खड़ी हो गईं और उस सैनिक की ओर देखने लगीं। सैनिक भी खड़ा हो गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाएक शील ने सैनिक से देवभाषा में पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं आपका संरक्षक नियुक्त हुआ हूँ। इस कारण आपकी रक्षा के लिए आपके साथ भाग रहा था।"

"हम यह जानने के लिए भागी हैं कि यह धमाका किस बात का है?"

"आकाश में किसी विमान से भूमि पर के सैनिकों का युद्ध हो रहा है।"

"ओह ! तो पता करना चाहिए था कि वह विमान किसका है और यहाँ क्यों आया है ?"

"जहाँ तक मेरी सूचना है कि विमान में बैठे व्यक्तियों ने यह युद्ध आरम्भ किया है। यह धमाका भी उनके किसी अस्त्र के फेंकने से उत्पन्न हुआ है। मुझे बस इतना ही ज्ञात है।"

"तो क्या हम भवन की छत पर जाकर इस युद्ध को देख सकती हैं ?"

"मुझे आपको किसी काम से रोकने की आज्ञा नहीं है।"

"तब ठीक है।" वे दोनों पुनः भागकर भवन की सीढ़ियाँ चढ़ने लगीं। जब छत पर पहुँचीं तो उन्होंने देखा कि आकाश से जलती हुई अग्नि का एक गोला-सा नीचे भूमि पर गिर रहा है। यह विमान ही था, जिसे आकाश में ही आग लग गई थी।

वह विमान राजप्रासाद के प्रांगण में ही गिरा और उस समय भी वह धू-धू करता हुआ जल रहा था। प्रांगण में खड़े सैनिक उस विमान को लगी आग को बुझाने लगे। जब अग्नि शान्त हुई तो देखने का यत्न किया गया कि उसमें सवार कोई बचा है अथवा सब मर चुके हैं।"

विमान में से पाँच शव, जो जलकर कोयला हो चुके थे, निकाले गए। शील, उसकी सेविका, कुमार, सुकेश और वीरसेन, राजप्रासाद का मुख्य संरक्षक खड़े देख रहे थे। जब शव निकाले गए तो उनको पहचानने का यत्न किया गया। शील ने देखते ही अपने पिता तारक के शव को पहचान लिया और कुमार से कहा, "भाई साहब ! यह मेरे पिता, यहाँ के शासक, का शव है।"

"ओह ! तुम्हारा अभिप्राय है कि भूतपूर्व शासक ?"

"और अब शासक कौन है ?"

"मेरे बड़े भाई श्रीमान् सुकेशकुमार।"

"मैं चाहूँगी कि पिताजी के शव का यहाँ के रीति-रिवाज के अनुसार संस्कार किया जाए।"

"हो जाएगा।"

कुमार ने अपने बड़े भाई को आज्ञा दे दी, "सुकेश ! राजपरिवार की सब बन्दी स्त्रियों को यहाँ लाकर इस शव को दिखा दिया जाए और जैसा वे कहें, इस का संस्कार किया जाए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ७ :

प्रातः उठते ही कुमार को ब्रह्माजी का सन्देश मिला कि उसे तुरन्त ब्रह्मलोक में आना चाहिए। वह ब्रह्मलोक को जाने लगा तो शील यात्रा-योग्य वस्त्र पहने हुए सामने आ खड़ी हुई। कुमार ने उसे देखा तो पूछ लिया, "हाँ, अब बताओ बहन शील ?"

"मैं आपके साथ जाने के लिए तैयार होकर आई हूँ। मैं आपकी माताजी के संरक्षण में रहना चाहती हूँ।"

"तो पिताजी के संस्कार के समय यहाँ रहना नहीं चाहतीं ?"

"परिवार की स्त्रियाँ जान गई हैं कि मैंने आपको भोजन के विषाक्त होने की बात बताई है। इससे वे रात पिताजी के शव के समीप ही मेरी हत्या करने लगी थीं। मैंने भागकर जान बचाई थी और तब से द्वार भीतर से बन्द करके पड़ी थी।

"प्रातः मैंने सेविका को बाहर का समाचार लेने के लिए भेजा था और वह समाचार लाई थी कि दो घड़ी-भर में आप यहाँ से जाने वाले हैं। अतः मैं भी आप के साथ जाने को तैयार होकर आई हूँ।"

कुमार ने एक क्षण में निश्चय किया और बोला, "ठीक है, चलो! मैं कहीं अन्यत्र जा रहा हूँ। तुम्हें माँ के पास छोड़ता जाऊँगा।"

दोनों विमान पर जा बैठे। उनको विदा करने के लिए सुकेश, विक्रम, सेना-नायक और बहुत से सैनिक थे। सबका यह विचार था कि कुमार इस राजकुमारी को पत्नी बनाने के लिए अथवा बनाकर ले जा रहा है।

कुमार ने मार्ग में ही शील को बताया, "मैं तुम्हें कैलास-भवन में माताजी के पास छोड़ ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ। वहाँ मुझे युद्ध की समाप्ति की सूचना और उसका वृत्तान्त बताना है।"

"हमारे देश का क्या बनेगा ?"

"शील बहन! तुम्हारा देश अब वह है, जहाँ मेरी और तुम्हारी माताजी रहती हैं। उस देश में मेरे पिताजी का राज्य है। अब वह भी तुम्हारे पिता हुए और तुम वहाँ भी राजकुमारी बनी रहोगी।"

"मुझे अपने देश के भाई-बहनों की चिन्ता है।"

"अब चिन्ता की बात नहीं। किसीको अकारण मारा अथवा कष्ट नहीं दिया जाएगा। मैं अपने भाई को जानता हूँ। वह साधु-स्वभाव का व्यक्ति अकारण एक चींटी को भी कष्ट नहीं देता।

"फिर भी बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि वहाँ के लोग चुपचाप देवराज्य स्वीकार करते हैं अथवा विद्रोह करते हैं, जैसे रात तुम्हारे परिवार की स्त्रियों ने तुम्हारे साथ करना चाहा था।"

"यह स्वाभाविक नहीं है क्या ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह मानव-स्वभाव के अनुकूल तो है, परन्तु वस्तुस्थिति के अनुकूलनहीं। अतः यह अस्वाभाविक है। वस्तुस्थिति यह है कि युद्ध स्वर्गीय महाराज तारक ने आरम्भ किया था और उसकी पूर्ण प्रजा ने उसको अपना सहयोग दिया था। परिणामस्वरूप महान् विनाश हुआ है। असुर देशों का भी और देव देशों का भी। उस विनाश के उपरान्त जो कुछ अब शेष है, उसकी रक्षा का आदेश दादा सुकेश ने दे दिया है; परन्तु जो उसकी व्यवस्था का विरोध करेगा, वह उसका फल पाएगा। मेरी और तुम्हारी हत्या करने के यत्न का अभियोग आज न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित होगा। मैंने सुकेश को यह सम्मति दी है कि न्यायाधीश न्याय करेगा और यदि वह समझे कि दया के लिए स्थान है तो दया का व्यवहार होना चाहिए।"

मध्याह्न के समय, जो कैलासलोक में अभी प्रातःकाल था, कुमार शील के साथ कैलासलोक पहुँचा तो उसकी दोनों माताओं ने भवन के द्वार पर आकर कुमार का स्वागत किया। तब तक वहाँ समाचार पहुँच चुका था कि देव-विजय पूर्ण हो चुकी है। असुर पूर्णतः परास्त हो चुके हैं और कुमार ने तारक देश पर भी आधिपत्य स्थापित कर लिया है।

अतः कुमार का विमान कैलास राजप्रासाद के द्वार पर उतरते ही नगर की पूर्ण प्रजा वहाँ एकत्रित हो कुमार की जय-जयकार करने लगी और कुमारको एक सुन्दर कुमारी के साथ विमान से उतरते देख विस्मय करने लगी कि वह तारक देश से बहुत बढ़िया पुरस्कार लाया है।

जब दोनों माताएँ कुमार को लेकर भीतर गईं तो गंगा ने प्रश्न-भरी दृष्टि से कुमार की ओर देखा।

कुमार ने माताजी के मूक प्रश्न का उत्तर दे दिया। उसने कहा, "माँ! यह शीलकुमारी तारकासुर की सबसे छोटी पुत्री है। मैंने इसे अपनी बहन बना लिया है। मैं समझता था कि यहाँ बहन का अभाव है। यह मेरी माताजी के संरक्षण में पुत्री बन रहने आई है।"

शीलकुमारी को माँ के संरक्षण में छोड़, वह ब्रह्मलोक के लिए तैयार होने लगा तो गंगादेवी ने पूछ लिया, "अब तो यहाँ रहोगे?"

"माँ! मुझे आदेश है कि मैं शीघ्र ही ब्रह्मलोक में पितामह के सम्मुख उपस्थित हो पूर्ण युद्धस्थिति का वृत्तान्त बताऊँ।"

कुमार गया तो गंगा और पार्वती शील का परिचय प्राप्त करने लगीं। शील को देवभाषा बोलते सुन वे दोनों अति प्रसन्न हुईं। शील ने सब कुछ, जैसा उसको विदित था, बता दिया। अपने पिता तारक के मारे जाने का समाचार भी सुना दिया। सब वृत्तान्त सुन गंगा ने कहा, "देखो बेटी शील! यह देश सरलचित्त लोगों का है। यहाँ निष्कपट होकर रहोगी तो राजकुमारी का-सा सब आदर और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख पाओगी।''

कुमार अल्पहार कर विमान पर सवार हो ब्रह्मलोक में पितामह के सम्मुख उपस्थित हो गया।

वहाँ प्रथम सूचना के उपरान्त, जब इन्द्र भी बिना आचार्य को साथ लिए अकेला विदा हुआ तो पितामह ने शुक्राचार्य के सम्मुख कुमार से भविष्य के विषय में विचार किया।

कुमार ने कहा, ''पितामह ! इस समय भूमण्डल के उन सब देशों में, जो युद्ध में सम्मिलित थे, एक समस्या तो है पुरुषों से स्त्रियों का बहुत अधिक हो जाना। असुर देशों में यह समस्या अति भयंकर रूप ग्रहण कर रही है। देव-पक्ष के देशों में भी यही समस्या उपस्थित है; परन्तु यहाँ पर यह इतनी विकट नहीं, जितनी कि असुर देशों में है।

''इस समस्या का एक ही सुझाव है। जब किसी देश में भूमि बहुत अधिक हो और उसे जोतने-बोने वाले बहुत कम लोग हों तो बहुत-सी भूमि परती पड़ी रहने दी जाती है।

''इसमें भूमि की रक्षा होनी चाहिए, जिससे उसपर बबूलादि पेड़ उत्पन्न न होने लगें। जितने असुर देव पक्ष के देशों में हैं, सबको अपने-अपने देश में जाकर जितनी पत्नियाँ वे रखने की सामर्थ्य रखते हैं, रखने के लिए कहना चाहिए। फिर भी बहुत-सी भूमि परती पड़ी रहेगी। उसका राज्य की ओर से प्रबन्ध होना चाहिए।

''मैं समझता हूँ कि भूमण्डल की जनसंख्या सन्तुलित होने में एक सौ वर्ष लग जाएँगे। अतः एक सौ वर्ष की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे भूमण्डल में शान्ति रहे।

''दूसरा, असुर देश में शिक्षा का प्रबन्ध देवलोक की भाँति होना चाहिए। इसके लिए भारत और हिमाचल प्रदेश से बहुत-से आचार्य असुर देशों में भेजने चाहिए और उनके लिए वहाँ प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा का प्रबन्ध होना चाहिए।

''तीसरा, अपने देशों में बहुपत्नी प्रथा को प्रोत्साहन देना चाहिए।''

शुक्राचार्य ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, ''तुमने कितने विवाह करने का निश्चय किया है? मैं समझता हूँ कि तुम छः माताओं वाले की कम से कम छः पत्नियाँ तो होनी चाहिए।''

''आचार्यवर ! मेरा यह संकल्प है कि मैं विवाह नहीं करूँगा।''

ब्रह्माजी ने कहा, ''इसकी हमें चिन्ता नहीं। अभी तुम एक सौ वर्ष से अधिक काल तक जीवित रहोगे। मैं तुम्हें भूमण्डल का चक्रवर्ती राजा देखना चाहता हूँ। इसकी तैयारी में मैं तुम्हारे पिता महादेव से कह रहा हूँ कि वह अब कैलासलोक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का राज्य तुम्हें सौंपकर स्वयं वानप्रस्थ ले लें।

"वह अभी दो सौ वर्ष तक इस पृथिवी पर रहेंगे। उनके स्थान पर तुम पहले कैलासपति बनोगे पीछे बाद में चक्रवर्ती नरेश बन सकोगे।"

"और भगवन्!" कुमार का प्रश्न था, "सुकेश क्यों नहीं? वह मुझसे बड़ा है और कैलास का शासक बनना उसका अधिकार है।"

"वह महादेवजी का लड़का नहीं। तुम्हारी मौसी पार्वती का गोद लिया पुत्र है। उसका वास्तविक पिता उसको महादेवजी से माँग रहा है। मैंने महादेवजी को सम्मति दी है कि उसे लंका में राज्य करने के लिए भेज दिया जाए।"

"परन्तु पितामह! मेरी इच्छा तो योग, ध्यान, समाधि और फिर शीघ्रातिशीघ्र लोक को छोड़ परधाम को जाने की है।"

"वहाँ तुम अभी नहीं जाओगे। अपने पूर्वजन्म के कर्मफल से तुम इस पृथिवी पर और वर्तमान कलेवर का एक सौ वर्ष तक और भोग करोगे। तुम जीवन्मुक्त होकर ही यहाँ रहोगे।

"देखो कुमार! यह कर्मभूमि है। यहाँ कोई भी व्यक्ति बिना कर्म किए नहीं रह सकता। इस कारण कर्म तो तुम करोगे ही। मैं तो तुम्हें बता रहा हूँ कि तुम्हें क्या करना चाहिए।

"जाओ! कैलासलोक में राज्य करो। इसके द्वारा ही तुम अपनी परमधाम को जाने की इच्छा पूर्ण कर सकोगे।"

जब कुमार ब्रह्माजी से बातचीत कर चला गया तो शुक्राचार्य ने पूछा, "तो क्या तारक देश का राजा सुकेश ही बना रहेगा।"

"नहीं, वह अपने पिता के पास जाएगा। उसका पिता उसके हाथ में राज्य सौंप स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लेगा। वह उत्सुकता से सुकेश के वहाँ आने की प्रतीक्षा कर रहा है।"

"और तारक देश में कौन राजा होगा?"

"इस बात का निश्चय देव पक्ष में लड़ने वाले नरेश करेंगे। मैं शीघ्र ही वाराणसी में उनकी सभा करने वाला हूँ।"

"और मैं क्या करूँगा?"

"आप अभी तो यहाँ मेरे पास रहिए। आप अपनी शुक्रनीति लिखिए। वाराणसी में होने वाली देव पक्ष के नरेशों की सभा होगी और आप वहाँ चलकर अपनी सम्मति से उस सभा की सहायता करेंगे।"

"वह सभा कब होगी?"

"अभी दो मास तक तो युद्ध में सम्मिलित हुए सब देशों के नरेश विश्राम करेंगे और अपने-अपने देश की अवस्था की देख-रेख के लिए अपनी-अपनी राजधानी में रहेंगे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो यह आज्ञा हो गई है ?"

"मैं एक पत्र सब पक्ष वाले नरेशों के नाम लिख रहा हूँ और उनको यह कह रहा हूँ कि वाराणसी में, एक सभा का आयोजन किया जा रहा है। उसमें वे आएँ और अपने साथ अपने गृहमन्त्री को लाएँ, जिससे देशों की समस्याओं पर विचार किया जाए। साथ ही असुर देशों के साथ सन्धि-वार्ता के लिए एक उपसमिति का निर्माण किया जाए, जिससे उन देशों के नरेशों से पृथक्-पृथक् बातचीत की जा सके।"

शुक्राचार्य यह जानकर मौन हो गया।

: ८ :

निर्धारित तिथि को वाराणसी में यह सभा हुई और उसमें जहाँ असुर देशों से सन्धि-वार्ता के लिए एक समिति निर्मित की गई, वहीं काशी में ही देव पक्ष में युद्ध करने वाले प्रमुख योद्धाओं को सम्मानित करने के लिए एक विशाल यज्ञ और सभा का आयोजन भी किया गया।

सभा में एक सौ एक वीर योद्धाओं को सम्मानित होता देखने के लिए सामान्य जनता को भी आमन्त्रित किया गया। इसी निमित्त विशाल यज्ञ किया गया। उस यज्ञ में दो लाख से अधिक भूमण्डल के नागरिक उपस्थित हुए। प्रायः देव पक्ष में युद्ध करने वाले सब नरेश भी आए हुए थे। इस विशाल सभा का सभापतित्व ब्रह्माजी ने किया। यज्ञ के उपरान्त सार्वजनिक सभा में सबसे पहले कुमार को स्कन्द नाम से विभूषित किया गया। स्कन्द विष्णु का दूसरा नाम है, अर्थात् कुमार को भूमण्डल में दूसरा विष्णु-पद दिया गया। ब्रह्माजी ने यह आदेश भी दिया कि भविष्य में कुमारसम्भव स्कन्द दक्षिणापथ का लोकपाल होगा।

पहले दक्षिणापथ का लोकपाल महादेव शिव था। अब महादेव के पुत्र कुमारसम्भव को स्कन्द नाम दे उसके स्थान पर लोकपाल नियुक्त किया गया। इस प्रकार अन्य नरेशों और योद्धाओं को वैदिक संस्कृति के रक्षक का पद दिया गया।

इस यज्ञ में सबसे महत्त्वपूर्ण वात यह हुई कि वेदानुयायी राज्यों में राज्य और समान व्यवस्था पर विचार-विनिमय हुआ।

युद्ध में पुरुषों की अपार हानि को शीघ्रातिशीघ्र भरने के लिए असुर देशों से स्त्रियों को देव देशों में विवाह कर लाने का आयोजन किया गया।

इस सार्वजनिक कार्य के साथ-साथ विद्युत्केश ने ब्रह्माजी की सिफारिश से महादेव और उसकी पत्नी पार्वती से यह स्वीकार करवा लिया कि सुकेश अपने पिता विद्युत्केश के पास जाएगा और उसके स्थान पर राज्य करेगा।

तारक देश में वहाँ के लोगों को ही वहाँ का राज्य सौंप दिया गया और यह कह दिया गया कि जब तक उनमें कोई ओजस्वी शासक उत्पन्न नहीं होता, तब तक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ गणराज्य निर्माण कर लें।

सुकेश कुमार से चार वर्ष बड़ा था। कुमार इस समय बाईस वर्ष की वयस का हो गया था। इस कारण जब सुकेश लंका में अपने पिता के राज्य को जाने के लिए कैलासलोक में माता पार्वती से आज्ञा लेने आया तो पार्वती ने उसे कह दिया, "सुकेश ! विवाह कर लो।"

"माताजी ! कर दीजिए।"

"तारक-कुमारी शील कैसी लगती है ?"

"मैंने सुना था कि वह तो भैया कुमार से विवाह की इच्छा रखती है।"

"परन्तु वह तो उसे बहन बनाकर यहाँ लाया है और उसी रूप में वह यहाँ रह रही है।"

"परन्तु माँ ! शील पसन्द करेगी क्या ?"

"मैंने शील से पता किया है। वह कहती है कि यदि स्वर्ण भाग्य में न हो तो रजत पर ही सन्तोष किया जा सकता है।"

"अर्थात् मैं रजत हूँ और भैया स्वर्ण है ?"

"वह ऐसा ही समझती प्रतीत होती होगी। तभी तो उसने कहा है।"

"तो फिर मैं उससे विवाह नहीं करूँगा।"

"परन्तु सुकेश ! वह तुमको कुछ भी समझे, प्रश्न यह है कि तुम उसको कैसा समझते हो ? तुम्हारी दृष्टि में वह क्या है ? रजत है अथवा स्वर्ण ?"

"माताजी ! वह तो स्वर्ण ही प्रतीत हुई है। जब मैंने उसे सर्वप्रथम अपने पिता के भवन के द्वार पर हमारे स्वागत के लिए देखा था, तभी मैं उसे प्राप्त करने की इच्छा करता था; परन्तु उसने जब भैया को वरने की इच्छा व्यक्त की तो मैं मन ही मन अपनी इच्छा को दबाकर रखे हुए था।"

"तो अब तुम्हारे भाई ने उसे अस्वीकार कर दिया है और वह तुमपर सन्तोष करने को तैयार है।

"एक बात और पता चली है कि वह तारक की लड़की नहीं है। जब तारक गन्धर्वलोक में भ्रमण कर रहा था तो वह शील की माँ का हरण कर लाया था। उस समय यह शील छः मास की बच्ची थी। यह तारक की पालिता अवश्य है, परन्तु यह गन्धर्व-कन्या है।"

"माताजी ! यह किसने बताया है ?"

"यह शील ने स्वयं बताया है कि यह कथा उसकी माताजी ने उसे बताई थी; परन्तु वहाँ के शासक की पुत्री बने रहने से सुख, मान और सुविधा मिलती थी, इस कारण माता के मरने पर भी वह वहीं रहती थी।"

बाद में सुकेश ने कहा, "माताजी ! उससे पता कर लो, कहीं उसे स्वर्ण छोड़ रजत ग्रहण करने पर पश्चात्ताप न होने लगे। साथ ही मौसी, कुमार की माताजी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भी पता करना चाहिए। वह इस सम्बन्ध को कैसा अनुभव करेंगी ?"

"गंगा बहन भी इस सम्बन्ध से प्रसन्न होंगी।"

अत: जिस दिन विद्युत्केश के दूत सुकेश को लंका ले जाने के लिए आए, सुकेश अपनी पत्नी शील के साथ जाने को तैयार था।

पार्वती ने सुकेश तथा उसकी पत्नी को बहुत वस्त्र, आभूषण और अन्य घर-गृहस्थी का सामान दिया। महादेव शिव ने उसे अपना एक विमान दिया, जिस पर चढ़कर सुकेश को कभी-कभी अपनी माता पार्वती से मिलने के लिए आने की सुविधा रहे।

इनको विदा करने के उपरान्त शिव ने पार्वती और गंगा तथा उसके पुत्र कुमार स्कन्द को बुलाकर कहा, "कुमार ! मैं और तुम्हारी मौसी एक-दो दिन में भ्रमणार्थ जा रहे हैं और यह राज्य तुम्हें सौंप रहा हूँ।"

"पिताजी !" कुमार स्कन्द का कहना था, "मैं तो तपस्या के लिए ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ।"

"परन्तु पितामहजी ने तुम्हें कैलास में दक्षिणापथ का लोकपाल नियुक्त किया है।"

"मुझे यह कार्य पसन्द नहीं।"

"तो यह बात ब्रह्माजी से कहो। मैं तो ब्रह्माजी द्वारा दिए इस कार्य को तुम्हारे अनुकूल ही समझता हूँ।"

"पिताजी ! मैं पितामहजी से मिलकर उनसे ही अपने मन की बात कहने के लिए ब्रह्मलोक को जा रहा हूँ।"

"तब ठीक है। देखो, मेरी सम्मति मानो। उनसे मिल लो और फिर उनकी आज्ञा को मान जाओ।"

"मैं उनसे अपने मन की बात स्वीकार की जाने की आशा से वहाँ जा रहा हूँ। फिर भी यदि उन्होंने मुझे समझा दिया कि मुझे यहाँ का राज्य करना चाहिए तो मैं लौट आऊँगा।"

"अच्छा, अपनी माँ से भी बात कर लो।"

"वह तो आपकी बात का उल्लंघन नहीं कर सकतीं।"

गंगा बोली, "कुमार ! क्या तुम मुझे अपने पिता की दासी मानते हो ?"

"नहीं माँ ! दासी नहीं। फिर भी पति में श्रद्धा रखने वाली पत्नी तो मानता ही हूँ।"

शिव, पार्वती और गंगा हँसने लगे। कुमार इस हँसने का अर्थ न समझ उनका मुख देखता रह गया।

बात गंगा ने ही कही, "कुमार ! तुम श्रद्धा और विश्वास में अन्तर नहीं समझते, तभी यह कहते हो। देखो, पहले विश्वास हो कि कहने वाला व्यक्ति सदा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तियुक्त बात करता है, तब उस व्यक्ति पर श्रद्धा बनती है। विश्वास उत्पन्न करने के लिए बुद्धि से परीक्षा अत्यावश्यक है। मैंने ये सब पग पहले पार कर लिए हैं, तभी तुम्हारे पिता के प्रति श्रद्धा बना सकी हूँ।"

"तो माँ ! तुम समझती हो कि मेरा यहाँ राज्य-कार्य में लग जाना योग, तपस्या से भी श्रेष्ठ है ?"

"योग और तपस्या उद्देश्य नहीं, ये साधन हैं। उद्देश्य तो है आत्मोन्नति और वह कर्म से सम्बद्ध होने पर ही सम्भव है। तपस्या तो केवल भले, सर्वहित के कर्म करने की योग्यता प्राप्त करने का उपाय है। यहाँ तो तुम्हें अनायास ही कर्मक्षेत्र मिल रहा है।

"ऐसा प्रतीत होता है कि तपस्या तो तुम अपने पूर्वजन्म में ही कर आए हो। तभी तपस्या के फलस्वरूप तुम्हें कर्म करने का अवसर मिल रहा है।"

कुमार को माता के कथन का उत्तर तो नहीं सूझा, परन्तु यह समझा कि माँ अपने पुत्र को एक नरेश के रूप में देखने की लालसा में ही यह सब कुछ कह रही है, अथवा स्वयं तपस्या का जीवन व्यतीत करने की इच्छा न करती हुई पुत्र को भी अपने साथ बाँधकर रखना चाहती है। इस कारण अगले दिन वह पिता से ब्रह्मलोक में जाने के लिए विमान माँगने गया तो महादेव ने पूछ लिया, "रात माँ के कथन से कुछ समझ में नहीं आया ?"

"उनकी बात का उत्तर तो नहीं सूझ सका, परन्तु मन को अभी सन्तोष नहीं हुआ। पिताजी ! बात यह है कि दो वर्ष पूर्व हुआ देवासुर-संग्राम जीतना मेरे जीवन का लक्ष्य बताया जा रहा था। नारदजी ने मुझे एक दिन बताया था कि मेरे जन्म की और मेरे लालन-पालन की योजना ही इस संग्राम की तैयारी के लिए की गई थी। मेरी शिक्षा तो स्पष्ट रूप में मुझे एक विशाल युद्ध में सेनापति का कार्य करने के लिए दी गई थी।

"वह कार्य मैंने सम्पन्न कर दिया है। अब मैं समझता हूँ कि मुझे अपना भविष्य-निर्माण करने का अवसर मिलना चाहिए।"

"ठीक है। तुम मेरा विमान ले जाओ और देखो, ब्रह्माजी तुम्हें भविष्य-निर्माण की क्या योजना बताते हैं ! किसीने तुम्हारे मन में यह मिथ्या विचार बिठा दिया है कि राज्य-कार्य भविष्य-निर्माण का कार्य नहीं है।"

कुमार ने विमान लिया और ब्रह्मलोक में जा पहुँचा।

कुमार को ब्रह्मलोक के सब लोग जानते और पहचानते थे। अतः उसके विमान से उतरते ही प्रतिहार भागे-भागे आए और पूछने लगे, "तो पितामहजी को आपके आने की सूचना दी जाए अथवा पहले विश्राम करिएगा ?"

"पितामहजी को सूचित कर दो। यदि उन्होंने भेंट के लिए कोई अन्य समय निश्चित किया तो फिर मैं विश्राम के लिए विचार कर लूँगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहार गया और शीघ्र ही आकर बोला, "पितामहजी आपको बुला रहे हैं।"

इस प्रकार बिना प्रतीक्षा किए ही पितामह से कुमार की भेंट हो गई। पितामह और शुक्राचार्य बैठे किसी विषय पर बातचीत कर रहे थे। जब कुमार आया तो पितामह ने बैठने का संकेत कर शुक्राचार्य से अपनी वार्ता जारी रखी।

पितामह कह रहे थे, "मेरे त्रिवर्ग नीतिशास्त्र में मोक्ष-प्राप्ति का तिरस्कार नहीं है, न ही उस शास्त्र का यह आशय है कि मोक्ष प्राप्तव्य नहीं।"

"तो भगवन्! फिर उसे अपने शास्त्र का अंग क्यों नहीं बना दिया?"

"यह इसलिए कि त्रिवर्ग राजसी-कार्य के साथ सम्बन्ध रखता है और मोक्ष व्यक्ति के अपने लिए और स्वयं ही करने का कार्य है। दोनों में न कहीं मेल है और न ही विरोध। जैसे प्रातःकाल का भ्रमण और मध्याह्न का भोजन करना एक ही व्यक्ति करता है, परन्तु दोनों न तो एक-दूसरे में सहायक हैं और न ही विरोधी।"

"परन्तु भगवन्!" शुक्राचार्य का कहना था, "भ्रमण से भूख लगने से भोजन स्वादिष्ट लगता है और उसे पचाने में सुविधा रहती है।"

"यह तो है ही आचार्यवर! भ्रमण से भूख लगती है। इसी प्रकार धारणा, ध्यान, समाधि से राज्य-कार्य में सहायता मिलती है। जैसे भ्रमण करने से भोजन पचता है, इसी तरह त्याग, तपस्यादि से राज्य-कार्य फल देता है। फिर भी दोनों कार्य अपने-अपने स्थान पर भिन्न-भिन्न हैं। एक को दूसरे का स्थानापन्न नहीं कहा जा सकता।"

शुक्राचार्य को अभी सन्तोष नहीं हुआ। इस कारण पूछने लगा, "भगवन्! नीतिशास्त्र का त्रिवर्ग किस प्रकार मोक्ष में सहायक हो सकता है?"

"यह इस प्रकार जैसे योग से धारणा, ध्यान, समाधि मनुष्य के मन और बुद्धि को परिष्कृत करने में सहायक होते हैं और उस परिष्कृत बुद्धि तथा मन से त्रिवर्ग के कार्य ठीक ढंग पर करने में मार्गदर्शन होता है। यह इसी प्रकार है, जैसे कि अँधेरे में मार्ग चलने में कष्ट होता है। मार्ग भूला व्यक्ति मिथ्या मार्ग पर भी चल पड़ता है। यदि उस समय हाथ में प्रज्वलित प्रकाश-शिखा मिल जाए तो मार्ग चलने में सुविधा भी होती है और ठीक मार्ग को ग्रहण करने में भी सहायता मिलती है।

"और यदि मनुष्य धारणा, ध्यान, समाधि लगाए तो तब भी कर्म की आवश्यकता रहती है?"

पितामहजी हँस पड़े। हँसते हुए बोले, "आचार्यवर! अग्नि-शिखा जलाकर घर के द्वार पर खड़े हो जाओ और लक्ष्य-स्थान की ओर चलो नहीं तो जलती अग्नि शिखा तुम्हें लक्ष्य पर कैसे पहुँचा देगी?"

"तो कर्म करना आवश्यक है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मार्ग चलना ही कर्म है और इस भूलोक में कर्म यज्ञ है। यज्ञ से मेरा अभिप्राय लोक-कल्याण के कर्म से है। यही मार्ग है मोक्ष का। बिना कर्म किए कुछ नहीं मिलता।"

"तो यह धारणा कि चित्त अर्थात् मन, बुद्धि और जीवात्मा के शुद्ध-निर्मल होने से मोक्ष स्वत: प्राप्त होता है, शुद्ध कथन नहीं ?"

"नहीं। यह तो ठीक है कि योगाभ्यास से चित्त स्थिर और उससे जीवात्मा निर्मल हो जाती है, परन्तु इतना पर्याप्त नहीं। मोक्ष के द्वार तक पहुँचने और उसे खटखटाने में मार्ग तो तब भी चलना पड़ता है। निष्क्रियता मोक्ष नहीं। मोक्ष यात्रा का अन्त है और उस तक पहुँचने के लिए कर्म की आवश्यकता रहती है।"

"मोक्षावस्था में क्या कर्म करना होता है ?"

"जिस कर्म के अभ्यास से मोक्ष प्राप्त होता है। मेरा अभिप्राय है कि लोक-कल्याण का कार्य करते हुए ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है और उस अवस्था में पहुँचकर भी वह कार्य करता है।

"यदि मोक्ष ऐसा होता जैसे कि जाड़े की ऋतु में रजाई की उष्णता होती है, रजाई में गर्म होकर सोया जाता है, तब कोई भी इसे प्राप्त करने में इतना कठोर कार्य न करता। यह तब प्रलयकाल की निद्रा हो जाती। प्रलयकाल में भी जीवात्मा निष्क्रिय हो जाते हैं। यदि मोक्षावस्था में भी वही होना होता तो दोनों में कुछ अन्तर ही न रह जाता।

"और आचार्यवर ! त्रिवर्ग ही वह कर्म है, जो इस भूलोक में किया जा सकता है। धर्म, अर्थ और काम निर्मल बुद्धि और मन से किया जाए तो मोक्ष मिलता ही है।"

शुक्राचार्य पितामह के कथन में दोष विचार करता हुआ आँखें मूँदे बैठा था कि कुमार उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ नमस्कार करने लगा।

पितामह ने विस्मय में पूछा, "क्यों ? कहाँ जा रहे हो कुमार ?"

"भगवन् ! कैलासलोक को लौट रहा हूँ।"

"तो आए किसलिए थे ?"

"जिस कार्य के लिए आया था, वह हो गया है। जो कुछ प्राप्त करने आया था, वह प्राप्त हो गया है। वहाँ पिताजी तथा मौसीजी भ्रमण के लिए जाने को तैयार बैठे हैं। मैं उनके जाने में बाधा नहीं बनना चाहता।"

"क्या प्राप्त हो गया है ? क्या ले चले हो यहाँ से ?"

"पितामह ! ज्ञान। मेरे मन में संशय उत्पन्न हो रहा था कि राज्य-कार्य सँभालूँ अथवा नहीं। सुकेश अपने पिता के पास लंका को चला गया है और पिताजी भ्रमणार्थ, सम्भवत: वानप्रस्थ, तदनन्तर संन्यास लेने के लिए जा रहे हैं। मैं भी राज्य छोड़ आपके देश में तपस्या के लिए आने वाला था, परन्तु अब लौट रहा हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त स्थिर हो गया है। अब कैलास देश का राज्य-कार्य सँभालने जा रहा हूँ।

ब्रह्माजी समझ गए और हँसकर बोले, "ठीक है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। दस वर्ष तक राज्य करो। इस काल में निष्काम भाव से लोकहित में लगे रहो। साथ ही इस संसार में धन-जन-बल का संग्रह करो। तब मैं स्वयं तुम्हारे पास आऊँगा और तुम्हारा पुरोहित बन तुमसे राजसूय यज्ञ कराऊँगा।"

कुमार स्थिरचित्त हो कैलासलोक को लौट आया।

: ६ :

जब महादेव शिव और पार्वती अपने वृषभ विमान पर भूमण्डल-भ्रमण के लिए चले गए तो एक दिन गंगा ने पुत्र को बुलाकर कहा, "कुमार! जब राज्य-कार्य करने लगे हो तो विवाह भी कर लो।"

"माँ! इन दोनों बातों में क्या सम्बन्ध है?"

"यह कार्य तो विवाह के बिना भी हो रहा है। तुम्हारे बगल में पत्नी हो अथवा न हो, इससे राज्य-कार्य में अन्तर नहीं पड़ रहा। मैं समझती हूँ कि भविष्य में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ने वाला। फिर भी इस कठोर तपस्या से जो शरीर निर्माण हुआ है, उसका उत्तराधिकारी तो होना चाहिए।

"बेटा! जो यज्ञ तुम कर रहे हो, यह भी इस यज्ञ का एक अंग ही है।"

"तो माँ! किसीको ले आओ, जो तुम्हारे पोते-पोतियों की माँ बनने की योग्यता और क्षमता रखती हो।"

"हाँ। तुम तैयार हो जाओ तो फिर मैं किसी सुपात्र को यह कार्य-भार सौंप दूँगी।"

"हाँ, ऐसा ही करो।"

अब गंगा कुमार के योग्य पत्नी की खोज करने लगी। अपने देश में एक छोटे से छोटे कार्य करने वाले व्यक्ति के परिवार से लेकर उच्च से उच्च कार्य करने वाले महामात्य सुधाकर के परिवार तक खोज डाला। उसे कोई कन्या इस योग्य नहीं मिली, जो उसके पुत्र स्कन्द की सहधर्मिणी बन सके।

अब गंगा ने अपनी खोज कैलासलोक से बाहर आरम्भ कर दी। उसने कई चक्कर देवलोक, गन्धर्व देश तथा असुर देशों के भी लगाए और निराश लौट आई।

इस समय दीपक-तले अँधेरा वाली बात हो गई। वह अपने पिता के देश में गई नहीं। उसकी समझ में यही आया कि वहाँ की सब कन्याओं को वह जानती है और उसके विचार से वहाँ पर कोई ऐसी लड़की नहीं, जो उसके अद्वितीय पुत्र के साथ आसन ग्रहण कर सके।

गंगा की खोज कदाचित् निष्फल ही जाती, यदि उस समय हिमाचल प्रदेश के शासक महाराज हिमवान का देहान्त न हो जाता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा को जब पिता के देहान्त की सूचना मिली तो वह तत्कालीन कैलासलोक के शासक के साथ ओषधिप्रस्थ में जा पहुँची। इन्द्रादि कुछ अन्य देवता भी हिमवान के निधन पर शोक प्रकट करने आए हुए थे। वह काल था, जब कुमारसम्भव स्कन्द की उसके कुछ वर्ष पूर्व हुए देवासुर-संग्राम में युद्ध-नीति और सेना के संगठन की उत्कृष्टता देख भूमण्डल के प्राय: सब शिष्ट जन उसकी प्रशंसा करते थे। इस कारण जब वह अपनी माँ के साथ अपने नाना के निधन पर शोक प्रकट करने वहाँ गया तो उस समय वहाँ पर पधारे सब देवता लोग उसे घेरकर बैठ गए। इनमें इन्द्र, विष्णु, नारद और भारत से आए ककुत्स्थ और लंका से आए सुकेश भी थे।

महेन्द्र, कुमारसम्भव का मामा, अपनी पत्नी के साथ यज्ञ पर बैठा हुआ था। यज्ञ पिछले ग्यारह दिन से चल रहा था और उस दिन यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली थी। सब अभ्यागत इसी अवसर पर शोक प्रकट करने आए हुए थे।

सुकेश के आने से पहले तो युद्ध-विषय पर बातें हो रही थीं। तारक का एक दूर का सम्बन्धी उसके देश में राजा बना दिया गया था और उसकी दैवी पक्ष वालों से सन्धि हो चुकी थी। उसके विषय में ही बात हो रही थी। इन्द्र को सन्देह हो रहा था कि वह तारक के पदचिह्नों पर चल रहा है।

इस समय सुकेश वहाँ आ पहुँचा। उसे देख कुमारसम्भव ने पूछा, "दादा, कब आए हो?"

"भैया! अभी आया हूँ।"

"सुनाओ, शील कैसी है?"

"बहुत मजे में है। अब तीसरे बच्चे को जन्म देने वाली है।"

"अच्छा! बहुत जल्दी-जल्दी भाग रहे हो!"

"भैया! भाग तो शील रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बहुत उपजाऊ भूमि है। जितने काल में दूसरे स्थान पर एक फसल होती है, वहाँ दो हो चुकी हैं और तीसरे की तैयारी है।

"परन्तु भैया! तुम क्या कर रहे हो? लम्बी तानकर लेटे हो।"

सब हँसने लगे। सुकेश ने ही कहा, "अभी तक तो तुमने विवाह भी नहीं किया।"

"मैं इसे आवश्यक नहीं समझता। हाँ, तुम्हारी मौसी पीछे पड़ी हैं और मैंने उन्हें कह रखा है कि जब भी वह चाहें और जहाँ भी चाहें, विवाह-बन्धन में बाँध दें और यत्न करूँगा कि उनके द्वारा माँ के लिए एक-दो पोते-पोतियाँ उत्पन्न कर दूँ।"

"और वह क्या कहती हैं?"

"वह भी यहाँ आई हुई हैं। तुम स्वयं ही पूछ लो।"

इन्द्र ने कहा, "मेरी रानी शची ने गंगारानी से पूछा है और वह कहती हैं कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार के मेल की कोई लड़की नहीं मिल रही है।"

फिर इन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "माँ को तो अपने पुत्र के मेल की कोई लड़की मिलेगी नहीं। मिल जाए तो समझो कि वह माँ ही नहीं। इस कारण प्रत्येक माँ को अपनी पुतोहू पुत्र से कुछ हीन ही स्वीकार करनी पड़ती है।"

"परन्तु देवेन्द्र !" विष्णु ने कहा, "भाभी शची ने यह सुझाव गंगारानी को दिया है अथवा नहीं ?"

"नहीं। उन्होंने एक अन्य बात कही है।"

"क्या ?"

"यही कि एक मास के लिए कुमार को स्वयं निर्वाचन के लिए छूट देकर देवलोक भेज दें। तब वह स्वयं अपनी पत्नी ढूँढ़ लेगा।"

सुकेश ने पूछा, "और मौसी ने क्या उत्तर दिया है ?"

"वह मौन रही हैं।"

"मैं इसका यह अर्थ समझता हूँ कि मौसी अपनी पुतोहू की खोज कर रही हैं, लड़के की पत्नी की नहीं।"

कुमार ने कहा, "दादा का अनुमान ठीक है। मैंने ही उन्हें कहा है कि वह अपने पोते-पोतियों की माँ को ढूँढ़ लें।"

सब हँसने लगे। कुमार ने उनके हँसने को अर्थहीन समझकर कह दिया, "देखिए देव शिरोमणि ! माताजी को अपनी सन्तान में वृद्धि की अभिलाषा मुझसे अधिक प्रतीत होती है।"

इस प्रकार की बातें हो रही थीं कि यज्ञ की पूर्णाहुति हो गई और महेन्द्र अपनी पत्नी सुचाला के साथ उठकर शोक प्रकट करने आए लोगों को विदा करने लगा।

इसके उपरान्त इन्द्र की पत्नी शची आई और अपने साथ एक लड़की को ले आई। शची ने कुमार को सम्बोधित कर कहा, "कुमार ! तुम इसे जानते हो ?"

"नहीं मौसी !"

"यह तुम्हारी जीवनसंगिनी बन रही है।"

यह सुन सब हँसने लगे। सुकेश ने पूछा, "मौसी ! भैया की माताजी से भी पूछा है अथवा नहीं ?"

"उनसे स्वीकृति लेकर ही आई हूँ।"

"परन्तु मौसी !" कुमार ने कह दिया, "माँ को यह कहाँ मिल गई है ?"

"यह तुम्हारी मामी के भाई की लड़की है। मैंने इसे पसन्द किया तो गंगा बहन भी मान गई हैं। शर्त यह लगाई है कि यदि तुम मान जाओ तो। इसीलिए इसे तुम्हारे पास लाई हूँ।"

लड़की भूमि की ओर देख रही थी और इन्द्राणी की बातों से लाल हो रही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। कुमार ने उसकी ओर ध्यान से देखा तो वह शची के पीछे अपने को छुपाने लगी थी। यह देख वहाँ उपस्थित सब जन हँसने लगे। कुमार ने इन्द्रादि का ध्यान लड़की की ओर से हटाने के लिए कह दिया, "देखो कुमारीजी ! मैं तो अपनी माँ की आज्ञा मान लूँगा। तुम जैसी भी हो, मैं स्वीकार कर लूँगा। इस कारण मुझसे छुपकर अपने गुण-दोषों को छुपाने से तुम्हें किसी प्रकार का हानि-लाभ नहीं होगा। अतः तुम माँ के पास जाओ और उससे ही यह आँखमिचौली खेलो।"

लड़की अन्तःपुर के द्वार की ओर भाग खड़ी हुई।

महेन्द्र सबको विदा कर इस देव-मण्डली की ओर आया तो इन्द्र ने पूछ लिया, "महेन्द्र ! तुम्हारी ससुराल कहाँ है ?"

"यहीं हिमाचल प्रदेश के एक गाँव में है। क्या बात है ?"

"तुम्हारे साले की लड़की के विषय में कुमार जाँच कर रहा है।"

"इसने पसन्द कर लिया है उसे ?"

उत्तर इन्द्र ने ही दिया। उसने कहा, "इसके पसन्द करने के लिए ही तो जाँच हो रही है।"

"मैं इससे उलट समझा था। पसन्द तो बाहरी रूप-रंग किया जाता है। जब वह पसन्द आ जाती है तो फिर आभ्यन्तरिक गुण-दोष की जाँच-पड़ताल आरम्भ होती है।"

"मामाजी !" कुमार ने कहा, "मैंने यह काम माताजी को दे रखा है। बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की जाँच-पड़ताल आपकी बहनजी के हाथ में है।"

सब गम्भीर हो गए। कुमार ने बात बदल दी। उसने सुकेश से पूछा, "आपकी माताजी नहीं आईं ?"

"पिताजी लम्बी समाधि लगाए हुए हैं। दो वर्ष हो चुके हैं और विचार है कि अभी छः मास तक समाधि और चलेगी। माताजी वहीं उनके पास हैं।

"हाँ, एक बात और है। माताजी ने एक अन्य लड़का गोद ले लिया है।"

"कौन है वह ?"

"एक वैश्य-समाज का घटक है। इस समय उसकी वयस दो वर्ष की है।"

"वह कहाँ पा गई हैं मौसी ?"

सुकेश हँस पड़ा। हँसते हुए बोला, "माताजी कहती थीं कि वैश्य-समाज ब्राह्मण और क्षत्रिय-समाज का मैल होता है। समाज ने इसे त्यागा हुआ है। वह इसे फिर मान-प्रतिष्ठा दिलवाने के लिए इसको देवों के देव का पुत्र बनाकर पूजनीय पद दिलाएँगी।"

"और दादा ! तुम किसलिए हँसे हो ?"

"स्त्रियों के कल्पनातीत व्यवहार पर।"

"क्या शील का व्यवहार कल्पनान्तर्गत है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय गंगा आ गई। उसने देवताओं की भीड़ खड़ी देखी तो उन्हें नमस्कार कर कुमार से बोली, "चलो बेटा ! तुम्हारी मामी बुला रही हैं।"

मामी का शब्द सुनते ही सब पुनः खिलखिलाकर हँसने लगे।

गंगा भी हँसती हुई कुमार की बाँह पकड़कर ले जाने लगी तो शची ने कह दिया, "बहनजी ! कान पकड़कर ले जाओ। बाँह से ठीक नहीं।"

गंगा ने चलते हुए मार्ग में कहा, "तुम्हें वह लड़की पसन्द नहीं है ?"

"यह किसने कहा है ?"

"वही कह रही है। देखो कुमार ! वह यद्यपि बहुत सुन्दर नहीं, फिर भी कुछ खराब भी नहीं; परन्तु शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त वह मन और बुद्धि में अति श्रेष्ठ है।"

"परन्तु माँ ! मैंने उसे अस्वीकार तो नहीं किया।"

"तो वह रो किसलिए रही है ?"

"यह तो वह ही बता सकती है। मैंने तो उसे यह कहा है कि वह जैसी भी है, मुझे स्वीकार होगी। माँ को प्रसन्न करो। उसका निर्णय मैं मान जाऊँगा।"

"परन्तु वह तो ऐसे रो रही है, मानो तुमने उसके मुख पर दो-तीन चपत लगाए हैं।"

"नहीं माँ ! मैंने उसको छुआ तक नहीं।"

इस समय वे महेन्द्र के अन्तःपुर में पहुँच गए। वहाँ नयना और सुचाला बैठी थीं। लड़की की माँ वहाँ नहीं थी। वह किसी काम से भीतर गई थी।

गंगा ने कुमार को लड़की के सामने बिठाकर पूछा, "देखो कुमार ! यह नयना है। तुम्हारी मामी सुचाला के भाई की लड़की है। बताओ, इससे विवाह करोगे ?"

"माँ ! तुम क्या कहती हो ?"

"मैंने पसन्द करके ही इसे तुम्हारे पास भेजा था।"

"तो ठीक है। इसे अपने देश को ले चलते हैं और वहाँ इससे विवाह कर देना।"

"अब बताओ नयना !" गंगा ने लड़की से पूछा। उसकी आँखें अभी भी आँसुओं से डबडबा रही थीं। जब गंगा ने नयना से पूछा तो वह मुख लटकाए बैठी रही। गंगा की माँ ने नयना की ठुड्डी के नीचे हाथ रखकर उसका मुख ऊपर उठाया तो वह कुमार की ओर देखकर मुस्कराई और फिर आँखें जोर से मींच लीं।

वह मुस्करा रही थी।

गंगा की माँ ने कह दिया, "मन से तो पसन्द कर रही प्रतीत होती है।"

नयना मुस्कराते हुए लजाती रही।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: १० :

विवाह तो इसके कई दिन बाद हुआ। कुमार अपनी मामी के भाई की ससुराल वालों के गाँव में गया और नयनादेवी को विवाह कर कैलासलोक में ले आया।

वहाँ कुमार अपनी राजधानी के प्रमुख व्यक्तियों तथा मुख्य-मुख्य देवताओं को भोज पर बुलाकर उनसे आशीर्वाद माँगने लगा।

इन्द्र, वरुणादि आए हुए थे। जब कुमार सपत्नीक इन देवताओं से आशीर्वाद प्राप्त करने आया तो पुनः देवता लोग नयना के शची की पीठ के पीछे छुप जाने की बात स्मरण कर हँसने लगे।

नयनादेवी तो मौन गम्भीर हाथ जोड़े इन हँस रहे देवताओं के सामने खड़ी रही; बात कुमार ने की। उसने कहा, "भगवन्, मत हँसिए, अन्यथा मेरे लिए बहुत कठिन समस्या उत्पन्न हो जाएगी।"

"क्या समस्या उत्पन्न हो जाएगी?" शची ने पूछा।

"यह फिर रोने लगेगी और माँ को पुनः मुझे बुलाकर डाँटना पड़ेगा।"

"तब तो बहुत ठीक होगा।" शची ने कहा, "तुम्हारी नकेल इसके हाथ में पकड़ा देगी।"

"नहीं, यह नहीं। मुझे डाँट यह पड़ेगी कि इससे इतना बलपूर्वक प्यार न करूँ जिससे आपको भी हँसी आने लगती है।"

"तो पहले यह तुम्हारे प्यार से भाग तुम्हारी माँ के आँचल में मुख छुपा रोने गई थी?" इन्द्र का प्रश्न था।

"हाँ। इसने मुझे बाद में बताया था कि मेरे इसे पसन्द करने पर इसे लज्जा तो लगी और पीछे प्रसन्नता के आँसू आँखों में छलछलाने लगे थे। इससे यह भाग गई थी। माँ ने तो बस आँसू देखे और मुझे डाँटना आरम्भ कर दिया।

"अब पसन्द करने की बात तो नहीं, परन्तु आप मेरे इससे प्यार की बात कहेंगे तो पिछली रात की बात स्मरण कर यह आनन्द-विभोर हो फिर रोने लगेगी और भागकर माँ के पास चली जाएगी। माँ फिर समझेंगी कि मैंने इसे पीटा है। बस, फिर मुझे डाँट पड़ेगी ही।"

परन्तु इस बार नयनादेवी भागी नहीं। वह शची के समीप ही उसकी बाँह में बाँह डालकर बोली, "मैं रोई इस कारण नहीं थी कि इन्होंने पीटा था, वरंच इस कारण कि यह सहज ही मान गए थे।"

"और अब नहीं रोओगी?"

"परन्तु अब तो इनकी स्वीकृति का फल भी भोग चुकी हूँ। अब तो पहले ही प्रसन्नता चरम सीमा तक पहुँची हुई है!"

कुमार ने अपने विवाह पर आने और बधाई देने का निमन्त्रण लंका में भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजा था। और सुकेश तथा उसकी पत्नी शील आई हुई थी। शील तो तीन मास के गर्भ का भार उठाए हुए एक ओर चुपचाप बैठी थी, परन्तु सुकेश इन देवताओं में खड़ा था।

उसने हाथ जोड़ नयनादेवी को कहा, "छोटी भाभी ! तुम्हारी बड़ी बहन वहाँ बैठी तुम्हारे उधर आने की प्रतीक्षा कर रही है।"

"वह बैठी क्यों हैं ?"

"खड़ी-खड़ी थक गई है।"

"तब ठीक है।"

"नयनाजी ! जाइए, बड़ी भाभी के चरण-स्पर्श कर आइए। उसके आशीर्वाद से तुम उर्वरा हो उठोगी।"

सब हँसने लगे। नयना देवताओं की हँसी से बचने का यह बहुत अच्छा अवसर देख तुरन्त उधर चली गई, जिधर शील बैठी थकावट दूर कर रही थी।

शील थकी अवश्य थी। नयना जब उसके चरण-स्पर्श करने लगी तो उसने उसे अंग से लगाते हुए कहा, "मैं तो उधर ही आने वाली थी। मैंने कुमारजी के बड़े भाई साहब को कहा था कि मैं थोड़ा विश्राम कर लूँ, तब उनकी भाभी के दर्शन करने जाऊँगी; पर वह आपको ही कष्ट देने चल पड़े।"

"कुछ कष्ट है आपको ?" नयना ने पूछ लिया।

"हाँ। तुम्हारे ज्येष्ठ महोदय बीज पर बीज डालते चले जाते हैं। इधर बहुत ही कम अन्तराल पर बच्चे होने लगे तो दुर्बलता अनुभव करने लगी हूँ।"

"तो यह बात है ! इससे पहले आपके कितने बच्चे हैं ?"

"यह तीसरा है। पाँच वर्ष में यह तीसरा होगा। पहला माल्यवान चार वर्ष का है और दूसरा माली ढाई वर्ष का है और यह अब आ रहा है।"

"और उसका क्या नाम रखोगी ?"

"अभी जानती नहीं कि लड़का होगा अथवा लड़की। इस कारण नाम तो तब विधिपूर्वक रख देंगे।"

"तो इसीलिए आपके देवर ने मुझे आपके पास भेजा है। मुझे तो इस बात से भय लगने लगा है।" इस समय तक नयनादेवी शील के पास बैठ गई थी।

जब सब विदा हो गए तो सुकेश कुछ दिन के लिए कैलासलोक में ही रह गया। एक दिन वह अपने देश की अर्थ-व्यवस्था का वर्णन करने लगा। गंगा, कुमार और नयनादेवी वहाँ बैठे थे। सुकेश की पत्नी अपने शयनागार में आराम कर रही थी।

सुकेश बता रहा था, "हमारे देश की यह नीति है कि बहुत बड़े-बड़े उद्योग चलाए जाएँ। ऐसे यन्त्र तैयार किए गए हैं कि एक-एक व्यक्ति दो-दो सौ श्रमिकों का काम नित्य करता है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो तुम्हारे यहाँ बेकारी नहीं है ?"

"है तो, परन्तु हम बेकारों को बेकार नहीं रहने देते। हमने सेना में असीम वृद्धि कर रखी है। सबको सेना में काम करना होता है।"

"तो इतना धन कहाँ से आता है ?"

"धन हमारे पास बहुत है। हमारे द्वीप भारत सागर में फैले हुए हैं। उनके बीच के सागर की सब उपज राज्य की सम्पत्ति होती है।"

"सागर में धन किस रूप में मिलता है ?"

"सागर की सबसे अधिक उपज है मछली। यह न केवल अपने देश में भोजन का मुख्य अंग है, वरंच भारत भूमि के दक्षिणी भागों में भी बहुत बिकती है।

"इससे कम उपज है मोतियों की। भूमण्डल के व्यापारी इसे क्रय करने बारहों महीने आते रहते हैं।

"संसार के बहुत-से जानवरों का चर्म कई प्रकार के प्रयोग के लिए बिकता है। इनके अतिरिक्त हमारे देश में एक रस प्राप्त होता है। वह प्राकृतिक मद्य है। यह वहाँ बहुत उपलब्ध होता है। ताड़ वृक्ष से निरन्तर रस द्रवित होता रहता है। उसे लोग एकत्रित करके पीते हैं। कृत्रिम मद्य से अधिक मादकता इसमें होती है।

"राज्य इन सब उपजों पर कर लेता है और यह कर इतना अधिक है कि इससे हम एक सहस्र अक्षौहिणी सेना रख सकते हैं। इस समय सेना की संख्या केवल बीस अक्षौहिणी ही है।

"इस प्रकार हम राज्य के किसी भी व्यक्ति को बेकार नहीं रहने देते। सेना से नगर-निर्माण का कार्य भी हम लेते हैं। इस प्रकार हमारे सब द्वीपों के नगर पक्के, साफ-सुथरे और सुखकारक बने हैं। हम इन नगरों की सड़कों को पक्की, चौड़ी और स्वच्छ बनाने में सेना का प्रयोग करते हैं।"

"परन्तु सुकेश ! किसी देश में सेना के अधिक हो जाने से भी तो कभी-कभी कठिनाई उत्पन्न हो सकती है।

"सेना का कार्य अनुशासन और नियन्त्रण से चलता है। ये दोनों बातें मनुष्य को पशु बना देती हैं और देश में पशुओं की संख्या असीम नहीं की जा सकती। ये मानव-कलेवरों में पशु संगठित हो विकृत बुद्धि रखते हुए कठिनाई भी तो उत्पन्न कर सकते हैं।"

"परन्तु भैया ! नियन्त्रण में रहते हुए पशु तो सदा हितकर ही होते हैं।"

"देखो सुकेश ! नियन्त्रण संस्कारों की उपज है। यह मन का विषय है; परन्तु इस नियन्त्रित संगठन को दिशा तो बुद्धि देती है। बुद्धि नियन्त्रण से नहीं, वरंच प्रेरणा से कार्य करती है। बस, यह प्रेरणा ही कभी उलट होकर विनाश भी उत्पन्न कर सकती है। तब यही नियन्त्रण संगठन का रूप धारण करके एक प्रबल शस्त्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन जाता है, जो बुद्धि के अधीन हो अपार लाभ अथवा हानि उत्पन्न करने लगता है।

"तो भैया ! बुद्धि को प्रेरणा देने वाले अनुकूल रखने होंगे ?"

"यही संगठन विशाल और विशाल बनाने से कठिन और कठिन होता प्रतीत होता है।"

"हम तो पूर्ण जाति को ही नियन्त्रण में रखने के लिए अनुशासन की महिमा वर्णन करते रहते हैं।"

कुमार उसको यह समझा नहीं सका कि बुद्धि की प्रेरणा किनके हाथ में होनी चाहिए। लंका में जिनके हाथ में नियन्त्रण की बागडोर थी, वही प्रेरणा देने वाले थे। उसके परिणाम बहुत भयंकर निकले।

यह ठीक है कि नियन्त्रित समाज में सामान्य व्यक्ति को अनायास ही सुख-सुविधा प्राप्त होती है; परन्तु ऐसे समाज में बुद्धि और बुद्धिमान लोग पनप नहीं सकते। परिणाम यह हो रहा था कि बुद्धि को प्रेरणा देने वाले स्वयं नियन्त्रित थे। दूसरे शब्दों में पशु थे।

परिणामस्वरूप सर्वेसर्वा था सुकेश। सुकेश स्वयं कैलासलोक में शिक्षित, स्वभाव से सात्त्विक प्रकृति वाला था, परन्तु उसकी सन्तान माल्यवान, माली और सुमाली नियन्त्रित शिक्षकों से शिक्षित पशुओं के पालक पशु ही बन गए थे।

यह प्रक्रिया पूर्ण होते-होते बीस वर्ष व्यतीत हो गए।

कुमार के घर भी तीन सन्तान थीं—दो लड़कियाँ और एक लड़का। इन तीनों की शिक्षा ब्रह्मलोक में पूर्ण हुई थी। कैलासलोक के शासन में भी परिवर्तन हुए थे। जनसंख्या इसमें भी बढ़ी थी। यद्यपि संयम और आत्मनियन्त्रण के निरन्तर प्रचार से मानव-प्रवृत्तियाँ वृद्धि पर थीं। फिर भी ये कुछ अधिक प्रभाव उत्पन्न न करतीं, यदि अर्थ-व्यवस्था स्वतन्त्र और व्यक्तिगत न होती।

इस अर्थ-व्यवस्था की नींव तो शिवजी महाराज ने डाली थी। यन्त्रों का प्रयोग होता था, परन्तु वही यन्त्र प्रयोग में लाए जाते थे, जिन्हें एक व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से संचालित कर सकता था।

इस प्रकार के यन्त्रों से एक व्यक्ति के परिश्रम की उपज तो बढ़ रही थी, परन्तु कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे की सेवा नहीं करता था।

एक समय था, जब ऊन और कपास तकलों पर काती जाती थी। एक व्यक्ति इस यन्त्र पर काम करता हुआ एक मास में एक-दो हाथ कपड़े के योग्य सूत कात सकता था। उसके स्थान पर हिमाचल प्रदेश से चर्खा लाया गया। इससे एक व्यक्ति की उत्पादन क्षमता बढ़ गई। जो कार्य पहले वह एक मास में कर सकता था, अब एक सप्ताह में सम्पन्न करने लगा।

जब कैलाशपति भारत गया तो वहाँ वह बारीक सूत कातने के उपाय सीख

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया। कश्मीर से वह रेशम के कीड़ों का बना-बनाया सूत उपलब्ध करने में सफल हुआ तो वह उनके प्रयोग करने लगा। इससे उसके परिश्रम का मूल्य और बढ़ गया।

शिवजी महाराज ने इसके आगे पूर्ण समस्या रख दी। जहाँ भी कोई ऐसा यन्त्र निर्माण करता, जिसमें एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता होती तो उसे वर्जित कर दिया जाता।

देवलोक के कुछ कारीगर यह इच्छा व्यक्त करते रहे कि उनको कैलासलोक में भी वही यन्त्र लगाकर कार्य करने की स्वीकृति दी जाए, जिनसे वे देवलोक में उद्योग चला रहे हैं। उनको शिवजी ने स्वीकृति नहीं दी।

कैलासलोक के भी कुछ लोग देवलोक तथा अन्य असुर देशों से सामूहिक परिश्रम की महिमा सीखकर आए थे, परन्तु उनको कैलासलोक में सामूहिक उद्योग-धन्धों को चलाने की स्वीकृति नहीं दी गई।

शिवजी महाराज की परम्परा कुमार के काल में भी चलती आ रही थी। परिणाम यह हो रहा था कि यहाँ दूसरे देशों के अनुपात में देखने में व्यक्ति निर्धन प्रतीत होते थे, परन्तु सुख-सुविधा के विचार से कैलासलोक का नागरिक देवलोक के नागरिक से अधिक सुखी अनुभव करता था।

राज्य की ओर से व्यक्ति के व्यवहार पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था। राज्य का नियन्त्रण तब आरम्भ होता था, जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध बनाने लगता था। राज्य-नियम उन कामों पर ही नियन्त्रण रखता था; जिनमें एक से अधिक व्यक्ति सम्मिलित होते थे।

ऐसा संयोग पति-पत्नी का भी था। इसी कारण विवाह राज्य-नियम से नियन्त्रित था; परन्तु पुरुष-स्त्री में सम्भोग तो राज्य से स्वतन्त्र था और राज्याधीन भी। स्वतन्त्र तब होता था, जब दोनों पक्ष स्वेच्छा से इसमें लीन होते थे और राज्य का नियन्त्रण वहाँ प्रकट होता था, जब दोनों में से कोई भी विवश कर इस कार्य में संलग्न किया जाता था।

इस प्रकार की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी कैलासलोक में।

लंका में इसके विपरीत अवस्था थी। बीस वर्ष के काल में उस देश के प्रायः सब कार्य राज्य की सेना के अधीन हो गए थे। जब सेना अर्थात् राज्य-कर्मचारियों ने उद्योग-धन्धों में हस्तक्षेप आरम्भ किया तो यह स्वाभाविक था कि उद्योग और अधिक बड़े होते जाएँ। लंका देवलोक की ओर चल पड़ा था।

यहाँ भी राज्य को जनता के प्रत्येक कार्य की चिन्ता लग गई। प्रजा के परिश्रम पर ही अधिकार करने का यह परिणाम हुआ कि राज्य के एक भी घटक के भूखा सोने का उत्तरदायित्व राज्य पर हो गया। व्यक्ति का दायित्व कम हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ आकर देवलोक और लंका देश में भेद उत्पन्न हुआ। जहाँ देवलोक में राज्य ने अपने को सबकी पालना न कर सकने के योग्य देखा, वहाँ वह जनसंख्या कम करने पर लग गया। ऐसे उपाय प्रयोग होने लगे, जिससे सन्तान न हो सके। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि पुरुष-स्त्री सम्बन्ध विवाह के अतिरिक्त वृद्धि पाने लगे।

लंका में पड़ोसी राज्यों को विजय कर, उनको लूट-पीटकर उससे अपनी प्रजा का पालन होने लगा। यह सेना में अपार वृद्धि का परिणाम था।

सुकेश के लड़के माल्यवान, माली और सुमाली सज्ञान हो गए थे। जो सेना का विशाल यन्त्र उनके पिता ने निर्माण किया था, वह चलने लगा तो वे उस विशाल यन्त्र के साथ स्वयं भी घूमने लगे।

लंका के साथ भारत का दक्षिण भाग लगता था। उसी पर पहले हाथ फैलाया गया। जब सेना ने उस सब क्षेत्र को अपने अधिकार में किया तो फिर राज्य के सब बेकार लोग वहाँ पहुँच गए और वहाँ की जनता को लूटने लगे। स्त्रियों का अपहरण होने लगा। सामान्य लोग और सेना के लोग किसी प्रकार का निर्माण-कार्य करना तो जानते नहीं थे, इस कारण अपने पेट भरने के लिए दूसरे से निर्मित पदार्थ छीन-छीनकर प्रयोग करने लगे।

पूर्ण दक्षिण देश में हाहाकार मच गया। महाराज शिव उन दिनों समाधि में नहीं थे। गन्धमादन पर्वत पर उन्होंने अपने लिए एक विशाल और सुन्दर भवन बनाया हुआ था। उस पर्वत के चारों ओर देश में लंका के सैनिकों से हाहाकार मच रहा था।

अकस्मात् गंगा अपने पति से मिलने आई हुई थी। उसकी दासियाँ तो कैलासलोक की रहने वाली थीं और भवन के बाहर फैल रही दुर्व्यवस्था से वे अति दुःखी गंगा के पास आ-आकर वहाँ के लोगों की अवस्था का वर्णन करने लगीं।

गंगा ने इस सूचना की अवहेलना करते हुए कहा, "हमें इससे क्या ! न तो मैं इस देश की नागरिक हूँ और न ही इस लूट-खसोट और पाप-कर्म करने वालों में से हूँ। मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, और करूँ भी तो क्यों करूँ ?"

दिन-प्रतिदिन यह अव्यवहार बढ़ता गया और चारों ओर फैले हाहाकार की ध्वनि गन्धमादन पर्वत पर शिव-भवन में आ-आकर कानों को फाड़ने लगी।

आखिर गंगा से नहीं रहा गया। वह अपनी छोटी बहन पार्वती के पास जाकर उस देश की जनता की दुःख-वार्ता सुनाने लगी।

पार्वती ने सुना तो कह दिया, "दीदी ! मैं भी नित्य अपने दास-दासियों से यहाँ के लोगों की दुर्दशा की बात सुन रही हूँ, परन्तु हम यहाँ विदेशी हैं। इस कारण हमें यह नहीं सुहाता कि हम यहाँ के राज्य-कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करें।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु बहन ! यह सब कुछ वहाँ के लोग तथा सैनिक कर रहे हैं, जहाँ तुम्हारे प्रिय पुत्र का राज्य है।"

"कौन प्रिय पुत्र ?" पार्वती गणेश के विषय में विचार कर रही थी। इस समय वह भी अट्ठारह वर्ष की वयस का हो चुका था, परन्तु वह इस समय काशीजी में शिक्षा ग्रहण कर रहा था।

गंगा ने बताया, "बहन ! मेरा आशय सुकेश से है।"

"परन्तु वह तो राज-पाट छोड़ संन्यास ले चुका है।"

"किन्तु उसके ही पुत्र तो यह सब कुछ कर रहे हैं।"

"तो उन्होंने किसी स्त्री का अपहरण किया है ?"

"उनके सैनिकों ने किया है।"

"तो इसमें वे क्या कर सकते हैं ?"

"अपने सैनिकों को इस प्रकार के अत्याचार करने से मना कर सकते हैं।"

"मैं उनको कुछ नहीं कहूँगी।"

"तो मैं महादेवजी से कहती हूँ।"

"हाँ, कह सकती हो।"

गंगा उठी और शिवजी महाराज के कक्ष में जा पहुँची। पार्वती पहले तो गंगा के साथ चलने की इच्छा नहीं रखती थी, परन्तु एक ही क्षण में उसका विचार बदला और वह गंगा के पीछे-पीछे महाराज शिव के आगार में जा पहुँची।

दोनों बहनें महादेव के सम्मुख बैठीं तो शिवजी महाराज ने पूछ लिया, "दोनों मिलकर क्या कहने अथवा मनवाने आई हैं ?"

उत्तर गंगा ने दिया। उसने कहा, "देव ! यहाँ देश में घोर अत्याचार हो रहा है।"

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ, परन्तु यहाँ मेरा राज्य नहीं है। यदि यह कैलास होता, तो यहाँ प्रथम तो यह होता ही नहीं और यदि इसका अंश-मात्र भी होता तो मैं इसको बन्द करा देता।"

"परन्तु देव ! राज्य तो यहाँ लंकाधिपति कर रहा है। अभी कुछ मास हुए उसने यहाँ आक्रमण कर इस देश को विजय कर लिया था। यहाँ का नरेश युद्ध में मारा गया था। लंकाधिपति उस नरेश के स्त्री-वर्ग को बन्दी बनाकर लंका में ले गया। परमात्मा जाने उनसे क्या व्यवहार किया है !"

"मैं जानता हूँ कि क्या व्यवहार किया है।"

पार्वती का प्रश्न था, "क्या व्यवहार किया है ?"

"सब बूढ़ी स्त्रियों की हत्या कर दी है। युवा स्त्रियों को तीनों भाइयों ने परस्पर बाँट लिया है और जो बालिकाएँ थीं, उनको चौराहों पर खड़ी कर नीलाम कर दिया है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा का मुख इस बात को सुनकर क्रोध से लाल हो गया। वह क्रोधवश कुछ कह नहीं सकी।

पार्वती ने कहा, "आप उनको समझाइए कि यह पाप है।"

"मैं दूसरे के राज्य-कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।"

"तो क्या जो वे कर रहे हैं वह राज्य-कार्य है?"

"हाँ। लंका के विधान के अनुसार यह राज्य-कार्य है।"

"परन्तु आप तो सबका कल्याण करने वाले हैं। आपको इन लोगों का उद्धार करना चाहिए।"

"बिना किसी के कहे मैं इस कार्य में हाथ नहीं डाल सकता।"

"तब मैं यहाँ की दुःखी प्रजा से कहती हूँ कि वे आपके पास याचिका भेजें। तब तो आप इस विषय में कुछ करेंगे ही।"

"हाँ, तब विचार करूँगा।"

गंगा उठकर बाहर चली गई। पार्वती बैठी रह गई। वह पूछने लगी, "देव! क्या बात है? आप इस कार्य में अग्रसर नहीं होते?"

"देखो देवी! सुकेश तुम्हारा लड़का है। उसके पुत्र भी तुमको प्रिय हैं। बिना उनकी हत्या किए यह विष-बीज नष्ट नहीं होगा।"

यह सुन पार्वती अवाक् मुख देखती रह गई। शिवजी मुस्कराते हुए उसे देखते रहे। बहुत विचार कर वह कहने लगी, "भगवन्! बिना मेरे पोतों की हत्या किए कोई अन्य उपाय नहीं हो सकेगा?"

"तारक का इतिहास जानती हो?"

"जी।"

"उसकी हत्या के बिना जनता का उद्धार नहीं हो सका था।"

"दीदी कुछ लोगों को कहने गई हैं कि वे आपके पास याचिका भेजें।"

"मेरी रुचि सुकेश के पुत्रों की हत्या करने में नहीं है।"

"तो फिर?"

"मेरी सम्मति यह है कि हमें अभी यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए। मैं उन लोगों के रोने-धोने को सहन नहीं कर सकूँगा और तुरन्त त्रिशूल लेकर माल्यवान इत्यादि की हत्या करने चल पड़ूँगा।"

"तो देव! चलो।"

दोनों उठे। पार्वती गंगा को साथ ले चलने के लिए उसको ढूँढ़ने चल पड़ी। गंगा अपनी उस सेविका को, जिसने उसे लंका के सैनिकों के अत्याचार की बात बताई थी, यह कहने गई थी कि पीड़ित लोग यदि शिवजी महाराज के पास अपनी रक्षा के लिए पुकार करें तो उनकी रक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा।

गंगा उस सेविका को समीप के नगर में भेज लौट रही थी। पार्वती उसे मिली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बोली, "देव कैलासलोक को चल रहे हैं। दीदी ! तैयार हो जाओ।"

गंगा ने कहा, "परन्तु मैंने तो नगर के लोगों को यहाँ आने के लिए कहा है।"

"वे वहाँ आ जाएँगे।"

गंगा को यह पसन्द नहीं था, परन्तु यह विचार कि वह कुमार को कहेगी कि वह इन लोगों की सहायता करे, वह भी उनके साथ चल पड़ी।

: ११ :

दक्षिण में गन्धमादन पार्वत के समीप गन्धायन नगर के लोग आए तो उनको पता चला कि शिवजी महाराज कैलास को लौट गए हैं।

किसी ने कह दिया, "तो कैलास की यात्रा करनी चाहिए।"

"बहुत दूर है भैया।" एक अन्य ने कह दिया।

"तो यहाँ अब क्या रह गया है ? वहाँ पेट भरने को भोजन तो मिलेगा।"

नगर में लोगों ने विचार किया। देश के दूसरे नगरों की प्रजा के साथ भी विचार-विमर्श हुआ और शरभंग ऋषि के साथ वहाँ के कुछ प्रतिनिधि कैलास को चल पड़े।

वे दो मास में वहाँ पहुँचे और उनके पहुँचने से पूर्व शिवजी महाराज समाधिस्थ हो चुके थे।

गंगा को पता चला कि दक्षिणांचल के लोग शिवजी महाराज से सहायता के लिए उनके पास आए हैं और वह समाधि लगाए बैठे हैं। इस कारण उसने कुमार से कहा, "कुमार ! इन लोगों की बात सुनो और यदि कुछ सहायता कर सको तो करो।"

कुमार ने शरभंग ऋषि को कैलास-भवन में बुला लिया और उनकी करुणामय कथा सुनकर विचार किया और ऋषि महाराज को कहा, "भगवन् ! महादेवजी आपकी सहायता नहीं करेंगे। कारण तो मैं जानता हूँ, परन्तु बताऊँगा नहीं।

"मैं आपकी ओर से युद्ध तो लड़ सकता हूँ, यदि मेरे पास लंका-नरेश के समान सेना हो। मेरे पास दिव्यास्त्र नहीं। इस कारण बिना सेना के मैं लंका-नरेश का विरोध नहीं कर सकता।

"इसलिए ऋषिवर ! मेरी सम्मति मानें। आप विष्णुजी के पास चले जाइए। उनके पास दिव्यास्त्र हैं और वह अकेले ही लंका के लक्ष-लक्ष सैनिकों को पराजित कर सकते हैं।"

शरभंग ऋषि को बहुत निराशा हुई, परन्तु अब इतनी दूर आने पर सबका विचार यही हुआ कि विष्णुजी का द्वार भी खटखटाकर देख लें।

सब लोग क्षीर सागर क्षेत्र की ओर चल पड़े। इन लोगों को विदा कर अपने पिता के कबूतर की भाँति आँखें मूँद समाधिस्थ हो जाने पर कुमार को बड़ी निराशा हुई।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह दक्षिणांचल के लोगों को विदा कर माँ के पास जा पहुँचा और उससे अपनी निराशा प्रकट की।

"किससे निराश हो कुमार?"

"पिताजी के व्यवहार से।"

"परन्तु वह तो समाधिस्थ हैं।"

"माँ! उनको विदित था कि ये लोग उनसे सहायता माँगने आ रहे हैं। यह जगत् का कल्याण करने वाले इस विपत्ति के समय आँखें मूँद किस कारण बैठे हैं?"

"तो इसमें हम क्या कर सकते हैं?"

"मैं तो इनकी सहायता नहीं कर सकता था।"

"फिर भी बेटा! तुमने इनको ठीक मार्ग पर तो लगा दिया है।"

"मैं विचार करता हूँ कि मैं क्यों सहायता नहीं कर सकता। केवल इस कारण कि मेरे पास दिव्यास्त्र नहीं, अन्यथा मैं अकेला ही इनके साथ माल्यवान इत्यादि को चुनौती देने चल पड़ता।"

"जो बात हम नहीं कर सकते, उसके विषय में सोचना ठीक नहीं।"

"परन्तु माँ! ऐसी स्थिति पुनः आने पर अपने में उसमें कुछ कर सकने की योग्यता तो होनी चाहिए।"

"हाँ; परन्तु यह कैसे होगी?"

"मैं तपस्या के लिए जाऊँगा।"

"और पत्नी तथा बच्चे?"

"नयना को बच्चे मिल गए हैं उसका दिल बहल जाएगा। और फिर राज्य का कार्य-भार पिताजी सँभालेंगे। मैं तो तपस्या के लिए जाऊँगा।"

"परन्तु यह राज-पाट!"

"यह पिताजी का है और पिताजी ही करेंगे।"

"परन्तु कुमार! पिताजी को समाधि से अवकाश तो पाने दो।"

कुमार मान गया और उदासीन भाव में राज्य-कार्य करने लगा। इस बार महादेव की समाधि ढाई वर्ष तक रही।

इस काल में शरभंग ऋषि और दक्षिणांचल के लोग विष्णु के पास गए और वह अपना सुदर्शन चक्र ले इन लोगों की सहायता को तैयार हो गया।

लंकाधिपति माल्यवान को पता चल गया था कि दक्षिण देश के लोग कैलासपति से सहायता लेने गए हैं। उसने समझा कि देवता लोग सेना ले उससे युद्ध करने आएँगे। युद्ध लंका में न हो, वरंच देवलोक में हो, इस कारण वह अपनी सेना को लेकर देवलोक को चल पड़ा। उसे यह विदित नहीं था कि शिवजी महाराज समाधिस्थ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णु दक्षिण देश पर अकेला ही आक्रमण करने का विचार ही कर रहा था कि उसे समाचार मिला कि माल्यवान और उसके भाई बहुत बड़ी सेना लेकर देवलोक को चल पड़े हैं। इस कारण विष्णु अपने गरुड़ विमान पर चढ़ और सुदर्शन चक्र लेकर माल्यवान की सेना पर टूट पड़ा।

सुदर्शन चक्र का माल्यवान ने विरोध करने का यत्न किया, परन्तु उसके सामने उसका वश नहीं चला। विन्ध्याचल पर्वत पर पड़ाव डाली हुई सब यक्ष सेना विनष्ट हो गई। माली भी इस युद्ध में मारा गया। लंका की सेना के विनष्ट होने पर माल्यवान लंका को भागा और शेष बची हुई सेना के साथ उसने विष्णु का विरोध करना चाहा, परन्तु वह लंका के युद्ध में मारा गया और शेष यक्ष भागकर सागर के द्वीपों पर चले गए और लंका खाली कर गए।

इस प्रकार जब दक्षिण के लोग आततायी के अत्याचार से मुक्त हुए तो विष्णु अपने क्षीर सागर-भवन को लौट गया।

शिवजी महाराज ने समाधि खोली। शिवजी को सचेत और सतर्क हुआ देख कुमार उसके पास आया और बोला, "पिताजी ! मैं जा रहा हूँ।"

"कहाँ।"

"नहीं जानता। कदाचित् ब्रह्मलोक में जाऊँगा।"

"किसलिए ?"

"इसलिए कि मैं आप जितनी सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए तपस्या करना चाहता हूँ।"

"इसकी क्या आवश्यकता आ पड़ी है ?"

"जो पुण्य-फल आपको मिलने वाला था, वह भगवान् विष्णु ले गए हैं। यदि मेरी सामर्थ्य आप जितनी होती तो मैं दक्षिणांचल के लोगों की सहायता अवश्य करता।"

"परन्तु विष्णु ने की अथवा तुमने की, इसमें क्या अन्तर पड़ता है ?"

"और पिताजी ! जब वह कुछ अन्तर नहीं था तो आपने समाधि क्यों लगाई थी ?"

शिवजी महाराज चुप रहे। कुमार ने कहा, "पिताजी ! मैं कल जा रहा हूँ।"

"और पत्नी तथा बच्चे ?"

"वे यहीं रहेंगे। यदि आप उन्हें नहीं रखेंगे तो नयनादेवी बच्चों के साथ अपनी माँ के घर चली जाएँगी।"

"उससे पूछ लिया है ?"

"हाँ पिताजी ! वह भी आपके इस समाधि के द्वारा लोक-कल्याण-कार्य से बचने की बात देखकर लज्जा अनुभव करने लगी है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवजी चुप रहे। अगले दिन कुमार पैदल ही देवलोक और फिर वहाँ से मेरु पर जाकर तपस्या के लिए तैयार हो गया।

जब वह हाथ में दण्ड लिए भवन से निकला तो भवन के द्वार पर गंगा खड़ी मिली।

कुमार ने नमस्कार कर कहा, "माँ ! मैं जा रहा हूँ।"

"मैं भी तुम्हारे साथ जा रही हूँ।"

"कहाँ ?"

"जहाँ भी तुम जा रहे हो।"

"परन्तु किसलिए ?"

"जिस कार्य के लिए तुम जा रहे हो; बस, मैं भी वही करने जा रही हूँ।"

कुमार माँ के मनोभावों को समझता था, इस कारण वह चुप रहा।

दोनों पैदल ही उत्तर की ओर चल पड़े।

□ □ □

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमड़ती घटाएँ

□

इस उपन्यास का आधार पद्मपुराण, राजतरंगिणी एवं महाभारत ग्रंथ हैं। पद्मपुराण से नहुष, जो कि चन्द्रवंशी था, की कथा ली गई है और उसके आधार पर महाभारत काल से चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व काल की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था को उपन्यास की पृष्ठभूमि बनाया गया है।

महाभारत युद्ध सूर्यवंशी (आर्य) और चन्द्रवंशी (म्लेच्छ) दो सभ्यताओं का युद्ध था। कृष्ण आर्य संस्कृति के पोषक थे। आर्य संस्कृति का आधार हैं—आस्तिकता, पुनर्जन्म तथा वर्णाश्रम धर्म। महाभारत युद्ध में कृष्ण की विचारधारा की विजय हुई थी और चन्द्रवंशियों का ह्रास हो गया था।

यह इतिहास-ग्रन्थ नहीं, उपन्यास है। इतिहास और उपन्यास में अन्तर यह है कि एक में केवलमात्र घटनाओं का उल्लेख होता है और दूसरे में घटनाओं पर विवेचना भी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

यह पुस्तक एक पौराणिक गाथा के आधार पर लिखी गई है। गाथा इस प्रकार है—

नहुष, जो चन्द्रवंशियों के पूर्वजों में से था, बलशाली राजा हुआ है। उसने इन्द्र को पराजित कर देवलोक पर अधिकार कर लिया था। उसने इन्द्र को एक कमल पुष्प में बन्दी करके रखा था और शची को विवाहने की वह इच्छा करने लगा। किन्तु वह इन्द्रपुरी छोड़कर अन्यत्र चली गई थी। शची ने नहुष से इस शर्त पर विवाह करना स्वीकार कर लिया कि वह उसको वरने के लिए एक ऐसे वाहन पर सवार होकर आए, जिस पर उससे पहले कोई देव, दानव, मनुष्य अथवा असुर सवार न हुआ हो। नहुष ने यह शर्त मान ली और ऋषियों से अपनी पालकी उठवा कर शची को वरने चल पड़ा। जिन ऋषियों से पालकी उठवाई गई थी, उन्होंने इसमें अपना अपमान समझा और उन्होंने नहुष को शाप दे दिया कि वह अजगर की योनि में पड़े। वह तुरन्त ही अजगर बन गया। इस प्रकार इन्द्र मुक्त हो पुनः देवलोक में राज्य करने लगा। बाद में नहुष की सन्तान महात्मा युधिष्ठिर हुए और उनके पाँव की ठोकर से नहुष अजगर योनि से मुक्त हो स्वर्ग चला गया।

इस गाथा के आधार पर इस उपन्यास का निर्माण किया गया है। साथ ही महाभारत काल से चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व काल की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था को पृष्ठभूमि बनाने का यत्न किया गया है। उस काल की अवस्था का वर्णन करने के लिए बहुत सीमा तक कल्पना से काम लिया गया है। इस कल्पना के आधार महाभारत ग्रन्थ, राजतरंगिणी और पद्मपुराण हैं। निम्न बातों को, जिस प्रकार से लेखक ने समझा है, उन्हें सार रूप में पृष्ठभूमि में लाया गया है—

१. महाप्लावन हुआ था।

२. इस प्लावन में केवल मनु ही नहीं बचा था, वरन् बहुत से देवता लोग कुमायूँ, हिमाचल प्रदेश और तिब्बत के पठार पर बच गए थे। देवता लोग प्लावन पूर्व की सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान के संरक्षक सिद्ध हुए।

३. देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियाँ भी, जो पहाड़ों पर निवास करती थीं, वे भी बच गई थीं।

४. मनु प्लावन से बचकर इराक देश में किसी पर्वत पर पहुँच गया था।

५. जब मनु की सन्तान बहुत बढ़ गई तो उसका एक भाग भारतवर्ष की ओर चल पड़ा। ये लोग आर्य तथा सूर्यवंशी कहाए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन पुस्तकालय था। इस पुस्तकालय में लक्ष-लक्ष हस्तलिखित ग्रन्थ आगार की पत्थर की दीवारों में बने घरों में रखे थे। इस विशाल आगार के पश्चिम की ओर अनेक छोटे-छोटे आगार थे, जिनमें देश-देशान्तर से ज्ञान-उपार्जन के लिए आए स्नातक ठहरते थे। बड़े आगार के पूर्व की ओर आचार्य का गृह था।

इस कथाकाल में जगत्-विख्यात वैय्याकरण आचार्य पाणिनी अपने परिवार के साथ वहाँ रहता था। पाणिनी ऋषि की ख्याति के कारण स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए आए विद्यार्थियों की संख्या एक सौ से अधिक हो गई थी। ये सब विद्यार्थी मन्दिर के पश्चिमी भाग में रहते थे और भोजन-वस्त्र राज्य की ओर से पाते थे।

नगर का दूसरा भव्य भवन कश्मीर के राजा का प्रासाद था। यह एक टीले पर, जो नदी के किनारे पर था, बना था। यह टीला चोटी पर समतल कर दिया गया था। टीले की ढलवान पर फलों और फूलों का एक उद्यान था। इस उद्यान में से एक विशाल घाट की सीढ़ियाँ नदी के जल तक उतरती थीं।

प्रासाद का मुख नदी अर्थात् पश्चिम की ओर था। नदी पार से वसन्त ऋतु की समीर जब दूर पर्वतों पर विचरते कस्तूरी के हिरणों को स्पर्श करती हुई आती अथवा कुंकुम के खेतों पर से बहती हुई अपने साथ उनका पराग वहन करती हुई वहाँ लाती तो प्रासाद के साथ पूर्ण नगर को सुरभित कर देती थी। नगरवासियों को यह सुगन्धित वायु ऐसे मस्त कर देती थी कि नीरस शुष्क हृदयों में भी एक बार स्पन्दन हो उठता था। मदनपीड़ित युवकों के लिए यह उन्माद का कारण तो थी ही, साथ ही वृद्ध जनों में भी चिरवियुक्त साथियों की स्मृति को हरा-भरा कर देती थी।

वसन्त ऋतु आ गई थी। उद्यानों में वृक्ष अगणित पुष्पों की बहुवर्णीय चादर ओढ़े हुए थे। इस काल की मस्ती में वे भूले हुए थे कि फूल ही कालान्तर में फल बनकर उनके अभिमानी सर को बोझ से झुका देंगे।

इस समय एक छोटी-सी नौका रंग-बिरंगे पर्दों, पताकाओं इत्यादि से सुसज्जित और मोतियों की मालाओं, रत्नजड़ित खम्भों और श्वेत चाँदी की छत से चमकती हुई, जलराशि पर मन्द गति से खिसकती हुई प्रासाद के घाट पर आ लगी। नाव दो दासियों द्वारा, जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहने थीं, खेई जा रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई जलजन्तु रंगीन परों के साथ जल पर तैरता हुआ वहाँ आ खड़ा हुआ हो।

वसन्त ऋतु में प्रातःकाल की धूप बहुत हल्की थी। फिर भी नौका पर श्वेत छत थी, जो नौकारोही को सूर्य की किरणों के झुलसा देने वाले प्रभाव से बचाने के लिए बनी हुई थी। यह नौका महाराज देवनाम की कन्या राजकुमारी देवयानी की थी। देवयानी सोलह-सत्रह वर्ष की कुमारी थी। उसका छरहरा शरीर गुलाब की कली की भाँति अधखिला, परन्तु शीघ्र ही एक प्रफुल्लित गुलाब के फूल की भाँति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिलने के लक्षण प्रकट कर रहा था।

जब नाव किनारे लगी तो देवयानी नौका पर से बाहर निकल आई और नौका से उतर, सीढ़ी पर खड़े हो, पूर्व की ओर मुख कर, उगते सूर्य भगवान् के दर्शन करने लगी। हृदय में ही भगवान् मार्तण्ड, जो उस समय पहाड़ तथा भवनों से ऊपर आ गए थे, को नमस्कार कर घाट की सीढ़ियों पर चढ़ गई। सूर्य की किरणें उसके शरीर पर झिलमिल करती अथवा अठखेलियाँ करती हुई प्रतीत हो रही थीं।

कुमारी के नख-शिख की बनावट, उसका अण्डाकार मुख, गुलाबी कपोल, हाथी-दाँत सम चमकता हुआ मस्तक, काले बादल सम केस और हिरणी की-सी आँखें उसके उभरते सौन्दर्य को प्रकट कर रही थीं। इस सौन्दर्य पर उसके माता-पिता सत्य ही अभिमान करते थे।

देवयानी सीढ़ियों पर चढ़कर एक क्षण के लिए किसी विचार में खड़ी रह गई। सामने उद्यान खुलता था, जो महल के साथ लगा हुआ था। कुछ विचारकर वह घूमी और दासियों की ओर देखने लगी। दोनों दासियाँ नाव को घाट के एक ओर सीढ़ियों में लगे लोहे के कढ़ों से बाँध, राजकुमारी के पीछे-पीछे वहाँ आ खड़ी हुई थीं। राजकुमारी ने उनसे कहा—"तुम जाओ। मैं उद्यान में घूमकर आऊँगी।"

दासियाँ अनिश्चित भाव से राजकुमारी को देखती रह गईं। उनमें से एक जो कुछ अधिक साहसी थी, धीरे से कहने लगी—"राजकुमारी! आतप तीक्ष्ण है और कुमारी के सुन्दर वर्ण को विवर्ण कर देगा।" देवयानी ने घूरकर उसकी ओर दृष्टिविक्षेप किया। क्रोध से उसके नासापुट फूलने लगे थे। दासियों ने चुपचाप भयभीत हो प्रासाद के उद्यान वाले द्वार की ओर प्रस्थान किया।

राजकुमारी उद्यान में जाकर मन्द गति से भ्रमण करने लगी। कुछ काल तक पेड़ों की छाया में घूमकर वह एक पेड़ के नीचे ठहर गई। उसकी मुखमुद्रा अब भी गम्भीर थी। वह विचार-निमग्न थी। जिस पेड़ के नीचे वह खड़ी थी, वह सेब का था। उस पर गुलाबी रंग के फूल खिल रहे थे। भीनी-भीनी सुगन्धि से आकर्षित हुई मधुमक्खियाँ, फूलों में संचित मधु के लोभ में, उनके आस-पास भिनभिना रही थीं। पुष्प-गन्ध से सुवासित वायुमण्डल में एक ऐसा सम्मोहन भाव था जो मनुष्य को वर्तमान से खींचकर भविष्य के स्वप्नलोक में ले जाने में शक्त था। राजकुमारी विचारों में लीन, आत्मविस्मृत-सी हो, अनजाने में सेब के गुलाबी फूलों को तोड़ तथा मसलकर फेंकने लगी। उसकी यह क्रिया उसके मन की असन्तुष्ट और आशा-विहीन अवस्था की सूचक थी।

उस वृक्ष के समीप ही गुलाब की एक झाड़ी थी। उस पर बड़े-बड़े फूल खिल रहे थे। उसने एक बड़े से फूल को तोड़ लिया और उसकी सुगन्धि को लेने के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नासिका के समीप ले जाकर एक लम्बा साँस खींचा। सुगन्धि उसके मस्तिष्क में चढ़ गई और उसमें मस्ती की मात्रा और भी बढ़ गई। उसने फूल को अपने कपोल से लगाया और उससे शीतलता अनुभव की। इससे तो वह अपने विचारों में और भी खो गई। वह स्वप्न लेने लगी। इस अचेतन-सी अवस्था में वह सेब के वृक्ष से फूल तोड़ती गई और उनको मसल-मसलकर भूमि पर फेंकती गई। उसने इतने फूल मसल डाले कि उस जैसी कोमलांगी और सुन्दरी से सौन्दर्य के ऐसे विनाश की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। स्वयं कुसम सम कोमल, निर्दोष और स्वच्छ बाला भला कैसे ऐसे फूलों से ऐसा निर्दयता का व्यवहार कर सकती है! परन्तु वह तो स्वप्न ले रही थी, किसी दूर भविष्य का। वर्तमान से ओझल, भविष्य के आँचल में वास्तविकता से दूर वह विचर रही थी। क्षितिज के पार के किसी देश, काल और जनसमुदाय में उसके विचार जा चुके थे और अपने इन विचारों में ऐसा आनन्द अनुभव करती थी कि अपनी सुधबुध ही भूल गई थी।

कई वर्ष हुए, उसने एक स्वप्न देखा था। एक अति सुन्दर पुरुष का जो समाधिस्थ हो, एक चट्टान पर बैठा हुआ था। उसका मुख अद्वितीय आभा से दैदीप्यमान था और ऐसा लगता था, मानो उसके मुख पर अलौकिक ओज टपक रहा हो। उसकी जटाएँ शिर पर अस्त-व्यस्त बँधी थीं और चतुर्थी का चन्द्रमा उनमें से दीप्त हो रहा था। चन्द्र की मन्द आभा, उसके मुख और शरीर के अवयवों पर पड़कर उसके चारों ओर ओजमय आवरण बना रही थी। यद्यपि वह पुरुष समाधिस्थ था तो भी उसके मुख पर मन्दस्मित की झलक थी और वह अति प्रिय और मनोरम दिखाई दे रहा था। उसके प्रशस्त मस्तक से अकथनीय बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता था। उसकी लटों को बाँधने के लिए सर्प थे। एक बड़ा फणधर साँप उसकी ग्रीवा में माला का रूप धारण किए हुए था। कभी-कभी यह फणिदार सर्प अपना सिर उठाता था, फण खोलकर सर-सर करता हुआ क्रोध में उस पुरुष के मुख पर देखता था और पश्चात् मानो उस पुरुष के सम्मोहन-प्रभाव से मोहित होकर शान्त हो, सिर नीचा कर, एक कुण्डली में उसके विस्तृत वक्षस्थल पर लटक जाता था।

ऊँचा मस्तक, बड़ी-बड़ी परन्तु बन्द आँखें, गोल परन्तु उभरी नाक, मुस्कराता अधर, लम्बा अण्डाकर मुख और दृढ़ चिबुक उस भली प्रकार निर्मित मुख के कुछ लक्षण थे। लम्बी ग्रीवा, चौड़ी छाती, सुदृढ़ और लम्बी भुजाएँ और पतली कमर उसके सुन्दर शरीर के द्योतक थे।

यह सब देवयानी ने, जब वह बालिका ही थी, स्वप्न में देखा था और उस मन्त्रमुग्ध-सा करने वाले दृश्य से वह इतनी मोहित हुई थी कि इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी अपने मन से उसे निकाल नहीं सकी थी। इस स्वप्न का प्रभाव उसके मन पर बहुत गहरा हुआ था। साथ ही वह बाद में भी इस अद्भुत पुरुष के स्वप्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी-कभी देखती रही थी। इस कारण उसके हृदय पर उसका चित्र अधिक गहरा होता जाता था। सोये हुए वह उसे स्वप्नों में देखती थी और कभी जागते-जागते भी वह उसको अपने सम्मुख पाती थी।

वह विस्मय करती थी कि यह कौन पुरुष है और क्यों उसके सामने निरन्तर आता रहता है? उसने अपने जीवनकाल में किसी ऐसे व्यक्ति को अथवा उससे मिलते-जुलते किसी भी पुरुष को नहीं देखा था। इससे कह नहीं सकती थी कि ऐसा कोई पुरुष भूतल पर है भी, अथवा यह उसके मन का भ्रममात्र है।

उसने अनहोने भ्रम को अपने मन से निकाल देने का बहुत ही प्रयास किया था, परन्तु सफल नहीं हो सकी थी। यह दृश्य इतनी बार और इतनी स्पष्टता से उसके समक्ष आता था कि वह इससे घबराने लगी। तो भी यह इतना मनमोहक और आनन्दप्रद था कि जब वह उसके सामने नहीं होता था तो उसके पुनः प्रकट होने की उत्सुकता से कामना करती थी। इसके आ उपस्थित होने से वह अपने मन में शान्ति और शरीर में स्फूर्ति अनुभव करती थी। वह मन से चाहती थी कि यह दृश्य उसकी आँखों के सामने सदा बना रहे, और जब वह विलीन हो जाता था तो उसके मन में घबराहट और अशान्ति उत्पन्न हो जाती थी। स्वप्न आते-आते यदि उसकी नींद खुल जाती तो उसका मन चंचल हो उठता था।

यह सब इतना महान् और उत्तम था कि इस पर विश्वास करना असम्भव प्रतीत होता था। इस कारण वह इसे अपनी अति अंतरंग सखियों को बताने में भी संकोच करती थी। कभी-कभी तो यह सब उसके मन में इतना अधिक छा जाता था कि वह किसी के भी सम्मुख कह देने वाली स्थिति में होती थी, परन्तु उसी समय कोई उसके भीतर से उसका मुख बन्द कर देता प्रतीत होता था और यह उसके मन की ही वस्तु रह जाती थी। दूसरों की हँसी का लक्ष्य बनने का भय संभव है, बड़ा कारण था, जिससे उसके हृदय का यह रहस्य हृदय में ही रह जाता और कोई भी उसका इस विषय में विश्वासपात्र नहीं बन सका। फिर भी उसकी चिन्तामय अवस्था और प्रायः विचारों में खोया रहना छुपा नहीं रह सका। उसकी सखियाँ उससे प्रायः पूछतीं कि क्या कारण है कि वह एकान्त में भागती फिरती है। देवयानी उत्तर में मुस्करा भर देती और बहुत हुआ तो केवल यह कह देती—"तुम सब पागल हो। भला मुझको क्या चिन्ता हो सकती है?"

इतना होने पर भी जब वह बड़ी होने लगी और बाल्यावस्था से कौमार्यावस्था में प्रवेश करने लगी, तब उसको इन स्वप्नों और दृश्यों से विशेष आनन्द की अनुभूति होने लगी। साथ ही उसके मन में इस दृश्य से अधिक और अधिक सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा होने लगी। वह चाहने लगी कि वह अपने स्वप्न-पुरुष की वास्तव में संगति प्राप्त कर सके। इस इच्छा की उद्भूति से और उसकी पूर्ति की आशा न होने से, मन में दुःख और नैराश्य का अनुभव होने लगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके सज्ञान हो जाने पर और दिन-प्रतिदिन उसके मुख-गाम्भीर्य को देख उसके माता-पिता के मन में उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न होने लगी। वे यह भी देख रहे थे कि राजकुमारी एकान्तसेवी होती जा रही है और सहेलियों की संगति भी उसे अरुचिकर-सी लग रही है। वे यह भी देख रहे थे कि नौका में एकाकी भ्रमण को वह अधिक पसन्द करने लगी है। वे इस सबका कारण जानना चाहते थे। इस दिशा में उन्होंने बहुत यत्न भी किया। उसकी सखियों को कहकर उसके रहस्य को जानना चाहा, परन्तु देवयानी ने अपने रहस्य को पूर्णतया गुप्त रखा।

उसकी सखियों में से कई तो देवयानी की सम-आयु और समाज में उसकी सम-श्रेणी की भी थीं। वे जब उसको एकान्त की ओर भागती हुई देखतीं, अथवा जब वह उनके पास बैठी-बैठी खो-सी जाती, तब वे उससे हँसी-ठट्ठा करतीं। उससे प्रायः कहतीं—"सखि! किसकी याद सताती है? किसके लिए सूख-सूखकर तिनका होती जाती हो? कौन सौभाग्यशाली है जो तुमको हमसे छीनकर लिये जा रहा है?"

देवयानी अवाक् उनका मुख देखती रह जाती और जब कभी वे उसको बहुत तंग करतीं तो वह खिन्न होकर कह देती—"तुम्हारा सिर है, जिसकी याद मुझको सता रही है।" वह हँस देती और प्रायः लता-कुंजों में छुपकर स्वप्नों में खो जाती।

: २ :

देवयानी अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थी। इस कारण भी उसके माता-पिता उसके विवाह के लिए अधिक उत्सुक थे। उनके परिवार की परम्परा का चलते रहना देवयानी के विवाह पर ही निर्भर था। अतएव वे उसके लिए पति ढूँढ़ने में लग गए। इस विषय में उनकी चिन्ता धीरे-धीरे प्रसिद्धि पाने लगी। महाराज और महारानी के सम्बन्धियों, मित्रों, राज्याधिकारियों और पश्चात् धीरे-धीरे कश्मीर की सम्पूर्ण प्रजा को अवगत होने लगा कि राजकुमारी विवाह-योग्य हो गई है। इस वरखोज की चर्चा कश्मीर राज्य से बाहर भी पहुँचने लगी। समाचार ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त और देवलोक में भी पहुँचा। देवलोक में देवर्षि नारद, जो महाराज देवनाम का परम मित्र था, को भी यह समाचार मिल गया। समाचार मिलते ही वह कश्मीर चला आया। वह स्वयं देवनाम की लड़की की वर्तमान अवस्था और योग्यता देखना, इस विषय में देवनाम की सहायता करना चाहता था। उसको विदित था कि देवनाम का कोई पुत्र नहीं है और इस लड़की का पति ही कश्मीर का भावी राजा होगा। इस कारण पति का चुनाव न केवल लड़की के लिए ही महत्त्व का विषय था, न केवल कश्मीर के भविष्य के लिए विचार का विषय था, प्रत्युत अड़ोस-पड़ोस के राज्यों के लिए भी चिन्ता की बात हो सकती थी।

नारद चक्रधरपुर आया और महाराज देवनाम से मिला। उसने राजकुमारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से एकान्त में मिलकर उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। उनकी स्वीकृति प्राप्त कर राजकुमारी को मिलने उसके आगार की ओर चल पड़ा। नारद देवयानी से परिचित था और वह भी देवर्षि को पहचानती थी। वह पहले कई बार चक्रधरपुर में आकर महाराज का आतिथ्य प्राप्त कर चुका था। पिछले कई वर्षों से वह इधर नहीं आया था। इस कारण राजकुमारी में हुए विकास और परिवर्तन से वह सर्वथा अनभिज्ञ था।

राज्यप्रासाद के सेवकों से पूछने पर उसको पता चला कि राजकुमारी नौका में भ्रमणार्थ गई हुई है। इस कारण वह राजघाट की ओर चल पड़ा। वह अभी उद्यान में प्रवेश भी नहीं कर पाया था कि उसको वे दासियाँ, जो राजकुमारी की नौका खेकर आ रही थीं, भयभीत-सी आती हुई मिलीं। देवर्षि नारद ने उनसे राजकुमारी के विषय में पूछा। उन्होंने देवर्षि को पहचाना और सम्मान से सिर झुकाकर उँगली से उद्यान की ओर संकेत कर कहा—"भगवन्, उद्यान में भ्रमण कर रही हैं।"

नारद ने उनको आशीर्वाद दिया और स्वयं उद्यान में देवयानी को ढूँढ़ने चल पड़ा। उसने वहीं उससे भेंट करना उचित समझा। उसका विचार था कि वह देवयानी को एकान्त में स्वाभाविक अवस्था में देख पाएगा और उससे बात कर, उसके मन की अवस्था और बुद्धि की प्रखरता का अनुमान भी भलीभाँति लगा लेगा। इस कारण इस अवसर से प्रसन्नचित्त वह उद्यान में जा पहुँचा। दासियों ने सेब के पेड़ों के झुरमुट की ओर संकेत किया था। नारद उधर ही गया और उसने देवयानी को वहाँ खड़े सेब के फूलों पर अत्याचार करते देख लिया। वह उसको इस प्रकार एकान्त में खड़े, ऐसी अस्वाभाविक बात करते देख दूर ही खड़ा हो गया और उसकी चेष्टाओं को ध्यान से देखने लगा। वह उसके शारीरिक विकास का निरीक्षण कर रहा था। कई वर्ष पूर्व उसने उसको देखा था। उस समय वह बालिकामात्र थी और कौमार्यावस्था में प्रवेश करने ही वाली थी। अब वह उसके सम्मुख खिलती कली के समान कुमारी के रूप में थी जो एक युवती की अवस्था में पदार्पण करने वाली थी।

देवयानी अपने स्वप्नों में लीन थी और उसको नारद के वहाँ आकर उसको देखते खड़े रहने का ज्ञान नहीं हुआ। इस समय तक उसने अनेक फूल तोड़कर मसल डाले थे। फिर भी उसको यह ज्ञान नहीं था कि उसने क्या कर डाला है।

नारद ने उसके इस कार्य को पसन्द नहीं किया, परन्तु उसके इस प्रकार ध्यान में विलीन होने के कारण, उसको उसके अध्ययन का अवसर मिल गया। नारद ने अनुभव किया कि वह किसी गहन विचार में लीन है। नारद अपने मन में सोचता था कि इस आयु में किसी युवक के विषय के अतिरिक्त और किस विषय का विचार इसके मन में हो सकता है ? वह उसके विचार के विषय को समझने का यत्न करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। कितनी देर तक राजकुमारी का यह कार्य चलता रहा, यह कहना कठिन है। देवयानी की एक सखी के उसकी खोज में वहाँ आ जाने से इसका अन्त हुआ।

वह सखी उससे मिलने आई थी। उसको अन्य सखियों से पता चला था कि देवयानी नौका में विहार के लिए गई है। जब वह राजकुमारी से मिलने के लिए राजकुमारी के आगार के बाहर प्रतीक्षा कर रही थी तो उसे वे दासियाँ दिखाई दी थीं, जो राजकुमारी की नौका खेकर लौटी थीं। सखी ने उनसे पूछा तो ज्ञात हुआ कि देवयानी उद्यान में है। इस कारण वह उद्यान में जा पहुँची। उद्यान में उसने राजकुमारी को एक पेड़ के नीचे खड़े फूलों को मसलते देखा। साथ ही उसने एक पुरुष को उसकी ओर देखते हुए भी खड़े देखा। वह पुरुष को देख वहाँ ठिठककर खड़ी रह गई।

सखी नारद को नहीं पहचानती थी। उसने उसको पहले कभी नहीं देखा था। वह अभी-अभी गुरुकुल से, कई वर्ष वहाँ रहकर लौटी थी। जब वह गुरुकुल गई थी तो बालिकामात्र थी।

राजकुमारी और एक पुरुष को देख उसने अनुमान लगाया कि इस पुरुष से मिलने के लिए ही वह उद्यान में आई है। यह पुरुष यद्यपि प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर चुका था, फिर भी उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण था। उन दोनों को इस स्थान पर देखकर उसे देवयानी के खोया-खोया-सा रहने का रहस्य आज पता चला। सखी के मन में आया कि यह पुरुष अवश्यमेव राजकुमारी से प्रेम प्रकट करने आया है। इस विचार के आते ही वह उत्सुकतावश चुनार के एक बड़े पेड़ के पीछे छुप गई, जिससे कि वह उनकी चेष्टाओं को देख सके। वह अपने मन में राजकुमारी की हँसी उड़ाने की योजना सोचने लगी। उसे यह बहुत ही विचित्र प्रतीत हुआ कि एक बड़ी आयु का पुरुष एक नववयस्का राजकुमारी से विवाह की बात करे। वह विचार करने लगी कि यह बात भारी हँसी का विषय होगी। नारद उसको चालीस वर्ष की आयु का प्रतीत हुआ था। ऐसा विचार कर वह उनकी बात करने की प्रतीक्षा करने लगी। कुछ देर वहाँ खड़ी रही, परन्तु उसे विस्मय हुआ जब उसने देखा कि न तो राजकुमारी ने फूल तोड़ने बन्द किये और न ही वह पुरुष आगे बढ़ा। उसने देखा कि दोनों में से कोई भी कुछ नहीं कहता। इस अनोखी स्थिति को देखकर विस्मय करती हुई वह पेड़ के पीछे से बाहर निकल आई और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इस हँसी से राजकुमारी की स्वप्न-समाधि भंग हुई, जिससे उसको क्रोध चढ़ आया। उसके आनन्द में विघ्न जो पड़ गया था। राजकुमारी सखी की धृष्टता से क्रोध में आ उसको दण्ड देने के लिए उसकी ओर लपकी, परन्तु, चपल सखी कूदकर पीछे हो गई और इस विनोद के एक तीसरे साक्षी की उपस्थिति का ज्ञान कराने के लिए, हाथ के अँगूठे से उसकी ओर संकेत कर दिया। नारद उन दोनों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखकर हँस पड़ा था।

देवयानी ने नारद की ओर देखा और उसे पहचान अपने आन्तरिक भावों को तत्काल भूल नारद के पास जाकर बोली—"भगवन्, पिताजी प्रासाद में हैं।"

देवयानी ने समझा था कि देवर्षि पिताजी से मिलने आए हैं। उसको यह सुन विस्मय हुआ, जब नारद ने कहा—"देवयानी ! मैं तुम्हारे पिता से मिल आया हूँ, अब तुमसे मिलने आया हूँ।"

उसने विस्मय प्रकट कर पूछा, "महाराज ! किस कार्य से ?"

देवयानी को नारद के उससे मिलने आने की बात सुनकर भारी विस्मय हुआ था। वह उसके आशय का अनुमान नहीं लगा सकी थी। वह उसको बाल्यकाल से जानती थी। वह जानती थी कि वह उसके पिता के मित्र हैं। फिर भी उससे उद्यान में एकान्त में मिलने आना विस्मयकारक था।

नारद ने जब देवयानी की चिन्तित मुद्रा में उससे अपने प्रश्न का उत्तर पाने को उत्सुक देखा, तो कहा—"देवयानी ! क्या तुम नहीं समझतीं कि अब तुम्हारे विवाह का समय आ गया है ?"

देवयानी का मुख लज्जावश रक्ताभ हो गया और उसकी आँखें अनायास ही अवनत हो गईं। नारद ने अपना कहना जारी रखा और कहा—"मुझको पता चला है कि तुम्हारे माता-पिता इस विषय में भारी चिन्ता कर रहे हैं। मैं यह अनुभव करता हूँ कि मुझको उनकी इस बात में सहायता करनी चाहिए।"

देवयानी कुछ क्षण मौन रही और फिर धीमी आवाज में, जिससे दूर खड़ी उसकी सखी न सुन सके, उसने कहा—"भगवन् ! उन्होंने इस बात की चर्चा मुझसे कभी नहीं की।"

"और यदि वे इस विषय की चर्चा करते तो तुम क्या कहतीं ?"

"मैं उनसे अपने वास्तविक विचार बताने का यत्न करती, जिससे उनकी चिन्ता मिट जाती।"

नारद मुस्कराया। उसने समझा कि उसका अनुमान सत्य निकला है। सचमुच ही देवयानी ने अपने भावी पति का निर्णय कर लिया है। उसने पूछा—"बेटी ! क्या तुम मुझसे अपने मन की बात कह सकोगी ? मैं समझता हूँ कि तुमको आपत्ति अथवा संकोच नहीं होना चाहिए। वह कौन है ?"

"देवर्षि ! आप सदा मेरे साथ पितातुल्य व्यवहार करते रहे हैं। मेरे मन में भी आपके प्रति वैसा ही सम्मान है। इस कारण मैं ठीक बात बताने में हानि नहीं समझती, परन्तु मुझको भय है कि आप मुझको कहीं निपट मूर्ख न मान बैठें। फिर भी यदि आप कहते हैं, तो मैं अपनी कथा कहती हूँ। साथ ही आशा करती हूँ कि आप मुझपर अनुग्रह रखेंगे। जैसा मैं अनुभव करती हूँ, ठीक वैसा ही वर्णन करूँगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आज से लगभग पाँच वर्ष पूर्व मुझको एक स्वप्न दिखाई दिया था और उसमें मैंने एक व्यक्ति को एक चट्टान पर समाधि लगाए बैठे देखा था। उसकी रूपरेखा और उसकी भव्यता मैं आज तक भूल न सकी। मुझे ऐसा लगता है जैसे वही पुरुष मेरा पति होगा।"

"उसके साक्षात् दर्शन कभी किए हैं तुमने?"

"नहीं, मैंने कभी उनको प्रत्यक्ष नहीं देखा। फिर भी मैं सदैव उनके दर्शन करती हूँ। सुप्त अवस्था में मैं उनके स्वप्न लेती हूँ और जाग्रत् होती हूँ तो विचारों में उसे पाती हूँ।"

"यह सब कुछ मिथ्या और माया भी तो हो सकता है। सम्भव है कि स्वप्न-पुरुष का कोई अस्तित्व ही न हो!"

"यह कैसे हो सकता है? मैंने उनको इतनी बार और इतना स्पष्ट देखा है कि मैं उनके अस्तित्व में विश्वास किए विना रह ही नहीं सकती। उनके मोहक रूप ने मेरे मन पर ऐसी गहरी छाप लगाई है कि मैं अब अन्य किसी को अपना पति ग्रहण करने की बात सोच ही नहीं सकती।"

इससे नारद को घबराहट और चिन्ता होने लगी और वह चुप रह गया। वह मन में सोचने लगा कि इसके स्वप्नों का पुरुष संसार में शायद है ही नहीं और हो सकता है कि अपनी काल्पनिक भावनाओं के कारण और भावुकता के वश वह कुमारी ही रहे। उसके कुमारी रह जाने का परिणाम कश्मीर और उसके पड़ोसी राज्यों पर कितना भयंकर हो सकता है, यह अनुमान कर वह काँप उठा। वह चिन्ताग्रस्त होकर राजप्रासाद की ओर लौट गया। जाते हुए वह मन में विचार कर रहा था कि देवयानी के माता-पिता को इस स्थिति से अवगत कर देना चाहिए। उसको लड़की पर भी दया आ रही थी। कहीं उसके स्वप्न मिथ्या सिद्ध हुए तो उसकी क्या अवस्था होगी! इस विचार से उसकी चिन्ता उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही थी।

नारद चला गया, देवयानी वहीं खड़ी रही। वह अपने मन की बात देवर्षि को बताने से पश्चात्ताप करने लगी थी। वह सोचने लगी थी कि अब उसकी कथा का उसके माता-पिता को पता चल जाएगा और फिर उसकी सखियों को भी विदित होने से न रहेगा। वे सब उसको मूर्ख समझेंगे और उसकी खिल्ली उड़ाएँगे। वह इसी उधेड़बुन में वहाँ खड़ी थी कि उसकी सखी उसके समीप आकर पूछने लगी—

"सखी, कौन था यह?"

देवयानी की सखी का नाम सुमति था। वह उसकी परम सखी थी और जग-विख्यात वैय्याकरण पाणिनी की लड़की थी। जब सुमति ने पूछा तो देवयानी सोचने लगी कि उसको बतावे अथवा न बतावे। यदि बतावे भी तो कितना बतावे। देवयानी अभी निश्चय नहीं कर पाई थी कि सुमति ने अपना प्रश्न दुहरा दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने पूछा—"इतनी देर तक यह वृद्ध तुमसे क्या बातें कर रहा था ? जब तुमने नमस्कार की थी, वह मुस्करा रहा था और जाने के समय वह निराश और क्रुद्ध प्रतीत होता था।"

"हाँ," देवयानी ने कुछ बताने पर विवश होकर कहा—"मैंने भी ऐसा ही अनुभव किया है। वह मेरे विवाह की चर्चा कर रहा था और उस विषय में मेरे विचार सुनकर रुष्ट होकर चला गया है।"

सुमति खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने समझा कि वह राजकुमारी से स्वयं विवाह करने को कह रहा था और राजकुमारी ने न कर दी है। अतः हँसकर उसने पूछा—"वह है कौन ?"

देवयानी ने देवर्षि का परिचय दिया तो सुमति के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। उसको देवलोक के संगीताचार्य के, देवयानी से विवाह के लिए, इतनी दूर आने पर विस्मयजनक आनन्द अनुभव हुआ। इस अर्ध-वृद्ध देवता की इस धृष्टता की बात सुन वह मन में हँसी और प्रासाद के उस भाग की ओर भाग गई जहाँ अन्य सखियाँ देवयानी की प्रतीक्षा कर रही थीं।

वह इस घटना से लाभ उठाकर देवयानी की हँसी उड़ाना चाहती थी। देवयानी उसको हँसते हुए भागते देख उसके मन के भावों को ताड़ गई। वह उसे रोककर सत्य बात बताना चाहती थी, परन्तु सुमति तब तक आँखों से ओझल हो चुकी थी। यह देख देवयानी के मन में सखियों के वहाँ आ उससे अनर्गल हँसी-ठट्ठा करने का भय समा गया। इससे वह प्रासाद के दूसरे कक्ष की ओर चली गई।

वह अन्यमनस्क भाव से महल के उस भाग में जा पहुँची जहाँ नारद उसके माता-पिता से बातचीत कर रहा था।

: ३ :

नारद ने देवयानी के पास से आकर देवयानी के स्वप्न-पुरुष की बात उसके माता-पिता को बता दी। पूर्ण कथा बताकर उसने कहा—"मित्र ! उसके मन की यह अवस्था अति चिन्तनीय है।"

नारद द्वारा वृत्तान्त सुनकर महाराज और महारानी भी चिन्ता सागर में गोते खाने लगे। फिर कुछ रुककर देवनाम ने पूछा—"इस स्वप्न-पुरुष का उसने क्या विवरण दिया है ?"

नारद चिन्ता के कारण यह पूछना ही भूल गया था। वह तो घबराहट में वहाँ से चला आया था। विवरण जानने के लिए नारद देवयानी को बुलाने की बात कहने ही वाला था कि वह अपनी सखियों से छुपने के लिए उसी आगार में घुस आई, परन्तु अपने तीनों बड़ों को गम्भीर वार्तालाप में मग्न देख, वहाँ से लौट पड़ी और आगार से निकल भागना ही चाहती थी कि उसकी माँ ने उसको वापस बुला लिया। नारद को अपने मन का रहस्य बताने के तुरन्त बाद वह उसके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने उपस्थित होना नहीं चाहती थी, परन्तु माँ के बुलाने पर उसको रुकना पड़ा। वह लौटकर उसके सम्मुख खड़ी हो गई।

"बैठो।" माँ ने कहा। देवयानी अपनी माँ के समीप बैठ गई और भूमि की ओर देखने लगी।

"क्या यह सत्य है ?"

"क्या माँ ?"

"देवर्षि कह रहे हैं कि तुम किसी के स्वप्न देखा करती हो। उससे तुम विवाह भी करना चाहती हो।"

"हाँ ! माँ !"

"वह कौन है ?"

"मैं नहीं जानती। हाँ, उसके रूप को पहचानती हूँ।"

"तुमने उसको कहाँ देखा है ?"

"केवल स्वप्नों में।"

"तुम कैसे जानती हो कि वह वास्तव में कहीं है ? यह केवल भ्रम भी तो हो सकता है ?"

"माँ ! दृश्य सदैव इतना स्पष्ट, सुन्दर और रमणीय होता है कि इसके असत्य होने का विश्वास नहीं होता। मैं नित्य इस दृश्य को देखती हूँ और मुझको इससे आनन्द मिलता है।"

"तुम पागल हो रही हो, देवयानी !" माँ ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा—"मुझको भय है कि तुमको किसी रुग्णालय में न भेजना पड़े। कैसे तुम ऐसी बातों पर विश्वास कर सकती हो, जो तुमको केवल स्वप्नों में दिखाई देती हैं ? जीवन सत्य है। स्वप्न सत्य नहीं है। विवाह और पति भी सत्य होने चाहिए। स्वप्न की वस्तुओं का अस्तित्व नहीं होता।"

इस समय पिता ने बात टोककर कहा—"पहले इसको उसकी रूपरेखा वर्णन करने दो। शायद इससे समस्या सुलझ सके।"

माँ ने संशय में सिर हिला दिया, परन्तु नारद ने देवनाम के प्रस्ताव का समर्थन कर दिया और उससे पूछा, "बेटी देवयानी ! तनिक उसकी रूपरेखा तो वर्णन करो। देखें वैसा पुरुष कोई है भी या नहीं।"

देवयानी ने आँखें मूँद लीं और धीरे-धीरे अपने स्वप्न पुरुष की रूपरेखा वर्णन कर दी। वैसी ही, जैसी वह स्वप्नों में देखा करती थी। उसने कहा—"मैंने उसको इतनी बार देखा है और उसके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुई हूँ कि मैं उससे गहरा प्रेम करने लगी हूँ। मैं यह अनुभव करती हूँ कि मैं उसको छोड़कर किसी अन्य से विवाह नहीं कर सकूँगी।"

दोनों वृद्धजन लड़की का हठ देखकर चकित रह गए और कुछ काल तक वे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों उसका मुख देखते रहे। नारद उस स्वप्न-पुरुष की रूपरेखा सुन अपने को उत्साहित-सा अनुभव करने लगा। उसने कहा—"परन्तु देवयानी, यह चित्र जो तुमने वर्णन किया है, महादेव शिव का है और उसका तो परलोक-गमन हो चुका है। वह इस मृत्युलोक में अब विद्यमान नहीं। भगवान् शिव देवासुर-संग्राम में एक विख्यात व्यक्ति था। उन दिनों वह युवा था, पश्चात् उसका विवाह पार्वती से, जो हिमाचल प्रदेश के राजा की लड़की थी, हुआ था। आयु पूर्ण होने पर दोनों स्वर्ग सिधार गए। इस घटना को बीते चिरकाल हो चुका है। इस समय उसका पति के रूप में चिन्तन करना न केवल व्यर्थ है, प्रत्युत आपत्तिकारक भी है। कश्मीर के शक्तिशाली राजा देवनाम की कन्या एक भ्रम के पीछे पड़ी रहे, यह कुछ भला प्रतीत नहीं होता।"

देवयानी के सम्मुख यह एक नवीन परिस्थिति थी। जहाँ वह अपने इष्टदेव को महादेव शिव समझ आनन्द से पुलकित हो उठी थी, वहाँ उसके इस मृत्युलोक से बाहर होने की बात सुन उसे निराशा भी हुई थी। इस कारण वह अपने मन की इस द्विविध अवस्था में चुप थी। नारद ने अपनी बात की व्याख्या करते हुए फिर कहा—"देवयानी ! सुनो ! तुमने जो विवरण अपने इस स्वप्न-पुरुष का दिया है उससे यह बात स्पष्ट ही है कि वह चित्र महादेव शिव का ही है। मैं अपने ज्ञान से जानता हूँ कि वह अब इस लोक में नहीं है और उसकी प्राप्ति असम्भव है। इस कारण उसका चिन्तन व्यर्थ है। तुम उसके लिए जीवनभर कुंवारी रह सकती हो, परन्तु कश्मीर की वर्तमान अवस्था में तुम्हारा यह निर्णय अत्यन्त हानिकर होगा। तुम जानती हो कि तुम्हारा कोई भाई नहीं है। अतएव तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी सन्तान के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं। वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा।

"यदि तुमने विवाह नहीं किया तो तुम्हारे पिता के सम्बन्धी राज्य की लालसा में आपस में लड़ मरेंगे। यहाँ गृहयुद्ध होगा और परिणामस्वरूप यहाँ भी विदेशियों का राज्य स्थापित हो जाएगा।

"इसका प्रभाव केवल कश्मीर पर ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण आर्यजगत् पर पड़ेगा। इस कारण तुमको अपना कर्तव्य पहचानना चाहिए। गान्धार, कामभोज और देवलोक तो पहले ही म्लेच्छों के अधिकार में जा चुके हैं। तुम्हारे इस भ्रममूलक व्यवहार के कारण कश्मीर भी उनके अधिकार में चला जाएगा। तत्पश्चात् ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त के लिए भी भय उत्पन्न हो जाएगा। मेरी सम्मति मानो तो इस विचार को छोड़ दो और कहीं अन्यत्र विवाह कर लो। यदि तुम चाहो तो मैं इस कार्य में तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। मैं ज्ञात भूमण्डल में कई बार घूम चुका हूँ और प्रत्येक राजकुमार को जानता हूँ।"

देवयानी उत्तर देने की अपेक्षा उठ खड़ी हुई और शीश नवा, नमस्कार कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगार से बाहर चली गई। नारद ने देखा कि उसकी आँखें डबडबा रही हैं। इससे उसने उसको रोकना उचित नहीं समझा। वह उसको विचार करने का अवसर देना चाहता था।

देवयानी अपने को दो परस्पर विरोधी भावनाओं के बीच पिस रही अनुभव करती थी। एक भावना थी उस रूप छबि के प्रति जो बार-बार उसको स्वप्नों में दिखाई देती थी। दूसरी भावना थी अपने देश तथा धर्म के प्रति कर्तव्य की। देवर्षि ने जो चित्र उसके सम्मुख खींचा था, उसका विचार कर वह काँप उठी थी। इन दो भावनाओं के संघर्ष को न सह सकने के कारण ही आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली थी। मन से वह अपने स्वप्न-पुरुष को आत्मसमर्पण कर चुकी थी और वह इसके लिए जीवनभर अविवाहित रह सकती थी, परन्तु वह सोचती थी कि क्या अपने देश, धर्म और जाति के लिए कर्तव्यपालन करने में इतना त्याग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार अनिश्चित मन अपने पिता के आगार से निकल अपने शयनागार की ओर जा रही थी कि मार्ग में उसकी सखियों ने उसे घेर लिया।

उद्यान से भागकर सुमति सखियों के पास गई थी और उन सबको अपनी धारणा अनुसार नारद की कथा सुना उन सबको साथ ले उद्यान में जा पहुँची। वहाँ राजकुमारी को न पा सब प्रासाद में उसे ढूँढ़ने लगीं। उन्होंने उसको अपने पिता के आगार में बैठा देख यह समझ लिया कि अभी भी उसके विवाह की चर्चा चल रही है। वे समझती थीं कि राजकुमारी पर नारद से विवाह कर लेने के लिए दबाव डाला जा रहा है। इस कारण वे सब उस आगार से कुछ दूर देवयानी के आगार के मार्ग पर, उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। जब वह पिता के पास से आई तो सब उसको घेरकर खड़ी हो गईं और हँसी-ठठ्ठा करने का विचार करने लगीं, परन्तु जब उन्होंने राजकुमारी की आँखों में डबडबाते आँसू देखे तो अवाक् रह गईं। उन्होंने घेरा तोड़ दिया और उसको अपने आगार की ओर जाने दिया।

देवयानी को दुःखी देख सबके हृदय में टीस-सी उठी। उन्होंने सुमति से प्राप्त ज्ञान के आधार पर समझा कि उसके माता-पिता ने उसका विवाह नारद से कर देना स्वीकार कर लिया है। सुमति के अनुमान के आधार पर उनको यह लगा कि देवयानी ने नारद से विवाह करना अस्वीकार कर दिया है और वह इससे दुःखी हो रोती हुई अपने आगार में जा रही है। उसके दुःख का आदर कर कोई भी उसके साथ नहीं गई।

वास्तविक परिस्थिति के ज्ञान से महाराज, महारानी तथा नारद अति चिन्तित हो उठे थे। महाराज और महारानी अपनी लड़की से अति स्नेह रखते थे और वे लड़की की इच्छा का आदर करते, यदि उसके प्रेम का भाजन इस संसार में जीवित होता। अब तो थोथी भावनामात्र थी और वे समझ नहीं पा रहे थे कि किस प्रकार राजकुमारी को इस मिथ्या भावना से मुक्त करायें। नारद हताश नहीं हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको देवयानी के उच्च आदर्शों के लिए त्याग की भावना में विश्वास था। उसने अपने मित्र देवनाम को सांत्वना देते हुए कहा—"मैं लड़की के शुभ विचारों, उसकी श्रेष्ठ शिक्षा और उसकी पारिवारिक धार्मिक प्रवृत्तियों पर विश्वास करता हूँ। मैंने उसके सम्मुख पूर्ण समस्या रख दी है और मुझको विश्वास है कि वह अपनी भ्रममूलक भावनाओं को त्याग देगी। उसको शीघ्र ही कश्मीर राज्य का उत्तराधिकारी पाने की आवश्यकता अनुभव होगी और वह विवाह के लिए उद्यत हो जाएगी।"

"मैं भी यही आशा करती हूँ।" महारानी ने अपने मन की दुर्बलता और संशय को दबाते हुए कहा—"वह सदा आज्ञाकारिणी पुत्री रही है। उसको इस विषय की गम्भीरता का ज्ञान करा दिया गया है। वह अपना कर्तव्य समझ, मान जाएगी।"

"हमको उसे विचार करने का अवसर देना चाहिए। जब वह पूर्ण परिस्थिति पर विचार करेगी तो वह हमारे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। इस अवधि में हमको उसके विवाह की कोई निश्चित योजना बनाकर वह योजना उसके सम्मुख रखनी चाहिए। कोरी शिक्षा से काम नहीं चलेगा। यदि कोई आशापूर्ण योजना उसके मनन करने के लिए दी गई तो वह निराश नहीं होगी। अन्यथा वह जीवन को नीरस और लक्ष्यहीन पाकर दुःख अनुभद करेगी।"

"परन्तु हमारे सम्मुख उसके योग्य अभी कोई लड़का भी तो नहीं है।"

नारद के मन में एक प्रस्ताव उठ रहा था। उसने वह प्रस्तुत कर दिया। उसने कहा—"मैं चाहता हूँ कि हम उसके लिए स्वयंवर का आयोजन करें। इसकी तिथि आज से एक वर्ष पश्चात् रखें। इस काल में वह अपने पुराने लगाव को भूलने का प्रयत्न करेगी और साथ ही अपनी इच्छा अनुसार अपना पति चुन सकने की आशा में लीन हो जाएगी।

"पिछले कुछ स्वयंवरों में अशान्ति विघटित हुई है। फिर भी हम पूर्ण यत्न करेंगे कि हमारी सेना इस अवसर पर किसी प्रकार की दुर्घटना न होने दे। इस प्रकार अपनी लड़की को अपना साथी ढूँढ़ने की स्वतन्त्रता देकर हम अपना कर्तव्य-पालन कर सकेंगे।"

महाराज देवनाम इस प्रस्ताव से प्रसन्न हो उठा, पर महारानी फिर भी चिन्तित थी। वह समझती थी कि स्वयंवर से उसकी लड़की का भाग्य तथा देश और धर्म का भविष्य जुए की बाजी पर लगा देने वाली बात होगी।

नारद ने समझाया कि निमन्त्रण केवल उन राजाओं-महाराजाओं को भेजा जाएगा जिनके विषय में कुछ ज्ञात होगा और जिन पर हम विश्वास रखते होंगे। उनमें से जिसको वह वरेगी, उसके लिए हमारी स्वीकृति प्राप्त होगी। मैं आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त के अधिकांश राजकुमारों और युवराजों को जानता हूँ। जिनके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में हम ठीक समझेंगे उनको ही निमन्त्रण भेजेंगे।

जो कठिनाई उत्पन्न हो गई थी उसका यह सुझाव अच्छा माना गया। चित्र-कार बुलाए गए जिनको राजकुमारी के बहुत से चित्र बनाने की आज्ञा दी गई। यह विचार किया गया कि प्रत्येक निमन्त्रण-पत्र के साथ राजकुमारी का चित्र, उसकी शिक्षा और अन्य योग्यताओं का विवरण भेजा जाए।

आमन्त्रितों से भी यह निवेदन कर देने का निश्चय किया गया कि वे भी अपने आने से पूर्व अपने विषय में पूर्ण वृत्तान्त और अपना चित्र भेज दें, जिससे राजकुमारी अपना निर्णय करने में भलीभाँति समर्थ हो सके।

: ४ :

इस कथा का काल अंतिम महाप्लावन के सहस्रों वर्ष बाद का है। प्लावन का जल उतर गया, मनु की सन्तान बहुत बढ़ गई और उस संतान का एक भाग बाहुक देश में, जो कश्मीर के दक्षिण में था, आकर बस गया। उन्होंने इस देश का नाम ब्रह्मावर्त रखा। इनमें से कुछ और मनचले निकले और वे आगे बढ़े और उन्होंने अगले देश का नाम आर्यावर्त रख दिया। प्लावन के समय जो लोग हिमालय की उपत्यकाओं में रहते थे, वे देवता कहलाए। जल उतर जाने पर वे भी उपत्यकाओं से उतर आए और नदियों के मैदानों से होते हुए विन्ध्याचल के समीप जा पहुँचे। उस समय उनका विन्ध्याचल के पार रहने वाले राक्षसों से संघर्ष आरम्भ हुआ, जो देवासुर-संग्राम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राक्षस दक्षिण समुद्र में स्थित एक ऊँचे और विशाल द्वीप में रहते थे। वे प्लावन में बच गए थे। जल उतर जाने पर वे उस भूमि पर, जिसको आज भारत कहते हैं, आ गए और उत्तर की ओर बढ़ते-बढ़ते विन्ध्याचल के पर्वतों में पहुँच देवताओं से टकरा गए।

उस समय मनु की सन्तान भी पश्चिम की ओर से चलती हुई आर्यावर्त देश में आ पहुँची थी। देवताओं को रक्षसों से युद्ध करने के लिए सहायकों की आवश्यकता थी। इस कारण उन्होंने मानवों का स्वागत किया। उनको वेद अर्थात् ज्ञान दिया और अपने मित्र बनाकर राक्षसों पर विजय प्राप्त की। देवताओं की असुरों पर तो विजय हो ही गई और ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त पर मनुसन्तान का, जो आर्य कहाए, राज्य भी हो गया। देवता अपने निवासस्थान देवलोक से ही सन्तुष्ट रहे। इस प्राचीन काल में आर्यों और देवताओं ने अनेक युद्ध लड़े और म्लेच्छों और राक्षसों से इस देश का उद्धार किया। इन युद्धों में अन्तिम लंका-विजय का युद्ध था। दशरथपुत्र राम ने लंका के राजा रावण को पराजित कर आर्य संस्कृति की दुंदुभि बजाई।

काल व्यतीत होता गया और मानवों का प्रभाव बढ़ने से देवता दुर्बल होते गए। धीरे-धीरे देवता केवलमात्र देवलोक से ही सन्तुष्ट रहने लगे। मनु की वह सन्तान, जो पहले पूर्व की ओर नहीं आई थी, अब सहस्रों वर्ष बाद इस ओर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमुख हुई। यद्यपि पहले आए हुए भी मनु की सन्तान थे, परन्तु वे देवताओं की संगति से सभ्य और ज्ञानी हो चुके थे। जो लोग दूसरे दल के साथ आए, वे तब तक भी म्लेच्छ ही थे। वे सुसंस्कृत भाषा का व्यवहार नहीं जानते थे। इन म्लेच्छों ने मध्य एशिया में एक तुखार नाम का शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था और वहाँ से ब्रह्मावर्त के हरे-भरे मैदानों की ओर बढ़ने आरम्भ हो गए थे। ये चन्द्रवंशी थे।

चन्द्रवंशियों ने कामभोज, जो आज अफगानिस्तान के नाम से जाना जाता है, विजय कर लिया था। वहाँ से वे गान्धार पर भी अधिकार जमा चुके थे। गान्धार के एक सरदार का लड़का नहुष, देवलोक की ख्याति सुनकर, वहाँ जा पहुँचा और अपना राज्य वहाँ स्थापित कर बैठा।

इस समय से सहस्रों वर्ष पूर्व कश्मीर की घाटी पानी से भरी हुई एक सरोवर थी। इसका नाम सतिसर था। कश्यप ऋषि की योजनानुसार इस सरोवर के किनारे के पहाड़ों को वाराहमुख के समीप तोड़कर जल निकाल दिया गया और सरोवर की भूमि जलहीन होकर एक सुन्दर हरी-भरी घाटी बन गई थी। यह घाटी कश्यप ऋषि के नाम पर कश्मीर के नाम से विख्यात हुई। इस कथाकाल में कश्मीर में आर्यों का राज्य था। देवलोक में चन्द्रवंशी नहुष राज्य करता था। गान्धार में नहुष का एक सम्बन्धी काकूष राजा था। जब देवलोक और गान्धार में चन्द्रवंशियों का राज्य स्थापित हो गया तब देवनाम को कश्मीर की दोनों सीमाओं पर एक भारी सेना रखनी पड़ी। देवलोक में नहुष का राज्य हो जाने पर बहुत से देवता भागकर कश्मीर में आ गए थे। इन्द्राणी शची भी कश्मीर राज्य में आकर ठहरी हुई थी। इस प्रकार देवनाम का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया। देवर्षि नारद देवलोक और कश्मीर में आता-जाता रहता था और वह कश्मीर की सहायता से देवलोक के उद्धार की योजना सम्पन्न करना चाहता था। इस बीच में देवयानी के विवाह की समस्या आ उपस्थित हुई।

देवलोक में नहुष के राज्य से अत्याचार और आतंक फैल रहा था। जो देवता भाग सकते थे, भाग गए थे। जो किसी कारण से भागने में असमर्थ थे, वहाँ नहुष के साथियों के अत्याचार के नीचे पिस रहे थे। देवलोक का राजा इन्द्र नहुष का बन्दी था और उनके द्वारा कमलसर नाम के दुर्ग में कड़ी देखभाल में रखा हुआ था।

नहुष और उसके साथी देवताओं की सभ्यता और संस्कृति के प्रति किसी प्रकार का आदरभाव नहीं रखते थे। न वे स्वयं यज्ञादि कर्म करते थे और न वे किसी को उनके करने की स्वीकृति देते थे। कश्मीर राज्य में देव संस्कृति की पुत्री आर्य संस्कृति प्रचलित थी। कश्मीर के महाराज देवनाम देवलोक की दुर्दशा की बात जानकर बहुत दुःख अनुभव करते थे। इस सहानुभूति के कारण नारद, जो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रच्छन्न रूप से देवलोक की अवस्था से अवगत रहता था, कश्मीर के कार्यों में रुचि लेने लगा था। वह इनसे सहायता प्राप्त करने की आशा करने लगा था।

जिस दिन देवयानी को यह पता चला कि उसका स्वप्न-पुरुष वास्तव में विद्यमान नहीं तो उसको अति दुःख हुआ। उस दिन और अगले दिन वह अपने आगार से बाहर नहीं निकली और देवर्षि के वचनों पर मनन करती रही। वह यह मानती थी कि कुल का क्षय होने देना न केवल धार्मिक विचार से पाप है, प्रत्युत उस काल की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण दुःख और क्लेश का कारण भी बन सकता है। प्राचीन आर्य संस्कृति के विनाश का आरम्भ, जो कामभोज और गान्धार के पराजित होने से हुआ था, अब देवलोक के नहुष के अधिकार में चले जाने से और भी विस्तार पा रहा था। वैदिक विचारधारा का स्रोत देवलोक ही था। मानव समाज को जब-जब ज्ञान की आवश्यकता होती थी, वह इन्द्रादि देवताओं की शरण में जा, तपस्या कर, ज्ञान और शक्ति प्राप्त करता था। अब देवलोक के विनाश से वह ज्ञानस्रोत विलुप्त हो गया था। इससे कश्मीर का उत्तरदायित्व बढ़ गया था।

देवयानी विचार करती थी कि ऐसी अवस्था में यदि कश्मीर का कोई उत्तराधिकारी न हुआ तो रहा-सहा धर्म तथा संस्कृति का आधार भी परतन्त्र होने से नष्ट हो जाएगा। इससे उसका मन उसे कल्पनाजगत् से निकलकर कार्यक्षेत्र में आने की प्रेरणा देता था। फिर भी वह मनोरंजक सम्मोहिनी छवि जो वह स्वप्न में देखा करती थी, उसको अन्तिम निश्चय करने में बाधा दे रही थी।

वह अभी अनिश्चित मन दो प्रेरणाओं से संघर्ष कर ही रही थी कि सुमति उससे मिलने आई। अन्य सखियाँ पिछले दिन की घटना के पश्चात् उससे मिलने नहीं आई थीं। वे समझती थीं कि राजकुमारी और उसके माता-पिता के झगड़े में उनको हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वे अभी तक यही समझती थीं कि उसके माता-पिता उसको नारद से विवाह देने का हठ कर रहे हैं।

सुमति एक शुभ समाचार लेकर आई थी। उसने आते ही कहा—"राजकुमारी ! अब तो प्रसन्न हो जाओ। इस शुभ समाचार के पश्चात् शोकभवन में रहने का कोई कारण नहीं रह जाता।"

देवयानी को स्वयंवर के विषय में कुछ पता नहीं था। इस कारण वह विस्मय में सखी के मुख को देखती रह गई। सखी ने राजकुमारी से गले मिलते हुए कहा—"भगवान् का धन्यवाद है कि यह निर्णय हो गया है।"

देवयानी ने पूछ ही लिया—"क्या हुआ है सखि ?"

"तो तुम नहीं जानतीं ? यह समाचार तो अब पूर्ण चक्रधरपुर में चर्चा का विषय बन चुका है और कुछ ही काल में पूर्ण ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त में विख्यात हो जाएगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम क्या बातें कर रही हो सुमति ! बताती क्यों नहीं ? क्या समाचार है ?"

सखी मुस्कराई और देवयानी की आँखों में आँखें डालकर बोली—"महाराज ने यह घोषणा की है कि कश्मीर की राजकुमारी स्वयंवर करेगी।"

समाचार पा देवयानी गम्भीर हो गई। कितनी ही देर तक वह विचार करती रही। पश्चात् कहने लगी—"इस समाचार को तुम प्रसन्नता का विषय कहती हो ? इसी पर भगवान् का धन्यवाद कर रही हो ? इसका अर्थ समझा भी है तुमने ? इसका परिणाम यह हुआ है कि मुझको अपना जीवनसाथी ढूँढ़ने में अपने माता-पिता की सहायता भी नहीं रही। मैं उनके ज्ञान और अनुभव से लाभ उठाने से वंचित कर दी गई हूँ।"

"परन्तु कल तो तुमने अपने माता-पिता की बात मानने से इनकार कर दिया था ?"

"मैंने अपने माता-पिता की बात मानने से इनकार कर दिया था ? कौन कहता है यह ?"

"हम सबका यही विचार था कि देवर्षि नारद ने कल कश्मीर की राजकुमारी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी। राजकुमारी के माता-पिता ने उसको आज्ञा दी थी कि देवर्षि के प्रस्ताव को स्वीकार करे। जब राजकुमारी महाराज के आगार से रोती हुई निकली तो हमने अनुमान किया कि राजकुमारी ने पिता की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया है। क्या हमारा अनुमान ठीक नहीं है ?"

राजकुमारी अपनी सखियों की कल्पना-शक्ति पर मुस्कराई और बोली—"यह सब मिथ्या कल्पना है।"

"तो कल उसने उद्यान में विवाह की चर्चा नहीं की थी ?"

"की थी, मेरे विवाह की। देखो सुमति ! देवर्षि मेरे पिता तुल्य हैं। मैं उनकी गोद में खेली हूँ। वे मुझसे स्नेह करते हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं अपने जीवन-साथी के विषय में क्या विचार रखती हूँ। मैंने बताया और उन्होंने मेरी धारणा जानकर महाराज से कह दिया। जब मैं वहाँ पहुँची तो मेरी धारणा के विषय में पूछताछ हुई। इस पूछताछ के परिणाम से मुझको विदित हुआ कि जिस पुरुष के लिए मैं इच्छा कर रही थी, उसका स्वर्गवास हो चुका है। इस बात के जानने से मुझको दुःख हुआ था। इसमें भला अचम्भा करने की कौन-सी बात है ? तुम सब मूर्ख प्रतीत होती हो। बिना मुझसे जाने इतनी लम्बी-चौड़ी घटना घड़ ली।"

"और वह कौन पुरुष था, जो अब नहीं है ? उसके अभाव में तुमको स्वयंवर रुचिकर नहीं क्या ?"

देवयानी के मुख से वह रहस्य, जिसको वह कई वर्षों से अपने मन में सुरक्षित रखे हुए थी, अनायास ही निकल गया। अब वह उसको छुपाकर रखने में लाभ नहीं समझती थी। नारद को पता चल गया था। उसके माता-पिता को विदित हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। इससे सुमति से छुपाने में भी उसने कोई तथ्य न देखा। इस पर भी उसने कहा—"क्या तुम मेरा रहस्य गुप्त रख सकोगी ? क्या तुम वचन देती हो कि यह किसी से नहीं कहोगी ?" सुमति ने स्वीकारोक्तिपूर्वक सिर हिलाया तो देवयानी ने कहा—"सुनो ! देवर्षि ने बताया है कि वे निश्चय से जानते हैं कि महादेव शिव का स्वर्गारोहण हो चुका है।"

सुमति ने मुस्कराते हुए कहा—"गंगा अथवा पार्वती की अवतार राजकुमारी जी ! मैं अब समझी कि क्यों स्वयंवर रुचिकर प्रतीत नहीं हो रहा। गंगा को तो केशों में स्थान मिला था, आप कहाँ स्थान पाने की आशा में हैं ?"

"इच्छा तो थी चरणों में स्थान पाने की, परन्तु हमारे परिवार की समस्या भी तो तुम जानती हो। मेरा कोई भाई नहीं है। राज्य का कोई उत्तराधिकारी नहीं। साथ ही म्लेच्छों का चारों ओर राज्य स्थापित हो चुका है। ऐसी अवस्था में मेरा क्या कर्त्तव्य है, यह विचारणीय विषय है।"

"इसमें विचार करने की कौन-सी बात है ? राज्य प्रजा का है। इसकी चिन्ता प्रजा को करनी चाहिए। राजा नहीं होगा तो गणराज्य स्थापित हो जाएगा।"

राजकुमारी मुस्कराई और बोली—"वैय्याकरण महर्षि की लड़की हो न ! सन्धि और उसका विच्छेद करने की योग्यता राज्य में काम नहीं देती सखि ! भाषा में तो यह विद्या चल सकती है, पर राज्यकार्य में नहीं। महामुनि नारद का कहना है कि मेरे विवाह न करने से हमारे सम्बन्धियों में सिंहासन के लिए प्रति-स्पर्धा चल पड़ेगी और कश्मीर में गृहयुद्ध होते ही गान्धार अथवा देवलोक से इस पर आक्रमण हो जाएगा। म्लेच्छ लोग, जो अपनी अज्ञानता को भी ज्ञान मानते हैं, यहाँ भी अन्धकारमय राज्य स्थापित कर देंगे। यह तो महापाप होगा।"

"परन्तु महामुनिजी ने देवलोक को म्लेच्छों के अधिकार में जाने मे क्यों नहीं बचा लिया ? संस्कृतभाषी देवता अपने छन्दों और वेदगान से म्लेच्छों का विध्वंस क्यों नहीं कर सके ?"

"सुना है कि वे संसारभ्रमण पर गए हुए थे। इनकी अनुपस्थिति में यह सब हो गया।"

"तो अब तो आ गए हैं। अब भी समय है कि अपनी वीणा की झंकार से नहुष की धज्जियाँ उड़ा दें। देखो सखि ! दूसरों को ज्ञान देना बहुत सरल है। मेरी राय मानो तो स्वयंवर अस्वीकार न करो। ऐसा सुअवसर सौभाग्यवती राजकुमारियों को ही मिलता है। संसार-भर के राजा-महाराजा यहाँ आएँगे। अपने नयनों को हमारी राजकुमारी के चरणों में बिछावेंगे और हम सबको इस भव्य दृश्य को देख कर गद्गद होने का अवसर प्राप्त होगा।"

: ५ :

उसी दिन नारद ने उचित समझा कि वह देवयानी से मिलकर उसके पिता के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय की सूचना उसे दे दें। वह आया तो देवयानी, जो अभी भी सुमति से बातचीत कर रही थी, उठकर शीश नवा हाथ जोड़ सत्कार से नमस्कार कर महामुनि को आसन देने लगी। सुमति वहाँ से हट जाना चाहती थी, परन्तु राजकुमारी ने उसकी बाँह पकड़कर उसे रोक लिया।

नारद के बैठने पर देवयानी और सुमति दोनों उसके सामने बैठ गईं। नारद ने अपने मन की बात कह दी—"बेटी देवयानी! मित्र देवनाम ने मेरे कहने पर तुम्हारे स्वयंवर की घोषणा कर दी है। मैं यह समझता हूँ कि इस स्वयंवर का निश्चय हो जाने से तुमको अपनी इच्छानुसार पति वरने का अवसर मिलेगा। इससे तुमको सन्तोष होना चाहिए।"

"परन्तु देवर्षि, जो है नहीं, वह स्वयंवर में कैसे आ जाएगा?"

"हम तो घोषणा कर देंगे। यदि परलोक से वे आना चाहेंगे तो आ जावेंगे। हमको, जो संसार-बन्धनों में बँधे हुए हैं, यहाँ की विवशताओं के कारण जो प्राप्त है उस पर ही सन्तोष करना पड़ता है। जो कुछ कश्मीर नरेश तुमको उपलब्ध करा सकने में समर्थ हैं, वह करा दिया जावेगा।"

"आपकी इस बात को मैं मान भी लूँ, तब भी तो आपके द्वारा वर्णित राजनीतिक परिस्थितियों में मैं जो करूँगी वह ठीक ही होगा, यह कौन कह सकता है? मैं तो यह समझी थी कि आप ही उचित प्रबन्ध कर लेंगे। जब मैंने अपने मन की सर्वोच्च भावनाओं को देश और धर्म के लिए निछावर करने का निर्णय किया है, तो फिर यह स्वयंवर उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।"

"धन्य हो देवयानी! मैं तुमसे और तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा से यही आशा करता था। फिर भी, स्वयंवर होगा और यदि तुम्हारी यही भावना बनी रही तो तुम्हारे वरण में हम तुमको सम्मति देने के लिए सदैव तत्पर रहेंगे। उस समय, यदि तुम चाहोगी तो राजनीतिक परिस्थिति का भी ध्यान कर लिया जावेगा।"

यह सुन सुमति मुस्कराई। देवर्षि ने उसको मुस्कराते देख लिया था। इससे उसके मन की बात जानने के लिए पूछ लिया—"क्या राजकुमारी की सखी हमारी सम्मति पर विश्वास नहीं करती?"

देवयानी ने सुमति के मन की बात कह दी। उसने कहा—"यह समझती है कि आप जो देवलोक को नहीं बचा सके तो कश्मीर को क्या बचा पाएँगे?"

नारद हँस पड़ा। उसने कहा—"भगवान् की इच्छा के विपरीत हम क्या कर सकते हैं? फिर भी प्रयत्न करना तो मनुष्य का कर्तव्य है। वह हम निरन्तर कर रहे हैं। यहाँ भी अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न करना ही तो हमारे बस की बात है!"

"यह कहती थी," देवयानी ने सुमति की ओर संकेत करते हुए कहा—"यदि कश्मीर में गणराज्य स्थापित हो जाए तो मुझको राजनीति की बलिदेवी पर भेंट चढ़ाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद इस प्रश्न पर गम्भीर विचार में डूब गया। उसने कुछ विचारकर पूछा—"यह तुम्हारी सखी अपनी आयु से कुछ अधिक ज्ञानवान प्रतीत होती है। यह किसकी पुत्री है?"

सुमति को ऐसा प्रतीत हुआ कि नारद उसकी प्रशंसा कर रहा है। इससे उसका मुख लज्जा से आरक्त हो गया। देवयानी ने बताया—"यह महर्षि पाणिनी जी की सुपुत्री सुमतिदेवी हैं और उज्जयिनी से ज्योतिष विद्या पढ़कर आई हैं।"

"तभी। परन्तु बेटी! पुस्तकों में पढ़े ज्ञान और संसार की ठोकरें खाकर प्राप्त किए अनुभव में अन्तर है। गणतन्त्र युद्धकालीन पद्धति नहीं है। युद्धकाल में तो एक-तन्त्र राज्य ही सबल और सफल होता है। आज इस देश में युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी है। एक विदेशीय जाति ने इस देश पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है। देश के द्वार कामभोज पर और इसकी ड्योढ़ी कंधार पर विदेशियों का अधिकार हो चुका है। उत्तर में देवलोक में भी उनका राज्य स्थापित हो गया है। इस प्रकार इस युद्धकाल में कश्मीर के शत्रुओं से घिरे होने पर यहाँ गणतन्त्र की स्थापना घातक सिद्ध होगी। गणतन्त्र राज्य सन्तुष्ट और सम्पन्न देश में ही चल सकता है। ऐसे राज्य वाला देश शत्रु का विरोध करने में समर्थ नहीं हो सकता।

"गणतन्त्र पद्धति पर बहुत परीक्षण हो चुके हैं और उस अनुभव से हम लाभ उठाना चाहते हैं। वैदिक काल में यही पद्धति प्रचलित थी, परन्तु बाहरी भय से बचने के लिए गणतन्त्र राज्यों ने स्वयं अपने ऊपर एकतन्त्र शासन स्वीकार किया था। अब पुनः हम उन परीक्षणों को दुहराना नहीं चाहते।"

सुमति चुप रह गई। उसने पुराण और इतिहास का अध्ययन नहीं किया था। इस कारण वह नारद को उत्तर नहीं दे सकी। नारद ने पुनः कहा—"तुम्हारे लिए अभी किसी योग्य गुरु से पुराण और इतिहास पढ़ने की आवश्यकता है। राजनीति का विषय इतना सुगम नहीं कि इस विषय में कभी भी अन्तिम बात कही जा सके। राज्य प्रजा के साथ सम्बन्धित एक आयोजन है। प्रजा में सब मनुष्य समान नहीं होते। उन सबको प्रसन्न और सन्तुष्ट करना एक अति कठिन कार्य है। युद्ध अथवा संघर्ष काल में इस प्रकार की कठिनाई उत्पन्न नहीं होने देनी चाहिए। गणतन्त्र में यह कठिनाई बढ़ जाती है। आत्मश्लाघा और आत्माभिमान गणतन्त्र में बढ़ते हैं और ये दोनों राज्यकार्य-संचालन में बाधक होते हैं।"

"मैं तो यह कह रही थी" देवयानी ने कहा—"स्वयंवर की क्या आवश्यकता है? मैं अपने को आपसे अधिक योग्य पारखी नहीं मानती। जिस कार्य के निमित्त मेरे विवाह का आयोजन किया जा रहा है, उसमें तो मैं कुछ भी सम्मति देने के योग्य नहीं हूँ।"

"फिर भी मेरी यही सम्मति है कि स्वयंवर होना ही चाहिए। हम तुम्हारी सहायता के लिए यहाँ उपस्थित होंगे। अनेकानेक राजा-महाराजाओं के आने पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ वर पाने में सहायता मिलेगी।"

नारद देवयानी के व्यावहारिक बुद्धि के अनुसार कार्य करने के लिए मान जाने पर बहुत प्रसन्न था। जाते समय उसने आशीर्वाद दिया और कहा—"नियत तिथि से कुछ पहले ही आ जाऊँगा।"

जब देवर्षि चले गए तो सुमति ने कहा—"राजकुमारी, अब तो प्रसन्न हो जाओ।"

"नहीं सखि ! स्वयंवर ने मेरे कंधों पर भारी बोझा डाल दिया है। भगवान् ही जाने मैं कैसे पार उतरूँगी। देवर्षि कहते हैं सहायता करेंगे, परन्तु मैं सोचती हूँ कि वे किस प्रकार सहायता कर सकेंगे।"

सुमति को नारद का यह कहना कि उसको किसी सुयोग्य गुरु से पुराण-इतिहास पढ़ने चाहिए, पसन्द नहीं आया। फिर भी उसने इस विषय में बात नहीं चलाई।

देवयानी के स्वयंवर की बात पूर्ण कश्मीर में फैल गई और लोग उत्सुकता से इस अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। सबको यही आशा थी कि इस अवसर पर भारी समारोह होगा। देश-देशान्तर से राजा-महाराजा आएँगे। कश्मीर में व्यापार बढ़ेगा और करोड़ों रुपए कश्मीर के महाराज और आने वाले अतिथि व्यय करेंगे। यह धन निर्धन जनता के हाथ में पहुँच जाएगा।

: ६ :

देवलोक की राजधानी अमरावती थी। इस सुन्दर नगर के लोग नहुष और उसके साथियों के पाँवों तले कुचले जा रहे थे। लाखों वर्षों के, जब से मनुष्य ने बुद्धि पाई थी, आविष्कारों से सम्पन्न यह नगरी नहुष के म्लेच्छ सैनिकों द्वारा नष्ट की जा रही थी। अति सुन्दर देवकन्याएँ इनकी वासना की शिकार हो रही थीं। निरक्षर विजेता सुसंस्कृत देवताओं पर विजय प्राप्त कर, प्रत्येक प्रकार का अत्याचार कर रहे थे। ये लोग दया-धर्म का नाम नहीं जानते थे और उनकी निर्दयता केवल स्त्रियों के प्रति आकर्षण द्वारा ही कम हो सकती थी।

नहुष ने इन्द्र का सहस्रों झरोंखों वाला सुरम्य प्रासाद अपने रहने के लिए चुन लिया था। प्रति रात्रि बीसियों लड़कियाँ उनके सम्मुख लाई जाती थीं और उनमें से एक को, जो सबसे अधिक सुन्दर होती थी, उसे वह अपने प्रयोग के लिए रख लेता था। शेष अपने मित्रों और कर्मचारियों में वितरण कर देता था। यह क्रम नित्यप्रति चलता था और देवलोक की जनता दाँत पीसकर रह जाती थी, परन्तु कर कुछ नहीं सकती थी।

एक बार नहुष को सचेत भी किया गया था। उसके एक कर्मचारी ने कहा था—"श्रीमान् ! इस व्यवहार से तो यहाँ की जनता विद्रोह के लिए उठ खड़ी होगी और हम अल्पसंख्या में होने से कष्ट पाएँगे।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहुष का उत्तर था—"राज्य करने में शक्ति सबसे बड़ी युक्ति है। यदि शक्ति का प्रयोग बार-बार किया जाए, तो प्रजा समय पाकर राज-भक्त बन जाती है। दूसरी जाति पर राज्य स्थिर रखने का एकमात्र उपाय उनकी आत्मा को पतित करना है। ऐसा करने के दो ढंग हैं। एक तो विजित जाति के स्त्रीवर्ग को पतित कर दिया जाए। उनको अपनी ही दृष्टि में हेय और नीच सिद्ध कर दिया जाए। दूसरा उपाय है देश में वर्णसंकरों की संख्या में वृद्धि करना। मैं दोनों उपाय प्रयोग में ला रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरा प्रत्येक सैनिक यहाँ की स्त्रियों से वर्ष में एक संतान अवश्य उत्पन्न करे, जिससे बीस वर्ष में मेरी जाति के लोग संख्या में बढ़कर यहाँ एक नवीन जाति बन जाएँ और उनका यहाँ स्थायी राज्य हो जाए।"

आततताई अपनी जीवनमीमांसा अन्य लोगों से भिन्न रखते हैं और उस पर आचरण करते हुए समझते हैं कि वे अपने राज्य की जड़ों को पाताल में गाड़ रहे हैं। वे नहीं समझते कि अपने इस क्रूरता के व्यवहार से अपने जीवनसूत्र को पैनी छुरी से स्वयं ही काट रहे हैं।

नहुष प्रातः पेटभर आहार कर न्यायालय में बैठ जाता। वह अपनी ओर से न्याय करता था, जो वास्तव में पूर्ण अन्याय होता था। प्रत्येक बात में वह अपने साथियों का पक्ष लेता था। बहुशः झगड़े नहुष के सैनिकों और देवताओं के मध्य हुआ करते थे। नहुष के सैनिक प्रायः इस न्यायालय में सत्य सिद्ध हुआ करते थे।

यह क्रम चलते हुए कई वर्ष व्यतीत हो गए। लोग 'त्राहि-त्राहि' करने लगे थे। जो लोग भागने में समर्थ थे, भाग गए थे। उनकी स्त्रियाँ दासियाँ बना ली गई थीं।

नहुष प्रायः अपनी सहवासिनी नित्य बदलता रहता था, परन्तु कभी कोई ऐसी रूपवती और आकर्षक स्त्री भी आ जाती थी, जिसे कई दिन तक उसके साथ रहने का अवसर मिल जाता था। ऐसी ही नीति नाम की एक लड़की नहुष के सम्पर्क में आई। उस पर मोहित हुए नहुष को कई दिन हो चुके थे। इस परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए नीति ने नहुष के मन में एक विचार को जन्म दे दिया। एक रात बातों-बातों में उसने पूछ लिया—"महाराज! आपकी आयु कितनी है?"

"क्यों, क्या बात है? तुम्हारे लिए तो अभी युवा ही हूँ।" नहुष ने उसके भावों को न समझते हुए कहा।

"मेरे पूछने का प्रयोजन यह नहीं है। मेरा आशय तो यह था कि आपके कोई पुत्र नहीं, जो आपके उपरान्त आपका राज्य सम्हाल सके। यूँ तो भगवान् जाने आपकी सन्तान कहाँ-कहाँ है, परन्तु विवाहित पत्नी, जिसे महारानी की पदवी प्राप्त हो, उसके द्वारा प्राप्त पुत्र ही राज्य का अधिकारी हो सकेगा। मैं समझती हूँ कि आपकी मृत्यु पर इस राज्य के लिए आपके लोगों में झगड़ा होगा और यह राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पर मैं तो मरना नहीं चाहता।"

"फिर भी अन्त तो एक दिन आएगा ही। महादेव जैसे योगेश्वर मर गए। इस संसार में कुछ भी स्थायी नहीं है।"

नहुष की मोटी बुद्धि में यह बात समा गई। यूँ तो नहुष का विवाह अपने देश में हो चुका था और उस पत्नी से उसका एक पुत्र भी था, परन्तु देवलोक में आकर उसका विचार अपनी पत्नी और पुत्र के विषय में बदल गया था। उसको अपनी पत्नी और पुत्र कुरूप दिखाई देने लगे थे। इस कारण किसी से भी उसने उनका उल्लेख नहीं किया था। सब कोई उसको अविवाहित ही समझते थे। इस कारण उसने पूछा—"तुम क्या चाहती हो? बताओ, मैं क्या करूँ?"

"आप किसी सुन्दर लड़की से विवाह कर लीजिए। उसे अपनी पटरानी बनाइए और लोगों से उसका मान कराइए। इस पर लोग उसको और उसकी सन्तान को आपका उत्तराधिकारी मानेंगे। भगवान् करे आप सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहें। आपके पश्चात् आपका वह लड़का देवलोक का राजा होगा। लोग केवलमात्र इस कारण कि वह आपका लड़का होगा, उसका मान करेंगे और उसकी आज्ञा का पालन करेंगे। इस प्रकार आपका वंश चल पड़ेगा।"

"यह विचार बहुत सुन्दर है। तुम बहुत बुद्धिमती हो। तुम सत्य कहती हो कि मैं सदा जीवित नहीं रह सकता और सदा पुत्र भी उत्पन्न नहीं कर सकूँगा। क्या तुम मेरी रानी बनना चाहोगी?"

नीति यही तो चाहती थी। उसने कहा—"यह तो श्रीमान् की आज्ञा पर निर्भर है। आप आज्ञा करेंगे तो मैं देवलोक की रानी के रूप में अपना कर्तव्यपालन कर सकूँगी।" नीति ने नहुष से बहुत प्रेम प्रकट कर आलिंगन किया और बात तय हो गई।

अगले दिन महाराज नहुष ने अपने साथियों और मन्त्रियों से मन्त्रणा की। उन्होंने महाराज की विवाह की बात को तो सराहा, परन्तु नीति का महारानी बनना स्वीकार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि नीति के प्रस्ताव का टाल-मटोल होने लगा। नीति ने एक दिन अपने व्यवहार को अति प्रेममय बनाकर महाराज से वचन की पूर्ति का आग्रह किया। महाराज ने वासनावश वचनपालन करने के लिए स्वीकार कर लिया, परन्तु अगले दिन मन्त्रियों के कहने पर नीति को ही मरवा डाला।

नीति तो गई, परन्तु एक विचार छोड़ गई। नहुष की इच्छा दिन-प्रतिदिन उग्र ही होती गई कि उसको अपना उत्तराधिकारी पैदा करना चाहिए। इस बीच में कश्मीर की राजकुमारी देवयानी के स्वयंवर का समाचार आया। समाचार लाने वाले ने बताया कि कश्मीर-राज की पुत्री सर्वथा छोटी आयु की है और अति सुन्दर है। उसके मन्त्रियों ने, जो महाराज के विवाह का विचार सुन चुके थे, राय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी कि इस लड़की से विवाह करना उचित होगा। नहुष ने सन्देह में सिर हिलाते हुए कहा—"पर वहाँ उसके स्वयंवर में मुझको बुलाएगा कौन ? महाराज-कश्मीर मुझे अपना शत्रु समझता है। दो बार मेरी सेना कश्मीर पर आक्रमण कर चुकी है और वहाँ से पराजित होकर भाग चुकी है।"

फिर भी उसने दूतों को पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा। वे समाचार लाए कि बहुत बड़ी संख्या में राजाओं और राजकुमारों को निमन्त्रण भेजे गए हैं। स्वयंवर की तिथि निश्चित कर दी गई है। आमन्त्रित लोग चक्रधरपुर में एकत्रित होंगे और निश्चित तिथि के दिन राजकुमारी अपने पति का, उसके गले में विजय-माल डालकर चयन करेगी। इस विवाह के पश्चात् महाराज देवनाम और उसकी पत्नी संन्यास लेंगे तथा राज्य अपने दामाद को दे जावेंगे। भेदिए देवयानी के सौन्दर्य का विवरण भी लाए। उन्होंने बताया कि वह फूल के समान कोमल, मखमल-समान मृदुवदन और श्वेत गुलाब के समान सुन्दर है। हंस-समान गति वाली वह मृगनयनी इस संसार में अद्वितीय है।

"महाराज !" उनका कहना था—"देवयानी का मूल्य देवलोक का राज्य भी नहीं हो सकता।"

महाराज-कश्मीर की कन्या के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर नहुष उसकी प्राप्ति की योजना पर विचार करने लगा। उसने अपने अन्तरंग मन्त्रियों से पूछा—"कैसे प्राप्त किया जा सकता है उसको ?"

उत्तर था—"वहाँ जाने से।"

"महाराज-कश्मीर हमारा शत्रु है। उसने मुझे नहीं बुलाया और यदि मैं वहाँ चला भी गया तो वह लड़की मुझ-से बूढ़े को पति नहीं चुनेगी।"

"इस अवस्था में क्या यह ठीक न होगा कि कश्मीर पर आक्रमण कर दिया जाए और लड़की का अपहरण कर लिया जाए ?"

"मैं दो बार आक्रमण कर चुका हूँ। मेरी सेना कश्मीर राज्य के कुछ ही कोसों तक भीतर जा सकी थी।"

एक मन्त्री ने कहा—"हमको वहाँ चोरी-चोरी जाना जाहिए और जब वह जयमाल लेकर आए तो उसे बलपूर्वक उठा लाना चाहिए। महाराज वहाँ पर मायावी रूप में हों और उसको उठाकर जब भागें तो रक्षा के लिए वहाँ सेना उपस्थित हो।"

यह योजना नहुष को पसन्द आई और इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न होने लगा। सहस्रों सैनिक व्यापारियों के रूप में एक-एक दो-दो कर कश्मीर में घुस गए। चक्रधरपुर से लेकर देवलोक की सीमा तक इन लोगों ने मार्ग सुरक्षित कर दिया। चक्रधरपुर में भी भेदियों और सैनिकों का जाल बिछा दिया। देवयानी का स्वभाव और उसकी रुचि जानने के लिए विशेष भेदिए लगा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिए गए। जब सब व्यवस्था हो गई तो नहुष स्वयं रत्नों के सौदागर के रूप में चक्रधरपुर में जा पहुँचा।

: ७ :

महर्षि पाणिनी की लड़की स्वयं ज्योतिष और गणित की पण्डिता थी। वह जब पाँच ही वर्ष की थी तभी उसको उज्जयिनी में शिक्षा के लिए भेजा गया था और वहाँ उन्नीस वर्ष की आयु तक रही। जब वह लौटी तो उसकी विद्वत्ता की ख्याति कश्मीर के महाराज और महारानी तक पहुँची और उन्होंने उसको महल में आमन्त्रित किया। वहाँ उसका देवयानी से परिचय कराया। यह परिचय मित्रता और फिर घनिष्ठता में बदल गया। सुमति न केवल विदुषी थी, प्रत्युत स्वभाव की अति सरल और प्रसन्नचित्त भी थी।

देवयानी के अपने मन के रहस्य प्रकट करने के पश्चात् दोनों में घनिष्ठता और भी बढ़ गई। अब देवयानी जब कभी भी अपने हृदय की बात करना चाहती तो वह सुमति को बुला लेती और उससे मन्त्रणा करती। उनकी बातों का विषय प्रायः देवयानी के स्वप्न होते थे। सुमति का ज्योतिष का ज्ञान इन स्वप्नों पर टीका-टिप्पणी करने में सहायक होता।

स्वयंवर के लिए निमन्त्रण भेजे जा चुके थे, तब एक दिन उत्सुकतावश देवयानी ने अपनी सखी से अपने भविष्य को पढ़ने का बहुत आग्रह किया। उसने कहा—"सखि, आज तो मैं तुमको अपना भविष्य पूछे बिना नहीं छोड़ूँगी। बताओ, मेरा भविष्य मेरे लिए क्या सुख और कष्ट लिये हुए है। कश्मीर राज्य का क्या होने वाला है और उसके भविष्य-निर्माण में मेरा कुछ भाग है या नहीं?"

सुमति इतने बड़े प्रश्न की उलझन में झाँकना नहीं चाहती थी। विशेष रूप से राज्यों का इतिहास एक मनुष्य के आचार-व्यवहार पर निर्भर नहीं होता, यह वह समझती थी। जाति के बहुसंख्यक सदस्यों के पाप-पुण्यों से राज्य बनते और बिगड़ते हैं। राजा तथा मन्त्री तो बहुसंख्यक जनता के प्रतिबिम्बमात्र होते हैं। फिर भी जब देवयानी का आग्रह बढ़ता गया तो उसने गणना आरम्भ कर दी। ज्यों-ज्यों गणना चलती गई, विषय गम्भीर होता गया और दोनों प्रातः से सायं तक द्वार बन्द कर आगार में बैठने लगीं।

सुमति का कहना था कि उसके भाग्य में किसी देवता की पत्नी बनना लिखा है। वह देवता ईश्वर की सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट विभूति है, परन्तु भावी जीवन के कुछ वर्ष घोर संघर्ष और भागदौड़ के हैं। उसे देश-विदेश घूमना पड़ेगा और साधारण जनता की भाँति भी रहना पड़ेगा। अन्त में उसके मन की अवस्था ऐसी होगी कि संन्यास में आश्रय लेगी।

कश्मीर के विषय में यह पता चला कि उसकी सन्तान ही वहाँ राज्य करेगी। वहाँ का राज्य सुख और शान्ति से चलेगा, परन्तु उसके राज्य के अन्त में यह देश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपने पड़ोसी राज्यों की भाँति दुःख तथा क्लेश के बादलों से घिर जाएगा। इन बादलों में भी एक आशा की किरण प्रतीत होती है। उस किरण का विकास हो पाएगा अथवा नहीं, अभी कहना कठिन है। इतना तो स्पष्ट है ही कि उन काले बादलों से रक्त बरसेगा। वह रक्त ही बादलों से बहकर उनकी कालिख को धो डालेगा।

इस भविष्यवाणी ने देवयानी को गम्भीर विचार में डाल दिया। वह सोचती थी कि क्या यह सत्य होगा कि वह देव-पत्नी बनेगी ? क्या उसके स्वप्न सत्य होंगे और वह महादेव शंकर के चरणों में रहने के लिए संन्यासिनी बनेगी ? उसके हृदय में इस विचार से गुदगुदी होने लगी। साथ ही जब वह देश के भविष्य के विषय में विचार करती थी तो काँप उठती थी। उसके मन में काले-काले बादलों और रक्त-वर्षा की बात ने एक विशेष उलझन उत्पन्न कर दी थी। वह चाहती थी कि इस आपदा के निवारण के लिए यदि कुछ किया जा सके तो किया जाय। इसलिए इस आने वाली आपदा का और अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाय।

इस कारण उसने एक दिन सुमति से पूछ ही लिया—"सखि ! तुमने बताया था कि काले बादल घिरने वाले हैं। वे काले बादल कौन हैं ? कहाँ से आने वाले हैं ? क्या उनको टाला नहीं जा सकता ? इसके लिए क्या करना होगा ?"

सुमति का कहना था कि जातियों के भविष्य के विषय में ज्योतिष कुछ अधिक स्पष्ट बात नहीं बताता। फिर भी कुछ धीमा-सा ज्ञान आने वाले काल में गृह-नक्षत्र के संयोग के अध्ययन से हो सकता है।

"तो करो न। इसके अध्ययन के लिए इससे अच्छा समय और कब होगा ? कौन कोई परिवार है तुम्हारा, जिसकी सुश्रूषा से तुमको अवकाश नहीं ?"

विवश सुमति को भविष्य के अंधकार में डुबकी लगानी पड़ी। महीनों दिन-रात के परिश्रम के उपरान्त जो कुछ वह जान पाई, उसने अपनी सखी देवयानी के सम्मुख रख दिया। उसका कहना था—"क्षीरसागर से उठी आँधी ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त के बहुत से भाग पर छा जाने वाली है। इस आँधी से वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण इत्यादि आर्ष ग्रन्थों में प्रतिपादित धर्म का लोप होगा। तपस्वियों की तपस्या भंग होगी। ब्राह्मण और महात्मा धनलोलुप हो जीविकोपार्जन के लिए धर्म-अधर्म का भेद भूल जाएँगे। प्रजा में अन्यायाचरण का बोलबोला होगा। भाई बहन की हत्या करना चाहेगा। बाप बेटी से दुराचार करेगा। स्वसुर पतोहू की लज्जा हरण करेगा। इस पुण्यभूमि में घोर अत्याचार तथा अविचार छा जाएँगे।

"भगवान् विष्णु का आसन डोल उठेगा और वे पुनः इस देवभूमि का म्लेच्छों से उद्धार करेंगे। पुनः वेद-वेदांग का प्रचार होगा और भगवान् की प्रिय, यह भूमि, पुनः सुख और शान्ति प्राप्त कर उन्नति की ओर अग्रसर होगी।"

यह सुनकर देवयानी ने स्वयंवर में पति वरने का निश्चय कर लिया। वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करती थी कि सुमति की भविष्यवाणी यदि सत्य होनी है तो महादेव अवश्य स्वयंवर में पधारेंगे। जो बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी, वह यह थी कि जब वे इस संसार में नहीं हैं तो फिर कैसे स्वयंवर में आवेंगे और यदि आ गए तो कैसे मैं उनको पहचानूँगी। सुमति का कहना था कि देवयानी से यदि किसी देवता का विवाह होना है तो वह महादेव शिव से ही होगा। इस पर भी सुमति ने कहा —"पर सखि ! यह सब कुछ असत्य भी तो हो सकता है।"

"तो क्या तुम्हारी गणना भी असत्य हो सकती है ?"

"गणना में भूल की सम्भावना तो कम हो सकती है। फिर भी ज्योतिष एक निश्चित विज्ञान नहीं। इसमें कारण है। यह मनुष्यों के कर्म के विषय में है और मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। ज्योतिष का आधार है जन्म का समय। जन्मकाल में सूर्य, चन्द्र तथा अन्य नक्षत्र जिस राशि में होते हैं, वैसा ही पूर्व जन्म का भाग्य मानना चाहिए। वर्तमान जन्म के कर्म अनेकानेक परिस्थितियों पर निर्भर हैं। यही कारण है कि जन्मकुण्डली के आधार पर प्रतीत की गई घटनाएँ सर्वथा सिद्ध नहीं भी हो सकतीं। दृढ़ निश्चय वाला मनुष्य अपने भाग्य को बदल भी सकता है। इस विद्या का लाभ केवल यह है कि भविष्य की झाँकी प्राप्त कर मनुष्य अपने कार्यक्रम का निश्चय कर सकता है और दुर्भाग्य को, कम से कम कुछ सीमा तक, सौभाग्य में बदल सकता है। साथ ही सौभाग्य को अधिक उज्ज्वल कर सकता है।"

अपने कथन की पुष्टि में सुमति ने अपने विषय में बताया—"मैं तुमको अपने भविष्य के विषय में, जो कुछ जान सकी हूँ, यदि बता दूँ तो मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट हो जाएगा। मेरे गुरुजी ने, जिनसे मैं ज्योतिष सीखती थी, मेरी जन्मपत्री बनाई थी और उन्होंने देखकर बताया था कि मेरा विवाह किसी असुर से होगा। इसकी मुझको भारी चिन्ता लगी। मैं बहुत सावधानी से रहने लगी। उज्जयिनी एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त नगर है। सब देशों और जातियों के लोग वहाँ आते हैं और ज्ञानवृद्धि के लिए वहीं रहते हैं। मेरे सब प्रकार से बचे रहने पर भी एक नवयुवक मुझपर दृष्टि रखने लगा। पहले ही दिन जब मुझको उसके आचरण का ज्ञान हुआ, तो मैंने उससे उसकी जाति पूछी और उसकी जाति जानकर मैं वहाँ से भाग आई। अब मेरा प्रेम एक आर्य जाति के विद्वान् से हो गया है। वह तोखार (मध्य एशिया) का रहने वाला है और पिताजी से शिक्षा ग्रहण कर रहा है। वह मुझसे बहुत प्रेम करता है और मैं समझती हूँ कि यत्न करके मैंने अपना भाग्य बदल दिया है। यद्यपि विवाह के विषय में मैंने अपने माता-पिता की स्वीकृति नहीं माँगी परन्तु मुझे आशा है कि वे मान जाएँगे।"

इन विषयों के अतिरिक्त भी अन्य कई अन्तरंग विषयों पर दोनों सखियों में बात-चीत चलती रहती थी और धीरे-धीरे दोनों में घनिष्ठता बढ़ती गई। सुमति अपने भावी पति के विषय में भी देवयानी से बातें करती रहती थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमति का निर्वाचित युवक तुखार के एक महाविद्वान् परिवार का सदस्य था। ऋषि पाणिनी की ख्याति से आकर्षित हो, उनसे मीमांसा पढ़ने चक्रधरपुर में आया हुआ था। वह स्वयं संसार की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं का अध्ययन कर चुका था। उस भाषा से लेकर, जो पक्षियों के चित्रों में लिखी जाती थी, उन भाषाओं तक, जो रेखाओं के गुँझलों में लिखी जाती थीं, वह सब भाषाओं का अध्ययन कर चुका था।

गुरु से ज्ञान पाने के साथ-ही-साथ उसे गुरुगृह से सुमति भी प्राप्त हुई। उस विद्वान् युवक का नाम कल्लर था, जब सुमति उज्जयिनी से लौटी थी तब वह उसके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ था। इस पर भी एक वर्ष पर्यन्त वह अपने मन के भावों को उससे कह नहीं सका था।

वसन्त ऋतु का एक दिन था। पक्षी अपने जीवन-संगियों को बुलाने के लिए चहचहा रहे थे। पुष्प अपनी भीनी-भीनी सुगन्धि से मधुमक्खियों का आवाहन कर रहे थे। वृक्ष सुरक्षित वायु की मस्ती में झूल रहे थे। ऐसे समय में कल्लर के हृदय की भावना फूटकर प्रकट हो गई। उसने सुमति को मधुमती के तट पर एक पेड़ के नीचे खड़ी देखा। वह नदी के शीतल जल में नौकाओं का प्रवाहित होना देख रही थी। वहाँ खड़ी वह कल्लर को बहुत ही सुन्दर और आकर्षक लगी और वह उसके आकर्षण को छुपा नहीं सका। उसके समीप आ, वह बोल उठा—"सुमति! क्या तुम प्रकृति में चारों ओर जीवन प्रस्फुटित होता पाती हो? कोयल की कू-कू, चिड़ियों का चहचहाना, मक्खियों और भँवरों की भन-भन, ये सब नवजीवन के प्रतीक हैं। कैसा सुहावना समय है!"

सुमति कल्लर को इस प्रकार बातें करते देख विस्मित हुई। यह भी विख्यात था कि वह उसके पिता के सब विद्यार्थियों में से गम्भीर रहने वाला है। उसने कल्लर के मुख की ओर देखा तो उसकी आँखों को अपने पर गढ़ी देख सब कुछ समझ गई। उसमें युवकों की अपनी संगति पाने की स्वाभाविक पिपासा दिखाई देती थी। वह मुस्कराई और बोली—"नवजीवन तो कहीं दिखाई नहीं देता। यह तो वही पुरानी बात है जो प्रकृति वर्ष के पश्चात् वर्ष में करती आई है। लक्ष-लक्ष वर्षों में जो इस ऋतु में होता रहा है, ठीक वही आज भी हो रहा है। इसमें नवीनता कुछ नहीं।"

"ठीक है, फिर भी परिवर्तन तो है ही और क्या परिवर्तन ही जीवन नहीं है?"

सुमति पुनः गम्भीर हो गई। उसने अपने सामने जलप्रवाह को देखते हुए कहा—"मैं समझती हूँ कि अभी आपको बहुत कुछ सीखना है। परिवर्तनमात्र को जीवन नहीं कहते। जीवन तो प्रेरणा है, जो प्राकृतिक रूप में होने वाली घटनाओं पर राज्य करने की है। यह प्रकृति को युक्तिपूर्वक चुनौती है। नदी में जल के बहने को जीवन नहीं कहा जा सकता, यद्यपि परिवर्तन तो यह भी है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्लर निरुत्तर हो गया। सुमति की जीवन शब्द की मीमांसा विद्वत्तापूर्ण थी। वह सुमति के मुख को देखता हुआ नये शब्दों और नये वाक्यों की खोज कर रहा था, जिससे वह अपने मन के भाव प्रकट कर सके। उसकी समस्या को देख सुमति की हँसी फूट पड़ी और उसने कहा—"आपको घबराने की आवश्यकता नहीं। यह विषय व्याकरण से सम्बन्ध नहीं रखता। यह तो मनोविज्ञान का विषय है। आओ, किसी अन्य विषय पर बात करें, जिसको आप भलीभाँति जानते तथा समझते हों। मैं देख रही हूँ कि आज आपके मुख से वाणी का प्रस्फुटन हुआ है।"

इस पर कल्लर ने पुनः साहस बाँधकर कहा—"आप ठीक कहती हैं। मैं कहना चाहता था कि वसन्तकुसुम की भाँति आप भी स्वच्छ और सुन्दर दिखाई दे रही हैं।"

"और मधुमक्खी की भाँति आप आकर्षित हो आए हैं। ठीक है न?"

इस बात ने कल्लर को पुनः चुप और लज्जित करा दिया। सुमति का मुख मुस्कराया हुआ था, जिसने पुनः उसको कहने के लिए उत्साहित कर दिया। उसने साहस बाँधकर कहा—"मधुमक्खी! हाँ! नहीं। मधुमक्खी नहीं, प्रत्युत एक समझदार माली की भाँति जो फूलों के मूल्य को समझता है और जानता है कि भूमि में क्या खाद देनी चाहिए, जिससे फूलों में अधिकाधिक सुगन्धि हो सके।"

इस प्रकार भाषाओं के ज्ञाता को बात करने के लिए शब्द मिलने लगे और वह अपने हृदय के छुपे भाव प्रकट करने लगा—"इस सुन्दर पुष्पों से लदी वादी में अनेक कुसुम नित्य देखता हूँ, परन्तु जो कुछ मैंने तुममें देखा है, वह उन सबसे भिन्न है। कश्मीर की लड़कियों के नख-शिख, रूप-रंग और हाव-भाव प्रकट में तो सुन्दर हैं, परन्तु जो विशेष ओज और प्रतिभा और आँखों में ज्योति यहाँ देखता हूँ, यह अन्यत्र दिखाई नहीं देती।"

एक विदुषी लड़की से प्रेम प्रकट करना कठिन बात है, परन्तु कल्लर ने यह कार्य भलीभाँति सम्पादित किया और शीघ्र ही सम्बन्ध घना और अधिक घना होता गया। अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया कि माता-पिता की स्वीकृति के पश्चात् वे विवाहसूत्र में बँध जाएँगे। सुमति की माँ को उनके परस्पर सम्बन्ध का सन्देह हुआ तो उसने अपने पति से बात की। परिणाम यह हुआ कि देवयानी के स्वयंवर से पूर्व ही दोनों की सगाई हो गई।

एक दिन कल्लर और सुमति नौका में मधुमती पर विहार कर रहे थे कि दोनों में देवयानी के होने वाले स्वयंवर पर बात चल पड़ी। कल्लर ने सुमति से पूछा—"तुम अपनी सखी की जन्मकुण्डली क्यों नहीं देखतीं? वह किस प्रकार का पति पाने वाली है, उसको बता देतीं तो अच्छा रहता।"

वह हँसकर बोली—"मेरा विश्वास ज्योतिष पर से उठ गया है।"

"कब से?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब से मैंने आपको पाया है। मेरी जन्मकुण्डली में कुछ और ही लिखा है।"

इस बात से कल्लर की उत्सुकता बढ़ गई। उसने पूछा—"क्या लिखा है तुम्हारी कुण्डली में ?"

"मेरे गुरु महाराज ने, जो ज्योतिषशास्त्र के बहुत बड़े ज्ञाता हैं, मेरी कुण्डली में देखकर कहा था कि मेरा पति असुर होगा। मुझे विश्वास है कि आप असुर नहीं हैं।"

"कौन कह सकता है ? शायद पूर्वजन्म में मैं असुर रहा होऊँ।"

"परन्तु मैं तो आपसे इस जन्म में विवाह कर रही हूँ।"

"तब तो बहुत सचेत रहने की बात है। कहीं कोई असुर आकर तुम्हारा अपहरण न कर ले।"

"हाँ ! सतर्क रहने की आवश्यकता है। वास्तव में एक असुर से मेरा सम्पर्क हुआ था। वह लंका द्वीप का रहने वाला था और मैं उसको छोड़कर भाग आई हूँ।"

"पर वह तुम्हारा पीछा यहाँ तक भी तो कर सकता है। खैर, तुमने राजकुमारी की कुण्डली देखी तो होगी ?"

"हाँ, जन्मकुण्डली के अनुसार वह एक देवता की पत्नी बनने वाली है, परन्तु महाराज किसी भी देवता को निमन्त्रण नहीं भेज रहे।"

"देवताओं का पतन जो हो गया है आज !"

"राजकुमारी को महादेव के स्वप्न आते रहते हैं और वह चाहती है कि वे आकर उसको ले जाएँ।"

"तो क्या वे अभी जीवित हैं ?"

"किसी ने उनको मरते नहीं देखा। यह कहा जाता है कि वे और उनकी पत्नी पार्वती, चिरकाल हुआ, इस मृत्युलोक को छोड़कर चले गए थे।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी जन्मकुण्डली कुछ अनहोनी बात बताती है।"

"भगवान् जाने क्या होगा ! मेरी जन्मकुण्डली असत्य सिद्ध हो रही है और राजकुमारी की जन्मकुण्डली के सत्य सिद्ध होने की सम्भावना प्रतीत नहीं होती।"

: ८ :

स्वयंवर के लिए एक सौ एक निमन्त्रण भेजे गए थे और आमन्त्रित जनों ने देवयानी का चित्र देखा और उसकी योग्यता का विवरण पढ़ा तो मुग्ध हो गए। उस आमन्त्रण-पत्र के उत्तर में सब राजाओं और राजकुमारों ने अपने-अपने चित्र और अपने राज्य-सम्बन्धी विवरण भेजे।

नियत तिथि से पूर्व ही लोग चक्रधरपुर में आने लगे। प्रत्येक यही आशा करता था कि उसका वरण होगा, इसलिए अपने-अपने दल-बल साथ लाए थे। इन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सौ एक के साथ सहस्रों पुरुष तमाशा देखने के लिए एकत्रित हो गए। इस उत्सव पर एकत्रित जनों में सैकड़ों व्यापार करने के लिए भी आ पहुँचे। कश्मीर के प्राय: सभी प्रतिष्ठित जन इस आयोजन में महाराज को सहायता देने के लिए बुलाए गए। इन सब अभ्यागतों के साथ सहस्रों नौकर-चाकर सेवा के लिए आए।

सब अभ्यागतों के लिए विशेष घर निर्माण किए गए थे, जहाँ वे ठहराए गए। प्रत्येक आने वाले का नगरद्वार पर स्वागत किया गया और आदर-सहित उनको निर्धारित गृहों में ले जाया गया। देवनाम स्वयं उनके निवासस्थान पर गया और पश्चात् वे उससे मिलने के लिए आए। जब ये लोग महाराज देवनाम से मिलने के लिए आए तो देवयानी को पर्दे के पीछे से उनको देखने का अवसर मिला। उनके चित्र और उनके गुणों तथा उनके राज्यों का विवरण तो देवयानी के पास पहले ही पहुँच चुका था और वह उनका अध्ययन कर चुकी थी। अब उसने उनके चित्रों का उनके साथ मिलान किया।

सुमति के ज्योतिष के कारण देवयानी स्वयंवर में अधिक रुचि लेने लगी थी। फिर भी वहाँ इतना कुछ देखने को था और इतना कुछ विचार करने को था कि वह घबरा उठी और किसी निर्णय पर पहुँच नहीं सकी। वह एक वस्तु ढूंढ़ रही थी। वह समझती थी कि उसके स्वप्न-पुरुष का चित्र भी आना चाहिए। वह कहीं दिखाई नहीं दिया। इस समय देवर्षि नारद उससे मिलने आया। वह उसको देख मन में शान्ति अनुभव करने लगी और उनके पाँवों में जा पड़ी।

नारद ने उसको इतना अधीर देख पूछा—"क्या है देवयानी ?"

"देवर्षि ! यह जो चित्रों का ढेर लग गया है और विवरणात्मक पत्रों की पुस्तक-सी बन गई है, मैं इससे घबरा उठी हूँ। नहीं जानती कि मैं क्या करूँ। मेरी सखियाँ अपनी भिन्न-भिन्न सम्मति से मुझे पागल बना रही हैं। माता-पिता अभ्यागतों के स्वागत-सत्कार में संलग्न हैं और इस विषय में उन्होंने मुझे अकेला छोड़ दिया है।"

नारद ने उसको उठाया और देखा कि देवयानी के अविरल आँसू बह रहे हैं। उसने राजकुमारी के सिर पर प्यार देते हुए कहा—"मुझको यहाँ से गए हुए एक वर्ष होने वाला है। जाने से पूर्व मैंने वचन दिया था कि मैं समय पर आ जाऊँगा। सो आ गया हूँ। इस काल में मैं तुम्हारे ही काम में लगा हुआ था। सो आज रात को हम बैठेंगे और विचार करेंगे। हम अपनी बुद्धि तथा शक्ति अनुसार विचार कर ठीक ही कार्य करेंगे। तदनन्तर भगवान् के भरोसे अपनी नौका छोड़ देंगे।"

देवयानी के मन का बोझा कुछ हल्का हो गया। नारद के चले जाने के पश्चात् उसने अपने आगार को भीतर से बन्द कर चित्रों को पुनः देखना आरम्भ किया। बहुत से चित्र, जब उनका असल से मिलान किया गया, तो असत्य सिद्ध हुए। एक चित्र, जो कश्मीर के भूपति का था, देवयानी को कुछ देखा-भाला प्रतीत हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने उसके साथ आए विवरण को पढ़ा। उसमें केवल यह लिखा था—"विक्रम। आयु तेईस वर्ष, मृगया में रुचि रखने वाला। एक गाँव का स्वामी और दस सहस्र रजत वार्षिक की आय।"

देवयानी को इतना संक्षिप्त विवरण बहुत भला लगा। इसकी तुलना में अन्य लिखने वालों ने बीसियों पृष्ठ लिखे थे। इस विवरण से वह नहीं जान सकी कि पहले उसने उसको कहाँ देखा है।

सायं होने से पूर्व सुमति आई तो उससे उसने अपने चित्रों और विवरणों से उत्पन्न विचार बताए। सुमति स्वयं एक चित्र लेकर आई थी। उसने वह चित्र राजकुमारी को दिखाते हुए कहा—"सखि ! मैं समझती हूँ कि यह चित्र तुमको सबसे अधिक पसन्द आएगा।"

यह शिव का ताण्डव नृत्य करते हुए का चित्र था। देवयानी ने उसको देखकर पूछा—"कहाँ से मिला है तुमको यह ?"

"पिताजी का कोई परिचित दे गया है। वह यह कह गया है कि इसको आपके पास पहुँचा दिया जाए और कहला दिया जाए कि भगवान् स्वयं स्वयंवर में पधार रहे हैं।"

"तो क्या भगवान् के स्वर्ग सिधार जाने का समाचार असत्य है ?"

"मैं नहीं जानती। पिताजी भी, जितना मैंने बताया है, इससे अधिक नहीं जानते।"

"मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा। यह चित्र पिताजी के द्वारा आना चाहिए था। मैं उनकी स्वीकृति के बिना कुछ नहीं करूँगी। यह कुछ रहस्यमय बात प्रतीत होती है।"

सुमति इससे अधिक कुछ नहीं जानती थी। इस कारण वह चुप रही।

रात के समय देवयानी, उसके माता-पिता तथा देवर्षि नारद मन्त्रणा करने बैठे। इस समय सब चित्र देखे गए और उनके साथ आए विवरण पढ़े गए। उन पर नारद की सम्मति सुनी गई। देवयानी ने विक्रम के विषय में उससे पूछा। उसको बताया गया—"कश्मीर की सीमा के समीप, जो गान्धार की ओर है, उसकी भूमि है। एक बार इसके पितामह ने राज्य की कोई भारी सेवा की थी और उस सेवा के लिए उसको दो गाँव दिए गए थे। विक्रम के पितामह इस उपहार को अपर्याप्त मान रूठकर चले गए थे और तब से वे और उसके परिवार के लोग राज्य-सभा में नहीं आए। विक्रम के पिता एक बार सिंह का आखेट करते मारे गए। तब विक्रम बालकमात्र था। अब इस परिवार को राज्य के समीप लाने के लिए मैंने ही इसको निमन्त्रण भिजवाया है।"

"मुझको ये परिचित-से प्रतीत हो रहे हैं। कल वे पिताजी से मिलने आए थे। उनका स्वर और बोलने का ढंग भी जाना-बूझा प्रतीत हुआ है। मैंने समझा कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई सम्बन्धी होंगे।"

इस विचारगोष्ठी में देवयानी ने वह चित्र भी रखा जो सुमति दे गई थी। इस चित्र को देख नारद को अचम्भा हुआ। उसने पूछा—"यह कहाँ से आया है?"

"मेरी एक सखी सुमति दे गई है। उसके पिता ने यह कहला भेजा है कि ये स्वयंवर में आएँगे।"

"पर यह रूप तो महादेवजी का नहीं है। इसमें वह मस्ती नहीं जो उनमें होती थी। फिर यह आया कैसे और उन्होंने इसको महाराज के द्वारा क्यों नहीं भेजा? मुझको इसमें कुछ कपट प्रतीत होता है। यह सखी कौन है? इसके पिता का क्या नाम है?"

"आप तो इसको पहले भी देख चुके हैं। महर्षि पाणिनी की पुत्री है।"

"इस चित्र को लाने वाला कहाँ रहता है?"

"यह मेरी सखी नहीं जानती।"

"मैं उसके पिता से मिलकर कल पता करूंगा। मुझको यह लुकाव-छुपाव पसन्द नहीं है।"

इस विचारगोष्ठी में सब नामों में से पाँच के चित्र पृथक् कर लिए गए। उनमें एक विक्रम का भी था। इन पाँचों युवकों को अगले दिन भोजन पर आमन्त्रित किया गया और देवयानी द्वारा पर्दे के पीछे बैठकर इनके निरीक्षण करने का प्रबन्ध कर दिया गया।

उस रात देवयानी को पुनः स्वप्न आया। इसमें उसने योगेश्वर शिव को बहुत स्पष्ट रूप में देखा। उस रात वह उसको केवल दिखाई ही नहीं दिया प्रत्युत उससे कुछ बोला भी। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। फिर भी जो कुछ स्वप्न-पुरुष ने कहा उसका स्मरण देवयानी को नहीं रहा। उसने स्वयं पूछा—"क्या आप मुझको ग्रहण करेंगे?"

इसका उत्तर केवल एक मुस्कराहट थी। यह मुस्कुराहट इतनी मोहक थी कि वह अपने को उसके पाँव पड़ने से रोक नहीं सकी। जब वह पाँव से उठी तो वह अदृश्य हो चुका था। इस स्वप्न ने उसके मन में पुनः अपने इष्टदेव की स्मृति हरी-भरी कर दी, उसको ऐसा प्रतीत होता था।

अगले दिन नारद सुमति के पिता से मिलने गया। महर्षि अपने शिष्यों में बैठा ज्ञान-ध्यान की बातें कर रहा था। जब नारद आया तो ऋषि उसके स्वागतार्थ उठ खड़ा हुआ। सब शिष्य भी उठ खड़े हुए और दोनों ऋषियों के चारों ओर खड़े हो गए। साधारण आवभगत के पश्चात् नारद ने वहाँ आने का उद्देश्य वर्णन कर दिया। उसने कहा—"भगवन्! आपकी पुत्री ने कल राजकुमारी देवयानी को एक चित्र दिया था। मैं यह जानने आया हूँ कि वह आपको किसने दिया है? वह चित्र महादेव शिव का-सा है परन्तु, जहाँ तक मुझको उनकी रूपरेखा का स्मरण है, यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका प्रतीत नहीं होता।"

महर्षि ने कहा—"तीन दिन हुए, एक पुरुष मेरे पास आया था। उसने यह चित्र देकर कहा था कि मैं अपनी पुत्री द्वारा इसे राजकुमारी के पास भिजवा दूँ। उसको विदित था कि सुमति राजकुमारी की प्रिय सखी है। उसने एक मौखिक सन्देश भी दिया था कि जिसका यह चित्र है वह स्वयं भी स्वयंवर में आवेगा। अतएव मैंने वह चित्र और सन्देश भिजवा दिया था।"

"आप उस पुरुष को जानते हैं?"

"केवल इतना ही कि मैंने उसको कुछ दिन पूर्व अपने होने वाले जामाता के साथ देखा था।"

"मैं आपके जामाता से मिलना चाहता हूँ।"

कल्लर उस समय शिष्यों में उपस्थित था। नारद उसको एक ओर ले गया और उससे पूछने लगा—"इस व्यक्ति से आपका परिचय किस प्रकार हुआ था?"

कल्लर कुछ घबरा-सा गया और पूछने लगा—"क्या दुर्घटना हो गई भगवन्?"

"पहले तुम बताओ कि तुम्हारी इस व्यक्ति के साथ क्या-क्या बातचीत हुई है। पश्चात् मैं इस विषय में कुछ बता सकूँगा।"

कल्लर ने बताया—"एक दिन नदी में नाव चलाकर लौट रहा था जब मैंने उसको पहली बार देखा था। मैं और सुमति दोनों थे। उसने हमारा पीछा किया। जब हम मन्दिर में प्रवेश कर रहे थे तो कुछ मित्रों ने मुझको द्वार पर रोक लिया। वे मुझसे अपने किसी वादविवाद में सम्मति चाहते थे। इस समय उस पीछा करने वाले व्यक्ति ने समीप आकर कहा—'मैं आपसे एकान्त में कुछ बात करना चाहता हूँ।'

"मैं पुनः उसके साथ नदी की ओर लौट गया। मार्ग में उसने पूछा—'यह आपके साथ राजकन्या थी क्या?'

"मैं हँस पड़ा और मैंने सुमति का नाम-धाम बताया। तब उसने कहा कि यह राजकुमारी की परम सखी होगी।

"मैंने जब स्वीकार किया तो उसने कहा कि कल राजघाट पर दो युवतियाँ नौका पर जा रही थीं। किसी ने मुझको वहाँ बताया कि उनमें एक राजकुमारी है। उनमें एक यह लड़की थी। इस कारण मैंने पूछा है। क्षमा करना। शायद यह आपकी बहन है?

"मैंने उसको बताया कि नहीं, यह मेरी भावी पत्नी है।

"उसने कहा कि वह एक राजकुमार का सचिव है। उसके स्वामी स्वयंवर पर आने वाले हैं। उन्होंने उसे राजकुमारी के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए पहले भेज दिया है। यदि मैं इसमें उसकी सहायता करूँ तो वह मुझको भारी लाभ पहुँचाएगा।

"मैंने पूछा कि वह क्या जानकारी चाहता है तो उसने मुझसे बहुत प्रश्न पूछे। उनमें कोई ऐसी बात नहीं थी जिसको मैं छुपाने की आवश्यकता समझता।"

नारद ने पूछा—"क्या आप राजकुमारी के स्वप्नों के विषय में जानते हैं?"

इस समय कल्लर ने कुछ चिन्तित होकर कहा—"हाँ, मुझको सुमति ने बताया था।"

"और यह स्वप्नों की बात तुमने राजकुमारी के उस तथाकथित सचिव से बताई थी?"

कल्लर झूठ नहीं बोल सका। उसने कहा—"हाँ, यह बात भी बताई थी।"

नारद को, जो कुछ वह जानना चाहता था, पता चल गया था। वह बिना किसी से कुछ कहे लौट आया और अपने मन में सचेत रहने का निर्णय कर चुप रहा।

मध्याह्न के भोजन के समय स्वयंवर पर आए अभ्यागतों में से पाँच निर्वाचितों को निमन्त्रण था। वे आए तो नारद ने उनसे बहुत विस्तार से बातचीत की। इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि विषयों पर एक लम्बा वार्त्तालाप हुआ। जब तक भोजन हुआ, वे बातें करते रहे और देवयानी पर्दे के पीछे छुपकर देखती और सुनती रही। उनको विशेष बुलाने के विषय में बताया गया कि उनके परिवार का देवनाम के परिवार से पूर्व सम्बन्ध होने से यह विशेष बुलाने का आयोजन किया गया है। सब आमन्त्रित पूर्णतया सन्तुष्ट होकर लौटे।

सायंकाल पुनः देवयानी के साथ विचार-विमर्श के लिए गोष्ठी हुई। महाराज देवनाम ने सुमति के चित्र लाने के विषय में जाँच का परिणाम पूछा। नारद ने अपने मन की बात नहीं बताई। उसने केवल यह कहा—"मैं उस व्यक्ति को मिल नहीं सका। अभी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतनी बात स्पष्ट है कि कोई भी हो, उसके जीवन का विवरण और चित्र महाराज द्वारा ही आना चाहिए था।"

इस गोष्ठी में बहुत समय तक बातचीत हुई और परिणामस्वरूप विक्रम को वर के योग्य माना गया। महाराज ने विक्रम के सरल विवरण को बहुत पसन्द किया। देवयानी ने उसके वीरतापूर्ण वार्त्तालाप को बहुत सराहा और महारानी ने उसके चक्रधरपुर के समीप रहने को गुण माना। नारद ने उसके इतिहास और पुराण के ज्ञान की सराहना की। फिर भी सब कुछ देवयानी की स्वयंवर के समय की अन्तिम इच्छा पर छोड़ दिया। तत्पश्चात् वार्त्तालाप पुनः देवयानी के स्वप्नों पर चल पड़ा। देवयानी ने बताया कि उसे पिछली रात को बहुत ही विचित्र स्वप्न दिखाई दिया है। उसको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे कहीं समीप ही हैं। फिर भी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपना विचार बताया कि उनको उसके पिताजी से मिलना चाहिए था।

उस दिन फिर यह घोषणा करवा दी गई कि यदि कोई राजकुमार आज भी अपना आत्म-विवरण तथा चित्र भिजवा देगा तो उसको भी महाराज की ओर से स्वयंवर में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिल जाएगा। देवयानी को इस घोषणा का पता था और उसको यह भी विदित था कि कोई उस घोषणा के कारण नहीं आया।

देवयानी अपने पूर्व संस्कारों के कारण महादेव शिव पर मुग्ध थी और जब उस ज्योतिर्मय रूप-छवि का चिन्तन करती थी तब उसको सब कुछ फीका प्रतीत होने लगा था। फिर भी वह यह समझती थी कि स्वयंवर का अर्थ ही यह है कि वे यहाँ पधारें, जिससे वह उनके गले में जयमाला डाल सके। इस स्वप्न की बात छोड़कर उसको सबसे अधिक विक्रम पसन्द था, और जब उसके माता-पिता और देवर्षि ने भी उसको ही पसन्द किया, तो वह पहले से अधिक सन्तुष्ट और शान्तचित्त थी।

देवनाम ने नगर की रक्षा और स्वयंवर के शान्तिपूर्वक सम्पन्न होने के लिए सेना की एक प्रबल टुकड़ी को नियुक्त कर रखा था। स्वयंवर के लिए निर्मित मण्डप चारों ओर से भलीभाँति रक्षित किया गया था। साथ ही नगर-भर में स्थान-स्थान पर सैनिक खड़े थे।

देवयानी को उस रात पुनः स्वप्न आया। आज शिव पार्वतीसहित प्रकट हुए थे। एक बात विचित्र थी और वह यह कि देवयानी पार्वती को अपने रूप में ही देख रही थी। यह देख वह काँप उठी और स्वप्न भंग हो गया। उसके मन में अनेक बातें थीं, जो इन स्वप्नों के कारण उसके मन में बार-बार आ रही थीं।

स्वयंवर के दिन जब वह अपने दैनिक कार्य से निवृत्त हुई तो उसकी सखियाँ आ गईं और उसको कपड़े पहनाकर तैयार करने लगीं। जब सुमति आई, तब देवयानी लगभग तैयार हो चुकी थी। वह उससे पृथक् में बातचीत करना चाहती थी, परन्तु अन्य सखियाँ उसको छोड़ नहीं रही थीं। बहुत ही कठिनाई से देवयानी को अवसर मिला। कुछ वस्तु अपने शयनागार में भूल आने का बहाना कर, वह वहाँ गई और सुमति को अपने साथ ले गई। अन्दर पहुँच उसने भीतर से द्वार बन्द कर लिया और सुमति से पूछा—"उस चित्र का कुछ और पता मिला?"

सुमति के पास बताने के लिए कोई समाचार नहीं था। उसने केवल यह कहा—"ये स्वप्न तो कभी-कभी स्वभाव से आने लगते हैं। इनके लिए तुम अपनी बुद्धि का प्रयोग छोड़ नहीं सकतीं।"

"अब मैं मण्डप में जा रही हूँ। मैं चाहती थी कि यदि इस चित्र में कुछ भी यथार्थता होती तो उनको अपने यहाँ होने की सूचना देनी चाहिए थी।"

"राजकुमारी!" सुमति ने कहा—"स्वप्नलोक को छोड़ वास्तविकता में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचरना बुद्धिमत्ता के लक्षण हैं। जो प्राप्य है उसको छोड़कर अनिश्चित के पीछे भागना मूर्खता है। यही कारण है मैं ज्योतिष में विश्वास छोड़ अपने पुरुषार्थ और बुद्धि में विश्वास करने लगी हूँ।"

दोनों शयनागार से बाहर आईं और सखियों में जा पहुँचीं। वहाँ से वे सखियों से घिरी हुई स्वयंवर मण्डप की ओर चल पड़ीं।

: ६ :

इस समय स्वयंवर का पूर्वकार्य आरम्भ हो गया था। सवा सौ ब्राह्मणों ने यज्ञ आरम्भ कर दिया था। सामगान हो रहा था। साथ-साथ हवन किया जा रहा था। सबके सब स्वयंवर के लिए आमन्त्रित राजा-महाराजा अपने-अपने विशेष कर्मचारियों सहित सिंहासन के दाहिनी ओर विराजमान थे। राजकुमारी द्वारा वरे जाने के इच्छुक राजा तथा राजकुमार प्रथम पंक्ति में उच्च आसनों पर आसीन थे और उनके सेवक उनके पीछे बैठे थे। सिंहासन पर महाराज तथा महारानी के लिए आसन था, परन्तु अभी वे भी यज्ञ पर बैठे थे, जो मण्डप के मध्य में भूमि पर ही हो रहा था। ये तथा महाराज के सम्बन्धी तथा कर्मचारी वेदी पर पूर्वाभिमुख बैठे थे और जो ब्राह्मण यज्ञ करवा रहे थे, वेदी पर पश्चिमाभिमुख आसीन थे। स्वयंवर देखने के लिए आए दर्शक सिंहासन के सम्मुख यज्ञवेदी के पास बैठे तथा खड़े थे। मण्डप के बाहर तथा भीतर भारी संख्या में सैनिक नियुक्त थे।

सिंहासन के बाईं ओर उसके कुछ नीचे देवयानी के लिए आसन था और उसके साथ एक और रिक्त आसन था। सिंहासन के पीछे स्त्रियों के लिए स्थान था।

जब देवयानी वहाँ पहुँची तो यज्ञ की पूर्णाहुति पड़ रही थी। देवयानी पूर्णाहुति दे रहे अपने माता-पिता के पीछे आकर खड़ी हो गई।

यज्ञ समाप्त हो गया। महाराज, महारानी और देवयानी अपने-अपने स्थानों पर जाकर बैठ गए। नारद, जो यज्ञ में ब्राह्मणों के साथ था, उठकर देवयानी के बाईं ओर रिक्त आसन के पीछे खड़ा हो गया। अन्य ब्राह्मण वेदी पर से उठकर मण्डप के बाईं ओर अपने लिए निश्चित स्थान पर जा बैठे।

इस समय तक सब अपने-अपने आसनों पर चले गए थे। सब देवयानी की ओर देख रहे थे और वह आँखें नीचे किए महारानी के बाईं ओर बैठी थी। जब से देवयानी मण्डप में आई थी सब अवाक् मुख उसके अतुल सौन्दर्य को देखने में लीन थे और मण्डप में ऐसी शांति स्थापित हो गई थी, मानो कोई सम्मोहन मन्त्र चला रहा हो। देवयानी की गतिविधि और चपलता देख सब 'वाह-वाह' कर रहे थे।

देवयानी के लिए अपना वर चुनने का समय आ गया और सब उत्सुकता से देख रहे थे कि यह कार्य आरम्भ होकर कैसे समाप्त होता है। पूर्व इसके कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमारी उठकर अपने चुने हुए व्यक्ति को जयमाल पहनाए, महाराज देवनाम खड़ा हो गया और उपस्थित समाज से निवेदन करने लगा। उसने कहा—"मान्यगण ! मैं आप सबका आभारी हूँ कि आपने मेरे इस निमन्त्रण को स्वीकार कर मेरे राज्य को पवित्र किया है। मैं आपका हृदय से स्वागत करता हूँ।

"हमारी संस्कृति ने अपने स्त्री-वर्ग को यह अद्वितीय अवसर दिया है कि उसको अपना पति वरने की पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता है। अतएव मैंने अपनी पुत्री राजकुमारी देवयानी को यह अवसर प्राप्त होने देने के लिए इस स्वयंवर का आयोजन किया है। इसमें मैंने देशभर से बहुत से राजकुमार और राजाओं को निमन्त्रण दिया है। आप सब लोग आए हैं, यह आपकी कृपा है।

"अब मैं राजकुमारी देवयानी से निवेदन करूँगा कि वह आमन्त्रित महानुभावों में से अपना वर चुनें। उसके चुनाव में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। न ही इसमें किसी प्रकार की शर्त लगाई गई है। इस विषय में उसको पूर्ण स्वतन्त्रता है। मेरा निवेदन है कि यहाँ जितने भी महानुभाव उपस्थित हैं, सब उसकी इच्छा का आदर करेंगे। भगवान् की कृपा से मैं उसकी इच्छाओं की पूर्ति करा सकने और उसकी रक्षा कर सकने की सब प्रकार से शक्ति रखता हूँ।

"सब उपस्थितगण एक सभ्य समाज के सदस्य हैं और स्त्रियों का हमारे हृदय में इतना आदर है कि हममें से प्रत्येक उपस्थित जन स्त्रियों की इच्छा और उनके मनोभावों का आदर और रक्षा करता है।

"जब राजकुमारी की इच्छा का पता चल जाएगा, तब मैं और उसकी माता उसके चुने हुए पुरुष से उनका विवाह कर देंगे। यह संस्कार आज रात्रि को ही सम्पन्न होगा।"

देवनाम इतना कहकर सिंहासन पर बैठ गया। मण्डप का वायुमण्डल आशा और उत्सुकता से एक खिंचाव की अवस्था में हो गया। देवयानी ने अपनी सखी के हाथों से गुलाव के पुष्पों से घनी गुथी हुई माला ले ली और आसन से उठ खड़ी हुई। आमन्त्रित दर्शकों और सज्जनों में सबकी दृष्टि उसकी ओर उठ गई। वे सब राजकुमारी की छोटी से छोटी चेष्टा को भी ध्यानपूर्वक देखने लगे।

देवयानी ने माला लेकर सबसे पूर्व देवर्षि नारद को प्रणाम किया। पश्चात् उसने अपने माता-पिता की वन्दना की। तत्पश्चात् अधरों पर मधुर मुस्कान लिये आमन्त्रित राजाओं-महाराजाओं की ओर चल पड़ी। प्रथम बार वह सब आमंत्रितों के आगे से निकल गई। प्रत्येक के सन्मुख किंचित्मात्र शीश नवा और मुस्कराकर वह आगे बढ़ जाती। इस प्रकार पूर्ण चक्कर काटकर वह पुनः अपने स्थान पर लौट आई। तदनन्तर उसने दूसरी बार माला हाथ में लिये प्रस्थान किया। इस बार उसके मुख पर मुस्कराहट नहीं थी। मुख पर गाम्भीर्य धारण कर दृढ़ता से पग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती हुई वह एक-एक कर आमन्त्रितों के आगे से गुजरती गई। जिस-जिसके आगे से वह निकल जाती थी उस-उसका मुख निराशा से विवर्ण होता जाता था। चलते-चलते वह एक के समक्ष खड़ी हो गई। वह व्यक्ति पहले चक्कर में वहाँ नहीं था। उसका रूप भगवान् शिव का-सा था। देवयानी ने देखा। वही जटाजूट-धारी, सर्पों की माला पहने, जटाओं में चन्द्राकार मणि-माणिक्य-जड़ित भूषण लगाए बैठा था। फणदार सर्प, जो उसके गले में लटक रहे थे, फूत्कार करते हुए देवयानी की ओर देख रहे थे। देवयानी ने आँखें मूँद अपने स्वप्न-पुरुष से उसका मिलान किया। उसने अनुभव किया कि वह तेज और सम्मोहन शक्ति में, जो उस के स्वप्न-पुरुष में थी, बहुत हीन था। उसकी रूपरेखा को अपने हृदय में स्थित मूर्ति से मिलाने के लिए उसने पुनः आँखें मूँदीं। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि यह वह व्यक्ति नहीं है, परन्तु सुमति की भविष्यवाणी और उस चित्र का, जो सुमति लाई थी, आना उसको प्रेरणा दे रहा था कि उसका वर यही है।

नारद ने देवयानी को एक स्थान पर खड़े होकर विचार करते देख ध्यान से उस व्यक्ति को देखा। दूर से ही शिव की रूपरेखा के पुरुष को देख वह भाँप गया कि इसमें कुछ धोखा है। वह उठकर उस स्थान पर आ, देवयानी के पीछे खड़ा हो, शिव का स्वाँग किए, नहुष को पहचान गया।

देवयानी ने मन कड़ा कर जब दूसरी बार आँखें खोलीं तो शिव के मायावी रूप में नहुष ने माला स्वीकार करने के लिए शीश झुका दिया। देवयानी ने भी माला डालने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। इसी समय नारद ने अपना हाथ उसके कन्धे पर रखा और कहा—"देवयानी, यह तुम्हारा इष्टदेव नहीं। यह मायावी नहुष है, जिसने देवलोक पर धोखे से राज्य प्राप्त किया है।"

देवयानी ने तुरन्त माला पीछे कर ली और उसको पुनः ध्यान से देखा। इस बार उसको स्पष्ट दिखाई पड़ा कि उसकी जटाएँ इत्यादि कृत्रिम हैं। उसने मन में भगवान् का ध्यान किया और कृतज्ञता-भरी दृष्टि से नारद की ओर देखा। नारद ने देवयानी का विवर्ण मुख देखकर कहा—"अपना कार्य समाप्त करो बेटी!"

देवयानी ने आगे बढ़ने के लिए अपना पग उठाया तो नहुष को क्रोध चढ़ आया। उसने जटाएँ इत्यादि उतारकर फेंक दीं और लपककर देवयानी को उठा कन्धे पर डाल लिया और उसे लेकर वह भागने लगा।

नहुष के सैनिक साधारण वस्त्रों में उसके पीछे खड़े थे। उन्होंने,अपने खड्ग नंगे कर लिए और नहुष तथा देवयानी को चारों ओर से घेर लिया। इस घेरे में घिरा नहुष मण्डप के द्वार की ओर चल पड़ा।

पूर्ण मण्डप में हाहाकार मच गया। दर्शक एक ओर हट गए। आमन्त्रित राजा-महाराजा किंकर्तव्यविमूढ़ एक ओर खड़े हो गए। द्वार पर कश्मीर के सैनिकों ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग रोक लिया और अन्य सैनिक जो मण्डप में खड़े थे, खड्गें निकाल देवयानी को छुड़ाने के लिए गान्धार-सैनिकों के घेरे पर टूट पड़े। युद्ध की यह अवस्था देख देवनाम भी अपनी खड्ग निकालकर नहुष की ओर लपका।

यह सब कुछ घटने पर भी नहुष के सिपाही पग-पग मण्डप के द्वार की ओर बढ़ ही रहे थे। नहुष के नाम का आतंक भी मण्डप में छा गया था। लोग जानते थे कि वह महाबली पुरुष है और इस आतंक-भाव से लाभ उठा गान्धार-सैनिक कश्मीर के सैनिकों को पछाड़ रहे थे। इस पर भी देवनाम जी तोड़कर लड़ रहा था।

नहुष का पूर्ण प्रयत्न इस बात के लिए था कि वह शीघ्रातिशीघ्र मण्डप से बाहर निकल जाए। बाहर उसके सहस्रों सैनिक देवयानी को लेकर भाग जाने का प्रबन्ध किए हुए थे। अब बाहर खड़े गान्धार-सैनिक मण्डप के द्वार पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लेने का यत्न करने लगे थे। वह अपने सिपाहियों को पुकार-पुकारकर कह रहा था—"द्वार की ओर बढ़ो।" उसको विश्वास था कि एक बार वह द्वार के बाहर पहुँच गया, तो उसके लिए देवयानी का अपहरण सुगम हो जाएगा।

कश्मीरी सैनिक लड़ रहे थे, परन्तु उनके शारीरिक बल के सामने गाजर-मूली की भाँति कट रहे थे। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि दो-चार पल में देवयानी का अपहरण हो जाएगा। देवयानी नहुष के कन्धे पर लटकी हुई हाथ-पाँव मार रही थी, परन्तु नहुष की लौहरूप सुदृढ़ भुजाओं में सिंह के मुख में हिरनी की भाँति फँसी हुई छटपटा रही थी।

यह दृश्य देख विक्रम का खून खौल उठा। वह अपने स्थान से उठा और खड्ग निकालकर नहुष को ललकारकर बोला—"छोड़ो राजकुमारी को। पापी! दुष्ट!" और वह लपककर नहुष के सैनिकों तथा मण्डप के द्वार के बीच जा पहुँचा। वह देख रहा था कि कश्मीर-सैनिकों का बल उस ओर कम हो रहा है। विक्रम के समीप बैठे अन्य राजाओं-महाराजाओं ने कहा भी—"यह तुम्हारा काम नहीं युवक! यहाँ के महाराज को इस परिस्थिति की पहले ही आशा करनी चाहिए थी और उसका प्रबन्ध पहले ही कर लेना चाहिए था।"

परन्तु विक्रम के मन में तो वह उत्साह समा रहा था, जो मृगया के समय उस में आ जाया करता था। उसके मन में आत्मगौरव की भावना जाग उठी थी। वह विचार कर रहा था कि कश्मीर की राजकुमारी को विदेशी उठाकर ले जाए, यह कश्मीर के प्रत्येक युवक के लिए लज्जा की बात है। इस भावना से प्रेरित वह इस युद्ध में ऐसे कूद पड़ा जैसे वह जंगल में सिंह का मुकाबला करने के लिए कूद पड़ा करता था।

विक्रम की ललकार सुन नहुष खिलखिलाकर हँस पड़ा और अपने सैनिकों से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिरस्कार के भाव में बोला—"इस मच्छर को मसल डालो।"

पर हुआ इसके विपरीत। नहुष की गति द्वार की ओर अवरुद्ध हो गई। विक्रम की तीक्ष्ण खड्ग ने वहाँ का पर्याप्त मैदान खाली कर दिया और रिक्त स्थान में कश्मीर के सैनिक आ डटे। इसके साथ ही यह हुआ कि गान्धार-सैनिकों के भारी संख्या में घायल अथवा मृत्यु के घाट उतारे जाने से विक्रम और नहुष आमने-सामने हो गए। नहुष के हाथ देवयानी को सँभालने में लगे थे, परन्तु अब इस चुनौती देने वाले को सामने देख उसने देवयानी को कन्धे से उतार भूमि पर खड़ा कर, अपना बायाँ हाथ उसकी कमर में डाल उसको पकड़ रखा और दाहिने हाथ में खड्ग निकाल विक्रम से लड़ने लगा। विक्रम के दो ही तीन वार झेलकर नहुष को पता चल गया कि उसका पाला किसी नौसिखिए से नहीं पड़ा। उसका प्रतिद्वन्द्वी युद्धकला में अति कुशल व्यक्ति है। इस कारण अपने शरीर का सन्तुलन ठीक रखने के लिए उसको देवयानी की कमर से हाथ हटाना पड़ा। इससे देवयानी को स्वतन्त्र होने का मौका मिल गया। इससे लाभ उठाकर उसने एक मृत सैनिक का भूमि पर पड़ा खड्ग ले लिया और उसे चलाती हुई अपने पिता की ओर अपना मार्ग बनाने लगी।

मंडप-भर में इस नई परिस्थिति के विषय में रुचि उत्पन्न होने लगी। देवयानी अपने मान और जीवन के लिए लड़ रही थी। दूसरी ओर देवनाम अपने सैनिकों के साथ देवयानी तक पहुँचने का यत्न कर रहा था। देवयानी को चंडी भवानी की भाँति खड्ग चलाते देख गान्धार-सैनिकों के छक्के छूट गए और इससे संग्राम का अन्त हो गया। देवयानी जब अपने पिता के निकट पहुँची तो नारद उसको महारानी के समीप ले गया और बहुत से सैनिक नंगी तलवारें लिये उसके चारों ओर घेरा डालकर खड़े हो गए।

नहुष ने जब प्रतिकूल परिस्थिति देखी तो युद्ध को व्यर्थ मान उसने हथियार डाल दिए। विक्रम ने उसकी खड्ग छीन ली और नहुष को बन्दी बना लिया। गान्धार-सैनिकों ने भी अपने को बन्दी बन जाने दिया। नहुष के बन्दी होने का समाचार बाहर पहुँचा तो वहाँ भी गान्धार-सैनिकों ने हथियार डाल दिए।

नहुष का प्रयास विफल गया। इसमें बहुत सीमा तक विक्रम का श्रेय था। देवयानी ने यह देखा था। विक्रम के चपल हाथों को लम्बी तलवार से गान्धार-सैनिकों का काम तमाम करते सबने देखा था। अनायास दर्शकों के मुख से विक्रम का जयघोष निकल पड़ा—"जय हो वीर विक्रम की, जय हो।"

देवनाम ने जब युद्ध शान्त देखा तो सिंहासन के समीप खड़े होकर उपस्थित जनों को भी शान्त कराया। इस समय नहुष के हाथ-पाँव बाँध उसे महाराज के सामने खड़ा कर दिया गया।

महाराज देवनाम ने सभा के शान्त हो जाने पर घोषणा की—"मैं समझता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि स्वयंवर का शेष कार्य चालू होना चाहिए। इसको अब स्थगित नहीं किया जा सकता। राजकुमारी वर चुनने के लिए आ रही हैं।"

विक्रम के बाएँ बाज़ू पर घाव आ गया था और उस पर पट्टी बाँध वह पुनः अपने स्थान पर आ गया था। देवयानी ने नई पुष्प-माला ली और इस बार वह सीधी उस स्थान पर पहुँची जहाँ विक्रम बैठा था। देवयानी के वहाँ पहुँचने पर विक्रम समझ गया। वह उठा और उसने मुस्कराकर माला लेने के लिए शीश झुका दिया। देवयानी ने विक्रम के गले में माला डालकर और झुककर उसके चरण स्पर्श किए। इसे देख पुनः मंडप में देवयानी और विक्रम का जयघोष होने लगा। इस पर देवनाम अपने स्थान से चलकर विक्रम के पास आया और दोनों हाथों से उसको पकड़कर आदरसहित सिंहासन के पास ले गया। देवयानी के आसन के पास रिक्त आसन पर उसको बैठा दिया।

महाराज ने सभा में उपस्थित जनों को सम्बोधन कर कहा—"सभ्यगण ! मैं आप सबका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। आमन्त्रित राजाओं-महाराजाओं का मैं आभारी हूँ। कभी भी किसी भी कार्य में कश्मीर उनकी सेवा के लिए तैयार रहेगा। आप सबने देखा है कि राजकुमारी ने श्री विक्रम को वरमाला पहनाई है। मैंने उसके निर्णय को स्वीकार कर लिया है और उसको अपने सुपुत्र समान आदर सहित यहाँ बैठाया है। इनका विवाह आज सायंकाल यहाँ सम्पन्न होगा और मैं आप सबको उसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण देता हूँ। विवाहोपरान्त होने वाले भोज में आप सम्मिलित होकर मुझको कृतार्थ करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

"अब इस बन्दी के विषय में, जो आपके सम्मुख खड़ा है, निर्णय भी मैं आपके सम्मुख कर देना चाहता हूँ। आप सबने इसके अपराध को देखा है।"

महाराज ने उससे पूछा, "क्यों बन्दी महोदय ! तुम कौन हो ?"

"मैं देवलोक का विजेता नहुष हूँ। मैं वह हूँ जिसने सुरराज इन्द्र को बन्दी बनाया हुआ है।"

"तुमने यह अपराध क्यों किया ? यह हमारे राज्य में धर्मविरुद्ध माना जाता है।"

"मैंने जो कुछ किया है वह मेरे अपने समाज में प्रचलित धर्म के विरुद्ध नहीं। मैंने अपने यहाँ का धर्म पालन किया है।"

"तुमको यह विदित होना चाहिए कि तुम अपने राज्य में नहीं हो।"

"परन्तु देवनाम ! तुमने मुझको निमन्त्रण न भेजकर मेरा अपमान किया है। मैं तुम्हारा पड़ोसी हूँ। साथ ही तुम्हारे क्रीतदास नारद ने राजकुमारी के निर्णय को बदल दिया और उसके पूर्ण होने में बाधा डाली। वह मेरे गले में वरमाला डालने वाली थी। उसने उसको मना कर दिया। यह न्यायसंगत नहीं हुआ। तुमने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह घोषणा की थी कि लड़की को वरने में स्वतन्त्रता होगी, परन्तु मैंने देखा कि उसको स्वतन्त्रता नहीं थी।"

"मेरे निमन्त्रण न देने के विषय में यह बात तुम्हारे ध्यान में होनी चाहिए कि तुम्हारी सेना ने दो बार कश्मीर पर आक्रमण किया था। यद्यपि तुम इन आक्रमणों में सफल नहीं हुए तो भी तुम्हारा यह कार्य शत्रुता का था। मैं अपनी लड़की के स्वयंवर पर अपने शत्रु को नहीं बुला सकता था। राजकुमारी को आमन्त्रित जनों में से ही वर चुनने की स्वतन्त्रता थी। अन्यथा स्वयंवर-आयोजन की अपेक्षा उसे संसार में भ्रमण कर वर ढूँढ़ने की स्वतन्त्रता दी जाती।

"अतएव मेरे निमन्त्रण न भेजने में प्रबल कारण हैं। तुम मेरे पड़ोसी होते हुए भी मेरे शत्रु हो, परन्तु तुम्हारा निमन्त्रण के बिना आना और फिर तुम्हारा अपने स्वाभाविक रूप में न आकर मायावी रूप बनाकर यहाँ बैठना अपराध है। देवर्षि नारद के तुम्हारे धोखे के प्रकट कर देने पर देवयानी का तुमको वरमाल पहनाने से इन्कार कर देना स्वाभाविक ही था। तुम्हारा उसको बलपूर्वक अपहरण करने का यत्न एक भारी अपराध है।"

"क्या दण्ड दोगे तुम मुझको ?"

"जो भी दण्ड यहाँ उपस्थित भाई-बन्धु तुम्हारे लिए उचित समझेंगे। इन्होंने सब कुछ स्वयं देखा है।"

नहुष ने वहाँ उपस्थित राजाओं-महाराजाओं से कहा—"भाइयो ! आप क्या कहते हैं ? यदि मैं अपने प्रयास में सफल हो जाता तो आप मेरे शौर्य और चतुराई की प्रशंसा करते। दुर्भाग्य से यह वीर पुरुष मेरी गणना में नहीं था। इस योद्धा ने युद्ध का पाँसा पलट दिया है। इस कारण इस वीर की तो प्रशंसा करता हूँ, परन्तु इससे मुझमें कौन-सा दोष आ गया है ? केवलमात्र हार जाने से ही तो कोई निन्दनीय नहीं हो जाता।"

अब विक्रम अपने आसन से उठकर कहने लगा—"मैं अपनी प्रशंसा के लिए बन्दी का धन्यवाद करता हूँ। परन्तु मैं उसकी युक्ति से सहमत नहीं हूँ। केवल मात्र शौर्य तो मूर्खों की दृष्टि में ही प्रशंसा का कारण हो सकता है। शौर्यप्रदर्शन में उद्देश्य मुख्य है। यदि राम के स्थान पर रावण की विजय हो जाती तो वह प्रशंसनीय न होता। इससे जनता के मन में उल्लास उत्पन्न नहीं होता। एक अपहरण की गई स्त्री को छुड़ा सकना जनता की दृष्टि में सराहनीय हुआ है।

"मैं महाराज को यह सम्मति दूंगा कि बन्दी को आज मेरे विवाह की प्रसन्नता में छोड़ दिया जाय। मैं फिर किसी दिन इससे लोहा लेने का विचार रखता हूँ। मैं जानता हूँ इस व्यक्ति ने सभ्य समाज के आचरण के विरुद्ध व्यवहार किया है। फिर भी मेरा निवेदन है कि इसको मेरे ऊपर छोड़ दिया जाए। इसको यहाँ दण्ड मिल जाने पर मेरे पास इसको दण्ड देने का कोई अवसर नहीं रह जाएगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब लोग इस उदारता को देख 'वाह ! वाह!' करने लगे। सब जहाँ विक्रम की बहादुरी की प्रशंसा करते थे वहाँ इस उदारता की भी मुक्तकंठ से सराहना करने लगे।

नारद विक्रम की इस दया से विचलित हो उठा। वह समझ रहा था कि नहुष अपने जाल में फँस गया है और उसको यहाँ बन्दी बना रखने से देवलोक परतन्त्रता के बन्धन से शीघ्र ही मुक्त हो सकेगा। इस कारण वह विक्रम की उदारता से असंतुष्ट था। फिर भी वह जानता था कि महाराज देवनाम अपने जामाता की प्रथम इच्छा को ठुकराना उचित नहीं समझेंगे।

नारद विवश हो गया और देवनाम ने उठकर आज्ञा दे दी—"मैं अपने जामाता की पहली इच्छा को अस्वीकार नहीं कर सकता। इस कारण मैं नहुष को कश्मीर की सीमा के पार ले जाकर मुक्त कर देने की आज्ञा देता हूँ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

"यदि मैं नहुष के पंजे से तुम्हारा उद्धार करने के लिए आगे न आता तो मुझे तुमसे विवाह का सौभाग्य प्राप्त न होता।" विक्रम और देवयानी जब रथ में बैठे स्वयंवर तथा विवाह के पश्चात् अपने घर को जा रहे थे तब विक्रम उससे कह रहा था।

"आप यह ठीक कहते हैं। फिर भी मैंने आपके अतिरिक्त और किसी को भी जयमाला नहीं डाली।"

"परन्तु तुम नहुष के गले में जयमाल डालने ही वाली थीं।"

"उसने मायावी रूप बनाकर मुझको भ्रम में डाल दिया था। मैं समझती हूँ कि मुझे आपको अपना रहस्य बता देना चाहिए। मुझे उसे कहने में कोई लज्जा प्रतीत नहीं होती। फिर भी इससे आपके मन में यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि किस कारण से मैं उसके गले में जयमाला डालने जा रही थी।

"पिछले कई वर्षों से मुझे स्वप्नों में भगवान् शिव के दर्शन होते रहे हैं। वे इस प्रकार प्रकट होते रहे हैं कि मैं उनसे प्रेम करने लगी हूँ। यह रहस्य मेरे माता-पिता और देवर्षि नारद को विदित है। उन्होंने मुझको बताया कि यह मेरे मन का भ्रम है। कारण यह कि भगवान् शिव का देहान्त हुए चिरकाल हो चुका है। देवर्षि की राय से मैं स्वयंवर करने के लिए तैयार हुई थी और जीवनभर कुँवारी रहने का विचार छोड़ दिया था। फिर भी भगवान् के दर्शन स्वप्नों में होते रहे। मैं उन्हें अपने मस्तिष्क से निकाल नहीं सकी।

"स्वयंवर से पूर्व जब मैंने आपका चित्र देखा तो कुछ आपका रूप मुझको जाना-बूझा प्रतीत हुआ। जब आप पहली बार पिताजी से मिलने आए थे तो मैं पर्दे के पीछे बैठी आने वालों को देख रही थी। मैं आपको देख चकित रह गई। ऐसा प्रतीत हुआ कि आप मेरे बचपन के परिचित हैं। यही कारण था कि मेरे कहने पर पिताजी ने दूसरे दिन पुनः आपको भोजन के लिए आमन्त्रित किया, और मेरे मन में आपको ही वरने का निश्चय हो चुका था। परन्तु जब मैंने नहुष के उस मायावी रूप को देखा तो अपने स्वप्नों के संस्कारों के कारण मैं विचलित हो चली थी। भगवान् का धन्यवाद है कि देवर्षि उसके कृत्रिम रूप को पहचान गए और समय पर सचेत करने के लिए पास आ गए। उसके पश्चात् क्या हुआ, श्रीमान् जी जानते ही हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब बातों के होने पर भी श्रीमान् मुझको एक पतिव्रता सती साध्वी पत्नी के रूप में पाएँगे।"

विक्रम यह कथा सुन चकित रह गया और विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। देवयानी ने समझा कि उसकी कथा का विक्रम पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी उसको अपने मन की बात बता देने में शोक नहीं हुआ। वह चाहती थी कि उनको सचाई का ज्ञान हो जाए। विवाहित जीवन के आरम्भ से ही वह परस्पर दोनों के मन में कोई भेद-भाव नहीं रहने देना चाहती थी; परन्तु जब उसने अपने पति को चुपचाप अपनी ओर देखते पाया तो उसके मन में एक प्रकार का भय-सा समा गया। उसके मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई और वह उसके निवारण का उपाय सोचने लगी। इस कारण उसने पूछा—"श्रीमान्! क्या मैंने कोई बुरी बात कही है? यदि ऐसा है तो मैं क्षमा-याचना करती हूँ। स्वामी! क्या यह ठीक नहीं कि पति-पत्नी में कोई लुकाव-छिपाव नहीं होना चाहिए? इसी विचार से मैंने अपने मन की बात खोलकर रख दी है, जिससे मेरे शरीर और आत्मा के प्रति प्रभु को कभी यह कहने का अवसर न मिले कि मैंने कुछ बात उनसे छुपाकर रखी हुई है। सत्य का ज्ञान हो जाने से एक-दूसरे को समझने में सुभीता रहेगा। इससे हमारा जीवन सुखी रहेगा और आनन्दपूर्वक व्यतीत होगा।" इतना कहकर उसने अपने पति के चरणों को स्पर्श किया।

विक्रम ने उसको प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"मुझको तुम्हारी कथा पर इतना विस्मय नहीं हुआ, जितना अपने अनुभवों का स्मरण हुआ है। सुनो! मुझको भी बचपन में एक सुन्दर लड़की के स्वप्न आते रहे हैं। और यह जानकर तुमको विस्मय होगा कि मेरी स्वप्नों की लड़की का रूप तुम्हारे चित्र में मिला था, जो चित्र तुम्हारे पिता ने निमंत्रण के साथ भेजा था। दोनों सर्वथा समान थे। स्वयंवर के विषय में मैंने निमंत्रण से पूर्व भी सुना था, परन्तु यहाँ आने को मन नहीं कर रहा था। मुझको भय था कि बहुत छोटा भूपति होने के कारण तुम्हारी दृष्टि में जचूँगा ही नहीं। मेरी माताजी ने बताया था कि मेरे बाबा कश्मीर राज्य से लड़कर चले आए थे, इस कारण राज्य में किसी प्रकार का मान पाने की भी आशा नहीं थी। परन्तु जब देखा कि तुम मेरे स्वप्नों की रानी हो, तो माँ तथा अन्य सम्बन्धियों के मना करने पर भी स्वयंवर में आ पहुँचा। जब महाराज का स्वयंवर से एक दिन पूर्व भोज के लिए निमन्त्रण मिला, तो चकित रह गया। आशा करता था कि तुम्हारे दर्शन होंगे, परन्तु हुआ देवर्षि से वादविवाद। मैं निराश लौटा। स्वयंवर के समय जब नहुष तुम्हारा अपहरण करने लगा तो मैं समझ गया कि मेरा अवसर आ गया है। अपने समीप बैठे साथियों के मना करने पर भी मैं कूद पड़ा और नहुष से दो-दो हाथ करने के लिए उसके सामने जा पहुँचा।

"मेरी प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं रहा, जब नहुष बन्दी बना लिया गया और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमने आकर जयमाल मेरे गले में डाल दी। उस समय मेरे सामने पूर्ण दृश्य धुँधला-सा हो गया। जो कुछ भी हुआ वह इतना आनन्दोत्पादक तथा अनहोना था कि मेरे मन में किसी के बीच में पड़ कर सब कुछ बदल देने का भय आ गया था।"

देवयानी को यह कथा सुन अति विस्मय हुआ। दोनों के स्वप्नों में समता से उसके मन में अनेकानेक अन्य विचार उत्पन्न होने लगे। उसके आनन्द का पारावार नहीं रहा और उसकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। उसने आँसू पोंछते हुए कहा—

"इससे तो यह पता चलता है कि हम अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के बल से एक-दूसरे के लिए ही बने थे। कोई अज्ञात शक्ति थी जो हम दोनों को खींचकर इकट्ठा कर रही थी। मनुष्य उस शक्ति का विरोध नहीं कर सका और हम यहाँ पहुँच गए हैं। इससे तो मुझको और भी प्रेरणा मिलेगी, जिससे मैं आपकी सेवा-भक्ति और भी श्रद्धा से कर सकूँगी।"

विक्रम की माँ ने बहू को देखा तो बहुत प्रसन्न हुई। उसने बहू को गले लगाया और उसे अपने लड़के के आगार में ले गई। पड़ोस की स्त्रियाँ आईं और विक्रम की बहू का सौन्दर्य देख चकित रह गईं। किसी को स्वप्न में भी वह विचार नहीं आया था कि विक्रम का रूप इतना आकर्षक है कि महाराज-कश्मीर की राजकुमारी उसको वरेगी।

माँ पुत्र को एक ओर ले जाकर पूछने लगी—"बेटा, यह कैसे हो गया है? कैसे तुम्हें इतनी सुन्दर बहू प्राप्त हो गई? महाराज-कश्मीर तो हमारे परिवार से असन्तुष्ट थे।"

"माँ! मैं नहीं जानता।" उसने आँखें चरणों में झुकाकर कहा—"यह सब तुम्हारे आशीर्वाद के प्रताप से हुआ प्रतीत होता है। कुछ थोड़ी लड़ाई करनी पड़ी थी और शौर्य तथा शिक्षा, जो तुमने मुझको दी हुई हैं, मेरी सहायक सिद्ध हुई हैं।"

पुत्र के लिए उन्नति के इस नए द्वार के खुल जाने से माँ का हृदय गद्‌गद हो उठा। आज तक वह उस छोटे से गाँव में अपना जीवन व्यर्थ गँवा रहा था।

एक दिन देवयानी ने अपने पिता की कठिनाई का वर्णन किया कि उनका कोई पुत्र न होने से वे राज्य का कार्यभार किसे सौंपें? साथ ही उसने अपने पति से चक्रधरपुर चलकर पिताजी को राज्य के कठिन कार्य में सहायता देने की प्रार्थना की। उसने अपने पिता को भी लिख दिया कि अपने जामाता को चक्रधरपुर आने का निमन्त्रण दें और उससे राज्य के कार्य में सहायता लें।

इस प्रकार अपने जन्म-स्थान पर कई मास तक रहने के पश्चात् विक्रम देवयानी सहित चक्रधरपुर के लिए तैयार हो गया। इस बार उसने अपनी माता को भी चलने के लिए कहा, परन्तु माँ ने एकदम अस्वीकार कर दिया। माँ ने कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जहाँ मेरे पति ने अपना अन्तिम श्वास छोड़ा था, मैं वहीं पर मरना चाहती हूँ।"

देवयानी ने भी अपनी सास को अपने साथ ले चलने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उसने कह दिया—"बेटी! मुझको अति प्रसन्नता है कि तुम मेरे पुत्र की देखभाल कर रही हो। मुझको तुम पर पूर्ण विश्वास है। मैं जानती हूँ कि तुम अपने पति का कहीं पर भी अपमान नहीं होने दोगी। उसकी मान-प्रतिष्ठा से ही तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा होगी। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। जाओ! वीर धीमान् और चतुर पुत्रों की माँ बनो, जो तुम्हारे पति का नाम संसारभर में विख्यात करें।"

देवयानी का विश्वास था कि नहुष अपने अपमान का बदला अवश्य लेगा। इस कारण वह उत्सुक थी कि शीघ्रातिशीघ्र कश्मीर की रक्षा का प्रबन्ध किया जाए। वह चाहती थी कि विक्रम इस कार्य में उसके पिता का साथ दे।

विक्रम चक्रधरपुर पहुँचा तो देवनाम ने उसको सेनापति का पद दे दिया। यह काम विक्रम को अति रुचिकर था और वह सेना के पुनः संगठन और उसमें परिवर्द्धन करने के लिए जी-जान से लग गया। उसने गुप्तचरों का एक दल भी संगठित किया जो देवलोक, गान्धार और ब्रह्मावर्त में जाकर वहाँ की सैनिक स्थिति का भेद लेकर उसके पास भेजने लगा। इस प्रकार उसने कश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बना डाला।

: २ :

देवलोक हिमालय की ऊँचाइयों पर और उसके पार ऊँचे पठार पर स्थित था। कश्मीर से पूर्व-उत्तर की ओर जाने से इस देश में प्रवेश पाया जा सकता था। यह वादियों की एक शृंखला थी जिसको ऊँचे पर्वत एक-दूसरे से पृथक् करते थे। अन्तिम महाप्लावन के पूर्व से ही देवता इस स्थान पर रहते थे और स्थान की ऊँचाई के कारण प्लावन में बहने से बच गए। प्लावन के समय उन वादियों का तापमान साधारण था, परन्तु प्लावन के पश्चात् भौगोलिक परिस्थितियों के बदल जाने से और समुद्र के दूर चले जाने के कारण यह स्थान धीरे-धीरे शीतप्रधान होता गया। देवताओं की बुद्धि और उनका प्लावन-पूर्व के विद्वानों से प्राप्त हुआ ज्ञान लाखों वर्षों के मनुष्य के अनुभव का निचोड़ था। इस अपार ज्ञान के कारण ज्यों-ज्यों उनके देश में शीत बढ़ती गई, वे अपने विज्ञान के बल से देशभर के तापमान को जीवन के लिए अनुकूल अवस्था में रखते रहे।

उनको पूर्ण देश का तापमान साधारण रखना था, जिससे वे वहाँ आनन्द से रह सकें। इसके लिए उनको शक्ति का अतुल भण्डार चाहिए था और इस शक्ति को उन्होंने प्रकृति के गर्भ से प्राप्त किया, जहाँ वह सुषुप्त अवस्था में विद्यमान थी। देवता उसके अस्तित्व को जानते थे और उसे प्रकृति से बाहर निकालने का उपाय भी जानते थे। उन्होंने उसको एकत्रित किया और इस शक्ति का प्रयोग उन्होंने जीवन को सुलभ और सुगम बनाने में लगाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति अपनी आदि अवस्था में शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आदि प्रकृति के तीन रूप सत्, रज और तम जब तक संतुलित अवस्था में रहते हैं तब तक प्रकृति में परिवर्तन नहीं हो पाता। जब यह सन्तुलन टूटता है तब गति अर्थात् परिवर्तन उत्पन्न होता है और संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं। संसार में प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है। कुछ पदार्थों में यह परिवर्तन द्रुत गति से होता है और कुछ में अत्यन्त धीमी गति से। अधिक पदार्थों में, जो इस संसार में स्थाई-से प्रतीत होते हैं, यह परिवर्तन अति धीमी गति से हो रहा होता है।

जब पदार्थ में परिवर्तन होता है तो उसमें संचित शक्ति किसी एक रूप में प्रकट होती है। इस शक्ति का प्रवाह पदार्थों के परिवर्तन की गति के अनुसार होता है। जहाँ गति तीव्र होती है वहाँ शक्ति प्रचुर मात्रा में निकलती है। जहाँ गति धीमी होती है वहाँ शक्ति भी कम मात्रा से निकलती दिखाई देती है। देवताओं की चतुराई इसमें थी कि वे एक स्थाई पदार्थ को लेकर उसमें परिवर्तन की गति को तीव्र कर सकते थे और उसमें शक्ति को एक धारा के रूप में प्राप्त कर सकते थे। शक्ति की इस धारा को वे अपने देश को उष्ण रखने में प्रयोग करते थे। देश को प्रकाशमय करने में, खेतों में उपज बढ़ाने में और अपने यन्त्रादि चलाने में भी वे इस शक्ति धारा का प्रयोग जानते थे।

कुछ पदार्थों में वे इस परिवर्तन की गति को इतना तीव्र कर सकते थे कि शक्ति इतनी अधिक मात्रा में एकदम निकलती थी कि यह भयंकर विस्फोट का रूप धारण कर सकती थी। इससे वे अपने शत्रुओं का नाश कर सकते थे।

पहाड़ियों की चोटियों पर उन्होंने शक्तिप्रसारक यन्त्र लगाए थे, जिनसे देश का पूर्ण वायुमण्डल रहने योग्य उष्ण बना रहता था। यह शक्तिप्रसारक यन्त्र महल की छत पर लगा था जिसका चालन इन्द्र स्वयं करता था।

पारद स्थाई पदार्थ है। फिर भी इसमें अन्य संसार के पदार्थों की भाँति सत्, रज और तम सन्तुलन में नहीं और इसमें परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन इतनी धीमी गति से हो रहा है कि सहस्रों वर्षों में भी इसमें एक प्रतिशत भी विघटन दिखाई नहीं देता। देवताओं ने पारद को जीवित करने का उपाय जान लिया था। यह जीवित पारद एक विशेष गति से विघटित होने लगता था जिससे शक्ति एक धारा में उपलब्ध होने लगती थी। बहुत कम पारद से अतुल शक्ति उपलब्ध हो सकती थी। इस प्रकार एक 'भरी' पारद पूर्ण देवलोक को एक वर्ष तक उष्ण, प्रकाश-मय और हरा-भरा रखने के लिए पर्याप्त हो जाता था। आधी 'भरी' भर पारद को विघटित करने से एक इतना भयंकर विस्फोट हो सकता था कि पूरी की पूरी अमरावती चूर-चूर हो सके।

यह अपार शक्ति का स्रोत इन्द्र ने अपने ही हाथ में रखा था। पारद को जीवित करने का रहस्य उसको ही विदित था और यन्त्र के विघटित होने से शक्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा रूप में बहने लगती थी। वह यन्त्र उसके महल में ही लगा था। देवलोक में पारद-विघटन के सिद्धान्त को तो प्रायः सब देवता विद्वान् जानते थे, परन्तु उस यन्त्रादि का रहस्य, जिनके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता था, इन्द्र, उसकी पत्नी शची और कुछ सीमा तक देवपितामह ब्रह्मा को ही विदित था।

इस प्रकार सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गए थे और देवलोक के लोग प्रकृति के प्रतिकूल होने पर भी जीवन की सब आवश्यकताओं को इस जीवित पारद की सहायता से प्राप्त करते रहते थे। यन्त्रादि इतने सुचारु रूप से कार्य करते थे कि इस यन्त्रादि को चलाने के लिए इन्द्र को किसी अन्य व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती थी और पूर्ण देशभर में जीवन-सामग्री उपलब्ध कराने के लिए दो-चार सौ व्यक्तियों को ही कुछ घण्टे दिन में कार्य करना पड़ता था। शेष जनता का कार्य खाना, पीना, आनन्द-भोग करना मात्र रह गया था। देवताओं में कुछ लोग तो ज्ञानप्राप्ति में लगे हुए थे। ये आत्मा, परमात्मा, कर्म, मोक्ष, ध्यान, समाधि इत्यादि विषयों की खोज में लगे रहते थे, परन्तु इस ज्ञान की सीमा थी, कुछ दूर जाकर उनके आगे पर्दा आ जाता था, जिसको हटा सकना असम्भव था। शेष जनता नाच-रंग, भोग-विलास और सुख-साधना में लगी थी।

देवासुर संग्रामों में मानवों की सहायता से अपने शत्रुओं को परास्त कर देवता सुख-वासना में फँस गए और जीवन की आवश्यकताओं को अनायास पा सकने के कारण आलस्य तथा प्रमाद में पड़ पतन की ओर अग्रसर हो गए। मानवों के ब्रह्मावर्त आदि देशों में आने के समय देवताओं में प्रजातन्त्रात्मक राज्यसत्ता थी, परन्तु जब ये लोग निर्भय हुए और इनका जीवन-भोग सुखद और सुलभ हो गया तो इन्होंने राज्यकार्य सभी इन्द्र के हाथ में सौंपकर उस ओर ध्यान करना छोड़ दिया। इन्द्र को भी कुछ अधिक नहीं करना पड़ता था। अपने प्रासाद में बैठे-बैठे यन्त्र का चालन ही उसका कार्य था, शेष राब स्वयमेव चलता रहता था। खाने-पहनने में कमी नहीं थी, इस कारण प्रयास करने की किसी को आवश्यकता अनुभव नहीं होती थी।

स्त्री-पुरुषों की संख्या विशेष अनुपात में रखना राज्य में शान्ति रखने का प्रमुख उपाय था। इन्द्र यह विद्या जानता था। उत्पन्न बच्चों में आवश्यकतानुसार लिंग-परिवर्तन किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, गर्भवती स्त्रियों में स्वेच्छा से लड़कियाँ अथवा लड़के कैसे हो सकते हैं, इसका ज्ञान भी प्रयोग में लाया जाता था। देश में सुख और शान्ति के लिए लड़कियों की संख्या लड़कों से ड्योढ़ी रखी जाती थी। जब भी इसमें अन्तर पड़ता दिखाई देता था इस अनुपात को ठीक कर लिया जाता था।

देवता अपने देश की सुरक्षा में भी यत्नशील थे। परन्तु यह कार्य भी इन्द्र के हाथ में था। उसने अपने प्रासाद में दूरदर्शक यन्त्र लगाए हुए थे जो देश की सीमाओं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समाचार लाते रहते थे और यदि कोई सेना आक्रमण करती दिखाई देती तो इन्द्र अपने निवासस्थान में बैठा-बैठा ही सेना का विध्वंस कर सकता था।

भोजन, वसन और गृहों का प्रबन्ध हो जाने पर और सुख-प्रसाधन उपलब्ध होने पर देवता प्रमादी और आलसी हो गए और इसी कारण उनका पतन हो गया।

नहुष के पहले भी अनेक लोगों ने इस सुख-सुविधा से परिपूर्ण देश को विजय कर अपना राज्य स्थापित करने का यत्न किया था, परन्तु सबने मुँह की खाई थी। वे सीमा पार करते ही विध्वंस कर दिए गए थे। नहुष ने यह सब कुछ सुन रखा था और उसने देवताओं की इस शक्ति का रहस्य जानना प्रथम कार्य समझा। वह अकेला अमरावती में आया और इन्द्र के भवन में रहने वालों से सम्पर्क स्थापित करने लगा।

इन्द्र-भवन के निवासियों से सम्पर्क स्थापित करने में वह सफल हो गया। उसने भवन में बहुत से रहने वालों से मैत्री कर ली थी। धीरे-धीरे वह भवन के सेवकों में से एक हो गया। वह शारीरिक शक्ति विशेष मात्रा में रखता था। हृष्ट-पुष्ट होने से और लम्बा कद रखने से स्त्रियों का वह प्रिय था। इन्द्र का भवन नर्तकियों से भरा रहता था। नहुष की उनमें विशेष प्रतिष्ठा थी। महल में दिन-रात नृत्य-गान होता रहता था। मृदंग-वीणा की ध्वनि से इसके आगार गूँजते रहते थे। कथावाचक तथा नाटककार अपनी-अपनी कला की धूम मचाए रखते थे। पाचकों की भी वहाँ भरमार रहती थी, जो नित नए पकवान बनाते रहते थे।

एक बार जो इस भवन में प्रवेश कर गया, वह मानो नवीन जगत् में जा पहुँचा और तदनन्तर उसकी बाहर आने की इच्छा नहीं रहती थी। उसकी सब इच्छाएँ और कामनाएँ पूर्ण होती रहती थीं। नहुष भी भारी प्रलोभनों में फँस जाता यदि उसके मस्तिष्क में यह बात न समा गई होती कि उसे तो इस सब वैभव पर अधिकार प्राप्त करना है। इससे वह भवन के प्रलोभनों से निर्लिप्त रहने का प्रयत्न करता रहता था।

कई वर्ष के प्रयत्न करने पर जितना कुछ जानना सम्भव था, वह समझ गया। वह यह जान गया था कि इन्द्र यहाँ पर सर्वेसर्वा है और यदि वह उस पर अधिकार कर ले तो पूर्ण देश उसके पाँव तले पिस जाएगा। बहुत सोच-विचारकर उसने एक योजना बना डाली।

वर्ष में एक बार वसन्तोत्सव के समय देवता मदमत्त हो, उत्सव मनाने को मानसरोवर के किनारे एकत्रित हो जाते थे और चौबीस घण्टे के आनन्द-विलास के पश्चात् अपने-अपने घरों को लौटते थे। नहुष ने इस अवसर को अपनी योजना की धुरि बना डाला।

वसन्तोत्सव चैत्र मास की एक नियत तिथि को मनाया जाता था। नहुष को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका ज्ञान हो गया। इसके छः मास पूर्व उसने अपनी योजना को कार्यान्वित कर दिया। लगभग एक सौ साथियों को उसने अपने देश से बुला लिया। वे एक-एक दो-दो कर वहाँ आ गए और कई तरह के बहाने बना वहाँ रहने लगे। एक सेना, जिसमें पचास सहस्र सैनिक थे, अपने एक मित्र करण की सहायता से उसने तैयार कर ली। इस सेना को उसने वसन्तोत्सव से पहली रात को सीमा पार करने की आज्ञा भेज दी। स्वयं वह अपने दो मित्रों के साथ अमरावती में रहने लगा।

इस उत्सव में इन्द्र और इन्द्राणी विशेष रूप से भाग लेते थे। अनुभव से तथा लोगों से पूछकर नहुष उस दिन के उनके कार्यक्रम को भलीभाँति जान गया था। उसकी योजना यह थी कि उस दिन वह अपने एक सौ सैनिकों की सहायता से इन्द्र और इन्द्राणी को शक्ति के केन्द्रित यन्त्रालय से पृथक् रखे और सीमापार खड़ी उसकी सेना द्रुतगामी तुरंगों पर सवार होकर अमरावती पर चढ़ आए और इस पर अधिकार जमा ले।

नहुष नाचने गाने वाली अप्सराओं से बहुत पसन्द किया जाता था और वह उनके लिए छोटे-मोटे अनेक कार्य करता रहता था। इस कारण जब वसन्तोत्सव के लिए, नियत तिथि से एक दिन पूर्व, इन्द्र से लेकर उसके भवन के छोटे-मोटे सेवक तक उत्सव के लिए तैयार हुए तो नहुष की बहुत माँग थी। इस पर वह अपने दो सेवकों के साथ इन्द्र के मनोरंजन करने वालों की मण्डली में उत्सव को चल पड़ा। अमरावती के पूर्ण नगरवासी, केवल रोगियों और वृद्धों को छोड़ शेष सब, उत्सव से पूर्व मध्याह्न को ही घरों से चल पड़े थे। इन्द्र और इन्द्राणी भी अपने रथ में सवार हो अपने भवन से निकले और उन्होंने उत्सव की ओर प्रस्थान कर दिया।

इन्द्र के दल के लोग सायंकाल मानसरोवर के तट पर पहुँच गए और सहस्रों नर-नारी वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे। सब खुले मैदान में रात व्यतीत करने का प्रबन्ध कर चुके थे। इन्द्र के लिए विशाल और सुन्दर निवास-शिविर बनाया गया था। रात के भोजन के पश्चात् वीणा की मधुर ध्वनि से भरे वायुमण्डल में और सुरभित माधवी की मस्ती में अति सुख और शान्ति की निद्रा पूर्ण उत्सव में छा गई। नहुष की योजना इस रात और अगले दिन पर ही निर्भर थी। इस कारण चिन्ता और उत्सुकता के कारण वह रातभर शिविर के बाहर बेचैनी से बैठा रहा। वह देख रहा था कि अमरावती से या सीमा से कोई समाचार आता है अथवा नहीं। कोई सूचना कहीं से नहीं आई। उत्सव के दिन की पहली रात अति आनन्द से व्यतीत हुई।

: ३ :

अमरावती में भास्कर नाम का एक मल्ल योद्धा रहता था। वह देवलोक में सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति था। उसका जीवन-कार्य ही व्यायाम करना और खाना-पीना था। प्रायः नित्य ब्राह्म मुहूर्त में जागकर शौचादि से निवृत्त हो अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखाड़े में चला जाया करता और सूर्योदय से व्यायाम आरम्भ कर देता। यह व्यायाम वह निरन्तर सूर्य के सिर पर आ जाने तक करता। इस काल में उसके शरीर पर से पसीना छूटकर भूमि को गीला कर देता था।

मध्याह्न के समय वह व्यायाम बन्द करता और उसके शिष्य उसका बदन पोंछ कर सुखा देते। वह स्नान करता और पश्चात् भोजन के लिए घर जा पहुँचता। उस का दोपहर का भोजन मध्याह्नोपरान्त आरम्भ होता और तीसरे पहर के अन्त तक चलता रहता। दस सेर दूध, दो सेर मलाई, एक बालटी भर उबली सब्जियाँ और एक ऊँचा ढेर रोटियों का उसका इस समय का खाना था। इसको धीरे-धीरे चबा-कर खाकर वह सुरापान आरम्भ करता। कटोरे पर कटोरे सुरुकियाँ लगाकर पी जाता। इस प्रकार सायंकाल हो जाता और अब उसका रात का भोजन आरम्भ हो जाता। इसमें फल और मांस ही वह खाता। प्रायः हिरण का मांस ही उसको प्रिय था। रात का भोजन समाप्त कर वह तीन प्रहर गहरी नींद सोता।

भास्कर की पत्नी का नाम मिलिन्द था। भास्कर स्वयं तो साढ़े पाँच हाथ ऊँचा और विशालकाय था परन्तु उसकी पत्नी दुबली-पतली स्त्री थी। भास्कर की दो लड़कियाँ थीं, आशा और कृपा। दोनों अपनी माँ के समान सुन्दर थीं। परिवार अति प्रसन्न था। भास्कर सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहता। मिलिन्द घर के काम-काज में व्यस्त रहती। आशा तथा कृपा नृत्य और संगीत सीखती थीं।

भास्कर के कोई लड़का नहीं था और इसका अभाव माँ और बहिनों को खलता था। यही एक बात थी जो कभी दुःख का कारण बन जाती थी। ऐसे अवसरों पर मिलिन्द अपने पति से खीझकर कह देती—"इतनी भोजन-सामग्री को व्यर्थ करने से क्या लाभ, यदि तुम मुझको एक पुत्र भी नहीं दे सकते ?"

"मैंने तुमको दो लड़कियाँ दी हैं। क्या तुम इनके लिए कृतज्ञ नहीं हो ?"

"दो चुहियाँ इतने बड़े पहाड़ में से ? लज्जा नहीं आती कहते हुए ?"

"तो भी देवलोक में वे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ हैं।"

"मुझको इससे क्या ? सौभाग्य उनको जिनसे उनका विवाह होगा। किसी विपत्ति के समय आश्रय होने के स्थान ये मुसीबत बन जाएँगी। यदि तुमने मुझको अपने समान एक पुत्र दिया होता तो बुरे दिनों में वह हमारा आश्रय तो होता।"

"कितनी मूर्ख हो तुम!" भास्कर ने अभिमान से सिर ऊँचा करते हुए कहा—"देवलोक में बुरे दिन की बात कैसे कर सकती हो तुम ? क्या विपत्ति आ सकती है यहाँ ? इस देश की ओर कौन दृष्टि कर सकता है ? परमात्मा भी यहाँ मुसीबत भेजने से पूर्व कई बार सोचेगा। हमने प्रकृति पर, जो भगवान् ब्रह्मा की पत्नी है, विजय प्राप्त कर ली है। क्या तुम नहीं जानतीं कि आँधी, वर्षा, भूचाल और बाढ़ इत्यादि प्राकृतिक उपद्रवों पर इन्द्र का साम्राज्य है ? वह बलशालियों से महाबली है। अपनी तर्जनी को उठाकर वह शत्रुओं को भस्म कर सकता है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब सत्य था। मिलिन्द यह सब कुछ जानती थी और इससे इन्कार नहीं कर सकती थी।

इस पर भी विपत्ति आई। इन अभिमानी बेकार देवताओं की जाति पर दुःख और क्लेश के बादल घिर आए। जब सब वसन्तोत्सव मना रहे थे, दूर पश्चिम की ओर से पचास सहस्र सैनिकों की सेना चुपचाप देवलोक में घुसी चली आ रही थी और अमरावती में उसी दिन पहुँचने की दौड़ लगाए हुए थी।

भास्कर भी उत्सव में गया था। उसका भी वहाँ कार्यक्रम था। प्रातः प्रसन्न और चपल इन्द्र उठा और शौचादि से छुट्टी पा उत्सव में शामिल हो गया। इन्द्र और शची यज्ञ में सम्मिलित हुए। सहस्रों ऋषि और पुरोहित बैठे सामवेद का गान कर रहे थे और एक वृहत् यज्ञ किया जा रहा था। यज्ञ के पश्चात् प्रातः का भोजन हुआ और उसके पश्चात् शारीरिक प्रतियोगिता हुई। इसमें भास्कर की शक्ति का प्रदर्शन भी हुआ। एक सौ सुदृढ़ पहलवान एकदम उस पर छोड़ दिए गए। दो लाख जनता के सामने देखते-देखते भास्कर ने उन सौ पहलवानों को गिरा कर मात कर दिया तो जनता ने 'साधु ! साधु' कह उसकी प्रशंसा की। शची ने मुक्ताहार दे उसको सम्मानित किया। इस पर भास्कर ने अपने कन्धों पर पचास पुरुषों को उठाकर, अखाड़े में घूमकर दिखाया।

शारीरिक प्रतियोगिता समाप्त हो जाने पर मध्याह्न का भोजन हुआ। पश्चात् दो मुहूर्त भर विश्राम कर पूर्ण उत्सव में नाच, रंग, संगीत इत्यादि का कार्यक्रम आरम्भ हो गया। सहस्रों स्थानों पर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्रम चल रहा था। इन्द्र और शची अनेक स्थानों पर इस कार्यक्रम को देखने गए और जहाँ-जहाँ कुछ विशेषता देखी वहीं पर पुरस्कार दिया। इस प्रकार सायंकाल हो गया। तत्पश्चात् फिर भोजन हुआ और रात को इन्द्र के शिविर में उसकी अपनी नाटक मण्डली द्वारा नाटक खेला गया। खुले मैदान में सहस्रों नर-नारियों ने नृत्य किया और फिर पीछे नाटक हुआ, जो मध्य रात्रि तक चलता रहा।

यह उत्सव की समाप्ति थी। दिन-भर के कार्यक्रम से देवता थक चुके थे। इस कारण सब गहरी निद्रा से अभिभूत हो गए। भास्कर का एक अपना शिविर था। पहलवान देवता संगीत में विशेष रुचि नहीं रखता था और जब बाहर मैदान में नृत्य हो रहा था, वह बैठा अपना रात्रि का भोजन कर रहा था। मिलिन्द और उसकी लड़कियाँ नृत्य में भाग ले रही थीं।

नृत्य के पश्चात् आशा अपने साथ एक युवक को लेकर आई और बोली—"बाबा, ये मदन हैं। मैं इनसे विवाह करना चाहती हूँ।"

"विवाह !" भास्कर ने विस्मय में दोनों हाथ मदन के कन्धों पर रख दिए। मदन भास्कर के हाथों के बोझ से घबरा उठा। उसकी कठिनाई देख आशा ने आँख के संकेत से उसको सहन करने के लिए कहा। मदन दबकर बैठने ही वाला था कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भास्कर ने उसकी सहनशक्ति से प्रसन्न हो अपने हाथ उठा लिये। इससे मदन की जान में जान आई। भास्कर ने मुस्कराकर कहा—"तुम एक अच्छे युवक लड़के प्रतीत होते हो। जाओ, इसकी माँ से स्वीकृति लेकर विवाह कर लो।"

आशा मदन को ले अपनी माँ की खोज में चल पड़ी और भास्कर हिरण की भुनी हुई टाँग उठाकर खाने लगा। भास्कर भोजन कर सो चुका था जब मिलिन्द और कृपा नाटक देखकर लौटीं। आशा अपने पति के साथ चली गई थी।

इन्द्र के शिविर में यथाविधि वीणा की मधुर स्वरलहरी वायुमण्डल को तरंगित कर रही थी और इन्द्र शची के साथ शिविर में गाढ़ निद्रा में लीन था।

दिन-भर उत्सव में लोग वसन्त ऋतु के उल्लास में मदमत्त हुए गाते-बजाते, नाचते-कूदते रहे थे। नर-नारी, बाल-वृद्ध सब उत्सव के आनन्द में पागल हुए से घूमते रहे थे। अतएव मध्य रात्रि में उत्सव समाप्त होने पर जब लोग सोए तो फिर घोर निद्रा में विलीन हो गए। प्रातः बहुत दिन निकल आने तक लोग थकावट और मद्य की मस्ती दूर करने के लिए सोते रहे। जब जागे तो सबसे प्रथम समाचार जो उनके कानों में पड़ा, वह एक विदेशी सेना का देवलोक में घुस आने का था।

बहुत प्रातःकाल सीमा से एक अश्वारोही समाचार लेकर आया था कि गान्धारसेना ने देवलोक पर आक्रमण कर दिया है और सेना तीव्रगामी अश्वों पर सवार होकर अमरावती की ओर चली आ रही है। इस समाचार के मिलते ही इन्द्र और शची अमरावती की ओर चल पड़े। नहुष उनसे दो घड़ी पूर्व ही अपने घोड़े पर सवार हो विदा हो गया था।

लोगों ने जब आक्रमण का समाचार सुना और साथ ही जब इन्द्र और शची के अमरावती की ओर प्रस्थान के विषय में जाना, तो जो क्षणिक चिन्ता उनके मन में आई थी वह दूर हो गई। उनको विश्वास था कि इन्द्र बड़ी से बड़ी सेना का विनाश करने की शक्ति रखता है। वे नहीं जानते थे कि उसके अमरावती पहुँचने से पूर्व ही नगर और राजप्रासाद पर गान्धारों का अधिकार हो गया होगा। इससे सब लोग यह आशा कर रहे थे कि उनके अमरावती लौटने से पूर्व ही आक्रमणकारी सेना का विध्वंस हो चुका होगा।

परन्तु नहुष इस बात के लिए तैयार था। वह इन्द्र से दो घड़ी पूर्व ही मानसरोवर से चल पड़ा था। सीमा से समाचार लाने वाला आया और वह तुरन्त रवाना हो गया। अमरावती के मार्ग में एक-दो स्थान ऐसे थे जहाँ दो पहाड़ियों के बीच रास्ता बहुत तंग था। वहाँ उसने अपने एक सौ से अधिक सैनिक छुपा रखे थे। नहुष वहाँ जाकर उनसे मिल गया। जब इन्द्र और शची का रथ पहुँचा तो उसके सैनिकों ने उनको बन्दी बना लिया। आशा से भरा इन्द्र अपने पाँच-छः अश्वारोहियों के साथ अमरावती की ओर भागा जा रहा था। इस कारण उसको

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दी बनाने के लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

इन्द्र को बन्दी बनाकर नहुष स्वयं एक दर्जन सैनिकों को लेकर अपनी मुख्य सेना से मिलने के लिए अमरावती की ओर चल पड़ा और शेष सैनिकों की रक्षा में इन्द्र और शची को उसने अपने स्थान कमल-सर दुर्ग में भेज दिया।

अमरावती के द्वार के बाहर उसने मुख्य सेना की प्रतीक्षा की। उसके वहाँ पहुँचने के कुछ ही काल पश्चात् उसकी सेना मार-काट करती आ पहुँची और उसने सेना के साथ एक विजेता के रूप में अमरावती में प्रवेश किया। इस नगर के प्रायः सब स्त्री, पुरुष और बच्चे वसन्तोत्सव के लिए नगर से बाहर मानसरोवर गए हुए थे। इस कारण नगर पर बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के उसका अधिकार हो गया।

: ४ :

भास्कर जब उठा तो आक्रमण का समाचार उसने भी सुना और अन्य देवताओं की भाँति उसने भी नाक-भौं चढ़ाकर कहा—"सब होलिका की भाँति जलकर भस्म हो जाएँगे। इन्द्र के अपने भवन तक पहुँचने की देरी है कि सब ठीक हो जाएगा।" इतना कह वह अन्य सबके समान शौचादि से निवृत्त हो, भोजन कर अमरावती की ओर चल पड़ा।

यह मध्याह्न का समय था। चलने के समय आशा भी अपने पति के साथ आ गई। दोनों आनन्द में झूमते प्रतीत हो रहे थे। उनकी आँखों में विशेष चमक थी। ये इस बात के लक्षण थे कि उनकी पिछली रात खूब आनन्द में व्यतीत हुई है। भास्कर ने उन्हें आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद के लिए हाथ उठाता देख मदन घबराया। उसने कह दिया—"कृपया अपने शुभ हाथ दूर ही रखिए। इससे मेरी हड्डियाँ चूर-चूर हो जाएँगी।"

मदन के माता-पिता भी तब तक वहाँ आ गए और उन्होंने भास्कर और मिलिन्द को धन्यवाद दिया और कहा—"कितनी सुन्दर भेंट आपने हमारे पुत्र को दी है।" इस प्रकार सब हँसते-खेलते-कूदते अमरावती की ओर चल पड़े। देहातों और अन्य नगरों से आए लोग भी अपने-अपने घरों को चल दिए। सबके मन में विश्वास था कि उनके घर पहुँचने से पूर्व ही इन्द्र सब आक्रमणकारियों को समाप्त कर चुका होगा।

वे अभी आधा रास्ता ही गए थे कि उन्हें समाचार मिला कि आक्रमणकारियों का अमरावती पर अधिकार हो चुका है। उनको यह भी समाचार मिला कि इन्द्र अमरावती नहीं पहुँचा। सबके मन में घबराहट उत्पन्न हो गई और उन्होंने एक विचारगोष्ठी की। सब बाल, वृद्ध, युवा, नर, नारी इस गोष्ठी में सम्मिलित हुए। आरम्भ में तो सबके मनों पर आतंक की छाप थी, परन्तु धीरे-धीरे कुछ चिन्ता कम हुई। किसी ने कह दिया—"चिन्ता करने की आवश्यकता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। आक्रमणकारी सेना और नया राजा उन्हें खा नहीं जाएगा। उसे राज्य करना है। और हम उसे इन्द्र का उत्तराधिकारी बना देंगे। वह हमारी रक्षा करेगा और हमको भोजन-वस्त्र उसी प्रकार देगा, जैसे इन्द्र दिया करता था।"

यह भ्रान्त भावना सबके मन में समा गई और सब अमरावती की ओर चल पड़े। सायंकाल वे द्वार पर पहुँचे तो वहाँ सबको रोककर एक-एक को भीतर जाने दिया गया। गान्धार-सैनिक अपनी खड्ग नंगी किए खड़े थे और जब लोग एक पंक्ति में भीतर जा रहे थे तो वे उनमें से सब युवा स्त्रियों तथा लड़कियों को पृथक् करते जाते थे। जब कोई इसका कारण पूछता तो कह देते कि देवलोक में विजयोत्सव पर उत्सव में पचास सहस्र सैनिकों के मनोरंजन के लिए स्त्रियाँ चाहिए। स्त्रियों को पतियों से, माताओं को पुत्रों से, बहिनों को भाइयों से पृथक् करने का यह कार्य अति भयंकर था और नगर के द्वार पर हाहाकार मची हुई थी।

इस हाहाकार में एक बार झगड़ा भी हो गया। जब भास्कर अपने परिवार वालों के साथ द्वार पर पहुँचा, तो उसे भी रोक लिया गया। जब आशा को उसके पति मदन से पृथक् करने लगे तो मदन ने बाधा डाली और एक सैनिक का नग्न खड्ग उसके पेट में घुस गया। वह तुरन्त वहीं ढेर हो गया। भास्कर, जो यह देख रहा था, आगे लपका और एक सैनिक के हाथ से खड्ग छीनकर सैनिकों को चुनौती देने लगा। एक सैनिक आगे बढ़ा कि भास्कर ने खड्ग का वार कर दिया। भास्कर खड्ग को विशेष रूप से चलाना नहीं जानता था, परन्तु उसका खड्ग जब सैनिक के साथ बल के साथ टकराया तो वह सैनिक के हाथ से छूटकर दूर गिर गया। गान्धार-सैनिक इस वृहत्काय शरीर को देखकर डर गए। इस कारण एक ने कहा—"यह क्या कर रहे हो?"

"मैं अपनी महिलाओं की रक्षा कर रहा हूँ।"

सैनिकों ने उससे झगड़ा करना अनुचित मान कह दिया—"कौन-कौन महिलाएँ हैं तुम्हारी?"

भास्कर ने अपनी स्त्री और लड़कियों को दिखा दिया और सैनिकों ने उन्हें जाने दिया। सैनिकों ने समझा कि जब इतनी और मिल रही हैं तो इन तीन के लिए क्यों जान जोखिम में डाली जाए। वे भास्कर के विशालकाय और ऊँचे शरीर को देख कुछ डर गए थे।

भास्कर नग्न खड्ग हाथ में लिए अपनी स्त्रियों को ले, नगर में से निकलता हुआ अपने घर जा पहुँचा। घर पहुँचकर उसने खड्ग भूमि पर फेंकते हुए अपनी स्त्री और लड़कियों के राख समान श्वेत मुख को देख कहा—"अब क्या हो?"

"देवता, सोचो! बहुत अभिमान था तुमको अपनी जाति पर और इन्द्र की बुद्धि ओर चतुराई पर। अब तो तुमको पता चल गया है न कि यह तुम्हारी शक्ति ही है जो मुसीबत में हमारी सहायक हुई है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम सत्य कहती थीं"—भास्कर ने कहा—"यदि इस समय मेरे साथ मेरे जैसा एक और होता तो हम इन कुत्तों को अमरावती से भगा देते।"

"अब इस अभिमान की बात को अपने पास ही रहने दो। अब तो इस नगर से बचकर भाग निकलने की सोचनी चाहिए। मैं समझती हूँ कि इन राक्षसों के राज्य में हम अधिक काल तक सुरक्षित नहीं रह सकते। यह अच्छा नहीं होगा क्या कि जब ये रंगरेलियाँ मना रहे हों, हम यहाँ से नौ दो ग्यारह हो जाएँ?"

"ऐसा ही करना अभीष्ट होगा।"

अपनी शक्ति को स्थिर रखने के लिए भोजन करना आवश्यक माना गया। उन्होंने मध्याह्न में कुछ भोजन किया था और नहीं जानते थे कि कितनी देर तक भाग-दौड़ करनी होगी।

उस दिन भास्कर को पेट भरना एक समस्या हो गई। इस पर भी ज्यों-त्यों करके कुछ प्रबन्ध किया गया। भोजन के पश्चात् इन्होंने कुछ विश्राम किया और ब्राह्ममुहूर्त से भी पूर्व वे घर से निकल पड़े। भवनों की आड़ में हो छुपते हुए और अँधेरी गलियों में से निकलते हुए लुका-छिपी करके वे नगर के बाहर पहुँच गए।

नगर में गत रात गान्धारों ने बड़ी उच्छृंखलता से व्यतीत की। पचास सहस्र सैनिकों ने नगर भर में प्रस्तुत सब मद्य पी डाली। अन्न के भण्डार खाली कर दिए। मिठाइयों की दुकानें लुट लीं। सुन्दर नर्तकियों को नचा-नचाकर थका डाला और स्त्रियों से बलात्कार किया। नगर भर में इन सैनिकों ने इतना उपद्रव मचाया कि सहस्रों वर्षों के सुख और चैन का जीवन व्यतीत करने वाले देवता 'त्राहि माम् त्राहि माम्' कर उठे।

अमरावती अति सुन्दर नगर था। परन्तु इन अशिक्षित जंगलियों को इसे नष्ट-भ्रष्ट करने में आनन्द मिलता था। देवांगनाएँ सौन्दर्य में अद्वितीय थीं, परन्तु इन पशुओं ने उनसे बलात्कार कर-कर उनके प्राण ही मानो हर लिये। देवता लोग अति स्वादिष्ट भोजन बनाते थे, इसलिए इन पेटुओं ने उनको खा-खाकर वमन किया और फिर खाया। जगमग करता, प्रसन्नता और आनन्द की लहरियों में झूमता तथा धन-धान्य से भरपूर नगर इन मूर्खों ने एक रात में ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

: ५ :

नहुष के सेनापति का नाम करण था। जब नहुष इन्द्र के महल से पहुँच गया तब उसने करण को उसके प्रयास पर पुरस्कार देने के लिए राजभवन का रक्षक नियुक्त कर दिया। भवन के एक कक्ष में उसके रहने के लिए स्थान भी दे दिया।

करण कामभोज के एक गाँव के एक निर्धन परिवार का युवक था। वह जब बालकमात्र ही था तो उसके पिता का देहान्त हो गया। उसकी माँ एक शिक्षित आर्य महिला थी, जिससे एक गान्धार का विवाह हुआ था। जब करण के पिता का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहान्त हुआ तो उसने करण को पूरी-पूरी शिक्षा दिलवाई। इस शिक्षा के उपरान्त करण नहुष के पिता के पास कार्य करने लगा। नहुष अपने पिता के मरने पर देव-लोक चला गया और वहाँ देवलोक को विजय करने की योजना बना करण को सेना ले चढ़ आने की आज्ञा दे दी। करण जब विना किसी प्रकार की बाधा के अमरावती जा पहुँचा तो नहुष उसकी चतुराई पर मुग्ध हो गया।

नहुष ने उसको अपने समीप रखने के लिए भवन के रक्षकों का नायक नियुक्त कर दिया। यद्यपि करण इससे सन्तुष्ट नहीं था तो भी वह नहुष के साथ विदेश में झगड़ा करना उचित नहीं समझता था।

भवन की रक्षा के लिए सब दो सौ रक्षक थे। करण ने पचास-पचास को बारी-बारी से रक्षा करने का भार सौंप दिया और उसके पश्चात् वह अपने भवन की देखभाल करने के लिए चला आया।

उसके निवास-स्थान में तीन आगार, पाकशाला तथा स्नानागार इत्यादि थे। सबमें उचित सामान और प्रबन्ध था। अपने रहने के प्रबन्ध से सन्तुष्ट होकर वह बाहर निकला तो महल के एक कक्ष में भीड़ देखकर, उसका कारण जानने के लिए वहाँ जा पहुँचा। वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ खड़ी रो रही थीं। उसने एक सैनिक से पूछा तो उसने बताया—"ये स्त्रियाँ भवन में से पकड़ी गई हैं। अब हम इनका बँटवारा कर रहे हैं।"

"बँटवारा क्यों?"

"इनका रात में प्रयोग होगा।"

करण के माथे पर त्योरी चढ़ गई। इस पर एक अन्य सैनिक ने कहा—"श्रीमान्! आज रात विजयोत्सव मनाया जाएगा। नगर भर की स्त्रियाँ गान्धारों के मनोरंजन के लिए पकड़ी जा रही हैं। हमने भी यही किया है।"

करण यद्यपि इन सब बातों को पसन्द नहीं करता था परन्तु इस समय सैनिकों का विरोध करने की क्षमता न रख सकने से चुप था। वह निराश और दुःखी अपने घर की ओर लौट पड़ा। इस पर एक ने उसे पुकारकर कहा—"स्वामी! इनमें से एक आपके भाग में भी है।"

"मेरे भाग में कैसे?" करण ने पुनः उत्तेजित हो पूछा।

"ये सब इक्यावन हैं। हममें से प्रत्येक चार के भाग में एक-एक मिली है। एक बच गई थी इस कारण हमने यह निर्णय किया है कि एक जो बची है वह आपको दी जाए।"

करण उसको अस्वीकार करने वाला था, परन्तु यह विचार कर कि यदि वह उनमें से एक को भी बचा सके तो भी ठीक है, उसने पूछा—"कौन है वह?"

एक सुन्दर कुमारी कन्या को पकड़कर उसके सम्मुख कर दिया गया। वह लड़की नीम के पत्ते की भाँति काँप रही थी। उसके ओष्ठ रक्त-विहीन हो रहे थे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुख राख की भाँति सफेद पड़ गया था। करण को उस लड़की पर दया आ गई। करण ने सोचा कि यदि वह इसे स्वीकार नहीं करता तो ये पशु उसका भी बुरा हाल करके छोड़ेंगे। इस कारण उसने कह दिया—"अच्छी बात है। इसको मेरे आगार में छोड़ आओ।"

सैनिकों ने समझा कि उनके अध्यक्ष प्रसन्न हो गए हैं। इससे वे उस लड़की को धकेलकर करण के आगार की ओर ले गए और उसको एक आगार में बन्द करके बाहर से ताला लगा दिया।

करण नहुष के रहने का प्रबन्ध देखने चला गया। वहाँ सब कुछ सन्तोषजनक पा वह अपने निवास स्थान पर पहुँचा। बाहर खड़े सैनिक ने ताली देकर करण से कहा—"वह उस कमरे में बन्द है।"

करण ने ताली ले सैनिक को कहा—"अच्छी बात है। तुम जाओ।" जब वह चला गया तो करण ने द्वार भीतर से बन्द कर लिया और उस आगार का ताला खोला, जिसमें लड़की बन्द थी। जब द्वार खोला, तो उसने देखा कि लड़की आगार के एक कोने में सिकुड़ी बैठी गम्भीर विचार में मग्न है। आगार खुलने पर वह घबराकर उठ बैठी और कोने में सिकुड़कर खड़ी हो गई। करण को उस पर दया आ रही थी। वह उसको देखते हुए मन में सोच रहा था कि कैसे उसको सान्त्वना दे। कुछ विचारकर वह एक ओर रखे पलंग पर बैठ गया और लड़की से बोला—"इधर आओ।"

लड़की थर-थर काँपती हुई धीरे-धीरे उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गई। करण ने उससे पूछा—"क्या नाम है?"

लड़की ने धीरे से भर्राए स्वर में कहा—"सुमन।"

"किसकी लड़की हो?"

"महल के निरीक्षक श्री चन्द्रकान्त की।"

"वह कहाँ हैं?"

"मार डाले गए हैं। मेरी माँ बीमार थी, इस कारण हम वसन्तोत्सव में नहीं गए थे। जब ये लोग आए और मुझको और मेरी माँ को पकड़कर ले जाने लगे तो पिता ने विरोध किया। एक सैनिक ने उनकी हमारे सम्मुख हत्या कर दी और हम दोनों को लेकर अन्य स्त्रियों में खड़ा कर दिया।

"वहाँ सब सैनिकों के नाम लिख एक कलस में डाल दिए गए। और हम सब को कहा गया कि कलस में हाथ डाल-डालकर चार-चार नाम निकालें। मैं सबसे पीछे थी। मेरे कलस तक पहुँचने तक सब नाम निकल आए थे। जिस-जिस स्त्री ने जो-जो नाम निकाले थे वे चार-चार उस स्त्री को ले गए। मेरी माँ को भी वे ले गए हैं। मुझको आपके पास भेज दिया है।"

करण इस वृत्तान्त से सोच में पड़ गया। वह सोच रहा था कि यह अत्याचार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या पच जाएगा ? यदि इसका फल मिला तो कितना भयंकर होगा। इसके परिणामों पर विचार कर वह काँप उठा। इस पर उसने लड़की से कहा—"तुम इस घर से जाना चाहो तो जा सकती हो।"

"कहाँ जाऊँ, बाहर आपके लोग घूम रहे हैं। बाहर निकलते ही वे मुझपर झपटेंगे और···"

"तो तुम यहीं रह जाओ। तुमने भोजन किया है या नहीं ?"

"इच्छा नहीं है।"

"अच्छी बात है। बाहर भोजनालय में भोजन रखा है। इच्छा हो तो उसे खा लेना। उसी आगार में सो जाना।" इतना कह करण स्वयं सोने की तैयारी करने लगा। लड़की बाहर चली गई और एक पात्र में जल का एक ही घूँट पी आगार के एक कोने में भूमि पर ही लेटी रही।

करण दिन-भर की भाग-दौड़ से थका हुआ था। इस कारण पलंग पर लेटते ही सो गया। प्रातःकाल उठा और शौचादि से निवृत्त हो बाहर के कमरे में आया तो लड़की को घुटनों में सिर दिए बैठा देख उसके विषय में चिन्ता करने लगा। मन में यह निर्णय कर कि उसको यहीं पड़ा रहने दिया जाए क्योंकि बाहर तो उसकी दुर्गति होगी, उस लड़की से पूछने लगा—"रात सो सकी हो या नहीं ?"

"पिछली रात कुछ नींद आई थी।"

"रात कुछ खाया था ?"

"नहीं ! इच्छा नहीं हुई।"

"तुमको मुझसे भय लगता है ?"

"पहले तो लगता था, अब कम होता जा रहा है।"

"डरने की कोई बात नहीं। जाओ, स्नानादि से छुट्टी पा लो और कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करो। मैं तुम्हारी माँ का समाचार लेने जाता हूँ।"

करण घर से बाहर आया तो उसको पता चला कि पचास स्त्रियों में से सात मर गई हैं। उनके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया गया था। इनमें सुमन की माँ भी थी। इस समाचार से वह अत्यन्त दुःखी हुआ।

यही करण था जिसने नहुष को चेतावनी दी थी कि इस व्यवहार से देवलोक की पूर्ण प्रजा बिगड़ जाएगी। इस ही के उत्तर में नहुष ने कहा था कि वह इस जाति को सदा के लिए अपना दास बनाने के अर्थ इसके स्त्रीवर्ग को पतित करना चाहता है और इस देश में भारी संख्या में वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न करना चाहता है। इस उत्तर से करण के रोंगटे खड़े हो गए। वह बिना अधिक बातचीत के अपने काम में लग गया था।

जब करण मध्याह्न का भोजन करने आया तो सुमन ने पहला प्रश्न अपनी माँ के विषय में किया। करण मुख देखता रह गया। उसके मुख से यह समाचार निकल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सका। उसे चुप देख सुमन समझ गई। उसने कहा—"वह बीमार थी, भगवान् जाने उससे क्या बीती होगी।"

करण ने बहुत ही कठिनाई से समझाया—"वह अब किसी की भी चिन्ता का विषय नहीं रही। तुम अपने विषय में स्वयं विचार करो। अच्छा, तुम क्या करोगी?"

"मैं क्या कह सकती हूँ। नहीं जानती कि बाहर क्या हो रहा है। फिर भी यदि आप जाने को कहेंगे तो जाऊँगी ही।"

"मैंने यह नहीं कहा। तुम यहाँ रहो, जब तक कि तुम कहीं जाने का सुभीता नहीं पाती। यहाँ तुमसे दुर्व्यवहार नहीं होगा।"

इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से सुमन के आँसू निकल आए। वह पुनः भूमि पर बैठ गई और घुटनों में सिर दे विह्वल हो रोने लगी।

करण के लिए भोजन का प्रबन्ध भवन से होता था। वह आया और उसने कुछ स्वयं खाया और शेष सुमन के खाने के लिए छोड़ दिया। तत्पश्चात् वह अपना कार्य देखने के लिए चला गया। जाने से पूर्व वह सुमन से कहता गया —"इस कक्ष से बाहर मत जाना। मैं इन सैनिकों का नायक अवश्य हूँ, परन्तु इस विषय में मेरी कोई नहीं सुनेगा और मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूँगा। तुम्हारी माँ का दाह-संस्कार हो गया है।"

सुमन इस परिवर्तन से अत्यन्त व्याकुल थी। रात को पिता मारा गया था और अब माँ के मारे जाने का समाचार मिला था। स्वयं वह इस प्रकार की दासता की अवस्था में पड़ी थी। इस पूर्ण अन्धकार में करण एक उज्ज्वल किरण के समान था। उसने उससे अभी तक ठीक ही व्यवहार किया था। परन्तु यह कब तक चल सकता था। क्या वह अकारण उससे ऐसा ही व्यवहार करता रहेगा? कब तक करेगा? वह जानती थी कि देवलोक में सेवकों की आवश्यकता नहीं थी। सब कार्य सफाई इत्यादि, रसोई बनाना, कपड़े धोना और ऐसे सब कार्य राज्य द्वारा होते थे। राज्य भर में ये कार्य यन्त्रादि द्वारा किए जाते थे। इस कारण इस देश में सेवकों की आवश्यकता नहीं थी। सुमन विचार कर रही थी कि इस सेनानायक की सुरक्षा में वह कैसे रह सकेगी? पर्याप्त चिन्तन के पश्चात् भी वह किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकी।

तीन दिवस इस प्रकार व्यीतत हो गए। करण ने अपने व्यवहार से उसके मन में विश्वास और निर्भयता उत्पन्न कर दी थी। अब वह उससे बातचीत में संकोच अनुभव नहीं करती थी और अपने को घर का ही एक अंग समझने लगी थी। करण देवलोक के प्रबन्ध से सन्तुष्ट हो गया था। सब लोग अपने-अपने कामों पर कार्य करने के लिए आ गए थे। सैनिकों की वासनातृप्ति के उपरान्त सब स्त्रियाँ उनके घर वालों को लौटा दी गई थीं। और नगर जैसे भयंकर भूकम्प के पश्चात् सहमा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, भयभीत, विचारहीन और भाग्य को कोसता हुआ-सा स्वाभाविक दिनचर्या में लीन हो रहा था।

सुमन का कोई नहीं रहा था। इस कारण वह कहाँ जाए। यही जानने के लिए इस दिन सोने से पूर्व करण ने पूछा—"तुम्हारा कोई सम्बन्धी है, जहाँ तुम जा सकती हो ?"

"नहीं ! जहाँ तक मैं जानती हूँ कोई नहीं।"

"तुम अकेली बाहर नहीं घूम सकतीं। यह ठीक है कि पहले दिन की भाँति उच्छृंखलता नहीं रही। फिर भी यह कहना असत्य नहीं कि सैनिकों की स्त्रियों के प्रति भूख मिटी नहीं। तुमको अकेली देख कोई न कोई सैनिक अपनी पत्नी बना ही लेगा।"

"मैं नहीं जानती कि क्या करूँ।"

"अभी तुम यहाँ रह सकती हो। यहाँ तुमको किसी प्रकार का भय नहीं है।"

"मैं आज एक बात सोच रही थी।...आप लोग कब तक यहाँ रहेंगे ?"

"क्यों ? क्या मतलब है तुम्हारा ? हमने इस देश को जीत लिया है। अब यहाँ सदैव के लिए रहेंगे।"

"पर आप रह नहीं सकेंगे। यह देश अत्यन्त शीतल है। यहाँ जो ऊष्मा आप अनुभव कर रहे हैं, कृत्रिम है। और इस ऊष्मा को एक यन्त्र द्वारा इस तापमान पर रखा जा रहा है। यह यन्त्र दिन-रात अपना कार्य करता जाता है, परन्तु इस प्रकार सदैव नहीं चल सकेगा। इसमें कार्य करने वाला एक पदार्थ है। वह है जीवित पारद। यह समाप्त हो जाएगा तब यहाँ ठण्ड हो जाएगी। बाजारों में बर्फ जमने लगेगी। खेती-बाड़ी समाप्त हो जाएगी और जीवन दुर्भर हो जाएगा।"

"यह तुमको किसने बताया है ?"

"मैं अपने ज्ञान से जानती हूँ। जीवित पारद का रहस्य देवलोक में केवल तीन व्यक्ति जानते हैं। इन्द्र स्वयं, उनकी पत्नी शची और देव पितामह ब्रह्मा। ब्रह्मा इतने वृद्ध हो चुके हैं कि उनको कोई बात स्मरण रह गई है, यह कहा नहीं जा सकता। और इन्द्र तथा शची भगवान् जाने कहाँ हैं। जब यह जीवित पारद समाप्त हो जाएगा तो कोई भी व्यक्ति इसको नहीं बना सकेगा। और यहाँ सब काल के ग्रास बन जाएँगे।"

करण को इस समाचार से अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हुई। उसने अब और अधिक परिचय प्राप्त करने के लिए देवलोक में कार्य की प्रणाली पूछी तो सुमन ने बताया—

"यहाँ प्रायः सब कार्य यंत्रादि से होते हैं। प्रातः हम अपने वस्त्र घर के बाहर एक डिब्बे में डाल देते हैं। वहाँ से वे स्वयमेव निकलकर धुलने के स्थान पर पहुँच जाते हैं। वहाँ वे धुलते हैं, सूखते हैं और फिर पहनने को तैयार घर पहुँच जाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भोजन महल की केन्द्रीय पाकशाला में बनता है। वहाँ से यह घरों में पहुँच जाता है। झाड़ने-फूँकने के लिए वहीं से यन्त्र चला दिए जाते हैं और घर की सफाई हो जाती है। यह सब कार्य जीवित पारद के आश्रय होता है।"

करण विस्मय में सुमन का मुख देख रहा था। तीन दिन के अभयदान से उसके मुख पर पुनः यौवन के लक्षण प्रतीत होने लगे थे और उसका स्वाभाविक सौन्दर्य और शील प्रगट होने लगा था। करण ने उसकी ओर विस्मय में देख पूछा —"तो पारद के समाप्त हो जाने पर ये कार्य समाप्त हो जाएँगे ?"

"हाँ। यूँ तो मनुष्य अति शीत देशों में भी रह सकता है। परन्तु उनका इतनी संख्या में यहाँ रहना असम्भव हो जाएगा। साथ ही जीवन सुलभ, सुखद और सुव्यवस्थित नहीं रहेगा।"

करण अगले दिन यह चिन्ताजनक समाचार लेकर नहुष के पास पहुँचा। नहुष को यह समाचार बताने का अभिप्राय स्पष्ट था। वह चाहता था कि पारद समाप्त होने से पूर्व ही इसके निर्माण का और उन यंत्रों का, जिनमें यह कार्य करता है, ज्ञान हो जाना चाहिए। यह कैसे हो सकेगा ? वह नहीं जानता था कि इसके बिना यह देश विनाश को प्राप्त हो जाएगा।

करण ने सुमन की सत्यता को जानने के लिए इन्द्रभवन की छत पर जाकर शक्तिप्रसारक यन्त्रों को देखा। यद्यपि वह उनके विषय में कुछ भी नहीं समझ सका, फिर भी वह यह देख चकित रह गया कि यंत्र बिना किसी व्यक्ति की देख-भाल के वैसे ही चल रहा है जैसे सूर्यादि नक्षत्र स्वयं चलते हैं।

उसने नहुष से भेंट कर सुमन द्वारा बताई गई पूर्ण बात वर्णन कर दी। नहुष इन सब दिनों मनोरंजन में लगा था। सुरा, सुन्दरी के प्रभाव में ही उसके दिन और रातें कट रही थीं। आज पहली बार राज्य के गम्भीर विषयों पर बात करने के लिए पहला व्यक्ति करण उसके पास आया। इससे करण की बातें उसे रुचिकर प्रतीत नहीं हुईं! नहुष को करण की बातों की गम्भीरता का ज्ञान नहीं था। इससे कह दिया—"मुझको तुम्हारे कथन का विश्वास नहीं होता।"

इस पर करण ने सुमन का परिचय दिया और कहा—"वह पढ़ी-लिखी और इन्द्रभवन के निरीक्षक की लड़की है। मैं उसके कहने की सत्यता की परीक्षा कर चुका हूँ। भवन की छत पर वे यन्त्र लगे हैं, जो नगर का ही नहीं, प्रत्युत देशभर के जीवन का संचालन करते हैं। वे अपना कार्य कर रहे हैं, परन्तु इतना तो मैं भी समझ सका हूँ कि कोई भी यन्त्र सदा के लिए अपने आप चल नहीं सकता।"

"तो फिर क्या किया जाए ?"

"ब्रह्मा, इन्द्र अथवा शची से मैत्री कर इस शक्ति का रहस्य जानना चाहिए।"

"कब तक ये उनकी सहायता के बिना चल सकते हैं ?"

"सुमन का अनुमान है कि एक वर्ष तक कार्य चलेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक वर्ष तो बहुत लम्बा काल है। इस विषय पर कभी विचार कर लेंगे।"

"जीवित पारद तो एक वर्ष तक चलेगा, परन्तु यदि उससे पूर्व ही कोई खराबी यन्त्रादि में उत्पन्न हो गई, तो क्या होगा ?"

"ऐसा क्यों होगा ? पर मैं समझता हूँ कि उस लड़की ने तुमको डरा दिया है। मेरी राय मानो तो उसको अपनी पत्नी बना डालो। तुम्हारी रुचि की तो वह होगी ही। इतने दिन तुम्हारे घर रही भी है।"

"पत्नी ! उसकी इच्छा के विरुद्ध कैसे बना सकूँगा ?"

"जैसे उसको घर में रख छोड़ा है।"

"वह अपनी इच्छा से वहाँ रह रही है।"

"वैसे ही अपनी इच्छा से वह तुम्हारी पत्नी बनेगी। जब वह तुम्हारी पत्नी बन जाएगी, तब वह बताएगी कि कौन व्यक्ति क्या कर सकता है ? फिर हम उससे बातचीत कर उससे वह काम करा सकेंगे।"

"यह तो उसने अब भी बता दिया है।"

"इस समय की बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विवाह हो जाने पर लड़की अपने पति को अपना एक अंग समझने लगती है। इससे उसके हित को अपना हित मानने लगती है। जाओ मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि उससे विवाह कर लो।"

करण यह नहीं समझ सका कि विवाह का इससे क्या सम्बन्ध है ? साथ ही वह स्वयं उससे विवाह की बात करे; उसको अपमानजनक प्रतीत हुआ। वह बिना किसी प्रकार का उत्तर दिए चला आया। जब वह अपने घर की ओर जा रहा था तो भवन के तीन संरक्षक उससे कुछ कहने के लिए मार्ग रोककर खड़े हो गए। करण ने उनके नमस्कार को स्वीकार कर पूछा—"क्या बात है ?"

"एक प्रार्थना है।"

"कहो।"

"वह लड़की जो आपके पास पिछले पाँच दिन से है, अब हमको मिल जानी चाहिए।"

"क्यों ?"

"आपके पास वह पर्याप्त काल तक रह चुकी है। अब हमको दे दीजिए।"

"क्या और स्त्रियाँ समाप्त हो गई हैं ?"

"हम उसको चाहते हैं।"

"वह नहीं मिलेगी।"

"क्यों ? हम स्त्रियों को परस्पर बदल रहे हैं।"

करण ने अनायास बिना विचार किए कह दिया—"वह मेरी पत्नी है।"

"पत्नी !" इस पर उन्होंने मार्ग छोड़ दिया और करण को चले जाने दिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण को इससे बहुत चिन्ता लग गई कि वह उससे विवाह करने का प्रस्ताव करे। क्यों और कैसे करे ? इस अनिश्चितमन से वह अपने कक्ष में पहुँचा तो सुमन को चिन्तित सामने खड़े देख पूछने लगा—"क्यों क्या हुआ है ?"

सुमन सिर से पाँव तक काँप रही थी और उसका पसीना छूट रहा था। उसने आँखें नीचे किए हुए कहा—"आपके कुछ सैनिक अभी आए थे और मुझको अपने साथ चलने को कह रहे थे। मैंने उनसे कहा कि आप उनको इसके लिए दण्ड देंगे। मैं आपकी ·····।" वह कहती-कहती रुक गई।

करण समझ गया कि उसने क्या कहा होगा। उनके कह दिया—"तुमने कहा होगा कि तुम मेरी विवाहिता हो ?"

"और क्या कहती ? अपने को बचाने का और कोई उपाय ही नहीं था। मेरी बात सुनकर उन्होंने मेरा हाथ छोड़ दिया और कहा कि वे आपसे पूछेंगे। यदि यह झूठ हुआ तो मुझको बलपूर्वक उठाकर ले जावेंगे। मुझको भय है कि जब आप उनको सत्य बताएँगे तो मेरा पता नहीं क्या हाल होगा।"

करण मुस्कराया और कहने लगा—"यदि मैं तुम्हारी बात को सत्य ही कह दूँ तो फिर क्या होगा ?"

"आप मेरे लिए झूठ कह देंगे ? और फिर क्या हो···।" वह अभी भी दीवार का आश्रय लिए खड़ी थी।

करण ने कहा—"मुझसे उनकी बात हो गई है। मैंने कह दिया है कि तुम मेरी पत्नी हो।"

"आपने कह दिया है ? बहुत धन्यवाद। आप बहुत अच्छे हैं। परन्तु अब क्या होगा ?"

"मैं तुमको तुम्हारी इच्छा के बिना पत्नी नहीं बनाऊँगा। तुम चाहो तो सदैव का भय छूट सकता है। हमारी प्रथानुसार विवाहिता पत्नी की रक्षा का अधिकार पति को हो जाता है। तुम मेरी विवाहिता होगी, तो मैं खड्ग लेकर उनसे, जो तुम्हारा इस प्रकार अपमान करेंगे, लड़ जाऊँगा और तब मैं अपराधी नहीं बनूंगा।"

"पर आपकी भी तो कुछ इच्छा है ? मैं······।"

बात हो गई और करण से सुमन का विवाह तय हो गया। जो बात नहुष की आज्ञा से भी नहीं हो रही थी वह परिस्थितियों के वश स्वयं हो गई। एक दिन करण ने सुमन से कहा—"मैंने जब पहली बार तुमको देखा था, तब ही तुमसे विवाह कर लेने का निश्चय कर लिया था, परन्तु बिना तुम्हारी इच्छा के यह नहीं कर सकता था और जिस परिस्थिति में तुम मेरे घर आई थीं उसमें तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव करना मानवता की हत्या करनी थी।"

"आप बहुत अच्छे हैं। आपसे विवाह कर तो मैं अपना अहोभाग्य मानती हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु यह कैसे हुआ कि गान्धारों में आप इतने श्रेष्ठ हो गए ? आपके दूसरे साथी तो सर्वथा पशु हैं।"

करण ने कहा—"आज से पचास वर्ष पूर्व गान्धार और कामभोज में भी आर्य लोग रहते थे। उनका ही वहाँ राज्य था। तुखार से कामभोज पर और पीछे गान्धार देश पर म्लेच्छों का आक्रमण हुआ और वहाँ उनका राज्य हो गया। तुखार देश के लोग वास्तव में असभ्य हैं। इनके यहाँ स्त्रियों के सतीत्व की महिमा नहीं। विवाह भी करते हैं, परन्तु विवाह से पूर्व ही प्रायः कन्याएँ औरतें हो जाती हैं। कभी तो माँ बन जाती हैं। इसको यह लोग कोई निन्दनीय कार्य नहीं मानते। इन लोगों का राज्य होने से हमारे लोग भी वैसा ही करने तथा मानने लग गए हैं। मेरे पिता गान्धार थे जो इनकी बातों को अच्छा नहीं समझते थे। इस कारण उन्होंने अपने देश में विवाह नहीं किया। उनको अपने देश में कोई अछूती कुँवारी कन्या नहीं मिली। वे ब्रह्मावर्त से एक आर्यकन्या ब्याहकर ले आए। वह मेरी माँ हैं। पिताजी का देहान्त हो चुका है। परन्तु माँ जीवित हैं। सती-साध्वी हैं। मेरे विचार उनकी ही देन हैं। मैं जब बड़ा हुआ तो मेरी माँ ने मुझको भी यह शिक्षा दी थी कि किसी बाहर देश की कन्या से विवाह करूँ। गान्धार में कोई कन्या कुँवारी मिल सकेगी उसको संदेह था। सौभाग्य से तुम मिल गईं और मैं प्रसन्न हूँ कि तुम मेरी पत्नी बन गई हो।"

: ६ :

करण नहुष का मित्र और फिर सेवक बन गया था। परन्तु आरम्भ से ही वह उसके कामों तथा विचारों को पसन्द नहीं करता था। अमरावती में आकर तो उसको पता लगने लगा था कि नहुष की नीति कितनी मूर्खतापूर्ण है। पचास सहस्र सैनिक अपने खड्ग के बल पर राज्य जमाए हुए थे। राज्य-स्थापना के इस कार्य में देवताओं की भीरुता तथा मूर्खता भारी कारण थे। फिर भी वह नहुष के व्यवहार को क्षम्य नहीं मानता था। वह नित्य हो रहे अन्याय और अत्याचार को देख रहा था और समय-समय पर नहुष को सचेत करता रहता था, परन्तु वह देख रहा था कि वह अपनी जाति के संस्कारों और परम्पराओं में बहा जाता है। कभी वह अपनी भूल समझ भी जाता था, परन्तु स्वभाव से वह फिर भूल कर बैठता था।

इस सबका एक परिणाम यह हो रहा था कि नहुष ने करण को अपना आन्तरिक सम्मतिदाता मानना छोड़ दिया था और अपने राज्यकार्य में उससे सम्मति लिये बिना ही काम करता रहता था। परन्तु जब देवयानी के स्वयंवर से अपने प्रयास में असफल होकर आया, तो वह विचार करने लगा कि उसके मन्त्री-गण प्रबन्ध करने में अयोग्य हैं। इस समय उसको पुनः करण का ध्यान आया।

अपने को बन्दी बना देवनाम के सामने खड़ा किया जाना और फिर अपने पर विजय प्राप्त करने वाले विक्रम के कहने पर दया कर छोड़ दिया जाना, उसके लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी लज्जा और निन्दा की बात थी। कश्मीर में देवनाम की आज्ञा से सैनिक उसको एक रथ में हाथ-पाँव बाँधकर सीमा तक ले आए थे और इसी अवस्था में उसको सीमा के पार धकेल दिया गया था। वह क्रोध और ईर्ष्या से पागल हो घर लौटा था। उसने उन मन्त्रणा देने वालों को, जिन्होंने देवयानी के अपहरण की योजना बनाई थी, बुलवाया और उनकी त्रुटिपूर्ण सम्मति देने के लिए भर्त्सना की। उनको अयोग्य-मूर्ख-गँवार कहकर डाँटा और तत्पश्चात् करण को बुलाकर अपनी अवस्था वर्णन की।

करण ने जब नहुष के कश्मीर की राजकुमारी के अपहरण की बात सुनी तो बहुत दुःख अनुभव किया। उसने कहा—"महाराज ! इस समय आपके सम्मुख सबसे प्रथम कार्य राज्य को सुदृढ़ करना है। मान लीजिए, आप राजकुमारी देवयानी को उठाकर ले भी आते तो क्या होता ? मैं यह देख रहा हूँ कि आपका राज्य यहाँ दो-तीन वर्ष से अधिक नहीं रह सकता। शक्तिप्रसारक यन्त्र दुर्बल पड़ गया है, जिससे दूर-दूर के शक्तिप्रसार के यन्त्र बेकार हो गए हैं और वहाँ पर वर्ष में छः मास बर्फ पड़ी रहने लगी है। वहाँ के लोग अपना-अपना घर और भूमि छोड़ अमरावती में आ रहे हैं और कुछ देवलोक ही छोड़ रहे हैं।

"यहाँ अमरावती में लोगों की भीड़ बढ़ रही है और खाने की कमी हो रही है। यहाँ भी तापमान गिर रहा है और ऐसा अनुमान है कि देवलोक दो वर्ष में शीत-प्रधान हो जाएगा। तब यहाँ न खाने को मिलेगा न पहनने को। लोग जाड़े में ठिठुर-ठिठुरकर मर जाएँगे और आपका राज्य भी समाप्त हो जाएगा। तब राजकुमारी से विवाह हुआ है अथवा भिखारिन से, इसमें कोई अन्तर नहीं रह जाएगा।"

नहुष इस समस्या से घबड़ा उठा और पूछने लगा—"मुझको क्या करना चाहिए ? मैंने तो यह समझा था कि कश्मीर की राजकुमारी से विवाह हो गया तो फिर वहाँ का राज्य भी मिलेगा। तब देवलोक रहे अथवा न रहे, मैं अपनी राजधानी चक्रधरपुर बना लेता।"

करण मुस्कराया ओर बोला—"राजकुमारी से धोखा कर अथवा उसका अपहरण कर विवाह करते तो कश्मीर का राज्य प्राप्त नहीं होता। सम्भव है कि राजकुमारी भी आत्महत्या कर लेतीं। मेरी सम्मति तो सीधी है कि इन सब व्यर्थ की बातों को छोड़कर यह राज्य सुदृढ़ करने का यत्न करना चाहिए। इसके दो उपाय हैं। एक तो प्रजा को सन्तुष्ट करिए। उनको ऐसा अनुभव हो कि आप उनके अपने हैं। और दूसरा किसी योग्य व्यक्ति से मिलकर भवन की छत पर लगे यन्त्रादि को ठीक करवाइए। मैंने बहुतों से मालूम किया है और यही पता चला है कि इन्द्र और शची के अतिरिक्त ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो उनको ठीक कर सके। ब्रह्मा भी इस विषय में जानता तो है परन्तु वृद्ध होने के कारण वह स्वयं कुछ नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकता। उसको भी किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता होगी।"

इस सब वार्त्तालाप का प्रभाव यह हुआ कि नहुष ने करण को अपना प्रधान-मन्त्री मान लिया और उसकी सम्मति से राजकार्य चलाने लगा। करण ने नहुष से कहकर राज्यभर में यह घोषणा करवा दी कि आज से देवता और गान्धार में कोई अन्तर नहीं माना जाएगा। उनको भी राज्य-कार्य में भाग मिलेगा।

इस घोषणा का प्रभाव देवताओं पर कुछ विशेष नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि कार्यरूप में घटनाएँ इसके विपरीत हो रही थीं। पचास सहस्र गान्धार सैनिक कुछ कार्य नहीं करते थे और खाते-पीते देवताओं से अधिक थे। वे गान्धार से अपनी पत्नियाँ लेकर नहीं आए थे। इस कारण देवताओं की युवा स्त्रियाँ उनकी वासना की भेंट होती रहती थीं। भोजन-सामग्री उनसे बचकर ही देवताओं को मिल पाती थी। करण समझता था कि गान्धार-सैनिकों को शिक्षा देने की आवश्यकता है। राजा क्या कर सकता है, यदि उसके सैनिक ही उच्छृंखल हों? सैनिकों के कार्य उनके संस्कारों पर निर्भर हैं और संस्कार एकाएक बदल नहीं सकते। इस कारण इस एक घोषणा से वह कुछ चमत्कारी प्रभाव की आशा नहीं करता था। फिर भी वह निरन्तर यह घोषणा करवा रहा था। वह समझता था कि समय पाकर इसका प्रभाव अवश्य होगा।

इसका एक प्रभाव यह हुआ कि एक दिन भास्कर नहुष के न्यायालय में आ उपस्थित हुआ। नहुष उसकी लम्बी-चौड़ी देह को देख विस्मय में पड़ गया। भास्कर ने झुककर नमस्कार की और खड़ा हो गया। नहुष ने पूछा—"कौन हो तुम?"

"श्रीमान्! देवताओं का एक योद्धा हूँ। देवताओं के राज्यकाल में राज्य की ओर से मुझको खाने-पीने को मिलता था और मैं व्यायाम तथा मल्ल-युद्ध करता था। जब कोई पराक्रम का कार्य करना होता, मुझे बुला लिया जाता था। आपकी घोषणा सुनी है कि अब दोनों जातियों में भेद नहीं किया जाएगा। सो पहले की भाँति राज्य की सेवा के लिए आया हूँ।"

"तुम क्या कर सकते हो?"

"मैं मल्ल योद्धा हूँ। बीस, तीस, पचास तक लोगों से एक साथ लड़ सकता हूँ।"

"और यदि इस लड़ाई में तुम मारे गए तो?"

"यह नहीं हो सकता महाराज! यद्यपि आजकल खाने-पीने को विशेष कुछ प्राप्त नहीं होता, तो भी पचास तक को अनायास पछाड़ सकता हूँ।"

"तुम लाठी इत्यादि से लड़ोगे अथवा खाली हाथों से?"

"मैं बिना शस्त्र के लड़ूंगा।"

"तो पहले अपना कर्तब दिखाओ। उसके बाद हम विचार करेंगे कि तुमको

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य-सेवा में स्थान मिले अथवा नहीं।"

"तो श्रीमान् ! आप अपने आदमियों को मेरे साथ लड़ने के लिए बुलाइए।"

नहुष ने पचास योद्धाओं को बुलाया और भास्कर से लड़कर उसकी बोटी-बोटी कर देने की आज्ञा दे दी। भास्कर इससे भयभीत नहीं हुआ। वह लँगोटा कस मैदान में आ गया। पचास गान्धार योद्धा उस पर चीलों की भाँति पिल पड़े। भास्कर कितने ही दिनों से पेटभर खाना नहीं खा सका था, इस कारण कुछ दौर्बल्य उसके अन्दर आ गया था। फिर भी वह समझता था कि उन पचासों को वह पछाड़ सकेगा।

आरम्भ में तो पचास गान्धारों ने उसे गिरा लिया और उस पर चढ़कर उस को मुक्कों से पीटने लगे और नाखूनों और दाँतों से उसे नोचने लगे। पर एकाएक भास्कर उठा और उसके साथ आठ-दस योद्धा, जो उसके ऊपर चढ़े हुए थे, ऊपर उठ गए। उसने दो को टाँग से पकड़ ऐसा घुमाया जैसे कोई चूहों को पूँछ पकड़ कर घुमा रहा हो। दो-तीन चक्कर देकर वह उनको आकाश की ओर फेंकने लगा। वे पन्द्रह-बीस गज ऊपर जाकर ठप से नीचे गिरने लगे। इस तरह उसने कईयों के साथ किया। सबकी हड्डी-पसली टूटने लगीं। इस प्रकार पन्द्रह-बीस को घायल और निष्क्रिय कर चुका तो गान्धार-योद्धा घबड़ा उठे और उसके समीप आने से डरने लगे। जो बच गए थे वे दूर-दूर रहने लगे। पहले तो नहुष भास्कर पर हुए आक्रमण को देख 'वाह ! वाह !' करता रहा, परन्तु जब उसने अपने योद्धाओं को भय से दूर खड़े देखा, तो क्रोध से उतावला हो उठा। उसने समझा कि यह मनुष्य कोई दानव है। उसके मन में आया कि ऐसे मनुष्य को मरवा डालना अधिक अच्छा है। इससे उसने कहा—"पहलवान ! तुम बहुत बली हो, मैं तुम्हारे बल की प्रशंसा करता हूँ, परन्तु तुमने मेरे बीस-बाईस योद्धाओं को घायल कर दिया है। तुमको इस बात का दण्ड मिलना चाहिए।"

"पर श्रीमान् ! यदि मैं मर जाता, तो क्या होता ?"

"मैंने उनको तुम्हारी बोटी-बोटी काट देने के लिए कहा था।"

"श्रीमान् ! मुझको भी तो लड़ने की आज्ञा दी थी। मैंने वही किया है जो आप चाहते थे। इस कारण मैंने कोई अपराध नहीं किया। और मैं दण्ड का भागी नहीं।"

"परन्तु मैं यहाँ का राजा हूँ। यदि मेरे मन में आ जाय कि मैं किसी को मरवा डालूँ, तो मैं ऐसा कर सकता हूँ।"

भास्कर इस युक्ति से काँप उठा और अपनी स्त्री मिलिन्द को कोसने लगा। वह उसे कई दिनों से कह रही थी कि अब देवता और गान्धार एक समान हो गए हैं और उसे महाराज के यहाँ सेवा कर लेनी चाहिए। भास्कर समझता था कि उसको सब प्रकार की बातें समझाकर भेजा गया था, परन्तु उसकी स्त्री को यह पता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था कि इस समता की घोषणा वास्तविक नहीं थी।

इस समय जब भास्कर से नहुष का संवाद हो रहा था, करण वहाँ आ पहुँचा। नहुष ने उसको बुलाकर सब वृत्तान्त बताया और कहा—"इतना बली व्यक्ति देवताओं में नहीं होना चाहिए। इस कारण मैं इसको प्राणदण्ड देना चाहता हूँ।"

करण को नहुष की मूर्खता पर अत्यन्त निराशा हुई। उसने कहा—"महाराज, यह व्यक्ति जब आपकी सेवा करेगा तो आपके लाभ में ही कार्य करेगा।"

"पर यह देवता है।"

"ठीक है ! परन्तु आपने घोषणा करवा दी है कि आप दोनों जातियों के साथ समान व्यवहार करेंगे।"

नहुष का मन मानता नहीं था, परन्तु करण के समझाने पर उसने भास्कर को पेटभर खाने और वस्त्रादि के लिए दो रजत प्रतिदिन पर अपना सेवक बना लिया।

भास्कर ने महाराज नहुष की जय-जयकार की और घर चला आया। भास्कर देवलोक की विजय पर अपनी स्त्री और लड़कियों को लेकर देहात चला गया था और वहाँ छिपकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। कालान्तर में जब देहातों में शीत बढ़ने लगी और भोजन-सामग्री कम होने लगी, तो उसकी स्त्री ने उसे देश छोड़ अन्य देश में चलने के लिए कहा। भास्कर आलस्यवश जाने का नाम नहीं लेता था। एक दिन मिलिन्द घर आई और नहुष की घोषणा का उल्लेख कर बोली—"जाओ, उसके यहाँ सेवा-कार्य कर लो।" भास्कर इसे भी मानता नहीं था, परन्तु मिलिन्द से वह युक्ति में कभी भी जीत नहीं सका था। इस प्रकार विवश होकर वह अमरावती आया। मिलिन्द उसके साथ थी और आशा तथा कृपा देहात में रह गई थीं।

जब भास्कर नौकरी पाकर घर पहुँचा तो मिलिन्द से बोला—"तुम मुझसे तंग आ गई मालूम होती हो। आज तो मुझे मौत के मुख में भेज दिया था। नहुष ऐसा दुष्ट है कि जब मैंने उसके पचास योद्धाओं को पछाड़ दिया तो कहने लगा कि मैंने उसके योद्धाओं को बेकार कर दिया है, इस कारण मुझको फाँसी देगा। तुम तो राँड हो चली थीं। पर भगवान् का धन्यवाद है कि उसका मन्त्री करण वहाँ आ पहुँचा, और मेरी जान छूटी।"

मिलिन्द ने पूछा—"और नौकरी ?"

"हाँ ! वह भी मिल गई है।"

मिलिन्द ने कहा—"जब तक मेरे भाग्य में सौभाग्य बदा है, तब तक आपको मुझसे कौन छीन सकता है ?"

"भाग्य-वाग्य सब निकल जाता यदि कुछ देर करण वहाँ न पहुँचता।"

परन्तु असली परीक्षा तो भास्कर की उस दिन हुई जब नहुष ने एकान्त में उसे अपने प्रासाद में बुलाकर कहा—"वीर पुरुष !"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी महाराज !"

"जो हम कहेंगे करोगे ?"

"इसीलिए तो श्रीमान की सेवा स्वीकार की है।"

"यदि कहना नहीं माना तो !"

"तो दण्ड का भागी बनूंगा।"

"ठीक है ! तुमको कमलसर-दुर्ग जाना होगा। वहाँ तुम्हारा राजा इन्द्र रहता है। तुम्हें उसके पास जाकर उसका गला घोंटकर उसको जान से मारना है।"

भास्कर अवाक्‌मुख खड़ा रह गया। वह जानता था कि उससे यह नहीं हो सकेगा। परन्तु उसे न करने पर अभी मौत के मुख में धकेल दिए जाने का भय था। इसलिए न तो 'न' कर सका और न ही 'हाँ'। उसे चुप देख नहुष ने कहा—"इतने दिन खाना खा-खाकर व्यर्थ में नष्ट किया है न ? इसीलिए कहते थे कि सेवक हूँ ?"

भास्कर को चेतना हुई। वह अपनी जान भय में देख काँप उठा। इससे उसने कहा—"श्रीमान् ने गलत समझा है। मैं यह नहीं सोच रहा था कि आपका कार्य करूँ अथवा नहीं। आपकी सेवा की है तो आज्ञा का भी पालन करूँगा। मैं तो यह विचार कर रहा था कि इतना छोटा-सा काम और उसके लिए मुझको भेजना, मच्छर मारने के लिए आग्नेय अस्त्र चलाना है।"

"तुमको ही जाना होगा। तुमको बन्दी बनाकर वहाँ रखा जाएगा। अवसर पाकर एक दिन उसका गला घोंट देना।"

"मैं तैयार हूँ। कब जाना होगा ?"

"तुमको कल यहाँ से रवाना होना पड़ेगा। यहाँ से एक पत्र दिया जाएगा जो तुम वहाँ दुर्ग के अध्यक्ष को दे देना। आगे वह स्वयं देख लेगा।"

भास्कर जाने के लिए तैयार हो गया। वह एक बात मन में विचार कर रहा था कि जब इन्द्र बन्दी है तो बन्दी को मारने के लिए बाहर से किसी को भेजना तो बुद्धिमत्ता नहीं। दुर्ग का अध्यक्ष बहुत सुगमता से यह काम कर सकता है। उसके लिए एक योद्धा को पाँच सौ कोस का रास्ता तय करके भेजना, सर्वथा अयुक्ति-संगत है। वह इसमें कोई विशेष रहस्य समझता था। इस कारण वह चुपचाप जाने को तैयार हो गया। उसका विचार था कि अमरावती से बाहर जाकर विचार करना है कि उसे क्या करना चाहिए !

इस प्रकार वह आज्ञा पा अपनी स्त्री से इस नई समस्या पर विचार करने के लिए घर पहुँचा तो वहाँ अपनी स्त्री के स्थान पर देवर्षि नारद को बैठा देखा तो चकित रह गया। देवलोक के पतन के पश्चात् उसने नारद को नहीं देखा था। आज देख विस्मय करने लगा। उसने उत्सुकता से पूछा—"देव-ऋषि, आज यहाँ कैसे आना हुआ है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भाई भास्कर ! तुमसे ही मिलने आया हूँ।"

"सेवा बताइए महाराज !" भास्कर ने दत्तचित्त हो पूछा।

"यह बताओ कि इन्द्र कहाँ बन्दी है ?"

"आपको कैसे पता चला कि मुझे वह स्थान विदित है ?"

"यह बात भी भला छिपी रह सकती है। तुम जा रहे हो न उसे जान से मारने के लिए ?"

"यह आपको किसने कहा है ?"

"जिसने तुमको कहा है। मैंने यह नहुष के मुख से सुना है। अब तुम यह बताओ कि कहाँ जा रहे हो ?"

भास्कर ने स्थान बताया तो नारद ने कहा—"देखो भास्कर ! अब तुम्हारा इस नगर में ठहरना उचित नहीं। तुम यहाँ से सीमा पार कर कश्मीर चले जाओ। वहाँ तुम्हारे निवास-स्थान आदि का प्रबन्ध हो जाएगा।"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ। मैंने समझा था कि खाने-पीने को खूब मिलेगा, परन्तु यहाँ तो यह पापकर्म करने को मिला। मुझसे यह नहीं हो सकेगा, परन्तु भागूँ कैसे ?"

"इसका प्रबन्ध मैंने कर दिया है। तुम्हारी स्त्री और लड़कियाँ पहले ही यहाँ से विदा हो चुकी हैं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। चलो।"

भास्कर इसका अर्थ नहीं समझा। उसने कहा—"देवर्षि महाराज ! यह क्या रहस्य है ? मेरी पत्नी और लड़कियों पर श्रीमान् की कृपादृष्टि क्यों है ?"

नारद हँस पड़ा। उसने कहा—"वे तुमसे अधिक बुद्धिमान हैं। इस कारण कृपादृष्टि है। कल तुमको यहाँ से सीमा की ओर चल देना चाहिए। कल राज्य की ओर से दुर्ग के अध्यक्ष के नाम पत्र मिलेगा। मिलते ही यहाँ से चले जाना और फिर लौटकर नहीं आना।"

भास्कर अब भी नहीं समझा था। नारद ने उसको कहा—"अब मान जाओ देवता ! शेष अपनी पत्नी मिलिन्ददेवी से पूछ लेना।"

: ७ :

एक दिन एकाएक केन्द्रीय शक्ति-प्रसारक यन्त्र बन्द हो गया। नगर में ठण्डक हो गई और अँधेरा छा गया। लोगों ने तेल के दीपक जला लिये और जहाँ कहीं से भी लकड़ी मिली, जलाकर उष्णता पैदा करने का यत्न करने लगे। करण ने अपनी पत्नी सुमन से इसका कारण पूछा और जैसा वह अनुमान करता था, जीवित पारद समाप्त हो जाना ही इसका कारण प्रतीत हुआ।

सुमन का यह विचार था कि जीवित पारद कुछ मात्रा में यन्त्र के बाहर कहीं रखा होगा। यदि मिल जाए तो प्रयोग में लाया जा सकता है। उसने बताया कि इतना मात्र तो वह कर सकेगी। उसने पारद यन्त्र में डालते हुए इन्द्राणी को देखा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समाचार नहुष को मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। सुमन को यन्त्रालय में जाकर पारद ढूँढ़ने की स्वीकृति मिल गई और करण तथा सुमन की उपयोगिता और भी बढ़ गई। जब सुमन ने पारद की एक मात्रा ढूँढ़ निकाली और उसको शक्तिप्रसारक यन्त्र में डाल उसको चालू कर दिया, तब नहुष को विश्वास हो गया कि जो भय सुमन ने बताया है, वह सत्य है। सुमन का कहना था कि जो पारद अभी मिला है वह अधिक से अधिक एक वर्ष तक चल सकेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि एक वर्ष के भीतर इस पारद को उपलब्ध करने का यत्न करना चाहिए।

नहुष ने करण से पूछा—"जब तुम और तुम्हारी स्त्री इतना कुछ जानते हो तो इस पारद को कहीं से प्राप्त करने का ढंग जानने का यत्न क्यों नहीं करते ?"

"सब लोग कहते हैं कि इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ही इस रहस्य को जानते हैं। यदि आप इनके साथ मैत्री कर सकें तो यह सम्भव हो सकता है।"

"इन्द्र के साथ मैत्री तो असम्भव है। वह मेरे साथ मिलकर राज्य का भोग पसन्द नहीं करेगा। इसी कारण मैंने उसको समाप्त करने का उपाय कर लिया है।"

"समाप्त ! क्या अभिप्राय है आपका ?"

"मैंने उस योद्धा को, जिसने पचास योद्धाओं को एकदम पछाड़ा था, कमलसर दुर्ग में भेजा है। वह वहाँ बन्दी बनाकर रखा जाएगा। समय पाकर वह इन्द्र का काम तमाम कर देगा। पश्चात् उसको इन्द्र का अपराधी सिद्ध कर प्राणदण्ड दे दिया जाएगा।"

करण ने मुस्कराकर कहा—"यह योजना किसकी बनाई हुई है ?"

"क्यों ?"

"यह सफल नहीं हो सकेगी। वह योद्धा देवलोक से भाग जाएगा और अन्य किसी देश में चला जाएगा।"

"उसके साथ मेरे दस सैनिक गए हैं।"

"वे भी मार डाले जाएँगे।"

नहुष को इस भविष्यवाणी से सन्तोष नहीं हुआ। उसको अपनी बात पर विश्वास न करते हुए देख करण ने कहा—"यह आपने अच्छा नहीं किया। इन्द्र मारा नहीं जाएगा; परन्तु उसको पता चल जाएगा कि आप उसको मरवाने का षड्यन्त्र रच चुके हैं। इससे पारद के विषय में बातचीत करने में बाधा खड़ी हो जाएगी। कहीं ब्रह्मा को पता चल गया तो वह भी इस प्रकार हत्यारे से बातचीत करना पसन्द नहीं करेगा।"

"तब तो इस बात के निकलने से पूर्व ही इसका कोई प्रबन्ध करना चाहिए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ब्रह्मा देवलोक में ही रहता है। पहले उसी के पास जाकर यत्न करना चाहिए। यदि वह यहाँ की प्रजा की सुख-शान्ति के लिए यंत्रादि को चालू रखने का उपाय कर दे तो आपकी भारी जीत होगी।"

"तो तुम इस विषय में यत्न क्यों नहीं करते ?"

"आपको चलना पड़ेगा और जिस ढंग से मैं कहता हूँ, उस ढंग से बात करनी पड़ेगी।"

नहुष तीन दिन तक रात की शीत का कटु अनुभव प्राप्त कर चुका था। उसने उस दुःख से बचने के लिए करण की युक्ति पर काम करना स्वीकार कर लिया।

करण ने ब्रह्मा के पास जाने के पूर्व देवलोक में यह विख्यात कर दिया कि देवलोक-अधिपति देवलोक की उन्नति के लिए देव-पितामह ब्रह्मा से सहायता की प्रार्थना करने वाले हैं। इस घोषणा का प्रयोजन यह था कि इससे देवताओं का गान्धारों पर अधिक विश्वास हो और उनके लिए सहानुभूति उत्पन्न हो।

नारद इन दिनों देवलोक में ही था, वह इस नीति का विरोध करना चाहता था। उसको ब्रह्मा में विद्यमान दया की वृत्ति का ज्ञान था। कहीं ब्रह्मा प्रजा के सामयिक हित का विचार कर, नहुष की सहायता के लिए तैयार हो गया तो भारी अनर्थ हो जाएगा। वह उन तीन दिनों की अमरावती की अवस्था देख चुका था, जब यन्त्र बेकार हो गए थे। नारद का विचार था कि एक न एक दिन पारद समाप्त हो ही जाएगा। अब वह इन्द्र के बंदीगृह का पता भी जान गया था और वह उसको छुड़ाने का यत्न करना चाहता था। इस कारण वह सोचता था कि यदि देव-पितामह का हृदय लोगों का कष्ट देख पसीज गया तो वह पारद-रहस्य नहुष को दे बैठेगा उसके पश्चात् नहुष को जीतना कठिन हो जाएगा। परिणामस्वरूप पावन वैदिक संस्कृति का देवलोक से लोप हो जाएगा।

उसने नहुष के ब्रह्मा के पास जाने से पूर्व स्वयं ब्रह्मा के पास जाने को उचित समझा।

सुरलोक की सीमा के समीप एक साफ-सुथरे छोटे-से स्थान पर, जिसमें जीवन की प्रत्येक सुविधा के लिए प्रबन्ध था, ब्रह्मा का निवास था। उसने अपनी युवा अवस्था में सहस्रों शिष्यों को शिक्षा दी थी और बीसियों तपस्वियों को वरदान दे कर तारा था। कइयों को उसने ऐसे अस्त्र-शस्त्र भी दिए थे, जिनसे उन्होंने पृथ्वीभर को विजय किया था। कई बार तो इन वर-प्राप्त तपस्वियों ने ब्रह्मा की सन्तान देवताओं को कष्ट देना आरम्भ कर दिया था। अब आयु और अनुभव के बढ़ जाने से एकान्तवास को उचित मानकर वहाँ उस स्थान पर आकर निवास करने लगा था। उसका यह स्थान ब्रह्मलोक कहाता था।

जब नारद ब्रह्मा से मिलने गया तो ब्रह्मा को अचम्भा हुआ। उसने उत्सुकता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूछा—"संगीताचार्य ! कैसे आगमन हुआ ?"

"आपसे कुछ निवेदन करने आया हूँ।"

"कहो।"

"नहुष आपसे वर माँगने आ रहा है।"

"तो !"

"मैं समझता हूँ कि उसको वर नहीं देना चाहिए। अन्यथा सब बना-बनाया काम बिगड़ जाएगा।"

"क्या बना है जो बिगड़ जाएगा ? आज तीन वर्ष हो गए म्लेच्छों ने देवताओं की पत्नियों और पुत्रियों को पतित किया। उनको मार-मारकर अपमानित किया और अब उनको भूखों मार-मार देवलोक खाली किया जा रहा है। क्या किया है तुम लोगों ने इस अवस्था को सुधारने के लिए ? अब नहुष ने राज्य-कार्यभार में देवताओं को लेने के लिए घोषणा की है, सब देवता उसकी दासता के लिए तैयार हो रहे हैं। तुम्हारा योद्धा भास्कर भी उसके पास आजीविका के लोभ में उसकी सेवा के लिए गया है।"

नारद इस वृद्ध देवता को रुष्ट नहीं करना चाहता था। इस कारण उसने अपनी पूर्ण योजना ब्रह्मा के सामने रख दी। उसने कहा—"पितामह ! आपका कहना ठीक है कि नहुष का राज्य अभी तक देवलोक में है। इसमें सबसे बड़ा कारण तो यह है कि देवता कई सहस्र वर्षों तक बिना युद्ध, सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करते रहे हैं। वे इतने दुर्बल, सुख-स्वाद के इच्छुक और भीरु हो गए हैं कि उनसे कुछ भी आशा नहीं की जा सकती। इस कारण मैंने सुरलोक के उद्धार के लिए मानवों को तैयार किया है। कश्मीर के महाराज देवनाम की कन्या देवयानी का विवाह एक वीर पुरुष विक्रम से हो गया है और वह कश्मीर का सेनापति नियुक्त हो गया है। विक्रम ने कश्मीर-सेना का संगठन और परिवर्तन आरम्भ कर दिया है। कश्मीर-देश के बहुत-से सैनिक देवलोक में आकर देवताओं में उत्साह भर रहे हैं।

"भास्कर को मैंने ही उसकी स्त्री द्वारा उकसाकर नहुष की सेवा में भेजा था। उसको वहाँ भेजने का प्रयोजन सिद्ध हो गया है। हमें यह पता नहीं चल रहा था कि इन्द्र कहाँ बन्दी है। भास्कर की सहायता से अब वह पता चल गया है। मैं उससे सम्पर्क स्थापित करूँगा और फिर सुरलोक के विजय की योजना बन जाएगी। मैं आपके पास इस कारण आया हूँ नहुष आपसे पारद-रहस्य जानने का यत्न करेगा। यदि आपने उसको वह रहस्य दे दिया तो भगवन् ! हम कभी भी देवलोक का उद्धार नहीं कर सकेंगे।"

ब्रह्मा अपनी भर्राई हुई आवाज में हँस पड़ा। उसने कहा—"अब तुम मेरी सहायता माँगने के लिए आए हो ? परन्तु जब तुम लोग शक्तिसम्पन्न थे तब तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे कभी राय लेने की आवश्यकता नहीं समझी थी? जब गणराज्य का रूप इन्द्र-राज्य में बदला, तब भी तुमने मुझसे सम्मति नहीं ली। पूर्ण मनुष्यसमाज के आविष्कारों का निचोड़ देवताओं के भाग्य में बदा था, परन्तु प्रकृति के अन्तरतम रहस्य का ज्ञान भी इन्द्र के पापों को छुपा नहीं सका। यह पूर्ण रहस्य अपने पास रख उसने यह समझा था कि उसका राज्य अनन्त काल तक स्थिर रहेगा। विधि को कोई नहीं टाल सकता। वही बात जो उसने अपनी सत्ता स्थाई रखने के लिए की थी, अब उसके विपरीत जा रही है। कोई नहीं जानता कि उस अपार शक्ति को देवताओं के उद्धार के लिए अथवा इन्द्र को बन्दीगृह से छुड़ाने के लिए कैसे प्रयोग किया जाए।

"देखो!"—ब्रह्मा ने नारद की आँखों में देखते हुए कहा—"ज्ञान किसी की बपौती नहीं। यदि तुम इसको दूसरों से छुपाकर रखना चाहोगे तो यह तुमको भी छोड़ जाएगा।"

नारद को इन्द्र की अनुचित नीति का दोष मानना पड़ा, परन्तु उसने कहा—"पितामह! यदि इस समय यह रहस्य और लोगों को भी विदित होता तो नहुष ने अनेक देशों को जलाकर भस्म कर दिया होता। यहाँ तक कि वह कश्मीर, ब्रह्मा-वर्त इत्यादि सारी पृथ्वी पर ऊधम मचा देता।"

"ऊधम मचाने वाले तो बिना इस शक्ति का रहस्य जाने भी मचा रहे हैं। देखो, चन्द्रवंशीय लोग क्षीरसागर के तट से चलकर तुखार पहुँचे। वहाँ से कामभोज और कामभोज से गान्धार, और वहाँ से देवलोक पहुँच गए हैं। अब वे गान्धार, ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त में छा जाने वाले हैं। क्या वह प्रकृति की इस रहस्यमयी शक्ति के आश्रय बढ़ रहे हैं? इस शक्ति के ज्ञाता इन्द्र को तो अपनी नर्तकियों से ही अवकाश नहीं था। उसने महाराज कामभोज की तथा गान्धार के आर्यनरेश की सहायता तक नहीं की। जो ईश्वर की इस अनुपम देन को शुभ कार्यों में भी प्रयोग नहीं कर सका वह उसके भी काम नहीं आई।"

"आपका कथन सर्वथा सत्य है; परन्तु भगवन्! इन्द्र की भूल का परिणाम निर्दोष प्रजा को भोगना पड़ रहा है। इस समय परिस्थिति यह है कि सब बुद्धिमान और विद्वान् लोग देवलोक छोड़कर भाग रहे हैं। म्लेच्छों ने हमारे स्त्रीवर्ग को अपवित्र कर वर्णसंकर उत्पन्न करने आरम्भ कर दिए हैं। ऐसी अवस्था में, यह परिस्थिति कहीं स्थाई न हो जाए, इस कारण प्रकृति के इस रहस्य को नहुष को कदापि नहीं बताना चाहिए। आपके आशीर्वाद से और भगवान् की कृपा से मैं शीघ्र ही उनको देवलोक से बाहर खदेड़ दूंगा।"

"तुम जो कर सकते हो करो, परन्तु तुम मुझको ज्ञान को छुपाकर रखने को क्यों कहते हो? मेरी चिरन्तन नीति यही है कि अधिकारी को ज्ञान का पुरस्कार देता हूँ। यदि वह ज्ञान का दुरुपयोग करता है तो उसको उसके कार्य का फल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। कर्म के अच्छे अथवा बुरे होने पर न्याय करने वाला मैं कौन हूँ? कर्म का फल देने वाला भी मैं नहीं हूँ। जो अधिकारी है वह पाएगा ही।"

"यही तो भगवन्! मैं कह रहा हूँ कि नहुष अधिकारी नहीं। उसके पूर्व के कर्म उसको और अधिक शक्ति प्राप्त करने के योग्य नहीं बताते।"

"ठीक है। पर वह मेरे द्वारा दिए ज्ञान का दुरुपयोग ही करेगा, इसको मैं कैसे जान सकता हूँ? यूँ तो मैं समझता हूँ कि इन्द्र ने भी ज्ञान का सदुपयोग नहीं किया। यदि किया होता तो जो भय आर्यावर्त को हो रहा है, वह नहीं हो सकता था।"

नारद का आयोजन सफल नहीं हुआ। वह ब्रह्मा से वचन नहीं ले सका कि पारद-रहस्य नहुष को न बताया जाए।

: ८ :

परन्तु ब्रह्मा के अनुभव के सम्मुख नारद अभी बालक था। ब्रह्मा ने जैसे नारद को डाँटा उससे कहीं अधिक नहुष को फटकारा।

नहुष आया। वह ब्रह्मा से भेंट की स्वीकृति ले करण को साथ लेकर उससे मिलने गया।

ब्रह्मा एक आसन पर बैठा था। ये दोनों अनेकानेक वस्तुएँ भेंट के लिए ले गए। उन सबको ब्रह्मा के सम्मुख रखा और चरण-स्पर्श कर वन्दना की। ब्रह्मा ने सम्मुख आसन पर बैठने का आदेश देखकर पूछा—"कौन हो तुम?"

नहुष ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"सेवक का नाम नहुष है। गान्धारदेश में कमलसर-दुर्ग का रहने वाला हूँ। इस समय इस देश का राज्य करने का काम भगवान् ने मेरे कन्धों पर रख दिया है। यह जान कि आप इस देश के प्राचीनतम विद्वान् हैं, आपकी सेवा के निमित्त आया हूँ।"

"बहुत अच्छी बात है। यह साथ कौन है?"

"यह मेरे प्रधान मन्त्री करण हैं।"

ब्रह्मा ने करण की ओर ध्यान से देखकर कहा—"तुम! तुम इसकी सेवा में कैसे रह सके हो? तुम दोनों की प्रकृति नहीं मिलती।"

करण इस अन्तरात्मा की बात का रहस्य खुल जाने से भारी असमंजस में पड़ गया। जहाँ उसको इस बात के प्रकट हो जाने से संकोच हुआ, वहाँ ब्रह्मा की इस दिव्य दृष्टि पर अचम्भा भी हुआ। नहुष ब्रह्मा के इस कटाक्ष को समझ नहीं सका। इससे वह चुपचाप मुख देखता रहा। करण ने कहा—"भगवन्! कर्मों की गति अति गहन है। मूर्ख राज्य करते हैं, विद्वान् भिक्षा माँगते हैं। सुन्दर स्त्रियाँ वेश्या-वृत्ति करती हैं। साधारण स्त्रियाँ सती-साध्वी होती हैं। वृद्ध अनुभवी जनों को सठिया गया समझा जाता है और युवा विषय-लोलुप पुरुष अपनी बुद्धि को ठीक मार्ग पर कार्य करती हुई मानते हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा समझ गया कि करण पढ़ा-लिखा समझदार व्यक्ति है। इससे कहने लगा —"यह तो मूर्खों की-सी बातें हैं। बुद्धिशील, कर्मनिष्ठ मनुष्य तो ऐसी धारणा नहीं रख सकते। उनको तो अपनी बुद्धि से वेश्यावृत्ति नहीं करनी चाहिए। खैर, छोड़ो इस बात को। ये श्रीमान् तीन वर्ष तक देवलोक का सत्यानाश कर आज यहाँ किसलिए आए हैं? जो कुछ देवलोक में हुआ है, वह सब मैं जानता हूँ। उससे इन्कार करने की आवश्यकता नहीं।"

"तो पितामह! यह भी तो आप जानते होंगे कि हम किस निमित्त सेवा में उपस्थित हुए हैं?"

"जानता तो हूँ, परन्तु जब कोई वस्तु माँगी जाती है तो अपने मुख से कही जाती है। बताओ मुझसे क्या चाहते हो?"

"हम यह चाहते हैं कि आप राज्यकार्य के चलाने में, अपने ज्ञान से, हमारी सहायता करें। शक्तिकेन्द्रों में जीवित पारद समाप्त हो रहा है। इसके समाप्त होने से पूर्ण देवलोक शीतमय, अन्धकारमय, बंजर और दुःखमय हो जाएगा। इस विपत्ति से आप अपने ज्ञान द्वारा हमारी रक्षा कर सकते हैं।"

"तुमको यह सूचना किसी ने ठीक दी है, परन्तु तुम एक बात नहीं समझे। ज्ञान हरजाई नहीं है। सरस्वती भगवान् विष्णु की पत्नी है। वह हिरण्यकश्यपु की पत्नी नहीं बन सकती।"

"ठीक है। हिरण्यकश्यपु की पत्नी नहीं, तो समाज की माता तो सरस्वती है। हम समाज की रक्षा के लिए ही उसका आह्वान करना चाहते हैं।"

"माँ को अपनी सन्तान की चिन्ता नृशंस शासकों से अधिक रहती है। वह देख रही है कि उनकी दुर्दशा हो रही है; परन्तु कपूतों को शिक्षा देने के लिए कभी कष्ट देना भी उचित ही होता है।"

"तो क्या यह कष्ट अभी पर्याप्त नहीं हुआ?"

"नहीं! साथ ही कष्ट जिस दिशा से है, उस दिशा का सुधार करना है। अभी तक पारद की दिशा से कोई कष्ट नहीं। तीन दिन तक यंत्र बन्द रहे थे, तो माँ भगवती ने जनता के कष्टनिवारणार्थ पारद ढूँढ़ निकाला और कार्य फिर चालू हो गया।"

"माँ भगवती ने?" करण ने अचम्भे से पूछा—"भगवन्! उसको ढूँढ़ने वाली···" ब्रह्मा ने बात बीच में ही काटकर कहा—"ठीक है! ठीक है! तुम्हारी पत्नी सुमन ने ढूँढ़ा है न? पर कौन कह सकता है कि वह माँ का अवतार नहीं है?"

करण निरुत्तर हो गया। जो कुछ वह माँगने आया था, वह मिला नहीं। इस कारण उसने अत्यन्त नम्रतापूर्वक पुनः कहा—"आप महाराज नहुष के लिए क्या आज्ञा करते हैं?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अभी समय है कि देवलोक छोड़ अपने देश को चला जाए। इन्द्र को लाकर उसके सिंहासन पर बिठाए और उससे क्षमायाचना करे।"

"और कोई मार्ग नहीं ?"

"था, परन्तु अब नहीं है।"

"कब था ? और अब क्यों नहीं है ?"

"जब राज्य स्थापित किया था, उस समय प्रजा को प्रजा के भाव से देखता तो यहाँ से कोई न कोई विद्वान् सहायतार्थ भेज दिया जाता। परन्तु उसने प्रजा को दास-दासियों का रूप दिया। अपने को स्वामी बनाया और उनका मूर्खतापूर्ण ढंग से भोग किया। अब इस सब कुछ हो जाने के उपरान्त यदि यह अपने देश को लौट जाए, तो उसका यहाँ आना भगवान् के दंड का रूप ही माना जाएगा। ऐसा माना जाएगा कि डंडा मूर्ख देवताओं की पीठ पर लगा है और वापस चला गया है।

"दंड जिसकी पीठ पर पड़ता है उसकी पीठ के साथ जुड़ नहीं जाता, लौट जाता है। यदि यह वहीं जुड़ा रहा, तो जोंक का रूप हो जाएगा और फिर जो व्यवहार जोंक के साथ होना चाहिए वह उसके साथ भी होगा।"

करण ने नहुष के पिछले कर्मों के लिए क्षमायाचना करते हुए कहा—"हमारे देश में राजा स्वामी होता है। इस कारण नहुष ने यहाँ भी स्वामित्व ही दिखाया। इतने समय तक इस देश में रहने से, इस देश के व्यवहार का ज्ञान इनको हो रहा है और यदि आप आशीर्वाद दें तो राजा के भाव से प्रजा की रक्षा का कार्य किया जाएगा। कुछ मास से श्रीमान् जी ऐसा ही व्यवहार रखने का यत्न कर रहे है।"

"सो तो मैं जानता हूँ। भास्कर को इन्द्र का गला घोंटने के लिए भेजना इसी भावना का चिह्न है न ? देखो करण ! तुम मुझको धोखा नहीं दे सकते। मैं अपनी योगसाधना के कारण त्रिकालज्ञ हूँ। इसी कारण मैं कहता हूँ कि अभी समय है। नहुष को इन्द्र को देवलोक में वापस बुला, उसका राज्य उसको सौंप देना चाहिए। अभी तक जो भोग उसने भोगा है, अपने पूर्वजन्मों के पुण्य कर्मों के फल से है। आगे जो कुछ वह करेगा वह उस फल से ऊपर की बात होगी और फिर उसका परिणाम भी होगा। वह परिणाम महाभयंकर होगा।"

इतना कह ब्रह्मा ने भेंट की उन सब वस्तुओं की ओर संकेत कर कहा—"इनको ले जाओ। ये मेरे काम की वस्तुएँ नहीं हैं। मैं इनको लूँगा भी नहीं। ये देवताओं के रक्त से रँगी प्रतीत होती हैं।"

ब्रह्मा से भेंट समाप्त हुई और नहुष कुछ पाने के स्थान कुछ खोकर ही गया। फिर भी करण ने अमरावती में पहुँच कर यह घोषणा करवा दी कि महाराज नहुष देवताओं के पितामह ब्रह्मा से मिलने गए थे। महाराज ने पितामह के चरणों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक वस्तुएँ भेंट कीं और उन्होंने अपार कृपा कर इन सब वस्तुओं को वहाँ की जनता में वितरण करवा दिया। पितामह ने महाराज की इस नीति को कि गान्धार और देवता दोनों जातियाँ एकसमान प्रजा हैं, सराहा है। दोनों में अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण वार्तालाप हुआ। पितामह ने आशा प्रकट की कि एक वर्ष के पश्चात् इस नीति का अच्छा प्रभाव जानकर वे प्रसन्न होंगे।

सुमन इस भेंट का परिणाम जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी। इस कारण जब करण अमरावती लौटा और नहुष को प्रासाद में छोड़कर अपने कक्ष में आया तो सुमन ने चरण छूकर बिठाया, पाँव धोये और पूछा—"क्या सफलता मिली ?"

करण की हँसी निकल गई। उसने हँसकर कहा—"सफलता क्या मिलनी थी, डाँट पड़ी है। सुमन ! तुमने किस प्रकार कहा था कि पितामह भोले-भाले हैं, वह जनता का हित समझ कुछ उपाय बता देंगे ?"

"मैंने जैसा उनके विषय में सुन रखा था, वैसा ही आपको बता दिया। मैंने स्वयं उनको कभी नहीं देखा। क्या हुआ है ?"

"पहली बात तो यह है कि उनको यहाँ की प्रत्येक बात का ज्ञान है। तुम्हारे विषय में भी, यहाँ तक कि तुम्हारा नाम भी उनको विदित है। महाराज और उनके सैनिकों ने जो कुछ किया वह सब उनको ज्ञात है। ऐसी अवस्था में उनसे महाराज के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति की आशा व्यर्थ थी।"

"प्रजा के नाम पर ही उनसे सहायता माँगनी थी।"

"माँगी थी। कहने लगे, ज्ञान की देवी, भगवती सरस्वती को अपनी सन्तान की नृशंस राजा से अधिक चिन्ता है। कभी कुसन्तान को शिक्षा देने के लिए कुछ कष्ट देना पड़ता है। माँ भगवती उनके विषय में स्वयं विचार कर लेगी। पहले भी तो उसने पारद ढूँढ़ निकाला है।"

"आपने कहा नहीं कि भगवती ने नहीं प्रत्युत आपकी पत्नी ने···।"

करण खिलखिलाकर हँस पड़ा और बात काटकर बोला—"बताया था। कहने लगे कि कौन कह सकता है कि तुम भगवती का अवतार नहीं हो ?"

"तो कुछ नहीं मिला ?"

"मिला है। शिक्षा मिली है। महाराज को कहा गया है कि अपने देश को लौट जाएँ और यह राज्य इन्द्र को लौटा दें।"

सुमन इस उत्तर के अर्थ समझने का यत्न करती रही। बहुत विचार के उपरान्त उसने पूछा—"और महाराज क्या चाहते हैं ?"

"वे इस बात के लिए तैयार नहीं हैं। एक बार राज भोगकर पुनः खेतों में हल नहीं चलाया जा सकता। साथ ही इन पचास सहस्र सैनिकों का क्या होगा ? इनमें से सहस्रों ने यहाँ विवाह कर लिए हैं। उनके बाल-बच्चे हैं। वे कैसे लौट सकेंगे ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर उनकी वहाँ भी पत्नियाँ हैं। ये सब बातें हैं जो उन्हें अपना पग पीछे ले जाने की स्वीकृति नहीं देतीं।"

"फिर आगे पग किस ओर जाएगा ?"

"अभी हमने विचार नहीं किया। मेरा तो विचार है कि इस देश में गान्धार और देवताओं का समन्वय होना चाहिए। दोनों को मिलकर उपाय ढूँढ़ने चाहिए कि किस प्रकार इस देश का जीवन चलेगा।"

"यह ठीक है। पर क्या इन्द्र से किसी प्रकार मैत्री नहीं हो सकती ?"

इस सुझाव को सुनकर करण गम्भीर विचारों में डूब गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

: १ :

देवयानी के स्वयंवर में नहुष के व्यवहार को सुमति ने भी देखा था। नहुष के मायावी रूप को देख वह उस चित्र का रहस्य जान गई, जो वह देवयानी के पास लेकर आई थी। वह यह जान अति लज्जित हुई थी कि किसी ने उसके पिता को मूर्ख बना देवयानी के पास नहुष के मायावी रूप का चित्र भिजवाया था। किन्तु वह यह नहीं समझ सकी थी कि देवयानी के स्वप्नों का रहस्य नहुष को कैसे विदित हो गया।

इस विषय में उसको बहुत खोज और विचार करने की आवश्यकता नहीं रही। सुमति का पिता महर्षि पाणिनी स्वयंवर में उपस्थित था। उसने भी नहुष की धृष्टता को देखा था। वह भी इस विषय में अपने भाग पर लज्जित था और स्वयंवर से लौटकर उसने सुमति से कहा—"बेटी सुमति ! बहुत भूल हुई कि हमने वह चित्र देवयानी को भेजा। भगवान् का धन्यवाद है कि अन्त वैसा नहीं हुआ जैसा करने के लिए यत्न किया गया था।"

देवयानी के स्वप्नों के रहस्य को सुमति ने अपने पिता को बताया तो वह स्तब्ध रह गया। सुमति ने कहा—"पिताजी ! यही कारण है कि जब उसने महादेव का रूप देखा तो अपने संस्कारों के अधीन उसके गले में माला डालने पर उद्यत हो गई।"

"तुमने यह स्वप्न की बात कल्लर से तो नहीं कही थी ?"

"क्यों ? कही तो थी। क्या बात है पिताजी ?"

"बात यह है कि उसके एक परिचित ने ही वह चित्र मुझको देवयानी तक पहुँचाने के लिए दिया था।"

"सत्य ! तब तो उसने बहुत बुरा किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह विश्वासयोग्य पुरुष नहीं है।"

"अभी अनुभवहीन है। इसी से भूल कर बैठा है।"

इससे सुमति को सन्तोष नहीं हुआ। वह कल्लर से मिलने को चल पड़ी। कल्लर अपने आगार में बैठा स्वाध्याय कर रहा था। सुमति को आया देख बाहर निकल आया। सुमति ने कहा—"आपसे एक आवश्यक बात करनी है।"

"कहाँ ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पिताजी के सम्मुख।"

"तो चलो।" कल्लर ने सोचा कि विवाह के विषय में बात करनी होगी। इस कारण वह तुरन्त उसके साथ चल पड़ा। दोनों वहाँ आ गए, जहाँ सुमति के माता-पिता बैठे थे और स्वयंवर पर हुई दुर्घटना पर विचार कर रहे थे। इनको आया देख माँ ने बैठाया और पूछा--"क्या बात है?"

"आपने मेरी सगाई इनके साथ कर दी है।"

"हाँ! हमने तुम्हारी इच्छा के अनुसार अपनी ओर से यही निश्चय किया है।"

"मैं इन महानुभाव से यह पूछना चाहती हूँ कि इन्होंने किसी के सम्मुख कोई ऐसा बात की है जो मैंने इन पर विश्वास कर इनको बताई हो?"

ऋषि और ऋषि-पत्नी दोनों कल्लर का मुख देखने लगे। कल्लर ने बहुत विचारकर कहा—"सुमतिदेवी के विषय में मैंने कोई बात किसी से नहीं कही।"

सुमति ने अपनी बात का अभिप्राय समझाने के लिए कहा—"मैंने यह नहीं पूछा। मैंने तो यह पूछा है कि कोई ऐसी बात, जो मैंने आपको विश्वासपात्र मानकर आपसे कही हो, वह आपने किसी से कही है क्या?"

कल्लर ने पुनः कहा—"मुझको स्मरण नहीं कि मैंने आपके विषय में कोई बात किसी से कही हो। किसी अन्य के विषय में कुछ कहा हो तो मैं नहीं कह सकता।"

"यही तो पूछ रही हूँ। मैंने राजकुमारी देवयानी के स्वप्नों के विषय में एक बार आपसे कुछ कहा था। क्या आपने वह किसी से कहा है?"

"वह एक साधारण-सी बात थी। मैंने अवश्य किसी से कही थी।"

"यह आपने अच्छा नहीं किया। मैं राजकुमारी की प्रिय सखियों में से एक हूँ। मैं उनसे अनेक विषयों पर बातचीत करती हूँ। आप मेरे होने वाले पति हैं। आपसे कोई बात छुपाकर रखना मेरे लिए उचित नहीं, परन्तु आपका पेट इतना हलका है कि उसमें कोई बात रहनी कठिन प्रतीत होती है।

"ऐसी अवस्था में दो में से एक बात करनी होगी। या तो मुझको राजकुमारी से मेल-जोल बन्द कर देना होगा या आपसे सम्बन्ध तोड़ देना होगा। इन दोनों में से मैंने यही चुना है कि मैं आपसे विवाह न करूँ। आपको इस प्रकार की दुविधा में पड़ने का अवसर ही नहीं आएगा।"

इस पर ऋषि-पत्नी ने बातबीच में ही बाधा डालकर कहा—"विवाह तोड़ना सुगम बात नहीं है।"

"पर माँ! विवाह अभी नहीं हुआ। भगवान् का धन्यवाद है कि उससे पूर्व ही मुझको अपनी भूल का ज्ञान हो गया है। मैं इनसे विवाह नहीं करूँगी।" इतना कह वह उठ खड़ी हुई।

महर्षि ने जाते हुए लड़की को कहा—"ठहरो! मेरी सम्मति मानो! अभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सगाई को तोड़ने भी घोषणा न करो। एक मास तक प्रतीक्षा करो और देखो शायद तब तक तुम्हारा यह विचार बदल जाए।"

सुमति पिता की बात सुनकर गम्भीर विचार में पड़ गई। कुछ काल तक विचार कर उसने कहा—"बहुत अच्छा पिताजी ! आज से एक मास पश्चात् मैं अपने विचार इनको बता दूँगी।" यह कहकर वह वहाँ से चली गई।

कल्लर कुछ समय तक वहाँ बैठा सोचता रहा। वह इस बात को इतना बड़ा अपराध नहीं समझता था। पर कर ही क्या सकता था ! गुरुजी को नमस्कार कर चुपचाप अपने आगार में चला गया।

राजकुमारी के विदा होने से पूर्व सुमति उससे मिलने गई। एकान्त में उसने अपने और कल्लर के सम्बन्ध में हुई सब बात बताई। राजकुमारी कल्लर के साधारण से काम का इतना भयंकर परिणाम, कि वह भ्रम में फँस एक अनिच्छित के गले में जयमाल डालने वाली थी, का विचार कर काँप उठी थी। फिर भी जब सुमति ने बताया कि वह अब उससे विवाह की इच्छा नहीं रखती तो चकित रह गई। उसने सुमति से कहा—"पर यह तुम क्या कर रही हो सखि !"

"मैं अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करना चाहती हूँ। और जब भी भूल सुधार का अवसर पाती हूँ तो उसे सुधारने के लिए तैयार हो जाती हूँ।"

"सुमति ! मेरा विचार है कि इतनी शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। देखो, मैं दो-तीन मास के पश्चात् यहाँ लौटकर वापस आऊँगी, तब तुमसे इस विषय में बात करूँगी। तब तक तुम इस सम्बन्ध को तोड़ो नहीं।"

सुमति चुप रही। दोनों सखियाँ गले मिलीं और पृथक् हो गईं। देवयानी ने बताया—"मैं यह चाहती हूँ कि तुम्हारे जीजाजी इस स्थान पर आकर राज्य के कठिन कार्य में पिताजी का हाथ बटाएँ। मैं भी उस उच्छृङ्खलता का, जो नहुष ने मेरे साथ की है, प्रतिकार लेना चाहती हूँ। मैं ऐसा उदाहरण उपस्थित कर देना चाहती हूँ कि भविष्य में कश्मीर की किसी भी कन्या की ओर कोई आँख न उठा सके। एतदर्थ हम शीघ्र ही आएँगे।"

विवाह के तीन मास पश्चात् देवयानी अपने पति के साथ चक्रधरपुर वापस लौट आई। लौटने के अगले दिन उसने सुमति को बुलवाया। सुमति अति प्रसन्न थी। देवयानी ने जब कल्लर के विषय में पूछा तो उसने बताया—"पिताजी के सम्मुख बात होने के अगले दिन वह अपना सामान बाँधकर बिना मुझसे मिले चला गया। मैं समझती हूँ कि यह अच्छा ही हुआ है।"

"अच्छा क्यों हुआ है ?"

"उसके मन का विकास बहुत ही निम्न कोटि का था। मुझको देवर्षि नारद से यह विदित हुआ है कि उसने एक अँगूठी के लोभ में तुम्हारे स्वप्नों के रहस्य को बेच डाला था। मैं ऐसे आदमी को अपने योग्य नहीं मानती।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर अब क्या समाचार है?"

"कैसा समाचार ? मेरे विवाह का ?"

"हाँ, अभी इस विषय में कहीं विचार हो रहा है या नहीं ?"

"अभी कुछ भी निश्चय नहीं किया।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि विचार तो किया है। कोई है भी, जो सुमति को अपने योग्य प्रतीत हुआ है ?"

"यह तो नहीं कह सकती। हाँ, यह कहा जा सकता है कि कोई है जिसको सुमति अपने योग्य प्रतीत हुई है।"

"कौन है, जो अपने पर इतना गर्व करता है ?"

"कोई है जिसको मैं तुम्हारे योग्य नहीं समझती थी। परन्तु अब वह अपने को मेरे योग्य समझता है।"

देवयानी इसका अर्थ नहीं समझी। जब उसने बहुत आग्रह किया तो सुमति ने बताया—"एक दिन देवर्षि नारद मुझसे मिलने आए और उन्होंने बताया कि कैसे कल्लर ने एक साधारण-सी वस्तु के लिए तुम्हारा रहस्य बेच दिया था। उनकी बात सुनकर पिताजी ने मेरे और कल्लर के विषय में बात बताई। तब देवर्षि मेरी प्रशंसा करने लगे। इसके पश्चात् वे कई बार पिताजी से और तदन्तर मुझसे मिलने आए। वे जब भी मिलते, मेरी प्रशंसा करते थे। तब एक दिन मैंने कह ही दिया—'आप तो ऐसे कह रहे हैं जैसे आपको मुझसे प्रेम हो गया है।' इस पर वे मेरी ओर ध्यान से देखकर बोले—'सुमति, तुम सत्य ही प्रेम किए जाने योग्य हो।'

"मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी। वे फिर बोले—'तुम ऋषिकन्या हो। तुमको वरने का सौभाग्य मुझको मिले तो मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा। सुमति ! तुम इसको हँसी की बात मत मानो। तुममें कुछ विशेष बात है जो मुझ जैसे को भी आकृष्ट कर सकी है। यह तुम्हारी विद्या भी हो सकती है। यह तुम्हारे मन की दृढ़ता भी हो सकती है अथवा कुछ अन्य बात भी हो सकती है। तुम चाहो तो मैं तुम्हारे करकमलों को ग्रहण करने का प्रार्थी बन सकता हूँ।'

"मैंने हँसी में पुनः कह दिया—'आपके प्रार्थी बनने को मैं भला मना क्यों करूँगी। यह तो मेरे लिए गर्व की बात होगी कि देवर्षि संगीताचार्य श्री पाणिनी महाराज की कन्या को वरने के लिए प्रार्थी हैं।'

"इसके बाद वे मुझसे खुले रूप में प्रेम प्रकट करने लगे हैं। अब माता-पिता जी की दृष्टि में भी वे मेरे प्रेमी हैं।"

"तो क्या तुमने उनको कुछ आशा दिलाई है ?"

"मैंने कहा था कि मेरे भाग्य में एक असुर पति लिखा है। वे कहने लगे कि यदि मैं उनसे विवाह का वचन दूँ तो वे जगत्-भाग्य-विधाता ब्रह्मा से कहकर मेरा भाग्य बदलवा देंगे। मैंने अभी तक कुछ भी उत्तर नहीं दिया। आजकल वे देवलोक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए हुए हैं और पुनः यहाँ आने वाले हैं। उनकी एक प्रेमपूर्ण याचिका मेरे पास आई है।

"मैंने उनको तुमसे उद्यान में बात करते एक दिन देखा था। तब वे मुझको प्रौढ़ावस्था के प्रतीत हुए थे और यह समझकर कि वे तुमसे विवाह का प्रस्ताव कर रहे हैं मैंने सखियों में तुम्हारी हँसी उड़ानी चाही थी, परन्तु अब···।"

इतना कह सुमति चुप और गम्भीर हो गई। देवयानी ने मुस्कराकर पूछा—"परन्तु क्या ? अब तुमको वे युवा प्रतीत होते हैं ?"

"कह नहीं सकती।"

"देवताओं में यही गुण है। वे प्रायः युवा रहते हैं।"

: २ :

देवयानी के स्वयंवर के पश्चात् नारद कश्मीर की देवलोक के उद्धार में सहायता का विश्वास लेकर देवलोक में चला आया था। वह छिपकर देवताओं के मन में उत्साह उत्पन्न करने का यत्न कर रहा था। यहाँ उसके अनेक ही परिचित थे परन्तु जो बात उसने देखी वह अत्यन्त निराशाजनक थी। बहुत से देवता अपनी स्त्रियाँ गान्धारों के हाथ खो चुके थे। बहुत से ऐसे थे जो गान्धार-सैनिकों के आश्रय जीवित थे। और शेष इतने भयभीत हो चुके थे कि नारद से बात करते भी डरते थे। अमरावती में जब नारद को किंचित् मात्र भी सफलता नहीं मिली तो वह नगर छोड़ देहातों में जा-जाकर जनता को तैयार करने का यत्न करने लगा। इससे उसका यह आशय था कि जनता का एक संगठन तैयार कर नहुष के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जाए।

देवलोक के देहातों में उसको कुछ लोग सहायक मिल गए। उनमें भास्कर की स्त्री मिलिन्द एक थी। भास्कर की बड़ी लड़की आशा दूसरी थी। नारद को इन्द्र से मिलकर इस कार्य को आगे चलाने की इच्छा हुई तो इन्द्र के बन्दी-स्थान का जानना आवश्यक हो गया। अमरावती में कोई नहीं जानता था कि इन्द्र किस स्थान पर बन्दी है। इतना तो इन्द्राणी से पता चला था कि इन्द्र को गान्धार की सीमा की ओर ले जाया जा रहा था। जब उसने यह देखा तो वह भागकर कश्मीर की सीमा में आ गई थी। इन्द्र का बन्दी-स्थान जानने के लिए मिलिन्द की प्रेरणा से भास्कर को नहुष की सेवा करने के लिए तैयार किया गया और फिर नहुष के मस्तिष्क में यह बात डाल दी गई कि इन्द्र को भास्कर मार डालेगा। इस प्रकार जब भास्कर को इस कार्य पर नियुक्त किया गया तो उसको इन्द्र का पता मिल गया, तदनन्तर भास्कर को अमरावती से कश्मीर पहुँचा दिया गया।

नारद ब्रह्मा से मिलने के उपरान्त इन्द्र को मिलने चला गया। इन्द्र से मिलना इतना सुगम नहीं था। इसमें तो नारद के संगीत और वीणा के बल पर सफलता मिली। यह कहा गया कि एक साधु बन्दी को संगीत सुनाना चाहता है। नहुष का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा भाई इन्द्र की देखभाल करता था और जब उसको नारद का संगीत पसन्द आया तो बन्दी के सम्मुख नारद को उपस्थित होने का अवसर मिल गया।

नारद ने ब्रह्मा से अपनी भेंट का विवरण इन्द्र को बताया। इन्द्र अब भी यह सम्मति रखता था कि प्रकृति की शक्ति का गूढ़ रहस्य सबको बताने से संसार में अनर्थ हो जाएगा। अतः उसने वह सब ज्ञान केवल अपने पास रखने से कोई पाप नहीं किया। ब्रह्मा के इस लाँछन को उसने ठीक नहीं माना कि इस शक्ति द्वारा कामभोज और गान्धार की म्लेच्छों से रक्षा नहीं की गई। उसका कहना था कि वहाँ के राजाओं ने देवताओं से सहायता माँगी नहीं। नारद को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि इन्द्र बूढ़ा हो गया है। फिर भी उसने कहा—"श्रीमान्, अब आप क्या करना चाहते हैं? यहाँ बेकार बैठे रहने से कुछ लाभ नहीं। प्रजा भूख से मर रही है। शक्ति-प्रसारक यन्त्र बिगड़ते जाते हैं। तीन दिन तक वह काम नहीं कर सके और पूर्ण देश में त्राहि-त्राहि मच गई थी। जनता में चरित्रहीनता बढ़ रही है। वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न की जा रही है। यज्ञ, दान, धर्म से श्रद्धा उठ रही है। नास्तिकता का बोलबाला है।"

"जब लोग इतने दुःखी हैं तो विद्रोह क्यों नहीं करते?"

"आपने उनमें इतना साहस रहने दिया हो तब तो! उनको सुख, आराम, विषय-भोग के जीवन में इतना डाला है कि उनमें विद्रोह करने की शक्ति ही नहीं रही।"

"तो यह भी मेरा दोष है कि मैंने उनको सुखी रखा है?"

"सहस्रों वर्षों से देवलोक किसी युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ है कि वास्तविक क्षत्रिय जाति हमारे यहाँ नहीं रही। सब भीरु हो गए हैं। यह राजा का कर्तव्य है कि अपने राज्य की वृद्धि में यत्नशील रहे।"

"मैंने जो कुछ किया था, प्रजा के सुख, शान्ति और जीवन के लिए किया था। मैंने अपने जीवन में एक ही ढंग से युद्ध किया है। प्रकृति के विघटन से प्राप्त शक्ति द्वारा विध्वंस करके। यह मैं अब भी कर सकता हूँ, परन्तु इसके लिए मेरा अपने भवन में पहुँचना आवश्यक है।"

नारद समस्या के इस सुझाव से कोई लाभ नहीं समझता था। उसने कहा—"आपके भवन तक ले जाने में ही तो कठिनाई है। यही तो सोचना है कि यह कैसे हो?"

इन्द्र का एक ही उत्तर था—"देवताओं को विद्रोह करना चाहिए। एक बार तो गान्धारों से युद्ध करना ही होगा। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो मैं उनकी सहायता नहीं कर सकता और मैं सोचता हूँ कि मैं उनकी सहायता करूँ भी तो क्यों करूँ?"

नारद ने सोच लिया कि वर्तमान अवस्था में न तो ब्रह्मा कुछ सहायता कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है और न ही इन्द्र । यह काम तो प्रजा को ही करना होगा । इस निर्णय पर पहुँच वह चलने को तैयार हो गया । इस समय उसको इन्द्राणी की याद आ गई । उसने इन्द्र से कहा—"आपको विदित हो कि महारानीजी कश्मीर चली गई हैं और वहाँ के महाराज देवनाम की सुरक्षा में सीमा के समीप एक गाँव में रहती हैं ।"

"मुझको पता है । मार्ग में मैंने ही उसको भाग जाने में सहायता दी थी ।"

"मैं कश्मीर जा रहा हूँ । मार्ग में उनसे मिलूँगा । कोई सन्देश हो तो दे सकते हैं ।"

"एक दिव्य-दृष्टि-यन्त्र, जो हमारे रथ में लगा था, उनके पास है और एक मेरे पास है । इस प्रकार हम प्रायः नित्य सोने से पूर्व इस यन्त्र द्वारा मिल लेते हैं और बातचीत कर लेते हैं ।"

नारद को वहाँ कुछ और काम नहीं था । इस लम्बी यात्रा से कुछ लाभ नहीं हुआ । वहाँ से चलकर यह चक्रधरपुर पहुँचा । मार्ग में वह देवलोक के उद्धार की एक विशद् योजना बना चुका था । चक्रधरपुर में वह महाराज देवनाम के पास पहुँचा और उससे अपनी योजना वर्णन कर दी । देवनाम ने बताया—"यह सब काम मैंने विक्रम को सौंप दिया है और उसने सेना का नवीन संगठन और उसमें भारी परिवर्द्धन किया है ।"

"विक्रम कहाँ है !"

"उसके लिए एक पृथक् भवन निर्माण करवा दिया है । वह देवयानी के साथ उसमें रहता है ।"

समय पाकर नारद विक्रम और देवयानी से मिलने गया । इनका नवीन भवन मधुमती नदी के तट पर नगर की उत्तर दिशा में बना था । नौका से घाट पर पहुँचते ही उसकी दृष्टि भास्कर पर पड़ी । भास्कर ने देखकर पहचाना तो स्वागत के लिए खड़ा हो गया । कहने लगा—"ओह मुनि महोदय ! यहाँ भी आ पहुँचे ? नमस्कार ।"

"भास्कर देवता !" नारद ने कहा—"यहाँ विराजमान हैं आप ? बताओ, मिलिन्द कहाँ है ?"

भास्कर के माथे पर त्योरी चढ़ गई । मन ही मन शान्त हो कहने लगा—"मैं आजकल सेनापतिजी की सेवा में हूँ । बहुत अच्छे आदमी हैं वे । अपने भवन के एक बाजू में रहने को मुझे स्थान भी दिया है । व्यायाम और खाना ये दो काम हैं। जब कहीं जाते हैं तो अपने साथ अंगरक्षक के रूप में ले जाते हैं ।"

"तो बहुत सुखी हो यहाँ ?"

"महाराज इन्द्र के काल जितना तो नहीं । फिर भी ठीक हूँ ।"

"तो चलो अपने स्वामी विक्रम से मिलवा दो । मिलिन्द से बाद में मिलेंगे ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर पुनः भास्कर ने प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा, परन्तु नारद को अपने विचार में लीन देख चुप रहा। नारद विक्रम और देवयानी से मिला और औपचारिक बातचीत के पश्चात् राजनीति पर वार्तालाप चल पड़ा। नारद ने बताया--"मेरा आने का तात्पर्य केवल यह है कि देवलोक के उद्धार का प्रबन्ध किया जाय।"

"हमें उसकी पहले ही चिन्ता है। हमें नित्य ये समाचार मिल रहे हैं कि गान्धार का शासक काकूष ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। मैंने लवपुर में ब्रह्मावर्त के महाराज चन्द्रसेन को सन्देश भेजा था कि पूर्व इसके कि वह आक्रमण करे, हमको पुरुषपुर पर अधिकार कर लेना चाहिए। मेरा प्रयोजन यह था कि यदि हम उस नगर पर अधिकार कर लें तो देवलोक में नहुष की स्थिति दुर्बल हो जाएगी, परन्तु चन्द्रसेन का उत्तर आया कि उसकी काकूष से मैत्री है। उसको उस ओर से कोई भय नहीं। इसके विपरीत हमारी सेना में वृद्धि देख उसको कश्मीर से भय है।"

"महामूर्ख है वह।"

"चन्द्रवंशियों का भाग्य प्रबल प्रतीत होता है। मैंने अपने गुप्तचर भेजे हुए हैं और वे नित्य का समाचार भेज रहे हैं। उन समाचारों के आधार पर मैं समझता हूँ कि किसी भी दिन काकूष की सेना लवपुर पर अधिकार कर लेगी। उस समय कश्मीर की स्थिति अति भयंकर हो जाएगी।"

"मैं यह निश्चय नहीं कर सका कि किस ओर पहले ध्यान दूँ। गान्धार और देवलोक दोनों को एकदम विजय करना सुगम नहीं, परन्तु किस ओर से शुरू करूँ, इसी का निर्णय नहीं कर सका।"

"जहाँ देवलोक का सम्बन्ध है, मेरा तो यह विचार है कि एक सहस्र के लगभग मनचले युवक वहाँ चले जाने चाहिए, जो गान्धारों से स्थान-स्थान पर झगड़ा करें। इससे देवताओं के मन में बैठा हुआ आतंक लुप्त हो जाएगा। जब देवताओं को पता चलेगा कि गान्धार भी पीटे जा सकते हैं तब वे लोग भी विद्रोह करने पर तैयार हो जाएँगे। अभी तो देवलोक में इतना ही कुछ करना चाहिए।"

विक्रम ने कश्मीर में सैनिक तैयारी का वर्णन कर दिया। उसने बताया—"हमारी सेना पिछले वर्ष बीस सहस्र थी। यह कश्मीर की रक्षा के लिए पर्याप्त थी, परन्तु किसी विदेश पर आक्रमण करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। मैंने एक वर्ष में एक लक्ष सेना कर दी है। धनुर्धारी, खड्गधारी, अश्वारोही और हाथियों पर चढ़कर लड़ने वाले दल तैयार किए हैं। बीस नए दुर्ग बनाए हैं और यह सेना नित्य युद्ध का अभ्यास करती रहती है। एक क्षण को सूचना पाने पर अब वह धावा बोल सकती है। फिर भी मैं समझता हूँ कि अभी और तैयारी होनी चाहिए।"

"देवलोक में तो विद्रोह का समय अभी दो वर्ष पश्चात् आएगा। अभी वहाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जनता, जब विद्रोह की बात कहता हूँ तो, बितर-बितर मुह देखने लगती है। छः मास के अनन्तर प्रयत्न करने पर एक आपके अंगरक्षक भास्कर की पत्नी ही केवल तैयार हो सकी थी। वह वीरांगना है। अपने पति को जोखिम के काम पर भेजने को तैयार हो गई थी।"

"भास्कर बहुत ही सीधा-सादा और काम का व्यक्ति है। बैल की भाँति जिस से कहो, भिड़ जाने को तैयार रहता है। एक सहस्र की भीड़ को अकेला लाठी से हाँक सकता है।"

"मैं प्रसन्न हूँ कि वह आपके यहाँ काम पर लग गया है। मैं उसकी स्त्री को पुन: देवलोक में भेज देना चाहता हूँ।"

: ३ :

विक्रम से बात करके नारद मिलिन्द से मिलने उसके घर जा पहुँचा। भास्कर वहाँ बैठा था। मिलिन्द नारद को देख उठी और प्रणाम कर हंस पड़ी। नारद ने विस्मय से पूछा—"क्या बात है देवी ?"

"देवर्षि ! पधारिए और तनिक मेरे देवता की बात सुन लीजिए। मेरा तो यह विश्वास ही नहीं करते।"

नारद आसन पर बैठ पूछने लगा—"भास्कर देवता ! क्या बात है ?"

"बात यह है कि जब से हमने देवलोक छोड़ा है, यह औरत आपके नाम की माला जप रही है। कोई दिन खाली नहीं जाता जब आपकी कथा नहीं चला देती।"

"तो फिर क्या हुआ ?" नारद ने मुस्कराते हुए कहा—"क्यों किसी भले पुरुष का नाम लेना पाप है ?"

भास्कर इसका उत्तर नहीं दे सका। इस कारण कहने लगा—"पर मैं पूछता हूँ कि आपका मेरी स्त्री से क्या काम है ? आप जो इससे विशेष मिलने के लिए आए हैं, इसमें क्या रहस्य है ?"

"तो क्या तुम नहीं जानते ? मालूम होता है कि देवी ने तुमको बताया नहीं। मैं बताऊँ, क्या रहस्य है ?" नारद ने मुस्कराते हुए मिलिन्द की ओर देखा। इससे भास्कर के मुख पर विषाद की रेखा दौड़ गई। नारद ने उस ओर देखा और कहा —"देवलोक में शची को छोड़कर इतनी अच्छी और कोई स्त्री नहीं है। अच्छी औरतों को मिलने को जी चाहता है। इस कारण उसको मिलने आया हूँ। एक बार जब यह देवलोक के देहात में रहती थी, मुझको इसका पता चला था। मैंने इसको पहले भी देखा था, परन्तु इसके सौन्दर्य का ज्ञान तो तब ही हुआ था। पहले तो यह साधारण स्त्री प्रतीत होती थी।"

भास्कर ने मिलिन्द की ओर देखकर कहा—"सुना है ? मैं कहता न था कि दाल में कुछ काला है। तुम कहती थीं कि यह झूठ है। अब बताओ ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलिन्द ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—"देवर्षि ! इस मोटी बुद्धि के देवता से अलंकृत भाषा में बात करना ठीक नहीं। आपके मुख से यह सुन कि मैं सुन्दर हूँ इनके हृदय पर साँप लोटते होंगे। ये भले ही जन यह समझते हैं कि मैं आपकी प्रेमिका हूँ। मैंने बार-बार समझाया है, पर ये महाशय मानते ही नहीं।"

यह सुन नारद खिलखिलाकर हँस पड़ा। फिर बोला—"ओह ! यह बात है ! मैं तो देवता के सन्देह की बात समझ ही नहीं सका। छोड़ो इस बात को। अब मैं तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। परन्तु जानते हो तुम्हारी स्त्री क्या बात कहती थी ? यह कहती थी कि इनके पतिदेव एक लड़के के लिए नवीन विवाह करना चाहते हैं। वह बेचारी तो लड़का पैदा कर ही नहीं सकती, इससे पतिदेव की लालसा पूरी करने के लिए मुझसे लड़की ढूँढ़ने में सहायता माँग रही थी। मैंने लड़की तो ढूँढ़ी है, परन्तु उससे पहले लड़कियों का विवाह हो जाना चाहिए। मैं तो यह पूछने आया था कि क्या लड़कियों के लिए भी वर मुझको ही ढूँढ़ने पड़ेंगे ?"

भास्कर नारद की बात को सुनकर चकित रह गया। उसने उसके मन की बात कही थी। फिर भी अपनी इच्छा को छिपाने के लिए कहने लगा—"पर मिलिन्द ! लड़के की प्राप्ति की तो तुमको इच्छा थी ?"

"हाँ, परन्तु विवाह करने की आपकी थी।"

नारद ने कह दिया—"मैंने महाराज इन्द्र से अपने पहलवान की बात की है। वे आएँगे तो एक लड़के का प्रबन्ध मिलिन्द के घर भी कर देंगे।"

भास्कर ने बात बदलने के लिए कह दिया—"परन्तु वे कब देवलोक में लौट सकेंगे ?"

"इसी कार्य के लिए तो यहाँ चक्रधरपुर में आया हूँ। यहाँ से सैकड़ों स्त्रियों और पुरुषों को अमरावती ले जाने वाला हूँ। ये वहाँ जाकर गान्धारों से झगड़ा करेंगे। इससे देवताओं के मन में उत्साह उत्पन्न होगा और सब मिलकर गान्धारों को देवलोक में भगा देंगे।"

"मुझको देवताओं से कुछ भी आशा नहीं। इन निर्लज्जों के सम्मुख इनकी लड़कियाँ और स्त्रियाँ छिन रही थीं और वे बितर-बितर मुख देख रहे थे। इस अनाचार का वे मौखिक विरोध भी नहीं कर सके।"

"वह समय व्यतीत हो गया देवता ! अब तो ऐसे देवता उत्पन्न हो गए हैं, जो अपनी सती-साध्वी स्त्री पर झूठा सन्देह कर झगड़ा करने पर तैयार हो जाते हैं। ये अच्छे लक्षण प्रतीत होते हैं।"

मिलिन्द नारद का कटाक्ष सुनकर हँस पड़ी। भास्कर की बुद्धि में बात धीरे-धीरे समाती थी। जब उसकी समझ में आई तो कहने लगा—"देवमुनि ! यह मेरे विषय में कहते हो ?"

"नहीं, मैं तो उस देवता के विषय में कह रहा हूँ जो एक नवयुवती से विवाह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की इच्छा करता हुआ भी अपनी स्त्री पर सन्देह करता रहता है।"

"तो वह मैं ही हूँ···।"

नारद ने उसको बात नहीं करने दी। उसने मिलिन्द से पूछ लिया—"आशा और कृपा कहाँ हैं?"

"उनका विवाह हो गया है। वे दोनों अपने-अपने पति के घर पर हैं। यदि आप कल आने वाले हों तो मैं उनको बुला छोड़ूँगी।"

"अभी मैं इस नगर में कुछ दिन रहूँगा। मुझे अभी तुमसे भी कई बातें करनी हैं।"

इस पर भास्कर ने कहा—"ठीक है। आप आ सकते हैं। परन्तु मैं भी उपस्थित रहूँगा।"

मिलिन्द और नारद दोनों हँसने लगे। जब नारद चला गया तो भास्कर ने मिलिन्द से कहा—"तुम मेरी हँसी उड़ाती हो, तुमको लज्जा नहीं आती?"

"देवता! इस वृद्धावस्था में आपके मन में ईर्ष्या शोभा नहीं देती। इससे मेरा अपमान होता है।"

भास्कर ने कहा—"इस घुमक्कड़ देवता पर मुझको कभी भी विश्वास नहीं हुआ।"

"पर इस समय यही एक ऐसा है जो जान हथेली पर रखकर देवलोक का उद्धार करने के यत्न में लगा हुआ है। शेष सब भाग गए हैं।

"मैं इतना जानती हूँ कि आपको नहुष की सेवा करने की प्रेरणा मैंने इन्हीं के कहने से दी थी। और जो कार्य आपने किया था वह सबसे प्रशंसा पा रहा है।"

नारद चक्रधरपुर में ही था कि समाचार आया कि काकूष की सेना ने सिंध नदी पार कर ब्रह्मावर्त पर आक्रमण कर दिया है। चन्द्रसेन ने काकूष पर विश्वास कर अपनी सेना इधर-उधर बिखेर रखी थी। बहुत-सी सेना कश्मीर की सीमा पर थी। इस कारण काकूष को लवपुर के मार्ग में कोई बाधा नहीं हुई।

समाचार आने पर महाराज देवनाम के राजभवन में एक गोष्ठी हुई। उस गोष्ठी में सेनापति, नारद, देवनाम और सब सेनानायक, जो वहाँ उपस्थित थे, बुलाए गए। इस नई परिस्थिति में कश्मीर के लिए उत्पन्न भय पर विचार हुआ। साथ ही इस बात पर भी विचार हुआ कि इस भय का कैसे निवारण किया जाए।

नारद और विक्रम दोनों इस बात पर सहमत थे कि चन्द्रसेन को काकूष से लड़ने दिया जाए। वह निस्सन्देह पराजित होगा। उसकी पराजय के तुरन्त बाद काकूष पर, जब वह अभी लवपुर में ही हो, आक्रमण कर दिया जाए। उस समय काकूष का राज्य अभी सुदृढ़ नहीं हो सकेगा और उसको पराजय देनी सुगम होगी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर देवलोक में नारद की योजनानुसार एक सहस्र सैनिक साधारण नागरिकों और व्यापारियों के रूप में भेजने का निश्चय हुआ। यह निश्चय किया गया कि वे वहाँ एक सुदृढ़ संगठन तैयार करें, जिससे वहाँ विद्रोह किया जा सके।

विक्रम ने कश्मीरसेना को ब्रह्मावर्त की सीमा की ओर प्रस्थित कर दिया। सेना के एक सहस्र सुभटों को देवलोक जाने की आज्ञा दे दी। देवयानी ने, जब से नहुष ने उसके अपहरण का प्रयत्न किया था, अपने मन में यह धारणा बना रखी थी कि उसके सर्वनाश में वह अपना हाथ बँटाएगी। जब देवलोक में विद्रोह की योजना बन गई तो उसने अपने पति से स्वयं देवलोक में जाकर विद्रोह के संचालन करने की अनुमति माँगी।

विक्रम देवयानी की माँग से विस्मय में उसका मुख देखने लगा। अन्त में उसने कहा—"देवी ! मैं स्वीकृति देने वाला कौन हूँ ? मैं तुमको स्वीकृति दूँ और तुम मुझको स्वीकृति दो, यह भला कहाँ का नियम है। हमारे सम्मुख म्लेच्छों से कश्मीर की रक्षा का प्रश्न है। इसके लिए जो कुछ भी हमसे हो सके, हमको करना चाहिए। तुम्हारे विषय में एक बात विचारणीय अवश्य है और वह है तुम्हारे पकड़े जाने का भय। उस समय अनर्थ हो जाएगा।"

"यदि उस पापी ने सती पर हाथ उठाया तो विश्वास जानिए श्रीमान् ! वह भस्म हो जाएगा। आपको इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

बात निश्चय हो गई। अगले ही दिन देवयानी ने अपना निश्चय नारद को बता दिया। वह भी इस पर आश्चर्य करने लगा। उसने समझाया—"देवयानी बेटी ! वह कार्य अति भयावह है।"

"देवर्षि ! मुझको भय नहीं लगता। वे ब्रह्मावर्त जा रहे हैं। मैं समझती हूँ कि वे मुझसे अधिक भय मोल ले रहे हैं।"

जब देवयानी नहीं मानी तो नारद ने अपनी योजना बनाई और सैनिकों का एक दल और उनके साथ स्त्रियों का एक दल तुरन्त भेजने का निश्चय कर लिया। जब सैनिकों को और उनके साथ जाने वाली स्त्रियों को यह पता चला कि राजकुमारी देवयानी उनके साथ जा रही है तो सबके हृदय साहस से भर गए। सब राजकुमारी की जय-जयकार करने लगे।

: ४ :

जब से नारद चक्रधरपुर में आया था वह नित्य सुमति से मिलने जाया करता था। यद्यपि निश्चय-सा ही था कि सुमति नारद से विवाह करने पर तैयार हो जाएगी, फिर भी उसने अभी तक अन्तिम निर्णय नहीं सुनाया था। जब देवयानी ने देवलोक जाने का विचार प्रकट किया, तब सुमति उससे मिलने आई। सुमति को प्रसन्नवदन देख देवयानी ने पूछा, "सखि ! क्या मैं अब बधाई दूँ तुमको ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बधाई में कारण तो है, परन्तु सखि ! जिस बात के लिए तुम कहती हो उसके लिए तो जब भी होगा बधाई का पात्र तुम्हारे पिता तुल्य देवर्षि नारद होंगे। इस समय तो मैं तुम्हारे साथ देवलोक चलने के लिए तैयार होकर आई हूँ।"

"देवलोक को ? तुम ?" देवयानी मुख देखती रह गई।

"देवर्षि ने मुझको जब तुम्हारे वहाँ जाने के विषय में बताया तो मैंने भी तुम्हारे साथ जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया है। पिताजी से भी स्वीकृति ले ली है।"

"जानती हो वहाँ क्या करना पड़ेगा ?"

"देवर्षि ने बताया है। मैं समझ गई हूँ और फिर तुम भी तो साथ हो ?"

देवयानी को एक साथिनी और मिल गई। इससे उसको बहुत प्रसन्नता हुई। देवलोक चलने की तैयारी होने लगी। सबसे पूर्व कुछ लोग भेजे गए जो अमरावती में जाकर दुकानें करने लगे। उन्होंने वहाँ कश्मीर के अन्न, फल-वस्त्र इत्यादि की दुकानें खोल दीं। देवलोक में तो यह एक नई बात थी। अभी तक वहाँ दुकानों का अर्थ वितरण-केन्द्र होता था। अन्न, वस्त्र, फल-फूल के गोदाम होते थे, जहाँ से लोग उनको आवश्यकतानुसार ले जाते थे। मूल्य देना नहीं पड़ता था।

वास्तव में ये दुकानें देवलोक के रहने वालों की आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए नहीं खोली गई थीं। ये विद्रोह करने के लिए कश्मीर से आने वालों में खाने-पीने का सामान बाँटने के लिए थीं। जनता को भ्रम में रखने के लिए कुछ माल बेचा भी जाता था। जब ये दुकानें अमरावती के भिन्न-भिन्न स्थानों पर खुल गईं, तो दो-दो चार-चार करके सैनिक भी देवलोक में पहुँचने लगे। इस सब प्रबन्ध में कई मास लग गए।

नारद की माँग आई कि अब देवयानी और मिलिन्द को आना चाहिए। देवयानी ने मिलिन्द को बुलवाया। जब वह आई तो उसने कहा—"देवर्षि जी ने कहा था कि आप देवलोक में जाकर स्त्रियों में कार्य करेंगी। उसका अब समय आ गया है।"

"रानी जी !" मिलिन्द ने कहा—"जब तक मेरे देवता यहाँ हैं, मैं जा नहीं सकती। उनको सन्देह हो गया है कि देवर्षि नारद मुझसे प्रेम करते हैं। इस कारण वे मुझको अकेले देवलोक में जाने नहीं देंगे और वे स्वयं वहाँ जा नहीं सकते। उनका शरीर उनको छुपकर नहीं रहने देगा। मेरा विचार है कि राजाजी जब उनको अपने पास ब्रह्मावर्त बुला लेंगे तब ही मैं देवलोक जा सकूँगी।"

देवयानी ने कुछ विचार कर कहा—"यह प्रबन्ध तो हो जाएगा। आप घर जाकर पहले भास्कर जी के ब्रह्मावर्त जाने की तैयारी करिए, और फिर अपने देवलोक जाने की।"

देवयानी ने भास्कर को बुलवाया। जब वह झुककर नमस्कार कर सीधा हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो देवयानी ने कहा—"भास्कर देवता ! एक बहुत आवश्यक कार्य आ पड़ा है। वह केवल आपके करने योग्य ही है।"

"आज्ञा करिए महारानी ! सेवक उपस्थित है।"

"एक पत्र लेकर श्रीमान् जी के पास जाना है। मेरा निजी पत्र है। इस कारण साधारण सैनिकों के हाथ नहीं भेज सकती। बताइए ! आप कब जा सकते हैं ?"

"इस बात के पूछने की आपको आवश्यकता क्यों पड़ी है ? मैं तो सदैव आपकी सेवा के लिए तत्पर रहता हूँ।"

"तो ठीक है। मैंने समझा था कि कहीं युद्ध में जाने से आप संकोच करते हों।"

"महारानी ! मेरा अपमान न करिए। मुझको तो यह रोष था कि महाराज मुझको साथ लेकर क्यों नहीं गए ?"

"वे समझते रहे थे कि देवी मिलिन्द अपने देवता के युद्धक्षेत्र में जाने को पसन्द नहीं करेगी।"

"मिलिन्द ? महारानी ! वे तो मेरे चलने में मिन्नतें मनाती रहती हैं। आप उससे पूछकर तो देखिए।"

"मैंने पूछा है ! वे कहती थीं कि देवता अब बूढ़े हो गए हैं। अब उतना परिश्रम नहीं कर सकते, जितना वे देवलोक में युवा अवस्था में कर सकते थे।"

"वह मूर्ख है। मैं अब भी पचास-साठ से अकेला लड़ सकता हूँ।"

"अच्छी बात है। मैं आपके ले जाने के लिए पत्र लिखकर तैयार करती हूँ। आप प्रातःकाल यहाँ से चल देने के लिए तैयार हो जाइए।"

भास्कर घर पहुँचा तो मिलिन्द को देख बोला—"लो, आशा की माँ। प्रसन्न हो जाओ। मैं तो युद्धक्षेत्र में विक्रम जी के पास जा रहा हूँ।"

"सत्य ! तब तो ठीक नहीं हुआ। बुलवाया आपको क्या महाराज ने ?"

"नहीं, रानी देवयानी एक पत्र भेज रही हैं। प्रेम-भरा पत्र होगा। तभी मुझको स्वयं जाने का आदेश दिया है।"

"अवश्य उनके स्वास्थ्य के विषय में होगा। यह तो भारी चिन्ता की बात है। कुछ कष्ट होगा तभी तो शीघ्र पत्र भेजने की बात हो रही है।"

"तुम जाकर पता करो न। दो बच्चों की माँ हो। तुमको उनकी सेवा करनी चाहिए।"

मिलिन्द चुप रही। भास्कर अपने कपड़े इत्यादि ठीक करने लगा। मिलिन्द ने अपने पति का सामान तैयार करते हुए पूछा—"कहाँ जाना होगा आपको ?"

"सुना है, पहाड़ों से उतरकर मैदान में एक लक्ष्य सेना एकत्रित हो गई है और वहाँ से किसी भी समय आक्रमण बोल देने की आज्ञा होने वाली है। पैदल जाने में दस दिन लगेंगे। मैं दिनभर में बीस कोस सुगमता से चल सकता हूँ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तब तो आप बीस दिन में उत्तर लेकर लौट आएँगे। मैं यहाँ बैठी आपकी प्रतीक्षा करती रहूँगी।"

"हाँ, जब तक तुम्हारा घुमक्कड़ देवता नहीं आता।"

"जाने के समय तो हँसी न करो। शीघ्र लौटकर आइएगा।"

देवयानी ने पत्र लिखा—"प्रीतम! दासी देवयानी की चरणवंदना स्वीकार हो।

"इस पत्र के लिखने में दो कारण हैं। एक तो मैं चौथे मास में जा रही हूँ। आपकी देन की रक्षा में मैं देवलोक नहीं जा सकी और एक वर्ष तक नहीं जा सकूँगी। फिर भी वहाँ कार्य आरम्भ हो गया है। हमारी दुकानों पर देवताओं की भीड़ लगने लगी है। वे चर्चा के अड्डे बन गए हैं। देवर्षिजी आजकल वहाँ पर हैं। मैं अवकाश पाते ही वहाँ जाना चाहूँगी।

"आप अपने कार्य का विवरण लिखते रहा करें। आपके पत्र पढ़कर मन को ढाढ़स बँधता रहता है।

"इस पत्र को भास्कर के हाथ भेजना, इस पत्र का दूसरा प्रयोजन है। देवर्षि का पत्र आया है कि मिलिन्द की देवलोक में भारी आवश्यकता है और भास्कर देवता उसको जाने नहीं देते। इस कारण इस पत्र को उसके हाथ भेज रही हूँ। आप कृपया भास्कर को सेना में अथवा अपने साथ कुछ ऐसा कार्य दें कि वे दो वर्ष तक चक्रधरपुर लौट न सकें। तब तक हम इधर का कार्य समाप्त कर लेंगे। प्रणाम।"

अगले दिन भास्कर पत्र को अपनी जेब में सुरक्षित रखकर ब्रह्मावर्त की सीमा की ओर चल पड़ा। उसके मार्ग में खाने के लिए एक बैलगाड़ीभर अन्न साथ था।

दस दिन में वह सेना के शिविर में जा पहुँचा। पहलवान को आया देख वहाँ सेना में हलचल मच गई। उसको विक्रम के शिविर में पहुँचाया गया। विक्रम ने उसको देख चिन्ता में प्रश्न पूछा—"भास्कर देवता! कैसे आना हुआ है? सब कोई वहाँ स्वस्थ तो हैं? महाराज और महारानीजी ठीक हैं न? रानी देवयानी कैसी हैं?"

भास्कर ने विक्रम को चिन्तित देख आनन्द अनुभव करते हुए कहा—"महाराज! मैं नहीं जानता। मुझको तो सोए हुए जगाकर पत्र दे विदा कर दिया गया है। आगे भगवान् जाने क्या बात है।"

इतना कह उसने जेब से पत्र निकाल विक्रम के सामने रख दिया। विक्रम ने चिन्ता में पत्र खोला और पढ़ डाला। एक बार पढ़ा, फिर पढ़ा और अन्त में भास्कर को कहा—"देवता! यह पत्र अत्यावश्यक है। तभी तुम्हें इधर आने का कष्ट दिया गया है। मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। इसका उत्तर तैयार करने में कुछ दिन लगेंगे। अभी आप ठहरो, आप अभी नहीं जा सकते।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ५ :

एक दिन अमरावती में भारी हलचल मची। गान्धार-सैनिक बहुत बड़ी संख्या में नहुष के पास आए और कहने लगे—"हमको खाने को पर्याप्त नहीं मिलता और कश्मीर-व्यापारियों की दुकानें अन्न आदि से भरी हुई हैं। वे बिना मोल लिये देते कुछ नहीं और हमारे पास देने को है नहीं।

नहुष ने करण को बुलाकर उसको इस समस्या का सुझाव ढूँढ़ने को कहा। करण ने सैनिकों से पूछा—"तुम इस विषय में क्या चाहते हो?"

"हम इन दुकानों को लूट लेना चाहते हैं।"

"इन दुकानों को लूटकर कितने दिन तक निर्वाह चल सकेगा? एक बार इन दुकानों के लुट जाने पर, वैसी फिर दोबारा नहीं खुलेंगी?"

"तो हम क्या करें?"

"हम आपको स्वर्णमुद्रा देंगे, जिनसे आप इन दुकानों से सामान क्रय कर सकेंगे।"

सैनिक तो प्रसन्न हो गए, परन्तु पचास सहस्र मुद्रा प्रतिमास देनी एक समस्या हो गई। नहुष का कहना था कि इस प्रकार तो बीस मास में राज्यकोष रिक्त हो जाएगा। करण का कथन था कि सेना को तो वेतन मिलना ही चाहिए। चाहे तो जीवन-सामग्री के रूप में दिया जाय और चाहे स्वर्णमुद्राओं के रूप में। जीवन-सामग्री की उपज देश में कम हो रही है। यह विदेश से मँगवानी पड़ेगी और उसके लिए धन की आवश्यकता पड़ेगी। देश के उत्तरी भाग में स्वर्ण मिलता है। उसकी निकासी पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ेगा, परन्तु इससे काम नहीं चलेगा। वह स्वर्ण देशभर को खिलाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। पैदावार बढ़ाने के लिए शक्ति-प्रसारक यन्त्रों को सुचारु रूप से चलाने का प्रबन्ध करना होगा।

करण की स्त्री सुमन इस विषय में अपना पृथक् विचार रखती थी। अपने पति को चिन्ता में देख उसने अपना सुझाव उपस्थित कर दिया—"श्रीमान्, यहाँ रह सकने का केवल एक ही उपाय है। वह है इन्द्र से मैत्री करना। पितामह ब्रह्मा ने ठीक ही कहा था कि इन्द्र को वापस बुलाना चाहिए।"

"परन्तु तुम यह जानती हो कि नहुष के रहते इन्द्र यहाँ नहीं आएगा और नहुष यहाँ से जाएगा नहीं। इस कारण तुम्हारा सुझाव कुछ अर्थ नहीं रखता।"

"यही तो मैं निवेदन कर रही हूँ कि महाराज नहुष यहाँ रह नहीं सकेंगे। वे इस देश में राज्य करने के अयोग्य ही हैं। कभी-कभी अयोग्य लोग धोखा-धड़ी से अथवा पशुबल से अपना राज्य जमा लेते हैं, परन्तु यह बात चिरकाल तक नहीं चल सकती। अयोग्य को योग्य पुरुषों के लिए स्थान छोड़ना ही पड़ता है।"

सुमन के निरन्तर नहुष की निन्दा करने से करण को खीज आने लगी थी। फिर भी उनके परस्पर सम्बन्ध में अन्तर नहीं आ रहा था। उनके दो सन्तानें हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकी थीं और वह एक अटूट कड़ी थी। बड़ा लड़का था और गोदी में लड़की थी। इनके अतिरिक्त घर की बातों में करण को हर प्रकार का आराम था।

जब-जब उनके भीतर राजनीति की बात होती थी, सुमन देवलोक में गान्धारों की निन्दा करती थी। यह निन्दा जातिभेद के कारण नहीं होती थी। इसका आधार सदा आचरण की श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता ही होता था। फिर भी कभी करण इतना खीज जाता था कि वह उसको डाँट देता था। प्राय: ऐसे अवसरों पर सुमन चुप रह जाती थी। डाँट-डपटकर करण पूछता, "कुछ समझ में आया ?"

वह कह देती--"शायद्र स्त्री होने से मेरा अनुभव कम है। मैं घर के भीतर ही रहती हूँ। बाहर के संसार का ज्ञान नहीं रखती। इससे मेरा ज्ञान आपसे कम प्रतीत होता है। आप अपनी बुद्धि के अनुसार काम करिए।"

इसके पश्चात् सुमन मन से उस बात को निकाल देती थी जैसे वह कभी हुई ही नहीं थी। इस दिन भी करण ने खीजकर कहा—"अच्छाई और बुराई समय और परिस्थिति के अनुकूल होती है। इस कारण, जो तुम अच्छा समझती हो वह भिन्न परिस्थिति में बुरा भी हो सकता है। महाराज ने जो कुछ किया था वह अपने विचार और परिस्थिति के अनुसार किया था। इस कारण उन्होंने धोखा दिया था, हम कहने का अधिकार नहीं रखते।"

सुमन चुप रही। उत्तर न देकर बच्चे को, जो उसका दूध पी रहा था, उठा उससे खेलना आरम्भ कर दिया। करण इससे और भी चिढ़ गया और बोला, "मेरी बात का उत्तर दो सुमन !"

"आपने कोई प्रश्न तो किया नहीं। आपने तो केवल यह कहा है कि महाराज को धोखा देने वाला कहना ठीक नहीं। इसमें उत्तर देने को कुछ नहीं है। आपने अपनी सम्मति सुनाई है। मेरा अनुभव आप जितना तो है नहीं। इस कारण मेरी धारणा आप जैसी सुव्यवस्थित न हो सकनी स्वाभाविक ही है।

"देखिए, यह अब आपको पहचानने लगी है। कितने ध्यान से आपको देख रही है।"

लड़की अपने पिता को देख रही थी। करण सुमन के उत्तर से जान गया कि वह बात आगे चलाना नहीं चाहती। उसने भी राज्य की बात मस्तिष्क से निकाल दी और लड़की को, जो सर्वथा माँ के साँचे में ढली थी, उठाकर मुख चूम उछालते हुए उससे बातें करने लगा। इस समय लड़का पिता के समीप आ खड़ा हुआ और गोदी में चढ़ने के लिए हाथ खड़े कर कूदने लगा। पिता को लड़की में ही लीन देख सुमन की हँसी निकल गई।

लड़का विस्मय में माँ का मुख देखने लगा। माँ ने कहा—"आओ माणिक्य, तुम मेरी गोद में आओ।"

"नहीं, मैं बाबा की गोद में जाऊँगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं, हम तुमको नहीं उठाएँगे।" करण ने लड़की का मुख चूमते हुए कहा —"यह परा है, तुम माणिक्य हो। यह विद्या है, तुम जड़ हो।"

बालक इन बातों को समझ नहीं सका। बालक की माँ समझती थी। उसने बालक को उठा छाती से लगा चूमते हुए कहा—"माणिक्य माँ के गले का हार है। परा पिता के मस्तिष्क की विभूति है।"

माणिक्य प्रसन्न हो बोला—"माँ ! परा को नहीं लोगी।"

"क्यों ?" सुमन ने मुस्कराते हुए पूछा।

"बाबा मुझसे नहीं खेलते।"

"तुम खिलौने हो क्या, जो तुमसे खेलें ?"

"परा खिलौना है क्या ?"

"हाँ ! जैसे तुम्हारा लकड़ी का घोड़ा ! तुम वीर पुरुष हो। तुम सेना के नायक हो। तुम लोगों से खेलोगे, भला वे तुमसे क्या खेलेंगे ?"

"माँ ! मुझको तीरकमान ले दो ! मैं सेना का नायक बनूँगा।"

करण जब बाहर निकला तो विचार करने लगा। उसकी समझ में आ गया कि सुमन ठीक कहती है कि योग्य लोगों के साथ मैत्री से पार उतरा जा सकता है। फूल के साथ कीड़ा भी देवता के सिर पर चढ़ बैठता है। इस कारण पुष्प से मैत्री करने में लाभ ही होने की सम्भावना है। इस सबका परिणाम यह हुआ कि करण और नहुष में इस बात पर वार्तालाप चल पड़ा। उसने कहा—"महाराज ! इन्द्रादि से मैत्री किए बिना काम चलेगा नहीं।"

"पर मैं राज्य नहीं छोड़ूँगा।"

"राज्य आप किसलिए करना चाहते हैं ?"

"अपने को और अपने सजातीयों को सुख-सुविधा पहुँचाने के लिए।"

"यदि राज्य छोड़ने पर ये दोनों बातें प्राप्त हो सकें तो ?"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"महाराज ! मेरा मतलब स्पष्ट है। यहाँ रहना कठिन हो रहा है। यदि सम्मानपूर्वक इन्द्र से मैत्री हो सके तो क्या हानि है ?"

"ये देवता नहीं मानेंगे।"

"इसलिए ही न कि गान्धारों ने देवताओं से बहुत बुरा व्यवहार किया है। हमको उसका प्रायश्चित करना चाहिए।"

"मैं तो एक बात जानता हूँ कि इन्द्र से मेरी पटेगी नहीं। एक खोल में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। हाँ ! इन्द्र की स्त्री शायद मान जाए।"

"यत्न क्यों न किया जाए ? हो सके तो दोनों से मिला जाए।"

"तो ऐसा करो कि तुम इन्द्र से मिलो और मैं इन्द्राणी से मिलता हूँ। बताओ तुम पहले जाओगे या मैं पहले जाऊँ ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपको यदि इन्द्र से आशा नहीं तो पहले उसी को मिला जाए। मैं जाने के लिए तैयार हूँ, परन्तु आप मुझको कहाँ तक मान जाने की स्वीकृति देते हैं?"

"सुना है इन्द्र के पास आग्नेय अस्त्र है। वह यहाँ महल में बना तैयार रखा है। मुझको वह अस्त्र कश्मीर-विजय के लिए मिल जाए तो मैं देवलोक छोड़ दूँगा।"

"इस बात का माना जाना अति कठिन है, फिर यदि श्रीमान् मुझको आज्ञा देंगे तो मैं जाऊँगा और यत्न करूँगा।"

"जो बात वह कहे उसे सुनकर आना, पश्चात् उस पर विचार कर लेंगे।"

"करण की कमल-सर दुर्ग जाने की तैयारी होने लगी। सुमन इसके लिए आवश्यक सामान बाँध रही थी। इस बीच में करण ने उससे पूछा—"क्या समझती हो तुम? क्या तुम किसी बात की आशा करती हो?"

"देवता अति शान्तिप्रिय लोग हैं। इन्द्र ने जीवन भर किसी पर आक्रमण नहीं किया। यदि ऐसे शान्तिप्रिय राजा से मैत्री की सन्धि नहीं हो सकी तो निश्चय कुछ बात है जो अनुचित की जा रही है।"

करण ने नहुष की शर्त सुनाई और पूछा—"इसको तुम क्या समझती हो?"

"शर्त तो महापाप है। इन्द्र क्या, कोई साधारण बुद्धि वाला आदमी भी इसको नहीं मानेगा। कश्मीर के विजय करने में इन्द्र आपकी क्यों सहायता करे?"

"देवलोक का राज्य पाने के लिए।"

"वह तो उनको मिलेगा ही। महाराज नहुष राज्य चलाने में अयोग्य हैं। ब्रह्माजी का कहना भूलिए नहीं, उन्होंने कहा था कि अभी समय है। कुछ काल के उपरान्त वह भी नहीं रहेगा।"

"जो होना है सो हो जाएगा, परन्तु अपने मुख से अपमानजनक शर्त क्यों मानें?"

"सत्य, न्याय और शान्ति के पथ को आप अपमानजनक मानते हैं? कश्मीर जैसे निर्दोष राज्य पर आक्रमण करना और वहाँ की स्त्रियों की वह दशा कराना, जो यहाँ हुई है, आप मानयुक्त मानते हैं? मैं तो आपको बुद्धिमान् और न्यायप्रिय व्यक्ति समझती थी।"

करण सुमन की युक्ति और सूझ का बहुत आदर करता था। इस कारण उसके उक्त कथन को सुन अपने आपको लज्जित अनुभव करने लगा। उसने कहा—"मैं अपने मन की बात नहीं कह रहा, सुमन! मैं नहुष महाराज का दूत बनकर जा रहा हूँ। इस कारण उसकी युक्तियों को दुहरा रहा हूँ।"

"तो आप भी उसके साथ पाप के भागी बनने जा रहे हैं। मैं समझी थी कि मैं इन्द्र नहीं हूँ। आपकी पत्नी सुमन हूँ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भला यह तो बताओ सुमन ! कि तुम इस मैत्री के लिए क्यों इतनी चिन्तित हो ?"

"इसलिए कि मैं आपके लिए चिन्तित हूँ। परमात्मा ने मेरी छोटी-सी नौका को आपके बजरे के साथ बाँध दिया है। और मुझको भय है कि आपका बजरा उस आँधी में, जो वेग से चली आ रही है, कहीं उलट न जाए।"

सुमन ने माणिक्य और परा को, जो समीप ही खेल रहे थे, अपने पास खींच-कर छाती से लगाते हुए कहा—"मेरी इस निधि के उस आँधी में उड़ जाने का भय है।" जब सुमन कह रही थी तो उसकी आँखें सजल हो उठी थीं। करण ने देखा और उसका आशय समझ गया।

: ६ :

कामभोज में कापिश से पचास कोस पश्चिम की ओर एक झील के मध्य में एक दुर्ग था। झील में कमल के फूल खिले रहते थे और यही कारण था कि दुर्ग कमल-सर दुर्ग कहाता था। यह दुर्ग नहुष के परिवार की सम्पत्ति था। इस कारण जब इन्द्र को बन्दी बनाकर रखने का विचार हुआ तो इस काम के लिए यही दुर्ग उचित समझा गया।

देवलोक की सीमा जहाँ काश्मीर के साथ लगती थी वहाँ कामभोज और गान्धार के साथ भी लगती थी। करण तीव्रगामी अश्व पर सवार हो कामभोज की सीमा में प्रवेश कर कमल-सर दुर्ग जा पहुँचा। नहुष की आज्ञा से उसको इन्द्र से मिलने की स्वीकृति मिल गई।

इन्द्र एक सभ्य नवयुवक को अपने सम्मुख देख विस्मय में उसका मुख निहारने लगा। करण ने अपना परिचय दिया और बताया—"मैं आपकी मुक्ति के विषय में आपसे बातचीत करने आया हूँ।"

"मेरी मुक्ति की चिन्ता आज चार वर्ष बाद क्यों हुई है ? मैं चार वर्ष से यहाँ हूँ। क्या मुझको उस परिस्थिति का पहले ज्ञान प्राप्त कर लेना ठीक नहीं ? इससे बातचीत में सुभीता होगा।"

करण ने इन्द्र के सम्मुख बैठते हुए कहा—"आपका कहना ठीक है। प्रत्येक बात का कारण होता है इसलिए इसका भी कारण है। मैं आपको सत्य बात बताता हूँ। आपके भवन के ऊपर लगे यंत्र बेकार हो रहे हैं। उनमें जीवित पारद समाप्त हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि समय पाकर वहाँ इतनी शीत बढ़ जाएगी कि रहना कठिन हो जाएगा। उन यंत्रों को चालू रखने का ढंग आप जानते हैं। इस कारण नहुष ने यह प्रस्ताव किया है कि आप यदि कुछ शर्तें मान जाएँ तो आपको ले जाकर देवलोक में सिंहासनासीन कर दूँ।"

"क्या शर्तें हैं वे ?"

"नहुष राज्यप्रबन्ध करेंगे। आप वहाँ की रक्षा का और जीवन सुलभ करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रबन्ध करेंगे। सेना की शक्ति और आपकी विज्ञानविद्या साथ मिल जाएँगी। परिणाम यह होगा कि दो वर्ष में कामभोज से लंकापर्यन्त देवताओं का राज्य स्थापित हो जाएगा।"

"योजना तो बहुत अच्छी है," इन्द्र ने कहा—"परन्तु मैं पूछता हूँ कि इससे लाभ क्या होगा?"

"हमारा एक विशाल राज्य स्थापित हो जाएगा।"

"ठीक! परन्तु इससे क्या आपके महाराज कुछ अधिक खाने-पहरने अथवा अधिक भोग-विलास करने में समर्थ हो जाएँगे? उनको अपने आपको क्या लाभ पहुँचेगा?"

करण इस प्रश्न से इन्द्र का मुख देखता रह गया। इन्द्र ने समझा कि उसके कहने का अर्थ नहीं समझा गया। अतएव अपने कहने का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उसने फिर कहा—"देखो करण देव! मैं जब देवलोक में शासन करता था तब भी वही कुछ और उतना ही खाता-पहनता था जितना अब खाता-पहनता हूँ। इस समय मेरी स्वतन्त्रता छिन गई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्तर नहीं पड़ा। इस प्रकार देवलोक के राज्य से बढ़कर पूर्ण आर्यावर्त का सम्राट् हो सकना नहुष के अपने लाभ की बात नहीं है। निजी आवश्यकताएँ तो साधारण से प्रयत्न से भी पूर्ण हो सकती हैं।"

"तो क्या निर्धन रहना ठीक है?" करण ने मुस्कराकर पूछा।

"नहीं! परन्तु एक सीमा से अधिक संचय करना भी किसी प्रकार ठीक नहीं। आपके नहुष महाराज को देवलोक का राज्य प्राप्त हुआ है। अब और अधिक प्राप्त करने से कुछ भी लाभ नहीं।"

"लाभ तो है श्रीमान्! देवलोक दासता से छूट जाएँगे। आप स्वतन्त्र होंगे और देवता सुखी होंगे।"

"आपका कहना एक अंश में तो ठीक है, परन्तु जहाँ बीस लाख देवता सुखी होंगे वहाँ तीस कोटि आर्य दुःखसागर में ढकेल दिए जाएँगे। मुझको तो यह युक्ति पसन्द नहीं आई। मेरा देवताओं से प्रेम है, परन्तु दूसरों से द्वेष नहीं।"

"तो फिर आप ही कोई योजना बताएँ।"

"मेरी योजना तो सरल है। यह दुर्ग और आस-पास का देश अति सुन्दर है। यहाँ का जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। इस कारण यदि नहुष राज्य छोड़कर यहाँ आ जाए तो मैं उसको एक लक्ष रजत प्रतिवर्ष खाने-पहनने के लिए देता रहूँगा। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

"यह बात शायद नहुष नहीं मानेंगे। आपको यह स्मरण कर लेना चाहिए कि अब तक दोनों जातियों अर्थात् देवताओं का और गान्धारों का समन्वय हो चुका है। परस्पर विवाह हो चुके हैं। बच्चे भी उत्पन्न हो गए हैं। इस परिस्थिति में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या यह अच्छा नहीं होगा कि दोनों जातियाँ मिलकर राज्य का संचालन करें।"

इन्द्र ने भृकुटि चढ़ाकर कहा—"यह सम्भव नहीं है। नहुष ने जो विश्वास-घात किया है, उसके कारण वह मेरे रहते हुए जीवित नहीं रह सकता।"

"और गान्धारों की देवता-स्त्रियों का क्या होगा?"

"इस समस्या को मैं वहाँ पहुँचकर सुलझा लूँगा। नहुष का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"इससे तो यह सिद्ध हुआ कि आप इस समस्या को शान्तिमय ढंग से सुलझाने के पक्ष में प्रतीत नहीं होते।"

"देखिए महानुभाव! यह प्रश्न मेरा उत्पन्न किया हुआ नहीं। मैं आक्रमण करने वाला नहीं। मैं विश्वासघात करने वाला नहीं। मेरी सम्मति में जिसने यह प्रश्न उत्पन्न किया है, उसको ही इसको सुलझाना चाहिए। जिससे अनियमित अनधिकार चेष्टा हो गई है उसकी क्षतिपूर्ति भी वही कर सकता है। यह नहुष के अपने देश में लौट जाने से ही सम्भव हो सकेगा। जब ऐसा वह कर ले तो मैं अपनी थोड़ी-सी भूल, जिसका सम्बन्ध मेरे प्रमाद से है, का दंड भोगने के लिए एक लक्ष रजत देने के लिए तैयार हूँ।"

करण मन में विचार करने लगा कि उस समय की परिस्थिति में इन्द्र ने ठीक ही किया है कि जो उच्छृंखल व्यवहार गान्धारों ने देवताओं के साथ किया है उसका प्रतिकार उसने नहीं माँगा। फिर भी उसने कहा—"श्रीमान्! मैं आपके कथन में तथ्य मानता हूँ। युक्ति की दृष्टि से आपकी बात ठीक है, परन्तु राजनीति में तो परिस्थितियाँ ही किसी बात के औचित्य अथवा अनौचित्य का निर्णय करती हैं। परिस्थिति यह है कि देवलोक में इस समय नहुष का राज्य है। आप उसके बंदी हैं। इस अस्वाभाविक अवस्था में आपको भी कुछ अस्वाभाविक कार्य करने पड़ेंगे। इससे कोई अनर्थ नहीं हो जाएगा। इस कारण मैंने जो मार्ग आपको सुझाया है वह ठीक न होते हुए भी वर्तमान परिस्थिति में स्वीकार करने के योग्य है।"

इन्द्र करण द्वारा ऐसी वस्तुस्थिति उपस्थित करने के ढंग पर हँस पड़ा। उसने कहा—"आपके बात करने के ढंग पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इन गान्धारों में आप जैसी योग्यता के व्यक्ति का होना एक चमत्कार ही है। फिर भी किसी की योग्यता मिथ्या पक्ष लेकर सफल नहीं हो सकती।

"वास्तविक बात इसके विपरीत है। नहुष ने धोखा देकर देवलोक का राज्य प्राप्त किया है। धोखा देने की योग्यता से कोई राज्य करने की सामर्थ्य पा जाता है, यह मानने की बात नहीं है। शायद वह अपने में यह योग्यता मानता है, परन्तु उसका यह भ्रम दूर हो रहा प्रतीत होता है। यदि मिथ्या मानापमान की भावना छोड़कर वह राज्य को, जिसके कि वह सर्वथा अयोग्य है, उचित अधिकारी को दे दे तो बात सुलझ गई समझनी चाहिए और यदि वह इस मान के मद में अनधिकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से इस स्थान पर अधिकार किए रहा तो प्रकृति उसको उस स्थान से स्वयं च्युत कर देगी। उस समय वह मनुष्य की भाँति दयाभाव नहीं दिखा सकेगी। तब क्या होगा, कहना कठिन है।"

"यदि आप कुछ ऐसी निश्चयात्मक बात, जो उस ओर से स्वीकार करने योग्य हो, बताएँ तो मैं और यत्न करना चाहूँगा।"

"यदि नहुष देवलोक में सब कुछ भलीभाँति छोड़कर चला जाए तो मैं एक लक्ष रजत प्रतिवर्ष मैत्री का मूल्य देने को तैयार हूँ।"

करण यद्यपि अपनी बात में सफल नहीं हुआ था तो भी एक युक्तियुक्त प्रस्ताव लेकर अमरावती लौट आया।

: ७ :

दूसरी ओर नहुष ने इन्द्राणी से मिलने का यत्न किया। नहुष का विचार था कि इन्द्र राजा है। वह उसके साथ मिलकर राज्य करना पसन्द नहीं करेगा, परन्तु शची एक स्त्री होने के नाते एक पुरुष के साथ राज्य भोगने की लालसा में उसका प्रस्ताव मान जाएगी। स्त्रियाँ प्रायः पुरुषों के साथ मिलकर संसारसुख भोगती हैं। इस कारण उसने इन्द्राणी से स्वयं मिलकर बातचीत करने का निश्चय कर लिया।

इन्द्राणी कश्मीर में रहती थी, इस कारण वह वहाँ राजसी ठाटबाट में नहीं जा सकता था। अतएव उसने रत्न वेचने वाले का रूप धारण किया और इस मायावी रूप में सीमा पार कर उस गाँव में जा पहुँचा, जहाँ शची का निवास था।

शची की रक्षा के लिए कश्मीर राज्य की ओर से रक्षक नियुक्त थे। वे दिन-रात उसकी देख-भाल करते थे। शची के साथ दो सेविकाएँ रहती थीं। धीरे-धीरे शची का वहाँ रहना विख्यात होता जाता था और कपड़ा, आभूषण इत्यादि बेचने वाले वहाँ आने लगे थे। जब कोई व्यापारी आता तो शची भवन के आँगन में आकर उससे बात करती थी और उसका सामान देखती थी।

नहुष गाँव में जौहरी के रूप में पहुँचा। सबसे पहले सैनिकों ने उससे पूछ-ताछ की। वहाँ से प्रवेश पा वह गाँव में पहुँचा। गाँव के एक मन्दिर में रहने का प्रबन्ध कर उसने इन्द्राणी के पास सूचना भेजी। प्रतिहार ने सेविका से कहा और सेविका ने महारानी से स्वीकृति लेकर जौहरी को आँगन में ले जाकर बैठा दिया।

शची ने जौहरी को देखा तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसको पहले कहीं देखा है। वह उसको देखती हुई स्मरण करने लगी। नहुष उसको आया देख उसके सम्मान में उठ खड़ा हुआ और उसने झुककर प्रणाम किया। इन्द्राणी अभी तक स्मरण नहीं कर सकी कि उसने उसको कहाँ देखा था। यही सोचती हुई वह बैठ गई। नहुष उसके सौन्दर्य को देख स्तम्भित रह गया। उसने शची को पहले भी देखा था परन्तु बहुत दूर से, इस कारण वह जो कुछ अब देख सका था वह पहले अनुभव नहीं कर सका था। इन्द्राणी बैठ गई! नहुष एकटक उसके मुख की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभा निहारता रहा। इन्द्राणी ने उसको खोया-खोया पा उससे पूछा—"जौहरी महोदय! बैठिएगा नहीं?"

इससे जौहरी की संज्ञा लौटी और उसने अपने मन की अवस्था को छुपाने के लिए पुनः नमस्कार कर कहा—"मैं आपका धन्यवाद करता हूँ कि आपने मुझको सेवा करने का अवसर दिया है।"

"हाँ! तो आप क्या लाए हैं?"

नहुष ने अनेक सुन्दर स्त्रियों को देखा था। उसने देवयानी को भी देखा था। इन्द्राणी को इतने समीप से देखकर उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रकृति ने कदाचित् सौन्दर्य के विषय में यह अन्तिम वस्तु निर्माण की है। इसके पश्चात् और अधिक सुन्दर स्त्री का निर्माण सम्भव नहीं रहा। बहुत यत्न से नहुष ने अपने को वश में करके कहा—"मैं लंकाद्वीप का रहने वाला हूँ। इस पर भी संसार-भर में घूमा हूँ। मेरा कार्य ही है कि आप जैसी श्रीमतियों को आभूषणों से अलंकृत करता रहूँ। सुना था कि नहुष ने देवलोक में अपना राज्य स्थापित किया है और वह सुन्दर रत्नों का खरीदार है। सो उधर जाते हुए मार्ग में श्रीमती के निवासस्थान का पता चला। इससे इच्छा हुई कि आपको भी कुछ सुन्दर वस्तुएँ, जो मेरे डिब्बे में हैं, दिखाऊँ। शायद कुछ सेवा आपकी भी कर सकूँ।"

इन्द्राणी ने मुस्कराकर कहा—"मुझे ऐसा आभास होता है जैसे मैंने कभी आपको देखा हो, याद नहीं पड़ता कि कब देखा है और कहाँ देखा है।"

"आपने अवश्य देखा है"—नहुष ने भयभीत हो बात बनाते हुए कहा—"मैं एक बार पहले भी देवलोक में आया था और श्रीमान् इन्द्रजी की सेवा में उपस्थित हुआ था।"

इन्द्राणी ने बात का अन्त करने के लिए कहा—"तो दिखाइए आप क्या लाए हैं।"

नहुष ने अपना डिब्बा खोला और उसमें से पहले ही दो पत्थर दिखाए। वास्तव में वे बहुत बड़े और बढ़िया थे। दो समान हीरे एक ही प्रकार गुलाबी आभा लिये नहुष ने शची के सामने चौकी पर रख दिए। शची इनको देख मुग्ध हो गई। उसने इतने बड़े-बड़े हीरे पहले कभी नहीं देखे थे। उसने उनको उठाकर प्रकाश की ओर कर देखा और पसन्द किया। नहुष उसके मुख पर प्रसन्नता के चिह्न देख समझ गया कि वे पत्थर के टुकड़े पसन्द आ गए हैं। इस पर उसने कहा—"ये दोनों कर्णफूलों के लिए बहुत उपयुक्त होंगे। इनसे प्रतिबिम्बित प्रकाश अपनी गुलाबी आभा लिये जब कपोलों पर पड़ेगा, तो मुख की ऐसी छटा होगी कि वह संसार में बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के मन डुला देगी।"

इन्द्राणी ने मुस्कराते हुए उन हीरों को सामने चौकी पर रख दिया और कहा—"तब तो इनको खरीदना नहीं चाहिए क्योंकि ये भले-चंगे मनुष्यों के मनों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को डुला देने की शक्ति रखते हैं।"

"परन्तु महारानी जी ! इसमें बुराई क्या है ? आभूषणों का यही तो उद्देश्य होता है।"

"नहीं, यह नहीं ! वास्तव में सौन्दर्य का प्रयोजन तो मन को स्थिर कर भगवान् में लीन करना है। यदि कोई वस्तु ऐसी छटा उत्पन्न करने की योग्यता रखती है जो मन को डाँवाडोल कर दे, तब तो वह छटा सौन्दर्य का विकृत रूप होगी। मुझे ऐसी छटा नहीं चाहिए और ऐसी छटा उत्पन्न करने वाले आभूषण भी नहीं चाहिए।"

नहुष इस मीमांसा को नहीं समझ सका। उसके विचार में सौन्दर्य विलास की वस्तु थी। स्त्री में सौन्दर्य वासना की तथा भोग की वस्तु है, इत्यादि। वह स्वप्न में भी यह विचार नहीं कर सकता था कि सौन्दर्य मन को स्थिर कर भगवान् की ओर प्रेरित कर सकता है। वह, जब इन्द्राणी कुछ सोच रही थी, उसके मुख की शोभा को देख रहा था। वह मन में विचार कर रहा था कि अभी तक तो वह देवलोक की छटकन का ही भोग करता रहा है। वहाँ का प्रसाद तो उसके सम्मुख आया ही नहीं। जिस माता-पिता ने इन्द्राणी को जन्म दिया है वे क्या ऐसी और विभूति उत्पन्न नहीं कर सके ? क्या अद्भुत मस्तक है ! चर्म की आभा कितनी आकर्षक है ! ओज कितना मनमोहक है ! आँखों में क्या चमत्कार है !

नहुष अभी यह सोच ही रहा था कि शची ने कहा--"तो आपके पास और कोई अच्छी वस्तु नहीं ?"

"बहुत हैं। आपको ये हीरे पसन्द हैं, इनका पसन्द करने वाला वास्तव में एक श्रेष्ठ और उत्तम विचार रखने वाला व्यक्ति हो सकता है। अपनी पसन्द से मनुष्य की उच्च शिक्षा तथा दीक्षा का ज्ञान होता है। इस कारण मेरी प्रार्थना है कि आपके द्वारा ये ही प्राप्त करने योग्य हैं।"

"क्या मूल्य है इनका ?"

वे दोनों पत्थर अब भी सामने चौकी पर रखे थे। उनमें से निकल रहा प्रकाश शची के मुख पर पड़कर उसके ओज को द्विगुणित कर रहा था। नहुष उसको देख-देखकर मोहित होता जाता था। अतएव मूल्य पूछे जाने पर उसने विचारकर कहा—"मूल्य तो इनका बहुत है, परन्तु यदि आप इनको लेना चाहें तो मैं आपको ये भेंट कर सकता हूँ।"

"मैं भेंट स्वीकार नहीं कर सकती। आप मूल्य बताइए।"

"वास्तव में इनको देवलोक के अधिपति नहुष की पटरानी के लिए ले जा रहा था। परन्तु जब आपने इनको पसन्द कर लिया है, तो ये आपको ही देना चाहता हूँ। आपसे वह मूल्य तो माँग नहीं सकता, जो वहाँ से पाने की आशा करता था। इनको चरणों में भेंटस्वरूप स्वीकार करिए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं मूल्य दिए बिना इनको लेना नहीं चाहती।"

"तो मूल्य दे दीजिएगा जब आप पुनः दे सकने की स्थिति में होंगी। भगवान् करे कि आप शीघ्र ही अपना उचित आसन ग्रहण करें। वह आसन ग्रहण करने पर आपसे इसका मूल्य प्राप्त कर लूँगा।"

"जौहरी महाशय! एक मिथ्या आशा में इन मूल्यवान हीरों को यहाँ मत छोड़ जाना। यदि आप समझते हैं कि इनका खरीदना मेरे वश की बात नहीं है तो कोई साधारण मूल्य की वस्तु दिखाओ।"

"आप रुष्ट हो गई हैं क्या? मैंने अपनी समझ से कोई ऐसी बात नहीं कही जिस पर आपको क्रोध करने की आवश्यकता हो। मैंने तो यही निवेदन किया है कि मैं इनका मूल्य ले लूँगा, जब आप पुनः देवलोक के सिंहासन पर आसीन होंगी। यह मिथ्या आशा कैसे हो गई? यदि यह मिथ्या है तो मेरे इन पत्थरों को अपने पर न्यौछावर मान लीजिए।

"यहाँ सुनार तो होंगे जो इनको कर्णफूलों में जड़ सकेंगे?"

इतना कह नहुष ने अपना डिब्बा बन्द किया और उसको कपड़े में लपेटना आरम्भ कर दिया। वे हीरे अभी भी बाहर चौकी पर पड़े चमक रहे थे।

शची ने विस्मय में जौहरी का मुख देखते हुए कहा—"आप मूल्य बता दीजिए। मैं शायद इनका मूल्य दे सकूँ। आप व्यर्थ में क्यों एक भविष्य की अनिश्चित बात पर इन्हें छोड़ रहे हैं? भविष्य किसने देखा है?"

"मैंने देखा है महारानी जी! यदि आप कहें तो मैं इस विषय में यत्न करूँ। मैं संसार-भर में घूमा हुआ एक अनुभवी पुरुष हूँ। कदाचित् यह यशोमय कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हो जाए।"

"यह बहुत बड़ी बात है। छोड़ो इस बात को। इन हीरों का मूल्य बताओ।"

"मैंने मूल्य बता दिया है। जब आप अपना प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगी तो एक वरदान उस समय माँग लूँगा। उस समय प्रसन्नता में न जाने आप क्या-क्या वस्तुएँ लुटा रही होंगी। मैं भी उसका कुछ भाग माँग लूँगा।"

"फिर वही बात! कुछ तो बता दीजिए?"

"अमूल्य वस्तुओं का मूल्य स्वर्ण और रजत में नहीं माँगा जा सकता। मैं आपके दर्शन अमरावती में करूँगा।" इतना कह वह जौहरी झुककर प्रणाम कर आँगन से बाहर निकल गया। शची देखती रह गई।

उसी दिन सायंकाल दिव्य दृष्टि यन्त्र द्वारा जब शची ने इन्द्र को इस जौहरी की पूर्ण कथा सुनाई तो इन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ा। शची विस्मय में पूछने लगी—"क्या बात है?"

"वह जौहरी चला गया है या अभी मन्दिर में ठहरा है?"

"मेरा विचार है कि वह ठहरा हुआ है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कल प्रातःकाल उसको बुलाकर वे पत्थर वापस कर देना। बेचारा ठगा जाएगा। अभी शीघ्र ही देवलोक लौटने की कोई आशा नहीं।"

अगले दिन शची ने मन्दिर में सेवक भेजा तो पता चला कि जौहरी पिछली सायं ही विदा हो गया था। सैनिकों से, जो उस गाँव में रक्षा के लिए नियुक्त थे, यह सूचना मिली कि वह देवलोक की सड़क पर जाता देखा गया है।

: ८ :

नहुष आया था शची को प्रलोभन देकर अपनी पत्नी बनाने के विचार से, परन्तु जब उसके सम्मुख पहुँचा तो उसके सौन्दर्य और ओज के प्रभाव में इतना दबा कि इस विषय पर बात नहीं कर सका। उसके तेज के सम्मुख वह ऐसा झेंपा कि बिना अपने आने का आशय बताए लौट आया। उसके दर्शन से वह एक प्रकार की मस्ती और उल्लास लिये लौटा। मन्दिर में पहुँचकर यह स्मरण कर उसके मन में भय समा गया कि कहीं शची ने उसको पहचान न लिया हो। कहीं उसको याद आ गया कि उसने उसको कहाँ देखा है तो वह बहुत बुरी भाँति मरवा दिया जाएगा। इस कारण वह उसी सायंकाल वहाँ से खिसक गया।

जब वह अमरावती में पहुँचा तो उसने देखा कि करण कमलसर-दुर्ग से, पहले ही लौट आया है। करण ने इन्द्र से जो बातचीत हुई थी वह ज्यों की त्यों बखान कर दी। उसने इन्द्र द्वारा कही गई अन्तिम बात भी कह दी। उसने बताया—"इन्द्र कहता है कि आपने धोखा देकर राज्य हथियाया है। धोखा देने की योग्यता से राज्य करने की योग्यता नहीं आ जाती। यदि आप झूठे मान के विचार से अनधिकारयुक्त स्थान पर बैठे रहे तो प्रकृति आपको उस स्थान से च्युत कर देगी। प्रकृति दया नहीं दिखाती।"

करण की बात सुन लेने के उपरान्त नहुष ने अपनी यात्रा का विवरण सुनाया। इसके पश्चात् उसने कहा—"करण! तुम मेरे परम मित्र हो। तुम्हें बताते मुझे झिझक नहीं कि मैं तो अब इस बात की ही आशा लगाए बैठा हूँ कि संसार की इस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी शची से विवाह कर लूँ। इस विवाह से जहाँ मेरे मन की कामना पूरी होगी वहाँ राज्य पर आ रही आपत्ति भी दूर हो जाएगी।

"इसमें सन्देह नहीं कि भूषण उसे अतीव प्रिय हैं। अपने पति के वियोगकाल में भी वह गले में मुक्ताहार पहने थी। उसके हाथों में रत्नजडित कंकण थे। पाँवों में झाँझर भी थीं। इस प्रकार भूषणों और श्रृंगार से प्यार करने वाली स्त्री शीघ्र ही प्रलोभनों में फँसाई जा सकती है। मैं तो इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि उसको प्राप्त करना मेरा जीवनलक्ष्य बन गया है। उसकी प्राप्ति के लिए इस राज्य को हाथ में रखना चाहिए। जब तक राज्य है तभी तक उसकी प्राप्ति की आशा की जा सकती है। इस कारण मैं राज्य नहीं छोड़ूँगा। तुम कुछ दिन विश्राम कर लो तब मेरी कामनाओं की पूर्त्यर्थ वहाँ जाना। जो बात अपने मुख से नहीं कह सका,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तुम अवश्य कह सकोगे।"

करण नहुष की इस मानसिक अवस्था का अनुभव कर बहुत दुःखी हुआ। उसको इन्द्र की बातों में तथ्य प्रतीत हुआ। दूसरी ओर सुमन के कथन का भी उसके मन पर भारी प्रभाव पड़ा था। सुमन की उससे कही बात को—"कि उसकी छोटी-सी नौका, जिसमें उसका माणिक्य और परा भी हैं उसके बजरे से बँधी है, और आने वाली आँधी में न बजरा रहेगा न वह नौका" स्मरण कर इसका हृदय प्रकंपित हो उठा।

घर में बैठा-बैठा वह भविष्य का चिन्तन करता था। सुमन उसको इस प्रकार गम्भीर विचार में डूबा देख एक दिन पूछने लगी—"जब से आप इन्द्र से मिलकर आए हैं, तब से ही आप चिन्तासागर में डूबे से रहते हैं। क्या बात है?"

"बात तो स्पष्ट ही है। शक्तिप्रसारक यन्त्र दुर्बल पड़ते जाते हैं। जीवित पारद कम हो गया है। अमरावती से दूर खेतों में बर्फ भी जमनी आरम्भ हो गई है। परिणामस्वरूप भोजन-सामग्री और भी क्षीण हो गई है। अब तो गान्धार भी निराहार रहने लगे हैं। इस अवस्था में भयंकर परिणाम उत्पन्न होना सम्भव है। कोई मार्ग सूझ नहीं रहा। जो मार्ग ब्रह्मा ने बताया था, इन्द्र ने उससे भी सुलभ मार्ग बताया है, परन्तु महाराज ने तो उसको भी नहीं माना। एक लक्ष रजत प्रतिवर्ष इन्द्र ने देना स्वीकार किया था।"

"आप एक बात क्यों नहीं करते। धीरे-धीरे गान्धार-सैनिकों को अपने-अपने घरों को भेज दीजिए। जब उनकी संख्या कम हो जाएगी तो स्वाभाविक तौर पर खाने की कमी कुछ सीमा तक सुलभ हो जाएगी। दूसरी ओर देवताओं को भी कश्मीर इत्यादि स्थानों पर जाने की प्रेरणा कीजिए। इस प्रकार इस देश में केवल उनकी उतनी संख्या रह जाएगी जिसका यहाँ भरण-पोषण हो सकेगा।"

सुमन का प्रस्ताव तो ठीक था, परन्तु इसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए बहुत चतुराई की आवश्यकता थी। उसकी योजना सफल नहीं हो सकी। जिन देवताओं को देवलोक छोड़कर जाने को कहता था वे उत्तर देते थे—"दूसरे देशों में बिना काम-धंधा किए पालन नहीं हो सकता। हम किसी भी काम के करने में योग्य नहीं। इस कारण विदेश जाने से हम भूखे मर जाएँगे। यदि मरना है तो अपने देश में मरना श्रेयस्कर समझेंगे।"

करण जब गान्धारों को जाने को कहता तो वे देवता-स्त्रियों की बात और उनसे उत्पन्न बाल-बच्चों की बात बता देते। वे यह भी कहते कि यहाँ तो वे सैनिक हैं, परन्तु घर लौटकर तो उनको भूमि ही जोतनी पड़ेगी। घर पर उनकी कुरूप स्त्रियाँ और उनसे उत्पन्न गोल-मटोल बच्चे उनकी जान खा जाएँगे।"

नहुष अब प्रतिदिन शची के स्वप्न देखने में लीन था। उसने अब अन्य औरतों से सम्बन्ध त्याग दिया था। वह अब नई-नई लड़कियों की कामना भी नहीं करता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसके सेवक जो प्रायः लड़कियाँ पकड़कर लाते थे, कभी उसके सामने कोई युवती लाते तो वह मुख मोड़कर कह देता, "ले जाओ इस कुरूप लड़की को। ऐसों के लिए यह सुन्दर भवन नहीं।" शची के पाने की नहुष की लालसा उग्र होती गई। समय पाकर नगर के रहने वालों में भी इसकी चर्चा होने लगी। करण जब भी उसको एकान्त में मिलता तो नहुष इन्द्राणी का रोना ही रोता। इसी वियोग में नहुष कुछ दुर्बल और क्षीणशरीर प्रतीत होने लगा। करण ने एक दिन नहुष को समझाने का यत्न किया। उसने कहा—"महाराज ! यह व्यवहार एक देश के राजा को शोभा नहीं देता। आपको अपना पूर्ण ध्यान राजपाट की ओर देना चाहिए।"

"करण ! तुमको मैंने राजकार्य और जनता की रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया है। तुम जो कुछ भी भला-बुरा करोगे मैं उसमें आपत्ति नहीं करूँगा।"

"पर महाराज ! पर-स्त्री की लालसा ही बुरी बात है। यह भयंकर परिणाम उत्पन्न कर सकती है। राजा के आचरण का प्रजा अनुकरण करती है। इस आचरण का अनुकरण तो राज्य में अव्यवस्था पैदा कर देगा।"

"राजाओं के लिए प्रजा के नियमों से भिन्न नियम होते। देखो भाई, यदि एक पुरुष अपने पड़ोसी का मकान लूट ले तो यह बहुत भारी अपराध माना जाता है। परन्तु राजा लोग तो पड़ोसी राजाओं का राज्य छीनते ही हैं। साधारण लोगों के लिए सन्तोष एक गुण है, परन्तु जिस राजा ने सन्तोष किया वह नाश को प्राप्त हुआ समझो।"

"महाराज ! यह शुक्रनीति का सिद्धान्त है और इस देश में और शेष सभ्य संसार में राजा को उस रूप में नहीं माना जाता, जिस प्रकार शुक्राचार्य ने माना है। न तो राजा भगवान् का स्वरूप है, न ही इसके लिए जीवन का कोई पृथक् नियम है। इतनी बात अवश्य है कि राजा स्वयं नियमविधान चलाता है और अपने को दण्ड देने में वह सक्षम नहीं। फिर भी दण्ड उसको भी मिलता है। यदि प्रजा इतनी प्रबल न हो कि राजा को दण्ड दे सके तो प्रकृति की सतत चलने वाली चक्की अवश्य दण्ड का विधान कर देती है।"

नहुष ने कुछ विचारकर कहा, "यदि शची जैसी स्त्री से प्रेम करने से और उसको प्राप्त करने के यत्न में कोई दण्ड मिलता है तो मिलने दो। वह दण्ड भी आनन्दोत्पादक होगा।"

"महाराज ! एक बात इसमें विचारणीय है। वह है राजा का प्रजा से सम्बन्ध। प्रजा राजा की आज्ञापालन करती है, इस कारण प्रजा भी राजा के गुण-दोषों की भागी होती है। जब राजा को दण्ड मिलता है तो प्रजा को भी दण्ड मिलता है। इस कारण राजा का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। उसके कर्मों का फल उस तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु वह पूर्ण देश में व्याप्त हो जाता है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है, परन्तु शची के लिए तो मैं घोर यन्त्रणा सहन करने के लिए भी तैयार हूँ।"

"परन्तु आप अपनी यन्त्रणा दूसरों के सिर कैसे मढ़ सकते हैं?"

"अच्छी बात है। एक बात करो। तुम शची के पास जाकर उसको कहो कि यदि वह मेरी पत्नी बनना स्वीकार करे तो मैं अपना सर्वस्व उस पर न्यौछावर करने के लिए तैयार हूँ। तुम जाओ और इस दिशा में यत्न करो। इन्द्र का प्रस्ताव तो किसी समय भी माना जा सकता है। इससे पूर्व इस दिशा में यत्न करना ठीक रहेगा।"

सैनिकों को स्वर्ण मुद्राओं के रूप में वेतन मिलते हुए छः मास से अधिक हो चुके थे। इससे कोष रिक्त हो रहा था। कश्मीर से आकर माल का यहाँ वितरण होना, कई बार विद्रोह का कारण हो चुका था। प्रतिदिन स्थिति विकट होती जाती थी। इससे करण ने यह विचार किया कि नहुष की योजना पर भी विचार करना उचित है। उसको इसके सफल होने की कुछ विशेष आशा नहीं थी, परन्तु यह विचारकर कि इसके असफल होने पर वह नहुष को किसी अन्य कुकर्म करने से रोक सकेगा, वह जाने के लिए तैयार हो गया।

जब सुमन को करण ने बताया कि वह इस कार्य के लिए जा रहा है, तो सुमन को बहुत दुःख हुआ। उसको अति दुःखित देख करण ने पूछा—"क्या बात है प्रिये! तुम इस समाचार से अवाक् मुख खड़ी रह गई हो। क्या तुम भय अनुभव कर रही हो?"

"भय की तो कोई बात नहीं, परन्तु आपके इसके लिए हाथ-पाँव मारने का कार्य दुःखकारक अवश्य है। यह कार्य अत्यन्त घृणित है। थोड़ी सान्त्वना केवल इस बात से प्राप्त होती है कि आपको इसमें सफलता नहीं मिल सकेगी। आपका यह प्रयत्न ऐसा ही है जैसे कि पानी मथकर मक्खन निकालना।

"यहाँ पर किसी स्त्री को पकड़कर, उसको प्रलोभन देकर अथवा बल से विवश कर अपनी पत्नी बना लेना एक बात है, परन्तु वहाँ स्वतन्त्र स्थान पर इन्द्र की सहवासिनी को नहुष जैसे की पत्नी बनने के लिए मनवा लेना सर्वथा असम्भव है।"

करण ने व्यंग्यभरी दृष्टि से सुमन की ओर देखकर पूछा—"क्या सुमन को अपनी पत्नी बनाने के लिए कोई प्रलोभन दिया गया था अथवा बल का प्रयोग किया था?"

"सुमन किसी अन्य की पत्नी नहीं थी और न ही श्री करण में और श्री नहुष में कोई समता है।"

"क्या अन्तर है दोनों में?"

"इसका उत्तर मुझसे न पूछकर श्री करण अपने मन से ही पूछ लेते तो अच्छा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता।"

"महाराज नहुष देवलोक के अधिपति हैं और करण उनका तुच्छ सेवक। नहुष यहाँ राज्य करने का दृढ़ संकल्प किए हुए है और करण अपने देश लौट जाने की बात सोच रहा है। वहाँ तो मक्की की मोटी रोटी और भेड़ की ऊन के मोटे कपड़े पहनने को मिलते हैं।"

"यह ठीक है। तो भी मैं उन्हीं से सन्तुष्ट रहूँगी।"

"पर मैं पूछता हूँ क्यों? जब तक यहाँ हो सुखी रहोगी, परन्तु हमारे देश में तो अपढ़ गँवार लोगों में रहना पड़ेगा। गरमियों में इतनी कड़ी धूप होगी कि चमड़ी झुलसकर काली पड़ जाएगी और शीतकाल में तीन मास तक बर्फ पड़े रहने के कारण बाहर निकलना असम्भव हो जाएगा।"

"इससे क्या होता है? जिससे प्रेम हो जाता है उसके साथ तो मनुष्य नरक में जाने को भी तैयार हो जाता है। इसमें वासना का समावेश नहीं। इसमें शारीरिक सुख-साधना का भी हाथ नहीं। इसमें तो अन्तरात्मा की अन्तरात्मा से संयोग की बात है।"

करण हँस पड़ा। इस हँसी को अपनी बात पर सन्देह का सूचक मान सुमन ने कहा—"कभी अवसर पड़े तो परीक्षा कर देख लीजिएगा।"

"आशा करता हूँ कि शीघ्र ही वह समय आएगा। पता चल जाएगा कि देव-लोक की स्त्रियों के कथन में कितना तथ्य होता है।"

एक-दो दिन में करण कश्मीर की सीमा की ओर चल पड़ा।

: ९ :

भास्कर के विक्रम के पास पत्र लेकर जाने के पश्चात् देवयानी ने मिलिन्द और सुमति को देवलोक की स्त्रियों में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति जाग्रत् करने के लिए भेज दिया। सुमति से उसने जाते समय कहा—"आज से एक वर्ष में मैं तुमसे मिल सकूँगी। अभी तुम दोनों जाओ।

"मिलिन्द वहाँ का एक-एक घर जानती है। इस पर भी तुम दोनों देवर्षि नारद के कहने के अनुसार कार्य करना।"

अगले दिन आठ संरक्षकों की देखभाल में दोनों देवलोक को चल पड़ीं। देव-लोक को जाने का राजमार्ग लम्बा और नहुष के सैनिकों द्वारा सुरक्षित था। अपने काम के लिए देवर्षि ने एक छोटा, सुगम और गुप्त मार्ग पता कर रखा था। इस मार्ग से बहुत कम लोग जाते थे। यह अति दुस्तर था। इस कारण किसी संरक्षक द्वारा रक्षित भी नहीं था। एक स्थान पर तो मार्ग इतना ऊँचाई पर चला गया था कि बर्फ पर से होकर जाना पड़ता था।

सुमति और मिलिन्द पन्द्रह दिन में देवभूमि में जा पहुँचीं। सीमा से पचास कोस के अन्तर पर अमरावती थी। नारद ने मार्ग में आने-जाने वालों के लिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे स्थान नियत कर रखे थे जहाँ ये लोग ठहर सकते थे। इस कारण चौदह दिन का मार्ग बिना किसी प्रकार की कठिनाई के तय हो गया। केवल अन्तिम दिन, जब ये लोग अमरावती से तीन कोस दूरी पर रह गए थे, एक भीषण घटना घट गई।

अमरावती से पाँच कोस के अन्तर पर एक झरना था। वहाँ का दृश्य अति सुन्दर और लुभावना था। कभी-कभी गान्धार वहाँ मन-बहलाव के लिए जाया करते थे। घटना इस प्रकार हुई कि जब सुमति और मिलिन्द पैदल ही कुलियों पर सामान लदवाए अमरावती की ओर जा रही थीं, तो एक गान्धार अधिकारी कनकदेव उसी झरने से अपने अश्व पर सवार चला आ रहा था। यात्रियों को जब घोड़े के आने की आहट मिली तो वे मार्ग छोड़कर एक ओर हो गए। अश्वारोही जब यात्रियों के समीप से निकलने लगा तो उसकी दृष्टि सुमति पर पड़ गई। उसने अपने घोड़े की लगाम खेंच उसको खड़ा कर लिया और सुमति के समीप आने पर उसका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। सुमति ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। इस पर अधिकारी ने पूछा—"देवी ! कहाँ से आ रही हो ?"

सुमति ने उस गाँव का नाम बताया जहाँ से वे उस दिन प्रात:काल चली थीं। इस पर उसने कहा—"वह तो बहुत दूर है। देवी के पाँव थक गए होंगे, मैं सवारी के लिए अपना घोड़ा दे सकता हूँ।"

सुमति ने उसके मुख पर देखते हुए कहा—"आपका बहुत धन्यवाद है। हमको कुछ कष्ट नहीं। हम सूर्यास्त से पूर्व नगर में पहुँच जाएँगे।"

"पर मैं तो आपको इस प्रकार पैदल जाते देख अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपकी सहायता करूँ।"

अश्वारोही इतना कहकर घोड़े से उतर पड़ा और सुमति को घोड़े पर चढ़ने का आग्रह करने लगा। सुमति चलती गई और बोली—"श्रीमान् ! आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आप चलिए, मैं घोड़े पर सवारी नहीं करती।"

परन्तु कनकदेव इससे और भी उत्साहित हो सुमति को बाँह से पकड़कर घोड़े पर चढ़ने के लिए आग्रह करने लगा। कनकदेव ने सुमति को छुआ ही था कि सुमति ने अपने पूरे बल से एक चपत उसके मुख पर लगाई। इससे वह गान्धार-अधिकारी चकित रह गया और आश्चर्य में सुमति का मुख देखने लगा।

उस गान्धार को अश्व से उतर सुमति के पास आते देख, साथ जाने वाले संरक्षक समीप आ खड़े हो गए। वह अश्वारोही मुख पर चपत लगने पर खिल-खिलाकर हँस पड़ा था। पश्चात् वह सुमति की कमर में हाथ डालकर घोड़े पर उसको बैठाने का यत्न करने लगा। उसने कमर में हाथ डाला ही था कि सुमति कूद कर फुर्ती से पीछे हट गई। एक संरक्षक ने अपना खड्ग निकाल लिया और पूर्व इसके कि गान्धार अपना खड्ग निकाले, संरक्षक ने उसकी बाँह पर वार कर दिया,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे बाँह कलाई के नीचे से कटकर दूर जा गिरी। गान्धार इस स्फूर्ति को देखता रह गया। अन्य संरक्षकों ने भी अपने-अपने खड्ग निकाल लिये और सुमति के आगे खड़े हो गए। गान्धार ने समझ लिया कि वहाँ एक क्षण भी और खड़े रहने से उसका जीवन खतरे में पड़ सकता है, इस कारण वह एक हाथ के आश्रय से लपक कर घोड़े पर चढ़ गया और घोड़े को एड़ी लगाकर अमरावती की ओर भाग गया।

उसके दृष्टि से ओझल हो जाने पर मिलिन्द ने कहा—"हमें मार्ग छोड़कर उस गाँव के पीछे से दूसरे मार्ग पर चले जाना चाहिए। वह अभी नगर से सैनिक लेकर आएगा। अभी तो यही उचित है कि जैसे-तैसे बचकर अमरावती पहुँचा जाए। वहाँ हम प्रबन्ध कर लेंगे।"

सबको यह सम्मति जँच गई। वे मार्ग छोड़कर सामने के गाँव की ओर चल पड़े। वहाँ गाँव को लाँघकर दूसरी ओर से अमरावती की ओर चल पड़े और सूर्यास्त से पूर्व ही नगर में जा पहुँचे।

इनके लिए एक मकान का प्रबन्ध किया गया था। उस मकान तक उनको ले जाने के लिए एक देवता नारद के कहने के अनुसार मुख्य द्वार पर खड़ा था, परन्तु ये लोग एक दूसरे द्वार से वहाँ पहुँचे। मिलिन्द की एक सखी थी। वह सुमति को लेकर उसके घर जा पहुँची। परन्तु उस घर में गान्धार-सैनिक रहने लगे थे। इससे उसको बहुत चिन्ता लग गई। वह समझती थी कि दिन की घटना के पश्चात् उन का बहुत देर तक इधर-उधर घूमते रहना उचित नहीं। इस कारण उसने शीघ्र कहीं ठहर जाना ही उचित समझा। अगले मुहल्ले में पहुँच उसने मार्ग पर चलती एक स्त्री से पूछा—"यहाँ कोई मकान भाड़े पर मिल सकेगा?"

उस स्त्री ने मिलिन्द को भलीभाँति देखकर कहा—"भाड़ा स्वर्ण मुद्रा के रूप में देना होगा।"

मिलिन्द ने कहा—"देंगे।"

"तो चलिए। मेरे मकान का एक भाग खाली है।"

"दिखाओ कैसा है?"

मकान को अनुकूल पा मिलिन्द ने एक मास का भाड़ा एक स्वर्ण मुद्रा देकर मकान ले लिया।

मकान की ऊपर की मंजिल में स्वयं ठहर संरक्षकों को नीचे की मंजिल में ठहरा दिया। पश्चात् अपने आने की सूचना नारद तक पहुँचाने के लिए मिलिन्द घर से निकल किसी कश्मीरी की दुकान ढूँढ़ने लगी। मार्गों पर चलते हुए उसने देख लिया कि सैनिकों में भाग-दौड़ हो रही है। वह समझ गई कि उनकी खोज हो रही है। निश्चय ही सैनिक उनको पकड़ने के लिए मार्ग पर गए होंगे और उनको वहाँ न पा, वे अब नगर में ऊधम मचाने लगे हैं। इस कारण मिलिन्द और भी सतर्क हो गई। एक दुकान पर बहुत भीड़ देख उसने अनुमान कर लिया कि वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कश्मीरी की दुकान है। उसने वहाँ खड़े एक देवता से पूछा और इस प्रकार अपना अनुमान ठीक पा दुकान पर जा पहुँची। दुकानदार से उसने कहा—"मैं अलग से एक बात करना चाहती हूँ।" दुकानदार उठकर उसको भीतर ले गया और पूछने लगा—"क्या है?"

मिलिन्द ने कहा—"हम कश्मीर से आए हैं। देवर्षि से मिलना चाहते हैं। हम घूम-फिर नहीं सकते। मार्ग में एक दुर्घटना हो गई है।"

दुकानदार ने उनके मकान का पता पूछ लिया जो मिलिन्द ने भाड़े पर लिया था। पश्चात् उसने कहा—"आप चलिए। देवर्षि कुछ काल में पहुँच जाएँगे। आप के भोजनादि का प्रबन्ध भी हो जाएगा। हाँ, तो वह दुर्घटना आपके साथ हुई है? गान्धार सेनापति की बाँह कट गई है। सैनिक आपको ही ढूँढ़ रहे हैं। आप शीघ्र घर पर चले जाइए और किसी से भी इस दुर्घटना की चर्चा न करिए।"

मिलिन्द सब समझ गई और वापस घर लौट आई। सुमति यह बता ही रही थी किस प्रकार वह नारद से मिलने का प्रबन्ध कर आई है कि एक सेवक उनके लिए खाना ले आया। मिलिन्द इस सतर्कता को देखकर विस्मय कर रही थी कि नारद भी आ पहुँचा।

नारद ने कश्मीर में देवयानी को आने के लिए लिखा था। देवयानी के स्थान पर सुमति को देख विस्मय करने लगा। मिलिन्द ने नारद का विस्मय देख पूछा—"क्यों, क्या बात है देवर्षि?"

"मैं इस देवी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। मैं समझा था कि देवयानी आ गई है?"

"तो मैं लौट जाऊँ?"

"नहीं। परन्तु हमारे दल के लोग राजकुमारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब उनको कुछ बताकर सन्तुष्ट करना होगा।"

"राजकुमारी एक आवश्यक कार्य में व्यस्त है। पाँच मास में वह कार्य समाप्त होगा और उसके बाद पाँच-छः मास और भी लग जाएँगे।"

"ओह, यह बात है! तब तो ठीक है। सुमतिदेवी आ गई हैं। कुछ काम तो हो ही जाएगा। परन्तु मार्ग में यह क्या घट गया है?"

मिलिन्द ने सब कथा सुनाई। इस पर नारद ने कहा—"इसका प्रभाव बहुत अच्छा हुआ है। गान्धारों के मन में आतंक बैठ गया है। राज्य पलटने के पश्चात् यह पहली बार है जब किसी गान्धार को किसी देवता ने घायल किया है। वे आपको देवता ही समझते हैं। अभी तक वे यही समझते थे कि देवता और भीरु पर्यायवाचक शब्द हैं। आज नगर-भर में यह चर्चा है कि एक देवकन्या ने सेनापति के मुख पर चपत लगाई है। इस समाचार से देवताओं के मन बल्लियों उछल रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहुष को इस समाचार से बहुत क्रोध आया है। शायद वह आज रात को देवताओं की हत्या करने का आदेश देगा। हमने इसका बदला लेने का ढंग सोच लिया है। सब कश्मीरी सैनिक आज रात को एक स्थान पर एकत्रित हो जाएँगे और यदि गान्धारों ने एक भी देवता की हत्या की तो वे भी गान्धारों के विरुद्ध हाथ उठाएँगे। जितने देवता मरेंगे उतने ही गान्धार मार डाले जाएँगे।

"अब तो हमारे दल में देवता भी सम्मिलित हो रहे हैं। अभी तो इनकी संख्या बहुत कम है, परन्तु शीघ्र ही उसमें बढ़ती करनी है। इसी कार्य के लिए तुमको बुलाया है। तुम देवता-स्त्रियों को समझाओगी तो वे अपने पतियों को विवश करेंगी कि देश के उद्धार में सहयोग दें।"

: १० :

कनकदेव की घटना के समय करण शची से मिलने गया हुआ था। कनकदेव कटा हुआ बायाँ हाथ लिये रक्त से लथ-पथ नहुष के सामने आ खड़ा हुआ। अपने सेनापति की यह दुर्दशा देख नहुष स्तब्ध रह गया। कनकदेव ने पुकारकर कहा—"महाराज ! न्याय चाहिए।"

"क्या हुआ है, कनकदेव ?"

इसका उत्तर वह नहीं दे सका। रक्तस्राव अधिक हो गया था और घोड़े पर सवार होने के कारण परिश्रम से थककर वह अचेत हो गया था। नहुष ने देवताओं के योग्य चिकित्सक जाबाल को बुलवाया और सेनापति की चिकित्सा का भार उस पर डाल दिया। जब रक्त बन्द हुआ और उसको शक्तिवर्धक ओषधियों से चेतनता प्राप्त हुई तो उसने सब कथा सुनाई। साथ ही अपना अभियोग उपस्थित कर दिया—"महाराज ! मैं भ्रमणार्थ जलप्रपात पर गया हुआ था। वहाँ से अपने साथियों को पीछे छोड़ अकेला घोड़े पर चला आ रहा था कि एक अद्वितीय सुन्दरी कुछ सैनिक सेवकों तथा संरक्षकों के साथ पैदल आती दिखाई दी।

"मैंने उसके कोमल चरणों को कष्ट से बचाने के लिए अपना अश्व उसकी सेवा में कर दिया। उसने उसे स्वीकार नहीं किया। तब मैंने उसकी बाँह पकड़कर घोड़े पर चढ़ने का आग्रह किया। किन्तु बदले में उस स्त्री ने मेरे मुख पर एक चपत लगाई। मुझको क्रोध चढ़ आया। मैंने उसकी कमर में हाथ डालकर घोड़े पर चढ़ाना चाहा तो वह लपककर पीछे हट गई और उसके एक संरक्षक ने अपनी खड्ग निकालकर मेरी बाँह काट डाली।"

"पर कनकदेव ! अपराध तो तुमने किया है।" नहुष ने मुस्कराते हुए कहा।

"नहीं महाराज ! देवलोक की स्त्रियाँ गान्धारों के लिए ही बनी हैं। उनका अधिकार नहीं कि वे गान्धार-सेनापति की बात को न मानें।"

"तुम ठीक कहते हो कनकदेव ! परन्तु एक बात है। गान्धारों का यह अधिकार किसने बनाया है ? क्या यह अधिकार इसलिए नहीं कि हम उनसे अधिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलवान और साहसी हैं। तुमने दुर्बलता, भीरुता और स्त्रियों के विषय में अनभिज्ञता का परिचय दिया है। इस कारण तुम्हारा अधिकार नहीं है कि देवताओं की स्त्रियों का भोग करो। यह लज्जा की बात है कि तुमने अपनी तलवार निकालकर लड़ने की अपेक्षा भाग आना उचित समझा।"

"महाराज ! वे आठ थे और मैं अकेला था।"

"तो तुम अपने साथियों के आने की प्रतीक्षा कर लेते। उस स्त्री को विवश करने की अपेक्षा उसको प्रलोभन देने चाहिए थे। एक देहाती गँवार स्त्री ने गान्धार-सेनापति के मुख पर चपत मारी। इससे पूर्ण गान्धार जाति का अपमान हुआ है और तुमने ऐसा होने का अवसर दिया। इसके तो ये अर्थ हुए कि दुर्बल, भीरु और अनभिज्ञ होने के साथ-साथ तुम मूर्ख भी हो।

"मैं उस लड़की को तो नहीं, परन्तु उसके संरक्षक को जीवित जला देने की आज्ञा देता हूँ। इस कारण नहीं कि उसने तुम्हारी बाँह काट डाली है, प्रत्युत इस कारण कि उसने एक गान्धार पर तलवार चलाने का अपराध किया है।"

इतना कहकर नहुष ने भवन के संरक्षकों के सरदार को आज्ञा दी—"जलप्रपात के मार्ग पर आ रही दो स्त्रियों और उनके आठ साथियों को पकड़कर उपस्थित करो।"

सैनिक गए, परन्तु किसी स्त्री और पुरुष को उस मार्ग पर आते-जाते न देख खाली हाथ लौट आए। तब महाराज नहुष ने यह घोषणा करवा दी—"आज जलप्रपात के मार्ग पर कुछ व्यक्तियों ने सेनापति कनकदेव का अपमान कर दिया है। हम उनको प्राण-दण्ड देते हैं। जो कोई उन व्यक्तियों का नाम-धाम बताएगा उसको एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा पारितोषिक दिया जाएगा।"

इतने भारी इनाम के लोभ से बहुत से भूखे-नंगे गान्धार और देवता निर्दोषों को पकड़-पकड़कर लाने लगे। जब पकड़कर लाया हुआ व्यक्ति कनकदेव के सामने उपस्थित किया जाता तो पता चलता कि वे दोषी नहीं हैं।

नारद ने जब इनाम की बात सुनी तो सुमति और मिलिन्द को उस मकान से निकालकर वह उन्हें पूर्वनिश्चित मकान पर ले गया। उसको डर लग गया था कि कहीं उस मकान की मालिक स्त्री इनाम के लालच में इनको पकड़वा न दे।

अगले दिन सुमति और मिलिन्द ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। कश्मीर से आए सैनिक और देवता, जो उनके दल में सम्मिलित हो गए थे, जंगल में एक मकान में उन सबकी एक गुप्त सभा हुई। उसमें राजकुमारी के न आ सकने का समाचार दिया गया और सुमति के उनके स्थान पर आने की बात बताई गई। प्रपात के मार्ग पर घटी घटना का वास्तविक रूप भी बताया। जब उपस्थित दल के सदस्यों ने सत्य घटना का रूप जाना तो वे सुमति के साहस की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी धमनियों में रक्त खौलने लगा और एक कश्मीर कन्या के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपमान की बात समझ वे बदला लेने के लिए उतावले होने लगे। सुमति ने केवल इतना कहा—"जिस प्रकार मेरे साथ दुर्व्यवहार हुआ है, ऐसा यहाँ की नारियों से नित्य होता रहता है। हम आर्य लोग अपनी स्त्रियों से किया गया अपमानजनक व्यवहार क्षमा नहीं कर सकते। इस कारण मैं अपने वीर-धीर भाइयों से अपनी बहिनों की रक्षा की भीख माँगती हूँ।"

इस सभा में भारी उत्साह था। इस कारण अन्त में नारद ने एक बात कही —"जो भी कार्य किया जाएगा वह संगठित रूप में होगा। अतएव कोई भी व्यक्ति बिना नेता से आज्ञा प्राप्त किए किसी भी प्रकार का झगड़ा न करे। सब एकत्रित हो एक योजना के अनुसार कार्य करेंगे।"

मिलिन्द सुमति को घर-घर में ले जाती थी। वह उसकी देवताओं की स्त्रियों से भेंट करवाती और उनको यह कहती कि आततायियों के साथ असहयोग करना उनका परम कर्तव्य है। अभी उस संगठन का उल्लेख नहीं किया जाता था, जो विद्रोह करने के लिए बनाया गया था।

पड़ोस में एक देवता रहता था। उसकी तीन लड़कियाँ थीं। तीनों अब गान्धार-सैनिकों की पत्नियों के रूप में रहती थीं। वे गान्धार-सैनिक भी उस वृद्ध देवता के घर में ही रहते थे। इन गान्धारों के अपनी पत्नियों से बच्चे भी हो गए थे। मिलिन्द ऐसी स्त्रियों से मेलजोल रखना नहीं चाहती थी। वह समझती थी कि जिन स्त्रियों के गान्धारों से सन्तान हो गई हैं, वे अपने पतियों से द्रोह नहीं करेंगी। इस कारण इन लड़कियों को और उनके बाल-बच्चों को देख मिलिन्द उनसे पृथक् रहने का प्रयत्न करती थी।

फिर भी एक दिन सबसे छोटी लड़की, जिसकी आयु उन्नीस-बीस वर्ष की होगी, स्वयं सुमति से मिलने चली आई। मिलिन्द ने उसको पड़ोस के घर में आते-जाते देखा था। उसको पहचानकर आदर से बैठाया और कहा—"मैं समझती हूँ कि आप हमारे पड़ोस में रहती हैं।"

"हाँ।" उसने एक गम्भीर साँस खींचकर कहा, "जबसे आप हमारे पड़ोस में आई हैं आपसे मिलने को जी चाहता था, परन्तु संकोचवश आ नहीं सकी।"

"संकोच की क्या आवश्यकता थी? आप आ सकती थीं। हमने अभी आस-पड़ोस में मिलने का यत्न नहीं किया। इसका कारण है कि हम देहात की रहने वाली हैं और नगर की स्त्रियों के रहन-सहन और स्वभाव को नहीं जानतीं। हम डरती हैं कि कोई ऐसी बात न कर बैठें जो किसी को अरुचिकर प्रतीत हो।"

वह लड़की मुस्कराई और बोली—"आपकी लड़की कहाँ है?"

मिलिन्द समझ गई कि वह सुमति के विषय में पूछती है। इससे उसने कहा—"कल रात को वह कुछ अस्वस्थ रही है। इस कारण अभी सोकर नहीं उठी। आपका नाम क्या है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कंचन।"

"आपकी और बहिनें भी तो हैं?"

"हाँ! दो और हैं। वे मुझसे बड़ी हैं। हम तीनों इकट्ठी रहती हैं। पिताजी वृद्ध हैं और कुछ कर-धर नहीं सकते। देवराज इन्द्र के काल में तो कुछ काम करने की आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु आज बिना स्वर्ण मुद्रा के पेटभर भोजन नहीं मिल सकता और स्वर्ण की प्राप्ति के लिए प्रयत्न की आवश्यकता है।

"यहाँ से दस कोस के अन्तर पर नीला नदी की बालू में स्वर्ण कण मिलते तो हैं, परन्तु हमारे पिता की दृष्टि क्षीण हो चुकी है। वे स्वर्ण बटोरने नहीं जा सकते।"

"तो उनके स्थान पर आप जाती हैं क्या?"

"हमको हमारे घर वाले जाने नहीं देते। उनको स्वर्ण मुद्रा राज्य की ओर से मिलती हैं।"

"तो आप अपने-अपने भाग में से कुछ देकर अपने पिता का पालन करती होंगी?"

"करती तो हैं, परन्तु हमारे घर वाले उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते हैं।"

"तुम्हारी माँ नहीं है क्या?"

"थी। वह राज्य बदलने के समय मार डाली गई थी। उसके शोक में ही पिताजी की दृष्टि क्षीण हुई है।"

"आप लोगों की अति भयानक कथा है। आपका विवाह कैसे हुआ था इनसे?"

"राज्य-परिवर्तन के दिन हम सब वसन्तोत्सव पर गए थे। मार्ग में ही पता चल गया था कि स्त्रियों को पुरुषों से पृथक् किया जा रहा है। इससे लौटकर हम देहात में अपने ननिहाल चले गए। एक मास पश्चात् नगर में शान्ति अनुभव कर यहाँ आ गए। एक दिन ये तीनों सैनिक हमारे घर में घुस आए और हममें से एक-एक को उन्होंने अपनी पत्नी बना लिया। माँ ने आपत्ति की तो उसके पेट में छुरा घोंप उसको मार डाला। पश्चात् वे हमारे ही घर में रहते हैं। कुछ समय पाकर हमारे बच्चे भी हो गए हैं। मेरी बड़ी बहिन के घर में दो लड़के और एक लड़की है। मँझली के घर में दो लड़कियाँ हैं। मेरे घर में एक लड़का है।"

"अब तो आप बहुत प्रसन्न होंगी?"

"प्रसन्नता के अर्थ मैं नहीं समझती। जहाँ तक भोजन-वस्त्र का सम्बन्ध है, वह मुझको मिल जाता है। मकान पिता का है। वे अति दुःखी हैं। मैं उनकी सेवा करूँ तो घर वाला क्रोध करता है। इस कारण चोरी-चोरी उनको खाने-पहनने को देती रहती हूँ। कल जब इस बात का पता चल गया तो उसने मुझे बुरी तरह पीटा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं रात ही को भाग जाना चाहती थी, परन्तु जाती कहाँ ? जहाँ भी जाती वहीं किसी गान्धार की पत्नी बनकर रहना पड़ता । और वह इससे अच्छा व्यवहार करेगा, ऐसा मैं नहीं समझती ।"

मिलिन्द इस दुःख-गाथा को सुन उसका मुख देखती रह गई । जब मिलिन्द ने कुछ नहीं कहा तो उस लड़की ने फिर कहा—"आपकी लड़की कल बिक्री वाली दुकान पर एक वृद्धा को अनाज देने के लिए कह रही थी । दुकानदार ने उस वृद्धा को बहुत सम्मान के साथ बिठाया और चावल, घी, नमक, मसाला, सब कुछ जो उसने माँगा, दिया । मैं भी उस दुकान पर अपने लिए सामान लेने गई थी । मेरे मन में आया है कि उनसे कहकर अपने पिताजी के रहने के लिए भी कुछ प्रबन्ध करवा दूँ । आपकी बहुत कृपा होगी ।"

मिलिन्द ने कुछ विचारकर कहा--"लड़की के पास कुछ धन है । वह उसने दुकानदार के पास जमा कर रखा है । जब तक वह जमा है, आपके पिता को भी आवश्यकतानुसार कुछ मिलता रहेगा, परन्तु कंचन देवी ! यह कब तक चल सकेगा ? मैंने अपनी लड़की से भी कहा था कि उसका धन सदैव तो चल नहीं सकता, तब यह दारुण दुःख-निवारण कौन करेगा ? उसका उत्तर है, कि जब तक चलेगा तब तक तो चलाना चाहिए । मैं तो कहती हूँ कि इसका कुछ स्थायी उपाय होना चाहिए । मैं पूछती हूँ कि क्या तुम और तुम्हारी बहनें अपने जीवन से सन्तुष्ट हैं ?"

"मैं बहनों की बात तो जानती नहीं, पर अपने विषय में कह सकती हूँ कि यह ठीक नहीं बीत रहा । मुझको उससे ग्लानि होती है ।"

"यही तो मैं भी विचार करती हूँ । अपनी इच्छा के विपरीत किसी से सहवास करने पर विवश किया जाना किस स्त्री को पसन्द हो सकता है ? उस दिन एक घटना सुनने में आई थी । जलप्रपात के मार्ग पर एक लड़की ने एक गान्धार के मुख पर चपत दे मारी थी । बहुत ही बहादुर लड़की होगी वह !"

"सुना तो हमने भी था, परन्तु एक बात थी । उस लड़की के साथ आठ संरक्षक थे और जब उस गान्धार ने बलपूर्वक उसका अपहरण करना चाहा, तो एक संरक्षक ने उसकी बाँह काट डाली थी । ऐसे संरक्षक सबके पास तो होते नहीं ।"

"मैं तो यही सोचा करती हूँ कि ऐसे संरक्षक कहाँ से पाऊँ । जब वैसे संरक्षक मिलने सुलभ हो गए तो क्या हमारे देश की लड़कियाँ इन गान्धारों का जुआ उतार न फेंकेंगी ?"

"औरों की बात मैं नहीं जानती । परन्तु मेरी रक्षा करने वाला यदि कोई हो तो मैं इस पशु को छोड़ उसके पास चली जाऊँगी ।"

"तुम्हारी बात इतनी सुगम नहीं जितनी तुम समझती हो । तुम्हारे एक लड़का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी है, शायद तुम अपने पुत्र के पिता के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकोगी। साथ ही कंचन देवी ! यह भी तो है कि यह समस्या तुम अकेली की तो है नहीं। उन स्त्रियों की संख्या, जो बलपूर्वक दूसरों की पत्नियाँ बनाई गई हैं, बहुत अधिक है। इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। ऐसी अन्याययुक्त कथाओं को सुन-सुनकर मेरा तो मन ऊब गया है। तुम्हारे पिता की वृत्ति का, जब तक हमारे पास कुछ है, हम प्रबन्ध करते रहेंगे।"

इसी प्रकार विदेशीय राज्य के कारण व्यापक व्यथा का प्रसार सर्वत्र दिखाई देता था।

: ११ :

जब कनकदेव को बाँह काटने वाले का पता नहीं चला तो नहुष बौखला उठा। उसने करण के पीछे उसका काम करने वालों को बुलाया और कहा—"आप कैसा राज्य का संचालन कर रहे हो ? एक अपराधी को पकड़ने के लिए दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा का पुरस्कार भी सहायक नहीं हो सका ? इस प्रकार राज्य कैसे चल सकेगा?"

"बहुत यत्न किया है महाराज ! परन्तु वे लोग न जाने कहाँ विलीन हो गए हैं?"

"तुम्हारे उपाय तो सब विफल हो गए हैं, अब मैं अपने ढंग से काम करना चाहता हूँ। देखो, यह घोषणा करवा दो। अपराधियों को कुछ देवता छुपाकर रखे हुए हैं। इस कारण जब तक वह स्त्री, जिसने कनकदेव के मुख पर चपत लगाई है और वह पुरुष, जिसने उसकी बाँह काटी है, अपने-आप न्यायालय में उपस्थित नहीं हो जाते, तब तक प्रतिदिन एक देवता-पुरुष और एक देवता-स्त्री पकड़कर मृत्युदण्ड के भागी बनते रहेंगे।"

घोषणा करवा दी गई। नगरभर में यह समाचार फैल गया और इसका प्रथम प्रभाव आतंक के रूप में प्रकट हुआ। अगले दिन कोई भी देवी-देवता अपने-अपने घरों से बाहर नहीं निकला। फिर भी घोषणा के अनुसार नहुष के सैनिक आए और एक घर में से एक देवता-स्त्री और एक देवता-पुरुष, दोनों रोते-चीखते हुओं को पकड़कर ले गए। लोग क्रोध में चीखते तथा लाल-पीले हुए, देखते रह गए।

वे न्यायालय में उपस्थित किए गए। नहुष न्यायकर्ता था। उनसे नहुष ने पूछा—"क्या नाम है?"

"अक्षपाद, महाराज ! और यह मेरी लड़की केशिका है।"

"तुमने मेरी घोषणा सुनी है?"

"हाँ महाराज !"

"तो उनका पता बताओ।"

"हम नहीं जानते महाराज ! हम निर्दोष हैं।"

"अच्छी बात है। तुम दोनों को बन्दी किया जाता है। यदि कल सायंकाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक अपराधी न्यायालय में उपस्थित नहीं हो जाते, तो तुम दोनों को प्राणदण्ड दिया जाएगा और उसके पश्चात् दो देवताओं को और पकड़ लिया जाएगा, जिन को कि अगले दिन मध्याह्न तक बन्दी रखा जाएगा और अपराधियों के प्रकट न होने पर उनको भी प्राणदण्ड दिया जाएगा। इसी प्रकार यह क्रम चलता रहेगा, जब तक अपराधी अपने आपको न्यायालय में उपस्थित नहीं करते।"

अक्षपाद और केशिका बहुत रोते-धोते रहे, परन्तु उनकी किसी ने नहीं सुनी और उनको बन्दीगृह में भेज दिया गया। अगले दिन एक और घटना घटी। मध्याह्न होने से पूर्व ही एक गान्धार-सैनिक न्यायालय में उपस्थित होकर एक पत्र दिखाकर बोला—"महाराज ! मेरा भाई और उसकी स्त्री आधी रात से लापता हैं और यह पत्र उनके घर के द्वार के बाहर लगा मिला है।"

पत्र पढ़ा गया। उसमें लिखा था—'यदि एक देवता के अपराध से कोई दूसरा देवता पकड़ा जाकर दण्ड का भागी हो सकता है, तो एक गान्धार के अपराध के लिए कोई भी गान्धार दण्डित किया जा सकता है। हमने इस घर के रहने वाले गान्धार और उसकी स्त्री को पकड़ लिया है। यदि अक्षपाद और केशिका को दण्ड दिया गया तो इन दो को भी वही दण्ड दिया जाएगा।'

इस पत्र को पढ़ नहुष पागल हो उठा। उसने कहा—"तो अब इन देवताओं का इतना साहस हो गया है कि मेरी आज्ञा का प्रतिकार करने लगे हैं। देखें, ये कैसे एक गान्धार की हत्या करते हैं ? गान्धार के एक-एक रक्त की बूंद के लिए एक-एक देवता की जान ली जाएगी। मैं आज्ञा देता हूँ कि अक्षपाद और केशिका को अभी मेरे सम्मुख लाकर मृत्युदण्ड दिया जाए।"

गान्धार नहुष का मुख देखते रह गए। दोनों बन्दियों को पकड़कर लाया गया और उनका नहुष के सम्मुख ही सिर काट दिया गया। साथ ही नहुष ने आज्ञा दे दी कि और देवताओं को पकड़कर लाया जाए।

जिस पेड़ की डाली से अक्षपाद और केशिका के सिर लटकाए गए थे, अगले दिन उसी के साथ ही गान्धार-सैनिक और उसकी स्त्री के सिर लटके हुए दिखाई दिए। साथ ही नहुष को यह सूचना मिली कि दो गान्धार और पकड़ लिये गए हैं।

नहुष के क्रोध का वारापार नहीं रहा। उसने आज्ञा दी कि देवताओं का एक बड़ा हत्याकाण्ड किया जाए। आज्ञा पाकर पाँच सौ सैनिक देवताओं के मुहल्ले में घुस गए और घरों में से देवताओं को पकड़-पकड़कर मृत्यु का ग्रास बनाने लगे। इसका प्रतिकार भी लिया जाने लगा और चलते-फिरते गान्धार धड़ा-धड़ मारे जाने लगे। दोनों ओर हाहाकार मचने लगी। गान्धार भाग-भागकर नहुष के पास जाने लगे और इस काण्ड को बन्द करने की प्रार्थना करने लगे। यह हत्याकाण्ड एक प्रहर से अधिक नहीं चल सका। नहुष डर गया। उसको अपने भवन के चारों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर सहस्रों सैनिक रक्षार्थ खड़े करने पड़े । देवताओं से गान्धारों की अधिक हत्या हुई ।

नहुष के मन्त्रीगण उसके क्रोध को शान्त करने का यत्न करने लगे । उनका कहना था कि यदि देवताओं द्वारा गान्धार मारे जाने की आज्ञा की सूचना देहातों में पहुँच गई तो देवलोक में गान्धारों का चिह्न भी शेष दिखाई नहीं देगा । विवश नहुष को गान्धार सैनिक वापस बुलाने पड़े । अगले दिन यह घोषणा की गई कि बिना अपराध सिद्ध हुए कोई नहीं मारा जाएगा ।

उस रात सुमति की अध्यक्षता में अमरावती के बाहर जंगल में कश्मीर और देवताओं के विद्रोही दल के प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई । इसमें उस दिन की कार्यवाही पर विचार हुआ । जिन सैनिकों ने इस प्रतिकार की योजना में भाग लिया उनके कार्य की सराहना की गई और दृढ़ निश्चय किया गया कि इस विद्रोह-दल को और सबल बनाया जाए ।

इस समय तक सुमति और मिलिन्द के कार्य का भी प्रभाव होने लगा था । देवताओं की स्त्रियों ने, जो उनकी इच्छा के विरुद्ध गान्धारों की पत्नियाँ बना ली गई थीं, अपने पतियों को छोड़ना आरम्भ कर दिया । नगर के मध्य में एक आश्रम बनाया गया, जहाँ इस प्रकार की स्त्रियों को रखने का प्रबन्ध हो गया । इस आश्रम का नाम रखा गया 'महिला मन्दिर' ।

इस मन्दिर में सबसे पहले रहने के लिए कंचनदेवी आई । पश्चात् और स्त्रियाँ भी वहाँ आ गईं । इस नई बात की सूचना भी नहुष के पास पहुँची । उसने सैनिक भेजकर महिला मन्दिर की एक स्त्री को वहाँ बुलवाया । जब सैनिक वहाँ गए तो कंचनदेवी उसके साथ न्यायालय में आ गई । उसको मिलिन्द ने आश्वासन दिलाया कि जिन्होंने अक्षपाद और केशिका का बदला लिया है, वे तुम्हारी रक्षा भी करेंगे । इससे कंचनदेवी मन कड़ा करके सैनिक के साथ गई थी । पिछली घटना स्मरण करके देवताओं के मन में साहस आ गया था । अतः कंचनदेवी के पीछे-पीछे सहस्रों देवता भी न्यायालय में पहुँच गए ।

नहुष इस प्रकार भीड़ को देखकर क्रोध में लाल-पीला हो रहा था, परन्तु मन्त्रियों ने उसको शान्त रखकर बात टालने का यत्न किया । एक मन्त्री ने पूछा —"लड़की ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"कंचन"

"तुम्हारे पति का क्या नाम है ?"

"मेरा पति नहीं है । मेरा किसी के साथ विवाह नहीं हुआ । मेरे से बलात्कार करने वाले का नाम कर्कट है । वह नगर में चौमुखे स्थान पर रहता है । मैं उसके अत्याचार से तंग आकर उसे छोड़कर चली आई हूँ ।"

"तुम कितने साल से कर्कट के पास रहती हो ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दो वर्ष से। मेरे एक पुत्र भी हुआ है। उसको मैं कर्कट के पास छोड़ आई हूँ।"

"तुम दो वर्ष उसके पास रही हो, उससे तुम्हारे पुत्र भी हुआ है। इस कारण हमारे राजनियम से तुम कर्कट की पत्नी हो। हम आज्ञा देते हैं कि तुम अपने पति अर्थात् अपने पुत्र के पिता के पास चली जाओ।"

"श्रीमान्!" कंचनदेवी ने कहा—"दो वर्ष तक मुझपर एक व्यक्ति ने बलात्कार किया। मैंने उसको कभी पसन्द नहीं किया। मैंने उसको कभी पति स्वीकार नहीं किया। में उसके घर से भाग जाने के लिए सदा विचार करती रही थी, परन्तु उसे कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकी। अब मैंने साहस कर उसका घर छोड़ दिया है। न मैं उसकी पत्नी हूँ और न मैं उसके घर जाऊँगी।"

"तुम देश के राजा की आज्ञा भी नहीं मानोगी?"

"देश के राजा को अपना कर्तव्यपालन करना चाहिए। मुझपर बलात्कार करने वाले को दण्ड देना चाहिए न कि उस अपराधी को अपराध करने में सहायता देनी चाहिए।"

नहुष अनुभव कर रहा था कि उसके हाथ से बालू की भाँति राज्य निकल रहा है। फिर भी वह मन्त्री के इस नम्र व्यवहार पर प्रसन्न नहीं था। फिर भी उसने उसी समय सहस्रों लोगों के सम्मुख यह निर्णय दे दिया कि कंचन निरपराध है। वह जहाँ चाहे रह सकती है।

कंचन महाराज नहुष की जय-जयकार करती हुई महिला मन्दिर को वापस लौट आई, परन्तु उसी रात महिला मन्दिर को आग लग गई। इस आग को बुझाने के लिए देवताओं ने जी-जान की बाजी लगा दी। इन्द्र के काल में तो कहीं आग लग जाने से वरुणास्त्र चला दिया जाता था, जिससे वर्षा हो जाती थी और अग्नि शान्त हो जाती थी। परन्तु इस समय वरुणास्त्र किसी के पास नहीं था। और देवता, जिनमें प्रायः कश्मीर से आए हुए गुप्त सैनिक थे, इस आग को शान्त करने में रात-भर लगे रहे। बहुत कठिनाई से उसमें रहने वाली स्त्रियों को बचाया गया। मकान तो जलकर स्वाहा हो गया।

इस अग्निकाण्ड के समाचार पर नहुष बहुत प्रसन्न था, परन्तु अगली रात को गान्धार-सैनिकों के शिविर को आग लग गई। नहुष को पता चला तो वह स्वयं वहाँ पहुँच अग्नि को शान्त कराने की व्यवस्था करने लगा। रात-भर यत्न करने पर वह अग्नि शान्त हुई। दिन चढ़ने के पूर्व एक अन्य सैनिक स्थान पर आग भड़क उठी। नहुष तो थक जाने के कारण अपने भवन में जाकर सो गया, परन्तु गान्धार सैनिक इस अग्नि को दिन-भर बुझाते रहे। रात होने पर एक तीसरे स्थान पर, जहाँ पर गान्धार रहते थे, आग लग गई। इस पर गान्धार घबरा उठे और अगले दिन जबकि उनके बहुत से घर जल रहे थे, वे नहुष के पास पहुँचे और करबद्ध प्रार्थना करने लगे कि देवताओं से सन्धि कर ली जाए; अन्यथा वे लोग देवलोक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर अपने घरों को लौट जाएँगे।

बहुत यत्न करने पर अग्निकाण्ड समाप्त हुआ। कुछ देवता पकड़कर नहुष के सामने उपस्थित किए गए और उनसे नहुष ने पूछा—"क्या तुम जानते हो कि यह आग कौन लगाता है ?"

"हम नहीं जानते महाराज ! हाँ, यह बात नगर में विख्यात है कि आपके सैनिक स्वयं ही आग लगाते हैं जिससे महाराज को क्रोध आ जाए और हम लोग मरवा डाले जाएँ।"

"मैंने अब निश्चय कर लिया है कि, किसी को भी जब तक उसके विपरीत दृढ़ प्रमाण न मिल जाए, दण्ड न दूंगा। मेरे लिए देवता और गान्धार समान प्रजा है। मैं आज से यह घोषणा करता हूँ कि देवताओं को न केवल राज्यसभा में स्थान दूंगा, प्रत्युत उनकी एक सेना भी तैयार कर अपने पास रखूँगा। मैं चाहता हूँ कि दोनों जातियों के लोग सुख और शान्ति से रहें।"

इस पर नहुष ने आचरण भी आरम्भ कर दिया। इस दिशा में सबसे प्रथम यत्न यह किया कि देवताओं के विद्वान् पुरुषों को राज्य-सभा में स्थान दिया और उनको स्वर्ण मुद्राओं में वेतन देना आरम्भ किया। कश्यप, भृगु, जाबाल इत्यादि अनेक ऋषि बुलाए गए और उनको सम्मान से दरबार में रखा गया। यहाँ तक कि इन ऋषियों को ही न्यायालय का काम सौंप दिया गया। इसके अतिरिक्त देववाणी के अध्यापकों को गान्धारों ओर देवताओं के बालकों को पढ़ाने के लिए रख लिया। तीसरी बात यह कि राज्य का व्यय चलाने के लिए देवताओं के कुछ योग्य विद्वानों का एक मण्डल बना दिया। दूसरी ओर देवताओं को सेना में भरती करने की स्वीकृति दे दी। कई सहस्र देवता भरती किए गए। देवताओं की एक सेना बनाई गई और उसके मन में नहुष के राज्य के गुण अंकित करने का यत्न किया गया।

नारद इस नई परिस्थिति को अपनी योजना में बाधा समझने लगा था। वह समझता था कि विद्रोहात्मक प्रवृत्ति, जो देवताओं में शून्य के समान थी, बढ़ने लगी थी, परन्तु नहुष के इस नवीन प्रयास से अब देवताओं में ऐसे लोग उत्पन्न होने लगे थे, जो नहुष के राज्य-भक्त बनने लगे थे। इस नई परिस्थिति में देवताओं में फूट पड़ गई। जब देवताओं को ऐसा भास होने लगा कि अब उनमें और गान्धारों में भेदभाव नहीं रखा जा रहा तो उन्होंने झगड़ा करना व्यर्थ की बात मान ली।

नारद ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। उसने लोगों में यह विख्यात कर दिया कि शक्ति प्रसारक यन्त्र बन्द होने वाले हैं और यदि इन्द्र नहीं आया तो सब सर्दी में ठिठुर-ठिठुरकर मर जाएँगे। इस कारण आन्दोलन का रूप यह हो गया कि इन्द्र वापस आना चाहिए। बिना उसके सब मर जाने वाले हैं। इस आन्दोलन की सत्यता का ज्ञान गान्धारों को भी होने लगा और नहुष के कानों में यह शब्द पहुँचने लगे कि इन्द्र के साथ सन्धि की जाए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

: १ :

गान्धार का राजा काकूष था। वह नहुष के ताऊ का लड़का था। नहुष का पिता काकूष के पिता का छोटा भाई होने से केवल पद्मासुर दुर्ग का स्वामी था। जहाँ नहुष ने देवलोक में अपनी चतुराई से राज्य स्थापित किया था, वहाँ काकूष भी अपने राज्य का विस्तार करने के लिए चिन्तित था। इस कारण उसने ब्रह्मावर्त के महाराज को अपना मैत्रीपूर्ण पत्र भेजा। उसमें काकूष ने लिखा—"मुझको यह समाचार मिल रहे हैं कि कश्मीर में सेना बढ़ाई जा रही है। यह सैनिक तैयारी ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने के लिए है अथवा गान्धार पर, कहना कठिन है। दो राज्य ही हैं, जिन पर कश्मीर की दृष्टि हो सकती है। तीसरा देश, जिसके साथ इसकी सीमा मिलती है, देवलोक है। वह देश ऐसा नहीं, जहाँ से कुछ प्राप्ति की आशा हो सके। वहाँ तो स्थानीय वासियों के खाने-पहरने के लिए भी पर्याप्त अन्न-वस्त्र नहीं हैं। वहाँ कोई आक्रमण क्यों करेगा। वहाँ की बढ़ती सैनिक शक्ति से हम दोनों देशों को भय है। इस कारण मैं आपको मैत्री का वचन देकर आपसे भी ऐसा वचन चाहता हूँ। इसके साथ यह भी चाहता हूँ कि आक्रमण के समय हम एक-दूसरे की सहायता करें।"

इस प्रकार के पत्र का उत्तर भी वैसा ही मिला। चन्द्रसेन के पास अपनी कोई सैनिक तैयारी नहीं थी। वह शान्तिप्रिय राजा था और व्यर्थ में किसी से झगड़ा मोल लेना व्यर्थ मानता था। काकूष को जो उत्तर उसने भेजा उसमें अपने हृदय की सत्य बात लिखी थी।

उसने लिखा—"भाई काकूष ! हमारे राज्य की नीति किसी से झगड़ा करने की नहीं है। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम किसी पर आक्रमण करने वाले नहीं। मैं यह भी वचन देता हूँ कि यदि किसी ने आपके देश पर आक्रमण किया तो हम अपनी पूरी शक्ति से आपकी सहायता करेंगे। रही कश्मीर की बात। मैं देख रहा हूँ कि वहाँ एक वर्ष में सेना दुगुनी हो गई है और अभी भी बढ़ाई जा रही है। इस अवस्था में कश्मीर के इस आश्वासन पर कि वह मेरे देश पर आक्रमण करने का विचार नहीं रखते, विश्वास नहीं होता। फिर भी हम उनसे अकारण झगड़ा नहीं करना चाहते। जब तक वे हमारे देश की सीमा का उल्लंघन नहीं करते, मैं कुछ नहीं करूँगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रम के एक पत्र के उत्तर में चन्द्रसेन ने यह लिखा था—"हम अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति का व्यवहार रखना चाहते हैं। मुझको विश्वास है कि गान्धार के लोग अकारण हम पर हमला नहीं करेंगे। इसके विपरीत आपकी बढ़ती हुई सैन्य-शक्ति को देख आपकी ओर से सन्देह हो रहा है। हम आशा करते हैं कि आप दूसरों के विषय में लिखने के स्थान पर अपनी ओर से मैत्री रखने का आश्वासन देंगे।"

इसके उत्तर में विक्रम ने एक दूत और उसके साथ अपना पत्र भी भेजा। उसने चन्द्रसेन की राज्यसभा में उपस्थित हो वह पत्र दिया। पत्र में लिखा था—"मैं महाराज-कश्मीर की आज्ञा से लिख रहा हूँ। उनकी आज्ञा है कि आपसे निवेदन करूँ कि कश्मीर की ब्रह्मावर्त से सदा मैत्री रही है। पिछले एक सहस्र वर्ष में कश्मीर और ब्रह्मावर्त में झगड़ा नहीं हुआ। इससे आपको विश्वास रखना चाहिए कि आपके राज्य से हमारा किसी प्रकार का झगड़ा नहीं है।

"शेष वार्तालाप के लिए पत्रवाहक कश्मीर-राज्य का राजदूत है। वह आपके सम्मुख पूर्ण परिस्थिति वर्णन कर देगा।"

चन्द्रसेन को इस पत्र से सन्तोष नहीं हुआ। उसने कश्मीर के राजदूत से पूछ ही लिया—"इस पत्र में सैन्यवृद्धि के बारे में कुछ नहीं लिखा।"

"वह मुझको मौखिक रूप में निवेदन करने की आज्ञा मिली है। हमारे महाराज आर्य हैं, वेदों में वर्णित आर्य व्यवहार के मानने वाले हैं। उनके मन में एक भावना यह भी है कि वेदों में प्रतिपादित धर्म और जीवन-मीमांसा अति श्रेष्ठ है। इस कारण धर्म और संस्कृति की रक्षा करने के लिए कश्मीर तैयारी कर रहा है। दुर्भाग्यवश तुखारिश से म्लेच्छ जातियों के लोग कामभोज, गान्धार, देवलोक में अधिकार कर गए हैं। इससे जो अनाचार इन देशों में फैला है वह अति भयंकर है। उमड़ती हुई घटाएँ कश्मीर को चारों तरफ से घेरे हुए हैं। जो दुर्दशा देवलोक की हुई है, उससे भयभीत हो कश्मीर को उसी दुर्दशा से बचाने के लिए यह सैनिक तैयारी है। यह आपके विरुद्ध नहीं है।"

महाराज चन्द्रसेन के मन का संशय निवृत्त नहीं हुआ। उसने पूछा–"क्या राज्य के बदल जाने से जनता के आचार-विचार में अन्तर पड़ सकता है? ब्रह्मावर्त में पिछले पाँच सौ वर्षों में कई बार राज्य-परिवार बदले हैं। कुछ राजा दुराचारी भी हुए हैं। परन्तु जनता पर इसका प्रभाव नहीं हुआ।"

"महाराज! राज्य-परिवार का बदलना और शासक जाति के बदलने में अन्तर है। राजा श्रेष्ठ है अथवा दुराचारी, इससे तो केवल कुछ ही लोगों को; जिनका राज्य-परिवार के साथ सम्बन्ध है, अन्तर पड़ता है। परन्तु जब भिन्न आचार-विचार की जाति शासक होती है तो पूर्ण प्रजा दुःखी हो उठती है। कामभोज में और देवलोक में भी यही हुआ है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रसेन ने विचारकर उत्तर दिया—"हम इन बातों में आपके महाराज की नीति से सहमत नहीं हैं। प्रजा का आचार-विचार राज्य की ओर से न तो विरोध का और न ही रक्षा का विषय है। प्रजा को इस विषय में स्वयं अपनी रक्षा करनी चाहिए। हम इस चिन्ता से अपने मस्तिष्क में विकार उत्पन्न कर इसे खराब नहीं कर सकते। देवलोक में स्त्रियाँ विवाही जाती हैं, अथवा पत्नी बनाई जाती हैं, गान्धार में विवाह सम्बन्ध स्थाई है अथवा अस्थाई, कामभोज में लोग अपनी स्त्रियों को धन-दौलत मानते हैं अथवा सहधर्मिणी, इन सब बातों के विचारने का न तो हमको अवसर है और न ही हम इसकी आवश्यकता समझते हैं। इन बातों पर अधिक सोचने से परस्पर वैमनस्य ही बढ़ता है।

"फिर भी हम कश्मीर से मैत्री के इच्छुक हैं। हम महाराज-कश्मीर से निवेदन करते हैं कि वे अपनी सेना में वृद्धि कर जहाँ अपनी प्रजा पर व्यर्थ का बोझ लाद रहे हैं, वहाँ हमारे साथ द्वेष-भावना प्रकट कर रहे हैं।"

चन्द्रसेन के इस उत्तर के पश्चात् और करने को कुछ नहीं रहा। जब काकूष की सेना ने सिन्धु नदी पार की तो चन्द्रसेन ने इसका कारण पूछा। काकूष का उत्तर था—"कश्मीर राज्य अपनी सेना ब्रह्मावर्त की सीमा पर एकत्रित कर रहा है। उससे अपने मित्र की रक्षा के लिए यह सेना सिन्धु के पार आई है।"

चन्द्रसेन ने इसको सत्य मान क्रोध में कश्मीर-महाराज को लिखा—"आपने अपनी सेना ब्रह्मावर्त की सीमा पर एकत्रित कर युद्ध का श्रीगणेश कर दिया है। इस भय को दूर करने के लिए ब्रह्मावर्त और गान्धार सेनाएँ आ रही हैं। युद्ध का उत्तरदायित्व आप पर है।"

इस पत्र को पढ़कर विक्रम खिलखिलाकर हँस पड़ा। ब्रह्मावर्त के दूत को मौखिक उत्तर दिया गया कि अपने महाराज से जाकर कह देना कि संसार में उस जैसा मूर्ख मिलना कठिन है। तदपि जब गान्धार अपना अधिकार लवपुर में जमा लेंगे, तब ही हम अपनी सेना से काम लेंगे, पहले नहीं, इतना उनको आश्वासन भी दे देना।

दूत को यह मौखिक उत्तर चन्द्रसेन को जाकर देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। कारण यह कि जब तक वह लौटकर लवपुर पहुँचा, गान्धारसेना लवपुर के द्वार पर पहुँच चुकी थी और गान्धार-अधिपति ने चन्द्रसेन को नगरद्वार से बाहर बुलाकर अपना बन्दी बना लिया था।

इससे पहले जब काकूष अपनी सेना के साथ धड़ाधड़ चलता हुआ और नदियों को पार करता हुआ लवपुर के द्वार पर पहुँचा तो चन्द्रसेन को भारी विस्मय हुआ। उसने काकूष को कहला भेजा कि उसकी सेना की आवश्यकता यहाँ नहीं थी। उसको तो कश्मीर-सीमा की ओर जाना चाहिए था। मेरी सेना पहले ही उस ओर को जा चुकी है। काकूष का उत्तर आया कि आपसे अति आवश्यक विषय पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातचीत करनी है। इस कारण इतना चक्कर काटकर इधर आना पड़ा है। आप नगर के बाहर आ जाइए। आज रात विचार-विनिमय होगा। चन्द्रसेन के मन्त्रियों को इधर आने का यह बहाना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं हुआ और उन्होंने अपने महाराज को नगर से बाहर जाने से मना किया। उनकी इच्छा थी कि नगरद्वार बन्द कर दिए जाएँ और बाहर की सेना को गान्धार सेना से लड़ने की आज्ञा दे दी जाए। चन्द्रसेन को इस योजना से सफलता की आशा प्रतीत नहीं हुई। इससे वह निश्चित समय पर बातचीत करने के लिए काकूष के शिविर में गया और फिर वहाँ से लौटकर नहीं आया। उसके बन्दी हो जाने के पश्चात् काकूष की सेना ने लवपुर पर आक्रमण कर दिया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया।

काकूष ने लवपुर पर अधिकार कर लिया और पूर्ण देश पर सत्ता जमाने के लिए सब उत्तरदायित्व के स्थानों पर अपने देशवासियों को नियुक्त करना आरम्भ कर दिया। जिस किसी ने भी उसकी आज्ञा की अवज्ञा की उसको मौत के घाट उतार दिया गया। चन्द्रसेन का एक पुत्र था। वह अभी अल्पवयस्क था। उसको बन्दी कर लिया गया। चन्द्रसेन के अन्य सम्बन्धियों तथा उसके मंत्रियों को मरवा डाला गया। नगर-निवासियों के मन में आतंक जमाने के लिए तीन दिवस तक यह हत्या-काण्ड चलने दिया। उसके बाद भयभीत प्रजा से कार्य लेने के लिए उनको मीठी-मीठी बातों से अपनी ओर करने का यत्न किया जाने लगा। चन्द्रसेन की भयभीत स्त्री को बुलाकर काकूष ने कहा—"पाणिकादेवी! तुम्हारे पतिदेव राजनीति से अनभिज्ञ मूर्ख थे। यही कारण है कि तुम पर इतनी विपत्ति आई है। अब यदि तुम मेरे संग विवाह कर लो तो मैं लवपुर की गद्दी पर तुम्हारे पुत्र को आसीन कर दूंगा।"

"मेरे पतिदेव कहाँ हैं?" पाणिकादेवी का प्रश्न था।

"वह इस लोक में नहीं है।"

"तो मैं विधवा हूँ?"

"हाँ।"

"मेरा पुत्र कहाँ है?"

"वह इस समय बन्दी है। तुम आज मेरी पत्नी बनना स्वीकार कर लो तो कल मैं उसको यह राज्यगद्दी देकर अपने देश की ओर लौट जाऊँगा।"

पाणिकादेवी ने कहा—"यह नहीं हो सकता। मैं आज रात ही अपने पतिदेव का अनुसरण करूँगी। तुम मुझको रोक नहीं सकोगे।"

"पतिदेव के पथ का अनुसरण करोगी, कैसे?"

"जैसे किया जा सकता है।"

ऐसा कह वह बिना कुछ और कहे काकूष के सामने से उठकर चली आई। काकूष ने उसको बुलाया—"पाणिकादेवी! सुनो।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह वहीं ठहर घूमकर बोली—"कहिए।"

"सुनो, इधर आओ।"

"शीघ्र करिए। मुझको तैयारी करनी है।"

"कहाँ जाने की ?"

"उनके पास।"

"पुत्र को भी साथ ले जाना चाहोगी क्या ?"

यह सुन पाणिकादेवी ठिठक गई, परन्तु शीघ्र ही अपने पर काबू पा बोली—"कौन किसका पुत्र है ? सब माया है।"

यह कहकर वह द्रुत गति से चली गई। उसी रात महारानी ने चिता बनाकर अपने आपको भस्म कर डाला। काकूष का विचार था कि एक और मूर्ख भूतल से उठ गया है।

: २ :

काकूष को अपनी सत्ता स्थिर करने में कई वर्ष लग गए। कामभोज, गान्धार और ब्रह्मावर्त का विस्तृत राज्य, जिसकी सीमा एक ओर तो तोखार से लगती थी और दूसरी ओर आर्यावर्त से छूती थी, सुव्यवस्थित रूप से चलाना सुगम नहीं था। वह अभी लवपुर में ही था और उसने अपने अधीनस्थ अधिकारियों को कर-संग्रह के लिए अभी नियुक्त किया ही था कि महाराज-कश्मीर का एक राजदूत उसके पास एक पत्र लेकर आ पहुँचा। पत्र में लिखा था—"हमारे देश की प्रथानुसार देश के किसी भाग पर कोई बाहरी व्यक्ति राज्य नहीं करता। कभी बाहर के राज्यों को आक्रमण करने की आवश्यकता होती है तो विजय-प्राप्ति के पश्चात् अपने अनुकूल किसी उस ही देश के रहने वाले के हाथ राज्य सौंपकर बाहरी सेना लौट जाती है। इस प्रकार किसी स्थान पर विदेशी राज्य भी स्थापित नहीं होता और भिन्न-भिन्न देशों में एकमयता भी रहती है। इस समय हम यह जानना नहीं चाहते कि किस कारण से श्रीमान् ने ब्रह्मावर्त पर आक्रमण किया है। हमारा कहना इस समय यह है कि आपको विजय मिली। चन्द्रसेन की पराजय हुई। परन्तु आपका द्वेष प्रजा से तो नहीं है। इस कारण प्रजा पर किसी विदेशी जाति का राज्य उचित नहीं।

"अतएव यदि आप किसी ब्रह्मावर्त-निवासी के हाथ राज्य सौंपकर अपनी सेना-सहित वापस जाने का विचार रखते हैं तो आप लिखिए कि यह कब तक हो सकेगा। यह हम सहन नहीं कर सकते कि ब्रह्मावर्त पर किसी गान्धार का राज्य स्थापित हो जाए। उत्तर इसी दूत के हाथ भेजने की कृपा करें।"

काकूष इस पत्र को पढ़कर आगबबूला हो गया। उसने दूत के सम्मुख ही पत्र को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। पश्चात् उसने दूत से कहा—"अपने महाराज को कह देना कि उनका यह अधिकार नहीं कि अपने राज्य से बाहर के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामलों में हस्तक्षेप करें।"

विक्रम इसी उत्तर की आशा करता था और उत्तर के आते ही उसने अपनी सेना को लवपुर कूच करने की आज्ञा दे दी। एक लक्ष सेना पैदल, घोड़ों पर, रथों पर तथा हाथियों पर सवार हो नदी-नाले पार करती हुई वितस्ता नदी के किनारे पर आकर एकत्रित हो गई। वर्षाऋतु आरम्भ हो गई थी और नदी में बाढ़ आई हुई थी। इतनी बड़ी सेना को किनारों तक भरी नदी के पार ले जाना सुगम नहीं था, और फिर नदी के तट पर गान्धारसेना एकत्रित होनी आरम्भ हो गई थी। इस कारण विक्रम ने सेना का शिविर वितस्ता के उत्तरी किनारे पर लगवा दिया और सेनानायकों की गोष्ठी बुला ली।

भास्कर जब से देवयानी का पत्र लेकर आया था, विक्रम के साथ ही था। वह भी इस गोष्ठी में था। विक्रम ने नदी-पार गान्धारसेना पर आक्रमण करने पर विचार उपस्थित किया। किसी ने सेतु बाँधने का प्रस्ताव उपस्थित किया। किसी ने वर्षाऋतु व्यतीत होने पर नौकाओं द्वारा नदी पार करने की सम्मति दी, परन्तु भास्कर ने एक दूसरी ही सम्मति दी। उसने कहा—"महाराज ! ये सब युक्तियाँ वर्षाकाल में चल नहीं सकेंगी और तीन मास तक सेना का निष्क्रिय बैठा रहना भी घातक सिद्ध होगा। इस कारण अभी तो इन तीन मास में काम की योजना बनानी चाहिए।

"हमको दस-दस बीस-बीस सैनिकों की मण्डलियाँ साधारण जनता के पहरावे में शत्रु की सेना के पीछे के गाँवों में भेजनी चाहिए और वहाँ के लोगों को गान्धार सेना की रसद बन्द करने पर तैयार करना चाहिए। इससे शत्रु सेना तंग आ जाएगी और पीछे हटने पर विवश हो जाएगी।"

"पर यह भारी जान-जोखम का काम होगा।"

"एक मण्डली के साथ मैं जाऊँगा।" भास्कर का उत्तर था।

योजना तैयार की गई और सैनिकों को अपनी-अपनी सेवाएँ देने के लिए आमन्त्रित किया गया। बीस-बीस सैनिकों की लगभग पचास मण्डलियाँ तैयार हो गईं। उनको नदी पर से बीस मील नीचे जाकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर पार कराया गया और गान्धार-सेना के पीछे जाकर गान्धार जनता में विद्रोह की भावना उत्पन्न करने का आदेश दिया गया। सब तैयारी गुप्त रखी गई। भास्कर एक मण्डली के साथ था।

नदी के पार जाकर भास्कर ने अपने साथियों से कहा—"हम सबको पृथक्-पृथक् होकर गाँव में जाना चाहिए और देहातियों के घरों में जाकर रहना चाहिए। प्रत्येक गृहस्थी को गान्धार-सेना से अवश्य कुछ न कुछ कष्ट हुआ होगा। उस कष्ट का बहाना बनाकर चन्द्रसेन और ब्रह्मावर्त की मान-मर्यादा के लिए गाँव वालों को विद्रोह के लिए भड़काना चाहिए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी के दक्षिण तट पर कर्मावत नाम के एक गाँव में भास्कर जा पहुँचा। वह अकेला था। दिन निकलने पर जब वह गाँव में पहुँचा तो वर्षा जोरों से हो रही थी और भास्कर के कपड़े इत्यादि सब भीग चुके थे। पाँच हाथ लम्बा पुरुष वर्षा में तरबतर चलने के लिए, हाथ में लम्बा लठ लिये गाँव वालों को घूमता दिखाई दिया। सब उसकी विशाल देह को देख चकित थे।

भास्कर गाँव के एक कोने से दूसरे कोने तक गया। फिर लौट आया। पश्चात् वह गाँव के चौक में आकर खड़ा हो गया। उसकी परेशानी देखकर एक गाँव वाले ने पूछा—"क्या ढूँढ़ रहे हो महाशय ?"

"कहीं सिर छुपाने को स्थान। देखते नहीं कि वर्षा हो रही है ?"

"स्थान तो मिल जाएगा, परन्तु इस गाँव में भोजन नहीं रहा।"

"कहाँ गया वह ?"

"गान्धार उठाकर ले गए हैं। हमारे घर में तो कुछ नहीं बचा।"

"तो क्या आपने विरोध नहीं किया ?"

"किया था, परन्तु कुछ नहीं हुआ। बीस खड्गधारी और धनुषधारी सैनिक थे। कहने लगे, अन्न दो या अपनी बहू-बेटियाँ दो। हमने अन्न देना उचित समझा।"

"यह तो घोर अन्याय है।"

"पर हम क्या कर सकते थे ? कल सैनिक परस्पर बातचीत कर रहे थे कि वर्षा के कारण युद्ध तीन मास तक नहीं हो सकेगा। तब तक सेना के खाने-पीने के लिए रसद एकत्रित करनी है।"

"भाई !" भास्कर ने उदासीनता प्रकट करते हुए कहा—"ठहरने का स्थान मिल जाए तो खाने का प्रबन्ध कर लूँगा।"

"कहाँ से कर लोगे ? आस-पड़ोस के सभी गाँवों का यही हाल है जो तुम यहाँ देख रहे हो। गाँव के गाँव लूट लिए गए हैं। वहाँ वालों को अपने खाने को भी नहीं है।"

"ठीक है। वर्षा ठहरने तक आश्रय दो। बाद की बात विचार लूँगा।"

उस पुरुष ने, जो अपने घर की खिड़की में खड़ा भास्कर को देख रहा था और बातें कर रहा था, उसको मूसलाधार वर्षा से भीगते देख भीतर बुला लिया—"अच्छी बात है। आ जाओ।"

जब भास्कर भीतर गया तो उस गाँव वाले ने पूछा—"कहाँ के रहने वाले हो ?"

"नरसिंहपुर का रहने वाला हूँ। गान्धारों के आक्रमण की सूचना पा लवपुर में महाराज चन्द्रसेन की सेना में भर्ती होने गया था, परन्तु वहाँ पहुँचने से पूर्व ही महाराज बन्दी बना लिए गए थे। अब मुझको यह सूचना मिली है कि महाराज-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्मीर गान्धारों को ब्रह्मावर्त से निकाल देने के लिए सेना ला रहे हैं। अतएव उनकी सेना में सम्मिलित होने के लिए जा रहा हूँ। नदी में बाढ़ के कारण पार करने की कठिनाई अनुभव कर इस गाँव में चला आया हूँ।"

भास्कर घर की ड्योढ़ी में खड़ा था। उसके वस्त्रों से जल चू रहा था। इस समय भीतर से एक लड़की आई और घर वाले से बोली—"बाबा! इनके लिए कपड़े लाऊँ?"

"इस महाशय के नाप के कपड़े हैं तुम्हारे घर में?"

"माँ कहती है कि धोती और चादर ओढ़ लें और जब तक कपड़े सूखेंगे, ये विश्राम कर लेंगे।"

"माँ से कहो, भेज दें।"

कपड़े आए और भास्कर ने गीले कपड़े उतारकर सूखे पहन लिए और चारपाई पर बैठ गया। कुछ समय के पश्चात् वही लड़की मक्की के भुने हुए भुट्टे लेकर आई और भास्कर के हाथ में दो भुट्टे देकर बोली—"यह दो हैं, और कुछ नहीं।"

"देखो बिटिया," भास्कर ने भुट्टे पकड़ते हुए कहा—"तनिक वर्षा थमने दो, खाने के लिए कहीं से लाकर रहूँगा। इन दो भुट्टों से इतने बड़े पेट का क्या होगा?"

भास्कर ने दो में से एक भुट्टा लड़की के पिता को देते हुए कहा—"यह लड़की बहुत प्यारी लगती है। क्या नाम है इसका?

"सुन्दरी।"

"बेटी सुन्दरी! तुम्हारे और तुम्हारी माता के लिए कुछ और है या नहीं?"

"केवल दो ही थे।"

"तो बिटिया? यह तुम ले जाओ। आधा तुम ले लेना और आधा अपनी माँ को दे देना। घर में कोई और प्राणी भी है क्या?"

"एक दूध पीता बच्चा भी है। इसका भाई है।" उस आदमी ने तरल नेत्रों से कहा।

"क्यों भाई क्या बात है?" उसके तरल नेत्र देख भास्कर ने कहा।

"घर में एक अतिथि आया है और हमारे पास उसके लिए एक कौर अन्न भी नहीं। भाई, मैं इस गाँव का चौधरी हूँ। सौ बीघा भूमि स्वयं जोतता और बोता हूँ। खलिहान अन्न से भरे रहते थे। गाय-भैंस मनों दूध देती थीं। ये गान्धार आए और सब कुछ उठा ले गए हैं।"

"यह तो अन्याय है। तुम लोगों को अपने खाने-पीने के लिए तो चाहिए ही था?"

चौधरी अन्यमनस्क भाव से भास्कर का मुख देखता रह गया। भास्कर ने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर कहा—"तुम यह भुट्टा खाओ, मेरा इतने से कुछ नहीं बनेगा। तनिक वर्षा रुकने दो फिर मैं अपने लिए और यदि हो सका तो तुम्हारे लिए भी खाने का प्रबन्ध कर दूँगा।"

चौधरी भुट्टे से दाने उखाड़-उखाड़कर खाने लगा। भास्कर अपने मन में योजना बना रहा था। मध्याह्न के पश्चात् वर्षा रुकी। भास्कर अपने कपड़े, जो चौधराइन ने आग पर सेंककर सुखा दिए थे, पहन हाथ में लाठी ले घर से बाहर निकल आया। भास्कर का अनुमान था कि पिछले दिन गान्धार अवश्य रसद एकत्रित करने को निकले होंगे। इस गाँव में नहीं आए तो किसी दूसरे गाँव में गए होंगे। अब वर्षा थम जाने पर वे सामान लिये हुए लौटेंगे। यह अनुमान कर भास्कर गाँव में इधर-उधर चक्कर काटने लगा। पहरभर घूमने के पश्चात् उसको अपने अनुमान के सत्य होने का प्रमाण मिला। गाँव के पश्चिम द्वार की ओर से दस सैनिक एक ठेले में अनाज लादे हुए आते मिले। ठेला हाँकने वाले तो गाँव वाले ही प्रतीत होते थे। भास्कर ने समझा कि उसके काम का समय आ गया है। इस कारण वह गाँव के चौराहे पर लाठी तानकर खड़ा हो गया।

वर्षा रुक जाने से गाँव के अन्य व्यक्ति भी बाहर निकल आए थे। उनमें भास्कर के कुछ साथी भी थे। वे भी भास्कर की भाँति भिन्न-भिन्न गाँव वालों के घरों में ठहरे थे।। सब भूख से व्याकुल थे और अपने पड़ोसियों से कुछ खाने के लिए माँगने के लिए एक-दूसरे का मुख देख रहे थे। इस समय सैनिक ठेले में गेहूँ लादे हुए, गाँव के चौक में पहुँच गए। भास्कर ने उनको ललकारकर पूछा—"यह कहाँ लिये जा रहे हो?"

"तुम कौन हो पूछने वाले?"

"मुझको भूख लगी है और इन थैलों में गेहूँ प्रतीत होता है।"

"ऊँह!" सैनिकों के सरदार ने कहा—"यह राज्य का माल है। सेना के लिए जा रहा है। एक ओर हट जाओ।"

"इस गाँव के लोग भी तो राज्य की प्रजा हैं और इनके पास भी खाने को कुछ नहीं।"

"तो हम क्या करें?"

"यह अनाज आज गाँव वालों के लिए छोड़ जाओ।"

"ओह! आज्ञा देने का क्या अधिकार है तुम्हारा?" इस पर सैनिकों ने अपने-खड्ग नंगे कर लिये। भास्कर तलवार की मार से पीछे हटकर लाठी घुमाने लगा। खटाखट लाठी चलने लगी और सैनिकों की खोपड़ियाँ टूटने लगीं। दस में से आठ सैनिक घायल हो लेट गए और दो सिर पर पाँव रखकर भाग खड़े हुए। वे देहाती भी, जो ठेला खींच रहे थे, ठेला छोड़ भाग गए।

गाँव के लोग, जो भूख से व्याकुल हो रहे थे, भास्कर को लड़ते देख चुके थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब डरते-डरते गेहूँ के पास आकर खड़े हो गए और तृषित नेत्रों से भास्कर की ओर देखने लगे। भास्कर ने गाँव के चौधरी को बुलाया, जिसके घर में वह ठहरा हुआ था, और कहा—"यह सब गाँव वालों को बाँट दो। कल के लिए फिर प्रबन्ध करेंगे।"

चौधरी जहाँ गेहूँ को देखकर प्रसन्न हो रहा था वहाँ सेना की गाँव के व्यवहार की प्रतिक्रिया का विचार कर चिन्तित हो रहा था। उसने भास्कर को कहा—"कल गाँव पर सेना के लोग आक्रमण करेंगे।"

"सत्य ? तब तो मैं यहाँ ठहरूँगा और इन भेड़ियों को मजा चखाऊँगा।"

"यदि पाँच सौ सैनिक चढ़ आए तो तुम अकेले क्या कर सकोगे ?"

"पाँच सौ आएँगे क्या ? तुम गाँव में कितने लोग हो ?"

चौधरी गाँव वालों की ओर, जो गेहूँ के चारों ओर खड़े थे, देखने लगा। इस समय भास्कर के एक साथी ने कह दिया—"हमने भी माँ का दूध पिया है। भूखे मरने से तो लड़-लड़कर मरना अच्छा रहेगा।"

इस पर एक गाँव वाला कहने लगा—"यह बात तो ठीक है। हम सब लड़ेंगे।"

"ठीक है। पर कितने हैं जो लड़ते हुए मरने को तैयार हैं ?"

भास्कर के सब साथी लड़ने के लिए तैयार थे। उनको देखकर गाँव के लोगों ने भी साहस एकत्रित किया और लड़ने के लिए अपनी अनुमति देने लगे। भास्कर ने गाँव वालों को साहस बँधाते हुए कहा—"डरो नहीं। सब तो मरेंगे नहीं।"

सबसे बड़ी युक्ति थी भूख। गाँव वाले अपने बच्चों को भूख से बिलख-बिलखकर रोते देख चुके थे। सब भास्कर का साथ देने के लिए तैयार हो गए।

: ३ :

गेहूँ के बोरे खोल दिए गए और सबके घरों में चूल्हे गरम हो गए। भास्कर ने भी पेटभर खाया। इस समय लगभग ऐसे ही समाचार दूसरे गाँवों से भी आने लगे। बहुत-से गाँवों ने तो अनाज देने से इनकार कर दिया और सेना का जमकर विरोध किया। इन समाचारों से गाँव वालों का साहस और भी बढ़ गया।

रात में ही गाँव वालों में से दो सौ का एक दल तैयार किया गया। जिन-जिन के पास मुर्चाए हुए खड्ग थे उनको साफ करने के लिए कह दिया। कइयों ने धनुष-बाण तैयार कर लिए। अन्यों ने लाठियाँ निकाल लीं। अगले दिन सेना के केवल बीस आदमी ही आए। बात यह थी कि बीसियों गाँवों में झगड़ा हुआ था और सेना सब स्थानों पर भेजनी थी। इसके अतिरिक्त शत्रु के सम्मुख से भी सेना हटाई नहीं जा सकती थी।

भास्कर यह तो आशा करता था कि पाँच सौ सैनिक नहीं आएँगे, परन्तु वह यह बात भी नहीं समझ सका कि जब दस को उस अकेले ने भगा दिया था तो केवल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीस भेजने से किस प्रयोजन की सिद्धि की आशा की जा सकती है ! बीस सैनिक गाँव वालों को धमकाने लगे। पहले तो लोग भयभीत हो घरों को भागने लगे, परन्तु जब भास्कर को डटे हुए देखा तो फिर अन्य गाँव वाले भी बाहर निकल आए।

भास्कर ने सैनिकों के सरदार से जाकर पूछा—"क्या बात है ?"

सैनिक इस लम्बे-ऊँचे कद के आदमी को देख विस्मय करने लगे। सरदार इस विचित्र आदमी के कारनामे कल वाले सैनिकों से सुन चुका था। उसने भास्कर को कहा—"राज्य का गेहूँ तुमने लूटा है ?"

"राज्य के कौन-से खेत का गेहूँ था ?"

"सब खेत राजा के हैं।"

"तो लोग कहाँ से खाएँ ?"

"राजा को अनाज की आवश्यकता है। कहाँ रखा है तुमने वह अनाज ?"

"गाँव के लोगों में बाँट दिया है।"

"पकड़ लो इस विद्रोही को।" सरदार ने कहा।

भास्कर इसके लिए पहले से ही तैयार खड़ा था। दो पग पीछे हटकर उसने लाठी घुमाई। आगे बढ़कर पकड़ने वालों की कलाइयाँ टूट गईं और खड्ग उनके हाथ से छूट गए। भास्कर ने उनको ललकारकर कहा—"भाग जाओ यहाँ से, नहीं तो कल की भाँति कइयों को मौत के घाट उतार दूँगा।"

सरदार के कहने पर सैनिकों ने भास्कर को घेर लिया, परन्तु भास्कर की लाठी के सामने उनकी एक न चली। इस पर सरदार ने सैनिकों को धनुष-बाण निकालने के लिए आज्ञा दे दी। वे लोग पीछे हटकर मोर्चे बाँधने लगे। भास्कर ने उनको इसका अवसर ही नहीं दिया और अपने साथियों के साथ उन पर टूट पड़ा। इससे वे गाँव छोड़कर बाहर पेड़ों के एक झुरमुट के पीछे छुपकर बाण चलाने लगे। भास्कर ने उन मकानों की छतों पर जो इस झुरमुट के सामने थे, धनुषधारी चढ़ा दिए। अब दोनों पक्षों की ओर से बाण चलने लगे। भास्कर यह जानता था कि युद्ध का यह ढंग कोई परिणाम नहीं निकाल सकता। इससे लोग घायल किए जा सकते हैं, परन्तु युद्ध का निर्णय तो लाठियों, भालों अथवा तलवारों से आक्रमण करने से ही हो सकता है। इस कारण उसने अपने साथ तीस खड्गधारी ले लिये और गाँव के पिछवाड़े से गाँव का चक्कर काट पेड़ों के पीछे जा पहुँचा। सैनिक बाण चलाने में लीन थे कि भास्कर के साथी उन पर जा झपटे। दो-दो हाथ हुए। कुछ गान्धार मारे गए और शेष भाग गए।

इस प्रकार गाँव वालों को यह पहली विजय प्राप्त हुई। इस विजय का कुछ भी परिणाम न होता, यदि अन्य गाँवों में ऐसे ही विद्रोह खड़े न हो जाते। कश्मीर-सैनिक भिन्न-भिन्न स्थानों से नदी पार कर गान्धार-सेना के पीछे पहुँच रहे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। जिस भी गाँव में वे जाते थे वहाँ जनता को उकसाकर गान्धारों का रसद-पानी बन्द करवा देते थे। एक सप्ताह के इस प्रकार के संघर्ष के पश्चात् गान्धार-सेना-पति ने यह अनुभव किया कि वितस्ता नदी का पूर्ण दक्षिण तट विद्रोह कर उठा है। रात को सब गाँवों में सभाएँ होती थीं। गाँव वालों को गान्धारों के विरुद्ध भड़काया जाता था। देश और धर्म के प्रति प्रेम को धुरी बनाकर उनको लड़ने-मरने पर तैयार किया जाता था। अधिकांश स्थानों पर तो भूख और मान-मर्यादा ने विद्रोह के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया था और थोड़ा आश्रय पाकर लोग गान्धारों का विरोध करने पर तैयार हो जाते थे। सभाएँ 'आर्य धर्म की जय हो', 'गान्धारों का सर्वनाश हो' इत्यादि जयघोषों से समाप्त होती थीं।

कुछ ही काल में गान्धार-सेनापति को अपनी सेना की अवस्था भययुक्त होने का ज्ञान हो गया था। अतएव उसने पाँच-पाँच सौ सैनिकों के दल भेजने आरम्भ कर दिए। दूसरी ओर सैकड़ों गाँवों के लोग सहस्रों की संख्या में एकत्रित होकर उनका विरोध करने लगे। जब कभी सेना की बड़ी टुकड़ी आती तो गाँव वाले गाँव छोड़ जंगलों में घुस जाते और जब भी उनको अवसर मिलता, वे सेना पर छापा मार उनके गोदामों में से अन्न छीन लाते।

एक मास के इस संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि गान्धार-सेना भूख से तड़फड़ाने लगी। वितस्ता और चन्द्रभागा नदियों के भीतर गान्धार-सेना का टिका रहना असम्भव हो गया। लवपुर से जो रसद आती थी, वह मार्ग में ही लूट ली जाती थी। इस प्रकार वर्षा समाप्त होने से पूर्व ही गान्धार-सेना को चन्द्रभागा के इस ओर आ जाना पड़ा।

विक्रम ने भास्कर की योजना के सफल होने पर सेना में विजयोत्सव मनाया। उसमें भास्कर को पुरस्कृत किया गया। ज्यों ही गान्धार-सेना पीछे हटी, विक्रम ने वितस्ता नदी पार कर चन्द्रभागा के उत्तरी किनारे पर शिविर जा गाड़ा।

विक्रम स्वयं भास्कर को साथ लेकर, जो अब सेनानायक की उपाधि प्राप्त कर चुका था, उन सब गाँवों में गया, जिन्होंने गान्धार-सेना के विरुद्ध विद्रोह किया था। उन गाँव वालों को, जिनको इस विद्रोह में हानि पहुँची थी, विक्रम ने उपाधियाँ दीं और पुरस्कार दिया।

साथ ही उसने घोषणा कराई कि कश्मीर राज्य की इच्छा ब्रह्मावर्त में अपना राज्य स्थापित करने की नहीं है। गान्धारों को, जो न केवल विदेशी हैं प्रत्युत विधर्मी भी हैं, यहाँ से निकालकर इस देश का राज्य यहाँ के देशवासियों को देकर कश्मीर-सेना अपने देश लौट जाएगी।

विक्रम के इस व्यवहार की इस क्षेत्र में बहुत प्रशंसा हुई। यह प्रशंसा चन्द्र-भागा पार कर उन क्षेत्रों में भी पहुँच गई जो गान्धार-सेना के पीछे थे। भास्कर और उस जैसे काम करने वाले अन्य कश्मीर-सैनिक, फिर शत्रु-सेना के पीछे जा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचे, और वहाँ गाँवों में विक्रम के पुरस्कार देने की बात और उसकी घोषणा की बात प्रचारित करने लगे।

जब काकूष को सेना के पीछे हट जाने का समाचार मिला तो वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने सेनापति को लवपुर में बुलाकर पूछा—"सेना को वापस करने की क्या आवश्यकता पड़ गई थी?"

"महाराज!" सेनापति का कहना था—"पूर्ण देश में विद्रोह की भावना जाग उठी है। न तो सेना को अन्न मिलता था और न ही उनको सुख-सामग्री प्राप्त हो सकती थी। इसके अतिरिक्त शिविर वर्षा से जल-मग्न हो गया था। सेना कितने दिनों तक तो घुटनों-घुटनों पानी में पड़ी रही। यदि सेना को वापस होने की आज्ञा न देता तो सैनिक स्वयं ही लौट आते।"

"पर जनता में विद्रोह क्यों उत्पन्न हुआ?"

"कारण मैं नहीं जानता। इतना अवश्य है कि कश्मीर-सेनापति ने यह घोषणा कर दी है कि ब्रह्मावर्त का राज्य यहाँ के देशवासियों को ही लौटा देंगे। गान्धार विदेशी हैं और इनको देश से बाहर निकाल देना चाहिए।"

"सेना इन बदमाशों को ही तो ठीक करने के लिए भेजी गई थी। तुमने उसका प्रयोग क्यों नहीं किया?"

"किया था, परन्तु सेना भूखी थी और जनता रात को छापे मारकर अन्न ले जाती थी।"

"तो अब क्या होगा?"

"यहाँ की परिस्थिति वहाँ से भी विकट है। जनता को पता चल गया है कि सेना का रसद-पानी बन्द कर देने से सेना नहीं लड़ सकती। यहाँ से भेजा हुआ सामान मार्ग में ही लूट लिया जाता है। उसकी रक्षा के लिए पर्याप्त सैनिक नहीं होते।"

काकूष ने समझा कि गान्धार-सेना का प्रभाव जनता पर नहीं रहा। उसने प्रभाव जमाने के लिए जनता पर अत्याचार और बलात्कार करने का आदेश दे दिया। उसने युद्ध के लिए गई सेना को गाँवों को लूटने और स्त्रियों पर बलात्कार करने के लिए छोड़ दिया।

इससे कुछ देर तक तो आतंक छा गया, परन्तु जब जनता ने देखा कि दोषी और निर्दोष में अन्तर नहीं किया जाता, तो केवल दो मार्ग खुले देखे। या तो वे घर-द्वार छोड़कर विदेश में चले जाएँ, या जान की बाजी लगाकर सेना से भिड़ जाएँ। जहाँ सेना की बड़ी-बड़ी टुकड़ियाँ गाँवों को लूटने अथवा स्त्रियों पर बलात्कार करने के लिए घूमने लगीं, वहाँ विरोध में कई-कई गाँव मिलकर लड़ने लगे। इसका परिणाम काकूष के अनुमान के विपरीत हुआ। पूर्ण ब्रह्मावर्त में गान्धारों का विरोध आरम्भ हो गया और जो भी अधिकारी काकूष ने गाँवों अथवा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कस्बों में भेजे थे, प्रायः मार डाले गए।

ये सब सूचनाएँ विक्रम को मिल रही थीं और उसने इस समय आक्रमण करना उचित समझा। वर्षा बन्द हो चुकी थी। किन्तु नदियों में जल अभी कम नहीं हुआ था। परन्तु विक्रम का विचार था कि देश की परिस्थिति के कारण आक्रमण का उचित समय आ गया है।

लकड़ियों के बड़े-बड़े लट्ठे रस्सों से बाँधकर नौकाएँ बनाई गईं और चोरी-चोरी नदी से बीस मील नीचे जाकर तीन-चौथाई सेना पार कर दी गई। विक्रम स्वयं इस सेना के साथ था। अगले दिन वह सेना गान्धार-सेना पर जा टूटी। घमासान युद्ध हुआ। गान्धार-सेना गाँव वालों को शिक्षा देने के लिए देश-भर में फैली हुई थी। काकूष अभी एक मास तक आक्रमण की आशा नहीं करता था। इस कारण गान्धार-सेना के शौर्य से लड़ने पर भी उसकी पराजय हुई। कश्मीर-सेना गान्धार-सेना से दुगुनी थी। साथ ही जब नदी पार की हुई सेना ने आक्रमण किया तब नदी पार खड़ी सेना ने भी नदी पार करने का यत्न किया। इस कारण गान्धार-सेना को दो ओर से युद्ध करना पड़ा। काकूष की सेना के पाँव उखड़ गए और वह अपना सब सामान छोड़कर इरावती नदी के दक्षिण तट पर आकर रुकी।

विक्रम ने चन्द्रभागा और इरावती के मध्य के भाग में भी वही किया जो उसने वितस्ता और चन्द्रभागा के भीतरी क्षेत्र में किया था, अर्थात् गाँव वालों की हानि की पूर्ति। उनके खाने और बीज के लिए अन्न, उनके लिए वस्त्र और उनकी स्त्रियों की रक्षा का प्रबन्ध किया गया। गाँव वालों में कइयों को शौर्य का पुरस्कार दिया और वही घोषणा, जो पहले की गई थी, यहाँ भी करा दी गई।

इरावती के किनारे पर युद्ध की भारी तैयारी होने लगी। काकूष ने अपनी सेना का संचालन स्वयं करने का विचार किया और विक्रम अपने सब सेनापतियों की राय से युद्ध की तैयारी में लग गया। अभी सेनाओं में बीस कोस का अन्तर था और ऐसा विचार किया जा रहा था कि युद्ध होने में अभी एक सप्ताह लगेगा। इस बार भास्कर भी सेना के साथ था। वैसे कार्य के लिए, जैसा वह पहले करता रहा था, अब अवसर नहीं था। विक्रम का विचार था कि यह मोर्चा अन्तिम होगा। एक बार गान्धारों को यहाँ से पीछे हटाया गया तो लवपुर पर अधिकार हो जाएगा और शेष काम सुगम हो जाएगा। लवपुर में ब्रह्मावर्त वालों की सत्ता स्थापित कर दी जाएगी जिससे गान्धार देश से खदेड़ दिए जाएँगे। इस कारण इस बार उसका विचार था कि आमने-सामने युद्ध किया जाए। वह इस बार गान्धार-सेना को कुचल डालना चाहता था।

एक पुरुष घोड़े पर सवार कश्मीर-सेना के शिविर में आया और उसने विक्रम से मिलने की इच्छा प्रकट की। जब वह विक्रम के सामने उपस्थित हुआ तो उसने अपना परिचय देते हुए कहा—"वीर विक्रम, मैं इन्द्रप्रस्थ राज्य का राजकुमार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। मेरी बहन चन्द्रसेन की महारानी थी। मैं काकूष को समझाने आया था कि वह चुपचाप अपने देश को लौट जाए तो उसके अपराध क्षमा कर दिए जाएँगे।

"उसने मुझको एक बात बताई है कि कश्मीर ब्रह्मावर्त पर अधिकार जमाना चाहता है। इस अधिकार से गान्धार की राजनीतिक परिस्थिति दुर्बल न पड़ जाए इस कारण वह सेना लेकर ब्रह्मावर्त की रक्षा के लिए कश्मीर की सेना को परास्त करने के लिए आया था। चन्द्रसेन ने इस कार्य में उसकी सहायता करने से न कर दी थी। अतएव वह उसको बन्दी करने के लिए विवश हो गया था। उसने यह भी कहा था कि कश्मीर को पराजित कर चन्द्रसेन को गद्दी पर बैठाकर वह वापस लौट जाएगा।

"इस अवस्था में उसने मुझको अपनी सहायता करने के लिए तैयार कर लिया था। अपनी सेना, जो मेरे साथ आई थी, इस समय ऐरावती के तट पर गान्धार-सेना के साथ मिल लड़ने के लिए तैयार खड़ी है। कल रात मेरी बहन की एक दासी मुझको मिली है। उसने मुझको इससे भिन्न बात सुनाई है। उसने कहा है कि चन्द्रसेन बन्दी था, परन्तु मेरी बहन को यह बताया गया था कि वह मार डाला गया है। इससे वह बेचारी सती हो गई है। मेरा भानजा भी बन्दी बना लिया गया है। परन्तु यह विख्यात किया जा रहा है कि वह अपनी माँ के साथ जलकर मर गया है। हमारे अन्य सम्बन्धी मार डाले गए हैं। इनके अतिरिक्त लवपुर में बलात्कार और अत्याचार बहुत अधिक मात्रा में हुए हैं। उसका कहना था कि काकूष का कुछ भी भरोसा नहीं। इन परस्पर विरोधी समाचारों से मैं असमंजस में पड़ गया हूँ। मैं नहीं जानता कि क्या किया जाए ?"

विक्रम को यह बात सुनकर भारी क्रोध आया। उसने कहा—"आपने हमसे पूछे बिना हम पर सन्देह कर लिया है। यह कोई बुद्धिमत्ता का चिह्न नहीं। हमने काकूष को यह लिखा था कि चन्द्रसेन अथवा अन्य किसी ब्रह्मावर्तनिवासी को राज्य सौंपकर वह लौट जाए। इसके विपरीत उसने यहाँ अपना राज्य स्थापित करना चाहा था। हमने जनता के समक्ष यह घोषणा कर दी है कि हमको राज्य अपने लिए नहीं चाहिए। इस पर भी आपने अपनी सेना हमारे विरुद्ध लड़ने के लिए खड़ी कर दी है। इसको मैं देश का दुर्भाग्य ही समझता हूँ।

"देखिए राजकुमार ! यदि आपको काकूष की बात पर विश्वास है तो आप अभी लौट जाइए। काकूष को कहिए कि चन्द्रसेन को आपसे मिला दे और उसको स्वतन्त्र हो आपसे बात करने दे। उससे बात करने पर यदि आपको सन्तोष हो जाए कि काकूष का कथन सत्य है, तो हम यहीं से लौट जाएँगे। एक पग भी आगे नहीं बढ़ेंगे।

"मैं पाँच दिन तक यहाँ प्रतीक्षा करूँगा। आप ऐसा करवा लीजिए और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमको विश्वास दिलवा दीजिए कि यह हो गया है। तब हम कश्मीर लौट जाएँगे।"

"मैं आपसे यही आश्वासन लेने आया हूँ। आप अपने दूत को मेरे साथ भेज दीजिए।"

किसी को काकूष के कहने पर विश्वास नहीं था। इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार के विषय में सन्देह किया जा रहा था। इस कारण यह एक विकट प्रश्न हो गया था कि किसको राजकुमार के साथ भेजा जाए।

इस विषय पर विचार हो ही रहा था, जब भास्कर ने आगे बढ़कर कहा—"श्रीमान्! आप व्यर्थ की चिन्ता में पड़े हैं। मैं आपका दूत बनकर इन महाशय के साथ जाने के लिए तैयार हूँ।"

भास्कर के कहने को सुन विक्रम गम्भीर हो गया। उसने बहुत विचारकर कहा—"वीर भास्कर! यह काम अति भययुक्त है। यदि कुछ भी गड़बड़ हुई तो हमारे दूत का सिर काटकर गान्धार-पताका के साथ लटका दिया जाएगा।"

"महाराज, मेरा सिर काटने के लिए अभी तलवार नहीं बनी। शायद उसके लिए अभी लोहा भी तैयार नहीं हुआ। और फिर वह पताका ही टूट जाएगी, जिसके साथ मेरा सिर लटकाया जाएगा। आप मुझको जाने की स्वीकृति दीजिए। मैं अपना एक साथी साथ में ले जाना चाहूँगा।"

भास्कर का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार के साथ भास्कर को विदा कर दिया गया। जाने से पूर्व विक्रम ने इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार को कहा—"यदि पाँचवें दिन से पूर्व भास्कर यहाँ पहुँचा नहीं तो इन्द्रप्रस्थ की ईंट से ईंट बजा दी जाएगी।"

: ४ :

इन्द्रप्रस्थ का राजकुमार पविधर, भास्कर के साथ लवपुर जा पहुँचा। काकूष उससे सचेत था और दो दिन की उसकी लवपुर से अनुपस्थिति का उसको ज्ञान था। यद्यपि इन्द्रप्रस्थ की सेना अपने उपयुक्त स्थान पर पहुँच रही थी और उनमें एक भी व्यक्ति नहीं था, जो बता सकता कि पविधर कहाँ रहा है, परन्तु इतना तो स्पष्ट था कि वह लवपुर में नहीं था। इतना ही काकूष के मन में सन्देह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। बहुत रात गई जब पविधर अपने शिविर में पहुँचा। भास्कर और उसके साथी के विषय में आदेश देकर वह सोया। अगले दिन प्रातः-काल ही काकूष ने अपने प्रतिहार के हाथ उसको बुला भेजा। प्रतिहार ने झुककर प्रणाम कर काकूष का सन्देश दिया—"महाराज आपसे भेंट की इच्छा रखते हैं। एक अत्यावश्यक विषय में परामर्श करना है और वे चाहते हैं कि आप अविलम्ब दर्शन देने की कृपा करें।"

पविधर ने भास्कर को जगवाया और अपने साथ चलने को कहा। राजकुमार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता था कि उसके सम्मुख ही चन्द्रसेन के विषय में बातचीत हो जाए। उसका विचार था कि यदि इस वार्तालाप से कश्मीर के दूत को विश्वास हो जाए कि काकूष के मन में छल-कपट नहीं तो युद्ध बन्द हो सकता है। परन्तु जब वह भास्कर के साथ महल के द्वार पर पहुँचा, तो भास्कर को भीतर जाने से रोक दिया गया। पविधर ने पूछा—"यह क्यों ?"

उत्तर मिला—"महाराज की आज्ञा है।"

"अच्छी बात है। महाराज से जाकर कह दो, यह मेरे साथ आएँगे।" द्वारपाल ने कहा—"आप चलिए। इनके विषय में पूछकर ले चलूँगा।"

"नहीं," पविधर ने सतर्क हो कहा—"मैं यहाँ ही प्रतीक्षा करता हूँ। जाकर पूछ आओ।" विवश द्वारपाल ने एक साथी को भीतर भेज दिया। घड़ीभर प्रतीक्षा करने पर दस सुभट्ट राजप्रासाद से निकले और पविधर को घेरकर खड़े हो गए। सुभट्टों के नायक ने कहा—"चलिए, महाराज की आज्ञा है।"

पविधर असमंजस में पड़ गया। उसने डरते-डरते पूछा—"क्या मैं बन्दी हूँ ?"

"यह हम नहीं जानते।" नायक ने कहा।

भास्कर यह वार्त्तालाप सुन रहा था। उसने राजकुमार के मुख की ओर देखा। उस पर चिन्ता के लक्षण देख उसने कहा—"महाराज ! भीतर मत जाइए। ये लोग आपको मार डालेंगे।"

राजकुमार ने उत्तर नहीं दिया। नायक ने पविधर की बाँह पकड़कर कहा—"चलिए।" राजकुमार ने इसको अपना अपमान समझा और उसने अपनी तलवार के मुट्ठे पर हाथ रख लिया, परन्तु भास्कर ने तलवार निकालने का अवसर ही नहीं दिया। उसने राजकुमार की बाँह को हाथ लगाने वाले की कमर में हाथ डाल उस को उठा लिया और इस प्रकार उछालकर फेंक दिया जैसे कि वह गेंद हो। पश्चात् भास्कर ने लाठी तान ली। नायक, जो दूर जा गिरा था, विस्मय में यह देखता ही रह गया कि क्या हो गया है। कितनी ही देर पीछे वह भास्कर के अतुल बल का अनुमान लगा सका। दूसरे सुभट्ट भी विस्मय में भास्कर के लम्बे-चौड़े शरीर और उसके बल को देख विचार कर रहे थे कि वे क्या करें। इस समय भास्कर ने उनको इधर-उधर हटाकर पविधर से कहा—"महाराज चलिए। देखें आपको कौन पकड़ता है।"

पविधर भास्कर के साथ अपने शिविर की ओर चल पड़ा। इस समय नायक को समझ आया कि क्या हो गया है। और उसने सुभट्टों को पुकारकर कहा—"पकड़ो उसको। वह जाने न पावे।"

सुभट्ट पविधर की ओर लपके और उनको पविधर के समीप पहुँचने से रोकने के लिए भास्कर ने लाठी चलानी आरम्भ कर दी। कुछ ही क्षणों में सुभट्ट घायल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर भागने लगे। इस समय द्वारपाल ने भय का घण्टा बजा दिया। जब तक पविधर और भास्कर अपने अश्वों तक पहुँचते, पचास-साठ सैनिकों ने उनको आकर घेर लिया। भास्कर ने पचास के विरोध में भी लाठी चलानी आरम्भ कर दी। जब तक कि भास्कर इन सैनिकों को रोके हुए था, पविधर अपने अश्व पर चढ़कर भाग गया। भास्कर ने भी समझ लिया कि यदि कुछ भी देरी और लगी तो पूर्ण सेना उसे पकड़ने के लिए आ पहुँचेगी। इस कारण उसने लाठी इतनी तेजी से चलाई कि सैनिकों की खोपड़ियाँ खटा-खट फूटने लगीं। अपना मार्ग साफ कर वह घोड़े पर चढ़ पविधर के पीछे भाग खड़ा हुआ।

जब भास्कर पविधर के शिविर में पहुँचा तो उसने पूर्ण इन्द्रप्रस्थीय सेना को तैयार होने की आज्ञा दे दी। जो सेना नदी के किनारे काकूष की सेना के साथ मोर्चे पर जा पहुँची थी, उसको वापस लौट आने की आज्ञा भेज दी। पविधर के शिविर के लोग भास्कर को बिना घायल हुए, वापस लौटते देख, आश्चर्य करने लगे। सब उसके चारों ओर एकत्रित हो गए और उससे बचकर निकल आने के विषय में पूछने लगे।

भास्कर ने पविधर के सम्मुख उपस्थित हो पूछा—"महाराज! अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

"अभी ठहरो। अब भय की कोई बात नहीं। बीस सहस्र सैनिक अभी हमारी रक्षा के लिए यहाँ आ उपस्थित होंगे।"

"मुझको भय नहीं लग रहा महाराज! अब मुझको यहाँ का समाचार अपने सेनापतिजी के पास भेजना है।"

"वह मैं अभी भेजता हूँ।"

एक प्रहर-भर में इन्द्रप्रस्थ की पूर्ण सेना शिविर में आ पहुँची। पविधर अपने सेनानायकों को भीतर ले गया और इस नवीन परिस्थिति पर विचार करने लगा। इसी अन्तर में भास्कर अपने मन में बिना युद्ध के लवपुर विजय करने की योजना बनाने लगा था। इस समय काकूष का एक दूत पविधर के पास आया। पविधर ने उसको पृथक् में ले जाकर पूछा—"क्या चाहते हैं तुम्हारे महाराज?"

"महाराज काकूष अपने सेवकों की मूर्खता के लिए क्षमा माँगते हैं। महाराज ने यह कहा है कि उन्होंने वे सुभट्ट आपके सम्मान के लिए भेजे थे। आपने अपने को बन्दी मान झगड़ा आरम्भ कर दिया। हमारे सेवकों को आपसे झगड़ा नहीं करना चाहिए था। महाराज काकूष का कहना है कि वे आपके मित्र हैं। इस कारण आप आइए। अपने साथ पचास-साठ सैनिक भी ला सकते हैं। वे विश्वास दिलाते हैं कि आपका बाल भी बाँका नहीं होगा।"

पविधर ने गम्भीर हो कहा—"महाराज से कह दो कि मुझको उन पर उतना ही विश्वास है जितना पहले था। मैं डरकर नहीं चला आया था। मेरे लौट आने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उद्देश्य यह है कि मैं आपसे वार्ता अपने शिविर में करना पसन्द करूँगा। आपके यहाँ एकान्त मिलने की आशा नहीं। साथ ही यहाँ पर आपको एक ऐसी योजना बताने वाला हूँ जिससे बिना युद्ध के विजयश्री प्राप्त हो सके। उस योजना को उपस्थित करने वाला भी यहाँ उपस्थित है। आप आइए। मैं समझता हूँ कि जब आप भी इस योजना को सुनेंगे तो मान जाएँगे कि बिना युद्ध के कश्मीर-सेना वापस की जा सकती है। महाराज से यह भी कहना कि चन्द्रसेन को भी साथ लेते आएँ जिससे बातचीत का कुछ परिणाम निकल सके।"

दूत गया और न तो काकूष ही आया और न उसका कोई सन्देश ही। राजकुमार पविधर को इसकी पहले ही आशा थी। इस कारण उसने अपनी पूर्ण सेना नदी पर से मँगवा ली थी। सब सेना लवपुर के बाहर राजकुमार के शिविर पर एकत्रित हो गई थी। सेनानायकों की सम्मति थी कि जिस समय कश्मीर-सेना से युद्ध छिड़ जाए, उस समय लवपुर पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लेना चाहिए और तब तक काकूष से मैत्री प्रकट करते रहना चाहिए।

भास्कर अपने मन में एक दूसरी ही योजना बना रहा था। उसकी योजना के अनुसार काकूष को युद्ध से पहले ही बन्दी बना लेना आवश्यक था। उसका कहना था कि यदि ऐसा किया जा सका तो सहस्रों सैनिकों की जान बच जाएगी। इतने लाभ के लिए जान का भय मोल लिया जा सकता था।

यद्यपि पविधर इस योजना के सफल होने की कुछ विशेष आशा नहीं करता था, फिर भी वह भास्कर के शौर्य का भरोसा कर उसकी सहायता करने के लिए तैयार हो गया। काकूष को आश्चर्य इस बात से हुआ था कि कश्मीर-सेना पचास कोस के अन्तर पर पहुँचकर ठहर गई है। साथ ही उसको चिन्ता इस बात की थी कि इन्द्रप्रस्थ की सेना अभी तक लवपुर के बाहर डेरा डाले पड़ी थी। चार दिन इसी प्रकार अनिश्चित मन में व्यतीत हो गए। पविधर अपने सेनानायकों के साथ विचार-विमर्श कर रहा था और काकूष पविधर की ओर से किसी बात के चलने की प्रतीक्षा कर रहा था।

काकूष के मन्त्रीगण यह सम्मति दे रहे थे कि इन्द्रप्रस्थ की सेना को कूटनीति की बातचीत में लगा छोड़ना चाहिए। उससे युद्ध तब तक नहीं करना चाहिए जब तक प्रधान युद्ध समाप्त न हो जाए। प्रधान युद्ध के पहले इन्द्रप्रस्थ की सेना से युद्ध करने से अपनी सेना के दुर्बल पड़ जाने की आशंका में काकूष के सेनानायक चुपचाप अनुकूल अवसर देख रहे थे।

चार दिन के विचार-विमर्श के उपरान्त काकूष का दूत फिर पविधर से मिलने के लिए आया। उसने पुनः महाराज काकूष की ओर से क्षमा माँगी और कहा—"महाराज चार दिन तक सेना का कार्य देखने में बहुत व्यस्त थे। इस कारण आपके कहने के अनुसार कार्य नहीं कर सके।" चन्द्रसेन के विषय में दूत ने कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ब्रह्मावर्त के महाराज को राजगद्दी पर पुनः आसीन करने में देरी कश्मीर-सेना के आक्रमण के भय के कारण हो रही है। ज्यों ही वह सेना पराजित कर भगाई जा सकेगी, त्यों ही हम उनको राजगद्दी पर बैठाकर अपने देश को लौट जाएँगे। आपको यह चाहिए कि हमारी सहायता कर कश्मीर-सेना को भगा दें। यदि किसी कारण से आप यह नहीं कर सकते तो मेरा निवेदन है कि आप तटस्थ रहें और देखें कि हम अपना वचन पालन करते हैं या नहीं।"

इस सन्देश का पविधर ने उत्तर दिया—"मैं आपके विचार से सर्वथा सहमत हूँ। मैं आपको अपना वचन पालन करने का अवसर देना चाहता हूँ। मुझको विश्वास भी है कि आप ऐसा करने का पूर्ण विचार रखते हैं। रही कश्मीर-सेना से युद्ध में हमारी सेना के सहयोग की बात, इस विषय में हमारा निवेदन है कि चन्द्रसेन को यहाँ भेज दीजिए। वह हमारी सेना का नेतृत्व कर आपके साथ कन्धे से कन्धा लगाकर युद्ध-क्षेत्र में लड़ेगा।"

इस उत्तर का प्रत्युत्तर आया—"मैं आपकी बात को पसन्द करता हूँ, परन्तु चन्द्रसेन इतना भीरु है कि वह युद्ध-क्षेत्र में जाना नहीं चाहता। यदि वह योद्धा और शूर होता तो मुझको इस समर में आ कूदने की आवश्यकता ही न होती।"

इस कूटनीतिक बातचीत में पविधर कम चतुर व्यक्ति नहीं था। उसने लिखा—चन्द्रसेन के विषय में आपकी बात पढ़कर मुझको भारी विस्मय हुआ है। जब वह मेरी बहन से विवाह करने इन्द्रप्रस्थ गया था तो उसने अपनी शूरवीरता का परिचय दिया था। फिर भी मुझको आपके कहने पर अविश्वास करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। क्या मैं स्वयं चन्द्रसेन से मिलकर उसके मन के भावों को जान सकता हूँ? यदि सत्य ही वह, जैसा आप कहते हैं वैसा है, अर्थात् भीरु है तब तो उसको राजगद्दी पर बैठाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। यह कहावत सत्य ही है—'वीरभोग्या वसुन्धरा'। ऐसी अवस्था में उसके पुत्र बन्धुक को राज्यगद्दी पर सुशोभित करने का प्रस्ताव करता हूँ। परन्तु पहले चन्द्रसेन से मेरी भेंट हो जानी चाहिए।"

इस पर काकूष का उत्तर आया—"आपका विचार सुन मुझको बहुत प्रसन्नता हुई है। चन्द्रसेन से आपकी भेंट हो सकती है। आप यहाँ आ जाएँ। मैं उनसे आपकी भेंट करवा दूँगा। वह सुरापान कर दिनभर रमणियों में रमण करता रहता है। यदि आप यहाँ नहीं आ सकते तो अपने किसी विश्वस्त दूत को भेजकर, हमारे कहने का प्रमाण पा सकते हैं।"

जब से भास्कर ने पविधर की जान बचाई थी तब से वह पविधर के अन्तरंग परामर्शदाताओं में माना जा रहा था। इस अन्तिम पत्र के आने पर भी वह इस गोष्ठी में उपस्थित था। जब पविधर ने काकूष का पत्र पढ़कर सुनाया तो भास्कर ने निवेदन कर दिया—"आप अपना एक दूत भेजकर काकूष की बात को प्रमाणित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकते हैं।"

"मुझको उसके एक शब्द पर भी विश्वास नहीं। भास्करदेव ! जो भी दूत भेजूँगा, वह राजप्रासाद से बाहर नहीं लौटेगा।"

"महाराज ! यदि आप मुझको आज्ञा दें तो मैं भीतर जाकर बाहर आने का वचन देता हूँ।"

इससे पविधर विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। भास्कर ने पुनः कहा—"महाराज ! मेरी एक योजना है। उसके लिए मैं आपसे पचास सैनिक साथ ले जाने के लिए माँगता हूँ। यदि मेरी योजना सफल हो गई तो मैं बिना युद्ध के विजयश्री की प्राप्ति का आश्वासन देता हूँ।"

पविधर समझ नहीं सका कि क्या होगा, परन्तु वह भास्कर की शक्ति और साहस का प्रमाण पा चुका था। इस कारण उसने कहा—"बहुत ही भय की बात है, देख लो।"

"महाराज ! आप चिन्ता न करें। आप अपनी सेना को तैयार रखें। जब आप राजप्रासाद पर से काकूष की पताका उतरती देखें तो सेना लेकर वहाँ आ जाएँ और अपनी पताका चढ़ा देवें।"

भास्कर ने जब बहुत आग्रह किया तो पविधर ने अपने पचास सैनिकों को साथ जाने को तैयार कर दिया। साथ ही पूर्ण सेना को तैयार होने की आज्ञा कर दी। भास्कर ने अपने साथ चलने वाले सैनिकों को अपनी योजना समझाई और उनको अपना-अपना काम सौंप दिया। पश्चात् पविधर का पत्र ले वह राजप्रासाद की ओर चल पड़ा। पत्र में पविधर ने लिखा था—"श्रीमान् ! गान्धार-नरेश के निमन्त्रण को मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परन्तु मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं। इस कारण अपने एक विश्वस्त अधिकारी भास्कर को, उसके अधीन अपने पचास योद्धाओं को देकर, भेज रहा हूँ। यदि वास्तव में चन्द्रसेन वैसा ही है, जैसा श्रीमान् ने अपने पत्र में बताया है, तो हम इसी भास्कर के नेतृत्व में अपनी सेना को नदी तट पर आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़ने के लिए भेज देंगे। यह भास्कर अकेला ही एक सेना के समान शक्ति रखता है। इसके युद्ध में जाने पर हमारी विजय निश्चित है।"

प्रासाद के द्वार पर पहुँचकर भास्कर ने पविधर का पत्र भीतर भेज दिया और कहा—"हम सबके सब महाराज चन्द्रसेन जी के दर्शन करना चाहते हैं।"

बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् सबको प्रासाद के भीतर चलने की स्वीकृति मिल गई। प्रासाद के एक विशाल आगार में एक महापुरुष राजसी ठाठ-बाट में बैठा था। लगभग पचास कर्मचारी इस आगार में अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। इस आगार के बाहर भास्कर पहुँचा तो द्वारपाल ने ऊँचे स्वर में कहा—"श्री राजकुमार पविधर के विश्वस्त दूत श्री भास्करदेव अपने सैनिकों सहित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज काकूष की सेवा में पधार रहे हैं।"

भास्कर की योजना के अनुसार उसके पचास साथी आगार के बाहर ही रह गए। भास्कर अकेला भीतर गया। द्वारपाल के परिचय देने पर उसको यह पता चल गया कि वह गान्धार नरेश काकूष के सम्मुख जा रहा है। आज भास्कर की कटि के साथ तलवार बँधी थी। यद्यपि वह तलवार चलाने में इतना चतुर नहीं था, जितना लाठी चलाने में था, तो भी उसको यह भरोसा था कि हथियार हाथों की दृढ़ता के आधार पर चलते हैं और उसको अपने हाथों की दृढ़ता पर विश्वास था।

उच्च सिंहासन पर विराजमान काकूष के सम्मुख पहुँच भास्कर ने झुककर प्रणाम किया। राजसभा में उपस्थित लोग भास्कर के शरीर की बनावट और ऊँचाई देख आश्चर्य करते थे। सबका ध्यान उसकी चार हाथ लम्बी तलवार पर भी गया और कानों ही कानों यह समाचार भी फैल गया कि यह वह योद्धा है, जो पविधर को पचास योद्धाओं से बचाकर ले गया था। इससे सबके मन में आतंक छा गया था। सिंहासनारूढ़ काकूष ने, भास्कर की नमस्कार के पश्चात्, उससे कहा—"भास्करदेव ! सत्य ही तुम राजकुमार पविधर के विश्वस्त दूत कहलाने के योग्य हो। हमें बहुत प्रसन्नता हुई है कि तुम इस आवश्यक कार्य पर नियुक्त हुए हो। अब तुम हमारे द्वारपाल के साथ भीतर जाकर चन्द्रसेन को सुरा और सुन्दरी में लीन देख सकते हो।"

"महाराज !" भास्कर ने झुककर प्रणाम कर कहा—"मैं उनके रंगमहल में जाना नहीं चाहता। अपने सेवकों को आज्ञा दीजिए कि विषयवासना से लिप्त इन महानुभाव को यहाँ उठा लाएँ।

"हम उनका अपमान नहीं कर सकते।"

"मैं उसको पदच्युत करने आया हूँ। मान-अपमान किसी के कहने से नहीं होता। यह तो अपने अच्छे-बुरे कर्मों से बनता-बिगड़ता है। मेरा निवेदन है कि चन्द्रसेन जी को यहाँ बुला दें। यदि न आएँ तो बलपूर्वक उठवा मँगवाएँ।"

"हम उनको यहाँ नहीं ला सकते।"

"तो आज्ञा दीजिए कि मेरे पाँच साथी उसको उठा लाएँ।"

"आप स्वयं क्यों नहीं जाते ?"

"महाराज ! यही बात तो मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि आप उसको यहाँ क्यों नहीं बुलवा देते ?"

"वे स्वतन्त्र राजा हैं। हम उन पर बलप्रयोग नहीं कर सकते।"

"मेरे साथी वह काम कर देंगे जो आप नहीं करना चाहते।"

काकूष निरुत्तर हो रहा था। इस कारण उसने झगड़ा करने के विचार से कहा—"तुम मेरा अपमान कर रहे हो। मैं इसको सहन नहीं कर सकता।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने अपमान नहीं किया। मैंने तो केवल यह निवेदन किया है कि मैं अपनी इच्छा से आपके बन्दीगृह में जाना नहीं चाहता। आप अपने बन्दी चन्द्रसेन को यहाँ बुला दीजिए।"

"तो क्या तुम हमारी बात पर विश्वास नहीं करते ?"

"इसमें विश्वास-अविश्वास का प्रश्न नहीं······।"

भास्कर काकूष की प्रत्येक गतिविधि को देख रहा था। उसने देखा कि उसने आँखों के संकेत से सभा में बैठे सभागणों को कुछ कहा है। इस कारण अपनी बात को बीच में ही बन्द कर उसने अपनी तलवार खींच ली। वह लपककर सिंहासन पर जा कूदा और काकूष के पेट में तलवार भोंक दी। पश्चात् बहुत ही उच्च गर्जना करते हुए बोला—"महाराज चन्द्रसेन की जय हो !"

यह गर्जना भास्कर के बाहर खड़े पचास योद्धाओं के लिए संकेत था। यद्यपि भास्कर को यह आशा नहीं थी कि काकूष इतनी सुगमता से मारा जाएगा, फिर भी वह जानता था कि उसका काम आगे और अति कठिन है। आगार के भीतर और बाहर युद्ध छिड़ गया।

भास्कर ने काकूष का काम तमाम कर यह समझा था कि वहाँ उपस्थित लोग भयभीत हो भाग जाएँगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत वहाँ बैठे एक व्यक्ति ने विकराल हँसी हँसते हुए आज्ञा दी—"इस दुष्ट विश्वासघाती को दण्ड दो।"

भास्कर अपनी चार हाथ लम्बी तलवार निकाल चलाने लगा। तलवार चलाते हुए वह आगार के सिंहासन वाले कोने में खड़ा पचास योद्धाओं से लड़ने लगा। इसकी तलवार सबसे लम्बी थी और कोई यह साहस नहीं कर सकता था कि उसकी मार के समीप आ सके। जो भी उसकी मार के अन्दर आया, उसका सिर, हाथ अथवा कोई अन्य अंग कटकर दूर जा गिरा। देखते-देखते चालीस-पचास के लगभग लोग घायल हो मैदान छोड़ गए। भास्कर ने देखा कि वह व्यक्ति, जो उसको दण्ड देने की आज्ञा दे रहा था, भागने वालों में सबसे आगे था। भास्कर ने उसको ललकारा भी—"ओ दण्ड दिलाने वाले भगोड़े ! ठहर तो तनिक, हमारा हाथ भी देख जाओ।"

परन्तु वह रुका नहीं और एक द्वार खोल सब भाग गए। इस समय आगार के बाहर युद्ध छिड़ गया था। भास्कर का यह काम तो सिंह की गुफा में जाकर उस पर आक्रमण करने के समान था। भास्कर आगार के बाहर आ गया और अपने साथियों को, जो द्वारपालों का काम तमाम कर चुके थे, अपने साथ आने के लिए बोला—"आओ मेरे साथ।"

भास्कर की अपनी लम्बी तलवार रक्त से रँगी हुई और उसके साथियों को रक्त के प्यासे आते देख मार्ग में खड़े द्वारपाल भयभीत हो भाग खड़े हुए। भास्कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजप्रासाद की छत पर चढ़कर पताका उतारने के लिए आगे बढ़ गया।

: ५ :

जब भास्कर राजप्रासाद की ओर गया तो पविधर ने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दे दी। उसने भास्कर के जाने के पश्चात् दो घड़ी भर की प्रतीक्षा की और उसके बाद सेना को नगर में घुस राजप्रासाद पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। इतना विश्वास था उसको झगड़ा होने का और भास्कर के युद्ध आरम्भ कर देने का कि वह पताका के हटाए जाने की प्रतीक्षा नहीं कर सका। नगर में जाने पर द्वारपालों ने उसको रोका, परन्तु पूर्ण सेना के सामने सब कुछ आँधी के सामने तिनके के समान उड़ गया। यह सब कुछ इतना अकस्मात् हुआ था कि द्वार बन्द करने की आज्ञा मिलने से पहले सेना नगर में घुस द्वारों पर अधिकार जमा चुकी थी। मार्ग में कहीं-कहीं छोटी-छोटी झड़पें हुईं, परन्तु सेना रुक नहीं सकी। जब सेना महल के द्वार पर पहुँची तो भास्कर प्रासाद की छत पर चढ़ा हुआ पताका को गिराता हुआ दिखाई दिया। उसने अपनी तलवार से वार कर पताका के दण्ड के दो टूक कर दिए थे। इन्द्रप्रस्थीय सेना ने पताका को गिरते देखा तो जयघोष किया। इस समय काकूष की सेना ने राजप्रासाद को आग लगा दी।

पविधर ने आज्ञा दी कि काकूष को पकड़ लिया जाए, परन्तु काकूष अश्व पर, जो वहाँ तैयार खड़ा था, सवार होकर भाग गया। इस समय तक पूर्ण नगर में काकूष की सेना और इन्द्रप्रस्थीय सेना में युद्ध छिड़ गया था। प्रासाद के एक ओर तो आग लग गई थी और दूसरी ओर से प्रासाद के कर्मचारी भाग रहे थे। जिस ओर से पविधर की सेना आक्रमण कर रही थी उस ओर आग लगी हुई थी।

भास्कर ने महल की छत पर खड़े हुए नीचे से धुआँ उठते देखा तो अपने को फँस गया समझ वह नीचे की ओर भागा। बीच की छत पर अभी भी उसके साथी लड़ रहे थे। उसने यह घोषणा ऊँची आवाज में की कि प्रासाद को आग लग गई है और जो अपनी जान बचाना चाहते हैं, वे भाग जाएँ। इस बात को सुनते ही लड़ाई बन्द हो गई। भास्कर और उसके साथी अब प्रासाद से बाहर जाने का मार्ग ढूँढ़ने लगे। भास्कर ने उनको कहा—"महल के कर्मचारियों के पीछे चलो, वे मार्ग जानते हैं।"

महल सात छत का था और सातों छतों पर लड़ाई हो रही थी। भास्कर सीढ़ियों से नीचे उतरता आता था और कहता आता था—"आग लग गई! भाग जाओ!! आग लग गई! भाग जाओ!!"

इस पर भी कुछ गान्धार-सैनिक मार्ग रोकने के लिए खड़े हो जाते, परन्तु उसकी लम्बी तलवार उनका काम तमाम करती जाती थी। भास्कर जब नीचे भूमि पर पहुँचा तो द्वारपाल भाग गए थे और उसका मार्ग धू-धू करता हुआ जल रहा था। यहाँ के सब आगार धुएँ से भर रहे थे और मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही उसका दम घुटने लगा था।

इस समय महल के कुछ सेवक उसको महल के पिछवाड़े की ओर भागते हुए दिखाई दिए। वह भी उनके पीछे भागा। धुएँ में दिखाई न देने के कारण सामान से ठोकरें खाता हुआ वह एक आगार से दूसरे आगार और दूसरे से तीसरे में भागता गया। सेवक उसके पीछे से आते थे और मार्ग को भलीभाँति जानने के कारण आगे निकल जाते थे। वह समझ रहा था कि एक क्षण की भी देरी घातक सिद्ध हो सकती है। इस कारण ठोकरों और रुकावटों की ओर ध्यान न करता हुआ वह पिछवाड़े की ओर चलता जाता था। वहाँ धुआँ कम था और बाहर से वायु आ रही थी, जिससे आग अधिक और अधिक भड़क रही थी। यहाँ खड़े हो भास्कर विचार करने लगा कि वह किधर जाए।

जिस आगार में वह खड़ा था वहाँ गर्मी इतनी अधिक थी कि खड़ा होना असम्भव था। उस आगार का लकड़ी का सामान गर्मी के कारण धुआँ छोड़ने लगा था। वह देख रहा था कि एक-दो क्षण में ही वहाँ आग भड़क उठने वाली थी। इस कारण बिना अधिक विचार किए उसने सामने दिखाई देने वाली खिड़की को खोल डाला। इससे स्वच्छ वायु भीतर आई और आग भड़क उठी। खिड़की में लोहे के सींखचे लगे हुए थे। भास्कर ने सींखचे मरोड़ने का यत्न किया। एक-एक कर वे मुड़ने लगे। इस पर भी भास्कर के शरीर के निकल सकने के लिए मार्ग बनने तक आगार का सामान वेग से जलने लगा, और उनकी लपटें उसके कपड़ों को भी लग गईं। भास्कर ने समझा कि उसका अन्तकाल आ गया है। इससे उसने जलते कपड़ों के साथ खिड़की में से छलाँग लगा दी। भास्कर लुढ़ककर खिड़की के बाहर जा गिरा।

खिड़की प्रासाद के एक प्राँगण में खुलती थी। जब भास्कर वहाँ गिरा तो इसके कपड़ों को आग लग चुकी थी। भास्कर ने तुरन्त उठकर उनको बुझाने का यत्न करना आरम्भ कर दिया। इस यत्न में वह अचेत होकर भूमि पर गिर गया। इस समय इन्द्रप्रस्थीय सेना के लोग प्रासाद के उस प्रांगण में पहुँच गए थे। उन्होंने भास्कर के जलते कपड़ों को बुझा दिया।

भास्कर को जब चेतना हुई तो वह इन्द्रप्रस्थीय सेना के शिविर में पड़ा था और वैद्य उसके झुलसे शरीर पर ओषधि लगा रहा था। चेतना आते ही उसने प्रथम बात यह पूछी—"राजकुमार कहाँ है?"

"नगर में प्रबन्ध देख रहे हैं। काकूष भाग गया है और नगर में हमारा अधिकार हो गया है।"

"काकूष तो मर गया था।"

"नहीं! जिसको तुमने मारा था वह काकूष नहीं था।"

भास्कर को बहुत अचम्भा हुआ। उसने वैद्य से पूछा—"मैं कब तक ठीक हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाऊँगा ?"

"एक सप्ताह तो लग ही जाएगा।"

"तब तक तो वह न जाने कहाँ भाग जाएगा ?"

"सुना है कि नदी तट पर विक्रम से लड़ने की तैयारी कर रहा है।"

"युद्ध कब तक होगा ?"

"आज भी हो सकता है। कश्मीर-सेना प्रातः से नदी पार करने की तैयारी कर रही है।"

"भिषग्वर ! तुम मुझको आज ठीक नहीं कर सकते ?"

"असम्भव है। कपड़े तो तुम पहन ही नहीं सकते।"

भास्कर मन मसोसकर रह गया। रात को पविधर भास्कर को देखने आया। वह भास्कर के शौर्य और साहस को देख चुका था। इस कारण उसने कहा—"भास्कर देव, आपकी वीरता देख और सुन मैं चकित रह गया हूँ। यदि आप जैसे पाँच आदमी भी मेरे पास होते तो मैं संसार-विजय कर लेता। अब बताओ किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?"

भास्कर ने उत्तर दिया—"महाराज ! मुझको बहुत दुःख है कि काकूष मेरे हाथ से बच गया है। यदि मैं जल न गया होता तो मैं युद्ध में अपने हाथ से उसको यमलोक पहुँचा देता।"

"वह युद्ध से भी भाग गया है। युद्ध में गान्धार-सेना बहुत मारी गई है। उसके लिए अब भाग जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था। उसकी सेना दो सेनाओं के बीच में आ गई थी। काकूष नरसिंहपुर की ओर भागा जाता हुआ देखा गया है।"

"महाराज विक्रम कहाँ हैं ?"

"अभी तो नदी के पार ही हैं। कल हम उनका नगर में भव्य स्वागत करेंगे। एक बात बहुत दुःख की हुई है। चन्द्रसेन महल में बन्दी था। वह उसमें ही जलकर भस्म हो गया है। बन्धुक को एक स्त्री बचाकर ले गई थी। वह मिल गया है। मेरी बहन तो पति की मृत्यु से पहले ही सती हो गई थी। उसको झूठ ही यह कह दिया था कि वह विधवा हो गई है।"

काकूष के राज्य की समाप्ति के समाचार से ब्रह्मावर्त की पूर्ण जनता आनन्दोत्सव मनाने लगी थी। लवपुर में तो घर-घर में शंख, दुंदुभी, ढोल, नगारे बजने लगे। नर-नारी, बाल-वृद्ध प्रसन्नता से पागल हो घरों से निकल आए और नाचने, गाने, बजाने लगे। शिशिर में वसन्तोत्सव का-सा समय लग गया। कार्तिक में फाग खेला जाने लगा।

पविधर ने लवपुर में और ब्रह्मावर्त के उस भाग में, जहाँ से गान्धार राज्य हट चुका था, घोषणा करवा दी—"काकूष ने ब्रह्मावर्त के महाराज चन्द्रसेन को राज-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रासाद में बन्दी कर रखा था और राजप्रासाद छोड़ते समय उसको आग लगवा दी, जिससे महाराज चन्द्रसेन उसमें जलकर भस्म हो गए, उनका झुलसा हुआ शव मिला है। चन्द्रसेन का पुत्र बन्धुक इस आग से बचाया जा सका है। ब्रह्मावर्त से आततायी को परास्त कर निकालने में महाराज-कश्मीर की सेना ने बहुत सहायता दी है। उस सेना के सेनापति महाराज-कश्मीर के जामाता श्री विक्रमवीर कल लवपुर पधारेंगे। हमको उनका हृदय से स्वागत करना चाहिए। नगरभर में सजावट करनी चाहिए और मंगलगीत गाए जाने चाहिए।"

लवपुर के निवासियों ने इरावती नदी के घाट से, जहाँ विक्रम की नाव किनारे लगनी थी, विक्रम के निवासस्थान तक पूर्ण मार्ग को भलीभाँति सजाया। स्थान-स्थान पर विजयद्वार, पताका, वन्दनवार और पुष्प तथा मुक्तामणिजड़ित मालाएँ लगाईं। मार्ग पर कौषेय और अतलसी दरियाँ बिछाई गईं। पुष्पवर्षा का बहुत भारी प्रबन्ध किया गया।

विक्रम के घाट पर उतरने के समय पविधर अपने भानजे बन्धुक को साथ लेकर स्वागत के लिए उपस्थित था। राज्य का सुसज्जित बजरा उनको लेने के लिए नदी पार कर गया था और बजरे के साथ आगे-पीछे सेना, नौकाएँ थीं और उनमें पाँच सहस्र सैनिक भी आए थे। सबके लिए स्वागत और निवास का प्रबन्ध किया गया था।

विक्रम जब बजरे से उतरा तो पविधर उससे गले मिला और बन्धुक ने हाथ जोड़ प्रणाम किया। विक्रम ने बालक को उठाकर गोदी में ले लिया और घाट पर खड़े हाथी में, जो उसकी सवारी के लिए आया था, चढ़कर बन्धुक को अपने साथ बैठा लिया। सबसे आगे विक्रम का हाथी था। उससे पीछे पविधर का। उनके पीछे स्वागतार्थ आई इन्द्रप्रस्थीय सेना और उसके पीछे कश्मीर के पाँच सहस्र सैनिक। इस प्रकार यह सवारी नगरभर में भ्रमण करती हुई नगर के दूसरी ओर एक विशेष निर्मित शिविर में ले जाई गई। वहाँ विक्रम और उसके साथ आई कश्मीर-सेना के निवास की व्यवस्था थी।

उसी रात भोजनोपरान्त विक्रम, पविधर और राज्य के बचे-खुचे विद्वानों की एक सभा हुई और उसमें विक्रम ने कश्मीर की ओर से घोषित किया—"कश्मीर राज्य की यह इच्छा नहीं कि ब्रह्मावर्त पर अपना राज्य स्थापित करे। यह राज्य ब्रह्मावर्त की राज्यसभा ही सँभालेगी। यहाँ का राजा वही होगा जिसको यह सभा निर्वाचित करेगी। बन्धुक अभी बालक है। हमारी पूर्ण सहानुभूति उसके साथ है। फिर भी इस देश का राज्य तो उसको ही दिया जाएगा जिसको यहाँ की राज्यसभा निर्वाचित करेगी। बन्धुक जब बड़ा होगा, तब उसके अधिकारों पर विचार करने का अवसर आएगा।

"कश्मीर-सेना काकूष को ब्रह्मावर्त से बाहर निकालने के लिए ही आई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काकूष अभी नरसिंहपुर में है और अपनी सेना का पुनर्संगठन करने का यत्न कर रहा है। यदि वह वहाँ से अपनी इच्छा से सिन्धु-पार चला गया तो ठीक है, अन्यथा उससे युद्ध कर उसको सिन्धु-पार करा कर ही कश्मीर-सेना वापस जाएगी।

"मैं महाराज-कश्मीर की ओर से राजकुमार पविधर जी को आश्वासन दिलाता हूँ कि ब्रह्मावर्त की राज्यसभा के निर्णय पर हम किसी प्रकार का प्रभाव डालना नहीं चाहते। वे यदि अपना तथा अपने भानजे के राज्य पर अधिकार को मनवाने का यत्न करना चाहते हैं, तो राज्यसभा के साथ परामर्श करें। हम इस विषय में किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे।"

इस घोषणा का सबने प्रसन्नता से स्वागत किया। इस सभा में, राज्यसभा में कौन आमन्त्रित किया जाए, इस विषय पर भी विचार किया गया। कुछ विद्वानों के नाम बताए गए और उनके विषय में अन्तिम निर्णय करने के लिए एक छोटी-सी समिति बना दी गई।

विक्रम तब लवपुर में ही था, जब उसको चक्रधरपुर से यह सूचना मिली कि देवयानी के पुत्र हुआ है। इस समाचार से कश्मीर-सेना में विशेष रूप से और ब्रह्मावर्त में साधारण रूप से प्रसन्नता की तरंग दौड़ गई। विक्रम को इस विजय में जब भास्कर के भाग का पता चला तो वह उसके पास पहुँचा। भास्कर आग में जल जाने के कारण अभी तक रुग्णशय्या पर लेटा हुआ था। विक्रम ने उसके पास बैठ उसका हाथ पकड़कर उसका धन्यवाद किया और कहा—"भास्करदेव! मेरे पास शब्द नहीं कि मैं तुम्हारी प्रशंसा कर सकूँ। इस आयु में जो कार्य तुमने किया है, वह स्वर्ण-अक्षरों में लिखने योग्य है। मैं आज देवयानी को लिख रहा हूँ कि वह मिलिन्द का धन्यवाद करे। उसके पति ने अपने प्रयत्न से इस युद्ध को बहुत छोटा कर दिया है और इस प्रकार सहस्रों सैनिकों की जानें बचाई हैं।"

मिलिन्द की याद आने पर भास्कर की आँखों में प्रेम के आँसू छलकने लगे। विक्रम ने देखा तो पूछ लिया—"क्यों देवता! क्या है?"

"महाराज! मिलिन्द का वियोग सताने लगा है।"

"पर भास्कर! समर अभी समाप्त नहीं हुआ। हमें तो काकूष का पीछा सिन्धु तक करना है और तुम्हारे बिना तो अब कार्य चल नहीं सकेगा।"

इससे भास्कर के मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उसने कहा—"महाराज! मैं आपके साथ चलूँगा। केवल..." उसने गम्भीर हो और कुछ विचारकर कहा—"एक बात है। कृपया महारानी जी को लिख दीजिए कि मिलिन्द को देवर्षि नारद से बचाकर रखें। मेरे मन में उसी का खटका लगा रहता है। वह अच्छा व्यक्ति नहीं है।"

विक्रम हँसकर कहने लगा—"बात तो तुम्हारी ठीक है। मैं अवश्य लिखूँगा। परन्तु एक बात मैं तुमको बताना चाहता हूँ। क्या तुम महारानी देवयानी की सखी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमति को जानते हो?"

"हाँ महाराज!"

"देवर्षि का उससे विवाह होने वाला है।"

"सत्य?" भास्कर ने विस्मय में पूछा।

"मुझको उसके पिता महर्षि पाणिनी ने बताया था।"

"उस बूढ़े खूसठ से सुमति विवाह करेगी?"

"वह अभी बूढ़ा कहाँ हुआ है? उसकी आयु डेढ़ सौ वर्ष से अधिक कहाँ है? और देवताओं में यह पूर्ण युवाकाल माना जाता है।"

"आप मेरी हँसी कर रहे हैं। मैं इस समय पैंसठ वर्ष का हूँ और अपने को बूढ़ा मानता हूँ।"

"पर देवयानी तो कहती थी कि भास्कर देवता का एक और विवाह किया जा रहा है।"

भास्कर इस बात से बहुत आनन्द अनुभव करने लगा था।

: ६ :

विक्रम ने लवपुर-विजय के तुरन्त बाद अपनी सेना को एकत्रित किया और नरसिंहपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। वह काकूष की समस्या को शीघ्रातिशीघ्र सुलझाकर चक्रधरपुर लौट जाना चाहता था। अपने नवजात शिशु के दर्शन के लिए उसका मन व्याकुल हो रहा था।

भास्कर तब तक सर्वथा स्वस्थ हो चुका था और अब सेना के साथ अति-सम्मानित पद पर था। सेना अब पैदल, अश्वों, रथों, हाथियों के साथ-साथ नौकाओं में भी थी। ऐरावती नदी में सहस्रों सैनिक नावों में थे। बीस सहस्र की संख्या में वे पश्चिम की ओर चल रहे थे।

काकूष की सेना का इतना अधिक विनाश हुआ था कि वह इसका संगठन करने में कठिनाई अनुभव कर रहा था। सेना के बहुत से सैनिक सेना छोड़-छोड़ कर भाग रहे थे। पराजितों के साथ ऐसा ही होता है।

जब कश्मीर-सेना नरसिंहपुर से पचीस कोस की दूरी पर पहुँच गई तो काकूष ने वहाँ से प्रस्थान कर पश्चिम की ओर चन्द्रभागा और वितस्ता के संगम पर मोर्चा जा लगाया। विक्रम ने नरसिंहपुर की व्यवस्था कर काकूष का पीछा किया। अब काकूष की सेना के पीछे जाकर लोगों को भड़काने की आवश्यकता नहीं थी। विक्रम का विचार था कि भागती सेना को भागने का मार्ग मिलता रहे तो ठीक रहता है। जब विक्रम की सेना संगम पर पहुँची तो काकूष की सेना भागकर सिंधु नदी के तट पर जा पहुँची। जब विक्रम ने वहाँ भी उसका पीछा किया, तो काकूष का एक दूत हाथ में श्वेत पताका लिये हुए सन्धि की बातचीत करने के लिए आ पहुँचा। सैनिक उसको पकड़कर विक्रम के सम्मुख ले आए। दूत ने काकूष का एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र विक्रम को दिया। पत्र में लिखा था—"प्रिय वीर विक्रम! मैं आपकी शूर-वीरता और चतुराई का लोहा मानता हूँ। आप कैसे शूर सेनापति से पहले मैत्री न कर सकने का मुझको शोक है। वास्तव में मेरा भ्रम था कि कश्मीर में जहाँ एक सहस्र वर्ष से कोई युद्ध नहीं हुआ, योद्धा और कूटनीतिज्ञ नहीं रहे। इस भ्रम का निवारण हो गया है। अब मैं कश्मीर से मैत्री कर अपना गौरव मानूँगा। मेरे विचार बदल गए हैं।

"अतएव आप लिखें कि क्या मैं मैत्री पाने की आशा कर सकता हूँ। मेरा मन अब कश्मीर के शूर सैनिकों का एक बूँद रक्त भी बहाने को नहीं करता। आशा करता हूँ कि आप मानवता के नाते इस युद्ध को समाप्त करने के लिए बातचीत करने की स्वीकृति देंगे। उत्तराकांक्षी—काकूष।"

पत्र पाकर सेनानायकों की गोष्ठी बुलाई गई। दूत को एक दिन ठहरने के लिए कहा गया। भास्कर भी इस गोष्ठी में सम्मिलित था। सेनानायकों को यह विदित था कि घरों से निकले हुए दो-दो वर्ष हो चुके हैं और प्रायः सब सैनिक अपने बाल-बच्चों के पास जाने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। सब युद्ध के शीघ्र समाप्त किए जाने के पक्ष में थे। उनका यह भी विचार था कि सन्धि की चर्चा द्वारा युद्ध शीघ्र समाप्त होगा। भास्कर इससे विपरीत विचार रखता था। वह समझता था कि युद्ध तो युद्ध करने से ही समाप्त होगा। काकूष के विषय में उसके विचार अच्छे नहीं थे। वह पविधर से काकूष का पत्रव्यवहार देख चुका था और जानता था कि वह विश्वास के योग्य नहीं है। विक्रम यद्यपि भास्कर के विचार का था, परन्तु यह विचार कर कि ऐसा कोई भी अवसर, जिस पर बात शान्ति से सुलझ सके, छोड़ना नहीं चाहिए। इस कारण विक्रम का निर्णय यही हुआ कि चाहे बात सुलझने में कुछ देरी ही लग जाए, शान्ति का मार्ग ही अपनाना चाहिए। इस प्रकार सैकड़ों हत्याओं से बचा जा सकता है।

भास्कर का कहना था—"महाराज! यह काकूष बहुत धोखेबाज आदमी है। यह समय लाभ प्राप्त कर अपनी शक्ति बढ़ाने का यत्न करेगा।"

"हम इसकी देख-रेख रखेंगे। किंचित्मात्र भी सन्देह होने पर हम बिना सूचना के आक्रमण कर देंगे। इस वार्तालाप से एक लाभ यह होने वाला है कि यदि मैत्री से युद्ध बन्द होगा तो हमको इस सेना का पीछा करते हुए गान्धार तक नहीं जाना पड़ेगा। गान्धार-विजय करना इतना सुगम नहीं होगा। वहाँ की जनता हमारे पक्ष में नहीं होगी। गान्धारसमर के समय हमारी स्थिति वही होगी जो काकूष की ब्रह्मावर्त में थी। हमको शत्रु के देश में जाकर शत्रु से लड़ना पड़ेगा। फिर भी मैं समझता हूँ कि हमारी ही विजय होगी। परन्तु इसके लिए दस वर्ष लग जाएँगे।"

दस वर्ष की बात सुनकर सबका दिल दहल उठा। भास्कर ने पुनः कहा—"महाराज! गान्धार-विजय न सही, पर गान्धार-सेना को सिन्धु-पार धकेलने के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए तो प्रयत्न करना चाहिए।"

"सेनानायक भास्कर का कहना सर्वथा ठीक है। हमको यह सेना सिन्धु-पार धकेल देनी चाहिए। इसमें मेरा कहना यह है कि शान्तिमय वार्तालाप में देरी भी लग सकती है और असफलता भी, परन्तु यदि वार्तालाप सफल हो गया तो सहस्रों सैनिकों की जान बच सकेगी और उनको बचाने के लिए यत्न न करना तो भारी पाप हो जाएगा।" इस प्रकार वार्तालाप करने की योजना स्वीकार करते हुए विक्रम ने काकूष को लिखा—"मैत्री के लिए वार्तालाप करने में किसी भी बुद्धिमान् व्यक्ति को 'न' नहीं करनी चाहिए। मैं इस बातचीत का स्वागत करूँगा। हाँ, इसके लिए मैं चाहूँगा कि यह शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो सके और इसके लिए हमको अविलम्ब मिलना चाहिए।"

इस अर्थ दोनों सेनाएँ एक-दूसरे के बहुत समीप शिविर बनाकर रहने लगीं। इस प्रकार समीप-समीप रहने से और भेदियों को गान्धार-सेना के चारों ओर के समाचार लाने से विक्रम को पता चल गया कि गान्धार-सेना दस-पाँच हजार से अधिक नहीं रही। इस ज्ञान से बातचीत में अधिक सुभीता हो गया।

वार्तालाप में किन-किन विषयों पर बातचीत हो, केवल इतना तय करने में कई मास लग गए। सिद्धान्तात्मक बातों में ही बहुत समय व्यतीत होता रहा था। सबसे अधिक समय इस बात पर ही लग गया कि एक देश में सेना की वृद्धि करना युद्ध की तैयारी मानी जाए अथवा न मानी जाए। काकूष का कहना था—"कश्मीर में सेनावृद्धि ही गान्धारों के ब्रह्मावर्त पर आक्रमण करने का कारण है। यदि वहाँ सेनापरिवर्द्धन न होता तो इस आक्रमण की आवश्यकता न होती।"

विक्रम इस मीमांसा को समझ न सका। उसने बताया—"यह ठीक है कि सेना-परिवर्द्धन हुआ, परन्तु यह कैसे पता चला कि यह परिवर्द्धन गान्धारों के विरुद्ध है?"

काकूष का उत्तर था—"आपकी सेना में वृद्धि देखकर हमको भी उसमें वृद्धि करनी पड़ी। इस प्रकार हमारे मन में एक भय समा गया कि हमारा देश विनाश को प्राप्त होने वाला है और इस भय को सदा के लिए दूर करने के लिए ब्रह्मावर्त और कश्मीर दोनों को विध्वंस करने के लिए आक्रमण करना उचित हो गया। ब्रह्मावर्त का विध्वंस तो कर ही दिया था, परन्तु कश्मीर-सेनानायकों की कार्यपटुता के सामने पराजित होना पड़ा। इस कारण स्थाई शान्ति तब हो सकती है जब सब देशों में सेना रखनी बन्द कर दी जाए। अथवा कम-से-कम रखी जाए।"

विक्रम इस युक्ति से हँस पड़ा। उसने कहा—"सेना तो इतनी भय की वस्तु नहीं जितनी सेनापतियों की चतुराई और उन देशों के शासकों की मनोवृत्ति। सेना कश्मीर में बढ़ी और आक्रमण किया गान्धार देश ने। ब्रह्मावर्त में सेना बहुत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक थी और विजय हुई गान्धार की। डटकर युद्ध हुआ नहीं और भगदड़ मच गई गान्धार-सेना में। अतः युद्ध और विजय होती है दूषित मनोवृत्ति के कारण अथवा सेनानायकों की चतुराई के कारण। इस कारण सेना कम करने से अधिक उचित तो आक्रमण करने वाले देशों के शासकों को अथवा विजय प्राप्त करने वाली सेना के नायकों को पकड़कर सिन्धु नदी में डुबो देना होगा। इससे दूसरे देश निर्भय होकर रह सकेंगे।"

"योग्य और कुशल लोगों को युद्ध-कार्य में न लगाकर जनता के सेवा-कार्य में लगाया जाना चाहिए।"

"ठीक है। इसी प्रकार सेना को आक्रमण करने के कार्य में युक्त न कर सुरक्षा के कार्य में लगाया जा सकता है।"

"जब सेना नहीं होगी तो बुद्धिमान् लोग युद्ध के विषय में न सोच किसी अन्य विषय की बात सोचा करेंगे।"

"क्या यह अन्य विषय दूसरों को हानि पहुँचाने का नहीं हो सकता? युद्ध में तो लोग लड़ते हैं और उनके द्वारा पहुँचाई हानि प्रत्यक्ष हो जाती है, परन्तु कूटनीति से की गई हानि घातक होते हुए भी प्रत्यक्ष नहीं होती। सबसे बड़ी बात यह है कि कूटनीति के चलाने वाले स्वयं देवता बने रहते हैं और प्रजा उजड़ती, मरती, खपती है।"

"तो फिर इस युद्ध के भय का निवारण कैसे हो? इस भय के कारण ही एक दूसरे पर आक्रमण होते हैं।"

इस प्रकार वार्तालाप चलते-चलते महीनों व्यतीत हो गए। वसन्त ऋतु गई तो ग्रीष्म ऋतु आई और ग्रीष्म व्यतीत हुई तो वर्षा आ गई। वर्षा समाप्त हो पुनः शिशिर आ पहुँची। नदियों में बाढ़ आई और फिर जल उतर गए, परन्तु युक्तियाँ समाप्त नहीं हुईं। कश्मीर-सेना का धीरज टूट गया।

भास्कर की मोटी बुद्धि में यह सब वार्तालाप व्यर्थ प्रतीत हो रहा था। उसने एक दिन काकूष की सेना के एक नायक से, जिससे वह कुश्ती किया करता था, कहा—"भूरे नायक! सुनाओ कैसी चल रही है?"

भूरे ने अति उदास चित्त से कहा—"भाई, हम तो उकता गए हैं। घर से निकले हुए तीन वर्ष हो गए हैं। पत्नी का रूप-रंग भी भूल गया है। और वह भी मेरी अनुपस्थिति में दो बच्चों की माँ बन गई है।"

भास्कर को मिलिन्द की याद आ गई। वह गम्भीर हो चुप रहा। शिविर में आकर वह विचार करने लगा कि किस प्रकार युद्ध बन्द कराया जाए। वह यह तो चाहता था कि गान्धार-सेना सिन्धु पार कर दी जाए, परन्तु वह शान्तिमय वार्तालाप को इसका उपाय नहीं समझता था। दूसरी ओर उसको मिलिन्द और नारद की समस्या दुखी कर रही थी। नारद संगीताचार्य होने के कारण रसिक प्रकृति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का माना जाता था। साथ ही उसका मिलिन्द से मेल-जोल उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा रहा था। अब भूरे की बात, कि उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी के दो बच्चे हो गए हैं, ने उसको पागल बना दिया।

रात-भर वह विचार करता रहा और अन्त में एक योजना उसके मन को सूझी। अगले दिन उसने भूरे से मिलकर दोनों सेनाओं के मल्लों के दंगल करवाने आरम्भ कर दिए। एक-दो दंगल जब हो गए तो अन्त में यह निश्चय हुआ कि भास्कर का भूरे से मल्लयुद्ध हो। भास्कर ने अपनी सेना में यह विख्यात कर दिया कि गान्धार कुछ बेईमानी करने वाले प्रतीत होते हैं। अन्यथा भास्कर से कौन जीतने की आशा कर सकता है। इस पर कश्मीर-सेना के सैनिकों को क्रोध चढ़ आया और कानों-कान यह समाचार फैल गया कि उस दिन दंगल में कुछ दंगा होने वाला है। इससे सहस्रों की संख्या में कश्मीर-सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ मैदान में जा पहुँचे। भास्कर विख्यात पहलवान था। इस कारण गान्धार-सेना के लोग भी भारी संख्या में यह कुश्ती देखने को आए थे।

भास्कर ने अपनी योजना का किसी को रहस्य नहीं बताया। वह स्वयमेव उसको सफल करने की चिन्ता में लगा हुआ था। उसने भूरे से कुश्ती करते समय झगड़ा करने का निश्चय कर लिया था। इस कारण वह घूम-घूमकर अपने साथियों को कह रहा था कि उसको विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि गान्धार आज कोई शरारत करने वाले हैं। उसके साथी उसकी बात सुनकर कहते थे, यदि इन कायरों ने कुछ भी अनियमित काम किया तो उनको धक्के मार-मारकर सिन्धु पार कर देंगे। यही तो भास्कर चाहता था। उस दिन ऐसा अवसर उपस्थित करना चाहता था, जिससे दोनों सेनाओं में झगड़ा हो जाए। एक बार लड़ाई आरम्भ हुई तो उसको अन्तिम परिणाम तक ले जाना उसका काम था।

दंगल का समय आया। भास्कर का एक नायक मित्र मध्यस्थ था। उसको भास्कर ने स्वपक्ष में कर लिया था। वह भी भास्कर के विचार का ही था। इससे उत्साहित हो भास्कर कुश्ती के लिए मैदान में उतर आया। उधर भूरे भी आया और कुश्ती आरम्भ हो गई। भास्कर ने पहले ही क्षण में उसको उठाकर भूमि पर पटककर लिटा दिया। मध्यस्थ ने भूरे को हारा गया घोषित किया। वास्तव में भास्कर ने उसको पूरी पीठ के बल पर नहीं लिटाया था। इस कारण भूरे ने और गान्धारों ने कहा कि भूरे अभी चित्त नहीं हुआ। मध्यस्थ ने अपने निर्णय को ठीक बताने का हठ किया, परन्तु जब गान्धारों ने बहुत हल्ला किया तो भास्कर पुनः कुश्ती करने के लिए तैयार हो गया।

दूसरी बार कुश्ती हुई। भास्कर की चतुराई इस बात में थी कि वह भूरे को ऐसे ढंग से चित्त करता था कि गान्धारों को संदेह करने का अवसर मिल जाता था। इस बार फिर मध्यस्थ ने निर्णय भास्कर के पक्ष में दिया। गान्धारों ने पुनः हल्ला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। इस बार भी भास्कर मान गया, परन्तु तीसरी बार पुनः जब वही परिस्थिति उत्पन्न हो गई तो भास्कर ने यह कह दिया कि वह जीत गया है। मध्यस्थ ने भास्कर को विजयी घोषित कर दिया। इस पर गान्धारों ने बहुत शोर मचाया। एक गान्धार-सैनिक मैदान में निकल आया और मध्यस्थ को गाली देने लगा। यह कश्मीर-सैनिकों को असह्य हो गया और उस गान्धार-सैनिक को पकड़कर पीटने लगे। इससे तो चारों ओर गाली-गलौज और मुक्का-मुक्की होने लगी। भास्कर इतने से सन्तुष्ट नहीं था। उसने भागकर अपना खड्ग निकाल लिया। अब दोनों ओर से तलवारें निकल आईं और घमासान युद्ध होने लगा। गान्धारों की संख्या कम थी। इस कारण वे भाग उठे। कश्मीर-सैनिकों ने उनका पीछा किया। भास्कर सबसे आगे था। उसने कुछ सैनिक अपने शिविर में भेज दिए जिससे और सैनिक आ जाएँ और जो सैनिक उसके साथ गान्धारों का पीछा कर रहे थे उनसे कहा कि आज हमने इन बेईमानों को सिन्धु पार भगा देना है। शिविर से और सहायता आ पहुँची तो इन्होंने गान्धार-शिविर पर धावा बोल दिया। शेष काम आधे प्रहर का था। जिन गान्धारों को नौकाएँ मिल सकीं, वे नौकाओं में, अन्य वैसे ही तैरकर नदी पार करने लगे। शिविर को आग लगा दी गई और उस दिन सायं होने से पूर्व पूर्ण गान्धार-सेना या तो नदी पार हो गई या नदी में डूबकर मर गई।

दंगल और इस सब झगड़े के समय काकूष और विक्रम कुछ अन्य दोनों ओर के सेनानायकों के साथ एक गम्भीर राजनीतिक विषय पर चर्चा कर रहे थे। विक्रम मन में तो यह समझ चुका था कि उनको वार्तालाप के सफल होने की कोई आशा नहीं। फिर भी वह इसको बन्द करने का कोई उपाय नहीं पा रहा था। जब बात-चीत बहुत गर्मागर्म चल रही थी, एक प्रतिहार सूचना लेकर आया कि दोनों सेनाओं में युद्ध चल पड़ा है। इस समाचार को दोनों सेनापतियों ने सत्य नहीं माना। फिर भी जब फिर सूचना आई कि गान्धार-शिविर को आग लगा दी गई है तो विवश गोष्ठी के सब लोग उठकर बाहर आए और अपने-अपने अश्वों पर सवार हो गान्धार-शिविर की ओर चल पड़े। इस समय तक सूर्यास्त हो चुका था और दूर शिविर के जलने से उठ रही लपटों से आकाश प्रकाशित हो रहा था। काकूष समझ गया कि जान-बूझकर अथवा अनजाने में उसकी पूर्ण पराजय करा दी गई है। इस बात का विश्वास हो जाने पर उसने घोड़े को खड़ा कर लिया और विक्रम की ओर देखकर बोला—"मैं नहीं जानता कि यह कैसे हुआ है। आपकी आज्ञा से हुआ है अथवा किसी अन्य की शरारत से। परन्तु मैं देखता हूँ कि मेरी पूर्ण सेना का विनाश हो चुका है। अब हम क्या मित्र के रूप में पृथक् हो रहे हैं अथवा शत्रु रूप में? बताइए आप मित्रता चाहते हैं या शत्रुता?"

"मैंने एक वर्ष आपसे मैत्री स्थापित करने के लिए व्यय किया है और मैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौगन्धपूर्वक कहता हूँ कि यह कैसे हुआ है, मैं नहीं जानता। इस सब कुछ होने पर भी मैं चाहूँगा कि हम परस्पर मित्र रह सकें। गान्धार और कश्मीर की मैत्री के लिए हम यत्न करते रहें और इस प्रकार इस देश के इस भाग में हम शान्ति रख सकें।"

काकूष भलीभाँति जानता था कि वह वहाँ झगड़ा कर जीवित बचकर नहीं जा सकता। इस कारण चुपचाप हाथ जोड़ प्रणाम कर सिन्धु नदी में घोड़ा डाल तैरता हुआ पार हो गया।

इस प्रकार काकूष को सिन्धु नदी के पार कर विक्रम को दुःख नहीं हुआ। जिस समस्या का उसको कोई सुझाव प्रतीत नहीं होता था वह एक चामत्कारिक ढंग और अति सुगमता से सम्पन्न हो गई। बाद में जब उसको इसमें भी भास्कर का हाथ प्रतीत हुआ तो उसने भास्कर को बुलाकर पूर्ण वृत्तान्त सुना और अति प्रसन्न हो उसको भारी पुरस्कार दिया।

अब विक्रम के लिए केवल यह समस्या रह गई कि पूर्ण सिन्धु नदी के तट पर दुर्ग बनवा दिए जाएँ जिससे ब्रह्मावर्त सुरक्षित रह सके। इसके लिए पविधर को बुलवाया गया। उसके सम्मुख दुर्गों की पूर्ण योजना वर्णन कर दी गई।

इस समय तक ब्रह्मावर्त में गणराज्य की व्यवस्था कर दी गई थी। चन्द्रसेन के पुत्र बन्धुक के विषय में यह निश्चय हो चुका था कि जब तक वह शिक्षा-दीक्षा से अलंकृत हो तैयार नहीं होता, तब तक उसको राजा मानना व्यर्थ है। इस कारण उसको इन्द्रप्रस्थ भेज दिया गया जिससे वह अपने नाना के यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त कर सके। एक राज्य-परिषद् बना दी गई और पविधर उस परिषद् में गणपति नियुक्त हुआ। इस प्रकार ब्रह्मावर्त का राज्य चलने लगा। ब्रह्मावर्त की सेना का नवीन ढंग पर संगठन किया गया। वहाँ की कर-व्यवस्था और राज्य की व्यवस्था नवीन ढंग पर चला दी गई।

इस सब समय में कश्मीर-सेनापति और काकूष सन्धि की बातचीत करते रहते थे। सन्धि-वार्तालाप असफल रहा और सफलता मिली बल-प्रयोग से। दुर्गों की योजना और उसके लिए स्थानों का निश्चय करने में भी छः मास लग गए। इस समय तक सब कश्मीर सेना वापस कर दी गई थी। भास्कर भी चक्रधरपुर को लौट गया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम परिच्छेद

: १ :

करण इच्छा न रहते भी शची के पास यह प्रस्ताव करने गया कि वह नहुष से विवाह कर ले। सीमा पार कर वह उस गाँव में पहुँचा, जहाँ शची रहती थी। गाँव की रक्षा के लिए सेना की एक प्रबल टुकड़ी नियुक्त थी। शची से मिलने के लिए करण को यह कहना पड़ा कि देवलोक से नहुष का दूत आया है और श्रीमती इन्द्राणी से भेंट करना चाहता है। करण की सूचना शची के पास पहुँचा दी गई। उस दिन नारद भी उससे मिलने आया हुआ था और उससे देवलोक की अवस्था का वर्णन कर रहा था। उसे नारद की उपस्थिति में करण के आने की सूचना मिली। इन्द्राणी करण का नाम सुन नारद का मुख देखने लगी। नारद उसके देखने का अभिप्राय समझकर बोला—"यह नहुष का महामन्त्री है। सुनने में आया है कि भला पुरुष है। फिर भी किसी कारणवश नहुष का सेवक है। इसने एक देवकन्या से विवाह कर लिया है। और कहा जाता है कि वह बहुत सुखी है।"

इस प्रशंसात्मक परिचय को सुन उसने करण को बुलाने की आज्ञा दे दी। सैनिक करण को लेकर आए तो घर के आँगन में उसे बैठाया गया। पश्चात् शची नारद के साथ वहाँ पहुँची। करण ने उठकर शची को आदर से प्रणाम किया और खड़ा रहा। शची बैठ गई और पहले उसने नारद को एक चौकी पर बैठने को कहा, पश्चात् करण को बैठने का आदेश दिया।

जब करण बैठ गया तो शची ने उसको अपने आने का आशय वर्णन करने को कहा। करण उसके सौन्दर्य से प्रभावित हो मन्त्रमुग्ध की भाँति उसका मुख देख रहा था। अब इस प्रकार सम्बोधन किए जाने पर सचेत होकर कहने लगा—"मैं देवलोक का महामात्य हूँ। महाराज नहुष की आज्ञा से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। उन्होंने एक सन्देश निवेदन किया है।"

"तो कहो!" शची ने बात को शीघ्र समाप्त करने के लिए कहा।

"श्रीमती जी!" करण ने आँखें झुकाकर कहा—"मुझको आज्ञा यह है कि महाराज का सन्देश केवल आपके ही कर्णगोचर करूँ।" इतना कहकर नारद की ओर देखने लगा।

"ओह! मैं समझी थी कि आप इनको जानते हैं। ये महर्षि नारद हैं। इनसे हमारी कोई बात छिपी नहीं है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण ने झुककर देवर्षि को नमस्कार किया और कहा—"मैं क्षमा चाहता हूँ महारानी ! मेरा नम्र निवेदन है कि मेरे स्वामी ने मुझको आपके लिए ही और केवल आपके लिए ही सन्देश दिया है। बाद में आप जिसको चाहें बता सकती हैं, परन्तु मैं तो केवल आपको ही निवेदन कर सकता हूँ।"

नारद ने कहा—"महारानीजी ! मैं कुछ दूर ठहरता हूँ, जिससे यह भद्रपुरुष अपना कार्य शुद्ध आत्मा से कर सकें।" नारद उठकर दूर चला गया। वह उसी आँगन में दूर, जहाँ से वह उनकी बातों को न सुन सके, परन्तु उसको देख सके, जा खड़ा हुआ और उनकी बात समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। उसके चले जाने के पश्चात् करण ने अपनी बात कही—"माननीय देवी जी ! कुछ मास हुए मेरे स्वामी ने आपके दर्शन किए थे। यूँ तो उन्होंने आपको तब भी देखा था, जब वे आपके भवन में सेवा-कार्य करते थे। परन्तु इतने समीप से दर्शन, जैसे अब हुए थे, पहले नहीं हुए थे।"

"जब वह सेवक था, तब तो हमने उसकी ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया था। परन्तु अबकी बात तो हमको स्मरण नहीं कि उससे कैसे भेंट हुई है।"

"इसी भवन में। शायद इसी स्थान पर। कुछ मास हुए एक जौहरी रत्न बेचने आया था और आपने दो हीरे पसन्द किए थे।"

"तो वह जौहरी तुम्हारा स्वामी नहुष था? वह धूर्त और चतुर बहुरूपिया है। पता चल जाता तो पकड़वा लिया जाता। यहाँ विक्रम जैसा दयालु उसको छुड़ा न सकता।"

"इससे विक्रम की मान-मर्यादा कम नहीं हुई देवी ! संसार भर में उसकी चर्चा है।"

"छोड़ो इस बात को। क्या चाहता है वह?"

"उनका कहना है कि आप जैसी सुन्दर कोमलांगी देवी को अपना जीवन इस निर्जन शीतप्रधान और कष्टप्रद स्थान पर रहकर व्यर्थ नहीं गँवा देना चाहिए। देवलोक की महारानी दो हीरों का मूल्य न दे सके, यह विस्मय करने की बात है। यहाँ एक-दो दासियों के साथ कैदियों की भाँति रहना आपकी मान-मर्यादा के अनुकूल नहीं है। इसलिए श्रीमान् नहुष आपके लिए एक अति सुन्दर सुख-सुविधा सम्पन्न भवन देवलोक में भेंट करना चाहते हैं। उनकी विनम्र प्रार्थना है कि यदि श्रीमती जी वहाँ आना स्वीकार करें तो उनको असीम प्रसन्नता होगी। वे अपने पूर्ण धन, सम्पदा और देवलोक के साधनों के साथ आपकी सेवा के लिए तत्पर रहेंगे। वे आपके देवलोक की महारानी होने की घोषणा करवा देंगे और पूर्ण राज्य आपकी आज्ञा का पालन करेगा।"

शची हँस पड़ी और बोली—"बहुत सुन्दर शब्दों में बात कही गई है। परन्तु क्या मैं जान सकती हूँ कि वहाँ पर कोई राजा भी होगा, या नहीं?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वहाँ पर एक राजा श्रीमान् नहुष पहले ही विद्यमान् हैं।"

"और यह महारानी, जिसे तुम वहाँ ले जाओगे, उस महाराज की ही रानी होगी ?"

"हाँ महारानी जी, आप पूर्ण देवलोक की महारानी होंगी।"

"तब तो तुम्हारा नहुष महाराज नहीं रह सकेगा। एक खोल में दो तलवारें कैसे रह सकेंगी ?"

"यह एक खोल में दो तलवारों की-सी बात नहीं होगी। यह तो दो का एक में समन्वय कहा जाएगा। श्रीमती जी वहाँ पहले भी महारानी थीं। मेरे स्वामी की यह अभिलाषा है कि श्रीमती अपनी खोई अवस्था पुनः प्राप्त करें।"

"बिना अपने पति को प्राप्त किए ?"

"यदि आप क्षमा करें तो मैं अपने स्वामी के विचारों की व्याख्या कर दूँ। वे आपको अधिक अच्छा पति बनने का आश्वासन देते हैं।"

"यह हो नहीं सकता। हमारे यहाँ नियम है कि जीवन-भर एक ही पति रहता है। और यदि हमारे बस में हो तो सब जीवनों में भी एक ही पति रखें।"

"अन्य जीवनों की तो मैं नहीं जानता किन्तु इस जीवन में भी तो भविष्य का कुछ भी विश्वास नहीं। एक पति ने आपको इस निर्जन नीरस स्थान पर ला पटका है और दूसरा आपको शक्ति और सुख-सम्पन्न करना चाहता है। क्या ही आनन्द की बात होगी, जब दस लाख सेना आपकी ध्वजा के नीचे संसार विजय को प्रयाण करेगी। वह कितना भव्य दृश्य होगा, जब आप केवल देवलोक की ही नहीं प्रत्युत संसार भर की महारानी स्वीकार की जाएँगी। मनुष्यमात्र आपकी वन्दना करेगा। लंका-विजय, बाली-दमन, परशुराम-पराजय और वे सब कार्य जिनकी ख्याति संसार में है, इसके सम्मुख फीके पड़ जाएँगे।

"शक्ति और सम्पत्ति का सम्पूर्ण क्षेत्र, सुख और समृद्धि की पराकाष्ठा, मान-मर्यादा का सर्वोच्च स्तर आपके लिए खुल जाएगा। केवल एक बार स्वीकृति की दृष्टि और प्रसन्नता की मुस्कराहट दीजिए और यह सब स्वचालित द्वार की भाँति खुल जाएँगे।

"श्रीमती जी ! मैं इससे अधिक स्पष्ट रूप में वर्णन नहीं कर सकता। अब आप अपने मुखारविन्द से एक स्वीकृति का शब्द कहिए, जो मैं अपने स्वामी तक पहुँचा दूँ। विश्वास रखिए कि आप इस प्रकार दो महान् जातियों का संयोग कर पुण्य की भागिनी बनेंगी।"

करण के कहने के इस ढंग को शची ने अनुभव किया और उसने इस योग्य व्यक्ति को अपनी योग्यता को और प्रकट करने का अवसर देने के लिए पूछा—"क्या श्री करण विवाहित हैं ?"

"हाँ श्रीमती जी !"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या आप अपनी स्त्री से प्रेम करते हैं?"

"बहुत।"

"हम आशा करते हैं कि वह भी अपने पति से प्रेम करती होगी?"

"जहाँ तक मुझको ज्ञान है वह मुझसे बहुत प्रेम करती है। शायद अपने जीवन से भी अधिक।"

"क्या वह आपके देश की लड़की है?"

"नहीं! मुझको वह अमरावती में मिल गई थी। उससे मेरे दो बच्चे भी हैं।"

"ठीक! आप बुद्धिमान् व्यक्ति प्रतीत होते हैं। क्या मैं आपसे प्रश्न पूछ सकती हूँ कि आप पसन्द करेंगे कि विपत्ति में वह आपको छोड़ जाए?"

करण निरुत्तर हो गया। शची उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। करण ने बहुत हिचकिचाहट के पश्चात् कहा—"श्रीमती जी! मेरी स्त्री और आपकी बात में बहुत अन्तर है। वह एक निर्धन सैनिक की पत्नी है और आप स्वभाव से किसी देश की रानी बनने योग्य हैं। एक देश की रानी के लिए केवल अपनी इच्छाओं का ही ध्यान रखना पर्याप्त नहीं। उसको उन असंख्य प्रजागणों के हितों का भी ध्यान रखना होता है जिनको प्रकृति ने उनके अधीन रखा है। जातियों के नेताओं का स्वार्थ प्रजाहित में ही निहित है।"

"यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं। मैं पूछती हूँ, मानो तुम राजा हो, जिस पर कोई विपत्ति आन पड़ी है। क्या तुम यह पसन्द करोगे कि तुम्हारी पत्नी तुमको छोड़कर उसके पास चली जाए, जिसने तुम्हारे राज्य पर अधिकार कर लिया हो? अपनी अन्तरात्मा को टटोलकर बताओ कि तुम क्या चाहोगे?"

करण अनुभव कर रहा था कि वह उसको कुछ ऐसी बात करने को कह रहा है, जो वह स्वयं अपनी स्त्री को करने को नहीं कह सकता। उसको नहुष की ओर से यह निवेदन करते हुए लज्जा लगने लगी थी। अतएव वह चुप था।

शची ने फिर कहा—"पूर्व इसके कि तुम इस विषय में कुछ और कहो, एक बात मैं पूछना चाहती हूँ। तुम अपनी स्त्री से यदि पूछो कि वह तुम्हारी मुसीबत के समय तुमको छोड़ना चाहेगी अथवा नहीं, तो उसका क्या उत्तर होगा?"

करण तो यह पहले ही पूछ चुका था। सुमन का उत्तर वह भूला नहीं था। उसने यह कहा था कि पति-पत्नी का सम्बन्ध सांसारिक नहीं है। यह आत्मा-आत्मा का संयोग होता है, जो टूट नहीं सकता। इस बात के स्मरण होने पर उसकी आत्मा में वहाँ आने के उद्देश्य पर ग्लानि उत्पन्न हो गई थी। इस कारण एक भी शब्द और बोले बिना वह उठ खड़ा हुआ। उसने झुककर नमस्कार की और जाने के लिए स्वीकृति माँगी।

शची उसको अभी कुछ और कहना चाहती थी। इस कारण उसने कहा—"ठहरो! तुमको मैंने अभी तुम्हारे स्वामी के लिए उसके निवेदन का उत्तर नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। मेरा विचार है कि जाने से पूर्व उसके प्रस्ताव का उत्तर लेते जाएँ। उसको कहना कि उसके बिना भी मैं देवलोक की महारानी हूँ। मैं शीघ्र ही अपना स्थान लेने के लिए आने वाली हूँ। मेरे आने से पूर्व उसे वह स्थान, जिसका वह अधिकारी नहीं है और जहाँ अधर्म का राज्य चल रहा है, छोड़ देना चाहिए अन्यथा उसको उस कष्ट और दुःख के लिए, जिसका वह कारण है, दण्ड मिले बिना नहीं रहेगा।

"अब तुम रात के लिए यहाँ मन्दिर में ठहर सकते हो। रात होने वाली है और मार्ग ठीक नहीं है।"

इतना कह वह उठ खड़ी हुई और घर के भीतर चली गई। करणदेव मंत्र-मुग्ध की भाँति खड़ा का खड़ा रह गया।

करण रात काटने के लिए गाँव के मन्दिर में ठहर गया। उसके वहाँ पहुँचने के कुछ ही देर बाद नारद आया और मन्दिर के अध्यक्ष से कहकर करण के लिए भोजन-व्यवस्था कर करण से मिलने को उसके आगार में जा पहुँचा। करण उसको देख स्वागत करने को उठ खड़ा हुआ। नारद ने उसको बैठाकर कहा—"आपको यदि किसी बात की आवश्यकता हो अथवा कोई कष्ट हो तो अध्यक्ष से कह दीजिएगा। उसको महारानी जी की आज्ञा मिल चुकी है।"

"बहुत धन्यवाद है उनका। आपका परिचय प्राप्त कर भी भारी प्रसन्नता हुई है। आपके विषय में यह विख्यात है कि देवताओं की राजनीति के आप संचालक हैं।"

नारद मुस्कराया और बोला—"मैं नहीं जानता कि आपने यह बात प्रशंसा के भाव में कही है, अथवा निन्दा के भाव में। फिर भी इतना स्वीकार करने में मैं संकोच नहीं करता कि मेरे विषय में सूचना देने वाला कोई जानकार व्यक्ति है। उसने मुझको ठीक समझा है। मैं पृथ्वी के भ्रमण में था, जब देवलोक का राज्य पलटा। अन्यथा इस विपत्ति को रोकने का कुछ तो उपाय किया जा सकता था। मैं अब अवस्था सुधारने का यत्न कर रहा हूँ।"

"आपको शायद यह पता नहीं कि मैंने एक ऐसी लड़की से विवाह कर लिया है जो देवलोक की रहने वाली है और आपके विषय में उसने ही मुझको बताया है। वह वास्तव में ही बहुत बुद्धिमती है और मुझे बहुत प्यारी लगती है।"

"महारानी जी ने मुझको आपके विषय में बताया है। उनका कहना है कि आप अति योग्य, बुद्धिमान् और विद्वान् व्यक्ति हैं। वे आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं। उनका कहना है कि यह दुर्भाग्य की बात है कि आप जैसा व्यक्ति एक ठग और धूर्त बदमाश की सेवा कर रहा है।"

"तो क्या नहुष इन्द्र से अधिक ठग और धूर्त बदमाश है? इन्द्र का अहल्या से किया गया व्यवहार क्या भूला जा सकता है?"

नारद को करण के ज्ञान पर अति विस्मय हुआ। फिर भी वह समझता था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि दोनों बातों में समता नहीं है। उसने कहा—"बात ठीक है, परन्तु दोनों में कोई तुलना नहीं। एक तो परिस्थिति के वश पतित हुआ था और वह अपने किए पर लज्जित था। उसने इसका प्रायश्चित भी किया था। दूसरी ओर आपके महाराज अपने पतन को विजय और प्रशंसा की बात मानते हैं। उनको इस पतन में ही जीवन का सार प्रतीत होता है।"

"देवर्षि ! वे मेरे स्वामी हैं।"

"यही तो दुःख की बात है। आपने उनकी सेवा स्वीकार की हुई है, परन्तु न तो महारानी जी ने और न ही मैंने उनकी सेवा का वचन दिया हुआ है। यही कारण है कि हम अपनी सम्मति प्रकट करने में कठिनाई नहीं पाते। मैं आपको अमरावती में मिलूँगा।"

इतना कह नारद उससे विदा माँगने लगा। वह उठ खड़ा हुआ परन्तु एकाएक घूमकर करण की आँखों में देखकर बोला—"कभी भविष्य में नहुष की सेवा में दुःख अनुभव हो तो मेरी राय है कि आप महारानी की सेवा में आ सकते हैं। आप उनको अपने वर्तमान स्वामी से अधिक सहानुभूतिपूर्ण पाएँगे।"

: २ :

करण जब अमरावती वापस पहुँचा तो उसकी मानसिक अवस्था में पूर्ण परिवर्तन हो चुका था। उसने अतुलनीय सौन्दर्यराशि के दर्शन किए थे। वह एक अति शिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत देवी से बातचीत करके आया था और वह उसकी युक्ति के सम्मुख परास्त होकर आया था। नहुष का दूत बनकर जाने पर और एक पतिव्रता को पतिव्रत धर्म से डिगाने के प्रयत्न के कारण वह अपने को पतित अनुभव करने लगा था। वह समझने लगा था कि उसमें भी आत्मा है और वह धन-दौलत और सुख-सुविधा के लिए उसे बेच रहा है। इस कारण उसके मन में प्रश्न उत्पन्न हो रहा था कि क्या वह एक मूर्ख-गँवार की सेवा ही करता जाएगा, अथवा इसका कभी अन्त भी होगा।

वह नहुष की सेना के साथ देवलोक इस कारण आया था कि तनिक संसार को देखने का अवसर प्राप्त करे। वह गाँव से बाहर निकलना चाहता था। उसकी इच्छा पूर्ण हो गई और अब नहुष का साथी कहाने में वह अपने आपको एक नीच कार्य में प्रवृत्त मानता था। फिर इन्द्राणी की ओर से उसको अपनी सेवा में लेने का प्रस्ताव तो उसके मन में उथल-पुथल मचा रहा था।

अमरावती में पहुँच वह पहले अपने घर गया। सुमन का व्यवहार अति प्रेममय था। उसने उपालम्भ नहीं दिया और सदा की भाँति आज भी उसकी सेवा के लिए उपस्थित थी। करण जानता था कि वह उसके दूतकार्य की सफलता अथवा असफलता के विषय में जानने के लिए अति उत्सुक होगी, परन्तु उसने कुछ नहीं पूछा और उसकी सेवा-सुश्रूषा में लगी रही। उसने करण के स्वास्थ्य और मानसिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था के विषय में तो पूछा, परन्तु कार्य के विषय में संकेत भी नहीं किया।

करण आधे दिन तक उसके पास रहा और अनेक विषयों पर बातचीत चलती रही। बच्चों ने पिता की अनुपस्थिति में घटी अनेक बातें बताईं। सुमन ने भी बच्चों की बहुत-सी बातें बताईं। अन्त में करण महाराज के पास जाने के लिए तैयार हो गया। इस समय उसको स्मरण आया कि सुमन ने शची के विषय में एक शब्द भी नहीं पूछा। इससे उसको विस्मय हुआ। उसने जाने से पूर्व अपनी पत्नी से पूछा—"क्या तुम मेरे कार्य के परिणाम को जानने के लिए उत्सुक नहीं हो?"

"उसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। कारण यह कि उसका एक ही परिणाम हो सकता था और वह है आपकी असफलता।"

करण हँस पड़ा। उसने सुमन को अति प्रेम से कटाक्ष करते हुए कहा—"तुम्हारा अनुमान ठीक है। मैं महाराज के वहाँ से लौटकर सब बताऊँगा।"

करण जब नहुष के सम्मुख पहुँचा तो वह सुरापान से अर्ध-चेतनावस्था में था। वह करण को देख प्रसन्नता से उठा और करण से गले मिलने लगा। पश्चात् आदर से उसको बैठाकर कहने लगा—"बताओ, कब आएगी वह?"

करण नहुष की बचपन की-सी बातें सुनकर मन-ही-मन ग्लानि अनुभव कर रहा था। फिर भी वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण असफलता का ज्ञान कराने में देरी करना नहीं चाहता था। इस कारण उसने एकदम कह दिया—"महाराज! मैं अपने कार्य में सर्वथा असफल रहा हूँ। वह यहाँ आना चाहती है, परन्तु ऐसे नहीं। वह चाहती है कि यहाँ विजेता के रूप में आए और आपको दंड दे।"

"मुझको वह दंड देना चाहती है? उसने कहा है यह? तुमने उसकी जिह्वा नहीं खींच ली थी? तुम कैसे मेरे सेवक हो?"

करण समझ गया कि वह आज मात्रा से अधिक पिये हुए है। इस कारण उसने कह दिया--"महाराज! मैं आज बहुत थका हुआ हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो मैं कल उपस्थित होकर पूर्ण वार्तालाप निवेदन करूँ?"

"अच्छी बात है। कल प्रातःकाल आना। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे ऊपर भी उस औरत का सम्मोहन मंत्र चल गया है। इसी कारण तुम उसके मुख से मेरी निन्दा सुनकर चुपचाप लौट आए हो। मैं जानता हूँ कि तुम भी हाड़-चाम के बने हुए हो। परन्तु···परन्तु···अच्छी बात। कल बातें करेंगे। अब जाओ।"

करण ने बाहर आ सुख का साँस लिया। जब वह इतनी जल्दी लौट आया तो सुमन को अचम्भा हुआ और उसने पूछा—"क्या बात है? महाराज नहीं मिले क्या?"

"मिले थे, परन्तु कुछ मद्य पिये हुए थे। इस कारण बात नहीं हो सकी।"

"आपके अमरावती से अनुपस्थिति-काल में यहाँ बहुत गड़बड़ हुई है।"

"क्या?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देवताओं और गान्धारों में झगड़ा हुआ है। देवताओं में बदला लेने की भावना जाग उठी है। एक स्त्री कहीं देहात से अमरावती आ रही थी। मार्ग में सेनापति कनकदेव ने उसके अपहरण का यत्न किया तो उसके साथ आ रहे संरक्षक ने उसकी बाँह काट डाली। इस अपराध में किसी एक देवता और उसकी धर्मपत्नी को मृत्यु-दंड दिया गया। इसके प्रतिकार में दो गान्धारों की हत्या कर दी गई। महाराज ने देवताओं की भारी संख्या में हत्या करने की आज्ञा दे दी। देवताओं ने इसका भी प्रतिकार लिया। महाराज ने महिला-मन्दिर को, जो देवता-स्त्रियों की रक्षा के लिए खोला गया था, आग लगवा दी। देवताओं ने सेनाशिविर को आग लगा दी।

"अब महाराज डर गए हैं और देवताओं को शासनकार्य में और सेना में स्थान देने लगे हैं।"

करण इस वर्णन से गम्भीर विचार में डूब गया। उसने भी इन्द्राणी से भेंट का वह पूर्ण विवरण बताया। अन्त में नारद का प्रस्ताव कि इन्द्राणी की सेवा की जा सकती है, बताया। सुमन का कहना था—"मैं समझती हूँ कि देवलोक में गान्धारों का अन्तकाल आ गया है। अब यहाँ से चल देना चाहिए।"

"कहाँ चलूँ?"

"पहले अपने देश में चलिए। वहाँ आपकी माताजी के दर्शन होंगे। उसके बाद विचार कर लेंगे।"

करण ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु वह इस बात के लिए मन को तैयार करता रहा कि देवलोक में रहना उचित नहीं।

करण ने नहुष के मन में भी अपने प्रति द्वेषभाव उत्पन्न हुआ देखा था। नहुष ने कहा था—'उस औरत का सम्मोहन मंत्र तुम्हारे पर भी चल गया है।'

अगले दिन वह प्रातःकाल नहुष के भवन में पहुँचा। नहुष इस समय सर्वथा सचेत था। अतएव करण को आदर से बैठाकर उसने पूर्ण वृत्तान्त सुना और पश्चात् कहा—"तुम्हारी अनुपस्थिति में यहाँ देवताओं और गान्धारों में भारी झगड़ा हो गया था। उसमें जहाँ गान्धारों ने उच्छृंखलता की थी, वहाँ देवताओं ने भी राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया है। उसका मैंने एक उपाय यह सोचा है कि जब देवता अपराध करें तो गान्धार-सेना द्वारा उनको दण्ड दिलवाऊँ और जब गान्धार गड़बड़ी करें तो देवताओं की सेना से दण्ड दिलवाऊँ। अब देखता हूँ कि इस उपाय से शान्ति रहने लगी है।

"अब तुम आ गए हो। तुम राज्यप्रबन्ध देखो और उसमें जो भी कुप्रबन्ध करे उसको निकाल बाहर करो। रही शची की समस्या, मैंने स्वयं उसका अपहरण करने का निश्चय किया है। मैंने देखा है कि तुम इस समस्या को सुलझा नहीं सकते। जैसे देवलोक के राज्य को मैंने बिना एक बूंद रक्त बहाए ले लिया था वैसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही यह कार्य भी करूँगा।"

करण ने सिर से विपत्ति टली समझ सुख की साँस ली। इस समय उसने अपने मन में उठ रही बात कह दी। उसने कहा—"महाराज! मेरी माता का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। इस कारण छः मास का अवकाश चाहता हूँ। फिर माता को, यदि वह चाहेगी तो साथ लेता आऊँगा।"

नहुष भी यह चाहता था कि शची के अपहरण-काल में वह यहाँ न रहे। उसके मन में यह धारणा बैठ गई थी कि जैसी चतुराई उसने देवलोक का राज्य लेने के समय की थी वैसी बात करण जैसे लोगों की उपस्थिति में नहीं चल सकेगी। इस कारण उसने कह दिया—"हाँ, छः मास का अवकाश दे सकता हूँ, परन्तु तुम्हारे वापस आने का विश्वास होना चाहिए।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आऊँगा।"

"तुम्हारी सुमन यहाँ रहेगी न?"

"महाराज! वह भी मेरे साथ जाना चाहती है।"

"तो तुम लौटकर आने का विचार नहीं रखते?"

"ऐसा नहीं है महाराज!"

"देखो करण! तुम्हारा लड़का यहाँ बन्धक के रूप में रहेगा। यदि तुम छः मास में नहीं लौटे तो उसको मृत्यु के घाट उतार दिया जाएगा।"

"महाराज!" करण ने अति दुःखी मन से कहा—"जब राजा और मन्त्री में परस्पर अविश्वास उत्पन्न हो जाए तब दोनों का एक साथ रहना उचित नहीं। इस कारण मेरी प्रार्थना है कि मुझे सेवाकार्य से मुक्त किया जाए।"

"तो तुम हमारी सेवा से मुक्त होना चाहते हो?"

"इसी में आपकी भलाई है महाराज!"

"मैं तो पहले ही समझ गया था कि उस औरत का सम्मोहन अस्त्र तुम पर चल गया है।"

"तो आप मुझको क्या आज्ञा देते हैं?"

"अभी तुम नहीं जा सकते। हम विचार करने उपरान्त ही इस विषय में आज्ञा देंगे।"

नहुष को सन्देह हो गया था कि करण यदि अपने परिवार सहित वहाँ से जाना चाहता है तो अवश्य इन्द्राणी की सेवा करने के लिए जा रहा है। वह यह नहीं चाहता था।

नहुष ने कुछ ऋषियों को राज्य में बुला लिया था। उनसे उसने यह कह रखा था कि यदि वे ब्रह्मा को प्रसन्न कर जीवित पारद का रहस्य जान सकेंगे तो वह उनको इतना पुरस्कार देगा कि वे उसका सैकड़ों वर्षों तक उपभोग करने पर भी उसे समाप्त नहीं कर सकेंगे। साथ ही उसने वह भी कहा कि यह रहस्य देवलोक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उन्नति के लिए ही प्रयोग में लाया जाएगा या फिर मानवसमाज की सुख-सुविधा जुटाने के लिए प्रयोग में लाया जाएगा।

ऋषि लोभ में फँस गए, और ब्रह्मा से मिल-मिलकर इस विद्या को प्राप्त करने का यत्न करने लगे। ब्रह्मा ने उनको न तो विद्या के देने के लिए इनकार किया था और न स्वीकार ही। उसका कहना था कि तपस्या से सिद्धि प्राप्त होती है। जब किसी की तपस्या पूर्ण हो जाती है, तब फल प्राप्त होता ही है।

इस कारण ऋषि लोग भगवत्‌भजन और ब्रह्मा के द्वार पर आना-जाना लगाए हुए थे। अब नहुष ने ऋषियों को बुलाकर कहा—"महात्माओ, मेरी एक समस्या यह भी है कि अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ। इस कारण अपने योग्य किसी स्त्री से विवाह करना चाहता हूँ। मैंने इन्द्राणी से विवाह का प्रस्ताव किया था, परन्तु उसने अभी इसे स्वीकार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि यदि आप लोग उसको मेरे पक्ष में अपना परामर्श देंगे तब वह अवश्य मान लेगी।"

पहले तो ऋषि इस प्रस्ताव से बहुत अचकचाए, पश्चात् यह विचार कर कि इसमें ब्रह्मा सहायता दे सकता है, उन्होंने यत्न करने का आश्वासन दे दिया।

ऋषि इस नवीन समस्या को सुलझाने के लिए ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा ने उनकी बात सुनकर अपने विचार बतलाए—"जहाँ तक जीवित पारद के निर्माण का सम्बन्ध है, मैं समस्या को लोकहित में देखता हूँ। पिछली बार जब आप लोग यहाँ आए थे तो मैंने आपकी इस युक्ति को सुना था कि विद्वान् लोगों को जनता के हित में विचार करना चाहिए। राजा तो जो भी होगा वह कूटनीतिज्ञ होने से स्वार्थी, लोभी और कामी होगा ही। इस कारण हमें राजनीति और राजा का विचार छोड़कर सर्वसाधारण के सुख-साधन में लगे रहना चाहिए। मैं इसके लिए तैयार हूँ। केवल एक बात विचारणीय रह गई है। यह पारद-रहस्य किसको दूँ, जिससे यह किसी दुष्ट के हाथ में न चला जाए। दुष्ट के हाथ में इस अथाह शक्ति के स्रोत के चले जाने से वह प्रजा का अहित भी कर सकता है। परिणाम यह होगा कि हमारी ओर से जनता के हित में किया गया कार्य जनता के अहित में हो जाएगा। इस कारण मैं इस सुझाव में यहाँ तक पहुँच गया हूँ कि पारद का निर्माण किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा करवाऊँ जो इसका दुरुपयोग न होने दे। कुछ ही दिनों में यह विचार कर अपना निर्णय आपके सम्मुख रखूँगा।"

इस पर जाबाल ऋषि बोले—"पितामह! हम पर तो आपको विश्वास करना चाहिए।"

"मैं इसी विषय पर विचार कर रहा हूँ। जो बात मेरे मन में सन्देह उत्पन्न कर रही है वह आप लोगों में देवर्षि नारद की अनुपस्थिति है। वह क्यों नहीं आया? कहाँ है वह? क्या कर रहा है वह?"

ऋषिगण इस सन्देह पर घबराए। इस पर एक बोला—"सम्भव है कि वे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं भ्रमणार्थ गए हों। उन्हें कई वर्षों से नहीं देखा।"

"दो वर्ष हुए वह मेरे पास आया था। मैंने उसको वचन दिया था कि पारद-रहस्य नहुष को नहीं दूँगा। अतः मैं इस विषय में उससे परामर्श करना चाहता हूँ।"

यह सुन उपस्थित ऋषि एक-दूसरे का मुख देखने लगे। कुछ विचारोपरान्त एक ने कहा—"हम उनको ढूँढ़कर आपके पास भेजेंगे।"

इस आश्वासन के पश्चात् शची के विवाह की बात प्रारम्भ हो गई। ब्रह्मा का कहना था—"यह नहीं हो सकेगा। मैं किसी के विवाह के लिए, विशेष रूप से किसी की पत्नी को किसी दूसरे से विवाह करने के लिए, प्रयत्न नहीं कर सकता।"

"पितामह! इन्द्र शची के योग्य नहीं है। इससे उसने अभी तक सन्तानोत्पत्ति भी नहीं की।"

"मैं इस विषय में निर्णय नहीं दे सकता। यह शची के अपने विचार करने की बात है। जहाँ तक मुझे विदित है नहुष ने अपने मन्त्री को शची के पास इसी प्रयोजन से भेजा था और शची ने नहुष के प्रस्ताव को नहीं माना। इस विषय में एक बात और स्मरण रखनी चाहिए। नहुष का विवाह अपने देश में हो चुका है और उससे उसका एक पुत्र भी है। वह पुत्र यशस्वी और एक विख्यात वंश की स्थापना करने वाला भी होगा। अतएव मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं करूँगा। नहुष चाहे तो किसी अन्य राजा की कन्या से विवाह कर सकता है।"

वास्तव में ऋषियों को ब्रह्मा से अभी तक कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। इस पर भी उनको आशा बनी हुई थी। इसी आशा के कारण नहुष उनकी मान-प्रतिष्ठा करता था। यह ब्रह्मा से तीसरी भेंट थी। इसके पश्चात् पुनः तीन मास उपरान्त उनको आने के लिए कहा गया था।

: ३ :

नहुष से मिलकर जब करण घर लौटा तो उसका मन अति खिन्न था। सुमन ने उससे इस उदासी का कारण पूछा तो करण ने सब घटना ज्यों-की-त्यों वर्णन कर दी। सुमन का कहना था—"इसका तो यह अर्थ हुआ कि हम बन्दी हैं।"

"हम महाराज की सेवा छोड़ भी नहीं सकते।"

"यह क्यों हुआ है? हमने तो कोई भी काम नहीं बिगाड़ा। क्या यही मन लगाकर सेवा करने का फल है?"

करण चुप था। सुमन ने फिर कहा—"हमको चुपचाप यहाँ से चल देना चाहिए।"

"अकेला होता तब यह बात कठिन नहीं थी। सीमा पर कोई रोकता तो उससे दो-दो हाथ कर भाग निकलता, परन्तु तुमको तथा बच्चों को यहाँ छोड़कर नहीं जाना चाहता। और सबका भाग निकलना कठिन है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमन कठिनाई समझ गई, इस कारण वह इसके दूर करने का उपाय सोचने लगी। उसकी विचारधारा अपने को करण से पृथक् कर देने की ओर जाती थी। वह अपने को अलग करके अपने पति का मार्ग साफ कर सकती थी। बच्चों की समस्या विकट थी। न तो वह उनको छोड़ सकती थी और न ही उनके लिए पति को अपनी माता से भेंट करने से रोक सकती थी। बहुत विचारोपरान्त उसने कहा—"तो आप अकेले ही अपनी माताजी से मिल आइए। मुझको और बच्चों को यहीं छोड़ जाइए। इस प्रकार जाने की स्वीकृति तो मिल सकती है।"

"प्रश्न यह नहीं है सुमन ! मैं तो अब इस राज्य की सेवा नहीं कर सकता और न ही करना चाहता हूँ। परन्तु मैं भागकर नहीं जा सकता और जाना भी नहीं चाहता। मैंने कोई अपराध नहीं किया जिसके कारण मुझको यहाँ बन्दी बनकर रहना पड़े।"

समस्या इस प्रकार सुलझ नहीं सकी। नियमानुकूल मध्याह्न के समय करण राज-न्यायालय में जाने के लिए घर से निकला तो उसको राज्यभवन के बाहर नारद जाता मिला। वह उसकी ओर लपका। कुछ ही दूर पीछा करने पर नारद ने उसको देख लिया। इस कारण वह मार्ग में खड़ा हो उसकी प्रतीक्षा करने लगा। करण पास आया तो साथ-साथ चलते हुए नारद ने उससे पूछा—"तो आप आ पहुँचे हैं यहाँ ?"

"हाँ ! महाराज को पूर्ण स्थिति भी बतला दी है।"

"अब वे क्या करने की सोच रहे हैं ?"

"यह तो उन्होंने बताया नहीं।"

"मैं आपको बताता हूँ। यह विवाह नहीं होगा। इस पर समय व्यय करना व्यर्थ है। मुझको यहाँ आए हुए कई दिन व्यतीत हो चुके हैं। मैं यत्न कर रहा हूँ कि किसी प्रकार आपकी स्त्री से परिचय प्राप्त करूँ। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उससे परिचित हो और मेरा परिचय दे सके।"

"क्या काम है आपको उससे ?"

"शची जी ने आपकी स्त्री की अत्यन्त प्रशंसा की थी और मुझसे कहा था कि जब अमरावती में आऊँ तो पता करूँ कि कौन है वह ?"

"बस, इतनी-सी बात है ? मैं ही बता देता हूँ। इन्द्र के काल के भवनाध्यक्ष की वह लड़की है। उसका नाम सुमन है।"

"सुमन ?" नारद ने विस्मय में खड़े हो पूछा। वह करण का मुख देखने लगा था।

"हाँ ! कई कारणों से हमारा सम्पर्क हुआ और फिर विवाह हो गया। क्या आप जानते हैं उसको ?"

"बहुत अच्छी तरह से। महारानी शची भी जानती होंगी। वह इन्द्रभवन में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बहुत ही सर्वप्रिय बालिका थी। कहाँ रहते हैं आप ?"

"भवन के पश्चिमी पार्श्व में। नीचे ही मेरा निवासस्थान है।"

"मैं उससे मिलना चाहूँगा। यदि आपको आपत्ति न हो तो किसी समय आऊँ?"

करण ने उत्तर नहीं दिया। वह अपनी और नहुष की समस्या पर विचार करने में लीन था। नारद ने समझा कि वह उसके अपनी स्त्री से मिलने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं कर रहा। इस कारण पूर्व इसके कि वह कुछ और कहे नारद नमस्कार कर चल पड़ा।

करण अभी विचार कर ही रहा था कि वह अपनी कठिनाई उसके सम्मुख कहे कि नारद लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला गया।

करण न्यायालय में गया तो ऋषि लोग ब्रह्मा से मिलकर लौट आए थे और नहुष को उसके विचारों से अवगत करा चुके थे। करण ने उनको नहुष के पास से बाहर आते देखा तो वह नहीं जान सका कि ये लोग कौन हैं और किस कार्य से आए हैं। उसने न्यायालय के एक अधिकारी से पूछा, जिसने बताया—"ये ऋषि लोग हैं। आपकी अनुपस्थिति में इनको आर्यावर्त से बुलाया गया है। इनके द्वारा ब्रह्मा से वार्तालाप हो रहा है और उसमें काफी सफलता मिलने की आशा हो रही है।"

करण के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं यही लोग न हों जिन्होंने नहुष को उसके विरुद्ध कर दिया हो। अतएव उसने इनका परिचय प्राप्त करने के लिए उठकर ऋषियों के नेता जाबाल को झुककर प्रणाम किया और अपना परिचय दिया।

"भगवन्! मैं महाराज का मुख्य सेवक करणदेव हूँ। मुझको यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि आप महाराज की और देवलोक की सहायता के लिए यहाँ पधारे हैं। सेवक यदि किसी काम आ सके तो उपस्थित है।"

जाबाल ऋषि को करण से परिचय प्राप्त कर अति प्रसन्नता हुई। उसने करण को आशीर्वाद देकर कहा—"आप किसी समय मिलें तो बहुत अच्छा हो। आपसे एक आवश्यक विषय पर बात करनी है।"

करण भी यही चाहता था। अतएव मन्त्रालय का कार्य देख सायंकाल वह ऋषि जाबाल के निवासस्थान पर जा पहुँचा। सातों ऋषि वहाँ उपस्थित थे और परस्पर परामर्श कर रहे थे। करण के आने पर उसको भी वहीं बुला लिया गया। जब करण बैठ गया तो उन्होंने सर्वप्रथम शची से हुई बातचीत का वृत्तांत जाना। पश्चात् ऋषि भृगु ने कहा—"जहाँ तक शची से विवाह का सम्बन्ध है यह हो ही जाना चाहिए।"

करण ने निवेदन किया—"विवाह बल अथवा छल के प्रयोग से होना तो ठीक नहीं।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृगु का कहना था—"राजा-महाराजाओं के विवाह उनकी इच्छा या अनिच्छा का विषय नहीं होते। इस प्रकार के विवाहों में देश, प्रजा और कभी-कभी विदेशों के हित-अहित का विचार करना पड़ता है। देखिए करणदेव! नहुष का अविवाहित रहना देश के लिए ठीक नहीं। विवाह के विना उसका मन अव्यवस्थित रहेगा। प्रजा के हित के विचार से उसको इच्छानुकूल पत्नी मिल जानी चाहिए।"

"परन्तु श्रीमान्!" करण ने झिझकते हुए कहा—"वह एक दूसरे पुरुष की पत्नी है और वह पुरुष अभी जीवित है।"

"बन्दी और मृत में कोई अन्तर नहीं। जिस धर्मनीति को गान्धार मानते हैं, उसमें किसी की धर्मपत्नी होने से पुनः विवाह वर्जित नहीं है। फिर भी एक बात विशेष विचारणीय है। वह यह है कि नहुष देश का राजा है। शची अपने सौन्दर्य के कारण रानी बनने के योग्य है। वह किसी ऐसे के हाथ में नहीं रखी जा सकती जो उसकी रक्षा न कर सकता हो।"

"तो फिर आप क्या करने को कहते हैं? उसने तो यहाँ आना स्वीकार नहीं किया।"

"हमारी तो यह इच्छा थी कि ब्रह्मा से कहकर उसको मनवाएँ, परन्तु ब्रह्मा ने इस विषय में हस्तक्षेप करना अस्वीकार कर दिया है। हमारा यह निश्चित मत है कि एक बार और यत्न कर लिया जाए और यदि देवीजी मान जाएँ तो ठीक, अन्यथा बलपूर्वक अपहरण कर उनको देवलोक की महारानी के पद पर सुशोभित कर दिया जाए।"

"कैसे यत्न किया जाएगा?"

"हम नारद की खोज में हैं। हमें ज्ञात है कि नारद का शची पर बहुत प्रभाव है और यदि वह शची को जाकर समझाने का कष्ट करे तो सब बात सुधर जाएगी।"

करण को स्मरण हो आया कि नारद उसको मिलने को कह गया है। इस कारण उसने कह दिया—"मैं नारद को ढूँढ़ने का यत्न करूँगा।"

"यदि वह मिल जाए तो बहुत काम हो सकता है। ब्रह्मा जी भी उसको स्मरण कर रहे थे।"

यद्यपि करण को ऋषियों की युक्ति पसन्द नहीं थी, फिर भी वह अपनी विरोधी सम्मति उनके सामने रखने से डरता रहा। उसको विश्वास था कि नारद उनकी नीति को पसन्द नहीं करेगा, परन्तु उसने ऐसी कोई बात ऋषियों के सम्मुख नहीं कही। वह ऋषियों के सामने अपने मन के भाव कहने से हानि ही मानता था। इस वार्तालाप के पश्चात् वह नारद से मिलने के लिए उत्सुक हो उठा और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

करण का विचार था कि उसको नारद के ढूँढ़ने का यत्न करना पड़ेगा, परन्तु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको यह कष्ट करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसी रात, जब वह सुमन को ऋषियों से अपनी बात बता रहा था और सुमन ऋषियों की बुद्धि पर आलोचना कर रही थी, प्रतिहार ने आकर सूचना दी कि कोई देवता जो अपना नाम नहीं बताता, मिलने के लिए आया है। करण को एकदम सूझ गया कि नारद आया है। इस कारण वह उठकर बाहर द्वार पर जा पहुँचा और आगन्तुक को देखकर जान गया कि उसका अनुमान ठीक ही था। वह उसको भीतर ले गया। पश्चात् द्वार बन्द कर बोला—"आपने अच्छा ही किया है जो नाम नहीं बताया, अन्यथा आपके यहाँ आने का रहस्य खुल जाता।"

"इतना ज्ञान तो मैं रखता हूँ।"—नारद ने कहा। इस समय सुमन आ गई और देवर्षि को पहचान प्रणाम करने लगी। जब सब पिछले आगार में जाकर अपने-अपने आसनों पर बैठ गए तो सुमन ने कहा—"आपका यहाँ आना भयरहित नहीं। आजकल हम पर महाराज को सन्देह हो रहा है। इसका कारण कहा नहीं जा सकता।"

"जिस समय से पता मिला है कि तुम यहाँ रहती हो, मैं तुमसे मिलने की इच्छा कर रहा हूँ। अपनी इच्छा को अधिक काल तक न रोक सकने के कारण ही यहाँ चला आया हूँ। तुम सुनाओ! प्रसन्न तो हो? कितने बच्चे हैं तुम्हारे और कहाँ हैं?"

"अभी दो हैं। एक माणिक्य है और एक परा। दोनों इस समय सो रहे हैं।"

"करणजी की महारानी इन्द्राणी बहुत प्रशंसा कर रही थीं। वे विस्मय करती थीं कि ये कैसे नहुष की सेवा कर सकते हैं? मुझको महारानी ने आज्ञा दी है कि इनको महारानी जी की सेवा के लिए तैयार कर लूँ।"

करण ने इस बात का उत्तर देने की अपेक्षा ऋषियों की बात कह दी। उसने कहा—"अगस्त्य, भृगु, काश्यप इत्यादि ऋषि नहुष की सेवा में आ गए हैं। वे आपको भी ढूँढ़ रहे थे। शायद आपकी सेवाएँ भी नहुष के लिए माँगते होंगे।"

"कहाँ हैं वे? मैंने सुना तो है, परन्तु विश्वास नहीं आता।"

करण ने उसके निवासस्थान का पता दिया और कहा—"मैं आज उनसे मिलकर आया हूँ। वे यत्न कर रहे हैं कि ब्रह्मा उनको जीवित पारद-निर्माण का रहस्य बता दें। सुना है कि ब्रह्मा जी चाहते हैं कि नारद आए तो उससे परामर्श कर उनसे बात करें।"

"देखिये करण जी, एक बात में मेरा और श्री ब्रह्मा जी का मतभेद रहा है। उनका कहना है कि ज्ञान मनुष्यमात्र की सम्पत्ति है। इस कारण यह जिज्ञासु को देना चाहिए। मैं कहता हूँ कि ज्ञान एक अमूल्य रत्न है जो केवल अधिकारी को ही मिलना चाहिए। जिज्ञासा-मात्र से यह नहीं दिया जा सकता। ये ऋषि वेदों के ज्ञाता अवश्य हैं, परन्तु जो कुछ ये करना चाहते हैं वह वैदिक विचारधारा के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल नहीं है। इस पर भी मैं इन लोगों से मिलूँगा और इनको अपने विचार बताऊँगा।"

"मैं समझता हूँ कि आपको इन लोगों से मिलना चाहिए। व्यक्तियों के झगड़े जातियों की उलझनों को बढ़ाने वाले नहीं होने चाहिए। यदि किसी प्रकार से देवलोक के रहने वालों को सुख-सुविधा मिल सके तो फिर चाहे इन्द्र राजा हो और चाहे नहुष, इसमें क्या महत्त्व है ?"

नारद हँस पड़ा और कहने लगा—"इस प्रकार से विचार करने में आपका कोई दोष नहीं। आपके संस्कार ही इसमें कारण हैं। हम तो यह समझते हैं कि राजा अच्छा होने से ही प्रजा सुखी हो सकती है। केवल सुख-सुविधा मनुष्य जीवन का ध्येय नहीं। आत्मोन्नति सुख-सुविधा प्राप्त करने से बहुत ऊँची वस्तु है। विषय-लोलुप राजा के राज्य में आत्मोन्नति सम्भव नहीं।"

बहुत रात व्यतीत हो चुकी थी। नारद उठ खड़ा हुआ और इतना कहकर कि वह कभी-कभी मिलने आया करेगा, विदा हो गया।

: ४ :

एक दिन करण को यह सुन विस्मय हुआ कि नारद शची को विवाह के लिए मनाने चला गया है। उसको नहुष ने स्वयं यह बात बताई थी। उसने कहा था—"सुनो करण ! मेरी नीति सफल हो रही है। मैं समझता हूँ कि तुम सब बुद्धू हो। कोई भी काम तुम लोग सम्पन्न नहीं कर सके। एक ओर ब्रह्मा ने यह मान लिया है कि जब भी जीवित पारद समाप्त होगा, वह उसको अपने कोष में से देंगे। कुछ पारद उन्होंने दिया भी है। दूसरे नारद, जो मेरा शत्रु था, मेरा मित्र बन गया है और शची को मेरी पत्नी बनाने में यत्न करने के लिए कश्मीर चला गया है। यह सफलता आर्यावर्त के कुछ ऋषियों को यहाँ लाकर बसाने से मिली है।"

करण को यह सब अनहोनी बात प्रतीत होती थी। परन्तु वह यह कह नहीं सका कि उसको नहुष की बात का विश्वास नहीं है।

जब रात सुमन से बात हुई तो वह आश्चर्य में पड़ गई। वह देख रही थी कि दिन-प्रतिदिन देवताओं का साहस बढ़ता जाता है। गान्धार उनके सामने आने में भय अनुभव करने लगे हैं। इक्का-दुक्का गान्धार तो उनके मुहल्लों में जा भी नहीं सकता। नित्य गान्धारों और देवताओं में झगड़ा होता रहता है और इन झगड़ों में प्रायः गान्धार ही पराजित होते हैं। इन सब बातों से प्रतीत होने लगा था कि शीघ्र ही गान्धार राज्य समाप्त हो जाएगा। ऐसी अवस्था में ब्रह्मा और नारद का नहुष का राज्य चलाने में सहायक होना और उसके विवाह का प्रबन्ध करने में यत्न करना, सुमन को आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। फिर भी वह यह विचार कर कि वह इस विषय में कुछ नहीं कर सकती, चुप थी।

करण के सामने एक गान्धार-सैनिक यह अभियोग लेकर आया कि एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुकानदार ने एक सेव का दाम एक रजत माँगा है और जब इतना अधिक दाम देना उसने अस्वीकार किया तो झगड़ा हो गया और दुकानदार ने उसको घायल कर दिया।

गान्धार-सैनिक ने अपनी पीठ दिखाई जिस पर तलवार का घाव लगा था। करण गान्धार-सैनिक की इस अवस्था से तिलमिला उठा। उसने पूछा—"तुम पीठ पर घाव खा गए? अवश्य तुम उससे डरकर भागने लगे होगे?"

"श्रीमान्! वह तलवार चलाने में अत्यन्त प्रवीण था। उसने एक ही वार में मेरी तलवार के दो टूक कर दिए। ऐसी अवस्था में मुझे भागना पड़ा और उसकी तलवार से मेरी पीठ पर घाव लगा।"

"तो तुम क्या चाहते हो? क्या मैं तुम्हारी भीरुता और दुर्बलता के लिए उसको दण्ड दूँ?"

"मैं चाहता हूँ कि उस देवता को शासक-पक्ष के व्यक्ति के विरुद्ध लड़ने के अपराध में दण्ड दें।"

"परन्तु यदि यह सिद्ध हो गया कि पहला अपराध तुमने किया है तो फिर?"

"उसने ही मुझसे झगड़ा आरम्भ किया था। मैंने सेव लेकर घर चलने से पूर्व उसको कहा था कि सेव का दाम एक-चौथाई रजत होना चाहिए, वह मैं दे सकता हूँ और यदि उसे अधिक चाहिए तो वह न्यायालय में जाकर ले ले। मेरी इस बात को सुनकर वह तलवार ले मेरे सामने आ खड़ा हुआ। विवश मुझको भी तलवार निकालनी पड़ी। उसने एकाएक वार किया और वह मेरी तलवार की मुट्ठी के कुछ ऊपर पड़ा। मेरी तलवार उसी स्थान से टूट गई और मेरे हाथ में उसकी केवल-मात्र मुट्ठी रह गई। इस कारण वह अपराधी है।"

"परन्तु तुमको किसने बताया है कि एक सेव का दाम एक-चौथाई रजत है? और फिर जब उसने तुम्हारा दाम स्वीकार नहीं किया तो तुम बिना दाम दिए सेव लेकर क्यों चल पड़े? अपने माल की रक्षा के लिए तलवार निकाल लेना अपराध नहीं था। तुम्हें उसके विरुद्ध यदि कुछ करना था तो न्यायालय में आकर करते। सेव को घर ले जाने का कोई कारण नहीं था।"

"यदि आप मेरी सहायता तथा मेरे इस घाव का प्रतिकार नहीं करेंगे तो गान्धारों का भारी अपमान हो जाएगा। इससे हमारा राज्य दुर्बल हो जाएगा और हम सबकी जान को भय उत्पन्न हो जाएगा।"

"महाराज ने घोषणा कर दी है कि गान्धार और देवता राज्य में समान समझे जाएँगे। इससे मुझे तो तुम अपराधी प्रतीत होते हो और यदि मैंने तुम्हारा अभियोग सुना तो तुमको ही दण्ड मिल जाएगा।"

"परन्तु पहले तो ऐसा नहीं होता था।"

"जो पहले होता था वह उचित नहीं था। अब तो ऐसा ही होगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण से किसी प्रकार की सहायता की आशा न पा, गान्धार-सैनिक नहुष के पास जा पहुँचा। नहुष के पास जाबाल ऋषि बैठा था। नहुष ने जाबाल ऋषि से उसका अभियोग सुनने को कहा। ऋषि जाबाल ने उस दुकानदार को बुलाकर पूछा—"तुम सेव कितने का बेचते हो?"

"एक रजत का एक!"

"यह दाम बहुत ही अधिक है।"

"महर्षि! सेव कश्मीर से आते हैं। इनके लाने में मार्गव्यय बहुत अधिक लगता है। इस कारण इससे कम दाम पर बेचने में हमें लाभ नहीं होता।"

"तो इसको तुम बेचते ही क्यों हो? इतने दाम की वस्तु इस लोक में शोभा नहीं देती।"

"पर महर्षि! यह तो इस दाम पर भी बहुत बिकती है।"

"नहीं! तुम ऐसी वस्तु को इस दाम पर नहीं बेच सकते। बेचोगे तो दण्ड के भागी बनोगे।"

"बहुत अच्छा भगवन्! भविष्य में नहीं बेचूँगा।"

जब वह दुकानदार जाने लगा तो गान्धार ने महर्षि को कहा—"श्रीमान्! आपने इसको दंड तो दिया नहीं?"

"अब अधिक दाम पर बेचेगा तो दण्ड का भागी बनेगा।"

"पर इसने मुझे घायल जो कर दिया है।"

"ओह! भूल हो गई। क्यों भाई दुकानदार, तुमने इसको घायल क्यों किया है?"

"महर्षि! मैंने इसको घायल नहीं किया। प्रत्युत यह मेरी तलवार के सम्मुख आ गया था।"

जाबाल इस युक्ति से हँस पड़ा और बोला—"देखो सैनिक, तुम भी तलवार चलाओ और इसको कहो कि तुम्हारी तलवार के सम्मुख आ जाए। यह भी घायल हो जाएगा।"

गान्धार विवश घर लौट गया। नहुष को जाबाल ऋषि की चतुराई प्रतीत हुई कि उसने दोनों को सन्तुष्ट कर दिया है। वह यह नहीं समझ सका कि दोनों असन्तुष्ट ही लौटे थे। परिणाम यह हुआ कि न तो दुकानदार ने सेव कम दाम पर बेचने स्वीकार किए और न ही गान्धारों ने अपनी उच्छृंखलता बन्द की और इस प्रकार की घटनाएँ नित्य-प्रति होने लगीं।

इसके कई मास बाद, एक दिन नहुष ने करण को बुलवाया। इससे चिन्तित अवस्था में करण नहुष के सामने उपस्थित हुआ। उसने नहुष को अत्यन्त चिन्तित अवस्था में पाया। इस कारण वह नमस्कार कर इसका कारण जानने के लिए खड़ा रहा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमने तुमको बुलाया है।"

"महाराज ! सेवक उपस्थित है।"

"आज रात को नगर में भारी उपद्रव हो गया है।"

"इस विषय में कुछ समाचार सुने हैं, परन्तु श्रीमान् को विदित होना चाहिए कि बिना मुझसे राय लिए सेनापति ने इस उपद्रव को शान्त करने का प्रयत्न भी किया है।"

"क्या मालूम है तुमको ?"

"रात को कुछ सैनिक बलपूर्वक एक मकान में घुस गए। वे मद्यपान किए हुए थे। उस घर में कुछ महिलाएँ रहती थीं। उनसे सैनिकों ने बलात्कार करना चाहा। इस पर झगड़ा हो गया। उन महिलाओं के सम्बन्धियों ने सैनिकों से युद्ध किया और एक के अतिरिक्त सब सैनिक मारे गए। वह सैनिक, जो डरकर वहाँ से भाग आया था, सेनापति के पास पहुँचा और सेनापति ने उस घर को जलाकर महिलाओं-सहित भस्म कर देने की आज्ञा दे दी और इसके लिए अपने सैनिक भेज दिए। ऐसा प्रतीत होता है कि सेनापति की इस आज्ञा की सूचना नागरिकों को पहले ही मिल गई थी। वे भारी संख्या में वहाँ उपस्थित थे। दोनों पक्षों में युद्ध हुआ और दो बार सैनिकों को नागरिकों ने लड़कर भगा दिया। सुना है कि सेनापति आपसे आज्ञा लेकर पूर्ण सेना एकत्रित कर पूर्ण नगर को भस्म कर देने की योजना बना रहा है।"

"हमने तो कुछ भिन्न कथा सुनी है। सायंकाल सेनापति के पास सूचना मिली कि वह लड़की, जिसके संरक्षक ने कुछ दिन पूर्व उसकी बाँह काट दी थी, एक मकान में रहती है। सेनापति ने कुछ सैनिकों को उसे पकड़ने के लिए उस मकान में भेज दिया। वहाँ उन सैनिकों के मार्ग में बाधा डाल दी गई, जिससे झगड़ा हो गया; और बारह में से ग्यारह सैनिक वहीं मार डाले गए। इस समाचार को पाकर सेनापति ने दो सौ के लगभग सैनिक भेजे। इस पर वहाँ घमासान युद्ध हुआ। अभी तक उन विद्रोहियों ने वहाँ मोर्चा बाँधा हुआ है। मैंने यह निर्णय कर लिया है कि उनको इस विद्रोह के लिए दण्ड दिए बिना नहीं रहूँगा।"

करण मुख देखता रहा। वह कुछ नहीं कह सका। उसे चुप देख नहुष ने पूछा—"क्या तुमको यह पसन्द नहीं है ?"

"जब आपने एक बात निश्चय कर ली है, तब मैं क्या कह सकता हूँ। आपकी इच्छा सर्वोपरि है।"

"इसका अर्थ यह है कि तुमको हमारी योजना रुचिकर नहीं है।"

"इसमें रुचि-अरुचि का प्रश्न ही नहीं उठता। महाराज ! मान लीजिए उन विद्रोहियों को दण्ड देने के लिए आप नगर को भस्म कर देने में सफल हो गए, तो फिर आप कहाँ रहेंगे, और यदि भवन के ये यन्त्र, जिनसे यहाँ का जीवन चलता है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिगड़ गए तब फिर आप यहाँ रहकर क्या करेंगे ? यह तो दूसरे को झूठा सिद्ध करने के लिए, अपनी ही नाक काटने के तुल्य होगा।"

"इस भवन को बचा रखेंगे।"

"मान लीजिए यदि ऐसा संभव हो गया, तब भी जब नगर नहीं रहेगा तो राज्य किस पर करेंगे ?"

"गान्धार से और लोगों को बुला लेंगे।"

"और आप समझते हैं कि इस प्रकार देवताओं के विनाश के पश्चात् भी ब्रह्मा आपकी सहायता करेगा ?"

"जब शची आ जाएगी, तब ब्रह्मा की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

"तब ठीक है। आप करिए, परन्तु मैं इस विनाश-कार्य में कुछ तत्त्व नहीं देखता। मेरे विचार में शान्तिमार्ग को ढूँढ़ना ही उचित है।"

"अब तो आज्ञा जा चुकी है। देखें इसका परिणाम क्या होता है।"

करण चुप खड़ा रहा। कुछ विचारकर नहुष ने कहा—"तुम इसमें क्या सहायता दे सकते हो ?"

"मुझको आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ ?"

"एक घोषणा लिखो और उसे मेरी ओर से घोषित करवा दो। उसमें लिखो कि यदि विद्रोही एक प्रहर तक अपने आपको बन्दी न बनवा देंगे, तो पूर्ण नगर को भस्म कर दिया जाएगा।"

करण ने उसी समय घोषणा लिख दी। नहुष ने घोषणा को सुना और उसके शब्दों को पसन्द कर प्रसारित करने के लिए भेजने ही वाला था कि प्रतिहार सूचना लाया—"महाराज! कुछ गान्धार सैनिकों की स्त्रियाँ अपने बाल-बच्चों को लेकर रुदन करती हुई श्रीमान् से कुछ निवेदन करने के लिए आई हैं।"

"तुरन्त बुलाओ।" महाराज ने आज्ञा दी।

बीस-पचीस स्त्रियाँ थीं और उनके साथ दस-पन्द्रह के लगभग बालक थे। वे अति अस्त-व्यस्त अवस्था में वहाँ आ खड़ी हो गईं। नहुष ने पूछा—"क्या बात है ?"

"महाराज ! हम लुट गए हैं। देवताओं ने हमारे घर वालों को मार डाला है और हमको घरों से निकाल दिया है।"

"तुम लोगों की रक्षा के लिए मैं अभी सेना भेज रहा हूँ।"

"सेना तो वहाँ पहुँची थी महाराज ! परन्तु डरकर भाग गई है।"

"अभी और अधिक मात्रा में भेजता हूँ।"

इस समय प्रतिहार सूचना लाया—"महाराज ! सेनापति दर्शन करना चाहते हैं।"

"आने दो।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनापति आया और प्रणाम कर बोला—"सेना ने लड़ने से इन्कार कर दिया है।"

"क्यों ?"

"कहते हैं कि देवताओं की सेना को बुलाकर देवताओं से लड़ने के लिए भेजना चाहिए।"

"देवताओं की सेना कहाँ है ?"

"बहुत से देवता-सैनिक तो सीमा पर भेज दिए गए हैं। उनको वापस बुलाने में समय लगेगा।"

"तो उस समय तक शान्त रहना चाहिए।" इतना कहकर नहुष ने करण से कहा—"मैं समझता हूँ कि अब महामात्य का काम आ गया है। करणदेव ! जाइए और किसी प्रकार शान्ति करने का यत्न करिए।"

करणदेव जानता था कि सब बात बिगड़ चुकी है। इस पर भी उसने सोचा कि अपनी ओर से शान्ति के लिए यत्न करना ही चाहिए। यदि असफलता मिली तो अपना कर्तव्य तो पूरा हो जाएगा। इस विचार से वह शान्ति-स्थापन के लिए चल पड़ा। वह सीधा न्यायालय गया और वहाँ जाकर उसने वह घोषणा जो उसने नहुष के कहने पर लिखी थी, फाड़कर फेंक दी और एक नई घोषणा लिख डाली। उसमें उसने लिखा—"हमको यह जानकर भारी खेद हुआ है कि कुछ गान्धार-सैनिकों ने नगर के लोगों से झगड़ा किया है। इस झगड़े में दोनों ओर के लोग मारे गए हैं। सैनिकों की ओर से यह झगड़ा हमारी नीति के विरुद्ध हुआ है। हमने उन सैनिकों पर, जिन्होंने यह झगड़ा आरम्भ किया है, अभियोग चलाने की आज्ञा दी है। उनमें से ग्यारह मर चुके हैं, केवल एक ही बचा है। उस पर अभियोग चलाया जाएगा और यदि वह सचमुच दोषी सिद्ध हुआ तो उसको दण्ड दिया जाएगा।

"हम जनता को विश्वास दिलाते हैं कि उनके साथ न्याय होगा और जिन-जिन को इस झगड़े से हानि पहुँची है उनकी क्षति की पूर्ति की जाएगी।

"हम जनता से भी प्रार्थना करते हैं कि वह शान्तिपूर्वक रहे। जिस किसी को भी किसी के विरुद्ध आरोप लगाना हो, न्यायालय में लगाए। उनके साथ न्याय किए जाने का विश्वास दिलाया जाता है।"

यह घोषणा नगर में कई बार करवाई गई। फिर भी छुट-पुट आक्रमण कई बार होते रहे। पूर्ण शान्ति स्थापित होने में दो सप्ताह लग गए। तब तक देवताओं की सेना नगर में आ पहुँची। उस सेना के नायकों को करण ने समझाया—"वीर सैनिको ! यह देश तुम्हारा है। यहाँ के रहने वाले तुम्हारे भाई-बन्धु हैं। इस कारण तुमको उनकी रक्षा करनी चाहिए। देश में शान्ति स्थापित रखना तुम्हारा धर्म है। इस कारण बिना किसी पर अन्याय किए नगर में झगड़े बन्द कराना तुम्हारा काम है। यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का भी झगड़ा करे तो उसको पकड़कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायालय में ले आओ। उसको स्वयं दण्ड मत दो।"

इस प्रकार समझा-बुझाकर देवता-सैनिकों को करण ने नगर में नियुक्त कर दिया।

: ५ :

देवताओं और गान्धारों का यह झगड़ा पूर्ण रूप से शान्त भी नहीं हुआ था कि जाबाल ऋषि नारद का सन्देश लेकर आया। नारद ने नहुष को बधाई दी थी और यह सन्देश दिया था—"महाराज नहुष से कह दीजिए कि आधे से अधिक काम हो गया है। महारानी इन्द्राणी अमरावती आने के लिए तैयार हो गई हैं। वह कुछ शर्तें करना चाहती हैं। मैं इस अवस्था में नहीं हूँ कि महाराज की ओर से किसी प्रकार की शर्तें कर सकूँ। इस कारण महाराज से कह दीजिए किसी अपने विश्वस्त व्यक्ति को यहाँ भेज दें, जो शर्तें स्वीकृत करने का अधिकारी हो। यह कार्य शीघ्र हो।"

नहुष इस समाचार को सुन पागलों की भाँति नाचने-कूदने और ऋषि से गले मिलने लगा। अविलम्ब करण को बुलाया गया। जाबाल ऋषि ने नारद का पत्र पढ़कर सुनाया और उसकी सम्मति माँगी।

करण ने कहा—"महाराज! यह सत्य है कि नारद का देवताओं पर भारी प्रभाव है। और जब उसने लिखा है कि आधे से अधिक कार्य हो गया है, तो वास्तव में भारी प्रसन्नता का विषय है। आप अपने किसी विश्वस्त दूत को भेज दीजिए। शेष सफलता भी मिल जाएगी।"

"तो तुम ही जाओ और मेरे द्वारा मान्य शर्तें निश्चित कर उसको ले आओ।"

"बहुत कठिन कार्य है महाराज! यदि भूल से कोई ऐसी शर्त हो गई, जिसको आप पसन्द न कर सके, तो फिर क्या होगा?"

"देखो करण! तुम मेरे मित्र हो। मैं तुमसे कोई बात छिपाकर नहीं रखना चाहता। मैं तो उससे किसी भी शर्त पर विवाह करना चाहता हूँ। मैं अपना सब राजपाट उस पर न्योछावर वर सकता हूँ। मेरी ओर से केवल एक ही शर्त है। वह है उसके सहवास का निर्बाध अधिकार। शेष जो वह माँगे, मान जाना। एक बात देख लेना कि मुझको लज्जित करने वाली कोई बात न हो। शची जैसी स्त्री के पति का जो मान संसार में होना चाहिए, वह मेरा होना चाहिए। घर में तो उसके जूते तक साफ कर सकता हूँ।"

करण ने मुस्कराकर कहा—"आप आज दिन-भर विचार कर लें। मैं कल ही यहाँ से जा सकूँगा। इससे पूर्व यदि कोई विशेष बात आप कहना चाहते हों, तो आज्ञा कर दें।"

"मैं तुम्हारी बुद्धि और चतुराई पर विश्वास रखता हूँ। अब जा सकते हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जाने की तैयारी कर सकते हो।"

करण वहाँ से चलकर घर आया और सुमन को नारद का सन्देश बताकर तैयारी करने के लिए कहने लगा।

सुमन यह समाचार सुन मुख देखती रह गई—"क्यों ?" करण ने पूछा—"विश्वास नहीं आता न ?"

"देवताओं का घोर पतन हो चुका है, तभी तो यह दुर्दशा इनकी हुई है। जब राजा ही पतित हो गया है तो प्रजा की क्या बात है !"

"तुम दूसरा विवाह करना पतन का लक्षण समझती हो ?"

"यह विवाह का प्रश्न नहीं है। यह तो समाज के नियमों को भंग करने की बात है। हमारे समाज में स्त्री दूसरा विवाह नहीं करती; जिस समाज में दूसरा विवाह नहीं होता, वहाँ यह पतन ही है।"

"तो इसका अभिप्राय यह निकला कि इन्द्राणी ने देवसमाज को छोड़कर गान्धार-समाज में प्रवेश करने का निश्चय कर लिया है।"

"यही विस्मय करने की बात है। समाज-परिवर्तन एक साधारण-सी बात नहीं होती। इसमें यह तो देखना आवश्यक है ही कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है। ऐसा प्रतीत होता है कि चारों ओर गान्धारों की विजय होती देख शची के मन में विजेताओं के श्रेष्ठ होने का विश्वास बैठ गया है।"

"सुमन यह बात क्या विचारणीय नहीं कि विजेताओं की जीत उनमें किसी श्रेष्ठता की सूचक है !"

"मैं इस सिद्धान्त को मानने में कोई युक्ति नहीं देखती। इस पर भी हमारा इस विषय पर वाद-विवाद कुछ अर्थ नहीं रखता। देखें, आपके वहाँ जाने का क्या फल निकलता है ? अब तो भगवान् का ही आश्रय है।"

"तो अब मेरा आश्रय भी नहीं रहा ?"

"आपको आज क्या हो गया है ? मैं जब अपने विषय में कहती हूँ तो अपने पूर्ण परिवार के विषय में ही तो कहती हूँ। और आप उनमें मुख्य व्यक्ति हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि इस समाज के चुनाव के विषय में मैंने तो भगवान् के भरोसे आपका छोर पकड़ा हुआ है।"

"मैं तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझा।"

"अभिप्राय स्पष्ट है। मेरी लड़की परा है। वह आपके समाज की प्रथा स्वीकार करेगी अथवा देवताओं की, यह कौन कह सकता है ? मेरी धारणा है कि देव-समाज की प्रथा अधिक सुखकारक है। परन्तु जो घटनाएँ हमारे चारों ओर घट रही हैं वे तो देव समाज के रहन-सहन और नियमों को विध्वंस करके छोड़ेंगी। ऐसी अवस्था में भगवान् का ही तो भरोसा किया जा सकता है।"

"देखो सुमन !" करण ने अपनी अन्तरात्मा की बात को खोलते हुए कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा इस काम में मन नहीं है। फिर भी मैं जा रहा हूँ। मैं यह देखना चाहता हूँ कि महारानी इन्द्राणी को किसी प्रकार का धोखा देकर कोई बात तो नहीं मना ली गई। फिर भी यदि वे विवाह करने पर स्वेच्छा से तैयार हुईं, तो मैं इसमें कुछ नहीं कर सकूँगा।"

"इसी कारण तो कहती हूँ कि भगवान् की जैसी इच्छा है वैसा ही हो।"

करण अगले दिन यात्रा के लिए तैयार होकर नहुष से अन्तिम आदेश लेने के लिए उसके सम्मुख जा उपस्थित हुआ। वहाँ एक स्त्री पहले ही उपस्थित थी। करण उसको देख चुप खड़ा रह गया। बात नहुष ने आरम्भ की। उसने उस स्त्री का परिचय दिया—"यह महारानी शची की सखी मिलिन्द है। यह देवर्षि नारद का पत्र लेकर आई है और आपको एक सीधे मार्ग से वहाँ ले जाने के लिए साथ जा रही है। अश्वों पर जाने से राजमार्ग पर एक पखवाड़ा लगता है। ये आपको तीन दिन में ले जाएँगी। कहती हैं, मार्ग कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु देवर्षि की आज्ञा है कि यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न होना चाहिए। इनका कहना है कि शायद वहाँ से एक बार और आना पड़े। यदि महारानी जी आने पर तैयार हो गईं तो पहले यहाँ आकर उनके लिए निवास का उचित प्रबन्ध करना होगा।"

करण बिना बोले चुप खड़ा रहा। अब इस परिचय के पश्चात् अपने सम्मुख खड़ी स्त्री को देखकर उसने नमस्कार किया और पूछने लगा—"क्या आप भी घोड़े पर सवार होकर चलेंगी?"

"इसीलिए तो आई हूँ। मैं इस मार्ग पर बीसियों बार आ-जा चुकी हूँ।"

"महाराज! देवीजी को आपको कुछ पुरस्कार देना चाहिए।"

"दे रहा था, परन्तु ये कहती हैं कि जब तक अन्तिम निर्णय नहीं हो जाता तब तक यह यहाँ से कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगी।"

"क्यों?"

उत्तर उस स्त्री ने दिया—"मैं महारानी जी की दासी नहीं हूँ। मैं उनकी सखी हूँ और उनके द्वारा ही महाराज से भेंट ले सकती हूँ।"

करण महाराज से महारानी के लिए एक पत्र, जिसमें करण को उनकी ओर से बातचीत करने का पूर्ण अधिकार लिखा था, लेकर विदा हो गया। मिलिन्द भास्कर की ही स्त्री थी। करण उसके साथ दस सैनिक और लेकर अमरावती से चल पड़ा।

अमरावती से निकलते ही मिलिन्द ने सबको एक भिन्न मार्ग पर चलने के लिए कहा। राजमार्ग छोड़कर यह मार्ग सीधा पश्चिम की ओर जाता था। कुछ दूर जाकर मिलिन्द उन सबको एक और संकीर्ण मार्ग पर ले जाकर चल पड़ी। यह मार्ग एक घने जंगल में से होकर जा रहा था। मिलिन्द सबके आगे थी और करण तथा अन्य अश्वारोही उसके पीछे थे। मार्ग इतना संकीर्ण था कि दो अश्वा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोही एक साथ नहीं चल सकते थे। अमरावती से निकलकर ये लोग अब पहाड़ पर चढ़ाई चढ़ रहे थे। दो प्रहर-भर चढ़ाई चढ़कर ये लोग एक दूसरी वादी में पहुँचे और मार्ग कुछ ढलवान पर जा पहुँचा। यह दल धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। अभी तक ये देवलोक में ही थे कि रात पड़ गई। करण ने मिलिन्द से पूछा—"रात कहाँ ठहरने का प्रबन्ध होगा?"

"यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक मन्दिर है। हम यहाँ ही ठहरा करते हैं। मन्दिर का पुजारी भला पुरुष है। भोजन का प्रबन्ध उसी के द्वारा हो जाएगा।"

इस समय मार्ग ऊबड़-खाबड़ नहीं था। यह एक जंगल में से समतल भूमि पर जा रहा था और करण का घोड़ा मिलिन्द के घोड़े के साथ-साथ चल रहा था। करण दिन-भर की यात्रा से थका होने के कारण और मार्ग में केवल भुने चने खा सकने के कारण अशान्ति अनुभव कर रहा था। मिलिन्द ने उसे शान्ति देने के लिए कहा—"हम पचास कोस आ गए हैं। लगभग इतना ही और चलना है। यदि कोई विघ्न न पड़ा तो कल सायंकाल से पूर्व सीमा पार कर महारानी जी से भेंट कर सकेंगे।"

"नारदजी वहाँ हैं क्या?"

"हाँ, वे महारानी के विदा होने तक वहीं रहेंगे और पश्चात् चक्रधरपुर जाने का विचार रखते हैं।"

"अमरावती आने का नहीं?"

"नहीं! ब्रह्मावर्त में कश्मीर-सेनाओं को कुछ सफलता नहीं मिल रही। इस विषय में भी वह कोई समझौता करवाने के पक्ष में हैं।"

"हमारा तो यह अनुमान था कि देवर्षि बहुत झगड़ालू व्यक्ति हैं। परन्तु यह कार्य तो उन्होंने ऐसा किया है जिससे हमारी पूर्वधारणा असत्य सिद्ध हुई है।"

"देवर्षि जी के सम्बन्ध में आपकी यह धारणा भ्रमपूर्ण थी। देवताओं में सबसे अधिक सन्तुलित बुद्धि रखने वाले वही हैं। अनेक बार संसार भ्रमण करने के कारण उनका मानव-मन का ज्ञान भी अति श्रेष्ठ है। उनके परिणाम प्रायः ठीक ही निकलते हैं।"

"तो यह कार्य, मेरा अभिप्राय शची के विवाह से है, उनकी श्रेष्ठ बुद्धि का श्रेष्ठ कार्य मानती हैं आप?"

मिलिन्द चुप रही। करण को कुछ ऐसा सन्देह हुआ कि वह इस विवाह के पक्ष में नहीं है। इस कारण उसने इस विषय में कुछ और अधिक जानने के लिए उससे पूछा—"आप क्या समझती हैं कि देवलोक का इससे कल्याण होगा?"

मिलिन्द ने बहुत संयत भाषा में उत्तर दिया—"हम लोग इसमें क्या सम्मति रख सकते हैं। वह विवाह मेरा होता तो मैं विचारकर इसमें अपनी सम्मति बनाने का यत्न करती।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण हँस पड़ा और बोला—"आपकी सखी के साथ आपका विवाह भी तो हो सकता है। क्या आयु है आपकी ?"

"देवताओं में आयु का प्रश्न ही नहीं उठता। हमने जीवन का एक रहस्य ढूँढ़ निकाला है। हम काल की लम्बाई में जीवन व्यतीत करने के स्थान इसका गहराई में जाने का ढंग जानते हैं। ऐसी अवस्था में काल तो चलता जाता है, परन्तु हम बूढ़े नहीं होते। हमारे यहाँ एक व्यक्ति पाँच सौ वर्ष जीता हुआ भी युवा रह सकता है। काल व्यतीत हो जाता है, पर जीवन व्यतीत नहीं होता।"

करण इस गणना की पहेली को नहीं समझा। उसको विस्मय में अवाक्मुख अपनी ओर देखते हुए पा मिलिन्द ने कहा—"देखिए महामात्य ! मैं बहुत पढ़ी-लिखी नहीं। इस कारण यह समस्या आपको समझा नहीं सकती। केवल इतना बता सकती हूँ, एक नदी है मानो वह बहता हुआ काल है। संसार के प्राणी उस नदी में बहते जा रहे हैं अर्थात् आयु भोग रहे हैं। कोई योगी उस नदी में बहने के स्थान उसके पार जाने लगता है। वह जल-विहार तो वैसे ही करता है जैसे नदी के जल के साथ बहने वाला कर सकता है। परन्तु अपने योग-बल से वह किनारे के विचार से आगे नहीं बढ़ता। अर्थात् वह योगी संसार का भोग करता हुआ भी बूढ़ा नहीं होता।"

"अर्थात् देवता लोग किसी भी आयु में विवाह कर सकते हैं और संतानोत्पत्ति कर सकते हैं ?"

"हाँ।"

"तो आपकी आयु पूछने की आवश्यकता नहीं और विवाह का प्रस्ताव किया जा सकता है।"

"मैं तो योग नहीं जानती। फिर भी अपने समाज के कुछ ऐसे प्राणियों को जानती हूँ जो ऐसा कर सकते हैं। इन्द्राणी उनमें एक है। इन्द्र भी योगेश्वर है। ब्रह्मा जी भी ऐसे ही एक हैं।"

"मैं इन्द्र, ब्रह्मा और इन्द्राणी तीनों से मिल चुका हूँ। इन्द्र और इन्द्राणी के विषय में कह सकता हूँ कि वे अभी युवा हैं, परन्तु ब्रह्मा तो बहुत बूढ़े प्रतीत होते हैं।"

मिलिन्द हँस पड़ी। उसने पूछा—"इन्द्राणी जी कहती थीं कि आपने इतिहास-पुराण पढ़े हैं। इससे आप जानते होंगे कि महाप्लावन को कितने वर्ष हो गए होंगे ?"

"कम-से-कम बीस सहस्र वर्ष तो हो ही गए होंगे।"

"ब्रह्मा जी प्लावन-पूर्व की सृष्टि के पुरुष हैं। दस सहस्र वर्ष हुए जब उन्होंने कायाकल्प किया था। यह राम के काल की बात है। जब लंकाविजय हो गई, तब उन्होंने सुख का साँस लिया और कायाकल्प कर पाँच सौ वर्ष तक समाधिस्थ हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्राम किया। पश्चात् वे पुनः युवा हो अपना कार्य करते रहे।"

"तो क्या अब वे पुनः कायाकल्प करने का विचार रखते हैं?"

"यह तो वही बता सकते हैं।"

इस समय वे मन्दिर के सम्मुख पहुँच गए थे। यह एक बड़ा-सा अहाता था, जिसके चारों ओर एक दीवार बनी हुई थी। दीवार में भीतर जाने के लिए एक छोटा-सा द्वार था। उस द्वार के सामने मिलिन्द ने अपना घोड़ा खड़ा कर आवाज की—"पुजारी महोदय!"

यह आवाज सुन एक सुडौल पुरुष द्वार के बाहर निकल आया। मिलिन्द को उसने देख प्रणाम कर आशीर्वाद दिया और पश्चात् प्रश्नभरी दृष्टि से करण की ओर देखने लगा। मिलिन्द ने करण का परिचय कराया—"आप महाराज नहुष के महामात्य हैं। आज रात इस मन्दिर में रहेंगे।"

पुजारी ने पुनः प्रणाम किया और उन सबको भीतर आने का निमंत्रण दिया। करण और मिलिन्द घोड़ों से उतर आए और अपने घोड़ों की लगामें अपने साथी सैनिकों को देकर द्वार के भीतर चले गए। पुजारी ने उनके साथ आए सैनिकों को कहा—"आप लोग अपने घोड़ों को खोल दीजिए और इनको आराम कराकर पिछवाड़े की ओर अश्व-शाला में ले जाकर बाँध दीजिए। तब तक आपके भोजनादि का प्रबन्ध हो जाता है।"

चहारदीवारी के भीतर जाकर एक खुले मैदान के बीचों-बीच एक बड़े आगार के चारों ओर कई छोटे-छोटे आगार बने हुए थे। उस गृह के सम्मुख खड़े होकर पुजारी ने आवाज दी—"ओ भामा! ओ भामा!" गृह के पिछवाड़े की ओर से दस-ग्यारह वर्ष की एक लड़की निकल आई और अतिथियों को देख संकोच से एक ओर खड़ी हो गई। उसे आया देख पुजारी ने कहा—"जाओ, माताजी से कहो, बारह आदमियों का भोजन तैयार हो जाए।"

लड़की के चले जाने पर पुजारी ने अतिथियों को कहा—"आइए महाराज!" और उनको बड़े आगार में ले गया।

: ६ :

पुजारी ने मिलिन्द और करण को एक सुसज्जित आगार में ले जाकर बिठाया और कुछ अन्तर पर सामने बैठकर कहा—"इन देवी जी को तो मैं जानता हूँ। यह वर्ष में एक-दो बार इधर से आती-जाती रहती हैं। आपके दर्शन का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है।"

करण ने उत्सुकता से पूछा—"इधर से क्या बहुत लोग आते-जाते हैं?"

"नहीं श्रीमान्! यह मार्ग चालू नहीं है। शीतकाल में वह सामने दिखाई देने वाला पहाड़ हिम से ढँक जाता है और आने-जाने का मार्ग नहीं रहता। साथ ही यहाँ से कुछ अन्तर पर एक नदी पड़ती है। वर्षा ऋतु में उसको पार करना असम्भव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है। इस प्रकार वर्षभर में आठ मास तक यह मार्ग चालू नहीं रहता।"

"आप यहाँ क्या करते हैं?"

"यह यात्रियों के ठहरने के लिए मन्दिर बनाया गया है, परन्तु मार्ग की दुर्व्यवस्था के कारण यात्री बहुत कम आते-जाते हैं। इस मार्ग से प्रायः लोग पैदल जाते हैं। यह ही देवी हैं, जो इस मार्ग पर घोड़े पर सवार होकर आती-जाती हैं। मैंने कई बार इनको कहा भी है कि किसी समय उस पहाड़ की चोटी पर कहीं घोड़ा चमक उठा तो अश्व और अश्वारोही दोनों नीचे खड्ड में गिरकर चकनाचूर हो जाएँगे। पर यह देवी घोड़ा सरपट दौड़ाती हुई चली जाती हैं।"

पुजारी एक बात पूछने पर दस बताता था। करण उसकी बोलने की आदत को समझ उसको विदा कर देना चाहता था। उसने कहा—"तो महाराज! भोजन का प्रबन्ध तनिक शीघ्र करवाइये। हमने दिनभर कुछ नहीं खाया। कुछ कल प्रातः साथ ले जाने के लिए भी चाहिए।"

पुजारी ने कहा—"भगवन्! पुजारिन बहुत चतुर हैं और बहुत ही जल्दी आपको भोजन मिल जाएगा। वह बहुत स्वादिष्ट पाक करती है। जब पेटभर खाइएगा तो रात भली-भाँति सोकर दिनभर की थकावट दूर कर सकेंगे।"

"उस बेचारी की आप भी कुछ सहायता कर दीजिए।"

"इसमें वह अपना अपमान मानेगी। आज तो आप बारह व्यक्ति हैं। एक बार पचास यात्री आ गए थे। और भामा की माँ ने दो घड़ी भर में भोजन तैयार कर परस भी दिया था।"

मिलिन्द ने कहा—"मैं दूसरे आगार में आराम करूँगी।"

विवश हो पुजारी ने उठते हुए कहा—"चलिए!"

"आप चलकर प्रबन्ध करवाइए तो फिर मैं वहाँ चलूँगी।"

इस प्रकार पुजारी को अकेला छोड़कर जाना ही पड़ा। उसके चले जाने पर करण ने मिलिन्द से पूछा—"आप विवाहित हैं क्या?"

मिलिन्द ने मुस्कराकर कहा—"हाँ श्रीमान्! मेरी दो लड़कियाँ हैं। उनके भी विवाह हो चुके हैं। और उनके सन्तान भी हैं।"

"ओह! तब तो आपकी आयु चालीस-पचास के लगभग होगी।"

"हाँ! मैं पैंसठ की हूँ।"

"परन्तु आप घोड़ा तो ऐसे चलाती हैं जैसे आप बीस वर्ष की युवती हों।"

मिलिन्द चुप रही। करण ने कुछ बात आरम्भ करने के लिए कह दिया—"यह पुजारी तो पीछा ही नहीं छोड़ता था।"

"बहुत भला आदमी है। यात्रियों से ही तो इसको बातें करने का अवसर मिलता है। इस कारण कुछ मात्रा से अधिक बोलने की आदत हो गई है।"

करण हँस पड़ा। मिलिन्द ने कहा—"इसमें हँसने की क्या बात है? कभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-आध वर्ष एकान्त में रहकर देखिए तो आपको इस निर्जन वन में रहने वाले के इस स्वभाव का ज्ञान हो जाएगा।"

करण ने पुनः बात इन्द्राणी के विषय में आरम्भ कर दी—"आपकी सखी महारानी जी से मैं मिलने गया था।"

"मैं उन दिनों अपने घर गई हुई थी। लौटने पर आपके आगमन के विषय में ज्ञात हुआ था।"

"उस समय उन्होंने विवाह अस्वीकार कर दिया था।"

"मुझको मालूम है। अब तो नारद मुनि की प्रेरणा का फल हुआ है। इस पर भी वह कुछ शर्तें रखना चाहती हैं।"

"जब विवाह ही होना है, तो क्या शर्तें हो सकती हैं?"

"यह विवाह, एक प्रकार से, दो जातियों के भीतर सन्धि का रूप रखता है। इस कारण सन्धि की भाँति ही उसमें शर्तें होंगी।"

"मैं तो समझ नहीं सका। आप उस पर कुछ प्रकाश डालेंगी क्या?"

मिलिन्द ने मुस्करा दिया। उसको चुप देख करण ने फिर पूछा—"तो आप कुछ नहीं बताना चाहतीं?"

"मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया है कि विवाह मेरा होता तो मैं इस पर अपना मस्तिष्क लड़ाती। मैंने तो इस विषय में कुछ जानने का यत्न ही नहीं किया।"

"इसका अर्थ मैं यह समझता हूँ कि आप अपनी सखी के इस विवाह को पसन्द नहीं करतीं।"

"यह आपने कैसे समझ लिया है? मेरे कहे शब्दों का यह अर्थ तो नहीं निकलता।"

"मैं सब कुछ समझता हूँ। भला यह बताओ, यदि तुम्हारे विवाह का कोई प्रस्ताव करे तो तुम उसके उत्तर में क्या कहोगी?"

"तो यह प्रस्ताव आप करेंगे?"

"मान लो मैं ही करता हूँ। तब?"

"तो सुमन का क्या होगा?"

करण अपनी पत्नी का नाम सुनकर विस्मय में मिलिन्द का मुख देखता रह गया। मिलिन्द उसके मन के भावों का अनुमान लगाकर खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर बोली—"आप विस्मय कर रहे हैं कि मैं उसका नाम कैसे जानती हूँ? नारद जी ने उसको देखा है और पहचाना है। मैंने उसको गोदी में खिलाया है। इन्द्र-भवन के प्रायः सब शिष्ट लोग उससे परिचित हैं।"

"तब तो तुम मुझसे विवाह नहीं करोगी?"

"नहीं। क्योंकि मैं आपको मूर्ख नहीं समझती। सुमन जैसी स्त्री को छोड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी ओर दृष्टि करने वाला पागल कहलाएगा।"

करण चुप रह गया। इस समय पुजारी आ गया। उसके साथ उसकी लड़की थी। उन दोनों के पीछे-पीछे पुजारिन भी आ गई। उन्होंने भोजनशाला में चलने के लिए कह दिया—"श्रीमान् चलिए। भोजन तैयार है।"

करण ने कहा—"हमारे सैनिकों को पहले खिलाना चाहिए।"

"वे खा रहे हैं महाराज ! आप आइए।"

करण और मिलिन्द उठे। हाथ-मुख धो भोजनशाला में जा पहुँचे। भामा रसोईघर में से भोजन-सामग्री ला-लाकर उनके सामने परसने लगी। भोजन स्वादिष्ट था, परन्तु साधारण था। भात था, दाल-भाजी और खीर थी। करण को भूख लगी थी इस कारण उसने पेट भरकर खाया।

खाते समय पुजारी सामने बैठा था और अपनी कथा बता रहा था। उसने बताया—"महाराज ! मेरी आयु साठ वर्ष की है। मैं जब तीस वर्ष का था तब गुरु जी से धर्म-भाषा पढ़कर अमरावती की ओर चल पड़ा। मार्ग में एक कुएँ पर जलपान करते समय भामा की माँ के दर्शन हो गए। प्रथम दृष्टि में ही हम परस्पर प्रेम करने लगे। मैं इसके पिता के पास गया और इससे विवाह कर इन्द्र महाराज के दरबार में जा पहुँचा। महाराज ने मुझको इस मन्दिर में भेज दिया। तब से मैं यहाँ रहता हूँ। बीस वर्ष विवाह को हुए हो गए पर कोई सन्तान नहीं हुई। तब मैं इन्द्र जी की सेवा में पहुँचा, तो श्रीमान् जी ने ओषधि दी और उसके प्रभाव से यह कन्या उत्पन्न हुई। अब यह दस वर्ष की हो गई है। इच्छा थी कि इस बार एक पुत्र के लिए उनके पास जाता, परन्तु वर्तमान महाराज तो यह विद्या जानते नहीं। इस कारण पुत्र की आकांक्षा तो मन की मन में ही रह गई है।"

"पुजारी ! तुम प्रसन्न हो अपने जीवन से ?"

"निस्सन्देह महाराज ! मेरी स्त्री भी बहुत बातें करने वाली है और हम दोनों परस्पर बहुत प्रेम करते हैं। इस कारण हमारी बातें समाप्त ही नहीं होतीं।"

"बहुत भाग्यशाली हो पंडित ! परन्तु क्या तुम्हारी पत्नी तुम्हारी बातें सुनती-सुनती थकती नहीं ?"

"नहीं महाराज ! वह तो मेरी बातें सुनते-सुनते मुग्ध हो जाती है और प्रेम के सम्मोहन मंत्र में संसार की सुध-बुध भूल जाती है।"

करण इस पंडित के संतोष को देख विस्मय करता था। उसने पूछा—"पंडित, आज से पहले यहाँ यात्री कब आए थे ?"

"दो दिन हुए तो यही देवी जी पश्चिम की ओर से आई थीं। रातभर यहाँ रहीं और प्रातःकाल पूर्व की ओर चली गई थीं। इससे पहले तीन मास तक एक पक्षी भी यहाँ नहीं फड़का था।"

"यहाँ खाने-पीने का प्रबन्ध कैसे होता है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"समीपतम गाँव यहाँ से दस कोस पर है और महाराज इन्द्र की आज्ञा से उस गाँव वाले हमारे और यात्रियों के भोजनादि का प्रबन्ध करते थे। जब से राज्य पलटा है मैं मास में एक बार उस गाँव में जाता हूँ और लोगों को कह-सुनकर अपने और यात्रियों के निमित्त ले आता हूँ। बीच में बहुत कठिनाई हो गई थी, परन्तु पिछली बार गाँव वालों ने मन्दिर का भाग देने में प्रमाद नहीं किया। सुना है कि वर्तमान महाराज में और पितामह में मैत्री हो गई है। ब्रह्मा जी के आशीर्वाद से ही खेत हरे-भरे दिखाई देने लगे हैं।"

करण और मिलिन्द ने भोजन कर लिया था। वे हाथ धो विश्राम के लिए तैयार हो गए। पुजारिन आई और मिलिन्द को उसके सोने के आगार में ले गई। जाने से पूर्व मिलिन्द ने करण से कहा—"सूर्योदय होते ही हमको यहाँ से चल देना चाहिए जिससे अपराह्ण में ही हम सीमा पार कर सकें।"

"देवी! बहुत थका हुआ हूँ और पंडितायन जी के स्वादिष्ट भोजन की खुमारी चढ़ रही है। जब नींद खुलेगी तब ही तो चल सकेंगे।"

इस पर भी करण बहुत नहीं सो सका। रात्रि के मध्य में ही उसकी निद्रा में बाधा पड़ी। आँख खोलते ही उसने देखा कि आगार में प्रकाश हो रहा है और कुछ लोग एक सुदृढ़ डोरी से उसके हाथ-पाँव बाँध रहे हैं। जब उसको परिस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसने अपने को छुड़ाने का यत्न किया, परन्तु बाँधने वाले दस व्यक्ति थे और वे बहुत बलिष्ठ थे।

जब करण के हाथ-पाँव बँध गए तो उसको उठाकर वे लोग आँगन में ले आये। वहाँ उसने देखा कि पुजारी की पत्नी और उनकी लड़की भामा तथा मिलिन्द के हाथ-पाँव बाँधकर उन्हें वहाँ पहले ही बैठाया हुआ था। करण के आने पर मिलिन्द ने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। करण स्वयं इसका अर्थ नहीं समझा था। पुजारी की अवस्था तो अति करुणाजनक थी। वह अपनी स्त्री और लड़की को कष्ट में देखकर रो रहा था और कह रहा था—"अरे दुष्टो! इनको क्यों पकड़ रखा है? इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अरे पापियो! निर्दोष स्त्री और बालिका को छोड़ दो।"

यह दयनीय अवस्था देखकर करण ने एक आतताई से पूछा—"तुम कौन हो?"

"अपने स्वामी के सेवक।" उसने उत्तर दिया।

"क्या नाम है तुम्हारे स्वामी का?"

"बताने की आज्ञा नहीं है।"

करण इन उत्तरों को सुनकर क्रोध से पागल हो रहा था, परन्तु हाथ-पाँव बँधे होने के कारण कुछ कर नहीं सकता था। कुछ काल तक चुप रहकर उसने फिर पूछा—"हम सबको पकड़ने का क्या उद्देश्य है तुम्हारा?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं नहीं जानता।"

"अब हमारे साथ क्या करने का विचार है?"

"स्वामी के पास ले जाने का।"

"कब तक?"

"अभी आपके अंगरक्षकों को भेज रहा हूँ। सब लोग एक ही स्थान पर नहीं जा रहे।"

करण विस्मय में देखता रहा। एक घड़ी भर की प्रतीक्षा के पश्चात् पकड़ने वालों के दस साथी और आए और पुजारी-पुजारिन और भामा को उठाकर ले गए। एक घड़ी पश्चात् फिर आए और करण तथा मिलिन्द को उठाकर उन्हीं के घोड़ों पर लादकर और वहाँ बाँधकर अँधेरे में चल दिए। जंगल में वे लोग इनको ले जा रहे थे। उनके पास प्रकाश करने को कुछ नहीं था। फिर भी वे ठीक मार्ग पर ही जा रहे थे। वे भटक रहे प्रतीत नहीं होते थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे उस स्थान और मार्ग से भली-भाँति परिचित थे। जंगल से वे पहाड़ी की चढ़ान पर चढ़ने लगे। घोड़ों के पाँव घास पर न पड़कर पत्थरों पर पड़ रहे थे। दो घड़ी चलने के पश्चात् वे एक पहाड़ की गुफा में गए। यहाँ भी उनको प्रकाश की आवश्यकता न पड़ी। वे अँधेरे में चलते गए। घोड़ों के पाँवों से उत्पन्न शब्द की गूँज से यह पता चल रहा था कि वे किसी कंदरा में से जा रहे थे। इस गुफा में कुछ दूर तक चलने पर इससे बाहर निकले। आकाश में पुनः तारे दिखाई देने लगे तो करण समझ गया कि वे गुफा पार कर किसी बस्ती में पहुँच गए हैं। मार्ग पुनः ढालू आरम्भ हो गया था। उषाकाल का धीमा प्रकाश तारागण के ओज को फीका करने लग गया था। कुछ समय उपरान्त वे एक घर के बाहर आ पहुँचे। वहाँ प्रकाश था और कुछ लोग इनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। इनके वहाँ पहुँचते ही उन्होंने इनके बंधन खोल डाले और इन्हें घोड़ों से नीचे उतारकर भूमि पर खड़ा कर दिया। अब इनको पूर्णतया मुक्त कर उस घर के भीतर ले गए। वहाँ एक आगार में करण को ले जाकर विश्राम करने के लिए कह दिया गया और मिलिन्द को एक अन्य आगार में ले गए।

करण इस रहस्यमय घटना का अर्थ समझने में लीन, बिस्तर पर जो उसके लिए लगा हुआ था, लेटा रहा। उसकी आँखों ने एक भी झपकी नहीं ली।

: ७ :

सुमन के मन में इन्द्राणी के नहुष से विवाह के लिए तैयार हो जाने पर घोर संघर्ष चल पड़ा था। वह अत्यन्त उत्सुकता से अपने पति के उससे मिलकर वापस आ जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। वह सोचती थी कि शची के मन में यह विकार किस कारण उत्पन्न हुआ। देवताओं में शची के लिए भारी मान था। यह माना जाता था कि वे आदर्श सती साध्वी थीं और उनके मन में लेशमात्र भी पाप नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचर सकता, फिर यह कैसे हुआ ? सुमन नहीं समझ सकी ।

इससे भी अधिक वह नारद के व्यवहार पर विस्मय कर रही थी । नारद ने उसको इस प्रकार की प्रेरणा क्योंकर दी ? वह यह सब कुछ समझने में अशक्त थी । शची का एक विजेता के साथ विवाह के लिए तैयार हो जाना, उसके घोर पतन का सूचक था ।

अपने जीवन को नीरस पा वह बच्चों से नाराज होने लगी । तनिक-सी बात पर उनकी ताड़ना करने लगती थी । और बच्चे अपनी माँ के इस व्यवहार पर बितर-वितर माँ का मुख देखते रहते थे ।

जिस दिन करण अमरावती से गया, उसी दिन सायंकाल प्रतिहार ने द्वार खटकाकर उसको सूचना दी कि एक पुरुष और स्त्री उससे मिलने आए हैं । वह बाहर देखने आई तो नारद को एक युवती के साथ खड़ा देख, चकित रह गई । उसकी सूचना के अनुसार नारद वहाँ से सैकड़ों कोस दूर शची के साथ उसको पतित करने की योजना में सहयोग दे रहा था । इस कारण वह समझ नहीं सकी कि वह सत्य ही नारद को देख रही है, अथवा उसको प्राप्त हुई सूचना मिथ्या थी । सुमन को चुप देख नारद ने मुस्कराकर पूछा—"सुमन बेटी ! क्या देख रही हो ? क्या हमें भीतर आने का निमंत्रण नहीं दोगी ?"

"आइए !" सुमन ने चेतते हुए कहा—"मैं तो कुछ और ही विचार कर रही थी, आइए बहिन जी !" सुमन ने साथ में आई स्त्री को संबोधन किया ।

उनको भीतर कर, द्वार बन्द कर सुमन ने प्रश्न भरी दृष्टि से उस स्त्री की ओर देखा । नारद ने साथ आई स्त्री को बैठने का आग्रह कर सुमन से कहा—"सुमन ! करण कहाँ है ?"

"तो आप नहीं जानते कि वे कहाँ हैं ? आपने पत्र नहीं भेजा था महाराज को जिसमें उनको कोई विश्वस्त दूत भेजने को कहा था ?"

"तो महाराज ने उनको भेज दिया है ? मैं तो समझता था कि आजकल महाराज उनसे प्रसन्न नहीं हैं । मेरा विचार था कि ऋषि जाबाल को भेजेंगे ?"

"यह क्या रहस्य है देवर्षि ? मेरी तो बुद्धि में यह समा नहीं रहा ।"

"मैं तो करण से मिलने आया था । इनको भी उन्हीं से मिलाने के लिए लाया था ।"

"वे तो हैं नहीं । आज प्रातः ही चले गए हैं । मैं यदि कुछ इनकी सेवा कर सकूँ तो आज्ञा दीजिए ।"

नारद कुछ काल के लिए सोच में पड़ा रहा । पश्चात् सतर्क हो उसने कहा—"सुमन ! तुम देवकन्या हो न ?"

"इसमें आपको सन्देह है क्या ? क्या मेरी माता के विषय में आपने कुछ बुरा-भला सुना है ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हरे ! हरे ! ! यह बात नहीं सुमन ? मेरा पूछने का अभिप्राय यह था कि तुम्हारा हित देवताओं के साथ है न ?"

"मैं अपने पति की सती पत्नी हूँ ?"

"करण म्लेच्छ नहीं है । वह, उसकी माँ और उसका पिता सब आर्य हैं ।"

"मैं तुम्हारे सम्मुख एक रहस्योद्‌घाटन करने के विचार से यह पूछ रहा था । करण से भी इसी दृष्टि से बातचीत करने आया था । नहुष के मन की बात को न जानने के कारण यह अनुमान नहीं लगा सका कि करण ही शची के पास भेज दिया जाएगा ।

"यूँ तो तुम पर विश्वास ही था और तुमसे यह आशा लेकर आया था कि तुम करण को हमारे अनुकूल ही सम्मति दोगी । अब वह नहीं है । इस कारण तुमसे एक रहस्य को अपने मन में सुरक्षित रखने के विचार से उक्त प्रश्न किया था । मैं तुम पर विश्वास रखकर ही इस देवी का परिचय दे रहा हूँ । ये हैं कश्मीर के महाराजा देवनाम की सुपुत्री देवयानी । इनके पति विक्रमदेव ने गान्धारों को ब्रह्मावर्त से भगाकर सिन्धु के तट तक धकेल दिया है । ये अब देवलोक से गान्धारों को निकालने के लिए आई हैं । और हम देवताओं से हित रखने वाले प्रत्येक से आशा करते हैं, वह इनको अपना सहयोग देगा ।"

सुमन देवयानी का नाम सुन अपने स्थान से उठ अचम्भे में उसे देखने लगी । देवयानी उसे इस अवस्था में देख मुस्करा रही थी । जब सुमन समझ गई तो हाथ जोड़ नमस्कार कर बोली—"यहाँ आपका इस प्रकार चले आना भयरहित नहीं है ।"

"सुमन बहन ! बिना भय लिये भला कोई कार्य हो सकता है ? देवलोक का उद्धार कोई साधारण बात नहीं । क्या इसके लिए भारी त्याग और बलिदान की आवश्यकता अपेक्षित नहीं है ?"

"पर आपके देश के पुरुष क्या कर रहे हैं, जो उनकी राजकुमारी को इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है ?"

"वे भी यहाँ हैं । और मैं उनके पथप्रदर्शन और उत्साहवर्द्धन के लिए यहाँ चली आई हूँ । मुझको सूचना मिली थी कि देवताओं और गान्धारों में खुलकर युद्ध होने लगे हैं, इस कारण युद्ध करने वालों को मार्गदर्शन के लिए किसी की आवश्यकता थी । सो मैं चली आई हूँ ।"

सुमन का मन इन लोगों के भावी कार्य-क्रम को जानने के लिए व्याकुल हो उठा, परन्तु उत्सुकतावश वह समझ नहीं सकी कि क्या और कैसे पूछे । इस कारण वह देवयानी की बातों पर आश्चर्य कर रही थी । देवयानी ने उसके अनिश्चित मन को देख, कहा—"सुमन बहन ! बैठोगी नहीं क्या ? तुम चाहती हो हम उठकर चल दें ?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नही।" सुमन ने बैठते हुए कहा—"नहीं। मेरा यह अभिप्राय नहीं है। वास्तव में आपकी सब बातें मेरे लिए नई हैं। और मैं इनके अर्थ न समझ सकने से नहीं जानती कि मैं क्या कहूँ, अथवा क्या करूँ ?"

"देखो सुमन !" देवयानी ने कहा—"यदि तुम्हारे पति होते तो हम उनसे अपनी योजना में बहुत सहायता ले सकते थे। परन्तु घटनावश वे यहाँ नहीं हैं। इस कारण वह सहायता, जिसकी हम आशा कर रहे थे, अब नहीं मिल सकती। परन्तु आपसे, जैसे अन्य देवताओं की स्त्रियों से भी, मैं मिल रही हूँ, और उन्हें समझा रही हूँ, कहती हूँ कि सब हमारी योजना से सहानुभूति रखें और समय पड़ने पर, जिस किसी प्रकार से भी हो सके, हमारी सहायता करें।"

"क्या सहायता कर सकती हैं हम ?"

"यह अभी नहीं बता सकती। समय आने पर प्रत्येक से कुछ न कुछ काम लिया ही जाएगा। अब आप लोगों के उद्धार का समय निकट आ गया है। आप सब स्त्री-पुरुष, दोनों को तैयार हो जाना चाहिए। जीवन से अधिक प्रिय मान की रक्षा के लिए कुछ करने का समय आ गया है। योजना के अन्य अंग हम फिर बताएँगे। इतना स्मरण रखना चाहिए कि मुक्ति का समय निकट ही है।"

इतना कह देवयानी विदा होने के लिए उठ पड़ी। इस समय सुमन ने पूछा—"मैंने तो देवर्षि से कई बातें पूछनी हैं। आप बैठिए न। आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?"

नारद ने कहा—"मैं कल किसी समय मिलकर तुम्हारे पति के विषय में कुछ बताऊँगा। इतना तुमको समझ लेना चाहिए कि किसी प्रकार चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है।"

"परन्तु मैं तो महारानी जी के विषय में जानना चाहती थी। आपने यह क्या किया है ? एक ओर तो देवलोक के उद्धार की बात करते हैं, दूसरी ओर महारानी को इस पशु की पत्नी बनाने का यत्न कर रहे हैं ? यह सब क्या है ? मैं तो यह विचार कर पागल हुई जाती हूँ।"

"तुम सत्य कहती हो। वास्तव में यह चिन्ता का विषय है, परन्तु तुम कल तक धैर्य नहीं रख सकतीं क्या ? करण के जाने का मुझको ज्ञान नहीं था। कल तक सब पता चल जाएगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सब ठीक होगा। वैसा ही जैसा होना चाहिए।"

सुमन चुप रह गई। नारद और देवयानी, यह कह कि कल हम पुनः मिलेंगे, विदा हो गए।

देवयानी तथा नारद जब राजभवन से निकल आए तो विचार करने लगे कि करण का शची के लिए जाना ठीक हुआ है अथवा नहीं। नारद ने कहा—"मैं समझता हूँ कि करण के चले जाने से कोई हानि नहीं हुई। मिलिन्द इतनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर है कि जाबाल के स्थान पर करण के होने पर समझ जाएगी कि क्या बात करनी चाहिए। रहा उसके यहाँ होने से लाभ की बात! यह सन्दिग्ध थी। वह हमारी योजना में सम्मिलित होता अथवा न होता, कहा नहीं जा सकता था। अब उसकी अनुपस्थिति में सुमन से जो कार्य लेना है, सुगमता से लिया जा सकेगा। सुमन पर मुझको अधिक भरोसा है। उससे कल मिलूँगा और सब बात स्पष्ट कर लूँगा।"

"अब सब बात इतनी निकट आ गई है कि इसमें तनिक-सी भूल से सारा कार्य बिगड़ सकता है।"

"देखो देवी!" नारद ने कहा—"हम अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न और ध्यान-पूर्वक कार्य करते रहे हैं। फिर भी सफलता न मिली तो क्या किया जा सकता है? भगवान् को जैसा स्वीकार होगा, वही होगा।"

देवयानी ने अपने पुत्र को अपने माता-पिता के पास छोड़ दिया था। वह अब एक वर्ष का हो चुका था। स्वयं अपने निश्चयानुसार नहुष को दण्ड देने के लिए देवलोक में चली आई। उसको देवलोक में आए दो सप्ताह के लगभग हो गए थे और उसके आने पर कश्मीर-सैनिकों का उत्साह दुगुना हो गया था। इसके अतिरिक्त और सैनिक भी कश्मीर से आ पहुँचे थे जो अमरावती में भिन्न-भिन्न स्थानों पर छा चुके। इन सबके खाने-पीने का प्रबन्ध कश्मीर से आई दुकानें कर रही थीं। खर्च कश्मीर राज्य दे रहा था।

प्राय: नित्य रात को गुप्त स्थानों पर सभाएँ होती थीं जिनमें देवता और कश्मीर-सैनिक, जो देवलोक के उद्धार की योजना में सहयोग दे रहे थे, आते थे और अपने नायकों को कार्य के लिए तैयार कर रहे थे। देवताओं को बताया जा रहा था कि इन्द्राणी को नहुष विवश कर रहा है कि उससे विवाह करे। यह हम नहीं होने देंगे। इसमें देवताओं का अपमान है। कश्मीर-सैनिकों को बताया जाता था कि कार्य अन्तिम स्थिति तक आ पहुँचा है और अब इसको समाप्त होने में दो-तीन सप्ताह से अधिक नहीं लगेगा।

सुमति और देवयानी देवलोक की स्त्रियों में घूम-घूमकर उनको गान्धार-सैनिकों से सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए आग्रह कर रही थीं। इस सब प्रचार का परिणाम यह हो रहा था कि कहीं गान्धार-सैनिकों का अपनी देवपत्नियों से झगड़ा होने लगा था और कहीं-कहीं तो मार-कुटाई की नौबत आ जाती थी। एक-दो गान्धारों को तो उनकी पत्नियों ने मार ही डाला था।

इन सबकी सूचना नहुष के पास जाती थी, परन्तु वह शची की प्रतीक्षा में था। और ऐसे समय जब वह आने वाली थी, नगर में किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा होने देना उचित नहीं मानता था। इस कारण दिन-प्रतिदिन देवताओं का साहस बढ़ता ही जाता था और गान्धार उत्साहरहित होते जाते थे।

अगले दिन एक देवता सुमन के पास नारद का पत्र लाया। उसमें लिखा था—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेटी सुमन ! पत्रवाहक के साथ चली आओ तो तुमको अपने मन के सन्देहों का उत्तर मिल जाएगा। मैंने इस समय तुम्हारे घर में आना उचित नहीं समझा। अपने बच्चों को लेती आना। कल रात वे सो रहे थे। कोई उनसे मिलना चाहता है।"

सुमन अपने पति के विषय में पूर्ण सूचना चाहती थी। इस कारण पत्र पाते ही बच्चों को लेकर पत्रवाहक के साथ ही वह चल पड़ी। वह पत्रवाहक उसको अपने साथ नगर के एक देवता के मकान पर ले गया। वहाँ नारद, देवयानी और सुमति और अन्य कई महिलाएँ और पुरुष बैठे विचार कर रहे थे। सुमन को आया देख नारद उठकर उसको एक पृथक् आगार में ले गया। वहाँ सुमन को बिठाकर उसने कहा—"रात तुम अपने पति के विषय में समाचार प्राप्त करने की इच्छुक थीं। मैंने आज पूर्ण समाचार प्राप्त कर लिया है। करण आज सायंकाल तक इन्द्राणी के निवासस्थान पर पहुँच जाएगा। वहाँ पर जो वार्तालाप होगा उसका समाचार यहाँ नहुष के पास आएगा। तब महाराज नहुष इन्द्राणी को लिवाने के लिए स्वयं जाएँगे और पश्चात् दोनों का विवाह होगा। यह जाबाल ऋषि ने मुझको बताया है।"

"पर देवर्षि ! पत्र तो आपने लिखा था कि महारानी नहुष से कुछ शर्तें करना चाहती हैं ?"

"हाँ, वह पत्र मैंने ही लिखा था, परन्तु जैसा महर्षि जाबाल ने कहा था वैसा ही लिख दिया था। फिर भी हमारा विचार है कि हम इस विवाह को रोकने में सफल होंगे।"

"पर यदि इन्द्राणी की ही विवाह की इच्छा हुई तो क्या होगा ?"

"सुमन ! तुम उसको मूर्ख समझती हो क्या ? तुमसे तो वह कई गुणा अधिक समझदार और अनुभवी है। मुझको उस पर विश्वास है।"

"तो माणिक्य के पिता जब महारानी के पास पहुँचेंगे और वहाँ आपका पत्र तथा महाराज नहुष का पत्र दिखाएँगे तो क्या होगा ?"

"वे मेरे पत्र पर विश्वास नहीं करेंगी क्योंकि मेरा असली पत्र भेजा नहीं गया। नहुष का पत्र पढ़कर उसके लिखने वाले को मूर्ख मानेगी। फिर भी महर्षि जाबाल का कहना है कि महारानी मान जाएगी।"

"तो !"

"तो बात स्पष्ट है कि पूर्व इसके कि कोई घटना घटे, हम नहुष के राज्य का ध्वंस कर देना चाहते हैं। उसी में तुम्हारी सहायता चाहते हैं।"

"क्या सहायता चाहते हैं आप मुझसे ?"

"समय आने पर बताऊँगा। तुम अपने मन को दृढ़ कर कार्य करने के लिए तैयार रहो।"

इन सब सूचनाओं से सुमन को शान्ति नहीं मिली। वह विचार कर रही थी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जाबाल ऋषि के कहने पर नारद ने पत्र भेजा है। नारद को विश्वास है कि शची विवाह के लिए नहीं मानेगी, परन्तु जाबाल को इससे विपरीत बात का विश्वास है। फिर यहाँ नहुष के राज्य को उलट देने के लिए किसी प्रकार का षड्यंत्र चल रहा है, इसमें उसके पति की क्या अवस्था होगी? इन्द्राणी उसके वहाँ पुन: उसी विचार से जाने पर क्या विचार करेगी और इस बात की क्या प्रतिक्रिया उसके मन पर होगी? वह कुछ समझ नहीं सकी थी, इस कारण कुछ काल तक विचारकर उसने कहा—"देवर्षि! आप मेरे पितातुल्य हैं। आपकी बात मैं टाल नहीं सकती। आप जो भी मुझको करने को कहेंगे, करूँगी। इस फिर भी मैं आपको अपने मन का सन्देह बता देना चाहती हूँ। मुझको उनके इस कार्य के लिए जाने में कल्याण प्रतीत नहीं होता। यह सब जाबाल ऋषि और आपका रचा हुआ एक मिथ्या जाल प्रतीत होता है और मुझको भय है कि वे ही इस जाल में फँस जाएँगे।"

नारद ने सुमन को कहा—"जाबाल ऋषि क्या समझते हैं, मैं नहीं बता सकता। मैं अपने विषय में बता देना चाहता हूँ कि मैंने जाबाल ऋषि को अमरावती से निकाल देने का षड्यंत्र किया था। उसको किसी प्रकार से हानि पहुँचाने का नहीं।

"इस कारण मुझको अपने इस कहने में किंचित्मात्र भी सन्देह नहीं कि करण-देव का बाल भी बाँका नहीं होगा। तुम इतनी बुद्धिमान् होते हुए भी इस भ्रम में क्यों पड़ी हो? प्रथम, मेरी योजना में कोई छिद्र नहीं है। जाबाल ऋषि के स्थान पर करणदेव के चले जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ा और उस योजना में जाबाल ऋषि के अनिष्ट का कोई विचार नहीं था। दूसरी बात यह कि महारानी शची करण के लिए आदर और प्रशंसा का भाव रखती हैं। इस कारण करण के लिए किसी भी अनिष्ट की कोई भी सम्भावना नहीं।

"अब तुम जाओ। जो कुछ भी मैंने कहा है देवताओं का हित विचारकर कहा है। किसी से कहना नहीं। कुछ ही दिनों में तुम्हारे पास कोई सन्देश पहुँचेगा। उसका पालन करना।"

नारद द्वारा सांत्वना दिए जाने पर वह आगार से बाहर आई तो माणिक्य और परा को देवयानी की गोदी में खेलते देख हँस पड़ी। माणिक्य ने माँ को हँसते देख कहा—"ये कहती हैं कि मेरी मौसी हैं।"

"तुम क्या कहते हो?"

"ये बहुत अच्छी हैं।"

सुमन देवयानी की ओर देख हँस पड़ी। इस समय परा ने अपने गले में एक मोतियों की माला दिखाकर कहा—"मौसी ने मुझको दी है।"

सुमन ने कृतज्ञताभरी दृष्टि से देवयानी की ओर देखा और लड़की को गोद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लेकर मुख चूमते हुए कहा—"तुमने मौसी का धन्यवाद किया है या नहीं ?"

"हाँ। पर ये कहती हैं, इसकी आवश्यकता नहीं है। सुन्दर लड़कियों को मालाएँ मिलती ही हैं।"

: ८ :

करण के जाने के एक सप्ताह पश्चात् एक कश्मीर-सैनिक करण का एक पत्र लेकर आया और नहुष के सामने उपस्थित होकर उसको पत्र दे दिया। पत्र में लिखा था—"श्रीमान् महाराजाधिराज के चरणों में करण का प्रणाम पहुँचे !

"महारानी जी से बातचीत हुई है। वे अमरावती में आकर रहने के लिए तैयार हैं। मेरे आने से पूर्व तो वे यह समझती थीं कि उन्हें अमरावती में रहकर पारद यन्त्रों का संचालन करना होगा। जहाँ तक विवाह का सम्बन्ध है, वे चाहती हैं कि उनके लिए पृथक् मकान हो। आप उनसे मिल सकते हैं और जब उनको विश्वास हो जाएगा कि आपका प्रेम उनसे अत्यन्त ही अधिक है, तो वे विवाह के लिए तैयार हो जाएँगी। मैंने उनको कहा कि विवाह के बिना उनका अमरावती में रहना राजनीतिक विचार से उचित नहीं है। विवाह पहले होगा और उसके बाद उनको अमरावती में रहने की सुविधा मिलेगी। बातचीत के उपरान्त हम निम्न शर्तों पर एकमत हुए हैं। यह एकमत भी अन्तिम नहीं है। आप जब तक स्वीकार नहीं करते, तब तक कुछ नहीं माना जाएगा। मैं इसी स्थान पर हूँ। कारण यह कि महारानी जी के विचार परिवर्तित हो जाने का भय है।

"यदि आपको शर्त स्वीकार हों तो आप तुरन्त यहाँ आ जाएँ। एक दूत पहले भेज दें जिससे आपके सीमा पर पहुँचने की तिथि और समय का पता चल सके। हम आपको कश्मीर राज्य की सीमा पर मिलेंगे और वहाँ से आप महारानी जी के साथ अमरावती आ सकेंगे।

"शर्तें इस प्रकार हैं—

१. अमरावती की मान-मर्यादा के विचार से वे चाहती हैं कि आप उनको लेने के लिए स्वयं आएँ। आप वर के रूप में आएँ न कि एक विजेता के रूप में। अर्थात् सेना लेकर नहीं प्रत्युत अकेले आना चाहिए।

२. आप एक ऐसे रथ पर सवार होकर आएँ, जैसा आज तक किसी भी देवता ने प्रयोग में न लाया हो।

३. वे यहाँ एक रथ तैयार करवा रही हैं और उसमें कश्मीर-सीमा तक आएँगी। वहाँ आपसे भेंट होगी और पश्चात् उसी रथ में बैठकर आपके साथ अमरावती जाएँगी।

४. विवाह कराने के लिए ब्रह्मा जी आएंगे और उनके आशीर्वाद से ही भविष्य में राज्य-कार्य होगा।

५. वे आपसे पृथक् एक भवन में रहेंगी और वहाँ वे आपसे मास में एक बार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेंट किया करेंगी।

"कृपया तुरन्त सूचित कीजिए कि किस दिन आप सीमा पर पहुँच रहे हैं जिस से उसी दिन उचित समय पर हम भी वहाँ पहुँच सकें। आपका कश्मीर राज्य में आना उचित नहीं। यहाँ यह प्रबन्ध गुप्त रखा जा रहा है।"

नहुष इस पत्र के मिलने से अत्यन्त प्रसन्न था। उसने ऋषियों और मन्त्रीगण की तुरन्त एक बैठक बुलाई और उसमें पत्र पर विचार आरम्भ हुआ। सभा में सभी इस पत्र पर अत्यन्त प्रसन्न प्रतीत होते थे। सबका विचार था कि शची के देवलोक में आ जाने से और नहुष की पत्नी बनना स्वीकार करने से, देवताओं और गान्धारों में संघर्ष समाप्त हो जाएगा। शची से नहुष को पारद-रहस्य मिल जाएगा और देवताओं और गान्धारों से मिश्रित परिवार देवलोक में शासक बन जाएगा।

नहुष को केवल एक शर्त पर आपत्ति थी। वह यह कि वह मास में केवल एक बार महारानी से भेंट कर सकेगा, परन्तु ऋषियों ने उसको समझाया। उन्होंने बताया कि इस प्रकार की बातें विवाह से पूर्व नहीं की जातीं। ये तो पति-पत्नी परस्पर एकान्त में निश्चित करते हैं।

सबसे कठिन प्रश्न वाहन का था। शर्तों में एक यह भी थी कि नहुष ऐसे वाहन पर सवार होकर आए जैसा पहले कभी भी किसी के द्वारा प्रयोग में न आया हो। देवता लोग अनेक प्रकार के वाहनों की सवारी करते थे। चूहों और चिड़ियों से लेकर सिंहों तथा हाथियों तक को वे इस अर्थ प्रयोग में ला चुके थे। इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ और अन्त में वाहन-निर्माताओं को बुलाया गया और उनको आज्ञा दी गई कि वे कोई ऐसे वाहन की योजना बनाएँ, जो महारानी जी की सन्तुष्टि कर सके।

नहुष ने करण को उसके पत्र का उत्तर दिया। इसमें उसने लिखा—"मेरे बुद्धिमान् महामन्त्री ! तुम्हारे प्रयास की सफलता के लिए बधाई देता हूँ। महारानी जी की सब शर्तें स्वीकृत हैं और मैं एक-दो दिनों में यहाँ से चल दूँगा। वाहन तैयार किया जा रहा है। यह यत्न किया जा रहा है कि यह पूर्वरचित विमानों से सर्वथा भिन्न तथा सर्वथा विलक्षण हो। मेरे सीमा पर पहुँचने से दो दिन पूर्व आपको समय तथा दिन की सूचना मिल जाएगी।"

जो दूत पत्र लेकर आया था वही उत्तर लेकर चला गया और उसके जाने के उपरान्त वाहन की तैयारियाँ होने लगीं। वाहन-विशेषज्ञों ने इस प्रश्न पर विचार-विनिमय आरम्भ कर दिया। रथ का स्वरूप और उसको खींचकर ले जाने के लिए जानवरों पर विचार होने लगा। विशेषज्ञों में देवता कलाकार और कुछ गान्धार थे। ऋषियों में से इस गोष्ठी में जाबाल भी थे।

रथों के बहुत स्वरूप प्रस्तावित हुए, परन्तु एक-एक कर सब ही अस्वीकृत हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। कुछ तो इस कारण कि उन पर सवारी करना सुखप्रद नहीं था। कुछ इस कारण कि वैसा वाहन किसी देवी-देवता का पहले भी था। अन्त में एक कलाकार देवता ने एक अनुपम वाहन का स्वरूप चित्रित कर विचारार्थ रखा। यह सिंह के मुख वाला, अजगर के पेट वाला और छिपकली के समान दुम वाला जन्तु था। इसके दस पग थे। यह जन्तु लकड़ी, कपड़ा और धातु का बनना था और इस पर सागर के जन्तुओं का रंग होना था। इस रथ को ले जाने के लिए यह प्रस्ताव था कि इसको मनुष्य उठाएँगे, परन्तु जाबाल ऋषि का कहना था कि मनुष्य तो राजाओं की पालकियाँ उठाते ही हैं। इस पर यह प्रस्ताव किया गया कि चूंकि पालकियाँ उठाने वाले प्रायः अनपढ़ और निर्धन लोग होते हैं, इस कारण इस रथ को ले जाने वाले विद्वान्, वेदवेत्ता, ऋषि होने चाहिए। इस प्रस्ताव पर गान्धार अति प्रसन्न हुए। जाबाल मुख देखता रह गया और देवता चुप रहे। अधिक विवादोपरांत जब अन्य कोई उपाय न सूझा तो इस बात का अन्तिम निर्णय हो गया। महाराज के रथ को खींचने के लिए बीस ऋषि ढूँढ़े जाने लगे जो दस-दस की बारी से रथ ले जा सकें। इस खोज में यह यत्न किया गया कि वे योग्य से योग्य विद्वान् हों, जो वेद-वेदांगों के ज्ञाता हों और जो वेदगान करते हुए वाहन को खींचें।

वाहन का निर्माण होने लगा तो नगर में समाचार फैल गया। शची के विषय में भी जनता के विचार प्रकट होने लगे। लोग परस्पर कानाफूसी करने लगे और नारद के साथी लोगों को कहने लगे कि इस महापातकी कार्य के सम्पन्न होने के पूर्व ही इस राज्य का ध्वंस कर देना चाहिए।

जो लोग उतावले हो गए थे वे देवयानी से यह माँग करने लगे कि अब तो पानी नाक तक आ गया है। इससे अधिक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। जिस राज्य में विद्वान् वेदवक्ता ऋषियों से कुलियों के समान व्यवहार किया जाए, जहाँ सती-साध्वी स्त्रियाँ स्वेच्छा से पतिता बनने लगें, वहाँ रहना अधर्म है। देवयानी को बहुत कठिनाई प्रतीत हो रही थी कि किस प्रकार देवताओं को शान्त रखा जाए। उसका कहना था—"मैं यह सब कुछ देख रही हूँ। मैं भी अनुभव करती हूँ कि अब और सहन नहीं किया जा सकता। ऐसी दासता को दूर करते-करते मृत्यु भी हो जाए, तो हमको उसका स्वागत करना चाहिए।

"आप लोग विश्वास रखें कि हम उचित समय पर उचित कार्यवाही अवश्य करेंगे। आप अपने भाग का कार्य करने के लिए तत्पर रहें।"

वास्तव में नारद और देवयानी नहुष के जाने के कार्यक्रम की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे थे। रथ बनने में तीन दिन निकल गए। सिंहमुखी अजगर बनाया गया। उसकी पीठ पर एक छत्र के नीचे नहुष के बैठने के लिए आसन था। यह कृत्रिम जन्तु ऐसा बना कि देखने वाले इसको असली होने का विश्वास करने लगते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। इस अजगर को खींचने के लिए ऋषि, जो युवा, सुदृढ़ और मधुर स्वर में वेद-पाठ कर सकते थे, चुन लिये गए। इनमें कश्यप, भृगु, पुलस्कर, अगस्त्य इत्यादि ऋषि भी सम्मिलित थे। इनमें से कश्यप देवताओं का गुरु था और उसके लिए देवताओं में भारी सम्मान था।

जब यान तैयार हो गया तो नगर के लोग इसको देखने गए। यह राजभवन के सम्मुख प्रदर्शनार्थ रखा हुआ था। देखने वाले कलाकारों की प्रशंसा किए बिना नहीं रहते थे। फिर भी देवता इसको देखकर रक्ताश्रु बहाते थे। वह अब दो वर्ष के नारद और उसके साथियों के प्रचार से अपने मान-अपमान का अनुभव करने लगे थे।

जब इस यान को खींचकर चलने वाले ऋषियों के नाम घोषित किए गए, तो देवताओं के मन विषाद से भर गए। उसी रात कश्मीर-सैनिकों को बुलाकर यह आदेश दे दिया गया कि उनको अन्तिम प्रयास के लिए तैयार रहना चाहिए। साथ ही साधारण देवताओं से कहा गया कि वे सहस्रों की संख्या में महाराज नहुष की सवारी में सम्मिलित हों और जब उनको संकेत मिल जाए तो नहुष और उनके साथियों का काम तमाम कर दें।

सैनिकों को कहा गया कि वे सब नगर की मण्डी में सवारी के स्वागत के लिए एकत्रित हो जाएँ। वहाँ उनके नेता उपस्थित होंगे और वे आज्ञा करेंगे। देवताओं में से युवकों को कहा गया कि वे मण्डी में एकत्रित रहें और सवारी के समय नेता-गणों के संकेत की प्रतीक्षा करें।

जिन ऋषियों को यान को खींचकर ले जाना था वे एक दिन पहले अपने-अपने भवन से बुला लिये गए और उनको यान चलाने का और चलाते-चलाते वेदगान करने का अभ्यास कराया गया। इस प्रकार अभ्यास कराकर उनका कार्य उनको समझा दिया गया और उनको उस रात भवन में रखा गया, जिससे उनमें से कोई भाग न जाए।

रात के समय सब ऋषि भवन के विशाल आगार में रखे गए। जब रात के भोजन के पश्चात् आगार में विश्राम के लिए गए तो वे अपने दुर्भाग्य और इस अपमानजनक कार्य पर विचार करने लगे। उनमें से प्रायः सभी अपने भगवान् को और अपने दुर्भाग्य को कोस रहे थे। कुछ तो उन ऋषियों को गाली देते थे, जिन्होंने नहुष की सहायता करने का वचन दिया था और जिन्होंने ब्रह्मा से जीवित पारद दिलवाया था। इनमें प्रमुख अगस्त्य ऋषि था। उसने अपने ऊपर लगाए गए आरोपों का उत्तर दिया। उसने कहा—"विद्वद्वर! हमने देवलोक में बढ़ रहे अनाचार और दुराचार को रोकने का यत्न किया है। यह यत्न बिना नहुष की सहायता के नहीं हो सकता था। इस कारण जनता में चरित्र की स्थापना के लिए हमने नहुष की सहायता की और उसके राज्य में सुख और शान्ति के लिए ब्रह्मा से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवित पारद दिलवाया। हमको विश्वास है कि हमारा कार्य शुद्ध जनहित की भावना से प्रेरित था।"

"पर श्रीमान्?" एक युवक ब्राह्मण ने कहा—"आपने शची से नहुष के विवाह में सहायता क्यों की है?"

"तो इससे हानि ही क्या हो गई है? हमारी योजना में यह रथ की सम्मति नहीं थी।"

"शची से नहुष का विवाह पाप है और उस पाप में सहायता देने से ही यह अपमानजनक कार्य भगवान् ने आपको करने को दिया है।"

जब सब इस प्रकार का रोष एक-दूसरे पर प्रकट कर रहे थे, एक वेदपाठी ब्राह्मण, जिसका नाम जनक था और जो सबकी बातें धैर्य से सुन रहा था, कहने लगा—"मैंने कल प्रातःकाल एक स्वप्न देखा था। मैंने उस स्वप्न में अनुभव किया कि मैंने घोर पाप किए हैं और उनके कारण मुझे भारी कष्ट दिया जा रहा है। मेरी पीठ नंगी कर मुझे कोड़े लगाए जा रहे हैं। मैं चीखें मार रहा हूँ और 'अरी माँ! अरी माँ!' कहकर पुकार रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ कि मुझको बचाओ।

"मेरा करुण-क्रन्दन सुन मेरी माँ, जिसका देहान्त हुए चिरकाल हो चुका है, प्रकट हुई और उसने मुझे कुछ ऐसे पाप, जो मैंने किए थे, स्मरण कराए। मैंने उससे इस बार बचाने की प्रार्थना की और वचन दिया कि पुनः ऐसे पाप नहीं करूँगा। इस पर उसने मेरे लिए परमात्मा से प्रार्थना करने का वचन दिया। कुछ काल पश्चात्, उसने मेरे पास पुनः आकर कहा कि मैं नगर की मण्डी में जाऊँ और वहाँ भगवान् साक्षात् आकर मेरी रक्षा करेंगे।

"इस आश्वासन पर मेरी नींद खुल गई और मैं समझता हूँ कि हमारी इस अपमानजनक दासता से मुक्ति नगर की मण्डी में होगी। भगवान् साक्षात् वहाँ आकर हमें मुक्त कराएँगे।"

यह सुन सब ब्राह्मण-देवता हँसने लगे। एक ने तो यहाँ तक कह दिया—"मण्डी में से तो सवारी जाएगी ही नहीं।"

"तो भगवान् मण्डी को ही उठाकर हमारे मार्ग में ले आएँगे। जिससे जनक जी महाराज का उद्धार हो सके।" एक ने व्यंग्य में कह दिया।

एक अन्य बोला—"जनक जी को मैं अन्य अनेक देवताओं से अधिक पवित्र आत्मा नहीं मानता। उन सबका तो अभी तक उद्धार हुआ नहीं, फिर जनकजी के लिए ही भगवान् यह सब कष्ट क्यों करेंगे?"

"भाई! इनकी माँ की यह सिफारिश है। शायद वह देवताओं में सबसे अधिक धर्मात्मा रही होंगी।"

इस प्रकार सर्वथा निराशापूर्ण बातचीत चल रही थी। जब वे सब अपने-अपने स्थानों पर जाकर सोने लगे तो जनक भी चुप होकर लेट गया। उसे नींद नहीं आ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी। जब बहुत रात बीतने तक भी वह सो नहीं सका तो उठकर आगार के बाहर चला गया। आगार के बाहर प्रहरी खड़ा था। प्रहरी ने जनक से पूछा—"कहाँ जा रहे हैं ऋषि महाराज?"

"भीतर मन तनिक चलायमान हो रहा था। इसको शान्त करने के लिए बाहर शीतल पवन में विचरने के लिए यहाँ आ गया हूँ।"

प्रहरी को दया आ गई। उसने कहा—"ऋषि महाराज, उस सामने पड़ी चौकी पर बैठकर ही पवन का सेवन कीजिए। दूर नहीं जाइए।"

"धन्यवाद!" जनक ने कहा, और वह बाहर आँगन में चौकी पर बैठ गया। कुछ ही देर पश्चात् एक अन्य ऋषि, जिसका नाम कश्यप था, जनक के समीप आकर बैठ गया।

जनक ने पूछा—"तो आपको भी नींद नहीं आई?"

"भला इस अपमानजनक अवस्था में भी नींद आ सकती है? मैंने इस दुष्ट को प्रजा के प्रकोप से बचाने का बहुत यत्न किया है, परन्तु यह अपनी इच्छा की पूर्ति में दूसरों की भावनाओं का विचार ही नहीं करता।"

"भगवन्! मुझको अपने स्वप्न पर विश्वास है। मेरे स्वप्न कभी निष्फल नहीं जाते। परन्तु एक बात मैं जानता हूँ कि उचित समय पर यदि हम कुछ यत्न न करें तो भगवान् सहायता नहीं करेगा। मैंने इस किंवदन्ति का परीक्षण किया है, कि भगवान् उसकी सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता आप करते हैं।"

कश्यप को पिछले छः वर्षों के कष्टों का ध्यान कर भगवान् पर भरोसा नहीं रहा था। फिर भी डूबते को तिनके के सहारे वाली बात थी। उसने उत्सुकता से पूछा—"मान लिया भगवान् हमारी सहायता करेगा, परन्तु वह हमसे किस बात की आशा करता है?"

जनक ने उत्साहित हो बताया—"हम नहुष के अत्याचारों से पीड़ित हैं। और इन अत्याचारों से बचने के लिए ही परमात्मा से सहायता चाहते हैं। इस कारण जहाँ उसने सहायता करने का आश्वासन दिया, वहाँ उसी स्थान पर हमको इस आततायी का अत्याचार सहन करने से इन्कार कर देना चाहिए।"

"भरे बाजार में कोड़ों से पीटे जाएँगे।"

"अनेक अन्य लोग हमारी भाँति मिथ्या आरोपों पर पीटे जाते हैं। जहाँ सहस्रों अन्य पीटे गए हैं, वहाँ हम भी सही। फिर भी मुझको विश्वास है कि परमात्मा का नाम लेकर, यदि हम सब इस अत्याचारी को उठाकर ले जाने से इन्कार कर दें, तो वह अवश्य हमारी सुनेगा।"

"भाई, मैं तुम्हारे साथ हूँ। जैसा तुम कहोगे मैं वही करूँगा।"

"तब ठीक है। मैं और तुम सबसे आगे लगेंगे जिससे कि हमें कोड़े खाते देख-कर दूसरे भी उत्साहित हो हमारा अनुकरण करें।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ६ :

विदा होने से पूर्व की रात नहुष के भवन में भारी उत्सव मनाया गया। इस उत्सव में भाग लेने के लिए सैकड़ों नागरिक और गान्धार-सैनिक निमन्त्रित किए गए। रागरंग, नृत्य और मद्यपान पर भारी जोर था। जब मद्य का प्रभाव उपस्थित लोगों पर होने लगा, तो हँसी के फव्वारे छूटने लगे। भाँति-भाँति के व्यंग्य महाराज और शची पर कसे जाने लगे।

प्रत्येक स्थान पर कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपना और जाति के मान-अपमान का ध्यान छोड़कर राजा-महाराजा की ही खुशामद करते हैं। ऐसे ही देवता इस उत्सव में बुलाए गए थे। इस पर भी जब अश्लीलता सीमा उल्लंघन करने लगी, तो कुछ लोग मन में चंचलता अनुभव करने लगे। उत्सव में ही कानाफूसी होने लग गई। और देवता उत्सव को छोड़कर जाने लगे। गान्धारों ने देवताओं को जाते देख लिया और उन्होंने इसे अपने महाराज का अपमान माना। इस कारण वे मद्य के नशे में अपने भावों को दबा नहीं सके। एक नर्तकी का नाच समाप्त हुआ था कि एक गान्धार ने नहुष के सम्मुख निवेदन कर दिया—"महाराज ! ये देवता हमारे साले और श्वसुर बन गए हैं। इस कारण अपने समधियों के हँसी-ठट्ठे से इन्हें नाराज नहीं होना चाहिए।"

"हाँ ! हाँ !" नहुष ने प्रसन्नता से उन्मत्त हो कह दिया —"कौन है जो नाराज हो रहा है ?"

एक देवता उस समय द्वार से बाहर निकल रहा था। उक्त निवेदन करने वाले ने उसकी ओर उँगली कर कह दिया—"वह देखिए महाराज !"

"पकड़ो उस साले को। मत जाने दो।"

इस आज्ञा के मिलते ही गान्धार उसकी ओर लपके और उन्होंने उसे पकड़कर महाराज के सम्मुख खड़ा कर दिया। महाराज ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा—"क्यों बे ! क्या नाम है तुम्हारा ?"

"धीमत्, महाराज।"

"कहाँ चले जा रहे थे ?"

"घर।"

"क्यों ?"

"यहाँ का नाच रंग नीरस हो रहा था।"

"पीटो इस साले को।" नहुष ने क्रोधपूर्वक कहा।

किसी ने अपना भाला धीमत् के पेट में घोंप दिया। जब वह तड़प-तड़पकर मर गया तो उसका शव उठाकर भवन के फाटक के बाहर फेंकवा दिया।

देवताओं में से कुछ ने, जो नहुष का यान देखने आए हुए थे, उस शव को देख लिया। उन्होंने नगर में समाचार पहुँचाया, तो पता चल गया कि धीमत् उस रात

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सव में सम्मिलित हुआ था और वही भाले से घायल करके मार डाला गया है। इससे पूर्ण नगर में प्रतिकार की भावना जाग उठी। बहुत कठिनाई से नारद और देवयानी ने लोगों के क्रोध को अगले दिन तक शान्त किया। नारद घूम-घूमकर देवताओं को कह रहा था—"कल मंडी में एकत्रित हो जाओ। सबके साथ हुए अत्याचारों का बदला लिया जाएगा।"

अगले दिन बहुत सवेरे नहुप उठ स्नानादि से निवृत्त हो अल्पाहार कर तैयार हो गया। इस समय महाराज की सवारी के अध्यक्ष ने वेदपाठी ऋषियों को खिला-पिलाकर यान के समीप एकत्रित कर लिया और कहने लगा—

"आप लोगों को यह पुण्य कार्य करने को दिया जा रहा है जो आज से पूर्व किसी भी सभ्य देश के रहने वालों ने नहीं किया। अपने महाराज को अपने कन्धों पर बैठाकर उनके विवाह की सवारी ले जाने का सौभाग्य आपको मिल रहा है।

"एक समय में इस यान को दस लोग उठाएँगे और वे पाँच कोस तक इस यान को लेकर जाएँगे। पाँच कोस के पश्चात् दूसरे दस लोग उठाएँगे। इस प्रकार वे पाँच कोस तक लेकर चलेंगे। वे दस, जो यान को उठाकर चल नहीं रहे होंगे, वे आगे जाकर नियत स्थान पर अपनी बारी की प्रतीक्षा करेंगे। अतएव तुममें से कौन पहले दस इस महान् कार्य के लिए आगे आते हैं?"

अध्यक्ष का विचार था कि नगर के भीतर यान को उठाने के लिए कोई तैयार नहीं होगा, परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब जनक और कश्यप ने सबसे प्रथम आगे बढ़कर कहा—"हम इस कार्य को पहले करेंगे।" इन दोनों के इस प्रकार अपने आपको सेवा के लिए उपस्थित करते देख पाँच अन्य ऋषि और आगे बढ़ आए। अभी तीन और चाहिए थे और शेष ऋषियों में से तीन निकल नहीं रहे थे। विवश तीन ऋषियों को जबरदस्ती निकाला गया। शेष दस को सैनिक संरक्षकों की देखरेख में पाँच कोस के अन्तर पर पहले ही पहुँचने के लिए रवाना कर दिया गया।

जब महाराज नहुष सवारी पर चढ़ने के लिए तैयार होकर पहुँचे तो उस समय सहस्रों गान्धार भवन के सम्मुख महाराज को विदा करने के लिए एकत्रित हो गए। गान्धार आज बहुत प्रसन्न थे। सबके मन में यही भावना थी कि शची के महारानी बनकर वहाँ आ जाने से गान्धारों का राज्य देवलोक में स्थिर हो जाएगा। पश्चात् देवताओं में पतन आरम्भ हो जाएगा और वे अन्य गान्धारों को लाकर वहाँ बसा सकेंगे। सबसे बड़ी बात यह थी कि युद्ध करने के लिए उनको आग्नेय अस्त्र इत्यादि मिल जाएँगे। और तब वे विश्व-विजय कर सकेंगे।

"महाराज नहुष की जय हो", "महाराज नहुष की जय हो", इन जयघोषणाओं के साथ नहुष यान पर सवार हो गया। जनक तथा कश्यप यान उठाने वालों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे आगे थे। सवारी का अध्यक्ष यानवाहक, जिसके हाथ में कोड़ा था, उस सिंहमुखी अजगर की गर्दन पर बैठ गया। पीछे पीठ पर नहुष का आसन था जिस पर स्वर्ण का मणि-माणिक्य से जड़ित छत्र छाया कर रहा था।

सवारी भवन से चली तो अध्यक्ष ने आज्ञा दी। "वेदगान हो।" और ऋषियों ने वेदगान आरम्भ कर दिया। "ओम् विश्वानि देव" इत्यादि।

सवारी भवन में से निकली तो नगर में से घूमकर जाने लगी। मार्ग के दोनों ओर सहस्रों लोग एकत्रित थे। वे इस सवारी के वैभव को देखने आए थे। पुरुष मार्ग के दोनों किनारों पर पंक्तियों में खड़े थे। घरों की छतों पर और छज्जों पर स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध खड़े थे। कुछ लोग सवारी पर पुष्पवर्षा भी कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्ण नगर ही उस मार्ग पर आकर एकत्रित हुआ है और महाराज नहुष को सम्मानित कर रहा है। सवारी चल रही थी और वेद-गान हो रहा था—"ओम् प्रजापते नत्वदेतानन्यो विश्वा···।" इतनी भीड़ थी कि देवताओं में वृद्ध भी कहते थे कि ऐसा समारोह उन्होंने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था।

सवारी धीरे-धीरे चल रही थी और प्रबन्धकों का विचार था कि महाराज नहुष का प्रभाव जनता के मन में अंकित कर दिया जाए। प्रत्येक बात इसी विचार से की जा रही थी।

जब यान ने नगर में प्रवेश किया तो भीड़ अधिक होती जाती थी। एक बात में अन्तर बराबर पड़ रहा था। महाराज नहुष की जयघोषणा करने वालों की संख्या भीड़ में कम होती जाती थी। जयघोष करने वालों ने जब देखा कि उनकी आवाज के साथ आवाज मिलाने वाले कम होते जाते हैं, तो उन्होंने भी जयघोष कम कर दी। साथ चलने वाली भीड़ में भी गान्धारों की संख्या कम होती जाती थी। देवता धक्के दे-देकर उनको महाराज के यान से दूर करते जाते थे। देवता जयघोष में सम्मिलित नहीं हो रहे थे। इस चुप्पी के कारण वेदपाठियों का वेदगान और भी स्पष्ट और भयानक प्रतीत होने लगा था।

जनक और कश्यप, जो सबसे आगे थे, इस चुप्पी में अशकुन रूपी वेदगान का शब्द सुन, विस्मय करने लगे थे। कश्यप ने जनक से धीरे से पूछा—"मित्र, यह क्या हो रहा है? यहाँ श्मशान की-सी चुप्पी क्यों?"

"ऐसा प्रतीत हो रहा है कि परमात्मा इनके कानों में कह रहा है कि वे ठीक नहीं कर रहे।"

"ईश्वर को कुछ और अधिक करना चाहिए। हमको कहाँ इस अपमान का विरोध करना चाहिए?"

"यहाँ नहीं। यह वह स्थान नहीं जहाँ का मुझको स्वप्न आया था। विरोध का स्थान मण्डी के बीच का होना चाहिए।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय अजगर की गर्दन पर बैठे यानवाहक ने झट से कोड़ा लगाते हुए कहा—"वेदगान करो। बातें मत करो।"

इस पर जनक और कश्यप ने पुन: वेदगान प्रारम्भ कर दिया।

कश्यप ऋषि देख रहा था कि दर्शकों में देवताओं की संख्या अधिक है। कश्मीर-सैनिक यान को चारों ओर से घेरे हुए हैं। इससे उसका मन निर्भयता अनुभव करने लग गया। उसने पुन: साहस पकड़ जनक से कहा—"जनक?"

"हाँ!"

"मुझको इन दर्शकों के हृदय में भगवान् बैठा प्रतीत हो रहा है।"

"सत्य?"

"हाँ!"

"परन्तु देखिए! मेरा विचार है कि भगवान् उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता आप करते हैं। हमको अपनी अवस्था से स्वयं असन्तोष प्रकट करना चाहिए।"

इस समय वाहक ने पुन: जनक को कोड़े लगाते हुए कहा—"बात मत करो। वेदगान करो।"

जनक पुन: अपने साथियों के साथ स्वर में स्वर मिलकर गान करने लगा। मन्त्रों का शब्द ऊँचा और ऊँचा सुनाई देने लगा।

इस समय तो नहुष को भी जनता की चुप्पी अखरने लगी। उसने यानवाहक को कहा—"जयघोष करो।" वाहक ने ऊँचे स्वर में आवाज की—"महाराज नहुष की···" घोषणा की पूर्ति में किसी ने भी 'जय हो' का शब्द नहीं किया।

इस पर वाहक ने यान के चारों ओर देखा। वह देवताओं से घिरा हुआ था। उसने जब देवताओं को चुपचाप साथ चलते हुए देखा, तो कहा—"बोलते क्यों नहीं सालो?"

यह सुनकर देवता भी चुप रहे और केवल मात्र एक-दूसरे का मुख देखते रहे। इस समय सवारी मण्डी के चौमुखे पर पहुँच गई थी। जनक ने देखा कि सामने घर के एक छज्जे पर नारद खड़ा है। उसने अवसर पा अपने साथी से कहा—"स्थान आ गया है। आओ, हम यत्न करें।"

दोनों ठहर गए। वाहक ने समझा कि वे थक गए हैं। उसने उनको विश्राम लेने का अवसर देने के लिए घोषणा की—"महाराज नहुष की···" केवल एक गान्धार जो सामने के मकान की छत पर खड़ा था, चिल्लाया—"जय हो।" और इस शब्द के निकलते ही किसी ने उसे उसकी ग्रीवा से पकड़कर छत से नीचे धकेल दिया। वह चीख मारता हुआ नीचे आ पड़ा। यानवाहक ने यह देखा। नहुष ने भी यह देखा। वाहक ने अपना कोड़ा जनता पर जो यान के चारों ओर खड़ी थी, चलाते हुए कहा—"बोलो गान्धारों के सालो! बोलो!"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यानवाहक ने जनक और कश्यप को लात से प्रहार कर कहा—"चलो। बढ़ो आगे।"

शट, शट···कोड़े चारों ओर बरसाए जा रहे थे। इस पर देवयानी जो नारद के साथ ही छज्जे पर खड़ी थी, तीव्र स्वर से बोली—"ठहरो! यह दुष्टता अब और नहीं चलेगी।" वाहक और नहुष दोनों ने उस बोलने वाली की ओर देखा। नहुष ने पहचान लिया। उसके मुख से निकल गया, "देवयानी···!"

इससे अधिक वह कुछ कह नहीं सका। देवयानी ने एकत्रित जनता को संबोधन कर कहा—"पकड़ लो इस दुष्ट को। इस पापी को दण्ड देने का समय आ गया है।"

दर्शक पहले से ही इस संकेत की प्रतीक्षा में थे। संकेत पाते ही सबके सब नहुष की ओर लपके। इक्का-दुक्का गान्धार, जो अभी भी यान के साथ थे, नहुष की रक्षा के लिए अपनी तलवारें निकालने लगे, परन्तु उनके निकलने के पूर्व ही जनता ने उन पर आक्रमण कर दिया। दो-दो हाथ से अधिक नहीं हुए। यान उलट गया। वाहक का सिर सबसे पहले धड़ से अलग था। यान के साथ ही नहुष भी भीड़ में लुढक गया। लोगों ने उस पर लातों-घूँसों से प्रहार करना और नाखूनों से नोचना आरम्भ कर दिया। कुछ क्षण में ही नहुष के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गए और वे भी कहीं दिखाई नहीं दिए। टुकड़ों का भी पाँव तले आकर कचूमर निकल गया।

सवारी के पीछे कुछ गान्धार थे। इन्हें देवताओं ने धक्के दे-देकर पीछे कर दिया था। उन्होंने भी देवताओं को नहुष पर प्रहार करते देखकर अपनी तलवारें निकाल लीं और भीड़ पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। कश्मीर-सैनिक अभी तक मार्गतट पर ही खड़े थे। उन्होंने गान्धारों को जनता पर आक्रमण करते देखा तो उनसे लड़ने के लिए अपने खड्ग निकाल लिये। देवता और कश्मीर-सैनिकों की भारी संख्या देख गान्धार घबड़ा उठे और लड़ना छोड़ राजभवन की ओर भाग खड़े हुए।

इस समय देवयानी ने पुनः आदेश दिया। उसने कहा—"ठहरो बहादुर वीरो! ठहरो!" सब चुप हो सुनने लगे। देवयानी ने शान्ति होने पर अपना कथन सुनाया—"वीर देवताओ तथा मेरे सैनिको! आतताई समाप्त हो चुका है। उसके साथ ही उसका राज्य भी समाप्त हो गया है। इस समय देवराज इन्द्र यहाँ नहीं हैं। न ही महारानी शची यहाँ उपस्थित हैं। उनकी अनुपस्थिति में मैं कश्मीर की राजकुमारी देवयानी यहाँ का राज्य अपने अधिकार में लेती हूँ। मैं कश्मीर से आए सैनिकों को और उन देवताओं को, जिन्होंने मेरी आज्ञापालन करने की शपथ ली है, आज्ञा देती हूँ कि तुरन्त इन्द्रभवन पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लें। यहाँ मण्डी में न तो समय व्यर्थ गँवाना है और न ही यहाँ रक्तपात अधिक करना उचित है। हमें राजभवन की ओर चलना चाहिए। चलो। बढ़ चलो।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: १० :

सुमन ने यथासमय सुन लिया था कि करण का पत्र आया है, जिसमें उसने लिखा है कि इन्द्राणी ने नहुष से विवाह करना स्वीकार कर लिया है। इस समाचार से उसका मस्तिष्क घूमने लगा था। वह चाहती थी कि नारद से मिलकर अपने पति की रक्षा का आश्वासन ले, परन्तु वह नहीं जानती थी कि उसको कहाँ मिल सकेगी।

नहुष के विदा होने से पूर्व की रात, जब नहुष के भवन में उत्सव मनाया जा रहा था, नारद सुमन से मिलने आया। सुमन ने उसको देखा तो एक प्रकार से सांत्वना अनुभव की। उसने पूछा—"देवर्षि ! यह क्या हो रहा है ?"

"बेटी सुमन !" नारद ने आसन ग्रहण करते हुए कहा—"आज नहुष के जीवन की अन्तिम रात्रि है। उसके पापों का घड़ा भर चुका है। अब वह डूबे बिना नहीं रह सकता। तुमने राजकुमारी देवयानी के सम्मुख वचन दिया था, कि तुम अपने भाग का कार्य करोगी। सो कल, जब नहुष की सवारी भवन से निकल जाए, यंत्रागार में चली जाना और उसको भीतर से बन्द कर लेना जिससे कोई भी उन यंत्रों को हानि न पहुँचा सके।"

सुमन विस्मय में नारद का मुख देखती रह गई। नारद कहता गया—"समझ लिया सुमन ! सवारी यहाँ से नगर में एक घड़ी में पहुँचेगी। उस घड़ी के भीतर ही भीतर तुम्हें यंत्रों पर अधिकार कर लेना है। पश्चात् हम शीघ्रातिशीघ्र यहाँ पहुँचने का यत्न करेंगे।"

"पर देवर्षि ! मैं तो परा के पिता का समाचार जानना चाहती हूँ।"

"वे कल रात तुमको मिल जाएँगे।"

"कहाँ हैं वे ?"

"समीप ही हैं।"

"और शची महारानी······?"

"देखो बेटी ! अब समय नहीं। सब बातें सबके जानने की नहीं होतीं। यदि तुमने अपना कार्य कुशलता से कर लिया, तो निस्सन्देह जानो कि पाँच-छः दिवस में इन्द्राणी यहाँ इन्द्र महाराज की महारानी के रूप में पुनः स्थापित हो जाएँगी।"

सुमन अभी भी इस सबका अर्थ नहीं समझी थी। नारद उठा और सुमन के सिर पर हाथ फेर और आशीर्वाद देकर चला गया।

सुमन को रातभर नींद नहीं आई। वह प्रातः उठी तो उसको ऐसा अनुभव हुआ कि आकाश और सूर्य देवलोक पर खिलखिलाकर हँस रहे हों। स्वच्छ धूप अमरावती की ऊँची-ऊँची अटारियों पर अपनी मृदु मुस्कान में अपने मोती समान दाँतों का प्रदर्शन कर रही है।

सुमन का चित्त हलका था। उसका मन कह रहा था कि नारद का प्रयास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य सफल होगा। उसने बच्चों को उठाया। स्नानादि करवा प्रातराश दिया। जब वे खा-पी चुके, तो उनको नवीन वस्त्र पहना दिए। माणिक्य ने पूछा—"माँ, हम कहाँ जा रहे हैं ?"

"तुम्हारे पिता के पास।"

"कहाँ हैं वे ?"

"हम उनके पास जाएँगे।"

"तो जल्दी करो।"

"बस, ये महाराज की सवारी निकल जाए, तो हम भी चल देंगे।"

"महाराज कहाँ जा रहे हैं ?"

"विवाह करने।"

"कहाँ ?"

"दूर देश में।"

"हम भी साथ चलेंगे क्या ?"

"नहीं। हम तुम्हारे पिताजी के पास जाएँगे।"

"विवाह कराने ?"

सुमन की हँसी निकल गई। माणिक्य और परा माँ का मुख देखते रहे।

इस समय बाजे बजने लगे। शंख, भेरी और दुन्दुभी के घोर नाद ने यह घोषणा की कि महाराज की सवारी तैयार हो गई है।

सुमन बच्चों को ले अपने आगारों के सम्मुख चबूतरे पर सवारी का दृश्य देखने लगी। यान की सजावट, उसका रूप, गान्धारों का जमघट और बहुत भारी भीड़ एक भव्य दृश्य उपस्थित कर रहे थे। इस समय महाराज यान पर सवार हुए और यान को ऋषियों ने उठाया। जब वे वेदगान करने लगे तो सुमन ने दाँतों तले उँगली दबा ली। यह क्या ? उसने विचार किया। अगस्त्य ऋषि को वह पहचानती थी। उसको एक अन्य ऋषि के साथ "ओम् विश्वानि देव······" गाते हुए देख क्रोध तथा दुःख से उसकी आँखों से आँसू निकल आए। इस समय उसको नारद के कथन का अर्थ समझ में आ गया। उसे वह कर्तव्य भी स्मरण आ गया, जो नारद ने उसके लिए नियत किया था। इससे वह अपने कार्य पर विचार करने लगी।

नहुष की सवारी भवन से निकल गई, तो वह यन्त्रों की रक्षा अपना कर्तव्य मान उस ओर चल पड़ी। माणिक्य और परा उसके साथ थे। जब वह यंत्रालय के बाहर पहुँची तो कुछ गान्धारों को तलवार लिये उसकी रक्षा करते देख चकित रह गई।

एक गान्धार सैनिक ने उससे पूछा—"क्या चाहती हैं आप ?"

"मैं सप्ताह में एक बार यंत्रों को देखने और झाड़ने-फूँकने आया करती हूँ।"

"अब आपको यह करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। महारानी स्वयं आ रही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। वे इनका प्रवन्ध करेंगी।"

सुमन डर गई और लौट आई। वह सैनिकों से झगड़ा करना नहीं चाहती थी। वह उनके पैशाचिक कृत्य को, जो उन्होंने अमरावती पर अधिकार करते समय किया था, भूली नहीं थी। इस कारण लौटकर अपने आगार के बाहर चबूतरे पर आ खड़ी हुई।

इस समय भवन-अध्यक्ष सुमन को वहाँ खड़ा देख, हाथ जोड़ और नमस्कार कर बोला—"महाराज की आज्ञा से यंत्रालय पर मैंने सैनिक बिठा दिए हैं। वे अब किसी अन्य का हस्तक्षेप उसमें नहीं चाहते।"

"ठीक है। मैं वहाँ अब नहीं जाऊँगी।"

"सवारी देखी है देवी!"

"हाँ।"

"कैसी थी?"

"बहुत ही सुन्दर दृश्य था।"

"आपने तो महारानी को देखा होगा?"

"हाँ, वे मुझसे बहुत प्यार करती थीं।"

"तब तो उनके आने पर आपको बहुत प्रसन्नता होगी?"

"इसमें भी सन्देह है क्या?"

"कुछ देवता बहुत बुरा मना रहे हैं।"

"वे मूर्ख हैं।"

अभी ये बातें चल ही रही थीं कि नगर की ओर से भारी कोलाहल सुनाई दिया। भवनाध्यक्ष पाँव के पंजों पर खड़ा हो उस ओर देखने लगा। जब कुछ नहीं देख सका, तो बोला—"भवन की छत पर चढ़कर देखता हूँ कि कैसा कोलाहल है।"

इतना कह वह सुमन को वहीं उसी स्थल पर छोड़ भवन की सीढ़ियों की ओर चल पड़ा। सुमन अपने मन में कौतूहल अनुभव कर रही थी कि किस प्रकार यंत्रालय में जाए।

इतने में वह कोलाहल भवन की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होने लगा। और कुछ ही क्षणों में गान्धार भागते हुए भवन की ओर आते दिखाई दिए। सहस्रों की संख्या में गान्धार भवन के बाहर अपनी तलवारें निकाल लड़ने के लिए तैयार खड़े हो गए।

अगले ही क्षण देवता और कश्मीर-सैनिक भी अपने हाथों में खड्ग लिये भवन के द्वार की ओर बढ़ आए। देवताओं को भवन पर आक्रमण करने आया देख सुमन को लगा कि यंत्रों की रक्षा आवश्यक है। वह पुनः यंत्रालय की ओर जाने के लिए घूमी। इसी समय भवनाध्यक्ष हाँफता हुआ वहाँ उसके समीप चबूतरे पर आ पहुँचा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने सुमन से कहा—"देवी ! बदमाश देवताओं ने महाराज को अकेले पा उनकी हत्या कर दी है और अब इस भवन पर आक्रमण कर दिया है। पर गान्धार भी इन कायरों से डरने वाले नहीं।"

वह कुछ और भी कहना चाहता था, कि देवताओं में से एक, जो छः हाथ ऊँचा हृष्ट-पुष्ट विशालकाय पुरुष था, एक ऊँचे स्थान से सिंह की भाँति नाद कर बोला—"गान्धार-सैनिको ! तुम्हारा राजा मारा गया है। तुम यदि चाहो तो भवन में मार डाले जाओगे। इस पर भी मैं महारानी देवयानी, राजकुमारी कश्मीर की आज्ञा से सूचना देता हूँ कि देवलोक का राज्य उन्होंने अपने अधीन कर लिया है। उनकी आज्ञा है कि जो गान्धार अपने शस्त्र डाल दे, उसे क्षमा प्रदान की जाए। दूसरों को मौत के घाट उतार दिया जाए।

"इस कारण मैं चौथाई घड़ी भर का समय देता हूँ। इस काल में जो गान्धार शस्त्र डाल अपने को हमारे अधीन कर देगा, उसके अपराधों को क्षमा प्रदान कर दी जाएगी। इस काल के पश्चात् किसी पर भी दया नहीं की जाएगी।"

इस घोषणा के पश्चात् कश्मीर-सैनिकों और देवताओं ने घोषणा की—"महारानी देवयानी की जय हो। भास्कर देवता की जय हो।"

गान्धारों को चेतावनी देने वाला भास्कर ही था, जो ब्रह्मावर्त से लौटकर कश्मीर आ गया था, और वहाँ यह सूचना पाकर कि मिलिन्द और देवयानी देवलोक में हैं, यहाँ चला आया था। वह इस विप्लव से एक दिन पूर्व ही पहुँचा था।

गान्धारों ने जल्दी-जल्दी मन्त्रणा की। भवनाध्यक्ष ने भास्कर का कथन सुना था। उसने सुमन से कहा—"देवी ! यदि हम इन कश्मीर के कुत्तों को परास्त कर सकें, तो निस्सन्देह देवलोक का राज्य करण महामन्त्री के हाथ जा सकेगा। इस कारण तुम कहो तो मैं इसके लिए यत्न करूँ।"

"मैं इन बातों को नहीं समझ सकती।"

इसको स्वीकृति मान भवनाध्यक्ष ने गान्धार-सैनिकों को चबूतरे पर से आज्ञा दी—"मैं नहुष के उपरान्त महामन्त्री करण को यहाँ का राजा समझता हूँ। और उनके नाम पर आज्ञा देता हूँ कि इन कश्मीरी लुटेरों को भवन में घुसने नहीं देना है और इनको देवलोक से भगा देना है।"

इस प्रकार से दोनों ओर से युद्ध का शंखनाद हो गया। भास्कर देवताओं के आगे-आगे चलता अपने हाथ में चार हाथ लम्बी खड्ग लिये हुए गान्धारों पर कूद पड़ा। गान्धार भास्कर की तलवार के सामने ऐसे उड़ने लगे जैसे धुनिए की धुनकी के आगे रुई उड़ती है। खटाखट तलवार चल रही थी और रुण्ड मुण्डों से पृथक् हो रहे थे।

भास्कर एक हाथ से तलवार चलाता था और दूसरे हाथ से गान्धारों को मूँड़ों से पकड़-पकड़कर ऐसे आकाश में फेंक रहा था मानो मार्ग से कंकड़ उठाकर एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर हटा रहा हो।

गान्धार भास्कर की विनाशकारी खड्ग की चमक के सम्मुख भयभीत हो भागने लगे। भास्कर की तलवार लम्बी थी, इसकी मार के भीतर कोई आ नहीं पाता था। यदि कोई आ भी गया तो भास्कर बाजू से उसका मूँड या ग्रीवा पकड़-कर आकाश में उछाल देता था और वह कश्मीर-सैनिकों में जा गिरने से पूर्व ही किसी की खड्ग का ग्रास बन जाता था।

भवनाध्यक्ष ने देखा कि देवताओं का भवन पर अधिकार हुए बिना नहीं रहेगा तो उसने सुमन से कहा—"देवी, एक बात करो। यंत्रालय में चली जाओ। जब ये लोग भवन में आने लगें तो इन पर आग्नेय अस्त्र चला दो। उससे सब झुलसकर मर जाएँगे।"

सुमन आग्नेय अस्त्र चलाना नहीं जानती थी। उसने इसको यंत्रालय में पड़ा हुआ देखा था। इस समय यंत्रालय में जाने का अवसर पा वह भवनाध्यक्ष की बात मानने को तैयार हो गई। सुमन, माणिक्य और परा को साथ ले भवनाध्यक्ष के पीछे-पीछे यंत्रालय में जा पहुँची। भवनाध्यक्ष ने वहाँ खड़े सैनिकों को कह दिया कि आग्नेय अस्त्र चलने वाला है। पूर्ण भवन भस्म हो जाएगा। ज्यों ही सुमन यंत्रालय में प्रविष्ट हुई कि भवनाध्यक्ष और सैनिक भवन से दूर जाने के लिए भवन के पिछवाड़े से निकल भागे।

सुमन ने भीतर से द्वार बन्द कर लिया और वहाँ रखी एक चौकी पर बैठ गई। माणिक्य, जो भास्कर की कुशलता को देख चुका था, यहाँ अपने को सुरक्षित पा माँ से पूछने लगा—"माँ, वह कौन था जो देवों की भाँति लड़ रहा था?"

"एक देवता था।"

"हम पिताजी के पास कब चलेंगे?"

"ये जो लड़ रहे हैं, जब यहाँ से चले जाएँगे तब।"

"वे यहाँ भी आएँगे?"

"नहीं। मैंने द्वार बन्द कर लिये हैं।"

परा बहुत सहमी हुई थी और काँप रही थी। इस कारण सुमन ने उसको उठाकर उसका मुख चूम गले से लगा लिया।

भवन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने में एक पहर लग गया। जब पूर्ण अधिकार हो गया, तो नारद, देवयानी तथा अन्य देवता भवन में आ गए। देवयानी ऊँचे स्थान पर खड़ी हो गई। भास्कर उसके समीप खड़ा था। उसने जयघोष किया—"महारानी देवयानी की जय हो!"

सब उपस्थित देवताओं ने जयघोष किया। पश्चात् देवयानी ने सबको हाथ के संकेत से चुप कराकर, भास्कर को कहा कि वह घोषणा कर दे। भास्कर ने वही घोषणा दुहरा दी जो देवयानी ने मण्डी में की थी। उसके पश्चात् उसने कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महारानी जी ने यह भी कहा है कि वे महारानी शची को यहाँ शीघ्रातिशीघ्र बुलाएँगी और देवलोक का राज्य उनके हाथों सौंप देंगी। अब वह चाहती हैं कि आप देवलोक के उद्धार के उपलक्ष्य में आनन्दोत्सव मनाएँ। सब अपने-अपने निवास-स्थानों में जाएँ और रात्रि को दीपमाला का आयोजन करें।

"गान्धार सैनिक अपने शस्त्र भवन में दे दें। यदि किसी गान्धार के पास खड्ग देखी गई तो उसको तुरन्त मार डालने की आज्ञा दी जाती है। निश्शस्त्र गान्धारों को क्षमा दी गई माननी चाहिए।"

इस मुक्ति पर देवता आनन्द से भरे हुए नाचते-गाते नगर की ओर चले गए। भास्कर को भवन की रक्षा का कार्य सौंप दिया गया और एक सहस्र कश्मीर-सैनिक उसके अधीन कर दिए गए।

इस समय देवयानी और नारद यंत्रालय से सुमन को निकालने के लिए वहाँ पहुँच गए। यंत्रालय का द्वार खटखटाया गया तो संकेत पा सुमन ने द्वार खोल दिया और स्वयं बाहर निकल आई। देवयानी ने उसे गले से लगाया। परा को गोदी में उठाकर उसका मुख चूमा। पश्चात् सब लोग भवन के एक आगार में आ एकत्रित हुए। सुमन ने जाते हुए मार्ग में करण की याद दिलाई। नारद ने कहा-- "सुमन, मुझे ध्यान है। तुम स्वयं उनके पास जाओगी या उनको यहाँ बुलाऊँ?"

"मैं स्वयं जाना चाहती हूँ।"

"तो ठीक है। अभी भास्कर और दो सैनिक तुम्हारे साथ जाएँगे। सायंकाल तक तुम वहाँ पहुँच जाओगी। कल प्रातःकाल तक लौटकर आ सकती हो।"

भास्कर को बुलाकर देवयानी ने आज्ञा दी—"भास्कर देवता, इस देवी को साथ लेकर दो संरक्षकों के साथ जाओ। वे तुमको एक स्थान पर ले जाएँगे, वहाँ इस देवी के पति करणदेव हैं। उनको यहाँ आदर सहित ले आओ।"

"महारानी जी, एक निवेदन मेरा भी है। मिलिन्द दिखाई नहीं दे रही।" इतना कहते-कहते भास्कर ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर नारद की ओर देखा।

देवयानी ने मुस्कराकर कहा—"देवता ! पहले कार्य समाप्त करो। जब यह कार्य कर आओगे तो मिलिन्द के विषय में प्रार्थना-पत्र देना। विचार किया जाएगा।"

भास्कर ने झुककर प्रणाम किया और संरक्षकों के साथ जाने को तैयार हो गया। उनके जाने से पूर्व देवयानी ने सुमन से कहा—"सुमन बहन, हमारी यह उत्कट इच्छा है कि करणदेव हमारे राज्य में रहें और अपने उपयुक्त कोई राज्य-कार्य करें। हम उनका इस राज्य में स्वागत करेंगे और उनको उनके योग्य कोई सम्मानित कार्य देंगे। हम आशा करते हैं कि वे हमारे इस निमन्त्रण को स्वीकार करेंगे।"

: ११ :

मिलिन्द तथा करण को गुफापार वाले गृह में रहते हुए एक सप्ताह हो चुका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। स्थान एक वादी में था जो चारों ओर से पहाड़ों से घिरी हुई थी। इस वादी में आने का मार्ग केवल वह गुफा थी जिसमें से लाँघकर आना होता था। घर वादी के मध्य में बना था।

इसमें कई आगार थे। इस घर का संरक्षक बीस प्रहरियों सहित वहाँ रहता था। एक आगार में करण के रहने का प्रबन्ध किया गया था और दूसरे आगार में मिलिन्द के रहने का। प्रहरी दोनों की देखभाल करते थे। घर के सामने एक छोटी-सी बावड़ी थी। उसमें एक झरने से जल गिरता था। यह स्नानादि के लिए उस घर के निवासियों के लिए प्रयोग में आता था।

पहली रात तो ये सब बहुत देरी से पहुँचे थे। मिलिन्द अपने आगार में गई तो जाते ही सो गई और अगले दिन देरी तक सोई रही। करण के मन में इतनी बेचैनी थी कि उसको न तो नींद आई और न ही वह किसी ओर अपना ध्यान लगा सका। सूर्योदय होते ही वह आगार से बाहर आकर बावड़ी के समीप खड़ा हो, झरने के झरझर करते जल को देखता रहा। उसने प्रकाश होने पर वादी के दृश्य को देखा। वह समझता था कि उसको वहाँ से भाग जाना चाहिए। इस कारण वह बावड़ी में उतर गया। ठंडे जल से आँखों को छींटे मारकर सचेत हो वादी के एक ओर मार्ग ढूँढ़ने चल पड़ा। वह अभी बीस पग भी नहीं बढ़ा कि दो खड्गधारी एक झाड़ी के पीछे से निकल आए और करण के साथ-साथ चल पड़े।

कुछ दूर तक करण गया और वे उसके साथ-साथ ही गए। इससे करण को भारी खीज आई। वह खड़ा हो गया और उनसे पूछने लगा—"तुम मेरे साथ-साथ क्यों आते हो?"

"हमें ऐसा करने की आज्ञा है।"

"किसकी आज्ञा है?"

"अपने स्वामी की।"

"क्या करता है तुम्हारा स्वामी?"

"आप जैसे श्रीमानों को पकड़कर उनके सम्बन्धियों से धन प्राप्त करता है।"

"तो तुम लुटेरे हो?"

"हाँ, श्रीमान्!"

"कितना रुपया तुमको चाहिए?"

"स्वामी एक-दो दिन में आएँगे और आपसे बातचीत करेंगे।"

"आज क्यों नहीं? मुझे आवश्यक कार्य है और मुझको आज ही छोड़ने से अधिक मूल्य मिलेगा।"

"यह सूचना अपने स्वामी के पास भेज दूँगा।"

"तुम मुझको छोड़ने के लिए कितना धन चाहते हो?"

"मैं आपको छोड़ नहीं सकता। इस वादी का द्वार मेरे अधीन नहीं है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किसके आधीन है ?

"हमारे नायक हैं।"

"उनसे पूछकर अभी बताओ।"

"वे आपसे कुछ कालोपरान्त स्वयं मिलेंगे।"

"मैं अभी बाहर अपने कार्य पर तुरन्त जाना चाहता हूँ।"

"सब कार्य अपनी इच्छानुसार नहीं हो सकते।"

विवश करण वापस लौट आया। मिलिन्द अभी भी सोकर नहीं उठी थी। करण ने साथ-साथ आ रहे प्रहरी से पूछा—"मेरे साथ जो स्त्री आई थी, वह कहाँ है ?"

"सो रही है।"

"उसे जगाओ।"

"हम स्त्रियों के आगार में नहीं जाते।"

"तो वहाँ कौन जाता है ?"

"कोई भी नहीं। यहाँ कोई स्त्री नहीं है।"

"तो फिर क्या होगा ?"

"वे अपने आप जागेंगी, तो बाहर आ जाएँगी।"

करण झरने के समीप बैठ अपने मन में उठ रहे उद्गारों को भीतर ही भीतर पीने का यत्न करता रहा।

सूर्य पहाड़ों से ऊपर उठ आया था और चारों ओर उसका प्रकाश फैल चुका था। पक्षीगण अपने-अपने घोंसलों से निकल अपने आहार की खोज में निकल गए थे। कुछ साथ के वृक्ष पर बैठे चहचहा रहे थे। कुछ अपने साथियों को बुलाने के लिए सीटियाँ बजा रहे थे। इस सब चहल-पहल में करण शोकग्रस्त बैठा था। इस समय एक प्रहरी उसके समीप आकर बोला—"श्रीमान् शौचादि से निवृत्त हो जाएँ तो अल्पाहार का प्रबन्ध किया जाए।"

"वह स्त्री जागी है अथवा नहीं ?"

"नहीं। अभी सो रही है।"

"जन्म-जन्मान्तर की थकावट दूर कर रही प्रतीत होती है।"

प्रहरी चुप रहा। करण ने पूछा—"आपका नायक कब आएगा ?"

"जब आप अल्पाहार पर बैठेंगे।"

"पहले नहीं।"

"पहले नहीं, वह आपको खिलाकर स्वयं कुछ खाएगा।"

"तब तो तैयार हो जाना चाहिए।"

"हाँ श्रीमान् !"

मिलिन्द मध्याह्न से कुछ पहले स्नानादि से निपट तैयार हो पाई। करण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पाहार कर चुका था, वह अत्यन्त ही असन्तुष्ट अवस्था में था। मिलिन्द घर के बाहर धूप में सूर्यकिरणों की ऊष्मा प्राप्त करने खड़ी थी। इसी समय करण उसके पास आकर बोला—"श्रीमती जी को पता चला है कि ये कौन लोग हैं?"

"नहीं।"

"लुटेरे हैं।"

"बहुत दुष्ट होंगे तब तो।" मिलिन्द ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा।

"केवल इतना ही नहीं। वे कहते हैं कि उनका स्वामी तीन दिन के बाद आएगा। तब वह हमारे घर वालों का पता पूछेगा और फिर उनको लिखेगा कि इतना धन भेज दो। जब वे धन भेज देंगे तब हमें छोड़ा जाएगा।"

"सत्य!"

"हाँ। मैंने स्वयं इनके नायक से पता किया है।"

"चलो छुट्टी हुई।"

"क्यों?"

"न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। न हम जाएँगे न आपके महाराज का विवाह होगा।"

"तो तुम इससे प्रसन्न हो?"

"ईश्वर को यही स्वीकार प्रतीत होता है।"

"तुम क्या चाहती हो?"

"मेरे चाहने अथवा न चाहने का प्रश्न ही नहीं। न वह कभी था, न अब है। मैं पहले महारानी की सेवा में उनकी नाम की सखी थी। अब मैं इन लुटेरों के वश में हूँ।"

"मान लो," करण ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"तुमसे तुम्हारी स्वतन्त्र सम्मति माँगी जाए तो तुम क्या कहोगी?"

मिलिन्द ने कुछ विचारकर कहा—"मैं एक बात पूछूँ?"

"हाँ।"

"मैं पैंसठ वर्ष की आयु की हूँ। क्या कोई बीस वर्ष का युवक मुझसे विवाह करेगा?"

"तो क्या महारानी शची भी इस आयु की हैं?"

"वह एक सौ पचास वर्ष से ऊपर की आयु की हैं।"

"देखने में तो इतनी आयु की प्रतीत नहीं होतीं। मेरा विचार था कि तीस-पैंतीस वर्ष की होंगी।"

मिलिन्द हँस पड़ी। करण को उसके कहने पर सन्देह हो गया। इस पर उसने पुनः पूछा—"मुझसे हँसी कर रही हैं आप?"

"नहीं। आप लोग देवताओं की बहुत-सी बातों से अनभिज्ञ हैं। उनमें यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु-रहस्य के ज्ञान की भी एक बात है। हम जीना जानते हैं। हमारे यहाँ स्वाभाविक आयु दो सौ वर्ष की होती है। फिर भी कई लोग ऐसे हैं, जो और भी अधिक काल तक जीवित रहते हैं। कुछ विशेष व्यक्ति तो सहस्रों वर्षों तक जीवन का भोग करते हैं। उनमें से ब्रह्मा एक हैं।"

करण को इससे आश्चर्य हुआ। उसने विस्मय से पूछा—"इन्द्र की कितनी आयु होगी?"

"आप क्या समझते हैं?"

"मैं उनको पैंतालीस वर्ष का मानता था।"

"वास्तव में उनकी आयु का ज्ञान किसी को नहीं। ब्रह्मा उनसे बड़ी आयु के हैं। वे ही ठीक बता सकते हैं। हमारा अनुमान है कि उनकी आयु कई सहस्र वर्ष अवश्य है।"

करण इसको मनघड़न्त बात मान, हँस पड़ा। उसने कहा—"मैं समझता हूँ कि आप एक चतुर स्त्री हैं और मुझको मूर्ख बना रही हैं। फिर भी मैं समझता हूँ कि इस विषय पर विवाद करने की आवश्यकता नहीं। बात यह है कि यदि शची डेढ़ सौ वर्ष की आयु की होने पर भी युवती प्रतीत होती हैं तो उनतीस वर्ष के युवा पुरुष को विवाह करने में क्या आपत्ति हो सकती है?"

"परन्तु जो अनुभव और ज्ञान डेढ़ सौ वर्ष की आयु के एक मनुष्य को हो सकता है, उससे कोई तीस वर्ष का युवा पुरुष विवाह क्यों करेगा! दोनों के ज्ञान में अन्तर है। इससे दोनों में निभ नहीं सकती।"

"तो तुम्हारा विचार है कि यह विवाह नहीं होना चाहिए था?"

"आप क्या समझे हैं?"

"तो तुम इस बन्दी बनाए जाने पर प्रसन्न हो?"

"बन्दी होने के परिणाम से तो संतोष होता है, परन्तु आपके सुमन से वियोग पर तो सन्तोष नहीं हो सकता।" इतना कह वह हँस पड़ी।

उन लोगों का स्वामी करण से मिलने नहीं आया। इससे करण के मन में दिन-प्रतिदिन चिन्ता बढ़ती गई। इस प्रकार असन्तोष की अवस्था में एक सप्ताह व्यतीत हो गया। आठवें दिन तो करण उतावला हो रहा था। प्रातः के अल्पाहार के समय प्रहरियों का नायक आया तो करण उससे लड़ने-सा लगा—"कहाँ मर गया है तुम्हारा स्वामी? उसने हमें क्यों बन्दी बना रखा है?"

नायक ने कहा—"श्रीमान्! मुझसे क्रोध करने की आवश्यकता नहीं। मैं आपके साथ जितना कुछ करने में स्वतन्त्र हूँ, उतनी बात के विषय में बताइए कि उसमें मैंने क्या अपराध किया है? जिस बात पर मेरा अधिकार नहीं, उसके लिए मुझपर क्रोध करना आपके लिए उचित नहीं।"

करण इससे लज्जित हुआ। उसने कहा—"पर मैं तो तुमको ही जानता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा सम्बन्ध तुमसे है। इससे तुम्हें ही तो कह सकता हूँ। मुझे छोड़ दो, अन्यथा वीर पुरुषों की भाँति एक खड्ग मुझको दो और मुझसे युद्ध कर लो।"

नायक मुस्कराया और बोला—"मैं श्रीमान् जी से युद्ध करने की क्षमता नहीं रखता। मैं तो आपके सेवकों के तुल्य हूँ।"

"मैं यहाँ से जाना चाहता हूँ ?"

इस समय मिलिन्द अपने आगार से अल्पाहार करने के लिए निकल आई। उसने करण की अन्तिम बात सुनी, तो कह दिया—"देखिए करण जी, मैं कहती हूँ कि आज आप छूट जाएँगे।"

"देखो मिलिन्ददेवी! मुझसे हँसी-ठट्ठा न करो। मेरे मन में आज विष भर रहा है। आज इच्छा हो रही है किसी को काट डालूँ। यहाँ पेड़-पौधों की भाँति स्थावर जीवन व्यतीत करते-करते मैं ऊब गया हूँ।"

"मुझको आपसे पूर्ण सहानुभूति है और मैं हँसी नहीं कर रही। मैं तो यह कह रही हूँ कि आप आज अवश्य मुक्त हो जाएँगे। आपको मुक्त कराने के लिए आपकी पत्नी सुमन ही यहाँ आने का कष्ट कर रही हैं।"

"तुमने ज्योतिष लगाया है क्या ?"

"नहीं! मुझको स्वप्न में पता चला है और प्रातःकाल इस सामने के पेड़ पर कागा बैठा काँय-काँय कर रहा था।"

"मुझको इन बातों पर विश्वास नहीं होता।"

"परन्तु मुझे तो पूर्ण विश्वास है। देखिए, आपकी श्रीमती जी के साथ मेरे देवता भी आ रहे प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि उनके स्वामी ने हमारा नाम-धाम आपके सैनिकों से पता कर, हमारे सम्बन्धियों से हमारा मूल्य प्राप्त कर लिया है और वे आ रहे हैं।"

"मैं महाराज के सम्मुख इनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित करूँगा और सेना लाकर इस वादी को आग लगा दूँगा।"

"इस वादी ने क्या अपराध किया है ? परन्तु एक बात और है। मैंने स्वप्न में देखा है कि महाराज नहुष विमान में बैठ, स्वर्गारोहण कर गए हैं।"

मिलिन्द की बात सुन करण गम्भीर हो गया। वह इस औरत के रहस्य को समझने में सफल नहीं हुआ था। वह अल्पाहार करने के लिए बैठने लगा तो मिलिन्द ने कहा—"मैं एक बात कहूँ आपसे ?"

"हाँ।"

"मेरा मन कह रहा है कि मेरे पतिदेव आ रहे हैं इससे मैं उनकी प्रतीक्षा करना चाहती हूँ। जब वे आएँगे तो उनके साथ ही आहार कर लूँगी। आपकी धर्मपत्नी भी आ रही हैं। आप भी प्रतीक्षा कर लें तो उचित नहीं होगा क्या ?"

करण विस्मय में मिलिन्द का मुख देखता रह गया। उसको सुमन की याद आ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। पहले वह बैठा हुआ था, अब खड़ा हो गया और नायक से बोला—"ये कहती हैं कि हमारे घर के लोग आ रहे हैं। तो उनके आने पर ही भोजन होगा।"

दोनों उस आगार से बाहर निकल आए। बाहर आने पर करण की दृष्टि जब पूर्व की ओर गई तो उसे उस ओर से कुछ घोड़ों पर सवार आते दिखाई दिए। अश्वारोहियों में एक पालकी भी थी। मिलिन्द पूर्व की ओर पीठ किए हुए खड़ी थी और करण उससे बात करता हुआ पूर्व की ओर देख रहा था। इस कारण उसकी दृष्टि उन आने वालों पर पहले पड़ी। करण विस्मय करते हुए कहने लगा —"देखो, कौन आ रहे हैं?"

मिलिन्द ने घूमकर देखा तो बोली—"और चाहे कोई हो या न हो, पर मेरे देवता तो आ ही रहे हैं। वह जो सबसे ऊँचे दिखाई देते हैं, वही हैं।"

"तो तुम्हारा स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ है। साथ एक पालकी भी तो है।"

"उसमें आपकी श्रीमती हो सकती हैं।"

आने वालों की वे दोनों उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। आधी घड़ी में सब सवार पालकी-सहित आ पहुँचे। पालकी में बैठी सुमन को करण ने देख लिया था। इससे वह अपने स्थान से उठ उसकी ओर भागा और पालकी के भूमि पर रखने से पूर्व ही, उसने उसे भुजाओं से उठा लिया और गले लगा लिया। सुमन ने लज्जा अनुभव करते हुए कहा—"देखिए ! सब लोग देख रहे हैं।"

करण को समझ आ गई और उसने सुमन को भूमि पर खड़ा कर बच्चों को गोदी में ले लिया। इस समय उसकी दृष्टि मिलिन्द पर पड़ी। वह भास्कर को पहचान गया। एक बार उसने नहुष से उसकी जान बचाई थी। मिलिन्द भास्कर के पाँव छू, हाथ जोड़ उसके सम्मुख खड़ी थी और भास्कर अवाक् मुख उसे देख रहा था। करण बच्चों को गोदी में लिये हुए, भास्कर के समीप आकर बोला—"पहलवान ! पहचाना है मुझको ?"

इस आह्वान को सुन भास्कर का ध्यान टूटा और उसने घूमकर करण की ओर देखा। वह पहचान गया।—"तो महाराज भी यहाँ हैं। मेरी स्त्री आपके पास कैसे आ गई है, यही सोच रहा था।"

"यह आपकी स्त्री हैं क्या ? ये तो कहती थीं कि ये महारानी शची की सखी हैं।"

"यह नारद महाधूर्त है। न जाने क्या-क्या षड्यंत्र करता रहता है। अब मुझको यहाँ भेजते समय बताया तक नहीं कि ये श्रीमती जी यहाँ विद्यमान होंगी।

"अच्छी बात है ! रानी देवयानी के सम्मुख बात करूँगा।"

करण ने मिलिन्द के मुख की ओर देखा। वह मुस्करा रही थी और उसका मुख प्रसन्नता से दैदीप्यमान हो रहा था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ परिच्छेद

: १ :

यह समाचार विद्युत् की भाँति पूर्ण देवलोक में फैल गया कि कश्मीरनरेश देवनाम की लड़की देवयानी ने अपने सैनिकों की सहायता से देवलोक में विप्लव कर दिया है। यह भी विख्यात हो गया कि वह देवलोक का राज्य चला रही है और वह तब तक वहाँ राज्य करेगी जब तक कश्मीर से महारानी शची नहीं आ जातीं। देवताओं को इस बात के जानने में विलम्ब नहीं हुआ कि शची के विवाह की बात तो केवल नहुष को भवन से निकालकर, नगर में लाने का बहाना-मात्र थी।

इससे देवता अति प्रसन्न थे। देवयानी के लिए उनके मन में आदर था। इसका विशेष कारण यह था कि वे देवलोक में कश्मीर-राज्य की स्थापना के लिए नहीं आई थी, प्रत्युत देवलोक में देवताओं का राज्य पुनर्स्थापित करना चाहती थी।

नहुष की मृत्यु के दो दिन पश्चात्, राज्य के प्रमुख व्यक्ति देवयानी के प्रति अपनी भक्ति और आदर प्रकट करने आए। देवयानी ने उनसे भेंट की और उनसे कहा—"वीर देवताओं के सहयोग से मैं देवलोक का उद्धार करने में सफल हो सकी हूँ। इसमें मेरा उद्देश्य केवल अपने पड़ोसी राज्य को सुख-समृद्धि-सम्पन्न और सम्मान से रहते देखना है। मैंने यहाँ के कुछ लोगों को कश्मीर में महारानी शची को लिवा लाने के लिए भेजा है। आशा करती हूँ कि वे पन्द्रह दिवस में महारानी को साथ लेकर आएँगे। उनके आते ही यह राज्यभार उनको सौंपकर, यहाँ से चली जाऊँगी।

"तब भी, एक कार्य रह जाएगा। यह सुरराज को बन्दीगृह से छुड़ाने का है। मैं समझती हूँ कि महारानी जी के यहाँ आ जाने पर यह बात अति सुगम हो जाएगी।"

इसके पश्चात् देवयानी ने गान्धारों के विषय में अपना निर्णय देते हुए कहा—"गान्धारों को यहाँ से तुरन्त चल देना चाहिए। जो यहाँ से अकेले जाना चाहते हैं, उनको यहाँ से जाने में देरी नहीं करनी चाहिए और जो अपनी देवता-पत्नियों को साथ ले जाना चाहते हैं, उनको राज्य-कार्यालय में इस विषय का प्रार्थनापत्र देना चाहिए। उनकी पत्नियों से पूछा जाएगा। यदि उनकी जाने की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा हुई तो वे जा सकेंगी, चाहे देवस्त्रियाँ जाएँ अथवा न जाएँ, उनकी सन्तान उनके पास ही रहेगी।

"जो देवस्त्रियाँ नहीं जाना चाहेंगी और जिनके गान्धारों से सन्तान उत्पन्न हो चुकी है, उनकी समस्या विचाराधीन है। इस समस्या का सुझाव उनकी संख्या जानने पर निश्चित किया जाएगा।"

इस घोषणा से तो गान्धारों के परिवारों में हलचल मच गई। सहस्रों परिवारों में गान्धारों और उनकी देवपत्नियों में झगड़े आरम्भ हो गए। अपने पतियों के साथ देवलोक छोड़कर जाने वाली केवल तीन-चार स्त्रियाँ थीं। उनको जाने की स्वीकृति दे दी गई। प्रायः अन्य गान्धार नित्य सहस्रों की संख्या में अमरावती से चुपचाप जाने लगे।

तीसरे दिन सुमन और करण आ पहुँचे। देवयानी ने करण के सम्मुख अपना प्रस्ताव रखा—"आप जैसे योग्य व्यक्ति के लिए किसी भी राज्य में स्थान मिल सकता है। अब आप देवलोक में हैं, तो आपको यहाँ ही रहने के लिए अवसर सब से प्रथम मिलना चाहिए। यहाँ आपकी कार्य करने की रुचि न हो अथवा यहाँ के भावी राज्याधिकारी आपको यहाँ कार्य न दें तो उस अवस्था में कश्मीर में कार्य करने का प्रस्ताव मैं आपके सम्मुख रखती हूँ।"

करण का उत्तर था—"इस विषय में मैंने अपनी पत्नी सुमन से राय की है और हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि हम देवलोक में ही रहेंगे। यदि यहाँ के महाराजा और महारानी हमको रखने के लिए तैयार न होंगे तो हम कश्मीर में रहना पसन्द करेंगे।"

इस प्रकार करण का प्रश्न शची के आने तक अनिश्चित रहा। सुमन की उत्कट इच्छा थी कि उसका पति देवलोक में रह जाय, परन्तु शची की अनुपस्थिति में अन्तिम निर्णय नहीं हो सका। तब तक करण को गान्धारों को विदा करने का कार्य सौंपा गया।

भास्कर बन्दीगृह से मिलिन्द को लाया तो वह मार्गभर चिन्तित और शोक-ग्रस्त रहा। मार्ग में मिलिन्द ने पूछा भी—"देवता! इतने गम्भीर क्यों हैं आप? क्या कोई अनिष्ट हो गया है?"

"महारानी देवयानी के सम्मुख निर्णय करूँगा।"

"क्या निर्णय करेंगे?"

"तुमको अपने घर में रखूँ अथवा न रखूँ?"

"अर्थात् आप मेरे घर रहें या न रहें?"

"क्या?"

"घर तो स्त्रियों का होता है। कार्यक्षेत्र पुरुषों का है।"

"महारानी सीता भी यही कहतीं, तो वनवास में राम को जाना पड़ता,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी सीता को नहीं।"

"न आप महाराज हैं, और न मैं महारानी। इस कारण यह उपमा ठीक नहीं बैठी। देखिए, मैं बताती हूँ। देवलोक में सबको भोजन-वस्त्र राज्य की ओर से निःशुल्क मिलता है। इस कारण मैं आपकी कमाई पर आश्रित नहीं। आप मेरे साथ रहें या न रहें, भोजन-वस्त्र तो मिलेगा ही। रही सेवा-सुश्रूषा, वह घर में तो मैं ही करती थी और श्रीमान् आएँगे तो मैं ही करूँगी। अब बताइए आप मेरे घर आएँगे अथवा नहीं?"

भास्कर ने विस्मय में पूछा—"तो तुम मेरा त्याग करोगी?"

"मैंने यह कब कहा है? मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि आप मेरे घर में आया करेंगे अथवा नई वधू के घर जाएँगे? देवर्षि आपके लिए नई वधू का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

भास्कर मार्ग में तो इससे अधिक बात नहीं कर सका। जब वह अमरावती पहुँचा तो थोड़ा विश्राम करके, मिलिन्द को साथ ले देवयानी की सेवा में जा पहुँचा।

उस समय देवयानी करण से बात करके निवृत्त हुई थी। भास्कर और मिलिन्द को आया देख, बोली—"भास्कर देवता! हम आपका बहुत धन्यवाद करते हैं। आपने यहाँ देवलोक और ब्रह्मावर्त में हमारी बहुत सहायता की है। ब्रह्मावर्त से महाराज का पत्र आया है। उन्होंने आपके शौर्य और बुद्धिमत्ता की भारी प्रशंसा की है। वे स्वयं शीघ्र यहाँ आने वाले हैं। हमारा यह प्रस्ताव है कि भास्कर देवता को एक दिन सार्वजनिक उत्सव मनाकर, सम्मानित किया जाए। देवता के साथ देवी मिलिन्द को भी सम्मानित किया जाएगा। श्रीमती मिलिन्द ने जिस चतुराई से देवताओं में साहस और आत्माभिमान की भावना जाग्रत् की है, उसका पुरस्कार तो देवराज इन्द्र ही देंगे, हम तो केवल उसको सम्मानित ही कर सकते हैं। ब्रह्मावर्त से महाराज के आते ही आपको सम्मानित करने का उत्सव किया जाएगा।"

भास्कर इस समाचार से इतना प्रसन्न हुआ कि जिस बात को कहने के लिए वह आया था, वह भूल ही गया। उसने केवल इतना कहा—"महारानी जी! मैंने तो केवलमात्र अपना कर्तव्य निभाया है। ऐसा कार्य तो जब-जब महाराजा विक्रम और महारानी जी आज्ञा करेंगे, मैं करने के लिए सदैव उद्यत रहूँगा।"

पश्चात् देवयानी ने स्वर्णमुद्राओं की एक थैली भास्कर को पारितोषिक के रूप में दी और उनको विदा होने का संकेत कर दिया।

भास्कर लौटकर जब अपने निवासस्थान पर पहुँचा, तो विस्मय में मिलिन्द का मुख देखता रह गया। मिलिन्द ने उसके मुख पर विस्मय की रेखा देख पूछा—"देवता! क्या हो रहा है? आप मन में क्या मेरे घर में रहने अथवा न रहने के विषय पर विचार कर रहे हैं?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं कितना मूर्ख हूँ कि जिस प्रयोजन के लिए वहाँ गया था, उसे भूल ही गया। वहाँ मुख से यह बात निकली ही नहीं।"

"आप किस बात के लिए वहाँ गए थे ?"

"तुम्हारे देवर्षि से सम्बन्ध पर विचार करने के लिए और पूछताछ करने की इच्छा से।"

"तो अब फिर चले जाइए। अपने मन को सन्तोष तो हो जाएगा।"

"वह तो करूँगा ही, परन्तु मुझको हो क्या गया है कि मैं वहाँ बात भी नहीं कर सका ?"

"कुछ बात होती तो आपके मुख से निकलती ! मन का भ्रममात्र ही तो है, जो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के सम्मुख स्वयमेव छिन्न-भिन्न हो जाता है।"

: २ :

देवलोक से राजदूत एक सैनिकदल के साथ महारानी शची को लेने गया। जब ये लोग शची के पास पहुँचे तो उसने दिव्य यन्त्र द्वारा देवराज से परामर्श किया। समाचार बताने के पश्चात् शची का प्रश्न था—"आपको मुक्त कराने का क्या उपाय किया जाए ?"

"यदि तुम अपने भवन में जा पहुँचो, तो दो उपाय हो सकते हैं। एक तो गान्धार देश पर आक्रमण कर दिया जाए। यह अब सम्भव है। भवन के भू-गर्भ-आगारों में बहुत से आग्नेय अस्त्र तैयार पड़े हैं। उनकी सहायता से गान्धार तो कुछ नहीं, चाहो तो पूर्ण संसार पर विजय प्राप्त कर सकती हो, परन्तु इससे सुलभ एक और उपाय है। एक समय भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी ने अपना हंस नाम का वायुयान भेंट किया था। एक-दो बार हम उसमें भ्रमण के लिए निकल चुके हैं और तुम उसे चलाना भी जानती हो। उसमें तुम यहाँ चली आओ। मेरा आगार यहाँ दुर्ग के ऊपर की छत पर है। वहाँ हंस उतर सकता है। जब मैं तुम्हें आता देखूँगा तो उस छत पर आने वाली सीढ़ियों का द्वार बन्द कर लूँगा। तुम्हारे उतरते ही मैं उसमें सवार होकर चल दूँगा। इस विधि से युद्ध के द्वारा विनाश की आवश्यकता नहीं रहेगी और कार्य भी सुगमतापूर्वक हो सकेगा।"

इन बातों को समझ शची अमरावती के लिए चल पड़ी। उसके पहुँचने की तिथि अग्रिम ही वहाँ पहुँचा दी गई थी और उस दिन निश्चित समय पर पूर्ण नगर महारानी के स्वागत के लिए सजाया गया था। सब लोग, नर-नारी, बाल-वृद्ध, नए-नए वस्त्र पहने मार्ग पर आ खड़े हुए। मार्ग के मकानों के छज्जे और छतें दर्शकों से खचाखच भर गईं।

नगर से दूर मार्ग पर एक सुसज्जित रथ महारानी के स्वागत के लिए भेजा गया। देवयानी, करण, नारद और नगर के सभी प्रतिष्ठित जन, उस रथ के साथ वहाँ स्वागत के लिए गए। महारानी का सबने बहुत सम्मान के साथ स्वागत किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुन्दर महारानी को उस भूषित रथ में बैठाकर सवारी निकाली गई। शची ने देवयानी को रथ में अपने साथ बैठा लिया। रथ, जिसके आगे-पीछे कश्मीर और देवलोक की सेना थी, अमरावती के मुख्य मार्गों से होता हुआ भवन पहुँचा। मार्ग में नागरिकों ने पुष्पवर्षा की और अनेक प्रकार की भेंटें दीं।

इन्द्रभवन में महारानी को अपने आगारों में ठहराया गया। उन आगारों को वैसा ही सजाया गया था जैसा कि वे पहले सजे रहते थे। जब सब निश्चिन्त हो बैठे तो इन्द्राणी ने महाराज इन्द्र को मुक्त कराने की योजना रखी। परिणामस्वरूप हंस नाम का विमान निकाला गया। उसे झाड़-पोंछकर साफ किया गया और जीवित पारद उसमें डालकर चालू किया गया।

दिव्यदृष्टि यन्त्र से इन्द्र के साथ सम्पर्क स्थापित कर उसे बताया गया कि अमुक दिन शची उस यान में कमल-सर दुर्ग को आ रही हैं। निश्चित तिथि को शची विमान में बैठ उसे चलाने लगी और हंस वायु में उड़ने लगा। कुछ ही क्षणों में विमान नगर के ऊपर आकाश में मँडराने लगा। नारद की इच्छा थी कि विमान में शची के साथ और भी लोग जाएँ, परन्तु उसमें दो से अधिक के लिए स्थान नहीं था। इस कारण नारद की इच्छा पूर्ण न हो सकी।

जब अमरावती के लोगों ने छः वर्ष के उपरान्त वायु में पुनः विमान देखा, तो अपने-अपने घरों की छतों पर आ खड़े हुए और महारानी का जयघोष करने लगे। नगर के ऊपर एक-दो चक्कर लगाकर विमान पश्चिम की ओर चल पड़ा।

नारद और देवयानी दिव्यदृष्टि यन्त्र के, जिसे शची भवन में छोड़ गई थीं, सम्मुख खड़े हो इन्द्र से वार्तालाप करने लगे। इन्द्र अपने यंत्र में शची के विमान को आते देख रहा था। उसने नारद आदि लोगों से कहा—"आप चिन्ता न करें! मैं उसको आते देख रहा हूँ। हम दोनों रात होने से पूर्व अमरावती पहुँच जाएँगे।"

इन्द्र से देवयानी का परिचय कराया गया। सुमन ने शक्तिप्रसारक यन्त्रों के विषय में सूचना दी। इस प्रकार वार्ता चलती रही।

मध्याह्न के समय इन्द्र ने सूचना दी—"शची का विमान आकाश में दिखाई देने लग गया है। इस कारण मैं यन्त्र को बन्द कर रहा हूँ। मैं तैयार रहना चाहता हूँ, जिससे बिना विलम्ब किए हम इस विमान को भूमि पर से उठा सकें।"

इस समय नारद आदि को यन्त्र में से इन्द्र दिखाई देने बन्द हो गए। और वे अब उनके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। तीन घंटे व्यतीत हो गए तो सब लोग छत पर जाकर आकाश में पश्चिम की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। विमान अभी दिखाई नहीं दे रहा था। घण्टों के पश्चात् घण्टे व्यतीत होने लगे और विमान दिखाई नहीं दिया। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, सबके मुख विवर्ण होते गए। रात हो गई और सब गम्भीर मुख चिन्तित मन लिये छत से नीचे उतर आए। सब किसी भयानक दुर्घटना की सम्भावना पर मन ही मन विचार कर रहे थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन भी इन्द्र और शची की प्रतीक्षा की गई और जब विमान नहीं आया, तो परिस्थिति पर विचार करने के लिए देवलोक के मुख्य-मुख्य अधिकारियों की गोष्ठी बुलाई गई और उसमें देवयानी ने वस्तुस्थिति समझा दी। नारद ने अपना अनुमान बताया कि विमान इन्द्र के पास दुर्ग में तो पहुँचा है, परन्तु वहाँ इसको कोई हानि पहुँची है। या तो किसी दुर्घटना के कारण अथवा दुर्ग के संरक्षकों के कारण उनके लौटने में बाधा पड़ गई है। यदि वे वहाँ दुर्ग में होते और स्वतन्त्र होते तो दिव्यदृष्टि यन्त्र द्वारा यहाँ सूचना भेजते कि उनके न आने का क्या कारण है।

इस अनुमान को सुनने पर देवयानी ने कहा—"अब तो हमारे लिए करने के लिए एक ही बात रह गई है। वह यह कि हम उनको ढूँढ़ने का यत्न करें। इसके लिए मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि कोई कसर नहीं छोड़ी जाएगी। इस खोज का कार्य पूर्ण अधिकारों के साथ मैं करणदेव को सौंपती हूँ।

"मैं अभी कुछ काल तक यहीं रहूँगी। महाराज इन्द्र और महारानी शची की खोज के परिणामों तक, हमको धैर्य करना चाहिए। बाद में जैसी स्थिति होगी, विचार कर लिया जाएगा।"

करण ने उसी दिन से इस विषय में प्रयास आरम्भ कर दिया। वह स्वयं भी इन्द्र के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए कमल-सर दुर्ग जाने के लिए तैयार हो गया। उसकी उत्कट इच्छा थी कि वह अपनी माता से मिलने जाए, अतएव इस समय एक पंथ दो काज होते देख सुमन और बच्चों सहित जाने की तैयारी करने लगा।

देवलोक में पितामह ब्रह्मा की कृपा से कुछ और जीवित पारद मिल गया और उससे देश का जीवन चल रहा था। फिर भी यन्त्रों में कुछ दोष आता जाता था, जिससे कार्य पूर्ण देश में और पूरे बल से नहीं हो पाता था। इस कारण देवयानी ने उन ऋषियों की समिति बुलाई, जिन्होंने ब्रह्मा से पहले पारद प्राप्त किया था। उसने ऋषियों को कहा कि वे ब्रह्मा के पास जाएँ और उनसे कहें कि अब वर्तमान परिस्थिति में उनको अमरावती में आ जाना चाहिए और यहाँ जनता की रक्षा में सहयोग देना चाहिए।

ऋषियों का शिष्टमण्डल ब्रह्मा से मिलने गया। इधर देवयानी ने समाज के पुनर्गठन के लिए आचार्यों की एक समिति बुलाई। इस समिति के सम्मुख गान्धारों के वहाँ आ जाने से जनसमूह में जो वृद्धि हुई थी, स्त्रियों के सतीत्व का हनन हुआ था, वर्णसंकर बालकों की उत्पत्ति हुई थी और गान्धारों की सन्तान—इन सबके लिए समाज में स्थान पर विचार करने के लिए प्रश्न उपस्थित हुआ। इस समिति को यह विचार करने के लिए आदेश दिया गया कि उन युवा पत्नियों का, जो गान्धारों के जाने के पश्चात् देवलोक में रह गई हैं, और जिनके सन्तानें भी हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकी हैं, क्या प्रवन्ध किया जाए।

इसी प्रकार एक और समिति बनाई गई, जिसमें यह बात विचारार्थ रखी गई कि भविष्य में देवलोक संसार के अन्य देशों से पूर्ववत् असम्बद्ध रहे, अर्थात् व्यापार, विचारों का आदान-प्रदान और विदेशों में तथा विदेशियों के देश में आने-जाने में सुविधा दी जाए अथवा नहीं।

इस प्रकार देश में एक नवीन उत्साह और देश के हित में विचारने की रुचि उत्पन्न कर दी गई। पूर्ण जनता यह समझने लगी कि वे ही देश का कल्याण कर सकती है।

ब्रह्मा ने ऋषियों द्वारा भेजे निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। इससे देवयानी को बहुत दुःख हुआ। नारद ने देवयानी से कहा—"मेरे विचार में बात यह है कि वे देवताओं से रुष्ट हैं। इस कारण उनसे हमारी बात न मानी जानी एक स्वाभाविक बात है। यदि आप समझती हैं कि ब्रह्मा जी को लाना ही चाहिए, तो स्वयं जाकर उनसे निवेदन करिए। शायद वे मान जाएँ।"

देवयानी समझती थी कि इन्द्र के लापता होने से और देवलोक के लोगों के उसके पास स्वयं जाने से पितामह को आ जाना चाहिए था। ब्रह्मा के न करने से उसे बहुत दुःख हुआ था। फिर भी नारद के कहने पर वह चलने को तैयार हो गई।

इस समय एकाएक विक्रम अपने लड़के नागराज सहित अमरावती में आ गया। देवलोक में नहुष की हत्या का समाचार उसको सिन्धु नदी पर दुर्ग निर्माण करते हुए मिला था। भास्कर को तो उसने बहुत पहले ही देवलोक में देवयानी की रक्षार्थ और सहायतार्थ भेज दिया था। अब यह समाचार पाते ही कि देवलोक की जनता के हाथ से नहुष की मृत्यु हो गई है और देवलोक में देवयानी राज्य कर रही है, वह देवयानी से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा। उसने ब्रह्मावर्त के गणपति के हाथ शेष कार्य सौंप दिया और स्वयं चक्रधरपुर के लिए चल पड़ा।

चक्रधरपुर में डेढ़ वर्ष के नागराज को देख, उसका मन उसको साथ ले चलने के लिए व्याकुल हो उठा। महाराज देवनाम और महारानी की स्वीकृति से बालक को साथ ले, वह देवलोक की ओर चल पड़ा। शची के अमरावती में पहुँचने और फिर इन्द्र को निकालने के लिए विमान में जाने और वहाँ से लापता हो जाने का समाचार विक्रम को चक्रधरपुर में ही मिल गया था और मार्ग-भर वह यही विचार करता आ रहा था कि अब देवलोक का क्या होगा ? वह स्वयं अमरावती की अवस्था देखकर निर्णय करना चाहता था कि इस शीतप्रधान देश का क्या किया जा सकता है।

देवयानी ब्रह्मा के पास जाने की तैयारी कर ही रही थी कि विक्रम आ पहुँचा। बिना सूचना के विक्रम को आया देख, वह चकाचौंध रह गई। दोनों मिले, मानो दो नदियों के जल इस प्रकार मिल गए हों, जैसे वे अपना स्वत्व ही खो बैठी हों।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागराज अभी एक वर्ष का ही था, जब देवयानी देवलोक आई थी। अब उसे छः मास व्यतीत हो चुके थे। डेढ़ वर्ष का बालक तोतली बातें करता था और सबको अतिप्रिय लगता था। पिता पुत्र की रूप-रेखा पर मुग्ध था। वह समझता था कि बालक अपने काल का एक विशेष व्यक्ति होगा। इन्द्रभवन में इस बालक की धूम मची रहती थी।

विक्रम के आ जाने से, देवयानी के ब्रह्मा से मिलने के लिए जाने में देरी हो गई। अन्त में ब्रह्मा के पास जाने का जब निर्णय हुआ, तो विक्रम ने भी इस वृद्ध देवता के दर्शन करने के लिए जाने का विचार कर लिया। नारद तो पहले ही तैयार था।

: ३ :

सुमति को देवलोक में आए दो वर्ष हो चुके थे। नारद से उसकी भेंट प्रायः नित्य होती थी, परन्तु विवाह-सम्बन्धी चर्चा उस स्तर से आगे नहीं चली थी, जिस पर चक्रधरपुर में पहुँची थी। सुमति की इच्छा थी कि नारद स्वयं इस विषय में चर्चा करे, परन्तु या तो देवलोक में विप्लव कराने में व्यस्त होने के कारण या किसी अन्य कारण से देवलोक में आकर एक बार भी सुमति से विवाह की बात नहीं चली।

जब देवलोक में देवयानी का राज्य स्थापित हो गया और शची और इन्द्र किसी दुर्घटना के कारण लापता हो गए, तो सुमति ने समझा कि अब उसके भविष्य का निर्णय होना चाहिए। इस कारण जब नारद, देवयानी और विक्रम ब्रह्मा से मिलने के लिए तैयार थे, तब वह नारद से मिलने के लिए उसके आगार में जा पहुँची। नारद वहाँ बैठा वीणा बजा रहा था। आगार के द्वार पर बाहर खड़ी वीणा की झंकार सुन वह ठहर गई। देवलोक के एक अद्वितीय संगीतज्ञ की वीणा-वादन कला को उसने पहली बार ही सुना था। आज आगार में से स्वर लहरी बहते सुन, स्तब्ध रह गई। यह क्या राग था अथवा कौन-सी ताल थी, वह समझती नहीं थी। परन्तु उसके माधुर्य को वह अनुभव कर रही थी। कितनी देर तक वह मन्त्रमुग्ध नारद की वीणा पर तानालाप सुनती रही। अन्त में वीणा बन्द हुई और उसको ज्ञान हुआ कि वह किस प्रयोजन से वहाँ आई है। अतएव सुमति ने द्वार के बाहर से ही आवाज दे, भीतर आने की स्वीकृति माँगी। नारद आवाज सुन स्वयं बाहर चला आया—"ओह सुमतिदेवी ! आज इस घुमक्कड़ देवता के निवासस्थान को पवित्र करने का क्या प्रयोजन है ?" नारद ने मुस्कराते हुए पूछा।

"यहीं खड़ी-खड़ी ही बताऊँ क्या ? आपके आगार में घर आए अतिथि को बैठाने के लिए स्थान भी नहीं है ?"

"क्षमा करो देवी ! मैं भूल ही गया था कि मुझे आपका स्वागत करना चाहिए। आइए ! पधारिए !" इतना कह वह सुमति को आगार में ले गया और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आसन पर बैठने को कह, स्वयं अपनी वीणा के सम्मुख बैठ गया। एक हाथ उसका वीणा की तारों पर जा पड़ा। हाथ के वहाँ जाते ही षड्ज का तार झनझना उठा।

सुमति ने कहा—"देवता! इस झंकार को कुछ काल के लिए बन्द करिए। इसकी मधुर ध्वनि मेरे मस्तिष्क में ऐसी हलचल उत्पन्न करती है कि मैं अपनी सुधबुध ही भूल जाती हूँ। मैं आपसे अपना वचन पूरा करने के लिए कहने आई हूँ।"

"क्या वचन था? मुझको ठीक याद नहीं पड़ रहा।"

सुमति को भारी क्रोध चढ़ आया, परन्तु वह आज इस विषय में अन्तिम निर्णय करने आई थी। इस कारण बोली—"आपने मुझसे विवाह के लिए वचन दिया था। इसे तीन वर्ष से ऊपर हो गए हैं। आज मैं उस वचन को पूरा करने के लिए कहने आई हूँ।"

"मैंने वचन नहीं दिया था। जहाँ तक मुझको स्मरण है, मैंने कहा था, आप जैसी सुन्दरी से विवाह कर अपना सौभाग्य मानूँगा; परन्तु देवी, विवाह तो भाग्य के बिना नहीं होता। शायद मेरे भाग्य में विवाह है ही नहीं।"

"आपके भाग्य ने कौन-सी बाधा खड़ी कर दी है, क्या मैं जान सकती हूँ?"

"मेरी इच्छा पृथ्वी-भ्रमण की हो गई है और इसमें विवाह बाधा उपस्थित करेगा।"

"जब विवाह करेंगे, तब आपको अपनी इच्छाओं को कुछ सीमा तक सीमित करना ही पड़ेगा। यही तो पारिवारिक आयोजन का रहस्य है।"

"देखो सुमतिदेवी! इस बात को तो हुए तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। तब में और आज में भारी अन्तर पड़ गया है। मैं तीन वर्ष अधिक वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुका हूँ। तुम तीन वर्ष अधिक युवावस्था को प्राप्त कर चुकी हो। इस कारण पूर्ण परिस्थिति पर पुनः विचार करने का अवसर आ गया है।"

"विचित्र व्यक्ति हैं आप! मैं आपके पीछे-पीछे यहाँ आई हूँ किन्तु आपकी बातों ने मेरी सुध-बुध ही भुला दी है।"

"मेरा विचार है कि तुम भी हमारे साथ पितामह के दर्शन को चलो। वे त्रिकालज्ञ हैं। यदि मेरा और आपका विवाह लिखा होगा, तो वे बता देंगे। तब मैं भ्रमणार्थ जाने से पूर्व विवाह कर लूँगा। या तुम मेरे वापस आने तक प्रतीक्षा कर लोगी।"

"मैं आपकी इस आनाकानी को समझ नहीं सकी। मैं ब्रह्मा जी का इसमें हस्तक्षेप नहीं चाहती। आपने मुझे विवाह की आशा दिलाकर अच्छा नहीं किया था।"

"वह तो मैंने अच्छा ही किया था। उस आशा में आप देवलोक में आई और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ जागृति उत्पन्न करने में भारी सहायता दी। उसके लिए पूर्ण देवलोक आपका कृतज्ञ रहेगा। रही मेरे विवाह की बात। मैं तो तैयार हूँ, परन्तु क्या मेरे भाग्य में ऐसा लिखा है ? मुझको इसमें सन्देह है। चलो पितामह जी से इस विषय में परामर्श कर लें। यदि मेरा और तुम्हारा विवाह होना ही है, तो वे बता देंगे, अन्यथा भाग्य से झगड़ा करने की क्या आवश्यकता है ?"

सुमति को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह देवयानी के पास नारद के विरुद्ध आरोप लेकर गई। देवयानी ने उसकी बात सुनकर देवर्षि को बुलवाया और उनके आने पर उनको सुमति का अभियोग सुना दिया।

नारद का कहना था—"देवयानी ! तुमको हम देवताओं ने अपनी महारानी माना है। इस कारण यदि तुम आज्ञा करोगी तो उसका मैं उल्लंघन नहीं करूँगा। परन्तु मेरा कहना है कि मुझको कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह विवाह होगा नहीं। मेरे भाग्य में विवाह लिखा नहीं। फिर भी पितामह ब्रह्मा से, जो त्रिकालज्ञ हैं, इस विषय में परामर्श कर लें तो उचित नहीं होगा ?"

देवयानी को इस प्रस्ताव में कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। इस कारण सुमति को भी चलने के लिए कहा गया।

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा के पास देवयानी दल-बल-सहित जा पहुँची। वह अपने साथ कश्मीर की अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भेंटस्वरूप लाई थी। ब्रह्मलोक में पहुँच पितामह से भेंट के लिए निवेदन किया गया। पितामह इस प्रकार अपनी शान्ति भंग किए जाने को पसन्द नहीं करता था। जब उसको बताया गया कि कश्मीर की राजकुमारी देवयानी, जिसने देवलोक का नहुष से उद्धार किया है, आई है, तो झुँझलाकर बोला—"मेरा देवलोक से क्या सम्बन्ध है ? मुझसे किसी प्रकार की आशा न रखें।"

देवयानी ने कहला भेजा—"मैं अपने लिए कुछ माँगने नहीं आई। न ही देवलोक के लिए कुछ कहने आई हूँ। मैं एक विशेष उद्देश्य से सेवा में उपस्थित हुई हूँ, वह सुन लें। बिना सुने और समझे भेंट अस्वीकार कर देना आप जैसे ज्ञानी के लिए शोभायुक्त नहीं। साथ ही मैं समझती हूँ कि मेरा अधिकार है कि आपसे सहायता माँगूँ। इसी कारण आई हूँ। यदि मेरी बात सुने बिना अस्वीकार कर दी गई, तो मैं कल से द्वार पर उपवास कर बैठ जाऊँगी, और वृद्ध, पूजा-योग्य, देवता का हठ तुड़वाने के लिए प्राणत्याग कर दूँगी।"

जब ब्रह्मा ने यह निश्चय सुना तो बहुत प्रभावित हुआ और मिलने के लिए तैयार हो गया। उसने सन्देश लाने वाले के हाथ कहला भेजा—"मैं मिलूँगा, परन्तु बात मानने का वचन नहीं देता। बात की युक्ति सुनकर उसे मानने अथवा न मानने की कहूँगा।"

देवयानी यही चाहती थी। भेंट का समय निश्चित हो गया। नारद ने कहा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो डर गया था कि देवयानी की धमकी से पितामह और अधिक रुष्ट न हो जाएँ, परन्तु इसका चामत्कारित प्रभाव हुआ है। धन्य हो देवयानी !"

देवयानी ने केवल यह कहा—"इसमें एक रहस्य है, जो आप नहीं समझते।"

"क्या रहस्य है ?"

"समझने का यत्न करिए।"

अगले दिन भेंट हुई। सब लोग पितामह के आगार में गए तो बारी-बारी सबने चरण-स्पर्श किए। देवयानी ने जब स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाए, तो ब्रह्मा बोल उठा—"ठहरो !"

देवयानी हाथ जोड़ खड़ी हो गई। पितामह ब्रह्मा ने उसकी आँखों में एक क्षण तक देखा, पश्चात् मुस्करा दिया। देवयानी ने हाथ जोड़े-जोड़े ही कह दिया—"दादा ! क्या आज्ञा है ?"

"तुम्हारे पति कहाँ हैं ?"

विक्रम पीछे खड़ा था। वह आगे आकर चरण-स्पर्श करने लगा तो ब्रह्मा ने उसे भी रोक दिया। ब्रह्मा ने कहा—"मेरे चरण-स्पर्श मत करो। यह भारी पाप हो जाएगा। बताओ, क्या चाहते हो ?"

देवयानी ने कहा—"देवलोक की रक्षा के लिए आपकी सहायता चाहते हैं।"

"ये लोग घोर पतन में गिर चुके हैं।"

"मेरा इन लोगों से कोई सरोकार नहीं। मैं देवलोक की रक्षा, आर्य धर्म और वेद-वेदांत की रक्षा के लिए चाहती हूँ।"

"यह कैसे हो सकेगा ?"

"तुखार से उठी म्लेच्छों की आँधी, जो ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त को अन्धकार में ढाँप देने वाली है, उसका दमन देवलोक की रक्षा पर निर्भर है।"

"देखो देवी !" ब्रह्मा ने कहा—"देश तो नदी, पहाड़ और मैदानों के समूह-मात्र होते हैं। इनकी रक्षा बिना उसमें रहने वाले मनुष्यों का विचार किए, कुछ अर्थ नहीं रखती। इस कारण देवताओं के उद्धार के बिना देवलोक की रक्षा निरर्थक होगी। देवताओं के मन मलिन हो चुके हैं और वे उचित मार्ग का अवलम्बन करने में सबल नहीं।"

"बाबा ! दुर्ग पत्थर और चूने के बने होने पर भी रक्षा का साधन होते हैं। इसी प्रकार देश, पहाड़, नदी, इत्यादि होने पर भी भारी मूल्य की वस्तु हैं। हमारा प्रयास यह है कि हम वेद-वेदांगों से अनभिज्ञ म्लेच्छों को कामभोज के पीछे धकेल दें। इसके लिए हमने इनको ब्रह्मावर्त से निकाल बाहर कर दिया है। कश्मीर को इनके आक्रमण से सुरक्षित कर दिया है। देवलोक से भी इनको निकालने में सफल हो गए हैं। अब और आगे गान्धार और कामभोज को भी इनसे खाली करना है। इस प्रयत्न के लिए कश्मीर, ब्रह्मावर्त और देवलोक के राज्य सुदृढ़ होने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। देवलोक की दृढ़ता वहाँ के शक्ति-प्रसारक यन्त्रों पर निर्भर है। उनके लिए आपकी सहायता चाहिए।"

"देवी! तुम्हारी वाणी में बल, युक्ति और शुद्ध भावना प्रतीत होती है, परन्तु उसमें भविष्य का ज्ञान सम्मिलित नहीं। मैं बताता हूँ कि क्या होने वाला है। तुम अल्पज्ञ प्राणी इसको नहीं जानते। इसी कारण यह सब कुछ हो रहा है।

"सुनो! मैं अपने योगबल से जाने भविष्य को बताता हूँ। देवलोक में दो वर्ष के भीतर इन्द्र लौट आएगा। वह पुनः इसको वैसा ही सुख-सम्पन्न बनाएगा, जैसा यह पहले था। इन्द्र इस समय कामभोज में अंधी-कुंई नामक ग्राम में बन्दी है। बन्दी करने वाला नहुष का श्वसुर जुष्क है। नहुष मर गया है, परन्तु उसका विवाह अपने देश में जुष्क की लड़की से हो चुका था और उस पत्नी से उसका एक पुत्र भी है जिसका नाम ययाति है। यह ययाति अपनी जाति के एक विद्वान् की लड़की से विवाह करेगा और उससे एक बलशाली वंश की स्थापना होगी। यद्यपि इस बलशाली देश में बड़े-बड़े पराक्रमी राजा-महाराजा होंगे, परन्तु इनमें अपने पूर्वजों का असंस्कृत चलन और विचार चलता रहेगा। इस चेष्टा की काली घटाएँ पूर्ण देश में छा जाएँगी और इन्द्र इस वंश की सहायता करेगा, और यह वंश ब्रह्मावर्त, बाहुक और आर्यावर्त पर चिरकाल तक निष्कंटक राज्य करेगा।

"ययाति एक आर्य कन्या से भी विवाह करेगा और उससे एक कन्या-वंश की स्थापना होगी। उस वंश में एक महापुरुष का जन्म होगा, जो ययाति के अनार्य कन्या से उत्पन्न वंश के अनाचार से उत्पीड़ित होकर देश के आकाश को, इन घटाओं से मुक्त कराएगा। वह इस वंश का सर्वनाश करने में साधन बनेगा। यह महापुरुष भगवान् विष्णु का अवतार माना जाएगा। वह इस देश में, जो ययाति के वंश में उत्पन्न एक अर्द्ध-देवता के नाम पर भारत कहाएगा, पुनः वेद-वेदांग, उपनिषद् और स्मृतियों की महिमा गाएगा और उनका मान स्थापित करेगा। तुम लोग जो कुछ करोगे, वह विफल जाएगा।"

यह निराशाजनक भविष्यवाणी सुन सब स्तब्ध रह गए। देवयानी का मुख भी उतर गया। इस समय विक्रम ने कहा—"भगवन्! आपकी भविष्यवाणी पर किंचित्मात्र भी सन्देह न करते हुए, मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि भविष्य के अनिश्चित पतन से भयभीत मनुष्य अपना कर्तव्यपालन नहीं छोड़ सकते। इस देवी ने बहुत सुन्दर शब्दों में अपना कार्यक्रम बता दिया है। आपकी समझ में आए तो हमारी सहायता करिए। यदि आप समझते हैं कि आपका इस ओर प्रयास करना अनावश्यक है तो आप अपने कार्य के स्वयं स्वामी हैं। हमने निवेदन कर दिया है, अब आप आज्ञा कीजिए।"

"मैंने अभी न नहीं कही। मैंने तो इस देवी को, क्या होने वाला है, इसका निर्देश किया है। एक बात जो अब कहता हूँ, उसको ध्यान से सुनो और समझो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी इस देवी की बात का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता और मैंने तुम लोगों को देखते ही निश्चय कर लिया था कि मुझको अमरावती जाना ही होगा।"

इस पर सबके मुख से 'धन्य हो ! धन्य हो' निकल गया। देवयानी ने जब पुनः चरण-स्पर्श करना चाहा, तो ब्रह्मा ने अपने पाँव पीछे कर लिये और कहा—"यह मत करो।"

यह सब कुछ सुन और देख नारद से नहीं रहा गया। उसने कह ही दिया—"पितामह ! आपका निर्णय सुन तो हृदय अति प्रसन्न हुआ है, परन्तु उससे मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया है। इसके निवारण की तीव्र उत्कण्ठा भी जाग्रत् हो गई है। क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके इस कथन का क्या अर्थ है ?"

"यह समय बताएगा। संगीताचार्य ! तुम अपनी बात बताओ।" सुमति की ओर संकेत कर ब्रह्मा ने कहा—"बेचारी बालिका को क्यों खराब कर रहे हो ? तुम जो विवाह के योग्य हो ही नहीं, क्यों उसको अपने साथ-साथ लिये घूमते हो ? देखो सुमति !" ब्रह्मा ने उसकी ओर देखकर कहा—"तुम्हारा इस बेपैंदी के लोटे से विवाह नहीं होगा और न होना ही चाहिए। तुम अपने पिता के पास लौट जाओ। तुम्हारा होने वाला पति वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

: ४ :

ब्रह्मा अमरावती में आया तो कार्य और भी प्रगति करने लगा। ब्रह्मा का कहना था कि देश की अस्तव्यस्त अवस्था को सुधारने के लिए आवश्यकता है कि इसकी जनसंख्या सीमित की जाए और फिर उसमें पुरुष-स्त्रियों का उचित अनुपात किया जाए और तदनन्तर पुरुषों और स्त्रियों में अधिक से अधिक लोगों को सबल तथा गुणवान बनाया जाए। इसके लिए योजना बनाने के लिए जनगणना होनी भी आवश्यक बताई गई।

इन्द्र और शची की खोज में करण के अतिरिक्त कई दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजे गए थे। अभी तक कोई परिणाम नहीं निकला था। कुछ दल असफल होकर लौट आए थे। ब्रह्मा ने देवयानी को बतलाया कि इन्द्र कामभोज में नहुष के श्वसुर जुष्क के दुर्ग अंधी-कुंई में बन्दी है। उसको वहाँ से छुड़ाने के लिए योग्य व्यक्ति को भेजना चाहिए। यह निश्चय हुआ कि कुछ लोग वहाँ भेजे जाएँ, जो इन्द्र और शची को छुड़ाकर भगा लाने का षड्यन्त्र कर सकें। यदि यह न हो सका तो कामभोज पर आक्रमण किया जाए।

इस कार्य के लिए विक्रम के एक मित्र वरुण को कश्मीर से बुलाया गया। वह चतुर, बुद्धिमान् और साहसी व्यक्ति था। उसको पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान कराकर, इस विषय में योजना बनाने का आदेश दे दिया गया।

वरुण विक्रम के अपने गाँव का रहने वाला था। उसका बाल-सहपाठी था और उस पर विक्रम को बहुत विश्वास था। इस कारण धन और जन उसे दे दिए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए और उसको शीघ्रातिशीघ्र इन्द्र और इन्द्राणी को छुड़ाने के लिए यत्न आरम्भ करने के लिए कहा गया। वरुण ने पहले, केवल दो साथियों को साथ लेकर जाने का विचार किया।

अंधी-कुंई कामभोज में कश्मीर से पचास कोस पश्चिम की ओर एक छोटा-सा कस्बा था। इस कस्बे का सरदार जुष्क नाम का एक व्यक्ति था। नहुष से जुष्क की लड़की कामिनी का विवाह हुआ था परन्तु बाद में पति-पत्नी में वैमनस्य हो जाने के कारण कामिनी अपने पिता के घर चली आई। उस समय उसका एक वर्ष का लड़का उसके साथ था। इस लड़के का नाम ययाति रखा गया। बाद में नहुष देवलोक को विजय करने का स्वप्न देखता हुआ वहाँ से चला गया।

ययाति दस वर्ष की आयु का था, जब गान्धार-अधिपति काकूष की ओर से आज्ञा आई कि देवराज इन्द्र और उसकी पत्नी शची को नहुष के सम्बन्धियों ने बन्दी बना रखा है, वह उनको वहाँ से ले आए और अपने यहाँ रखे। जुष्क इन्द्र और शची को ले आया और उसने उनको अपने दुर्ग में एक तीन छत के घर की सबसे ऊपर वाली छत में बन्द कर दिया।

इस घटना को हुए छः मास व्यतीत हो चुके थे। इन्द्र तथा शची को वहाँ शारीरिक दृष्टि से प्रत्येक सुविधा थी। बढ़िया खाना, जो इस देश में उपलब्ध हो सकता था, दास-दासियाँ सेवा के लिए, अच्छे और स्वच्छ वस्त्र पहनने के लिए, मिल जाते थे। असुविधा थी तो केवल घर के अन्दर बन्द रहने की।

घर की भूमि के आगारों और ड्योढ़ी में तीस सैनिक रहते थे। एक सैनिकों का नायक था। सब लोग भूमि पर ही पहरा देते और भूमि पर ही रहते थे। बीच की छत पर आठ दासियाँ रहती थीं, जो इन्द्र और शची की सेवा के लिए थीं। सबसे ऊपर की छत पर इन्द्र और शची स्वयं रहते थे। इस छत पर पाँच आगार थे। इन्द्र तथा शची पाँचों में रहते-बैठते थे। भ्रमण के लिए मकान की छत पर जा, खुली हवा में घूमा जा सकता था और इन्द्र तथा शची नियमपूर्वक सायंकाल सूर्यास्त से दो घड़ी पहले वहाँ चले जाते थे और घूमते थे।

मकान इतना ऊँचा था कि ऊपर की छत दुर्ग के बाहर खड़े व्यक्ति को दिखाई देती थी और उस पर घूम रहे बन्दी भी बाहर के व्यक्ति को दिखाई पड़ते थे। मकान दुर्ग की प्राचीर के साथ-साथ ही था। इस कारण दुर्ग के बाहर के लोग प्रायः सायंकाल बन्दियों को घर की छत पर घूमते देखते रहते थे।

दुर्ग की प्राचीर के साथ एक सड़क थी और सड़क के पार अंधी-कुंई ग्राम की बस्ती थी। कुछ घर तो सड़क के किनारे पर ही थे।

शची का सौन्दर्य और इन्द्र की भव्य रूपरेखा ऐसी थी कि देखने वालों का मन देखकर भरता नहीं था। इस कारण दुर्ग के बाहर प्राचीर के समीप, जहाँ से मकान की छत दिखाई देती थी, सायंकाल इन्द्र तथा शची के दर्शन करने वालों की भीड़

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग जाती थी।

इन्द्र और शची से ययाति प्रायः मिलने जाया करता था। ययाति की माँ भी इन्द्राणी से सम्बन्ध रखे हुए थी। इनका बन्दियों से व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण था। परन्तु वे इनको बन्दी रखने में अपनी विवशता प्रकट करते थे।

इस समय सरदार जुष्क के पास एक सभ्य युवक सेवाकार्य के लिए उपस्थित हुआ। यह करण था। वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अंधी-कुंई के पंथागार में ठहरा हुआ था। जुष्क अपने नित्यप्रति के स्वभावानुसार मध्याह्नोत्तर, जब नगर में और नगर के बाहर जंगल में भ्रमण के लिए निकला तो करण ने झुककर प्रणाम किया और कहा—"कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

सरदार ने उसको सिर से पाँव तक देखा और पूछा—"तुम कौन हो?"

"मैं नहुष महाराज का, जब वे देवलोक में थे, महामन्त्री था। मेरा नाम करणदेव है। मैं आपके देश का ही रहने वाला हूँ।"

जुष्क ने विचार किया और कहा—"हम तुमसे पृथक् में बात करेंगे। कल प्रातःकाल हमारे यहाँ चले आना।"

करण यही चाहता था। अगले दिन वह दुर्ग के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। उसकी सूचना अन्दर भेजी गई। सूचना पाते ही करण को सरदार के प्रासाद में बुला लिया गया। दुर्ग भीतर से बहुत बड़ा था। एक कोने में सरदार का प्रासाद था। उससे दूसरे कोने में वह घर था, जहाँ इन्द्र और शची बन्दी थे। एक कोने में सैनिकों के घर थे और चौथे कोने में दास-दासियों के लिए निवास-स्थान थे।

करण जब प्रासाद के बड़े आगार में पहुँचा तो उसने सरदार की स्त्री और लड़की तथा ययाति को सरदार के साथ बैठा पाया। उससे सरदार ने सबका परिचय कराया और पश्चात् बैठने का आदेश दिया। करण से उसका परिचय पूछा गया तो उसने बताया—"यहाँ से पूर्व की ओर दस कोस के अन्तर पर डुग्गी गाँव का रहने वाला हूँ। मेरे पिता व्यापारी थे। उनका जब देहान्त हुआ तो मैं बालक ही था। मेरी माता ने मुझको विद्या ग्रहण करने के लिए लवपुर भेजा। वहाँ शिक्षा प्राप्त कर नहुष महाराज के पिता के पास कार्य करने लगा था। नहुष महाराज को मेरा कार्य पसन्द आया तो उनके देवलोक पर आक्रमण के लिए सेना का संगठन मेरे हाथ में सौंपा गया। पश्चात् जब मैं देवलोक में पहुँचा तो मुझको महामात्य का पद मिला। महाराज की हत्या के पश्चात् मैं ब्रह्मावर्त चला गया था और वहाँ से अपनी वृद्ध माता से मिलने के पश्चात् किसी भले पुरुष की सेवा प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूँ। इस कारण आपके यहाँ कार्य मिल जाए तो अपना सौभाग्य मानूँगा।"

"क्या कार्य कर सकोगे?"

"जो भी सत्य और न्याय के आश्रय पर किया जा सके, कर सकूँगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या वेतन चाहोगे ?"

"जिससे मेरी पत्नी और दो बच्चों का भरण-पोषण हो सके।"

"नहुष के साथ जो घटना हुई है, उसके विषय में तुम क्या समझते हो ?"

"मैं उस समय देवताओं द्वारा धोखे से बन्दी बना लिया गया था ?"

"क्या यह सत्य है कि नहुष इन्द्राणी से विवाह करना चाहता था ?"

"सत्य है।"

"बलपूर्वक ?"

"यदि वे न मानतीं तो नहुष बलपूर्वक भी यत्न करना चाहता था। उसने कश्मीर-नरेश की लड़की देवयानी का बलपूर्वक अपहरण करना चाहा था।"

"वह तो कुँवारी लड़की थी। हमारी धर्मनीति में विवाहित का अपहरण अपराध माना है।"

करण चुप रहा। जुष्क ने पूछा—"तुमने उसको इस बात से मना नहीं किया था ?"

"किया था। परन्तु वे माने नहीं।"

"तो तुमने उसकी सेवा छोड़ क्यों नहीं दी थी ?"

"छोड़ दी थी और मैं लौटकर घर जाना चाहता था, परन्तु मुझको बन्दी बना लिया गया। पश्चात् नहुष महाराज को एक सूचना मिली कि महारानी उससे विवाह करने के लिए तैयार हैं। यह सूचना मिथ्या थी। इसके सम्बन्ध में मैं बन्दी बना लिया गया और फिर महाराज की हत्या कर डाली गई।"

"देखो करणदेव ! नहुष मेरा दामाद था। उसने मेरी लड़की से बहुत बुरा व्यवहार किया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र ययाति को राज्यगद्दी मिलनी चाहिए थी। वह अपने पुत्र को उस राज्य में ले ही नहीं गया। अब वह लड़का ही मेरी सन्तान है। मेरा अपना लड़का कोई नहीं। मैं चाहता हूँ कि इसका कोई प्रबन्ध कर दूँ। तुम पढ़े-लिखे विद्वान् हो। तुम अपने सत्य हृदय से इसके लिए कुछ करो। इसमें ही तुम्हारी योग्यता की परीक्षा होगी।"

"मैं अपनी ओर से पूर्ण यत्न करूँगा। आगे इस बालक का भाग्य है।"

"मैंने आचार्य जी से इसका भविष्य पढ़ाया है। उनका कहना है कि यह स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापित करेगा। इसके वंश में चक्रवर्ती राजा होंगे। यह सब ठीक है, पर बिना प्रयत्न किए कुछ हो नहीं सकेगा।"

"श्रीमान् का कहना ठीक है। मुझपर विश्वास कर आप मुझको यत्न करने दीजिए।"

करण जुष्क के पास कार्य करने लगा। सबसे पहली बात करण ने यह की कि ययाति को उसने शुक्राचार्य के पास पढ़ने को भेज दिया। वहाँ इसकी शिक्षा राजपुत्रों के समान होने लगी। दूसरी ओर उसने जुष्क के इलाके में एक सेना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार करनी आरम्भ कर दी। सेना के लिए धन की आवश्यकता थी। इस निमित्त उसने वहाँ व्यापार की वृद्धि के लिए यत्न आरम्भ कर दिया।

नगर के व्यापारियों को बुलाकर उसने सरदार की आवश्यकता उनके सामने रख दी। उसने यह बात स्पष्ट कर दी कि इसके लिए सरदार उनके व्यापार में वृद्धि चाहता है। उनकी आय बढ़ जाने से वह अधिक कर प्राप्त कर सकेगा।

उस गाँव में ऊन का एक नवीन व्यापारी आया था। उसका नाम वरुण था। इस व्यापारी की योजना सबसे शीघ्र फल लाने वाली प्रतीत हुई। वह मान ली गई। इस योजना के अनुसार उसको उस इलाके की सब ऊन बाहर भेजने का एकाकी अधिकार दे दिया गया। उसका विचार था कि वह किसानों से सब ऊन खरीद लेगा और उसको छँटवाकर, साफ करवाकर, भिन्न-भिन्न रंग और प्रकार की भिन्न-भिन्न गाँठों में बाँधकर बेचने के लिए बाहर भेजेगा। इससे ऊन का बहुत अधिक मूल्य प्राप्त होने लगेगा और सरदार को कर भी बहुत मिलने लगेगा। वह स्वयं प्रति गाँठ दस रजत अपनी मजदूरी ले लेता था। इस योजना पर कार्य करने से एक तो सैकड़ों नर-नारियों को काम करने को मिल गया और दूसरे राज्य को अधिक कर मिलने लगा।

सरदार की आय बढ़ने लगी तो करण सेना बढ़ाने लगा। इससे करण की महिमा सरदार के मन में बैठ गई। उसको भी दुर्ग के अन्दर एक घर मिल गया। सुमन कभी-कभी सरदार की पत्नी से मिलने जाया करती थी।

एक दिन सुमन ने कामिनी को बताया कि वह देवलोक की रहने वाली है और वहाँ पर करणदेव से उसका विवाह हुआ था। सुमन ने यह भी बताया कि उसका परिचय शची महारानी से है। वह महारानी की गोदी में खेली है। कामिनी ने पूछा—"तब तो तुम्हारा चित्त उनसे मिलने को करता होगा?"

"करता तो बहुत है, पर क्या जाने सरदार पसन्द करेंगे या नहीं, इससे कहने का साहस नहीं कर सकी।"

"हम तो इसमें कोई हानि नहीं समझते। यदि चाहो तो अभी चल सकते हैं। इस समय वे मिलती भी हैं। महारानी बहुत ही अच्छी हैं। कभी किसी प्रकार से भी हमारा वहाँ जाना बुरा नहीं मानतीं।"

"तो चलिए।"

उस दिन सुमन की इन्द्राणी से भेंट हुई। इन्द्राणी ने पहचाना तो आश्चर्य करने लगी—"तुम कैसे आई हो यहाँ?" उसने पूछा।

"मैंने एक गान्धार से विवाह कर लिया था। आप उनको जानती हैं, वे आपके पास नहुष का कुछ सन्देश लेकर कश्मीर गए थे।"

"ओह! स्मरण आ गया है। करणदेव नाम था उनका। उस समय वे देवलोक के महामात्य थे। बहुत ही भले पुरुष प्रतीत हुए थे मुझको।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ ! वही हैं। अब वे यहाँ के सरदार की सेवा में हैं।"

"तब हम सरदार को कहेंगे कि कभी उन्हें हमें मिलाने को लाएँ।" इसके पश्चात् देवलोक की और इधर-उधर की बातें होने लगीं।

विदा होने के समय शची ने कामिनी से कहा—"आप अपनी माताजी से कहकर इनको हमसे मिलने आने की स्वीकृति दिलवा दें।"

इसके पश्चात् करण और सुमन दोनों को इन्द्र और इन्द्राणी से मिलने का अवसर मिलने लगा।

: ५ :

वरुण ने दुर्ग के बाहर सड़क के पार एक घर भाड़े पर ले लिया था। वह घर दुर्ग के उस भाग के समीप था, जिसमें इन्द्र बन्दी था। वरुण ने उस घर में एक दुकान रख ली और घर के पिछले भाग में ऊन का गोदाम बनाया। उसने अपने कारोबार को चलाने के लिए पचास के लगभग नौकर रखे हुए थे, जो सबके सब कश्मीर-सैनिक थे।

वरुण ने अपने घर से दुर्ग की प्राचीर तक का अन्तर नाप लिया। पश्चात् उसने दुर्ग की प्राचीर की चौड़ाई जान ली। अब उसके लिए दीवार के भीतर से बन्दीगृह का अन्तर जानना शेष था। यह अन्तर जानना उसकी योजना का प्रथम चरण था।

इसके लिए उसने फल तथा फूलों की दुकान चलानी आरम्भ की। ये फल और फूल कुछ तो वह अंधी-कुंई में ही पैदा करने लगा था और कुछ वह कश्मीर से मँगवाता था। एक दिन कुछ पुष्प-मालाएँ इन्द्र तक पहुँचाने के लिए उसने शची की एक सेविका को ढूँढ़ निकाला। वह बाजार में अपने लिए कुछ खरीदने आई थी। वरुण ने उसको दुर्ग में आते-जाते देखा था। वह जब दुकान के आगे से गुजर रही थी तो वरुण ने उसके समीप जाकर धीरे-से कहा—"आप महारानी इन्द्राणी की सेवा में हैं न?"

"हाँ ! क्यों?"

"कुछ फूल हैं, जो महारानी जी को भेजने हैं।"

"फूल ? वे तो महारानी जी को बहुत पसन्द हैं।"

"तो ले जाओगी?"

"मैं आगे से जरा अपने लिए सामान ले आऊँ। लौटते समय लेती जाऊँगी।"

"ठीक है। मैं यहाँ प्रतीक्षा करूँगा।"

वह लौटी तो वरुण ने उसको गुलाब के फूलों की दो मालाएँ पत्तों के दोनों में रखकर दीं। बड़े-बड़े गुलाब के सघन गुँथे हुए फूल देखकर, सेविका की आँखें ललचा आईं। वरुण ने देखा और समझ गया। उसने उसको कहा—"ठहरो।"

वह ठहर गई तो वरुण दुकान के भीतर से एक बड़ा-सा गुलाब का फूल ले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया और उससे बोला—"इसे तुम अपने लिए लेती जाओ।"

"नहीं, नहीं! कुछ आवश्यकता नहीं।"

"देखो···क्या नाम है तुम्हारा?"

"मुझको कमल कहते हैं।"

"हाँ, देखो कमल! यह गुलाब का फूल यहाँ की सरदार की पत्नी को भी नहीं मिल सकता और यह मैं तुमको दे रहा हूँ। ये इस देश में होते ही नहीं। मैंने कश्मीर से मँगवाकर लगवाए हैं।"

अब भी जब कमल ने वह स्वीकार नहीं किया तो वरुण ने कहा—"तो इसको मैं तुम्हारी वेणी में टाँक देता हूँ।"

वह टाँकने लगा तो उसने अपने हाथ में पकड़ लिया। अगले दिन फिर कमल बाजार में आई तो वरुण ने फिर उसको दो मालाएँ दीं और एक फूल उसके अपने लिए दिया। आज फूल लेने में उसने आनाकानी नहीं की। इतना उसने कहा—"महारानी ने आपको धन्यवाद दिया है।"

"ये फूल ले जाने में किसी ने आपत्ति तो नहीं की?"

"नहीं! जो कुछ वस्तु हम बाहर से ले जाती हैं, प्रहरियों का नायक उनका निरीक्षण करता है। कल पुष्पमालाएँ देख उसके मन में लोभ आ गया। तब मैंने अपना फूल उसको दे दिया। इससे वह प्रसन्न हो गया।"

"उसका विवाह हुआ है?"

"नहीं! परन्तु उसकी एक प्रेमिका अवश्य है।"

"तो आज मैं एक फूल उसके लिए पृथक् देता हूँ। और उससे कहना कि तुम्हारा फूल तुम्हारे पास रहने दे और दूसरा अपनी प्रेमिका को दे दे।"

कमल खिलखिलाकर हँस पड़ी। वरुण विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। वह केवल एक ही लेकर चल दी।

अगले दिन वरुण ने फिर उसको मालाएँ दीं और साथ में दो सुन्दर फूल देते हुए कहा—

"एक तुम्हारे लिए और एक तुम्हारे नायक की प्रेमिका के लिए।"

कमल की फिर हँसी निकल गई। वरुण ने पूछा—"क्या तुम्हारे नायक की प्रेमिका कुरूप है, जो तुम यह फूल उसके योग्य नहीं समझतीं?"

"नहीं, यह बात नहीं। नायक तो अपनी प्रेमिका को महारानी शची से भी अधिक सुन्दर मानता है।"

"तो कल तुम उसके लिए फूल ले क्यों नहीं गईं?"

"उसको तो फूल मिल ही जाता है। वह तो अपनी प्रेमिका को वह फूल दे ही देता है।"

"तो तुम अपने फूल से वंचित हो जाती होगी। यह मुझको पसन्द नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कारण आज फिर ये दो फूल दे रहा हूँ। एक तुम्हारे लिए और एक उसकी प्रेमिका के लिए।"

"मैं शायद ऐसे सुन्दर फूलों के योग्य नहीं हूँ?"

"किसने कहा है तुमको यह झूठ?"

"मेरा मन कहता है।"

"तुम मेरे सामने झूठ कह रही हो। संसार में कोई स्त्री अभी उत्पन्न नहीं हुई, जो अपने को कुरूप मानती हो। साथ ही रूप का अनुमान कोई अपने आप नहीं लगा सकता। इसके लिए दूसरे ही पारखी हो सकते हैं।"

"मैं दूसरों की बात ही कह रही हूँ।"

"तो वे मूर्ख हैं। देखो कमल, मैं तुमको इन गुलाब के फूलों के योग्य ही समझकर यह दे रहा हूँ।"

"तब तो मेरे पास दो फूल हो जाएँगे।"

"सत्य?"

कमल बिना उत्तर दिए मालाएँ और फूल लेकर चल दी।

कुछ दिन तक ऐसा ही चलता रहा। गुलाब के फूल गए तो मोतिया की ऋतु आ गई। कमल और वरुण में कुछ अधिक मेल-जोल बढ़ा, तो वह उसकी दुकान के भीतर आने लगी और उससे अधिक अन्तरंग बातें करने लगी। वरुण भी कमल में अधिक रुचि लेने लगा। एक दिन कमल आई तो वरुण की दुकान बन्द थी। उसने आस-पड़ोस वालों से पूछताछ की तो उसको पता चला कि वरुण बीमार है। इससे वह उसके घर जा पहुँची। वरुण ने मालाएँ और फूल मँगवा रखे थे। जब वह आई तो उसने उसका बहुत धन्यवाद किया और कहा—"मैं यही आशा करता था।"

"क्यों?"

"इसको बताने की भी आवश्यकता है क्या? एक स्त्री क्यों किसी पुरुष की बीमारी की सूचना पा उसको देखने जाती है, और एक पुरुष क्यों किसी स्त्री को फूल भेंट करता है?"

कमल ने टेढ़ी दृष्टि से वरुण को देखा और पूछा—"तो आप ये मालाएँ महारानी जी को क्यों भेजते हैं?"

"इसलिए कि मैं उनसे अपनी माता के समान प्रेम करता हूँ।"

"और ये फूल मुझे किसलिए देते हैं?"

"इसलिए कि मैं तुम्हारे प्रेम का भिखारी हूँ।"

इस कथन से कमल का मुख रक्तिम हो गया और आँखें नीचे झुक गईं। वरुण ने कहा—"और तुम क्यों आई हो? क्या वह भी मैं ही बता दूँ?"

"नहीं, बताने की आवश्यकता नहीं। हाँ, महारानी जी ने कहा है कि नित्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पों को भेजने वाले के वे दर्शन करना चाहती हैं। मैंने अपने नायक से कहकर आपकी भेंट का प्रबन्ध करवा दिया है। पहले तो यह विचार था कि सरदार से पूछ लें, परन्तु फिर मैंने नायक से ही निश्चय कर लिया है। आप आज मध्याह्नोत्तर दुर्ग के भीतर सरदार के प्रासाद के दक्षिण पार्श्व में आ जाइएगा। वहाँ से मैं आपको महारानी इन्द्राणी के पास ले चलूँगी।"

"बहुत अच्छी बात है, परन्तु जो मैंने आज तुमको अपने मन के भाव बतलाए हैं, इसका मैं उत्तर चाहता हूँ। क्या मैं ठीक समझ रहा हूँ?"

"तो क्या सब बातें आज ही इसी समय हो जाएँगी?"

"नहीं! तुम अवसर देखकर बता सकती हो।"

उसी दिन तीसरे पहर वरुण जब दुर्ग के भीतर सरदार के प्रासाद के दक्षिण पार्श्व में पहुँचा, तो कमल प्रासाद के भीतर से आती दिखाई दी। वह वरुण के समीप आकर बोली—"चलो।"

दोनों चल पड़े। इन्द्र के वन्दीगृह पर पहुँचे तो नायक ड्योढ़ी में स्वयं खड़ा था। वह इनको देख घबराया। कारण पूछने पर नायक ने बतलाया कि सरदार और करणदेव दोनों बन्दी से मिलने आए हुए हैं। या तो इनको फिर लाना, अन्यथा इनको मकान के पिछवाड़े में ले जाकर खड़ा कर दो। जब वे चले जाएँगे तो तुम्हें बुलवा लूँगा।

वरुण इसी के लिए योजना बना रहा था। उसका विचार था कि इन्द्र तथा शची से भेंट के पश्चात् वह नायक से कमल के विषय में बात करने लगेगा और मकान की ड्योढ़ी से दुर्ग के प्राचीर तक का अन्तर कदमों से नाप लेगा। अब ऐसी सुविधा स्वयमेव प्राप्त हो गई। और साथ ही साथ कमल से बातें करने का अवसर भी मिल गया। नायक के कहने पर वरुण ने कमल की ओर देखा तो वह मुस्करा दी। दोनों बन्दीगृह के पिछवाड़े में चले गए और मकान के मध्य भाग से लेकर दुर्ग के प्राचीर तक टहलते हुए बातें करने लगे। इस मध्य भाग के ठीक दूसरी ओर ड्योढ़ी थी।

वरुण जब वहाँ पहुँचा, तो दो प्रहरी वहाँ भी देखभाल कर रहे थे। उन्होंने पूछा—"कमल! क्या है?"

"ये महाशय सरदार की स्वीकृति से बन्दियों से मिलने आए हैं, और उनको अभी अवकाश नहीं।"

इस प्रकार प्रहरियों का समाधान कर वे पुनः टहलने लगे। टहलते हुए वरुण ने पूछा—"कमल! यह वह नायक है, जिसकी तुम प्रेमिका हो?"

"हाँ, जो मुझसे प्रेम करता है।"

"यह तो काफी बड़ी आयु का है?"

"तो फिर मेरा क्या बस है इसमें?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हारा प्रेम क्या तुम्हारे बस की बात नहीं ?"

"है; और मैं इससे प्रेम नहीं करती।"

"तो फिर क्या होता है ?"

"होता है सिर तुम्हारा। तुम हो लाल बुझक्कड़।"

वरुण इस पहेली को सुन विस्मय में कमल का मुख देखता रह गया। कमल ने अपने मन की बात बता दी—"मैं नायक के ग्राम की रहने वाली हूँ। मेरे माता-पिता नहीं हैं। पेट भरने के लिए अंधी-कुंई में आकर इनके घर ठहरी। तब इनकी बीवी जीवित थी। मुझको नायक की पत्नी की सेवा का कार्य मिल गया। अपनी बीवी के मरने के पश्चात् नायक मुझसे विवाह करने की इच्छा करने लगा है। मैंने कभी न नहीं की, परन्तु मैं जानती हूँ कि बिना विवाह के मुझको छुआ नहीं जा सकता। नायक महाराज मुझ पर कृपादृष्टि रखते हैं, यह बात किसी से छुपी नहीं और यहाँ सब लोग समझते हैं कि मेरा उससे विवाह होने वाला है। आपके दिए फूलों ने तो यह चर्चा और भी बढ़ा दी है। वह नित्य आपके फूल मेरी वेणी में लगाता है।

"हम सेविकाएँ मध्य की छत पर रहती हैं। ये नायक महोदय रात को कभी मेरे आगार में आने का असफल यत्न करते हैं, घर-भर के लोग हँसी करते हैं। मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं उससे विवाह क्यों नहीं कर लेती? तो मैं कह देती हूँ, हो जाएगा। अभी जल्दी क्या है ?"

"तब तो मैं आशा कर सकता हूँ।"

"किस बात की ?"

"एक अस्पृश्य कुमारी से विवाह कर सकने की।"

"क्या संसार में ऐसी कुमारियाँ नहीं हैं ?"

"हमारे देश में तो हैं, परन्तु यहाँ इस देश में सुना है कि सतीत्व की महिमा कुछ अधिक नहीं।"

"सतीत्व के क्या अर्थ हैं ? मैं नहीं समझी।"

"अपने विवाहित पति के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष के सम्पर्क में न आने को सतीत्व कहते हैं।"

"यदि ऐसा हो जाए तो हानि क्या है ?"

"कमल, यह एक गम्भीर विषय है। इस पर विवाद मेरे बस की बात नहीं। मैं अभी तक समझता रहा हूँ कि तुम नायक की अविवाहिता पत्नी हो। इस कारण मैं तुमसे प्रेम करता हुआ भी तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकता था। मेरी सन्तान की माँ वह नहीं हो सकती, जो सती-साध्वी न हो। यह मेरी और हमारे देश के प्रत्येक युवक की भावना है। अब मुझको ऐसा प्रतीत हुआ है कि मैं तुमसे विवाह के लिए भी कह सकता हूँ। मैं यही जानना चाहता हूँ कि क्या मैं ऐसा कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता हूँ ?"

इसी समय नायक आ गया और उनको साथ लेकर चला गया।

वरुण ने इतने काल में बन्दीगृह के मध्य दुर्ग की प्राचीर तक कई चक्कर काट लिए थे। उसने नाप लिया था कि यह अन्तर एक सौ पग का है। उसकी योजना का एक अंग पूर्ण हुआ और दूसरे अंग के विषय में वह कार्य आरम्भ करने के लिए तैयार था।

: ६ :

करण ने छः मास में दस सहस्र सेना एकत्रित कर ली थी। उसके इस कार्य में वरुण की योजनाएँ विशेष सहायक हो रही थीं। उसके कहे अनुसार ऊन का प्रबन्ध होने से, जहाँ किसानों को धन तुरन्त मिलता था, वहाँ राज्य को प्रति गाँठ दस से बीस रजत तक मिल जाता था। चुन-बिनकर भेजी हुई ऊन पुरुषपुर में बहुत अधिक दाम पर बिकती थी। इस प्रकार छः मास में सरदार की आय में लाखों रजत मासिक की उन्नति हो गई।

इसका एक प्रभाव यह हुआ कि पुरुषपुर के व्यापारियों को भारी हानि होने लगी थी। पहले वे स्वयं अंदी-कुंई जाते थे और स्वयं माल खरीद लाते थे और स्वयं चुन-बिनकर पुरुषपुर मण्डी में ले जाकर बेचते थे। उनका यह सब काम बन्द हो गया। उन्होंने काकूष के पास इस प्रथा की निन्दा की और ऐसा प्रकट किया कि काकूष के राज्य की आय कम हो रही है।

अतः काकूष ने एक पत्र द्वारा जुष्क को आज्ञा भेजी कि वह ऊन पर कर नहीं प्राप्त कर सकता। इसके उत्तर में करण ने सरदार की ओर से काकूष को एक पत्र लिखा और उसमें काकूष की आज्ञा मान ली और लिखा—"मेरी प्रजा के अतिरिक्त, जो कोई भी यहाँ से आकर ऊन खरीद ले जाएगा, उससे कर नहीं लिया जाएगा। अपनी प्रजा से कर लेने का मेरा अधिकार है।"

इसके साथ ही किसानों को आज्ञा दे दी कि सरदार स्वयं सबकी ऊन खरीदेगा और नकद दाम देगा। जब पुरुषपुर के व्यापारी माल नहीं खरीद सके, तो वे पुनः काकूष के पास गए। काकूष ने पुनः जुष्क को लिखा।

करण ने समझ लिया कि अब झगड़ा होगा। इस कारण उसने सरदार से सब बात वर्णन कर दी। जुष्क का प्रश्न था—"इस झगड़े से लाभ क्या होगा ?"

"आपका चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो जाएगा।"

"क्या युद्ध में हम जीत सकते हैं ?"

"यदि आप एक बात कर सकें तो अवश्य हमारी जीत हो सकती है। आप अपनी प्रजा को सन्तुष्ट रखेंगे, तो जीत हमारी होगी।"

"काकूष के पास पाँच लाख सेना है। हमारे पास दस सहस्र है।"

"सेना तो छः मास में तैयार हो सकेगी। इस समय भी हमारी सेना अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा से, नियन्त्रण से, और अस्त्र-शस्त्र के विचार से काकूष की एक लाख सेना के बराबर है। मैं अगले छः महीने में सेना की संख्या पाँच लाख कर सकता हूँ, परन्तु इतने अस्त्र-शस्त्र इतने काल में तैयार नहीं हो सकते।

"एक बात और है। आप कश्मीर और देवलोक से गुप्त सन्धि कर सकते हैं। परिणाम यह होगा कि काकूष यदि कुछ भी झगड़ा करेगा, तो इन राज्यों की सहायता से आप उसको हरा सकते हैं।"

"ठीक! इन राज्यों से सन्धि कैसे हो सकती है?"

"इसकी कुंजी आपके हाथ में है। इन्द्र से बातचीत करिए। वह आपकी सहायता पर तैयार हो जाएगा।"

"वह मेरा बन्दी है। मुझको इसकी आशा नहीं।"

"मुझको उनसे बातचीत करने की आज्ञा दीजिए, आशा करता हूँ कि मैं इसमें सफल हूँगा।"

"तो करो।"

इस प्रकार करण इन्द्र से अधिकार-सहित बात करने लगा। उसने इन्द्र से मिलकर गान्धार पर अपना प्रभाव उत्पन्न करने का उपाय वर्णन किया। उसने कहा—"जुष्क और काकूष का झगड़ा होने वाला है। इस झगड़े से लाभ उठाना चाहिए। आप यदि जुष्क की सहायता करने का वचन दें, तो न केवल आप स्वतन्त्र किए जा सकते हैं, प्रत्युत गान्धार ऐसे राजा के अधीन हो जाएगा, जो अपना मित्र होगा।"

इन्द्र उसकी योजना सुनकर हँस पड़ा और करण से कहने लगा—"तो यहाँ भी आप राजदूत बनकर आ गए हैं। नहुष गया तो अब जुष्क आ गया है?"

"नहीं महाराज! मैं देवलोक की वर्तमान महारानी देवयानी की ओर से आपको छुड़ाने के लिए आया हुआ हूँ। जब देवलोक की महारानी शची जी आपको लिवाने के लिए आईं और वहाँ से नहीं लौटीं तो कश्मीर की राजकुमारी देवयानी राज्य करने लगी हैं। मैंने उनकी सेवा कर ली है और उनकी आज्ञानुसार मैं यहाँ गुप्त रूप में आया हुआ हूँ। राजकुमारी जी की यह इच्छा है कि यदि युद्ध के बिना आपको छुड़ाया जा सके तो बहुत अच्छा है। इस कारण मैंने यहाँ जुष्क की नौकरी कर, यहाँ की नीति को ऐसे ढंग से चलाया है कि जुष्क और काकूष के भीतर युद्ध छिड़ने ही वाला है। मैंने जुष्क के मन में यह बात बिठा दी है कि यदि आपसे उसकी मैत्री हो जाएगी, तो आप उसकी काकूष के विरुद्ध सहायता करेंगे।"

"मैं क्या सहायता कर सकता हूँ और फिर क्यों करूँगा?"

"आप सहायता कर सकते हैं। आपके पास आग्नेय अस्त्र हैं। आप वह जुष्क को देकर गान्धार का राज्य पलट सकते हैं। ऐसा करने से सबसे बड़ा लाभ तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काकूष के राज्य को, जो अवैदिक संस्कृति का प्रसार कर रहा है, विध्वंस कर सकेंगे।"

"मैं आग्नेय अस्त्र किसी को नहीं दूंगा।"

"इसके बिना आपका छूट सकना भी असम्भव है। कश्मीर ने ब्रह्मावर्त के उद्धार में इतना धन और जन का व्यय किया है कि तुरन्त ही एक और युद्ध करना और सफलता प्राप्त करना उनके लिए असम्भव है। आप यदि छूटेंगे नहीं तो देवलोक उजड़ जाएगा। इससे कश्मीर और ब्रह्मावर्त की स्थिति भी दुर्बल हो जाएगी। इस प्रकार अपनी वैदिक संस्कृति भूतल में समाविष्ट हो जाएगी।"

इन्द्र इससे गम्भीर हो गया। अभी भी उसको विश्वास नहीं आ रहा था कि करण सत्य ही देवयानी की ओर से कह रहा है। इस कारण उसने कहा—"करण जी, आपके पास क्या प्रमाण है कि आप मुझको धोखा नहीं दे रहे?"

"इस समय तो मेरे पास सिवाय सौगन्धपूर्वक कहने के और कोई प्रमाण नहीं हैं। हाँ, यदि आप दो मास तक बन्दीगृह में और प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हों तो मैं नारद जी का पत्र मँगवाकर दिखा सकता हूँ।"

"तो ठीक है। आप यह पत्र मँगवा दीजिए या अपने स्वामी से कहिए कि मुझको छोड़ दें और मुझको देवलोक चले जाने दें। वहाँ जाकर मैं वहाँ की परिस्थिति देखकर सहायता भेज दूंगा।"

"यह भी हो सकता तो किया जा सकता था। आप जैसे श्रीमान् के वचन को प्रमाण न मानना अपनी बुद्धि पर अविश्वास करना है, परन्तु यह सम्भव नहीं। इस कारण कि ज्यों ही काकूष को पता चलेगा कि आपको छोड़ दिया गया है, वह अपनी पाँच लाख सेना ले आक्रमण कर देगा और यहाँ की ईंट से ईंट बजा देगा। इस समय हमारी इतनी शक्ति नहीं कि हम उसकी पाँच लाख सेना का विरोध कर सकें। हाँ, यदि आप अपने आग्नेय अस्त्रों को हमें दे दें, तो हम गान्धारों को परास्त कर सकेंगे।"

"मैं वह आग्नेय अस्त्र एक म्लेच्छ को नहीं दूंगा। यदि यह अस्त्र उसके पास चला गया तो वह पूर्ण संसार पर म्लेच्छ राज्य स्थापित कर देगा।"

"आपके पास भी तो यह चिरकाल से रखा है, परन्तु आपने तो संसार में अपना साम्राज्य स्थापित नहीं किया?"

"परन्तु जो महात्त्वाकांक्षा तुमने उसमें उत्पन्न कर दी है, वह मुझमें किसी ने उत्पन्न नहीं की।"

"वह महत्त्वाकांक्षा तो आपके हित में है। जब गान्धार पराजित होगा और वहाँ पर उस राजा का राज्य स्थापित होगा, जो आपके अहसान के नीचे दबा होगा, तो हम सबको लाभ होगा। ययाति, जो जुष्क का नाती है, आज शुक्राचार्य से पढ़ रहा है। पढ़-लिखकर वह म्लेच्छ नहीं रहेगा और वह कामभोज और गान्धार का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिपति होगा। यह मानवहित की बात होगी।"

"इस पर भी इतनी भारी विनाशकारी शक्ति उक्त अपरिचित और अपरीक्षित व्यक्ति के हाथ में देने के लिए मुझको बहुत विचार करना पड़ेगा। तुमको पता होना चाहिए कि जब वह विमान, जिसमें शची कमल-सर दुर्ग पर पहुँची और उसकी थोड़ी-सी भूल के कारण उसका पैंदा टूट गया, तो हमने यह विचार करके कि कहीं वह नहुष के सम्बन्धियों के हाथ न लग जाए, जला दिया।"

करण को यह एक दूषित मनोवृत्ति-सी लगी। उसके मन में आया कि ये लोग ज्ञान को ताले में बन्द कर रखना चाहते हैं। यही कारण है कि इनका पतन हुआ है। फिर भी उसने इन्द्र को विचार करने का अवसर दे दिया।

"महाराज ! हमारी योजना यह है कि यदि आप स्वीकार करें तो आपको मैं चोरी-चोरी यहाँ से मुक्त कर अपने संरक्षकों के साथ देवलोक भेज सकता हूँ। वहाँ पहुँचकर आप जुष्क को अपनी रक्षा के लिए आग्नेय अस्त्र प्रदान करें। मैं भी आपके साथ चलूँगा। उस आग्नेय अस्त्र का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाएगा। अब आप इस बात पर विचार कर लें। जब आप निर्णय कर लें तो मुझे सूचित कर दें। इसके अतिरिक्त भी मैं आपको छुड़ाने का यत्न करता रहूँगा। मैं आशा करता हूँ कि मैं सफल हो जाऊँगा। परन्तु इस समय आपको बिना आपसे सहायता का आश्वासन लिये, छोड़ देने का अर्थ है पूर्ण कामभोज का विनाश।"

इन्द्र ने करण की पूर्ण योजना शची को बताई। उसने तुरन्त कह दिया कि करण पर विश्वास कर, अग्नेय अस्त्र दे देना चाहिए, परन्तु इन्द्र ने न तो न की और न ही हाँ।

: ७ :

वरुण ने जब पूर्ण अन्तर, अपने निवासस्थान और बन्दीगृह के बीच नाप लिया तो उसने घर के कमरे में से सुरंग खोदनी आरम्भ करवा दी। अपने विश्वस्त बीस व्यक्ति एक-साथ काम पर लगा दिए। घर के भीतर के एक आगार में पहले एक गढ़ा लगभग बीस हाथ गहरा खोदा गया। उसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गईं। पश्चात् सीधी बन्दीगृह की ओर सुरंग खोदनी आरम्भ कर दी। जब सुरंग दुर्ग की दीवार तक पहुँची तो उसको यह जानकर अचम्भा हुआ कि दीवार की नींव और भी अधिक गहरी है। इस कारण वहाँ पर सुरंग और भी अधिक गहरी की गई। पश्चात् खुदाई दुर्ग के भीतर बन्दीगृह तक ले जाई गई।

इस खुदाई में एक मास से ऊपर लग गया। इस काल में वरुण ने, जहाँ तक बन सका, कमल से अपना सम्बन्ध घना बनाने के लिए उससे घर के भीतर मिलना आरम्भ कर दिया। साथ ही उसने प्रहरियों के नायक से भी मेल-जोल बढ़ा दिया।

नायक प्रायः नगर में दिल-बहलाने के लिए आता था। वरुण उसके आने की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोह में रहता था और उसके आने पर बहाना ढूँढ़, उसके पास जा, उसको घर चलने का निमन्त्रण देता रहता था। घर ले जाकर मिठाई-फल आदि ने उसका स्वागत करता था। ये दोनों वस्तुएँ नायक को पसन्द थीं। इस कारण कुछ दिनों पश्चात् वह स्वयं ही उसके पास जाने लगा। फिर भी उसके सत्कार में अन्तर नहीं पड़ा। अपना इतना हितेच्छु मान, नायक ने एक दिन वरुण से कह दिया कि आप तो मेरे मित्र हैं। मैं एक बात आपसे कह देना चाहता हूँ। मैं कमल से प्रेम करता हूँ। वह मेरे प्रेम को ठुकराती नहीं। परन्तु उसका फल अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। महारानी जी की जितनी भी सेविकाएँ हैं, वे सब किसी-न-किसी प्रहरी से प्रेम करती हैं। सब जानते हैं कि हम परस्पर प्रेम करते हैं। हम घण्टों बैठे बातें भी किया करते हैं; पर मेरे उसको छूते ही, वह भाग उठती है। यह कहती है कि अभी नहीं। धैर्य करूँ। अभी समय नहीं आया। एक वर्ष से ऊपर हो गया, जबसे वह मुझको टालती आ रही है। सुना है कि वह आपसे प्रेम करने लगी है, क्या यह ठीक है? यदि नहीं, तो मेरी उससे सिफारिश कर दीजिए।"

"देखो नायक महोदय ! मेरा प्रेम एक और स्त्री से है। वह हमारे पड़ोस में रहती है और वह कमल से कहीं अधिक सुन्दर है। मेरे मन में कमल के लिए कुछ भी लगाव नहीं। वह आती है और महारानी के लिए फल-फूल ले जाया करती है। इससे अधिक मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तुम्हारी इस विषय में सहायता कर सकता हूँ। पर तुम मुझे बताओ कि क्या तुम उससे विवाह कर लोगे?"

"विवाह की बात तो कठिन है। मैं साठ वर्ष की आयु का हूँ। वह अभी सोलह-सत्रह वर्ष की है। हाँ, जब तक वह मुझे प्रसन्न करती रहेगी, उसको मैं अपना पूरा वेतन देता रहूँगा।"

वरुण ने मुस्कराकर कहा—"यह तो बहुत अच्छी बात है। इस प्रस्ताव को तो उसे मान जाना चाहिए।"

"हाँ ! भैया ! तुम समझाओगे तो वह समझ जाएगी। भगवान् के नाम पर ऐसा कुछ करो कि वह मान जाए।"

अगले दिन जब कमल आई तो वरुण ने नायक की प्रार्थना का वर्णन कर दिया। कमल ने पूछा—"तो आप मुझको क्या कहते हैं?"

"मैंने जो कहना था कह दिया है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। परन्तु मैं विवाह तो तभी कर सकूँगा, जब तुम सती-साध्वी बनकर मेरे पास रहना चाहोगी। मैं यह नहीं चाहता कि मेरी सन्तान को यह सन्देह हो कि उसका पिता कौन है? उनको अपनी माता पर भरोसा और उसके चरित्र पर विश्वास होना चाहिए।"

"मैंने भी अपने मन में निश्चय कर लिया है कि विवाह करूँगी तो आपसे, नहीं तो किसी से भी नहीं करूँगी।"

"सत्य ! यह तो बहुत ही कठोर निश्चय है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा यह अन्तिम निश्चय है। और कहो तो मैं आज ही सेवाकार्य छोड़, आपके पास आ सकती हूँ।"

"मैं एक-दो महीनों के लिए अपने देश जाना चाहता हूँ। तुम क्या मेरे साथ चलोगी ?"

"हाँ ! मैं तैयार हूँ।"

"तो मेरा तुम्हारा विवाह वहाँ मेरे माता-पिता के सम्मुख होगा।"

"मुझको इससे बहुत प्रसन्नता है। मेरे माता-पिता नहीं हैं। होते तो उन्हें भी साथ ले चलती।"

"पर एक बात है।"

"क्या ?"

"तुम जानती हो कि मैं सरदार की ओर से व्यापार करता हूँ।"

"हाँ।"

"इस कारण सरदार नहीं चाहता कि मैं यहाँ से एक दिन के लिए भी जाऊँ। जाना आवश्यक है। इस कारण किसी दिन रात को चुपचाप यहाँ से चला जाऊँगा।"

"कैसे ?"

"वह तुमको बताऊँगा। मैं जाने की तैयारी कर लूँ। तब तक तुम किसी को कुछ मत कहना।"

कमल ने बात छुपाकर रखने का वचन दिया। उस दिन पहली बार वरुण ने कमल को गले लगाकर आलिंगन किया और उसका मुख चूमा। कमल इससे अति प्रसन्न थी। और उस दिन वह अपने स्थान पर जाकर बीमारी का बहाना बनाकर लेटी रही।

इसके बाद कई दिन तक वरुण नायक से बहाना बनाता रहा। आखिर एक दिन उसने कहा—"नायक ! वह मान तो गई है, परन्तु वह सन्तान होने से डरती है। इस कारण चाहती है कि विवाह हो जाए तो ठीक है।"

"कठिनाई मैंने बताई है। अगर वह एक साठ वर्ष के बूढ़े से बँधना चाहती है तो मैं तैयार हूँ।"

"आप उसकी क्यों चिन्ता करते हो ? जब वह बुद्धि की बात नहीं करना चाहती, तो आपको क्या ? जब तक चाँदनी है आनन्द-भोग करो। जब चाँद छुप जाएगा तो जो जिएगा देख लेगा।"

"तुम ठीक कहते हो। मैं तैयार हूँ।"

"तो मैं विवाह की तिथि पूछकर निश्चय कर रखूँगा। देखो उससे कुछ कहना मत। उसे लज्जा लग जाएगी। तब तो वह मना भी कर सकती है।"

"आप निश्चिन्त रहिए, मैं आपसे इतना प्रसन्न हूँ कि जैसा आप कहेंगे वैसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही करूँगा।"

"ठीक है। शीघ्र ही तिथि निश्चित हो जाएगी। तब तक मैं विवाह का प्रबन्ध भी कर दूँगा।"

तब तक सुरंग पूरी हो चुकी थी। गणना से सुरंग का दूसरा किनारा बन्दीगृह की ड्योढ़ी के नीचे पहुँच चुका था। पच्चीस हाथ की गहराई से सुरंग ऊपर लाई गई और जब ड्योढ़ी की भूमि से खुदाई चार हाथ रह गई तो बन्द कर दी गई।

इसके उपरान्त वरुण ने योजना का तीसरा और अन्तिम चरण चलाया। एक दिन निश्चय कर उसने दस खच्चरों पर ऊन लादकर ले जाने का प्रबन्ध किया। नियमानुसार माल पर कर देना था और कर का बीजक बनवाकर जाना था। अंधी-कुंई के बाहर जाने के लिए यह बीजक द्वार पर दिखाना पड़ता था। प्राय: माल लेकर खच्चरें प्रात:काल सूर्योदय से दो-अढ़ाई मुहूर्त पहले जाया करते थे।

एक दिन नियत कर उसने उस दिन खच्चरों पर माल लादकर ले जाने के लिए बीजक बनवा लिया। कर दे दिया। उस दिन उसने द्वारपाल को कह दिया कि वह माल शीघ्र ही भेजना चाहता है, इस कारण मध्यरात्रि से कुछ ही समय बाद उसके आदमी जाएँगे।

यह स्वीकृति, जाने वाली रात्रि से पहले दिन, मध्याह्न के समय मिल गई थी। इस पर उसने दस खच्चरों के स्थान पुष्ट तथा द्रुतगामी घोड़े द्वार पर बँधवा लिये, दस सैनिक घुड़सवार उसने मध्याह्न के समय ही गाँव से कुछ अन्तर पर भेज दिए। दस अश्व, जो द्वार पर थे, उन पर ऊन लादने के लिए गठरियाँ बाँध लीं और साथ जाने के लिए केवल दो व्यक्ति तैयार किए।

जब यह प्रबन्ध हो गया तो उसने कमल को भी यह कह दिया कि वह मध्य-रात्रि के समय उसको लेने आएगा।

"कैसे?" कमल पूछ बैठी।

"यह मत पूछो। मैं निश्चय से कहता हूँ कि आऊँगा। तुम अपने आगार में तैयार रहना। मेरे कहते ही चल पड़ना और मेरे पीछे-पीछे चली आना। रात को हम दुर्ग से और फिर नगरद्वार से निकल जाएँगे। सब प्रबन्ध है।"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा।"

"देखो कमल! बहुत-सी बातें हैं, जिनको समझने की आवश्यकता नहीं होती। विश्वास कर लेना ही ठीक रहता है।"

"पर नायक का क्या होगा?"

"उसका प्रबन्ध हो गया है। उससे मैंने कह दिया है कि ठीक मध्याह्न के समय, वह मेरे पड़ोस के मकान में आ जाए, जहाँ विवाह का प्रबन्ध रहेगा। वह दुर्ग-द्वार बन्द होने से पूर्व ही वहाँ से चला आएगा।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार सब कार्य योजनानुकूल कर लिया गया; परन्तु विधि ने कुछ और ही लिखा था।

: ८ :

करण इन्द्र से बातचीत कर बहुत निराश हुआ था। वह घर आया तो उसका मुख शोकग्रस्त देख सुमन से पूछा—"क्या हुआ है आज ?"

"मुझको जीवन की महानतम निराशा मिली है। मैंने इन्द्र से सरदार जुष्क की सन्धि करानी चाही थी। इन्द्र ने स्वीकार नहीं किया।" करण ने वह सब बातचीत, जो इन्द्र से हुई थी, बतला दी।

सुमन को भी विस्मय हुआ। उसने कहा—"मैं जाकर महारानी शची से कहूँगी। सम्भव है कुछ कार्य बन सके।"

करण को आशा नहीं थी, परन्तु वह कर भी क्या सकता था ? वह इन्द्र तथा शची को छुड़ाना चाहता था, परन्तु वह समझता था कि यदि उनको चोरी-चोरी भगा दिया तो काकूष जुष्क के पूर्ण इलाके को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। काकूष, इन्द्र और शची के बदले में ब्रह्मावर्त का वह भाग जो सिन्धु नदी और वितस्ता नदी के बीच में था, लेना चाहता था।

अगले दिन सुमन शची से मिलने गई। उसने भी बताया कि उसका पति उनको छुड़ाने के लिए वहाँ ठहरा हुआ है और वर्तमान परिस्थिति में तो जुष्क से सन्धि कर लेनी ही ठीक प्रतीत होती है।

शची ने उसको कहा—"सुरेश को अभी करणदेव पर विश्वास नहीं आया। मैं यत्न कर रही हूँ कि उनको समझा-बुझाकर सन्धि करने पर तैयार कर लूँ। इस अन्तर में अपने पतिदेव से कहना कि नारद से अपने विषय में प्रमाण-पत्र मँगवा ले तो ठीक रहेगा।"

करण ने शची के सुझाव को ठीक मान एक द्रुतगामी अश्व पर, एक विश्वस्त दूत को सब वृत्तान्त लिखकर देवलोक भेज दिया। दूत के लौटकर आने में दो मास से कम काल नहीं लगना था, परन्तु और कोई उपाय ही नहीं था।

उधर काकूष समीप था और उसके पत्र को रोका नहीं जा सकता था। अतएव करण ने बहुत ही विनम्र और विनीत भाषा में उसको पत्र लिखा। इस पत्र में उसने लिखा—"मैं इन आरोपों की जाँच करने के लिए तैयार हूँ। आरोप लगाने वाले व्यापारियों को अंधी-कुंई भेज दीजिए, जिससे पता लग सके कि कौन अपराधी है, ताकि उसको दण्ड दिया जा सके।"

जिस दिन यह पत्र पुरुषपुर में पहुँचा, उसी दिन वहाँ एक घटना घट गई। वरुण के एक साथी ने पचास गाँठ ऊन वहाँ बेची थी। उनका मूल्य उसने व्यापारी से तुरन्त माँगा। व्यापारी ने दो दिन ठहरकर मूल्य देने को कहा। इससे झगड़ा हो गया। दोनों ओर से तलवारें निकल आईं। पुरुषपुर के व्यापारी ने समझा था कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई दास है। तलवार देखकर डर जाएगा। वास्तव में वरुण का साथी कश्मीर-सैनिक था। इस कारण जब तलवार चली तो पहले ही वार में व्यापारी का सिर धड़ से पृथक् हो गया। इस पर मण्डी में भारी हल्ला हो गया। कश्मीर-सैनिक भाग खड़ा हुआ। इस घटना की सूचना जब काकूष को मिली तो वह आगबबूला हो गया। उसको यह बताया गया कि ऐसे सैकड़ों लड़ाके जुष्क ने एकत्रित कर रखे हैं।

काकूष ने यह आज्ञा दे दी कि पाँच सौ सैनिकों के साथ एक सेनानायक जाए और इस ऊन बेचने वाले को तथा जुष्क को पकड़कर मेरे सामने ले आए। इस आज्ञा के अनुसार एक सेनानायक सेना की एक टुकड़ी के साथ जुष्क को पकड़कर लाने के लिए चल पड़ा। इस सेनानायक को यह भी आज्ञा दी गई कि अंधी-कुंई में बन्दी इन्द्र और शची को भी वहाँ से लेता आए।

एक दिन अंधी-कुंई नगर के बाहर गान्धार-सैनिकों ने डेरा डाल दिया। सेनानायक ने सेना के ठहरने का प्रबन्ध कर, जुष्क के पास सूचना भेजी। करण को जब यह सूचना मिली कि गान्धार से पाँच सौ सैनिक आए हैं तो वह सरदार के पास गया और उसको बीमार बन लेट जाने की राय दी। सरदार बहुत घबड़ाया, परन्तु अन्य कोई उपाय न देख वह लेट गया।

जब गान्धार-सेनानायक जुष्क को मिलने आया, तो करण मिला। करण ने बताया—"सरदार बीमार हैं। आप बताइए क्या आज्ञा है?" गान्धार-नायक ने बताया कि वह सरदार के लिए गान्धार-नरेश से एक पत्र लेकर आया है। करण ने वह पत्र माँगा। बहुत आनाकानी के पश्चात् नायक ने वह पत्र करण को दिखा दिया। पत्र में लिखा था—"सरदार जुष्क ने ऊन पर ऐसा कर लगाया है, जिससे गान्धार राज्य को हानि पहुँच रही है। साथ ही सरदार जुष्क ने ऐसे सैनिक बाहर से मँगवाए हैं, जो लड़ने के लिए तैयार प्रतीत होते हैं। इस कारण मैं सरदार जुष्क को यह आज्ञा देता हूँ कि वह अविलम्ब पुरुषपुर आ जाए और इन विषयों पर स्पष्टीकरण उपस्थित करे।"

करण ने सेनानायक को कहा कि सरदार बीमार है। वह उठकर बैठ भी नहीं सकता। जब ठीक होगा तो वह आपके साथ चलेगा और पुरुषपुर जाकर महाराज के सन्देह का निवारण कर देगा।

"मैं स्वयं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"तो आपके मिलने का प्रबन्ध कर देता हूँ।"

करण यह कह भीतर गया और सरदार को पूर्ण परिस्थिति से अवगत किया। दोनों में यह ही निश्चय हुआ कि समय-लाभ करना चाहिए। यह परामर्श कर करण सेनानायक को भीतर ले गया। सरदार पलंग पर लेटा हुआ था। उसके समीप करण और नायक चौकियों पर बैठ गए। व्यावहारिक बातचीत कर सरदार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कहा—"महाराज का आदेश-पत्र पढ़ा है। मैं निर्दोष हूँ, इस कारण मुझको बहुत प्रसन्नता होगी कि मैं वहाँ जाकर महाराज के मन से मैल दूर करूँ। इधर कई दिनों से मेरी कमर में पीड़ा हो रही है। आज कुछ ठीक हूँ। एक-दो दिन में जाने लायक हो जाऊँगा, तो चलूँगा।"

"दोनों बन्दियों को भी मैं अपने साथ ही ले जाना चाहूँगा।"

"वे भी हमारे साथ चलेंगे।"

"मैं उनको अभी देखना चाहता हूँ।

"करणदेव आपको वहाँ ले जाएँगे। वे सब प्रकार से ठीक हैं।"

"एक बात और है। मुझको तो आज्ञा थी कि मैं अविलम्ब आपको पुरुषपुर ले चलूँ, परन्तु जब आपका स्वास्थ्य ही ठीक नहीं तो मैं विवश हूँ। मैं एक बात चाहता हूँ कि आप अब दुर्ग से बाहर जाने का यत्न न करें। बाहर मैं अपने सैनिक बैठा दूँगा।"

"मुझे न तो भागने की आवश्यकता है और न ही मुझमें भागने की शक्ति है। आप निश्चिन्त रहें कि मैं ठीक होते ही आपके साथ चल पड़ूँगा।"

सरदार ने करण को आज्ञा दी कि नायक के दुर्ग में ठहरने का प्रबन्ध कर दे और सेना, जो दुर्ग के बाहर आई है, उसके खाने इत्यादि का प्रबन्ध कर दे।

नायक का कहना था कि वह सेना के साथ ही रहेगा। हाँ, कुछ सैनिक दुर्ग के द्वार पर रख दिए जाएँगे।

इस भेंट के पश्चात् नायक ने इन्द्र और शची को देखने की इच्छा प्रकट की। करण उसको बन्दीगृह में ले गया। नायक ने काकूष की आज्ञा उनको सुना दी। उसने कहा—"आपको दो-तीन दिन में मेरे साथ चलना होगा।"

इन्द्र ने केवल यह कहा—"हम तो बन्दी हैं। जहाँ ले चलोगे, चलेंगे।"

इस प्रकार सब देख-भालकर नायक ने बीस सैनिक दुर्ग के द्वार पर बिठा दिए और स्वयं अपनी सेना के शिविर में चला गया।

नायक के जाते ही करण ने दुर्ग में सैनिकों को आज्ञा दे दी कि वे तैयार हो जाएँ। दुर्ग के बाहर छावनी में करण ने आज्ञा भेज दी कि सब छावनी में रहें। कोई सैनिक इधर-उधर न घूमे। साथ ही सब तैयार रहें कि आज्ञा पहुँचते ही उसका पालन हो सके।

इस प्रकार प्रबन्ध कर वह सरदार के पास जा पहुँचा। उसने अपनी सम्मति बताई—"आपको पुरुषपुर कभी नहीं जाना चाहिए। आप निश्चय जानिए कि वहाँ जाकर आप जीवित लौट नहीं सकेंगे। इस कारण मेरी सम्मति है कि इस नायक को बन्दी बना लेना चाहिए। गान्धार-सेना को मृत्यु के घाट उतार देना चाहिए। और यहाँ से भागकर कश्मीर चला जाना चाहिए।"

"मैं भी कुछ ऐसा ही विचार कर रहा हूँ। एक बात मैं निश्चय नहीं कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका। वह यह है कि नायक और सेना की हत्या किए बिना भागूँ अथवा हत्या करके।"

"मेरी सम्मति तो यह है कि हत्याकाण्ड ऐसे चलाना चाहिए कि एक भी सैनिक वापस पुरुषपुर न जा सके। मैं एक पत्र नायक की ओर से लिख दूँगा कि जुष्क को हृद्रोग है। उसकी चिकित्सा हो रही है और उसके ठीक होते ही सबको लेकर आ रहा हूँ। इस प्रकार हमको भागने अथवा आक्रमण का विरोध करने का अवसर मिल जाएगा। मैं एक बार फिर शची से बातचीत करना चाहता हूँ। यदि वे मेरी बात मान गए और उन्होंने आग्नेय अस्त्र दे दिया तो हम गान्धार का राज्य ययाति के लिए पा लेंगे।"

इस प्रकार करण जुष्क को समझाकर इन्द्र के पास गया। इन्द्र काकूष की आज्ञा पाकर चिन्ताग्रस्त बैठा हुआ था। शची अपने पति को समझा रही थी कि जब तक वे दूसरों की सहायता नहीं करते, तब तक कैसे दूसरों से सहायता की आशा करते हैं? इन्द्र अनुभव कर रहा था कि अब निर्णय का समय आ गया है।

जब करण आया तो उसने इन्द्र से कहा—"देवराज, अब अधिक देरी करने का समय नहीं। यदि आप सहायता की आज्ञा दें, तो मैं इतना समय निकाल सकता हूँ कि आप देवलोक जाकर आग्नेय अस्त्र हमको भेज सकें।"

इन्द्र मान गया। पश्चात् योजना के अन्य अंगों पर भी विचार किया गया। इस विचार में जुष्क को भी सम्मिलित कर लिया गया।

: ६ :

यह वही दिन था, जिस दिन वरुण को अपनी योजना के तीसरे अर्थात् अन्तिम चरण का प्रयोग करना था। सब कुछ निश्चय हो गया था। वरुण ने जब सुना कि काकूष ने एक सेना भेजी है, जो जुष्क और बन्दियों को पुरुषपुर ले जाने वाली है, तो उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि उसी रात ही उसकी योजना कार्यान्वित होगी। दुर्ग-द्वार पर गान्धार-सैनिकों को देख जहाँ वह डरा, वहाँ मुस्कराया भी। उसकी योजना में वे सैनिक बाधा नहीं डाल सकते थे। वह नगर-द्वार के बाहर भी गया। द्वार से कुछ बाहर गान्धार-सैनिकों का शिविर था। इस कारण उसको अपने मार्ग में कुछ परिवर्तन करना पड़ा। दक्षिण द्वार के स्थान उसने उत्तर द्वार से निकलने का प्रबन्ध कर लिया। उसने द्वारपाल को समझा दिया कि वह अपना माल लेकर गान्धार-सैनिकों के समीप से नहीं जाना चाहता। वे इसको लूट लेंगे। साथ ही उसने मार्ग पर प्रतीक्षा करने के लिए पहले दस साथी भेज दिए थे।

इस प्रकार यह प्रबन्ध कर उसने बन्दीगृह के प्रहरियों के नायक को कहला भेजा कि विवाह का प्रबन्ध पूर्ण है। प्रहरी-नायक प्रसन्न था। उसकी चिन्ता यही थी कि कहीं द्वार पर रोक न लिया जाए। इस कारण अपने अधीन एक को यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर कि वह रात को कहीं काम पर जा रहा है, सायंकाल से पूर्व ही दुर्ग से बाहर निकल जाने को तैयार हो गया। जब जाने लगा तो उसकी दृष्टि कमल पर पड़ी। वह आज काम में इतनी व्यस्त थी कि बार-बार शची के आगार में आ-जा रही थी। इस कारण जब उसने कमल को देखा, तो मुस्कराकर उससे पूछने लगा—

"कमल !"

"हाँ।"

"तुम प्रसन्न हो ?"

"बहुत श्रीमान् !"

"आज वरुण से मिली हो ?"

"हाँ।"

"वह बहुत अच्छा आदमी है।"

"हाँ ! परन्तु श्रीमान् मुझको इस समय बहुत काम है। रात को आपसे मिलकर शेष बात करूँगी।"

"ठीक है। ठीक है। मैं समझता हूँ। मूर्ख नहीं हूँ।" इतना कह मन में सन्तोष अनुभव कर दुर्ग के बाहर चला आया।

सूर्यास्त से पूर्व ही वह वरुण के गृह में जा पहुँचा। वरुण उसको देख डर गया। उसने समझा कि कोई विघ्न आ पड़ा है। परन्तु नायक ने बताया—"द्वार पर गान्धार बैठे हैं। इस कारण यह विचार कर कि रात को शायद वे न आने दें, अभी चला आया हूँ। पर कमल का क्या होगा ?"

वरुण को यह सुन सन्तोष हुआ। उसने बताया—"कमल की चिन्ता न करें। उसके बाहर आने का प्रबन्ध मैंने कर लिया है।"

वह नायक को निश्चित मकान के निश्चित आगार में ले गया। वहाँ उसको बैठाकर वरुण ने कहा—"मित्र ! यहाँ बैठो। मैं बाहर से द्वार बन्द कर जाता हूँ, जिससे आपको यहाँ बैठा हुआ कोई देख न ले। जब कमल आएगी तो कमल के साथ आपको विवाह-मण्डप में ले चलूँगा।"

इतना कह वरुण सब प्रकार से तैयार हो सुरंग-द्वार पर बैठा समय की प्रतीक्षा करने लगा।

अभी रात्रि एक प्रहर भी व्यतीत नहीं हुई थी कि दुर्ग में भारी हल्ला हुआ। वह दुर्ग के द्वार पर यह जानने गया कि क्या हो रहा है। परन्तु द्वार बन्द था और भीतर बहुत चीख-पुकार मच रही थी। इस समय उसने देखा कि नगर के बाहर जहाँ गान्धार-सेना का शिविर था, आग भड़क उठी है। वरुण समझ गया कि गान्धार और सरदार की सेनाओं में युद्ध छिड़ पड़ा है। वह सरदार की सेना की शक्ति जानता था। इससे उसको विश्वास था कि गान्धार-सैनिकों का विध्वंस हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएगा। इस हलचल के समय उनकी योजना का चल सकना कठिन था। इस कारण वह शान्ति हो जाने की प्रतीक्षा में भीतर की टोह लेने लगा। यह हलचल शीघ्र ही बन्द हो गई। मध्यरात्रि होते-होते दुर्ग में सब शान्त हो गया। इस समय दुर्ग के भीतर से शव निकलने आरम्भ हो गए और नगर के बाहर ले जाए जाने लगे। वरुण ने इस अवस्था को अपनी योजना के लिए सर्वथा अनुकूल समझा। इस कारण वह दस साथियों को लेकर सुरंग में घुस गया। उसने पूर्ण सुरंग में थोड़े-थोड़े अन्तर पर दीपक जला दिए थे, जिससे भागते हुए वापस आने में कठिनाई न हो।

सुरंग बन्दीगृह की ड्योढ़ी के नीचे तक खोदी जा चुकी थी और मिट्टी का लगभग दो हाथ मार्ग खोदना शेष था। इस मिट्टी के ऊपर ड्योढ़ी की पक्की भूमि थीं। वह देखते-देखते खोद डाली गई। इस समय जब सुरंग ड्योढ़ी में खुल रही थी, सब अपनी-अपनी तलवारें नंगी कर खड़े थे जिससे यदि कोई उनको देख ले और उन पर आक्रमण कर दे तो उसका विरोध किया जा सके।

भूमि खुद गई और ड्योढ़ी में ऊपर जाने तक मार्ग खुल गया। ऊपर अँधेरा था। छिद्र में से सबसे पहले वरुण ने सिर निकाला। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उसे घटाटोप अँधेरा दिखाई दिया। वह लपककर छिद्र के बाहर हो गया। वहाँ किसी मनुष्य का चिह्नमात्र भी नहीं था। वरुण ने सुरंग में खड़े साथियों को संकेत किया तो वे एक-एक कर बाहर आ गए। सब चोरी-चोरी दबे पाँव बन्दीगृह के ऊपर चले गए।

वरुण के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि पूर्ण गृह खाली है। वहाँ न तो कोई प्रहरी था, न कोई दासी। वह तीसरी छत पर जा पहुँचा। वहाँ उन आगारों को, जिनमें इन्द्र और शची थे, ताले लगे हुए थे। वह वहाँ पर ही विचार करने ठहर गया। पहला विचार उसके मन में यह आया कि वह किसी दूसरे मकान पर चढ़ आया है। उसने भागते हुए नीचे आ ड्योढ़ी में खड़े हो, फिर बाहर से उस गृह को देखा। यही बन्दीगृह था। ऐसा विश्वास कर, दूसरा विचार उसके मन में यह आया कि गान्धारों के साथ युद्ध में इन्द्र वहाँ से निकाल किसी अन्य स्थान में ले जाया गया है। इसके साथ ही उसके मन में यह भी विचार आया कि शायद उनका भेद खुल गया है। कमल ने कुछ बात बता दी हो, जिससे इन्द्र और शची की रक्षा के लिए उनको वहाँ से हटा दिया गया हो। इस विचार के आते ही एक बात उसके मन में आई कि उसकी पूर्ण योजना विफल गई है और उसको अपनी जान बचाने के लिए यहाँ से भाग जाना चाहिए। इस विचार के आते ही उसने अपने साथियों को संकेत किया और सबके सब सुरंग में से भागते हुए इसके दूसरे द्वार पर जा पहुँचे। वहाँ वरुण ने एक क्षण तक विचार कर, अपने साथियों को कहा—"यह सुरंग छुपी नहीं रह सकती। इस कारण हमारा इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर में रहना सुरक्षित नहीं । सब लोग इन घोड़ों के साथ द्वार के बाहर निकल जाओ और सूर्य निकलने से पूर्व जितना अधिक से अधिक अन्तर अपने और अंधी-कुई में पड़ सके, कर लो ।"

इस प्रकार निश्चय कर सब खच्चरों पर ऊन की गाँठें लाद, नगर के उत्तरी द्वार से निकल गए । माल ले जाने की स्वीकृति होने से किसी ने बाधा खड़ी नहीं की । नगर से कुछ दूर जा ऊन की गाँठें उन्होंने घोड़ों और खच्चरों से उतार, उन पर स्वयं सवार हो उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ उनके साथी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

वहाँ जाकर उन्होंने जल्दी-जल्दी में विचार किया, और सब साथियों को कश्मीर सीमा की ओर भेजकर, वरुण स्वयं छुपकर नगर को लौट पड़ा । जब उसके साथी कश्मीर सीमा की ओर चले गए तो वह नगर की ओर जाने के स्थान कापिश की ओर चला गया । कापिश में वह कुछ दिन रहा ।

इस काल में उसने अपनी डाढ़ी-मूँछ बढ़ा ली और पहरावा बदल पुन: अंधी-कुई में लौट आया । वह नगर के बाजार में दो-चार बार इधर से उधर घूम गया । इसमें उसके कई परिचित आते-जाते मिले पर किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । इससे उनके मन में विश्वास हो गया कि उस भेष में उसको कोई नहीं पहचानेगा । इस प्रकार कुछ निश्चिन्त हो वह निर्धनों के एक मुहल्ले में एक मकान भाड़े पर लेकर रहने लगा । वहाँ रहते हुए उसने सब कुछ, जो पता चल सका, जान लिया ।

अब उसको लोगों से उस रात की घटना का ज्ञान हुआ । जब गान्धार-सेना-नायक रात का भोजन करने सरदार के घर पहुँचा, तो उसके साथ पचास सैनिक थे । वे सब सरदार के प्रासाद के बाहर एक बड़े मैदान में खड़े कर दिए और नायक अकेला भीतर ले जाया गया । सेहन में भलीभाँति प्रकाश किया गया था । नायक को भीतर ले जाकर एक बड़े आगार में, जहाँ जुष्क और करण उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, खड़ा कर दिया गया । करण ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और उसको ले जाकर उच्च आसन पर बिठाया । जो लोग नायक को लेकर आए थे, वे बाहर चले गए और उस आगार के द्वार बन्द कर दिए गए । नायक का ध्यान बातों में लगाने के लिए करण ने कहा—"आप महाराज के प्रतिनिधि हैं । इस कारण हम आपका सम्मान महाराज की भाँति ही करना चाहते हैं ।" ज्यों ही नायक उस आसन पर बैठा, सरदार ने अपनी तलवार खींच ली और पूर्व इसके कि नायक इसका अर्थ समझ सके, उसका सिर धड़ से पृथक् कर दिया गया । ऐसा होते ही प्रतिहार ने तुर्री बजा दी । बाहर खड़े गान्धार-सिपाहियों ने समझा कि भीतर नायक ने भोजन आरम्भ कर दिया है । इस कारण वे विश्रान्ति के भाव में खड़े हो गए । इस समय प्रासाद के चौंतरे, खिड़कियों और छत पर से तीरों की वर्षा होने लगी । इस वर्षा से गान्धार घायल होकर चीखने-कराहने लगे । जब

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राय: सबके सब घायल हो गए तो एक ओर से सशस्त्र सैनिक निकल आए और उन्होंने बचे हुओं का काम तमाम कर दिया।

दूसरी ओर वे सैनिक, जो शिविर में रह गए थे, घेर लिये गए। शिविर को आग लगा दी गई और वहाँ से भागते हुए सैनिकों को उठा-उठाकर आग में फेंक दिया गया। यह तांडव एक प्रहर रात बीतने से आरम्भ हुआ और मध्यरात्रि से पूर्व तक चलता रहा।

इस सब वृत्तान्त के जानने पर भी वरुण इन्द्र और शची के विषय में कुछ नहीं जान सका। पूछताछ पर केवल एक बात उसको पता चली कि ऊन का ठेकेदार वरुण बहुत ही बदमाश व्यक्ति निकला है। उसने अपने घर के भीतर से दुर्ग के अन्दर तक सुरंग लगाकर इन्द्र की एक सेविका कमल के अपहरण का यत्न किया था। इस यत्न में वह असफल रहा। कमल उससे पूर्व ही दुर्ग से चली गई थी।

वह जानने का यत्न करता रहा कि कमल कहाँ चली गई है, परन्तु कोई नहीं जानता था। इन्द्र के विषय में भी कोई कुछ नहीं जानता था। एक बात थी। करण भी उसी रात से लापता था और करण का कार्य सरदार स्वयं देख रहा था। इसका अर्थ वरुण यह समझा था कि करण इन्द्र और शची को लेकर कहीं चला गया है। शायद वह बन्दियों को लेकर काकूष के पास गया हो। अथवा उनको किसी अन्य दुर्ग में बन्दी के रूप में रखने चला गया हो।

एक बात उसने और देखी। सरदार सेना की तैयारी में लगा है। सेना में धनुर्विद्या और खड्ग चलाने का अभ्यास वेग से चल रहा है। सरदार गाँव-गाँव में घूम-घूमकर लोगों को सेना में भर्ती कर रहा है। इस सब परस्पर विरोधी समाचारों के कारण वह किसी परिणाम पर पहुँच नहीं रहा था।

उन्हीं दिनों एक दिन विशेष घटना घटी। वह अपने घर में बैठा प्रातः का भोजन कर, अपने विचारों के विश्लेषण में लगा था कि घर के बाहर शोर मचा। उसके कान खड़े हो गए। जब कुछ समझ नहीं सका, तो वह उठकर बाहर चला आया। जब बाजार में पहुँचा तो लोगों को भयभीत इधर-उधर भागते देख, विस्मय मे पूछने लगा—"क्या हुआ है?"

एक भागते हुए ने आकाश की ओर उँगली की, परन्तु उसके मुख से कुछ नहीं निकला। वरुण खुले मैदान में पहुँच आकाश की ओर देखने लगा। दूर पूर्व की ओर एक श्वेत बिन्दुमात्र कोई वस्तु धीरे-धीरे इस ओर आती दिखाई दे रही थी। पहले तो वरुण भी नहीं समझ सका कि यह क्या है, परन्तु जब वह वस्तु कुछ समीप आई, तो वह समझ गया कि यह विमान है। उसने विमान पहले कभी नहीं देखा था, परन्तु पुस्तकों में पढ़ने से वह समझ गया था। इस बात को समझते ही उसके मस्तिष्क में आया कि यह विमान अवश्य इन्द्र के सम्बन्ध में आया है। इस कारण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र का रहस्य जानने के लिए वह विमान के भूमि पर उतरने के स्थान पर जाने का विचार करने लगा। जब विमान अंधी-कुंई के ऊपर आ गया, तो उसके मन में विचार आया कि यह अब अवश्य दुर्ग के भीतर मैदान में उतरेगा। इस कारण वह दुर्ग द्वार की ओर चल दिया। जबसे गान्धार-सैनिकों का हत्या हुई थी, तबसे दुर्ग का द्वार बन्द रहता था, परन्तु आज द्वार खुला था। प्रहरी सब भाग गए थे। द्वार पर एक क्षणभर ठहर वरुण भीतर चला गया। सरदार और उसके परिवार के लोग प्रासाद के झरोखों में खड़े विमान को उतरते देख रहे थे। कुछ सैनिक इधर-उधर भाग रहे थे। एक सैनिक ने वरुण से कहा भी—"क्या मरना चाहते हो, जो यहाँ खड़े देख रहे हो ? भाग जाओ।"

वरुण मुस्करा दिया। जब लोग घरों के भीतर छुपने के लिए भाग रहे थे, वरुण ने देखा कि एक स्त्री अपने दो बच्चों को साथ लिये सरदार के प्रासाद के पिछवाड़े के एक घर से निकली और दुर्ग के भीतर मैदान की ओर चल पड़ी। वह बार-बार आकाश में उतरते विमान की ओर देख रही थी। वरुण समझ गया कि यह स्त्री विमान के विषय में जानती है। इससे वह उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। दुर्ग के एक पार्श्व में खुला मैदान था, जहाँ दुर्ग में रहने वाले सैनिक व्यायाम करते थे। यह स्त्री उस स्थान पर जाकर एक ओर ठहर गई। इस समय विमान ठीक उस स्थान के ऊपर आकाश में आकर ठहर गया। वह स्त्री बच्चों को, जो उसके दोनों ओर खड़े थे, उँगली से संकेत कर विमान दिखा रही थी।

वरुण उस स्त्री के पीछे जाकर खड़ा हो गया और अत्यन्त आदरपूर्वक पूछने लगा—"देवी ! तुम देवलोक की रहने वाली प्रतीत होती हो ?"

वह स्त्री सुमन थी। उसके साथ माणिक्य और परा थे। वरुण के प्रश्न से वह प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। पश्चात् उसने पूछा—"तुम कौन हो ?"

"देवताओं का एक सेवक। यह विमान किसलिए आया है ?"

सुमन ने उत्तर देने के स्थान पुनः पूछा—"किसके सेवक हो तुम ?"

"बिना जाने कि किससे बात करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, मैं कैसे बता सकता हूँ। मान लीजिए कि मैं महारानी देवयानी का सेवक हूँ, तो क्या आप समझ सकेंगी ?"

"क्यों नहीं ! मैं उन्हें जानती हूँ। तो तुम देवता हो ?"

"देवी, नहीं। मैं कश्मीर-निवासी हूँ। क्या मैं जान सकता हूँ कि यह विमान देवराज इन्द्र और उनकी पत्नी को लेने आया है ?"

सुमन ने मुस्कराते हुए कहा—"मित्र ! प्रतीक्षा करो। सब कुछ मालूम हो जाएगा।"

इस समय सरदार और उसकी पत्नी और उनके साथ कुछ अन्य उच्च कर्मचारी भी प्रासाद से निकल, मैदान के एक ओर आकर खड़े हो गए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरुण अब भी चुपचाप सुमन के पीछे खड़ा था। सरदार की पत्नी और लड़की सुमन के समीप आ गई। इससे वरुण उनसे कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया।

विमान का धीरे-धीरे मैदान में उतरना आरम्भ हो गया था। सरदार को वहाँ देख कुछ और लोग भी साहस पकड़कर वहाँ आ खड़े हुए। ज्यों ही विमान भूमि पर टिका, विमान का द्वार खुला, और सबसे पहले इन्द्र उतरा। सरदार उसके पास गया और उससे गले मिला। वह इन्द्र से बातें करता हुआ, उसको एक ओर ले गया। वरुण ने इन्द्र को दूर से ही, जब वह छत पर भ्रमण करता था, देखा था। वह पहचान गया। इन्द्र के पीछे करण निकला और तीन अन्य व्यक्ति उतरे।

करण को उतरते देख, सुमन बच्चों को ले उसके पास पहुँची और चरणस्पर्श कर खड़ी हो गई। करण ने बच्चों को उठाकर गले लगाया। वे उसकी गर्दन में लटक रहे थे। बच्चों को प्यार कर करण ने उन्हें भूमि पर खड़ा कर दिया और सरदार के पास जा झुककर प्रणाम किया और उसके पास खड़ा हो गया।

सुमन पुनः अपने स्थान पर पीछे हटकर खड़ी हो गई। इस समय तक वरुण सब कुछ समझ गया था। अतएव वह सुमन के समीप पहुँच अपने अनुमान का समर्थन कराने के लिए पूछने लगा—"देवी ! तो देवराज इन्द्र यहाँ से मुक्त हो देवलोक चले गए थे और अब वहाँ से आ रहे हैं ?"

"हाँ ! आप ठीक समझे है, पर आप हैं कौन ?"

"अब तो मैं आपके विषय में भी जान गया हूँ। मैं महारानी देवयानी द्वारा यहाँ सुरेश और महारानी शची को मुक्त कर, भगा ले जाने के लिए भेजा गया था। मैंने यत्न किया था, परन्तु देरी से पहुँचा। मुझको यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि वे अपने देश में चले गए थे। अब मैं निश्चिन्त हो वापस जा सकूँगा।"

"आप तनिक ठहरिए। क्या नाम है आपका ?"

"वरुण।"

"ओह ! कमल को भगाने के लिए सुरंग खोदने वाले ?"

"नहीं, देवी ! कमल को नहीं ! वह सुरंग तो देवराज इन्द्र और महारानी शची के लिए थी।"

"सत्य ?" सुमन आश्चर्यपूर्वक वरुण का मुख देखती रह गई।

वरुण ने कहा—"जब हम सुरंग पूर्ण कर बन्दीगृह में पहुँचे तो बन्दीगृह खाली हो चुका था।"

बात सुमन की समझ में आ गई। वह उसको ठहरने को कहकर पुनः बच्चों को साथ ले करण के पास चली गई। करण उस समय सरदार को बता रहा था—"हम बहुत से आग्नेय अस्त्र ले आए हैं और शीघ्र ही हम गान्धार और कामभोज पर अपना अधिकार जमा लेंगे।"

सरदार इस सूचना से अति प्रसन्न था। वह पुनः इन्द्र को हाथ जोड़ धन्यवाद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगा। इन्द्र उस समय सरदार की लड़की से बातें कर रहा था।

करण को अकेला देख सुमन ने कहा—"देखिए, वह व्यक्ति कहता है कि महारानी देवयानी ने उसको देवराज को छुड़ाने के लिए यहाँ भेजा था। वह कौन हो सकता है?"

करण ने घूमकर देखा और पश्चात् उँगली से संकेत कर वरुण को समीप बुला लिया। जब वह पास आया तो पूछने लगा—"तुम वरुण हो क्या?"

"हाँ श्रीमान्!"

"ऊन के व्यापारी?"

"हाँ श्रीमान्!"

"कमल के प्रेमी?"

"श्रीमान्!"

"इधर आओ!" वह वरुण को लेकर इन्द्र के पास चला गया। इन्द्र से वरुण की ओर संकेत कर बोला—"महाराज! यह है आपकी कमल का प्रेमी। विक्रमदेव का मित्र वरुण।"

इन्द्र ने उसकी ओर ध्यान से देखकर कहा—"तुम मेरे साथ देवलोक चलोगे। तुम्हारी प्रेमिका वहाँ तुम्हारे विरह में व्याकुल हो रही है।"

: १० :

जब इन्द्र और शची घोड़ों पर बैठकर भागते हुए अमरावती पहुँचे तो भारी हलचल मच गई। उनके आने की सूचना किसी को नहीं थी। कुछ दिन हुए विक्रम के नाम वरुण का पत्र आया था। उसमें उसने यह लिखा था कि उसकी सुरंग तैयार है और निर्धारित रात्रि को वह अन्तिम यत्न करेगा। इसके पश्चात् उसकी कोई सूचना नहीं आई। कोई समाचार न आने के कारण नारद ने समझा कि कोई दुर्घटना हो गई होगी। एकाएक एक दर्जन के लगभग अश्वारोही अपने घोड़ों को सरपट दौड़ते हुए अमरावती में प्रविष्ट हुए। तब मार्ग में चलते हुए किसी ने अश्वारोहियों में सबसे आगे इन्द्र और शची को पहचान लिया और उसने जयघोष कर दी। इससे मार्ग पर चलते हुओं का ध्यान उनकी ओर चला गया। विद्युत् की भाँति यह समाचार नगर में फैल गया और जब तक अश्वारोही मण्डी में पहुँचे, वहाँ सहस्रों की भीड़ एकत्रित हो गई। भीड़ ने मार्ग रोक लिया और विवश अश्वारोहियों को घोड़े रोकने पड़े। जनता ने अपने राजा और रानी को पहचाना और उनकी सवारी निकाल ली। इन्द्र और शची के साथ अन्य लोग करण और सरदार जुष्क के सैनिक थे।

गगनभेदी जयघोष के भीतर इन्द्र भीड़ से घिरा हुआ अपने भवन की ओर चल पड़ा। नगर के लोग इन जयघोषों को सुनकर घरों से निकल दर्शन करने के लिए भवन की ओर भागे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन में रहने वालों ने नगर में जयकारों का नाद सुना और विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखने लगे। इसका कारण जानने के लिए सेवक भेजे गए और जब महाराज और महारानी के आने का समाचार मिला तो देवयानी और विक्रम तथा अन्य लोग स्वागत के लिए बाहर निकल आए।

उस दिन और रात दर्शन करने वालों का ताँता लगा रहा। प्रति दो घड़ी में भवन के बाहर का मैदान भीड़ से भर जाता था और महाराज और महारानी को भवन के छज्जे में आना पड़ता और जनता को दर्शन देने पड़ते।

दो दिनों की भेंटों और स्वागत-समारोहों के पश्चात् निश्चिन्त होकर विचारने का अवसर मिला और ब्रह्मा, नारद, विक्रम और देवयानी विचार-विमर्श करने लगे। इस समय करण को पता चला कि कमल, जिसको शची अपने साथ ले आई थी, एक वरुण नाम के कश्मीरी के लिए व्याकुल हो रही है और वह वरुण विक्रम का मित्र है, जो इन्द्र को छुड़ाने का यत्न कर रहा था। जब विक्रम से उसकी सुरंग की कथा का पता चला तो उसे आश्चर्य हुआ।

इन्द्र के जुष्क को आग्नेय अस्त्र देने की सबने सराहना की। ब्रह्मा ने अपनी राय दी कि काकूष का नाश होना ही चाहिए और उसके नाश का उपाय इससे सुगम और कोई नहीं।

तीसरे दिन इन्द्र ने भवन के भूगर्भस्थित आगारों से आग्नेय अस्त्र निकलवाए और दस की संख्या में एक विमान में रख दिए। पश्चात् इन्द्र, करण और दो अन्य सेवक अंधी-कुंई के लिए चल पड़े। जाने से पूर्व विक्रम ने करण से वरुण को ढूँढ़कर वापस भेजने का आग्रह किया।

जब इन्द्र वरुण को लेकर लौट आया तो देवयानी और विक्रम ने कश्मीर लौट जाने की इच्छा प्रकट की। इन्द्र की इच्छा थी कि वे कुछ काल और वहाँ रहें, जिससे उसको उनकी संगत का और अधिक फल मिल सके, परन्तु उन्होंने कहा कि इस कार्य के लिए वे फिर कभी आएँगे।

विक्रम और देवयानी ने देवलोक के उद्धार के लिए महान् प्रयत्न किया था और सब लोग इस बात को जानते थे। इस कारण उनके जाने से सबको दुःख हो रहा था। उनके डेढ़ वर्ष के राज्य में देवताओं में नए उत्साह और विचारों का प्रादुर्भाव हुआ था और देवलोक के वातावरण में भारी अन्तर पड़ा था। पितामह ब्रह्मा उनसे अत्यन्त प्रसन्न थे और चाहते थे कि वे कश्मीर में न जाकर देवलोक में ही निवास करें।

इस पर विक्रम ने आदिकवि वाल्मीकि के एक श्लोकांश को सुना दिया—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

ब्रह्मा यह सुनकर हँस पड़ा।

ब्रह्मा इन्द्रभवन के एक आगार में, जिसमें वह ठहरा हुआ था, बैठा था। इन्द्र,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शची, नारद आदि भी बैठे थे। विक्रम देवयानी के साथ एक ओर बैठा हुआ ब्रह्मा से विदा माँगने आया था। जब "जननी जन्मभूमिश्च···" श्लोक कहने पर ब्रह्मा हँसा तो विक्रम ने कहा—"पितामह ! मेरे विचार से इसमें हँसने की बात नहीं।"

"मैं कहता हूँ कि मैं जानता हूँ और तुम नहीं जानते। तभी तुम ऐसा समझते हो। कठिनाई यह है कि यदि मैं पूर्ण कथा वर्णन करूँ तो तुम विश्वास नहीं करोगे। सो रहने दो और इस हँसी को बूढ़े के मस्तिष्क का भ्रम मान भूल जाओ।"

"नहीं बाबा !" देवयानी ने बात काटते हुए कहा—"हम इस प्रकार नहीं मानेंगे। आप हमें निर्बोध बालक मान यहाँ से भेज रहे हैं। मैं समझती हूँ कि हमने कुछ संसार देखा है और हम समझने की शक्ति भी रखते हैं। जब कोई समझता है तो विश्वास भी करता है।"

"बहुत सुन्दर बेटी ! परन्तु जब कोई ज्ञान की बात अपने प्रयास से प्राप्त होती है तो उसका मूल्यांकन होता है। बिना यत्न के जब ज्ञान की प्राप्ति होती है तो उसको मूल्यवान् नहीं माना जाता।"

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि आप द्वारा इंगित रहस्य को जानने के लिए हमें तपस्या करनी होगी। खैर, हम भी धूनी रमाकर आपके द्वार पर जम जाएँगे और आमरण उपवास कर देंगे। तब क्या हम इस योग्य हो जाएँगे कि जो ज्ञान की बात आप बताएँगे, उसका मूल्य आँक सकें ?"

"पर तुम सन्तोष से प्रतीक्षा क्यों नहीं करतीं ? प्रत्येक बात अपने समय पर नियमानुसार प्रकट होती रहती है।"

"यही तो हम मानवों में और आप देवताओं में अन्तर है। आप दीर्घजीवी हैं और धैर्य से प्रतीक्षा करते हैं। हम जानते हैं कि हमारा कठिनाई से सौ वर्ष का जीवन है। इसका बहुत-सा अंश बड़े होने में और सन्तानोत्पत्ति में व्यतीत हो जाता है और जब कुछ समझने का समय आता है तो हम बूढ़े हो जाते हैं। हमारे पास जीवन की गहराइयों तक पहुँचने का समय ही कहाँ है ?"

ब्रह्मा इससे गम्भीर विचार में पड़ गया। कुछ विचारोपरान्त बोला—"तुम सत्य कहती हो देवयानी ! मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी त्रुटि यही है कि यह बहुत छोटा है। अच्छी बात है, यदि तुम आग्रह करती हो तो बताता हूँ। सम्भव है, यह रहस्य तुम्हारे अपने भावी जीवन के निर्माण में सहायक हो सके।"

: ११ :

ब्रह्मा ने आँखें मूँद लीं और धीरे-धीरे एक कथा वर्णन करने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपनी अन्तरात्मा की किसी अन्तरतम कन्दरा से टटोल-टटोलकर उसे निकाल रहा हो।

उसने कहा—"लो सुनो ! अनन्त काल से एक विवाद चला आ रहा है। वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, इस संसार की उत्पत्ति के विषय में। यह विवाद मनुष्य जाति के अन्त तक चलेगा। आत्मा तथा प्रकृति का अनादिपन इस विवाद की दो धुरियाँ हैं। अन्तिम निर्णय कि आत्मा और प्रकृति का क्या सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध कैसे बनता है, अथवा ये दोनों स्वयं भी कुछ हैं या केवल मायारूपी हैं, कभी नहीं हो सकेगा। फिर भी एक बात तो स्पष्ट है कि एक प्राणी का जीवन उसके भौतिक शरीर के साथ अन्त नहीं होता। शरीरान्त के पश्चात् भी यह चलता रहता है। जिसकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण है कि वह शरीर के बाहरी आवरण को भेदकर भीतर देख सकता है, वह जीवन के चालू रहने का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वह पुरुष न केवल अदृश्य लम्बे जीवन का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, प्रत्युत वह उस अन्तरात्मा की रूपरेखा भी जानकर उसको पहचान लेता है। और उसको यह बात निर्मल जल की भाँति स्पष्ट हो जाती है कि इस परिवर्तनशील बाहरी कलेवर के भीतर कौन-सी रूपरेखा वाली आत्मा बैठी है।

"ऐसी दिव्य दृष्टि से युक्त मनुष्य को अपने बाहरी शरीर पर अथवा उसकी देश, काल तथा अवस्था पर मोह करते देख हँसी ही तो आनी चाहिए। यह तो नाटक के उस अभिनेता को देखने के तुल्य है, जो मंच पर एक राजा का अभिनय करते हुए भूल जाता है कि वह तो एक निर्धन आतुर प्राणी है। इससे तो और भी अधिक हँसी तब आती है जब एक राजा मंच पर रंक का अभिनय करता है और उसी की भाँति रोने-धोने लग जाता है। अब समझो कि मेरे हँसने में विस्मय करने का कहाँ स्थान है?

"देवलोक में एक स्थान है, जिसको कैलास कहते हैं। प्राचीन काल में यह स्थान सागर के समीप था और उस समय पृथ्वी माता यौवनावस्था में थी। इस कारण यह स्थान उष्ण था। वहाँ रहना केवल सम्भव ही नहीं, प्रत्युत आनन्दप्रद भी था।

"तब वहाँ एक तपस्वी रहता था। वह जन्म-मरण के रहस्य को समझने में लगा हुआ था। समय पाकर वह इस रहस्य पर अधिकार पा गया और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में लग गया। इसमें उसके कई जीवन व्यतीत हो गए। अबकी बार उसे एक सुन्दर कन्या पार्वती ने वरा और वे आनन्द से रहने लगे।

"तब तक सागर पीछे हट गया और कैलास पर शीत का साम्राज्य हो गया। पृथ्वी माता भी प्रौढ़ावस्था में पहुँचने से अपनी उष्णता खो बैठी और इसका बाहरी रूप ऊबड़-खाबड़ हो गया।

"तपस्वी शिव और पार्वती कैलास छोड़ एक अन्य स्थान पर, जहाँ उष्णता कुछ अधिक थी, रहने चले गए। यह स्थान कामभोज था। कामभोज के निवासी उच्छृङ्खल थे। उनका रहन-सहन देवलोक के रहन-सहन से बिल्कुल भिन्न था। वे सांसारिक जीवन को शरीर के पन्म-मरण से सीमित मानते थे और इस सीमित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल को अधिक-से-अधिक सुखमय बनाने में पूर्व और पश्चात् का ध्यान छोड़कर प्रत्येक प्रकार का कुकर्म करने में लीन थे। बलशाली दुर्बलों का शोषण करने में लीन थे। सबलों के पास अनेक स्त्रियाँ थीं और दुर्बल घुल-घुलकर मरते थे। देश का धर्म भी शक्तिशालियों के अधीन था। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार का राज्य था।

"तपस्वी शिव ने यह अनुभव किया कि इन अज्ञानी मूर्खों के देश में उसके चित्त को शान्ति नहीं मिलेगी। नित्य अनेक ऐसी घटनाएँ सुनाई देती थीं, जहाँ किंचित् से सुख के लिए अमूल्य जीवन स्वाहा कर दिया जाता था। कई वर्ष वहाँ रहकर दोनों ने वह देश छोड़ दिया और देवलोक को लौट पड़े। इस समय तक कश्यप ऋषि ने सतिसर के जल को पहाड़ फोड़कर निकाल दिया था और कश्मीर वादी रहने योग्य बना दी थी। इस सुन्दर वादी में भ्रमण करते हुए वे वहाँ के राजा नागराज के राज्य में ठहरे, तो राजा ने उनसे उनका आतिथ्य स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। शिव और पार्वती यहाँ की जलवायु अनुकूल पा, इसी वादी में रहने लगे। नागराज बहुत ही सुन्दर युवक था और बातें करने में अति चतुर था। उर्वरा होने के कारण वादी भी पूर्ण सौन्दर्यमयी थी।

"झरने, सरोवर, नदियाँ, ताल और बर्फ से ढकी चोटियों वाले पहाड़ इस वादी को अति मनोरम बना रहे थे। भूमि पर हरियाली, फल-फूलों से लदे पौधे इसकी शोभा को कई गुना बढ़ाते थे। इस सब पर पार्वती मुग्ध हो गई और नित्य तपस्वी पति से अनुरोध करने लगी कि कैलास जाने की अपेक्षा वहीं रह जाएँ तो ठीक रहेगा।

"शिव भी अनुभव करते थे कि कश्यप ऋषि द्वारा निर्मित यह वादी संसार में अपने जोड़ का स्थान नहीं रखती। इस कारण पार्वती के आग्रह को मानकर वे वहीं ठहर रहे थे। उनको दो बातें अखरती थीं, एक तो नागकन्याएँ, जो अपने अद्वितीय सौन्दर्य से देवकन्याओं को भी लज्जित करती थीं; दूसरा सुन्दर नागराज, जो पार्वती के चारों ओर ऐसे चक्कर काटता था जैसे गुलाब के फूल पर भँवरा।

"एक दिन शिव समाधिस्थ थे। पार्वती उनकी समाधि टूटने की प्रतीक्षा में उनके पान करने के लिए दुग्ध लिये सामने बैठी थी। इस समय नागराज भी देवों के देव के दर्शनार्थ वहाँ पहुँच गया। यह जान कि पार्वती उनकी समाधि टूटने की प्रतीक्षा में है, वह भी वहीं बैठ गया। समय टालने के लिए वह पार्वती से बातें करने लगा। उसने बहुत बातें कहीं और सुनीं। देवलोक, इन्द्रलोक और अन्य अनेक स्थानों के विषय में पार्वती ने बताया और अन्त में कश्मीर की प्रशंसा की। इस पर नागराज ने कहा—'इस स्थान के सौन्दर्य की बात तो मैं जानता नहीं, परन्तु यह समझता हूँ कि चन्द्र समान आपका सौम्य सौन्दर्य इस वादी को सहस्र गुना बढ़ा रहा है। मेरा तो आग्रह है कि आप अपनी मनोहर छवि की छटा से इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान के अधम राजा को पुलकित करती रहें।'

"जब नागराज यह कह रहा था, शिवजी महाराज की समाधि टूट रही थी। उन्होंने नागराज के इस कथन को सुना और अपनी आँखें खोल दीं।

"पार्वती का दिया हुआ दूध पिया और बोले—'देवी, हम इसी क्षण यहाँ से चलेंगे।'

" 'कहाँ, भगवन् ?'

" 'कैलास को।'

" 'वहाँ क्या है ?'

" 'वहाँ तुम्हारा पति रहेगा।'

"पार्वती चुप रही। महादेव ने समझा कि बात हो गई। इस कारण शीघ्र नागराज को विदा कर चलने की तैयारी करने लगे।

"एकान्त पा पार्वती ने पुनः आग्रह करना आरम्भ किया। इस पर महादेव को क्रोध आ गया और बोले—'देवी! तुमको यह स्थान अति सुन्दर प्रतीत होता है, तो मैं शाप देता हूँ कि अगले जन्म में तुम यहाँ पर उत्पन्न हो। यहाँ के किसी सुन्दर युवक से विवाह करो।'

"पार्वती इस श्राप को सुन सन्न रह गई। उसका मुख पीतवर्ण हो गया और वह शीश को अपने हाथों में पकड़कर वहीं बैठ गई। उसके सिर में चक्कर आने लगे। बैठे-बैठे उसे एक बात का ज्ञान हुआ। इससे लम्बा साँस खींच वह उठ खड़ी हुई और चलने की तैयारी करने लगी।

"इतने में भोले बाबा का क्रोध शान्त हो गया और जब वे वादी से देवलोक की ओर चले तो मार्ग में पूछने लगे—'देवी! तुमने इस शाप को मिटाने के लिए मुझसे कुछ माँगा नहीं ?'

"पार्वती मुसकराई और बोली—'नाथ! इस शाप से जितनी हानि आपने मेरी की है, उससे कहीं अधिक आपने अपनी की है। मैं तो सती-साध्वी पत्नी हूँ। इस कारण अब मेरा सिवाय आपके और किसी से विवाह नहीं हो सकता। यदि आपका शाप फलीभूत हुआ तो विवश हो आपको भी मेरे साथ मनुष्यजन्म में आना पड़ेगा, अन्यथा मेरा विवाह किसी से हो नहीं सकेगा। यहाँ का वह सुन्दर युवक, जिससे मेरा विवाह होना है, वह आपके सिवा अन्य कोई नहीं होगा। इससे आप पुनः जन्म-मरण के बन्धन में पड़ तपस्या का फल खो बैठेंगे।'

"शिव को इससे बहुत चिन्ता होने लगी। देवलोक में लौटने के उपरान्त एक दिन वह मेरे पास आए और पूर्ण कथा सुनाकर मुझसे इसका उपाय पूछने लगे। शिव ने कहा कि उनकी तपस्या ऐसे स्तर पर पहुँच चुकी है कि वह जन्म-मरण से मुक्त होने वाले हैं। यदि मानव-जन्म में वह अपने ज्ञान को भूल गए तो पुनः वही कुछ करना होगा जो सहस्रों वर्ष और कई जन्मों में उन्होंने किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं सिवाय इसके उनकी और अधिक सहायता नहीं कर सकता था कि उनको सान्त्वना देता कि उनके पुण्य कर्मों के बल से, उनको उचित समय पर ज्ञान प्राप्त हो जाएगा और वे अपनी पूर्व की तपस्या का फल भोग सकेंगे।

"जिस दिन तुम ब्रह्मलोक में मेरे स्थान पर आए थे तो मैं तुम दोनों को देख, तभी तुम्हारे अन्तरात्मा को पहचान गया था। मेरी इच्छा बताने की नहीं थी। पर अब बता दिया है, तो इससे लाभ उठाने का यत्न करो।"

इसके उपरान्त ब्रह्मा पुनः आँखें मूँद विचारों में लीन हो गया। इस कथा के सुनने वाले सब स्तब्ध रह गए। किसी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकल सका।

देवयानी और विक्रमदेव भी अपने स्वप्नों का ध्यान कर और अपने पतन का अनुमान लगाकर रो पड़े। बहुत देर तक उनके चक्षुओं से आँसुओं की धारा बहती रही। अन्त में विक्रम उठा और आश्रय दे देवयानी को उठाया, डगमगाते पग रखता हुआ, बिना बोले बाहर निकल गया।

109082

□□□

R74,KAU-S
109082

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar